

श्रीहरिः

सचित्र

श्रीप्रेम-सुधा-सागर

(भगवान् वेदव्यासकृत 'श्रीमद्भागवत' के केवल दशम
स्कन्धकी श्लोकाङ्कसहित और विविध टिप्पणियोंसे
समन्वित सरल हिन्दी व्याख्या)

संवत् २००८ प्रथम संस्करण १०,०००

संवत् २०१४ द्वितीय संस्करण ५,०००

मूल्य ३॥)

(साढ़े तीन रुपये .

पता—गीताप्रेस, पो० गीताप्रेस (गोरखपुर)

मुद्रक-प्रकाशक—धनदयामदास जालान, गीताप्रेस, गोरखपुर

नम्र निवेदन

श्रीमद्भागवत भारतीय वाङ्मयका मुकुटमणि है। वैष्णवोंका तो यह सर्वस्व ही है। भारतवर्षमें जितने भी वैष्णव-सम्प्रदाय प्रचलित हैं, उन सभीमें श्रीमद्भागवतका वेदोंके समान आदर है। कई आचार्योंने तो प्रस्थानत्रयीके अन्तर्गत उपनिषदों और ब्रह्मसूत्रोंके साथ इसीको तीसरा प्रस्थान माना है। इसे वेद-महोदधिका अमृत कहें तो कोई अत्युक्ति न होगी—‘वेदोपनिषदां साराङ्गात्वा भागवती कथा।’ बल्कि पद्यपुराणान्तर्गत श्रीमद्भागवत-माहात्म्यमें स्वयं सनकादि परमर्षियोंने प्रणव, गायत्री-मन्त्र, वेदत्रयी, श्रीमद्भागवत और भगवान् पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण—इनका तत्त्वतः अमेद वतलाया है। इसे भगवान् श्रीकृष्णका साक्षात् वाङ्मय स्वरूप माना गया है। भगवान्के कलावतार श्रीवेदव्यासजी-जैसे अद्वितीय महापुरुषको जिसकी रचनासे ही शान्ति मिली, उस श्रीमद्भागवतकी महिमा कहाँतक कही जाय। इसमें प्रेम, भक्ति, ज्ञान, विज्ञान, वैराग्य आदि कूट-कूटकर भरे हैं। इसका एक-दक श्लोक मन्त्रवत् माना जाता है। इसीसे इसका धर्मप्राण जनतामें इतना आदर है।

उसमें भी दशम स्कन्ध तो उसका हृदयस्थानीय है। उसमें भागवतके परम प्रतिपाद्य श्रीकृष्णकी—जिनका उल्लेख इसी ग्रन्थमें ‘कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्’ कहकर हुआ है—मधुरातिमधुर लीलाओंका परम मनोहर ढंगसे वर्णन हुआ है। कहते हैं—‘महान् योगी परमहंसशिरोमणि श्रीद्युक्मुनिका—जो इस भागवत-ग्रन्थके वक्ता हैं तथा जो जन्मसे ही भगवान्के निर्गुण-स्वरूपमें परिनिष्ठित थे एवं प्रपञ्चसे सर्वथा अलग रहकर वनमें विचरा करते थे—इसी दशम स्कन्धके कतिपय श्लोकोंको सुनकर श्रीमद्भागवतकी ओर आकर्षण हुआ था और फिर उन्होंने अपने पिता श्रीवेदव्यासजीसे इस सम्पूर्ण ग्रन्थका अध्ययन किया था। भगवान्के चरित्र ही ऐसे हैं कि बड़े-बड़े योगीन्द्र-मुनीन्द्रोंका मन बरबस उनकी ओर खिंच आता है। इसीलिये भगवान् श्रीकृष्णका एक नाम है—‘आत्मारामगणार्कम्।’ ‘कृष्ण’ का अर्थ ही है—आकर्षण करनेवाला। श्रीकृष्णके कुछ अनन्य उपासक श्रीकृष्णलीलाके अतिरिक्त और कुछ भी पढ़ना-सुनना नहीं चाहते। ऐसे लोगोंकी सुविधाके लिये—विशेषतः उन लोगोंके लिये जो संस्कृतसे सर्वथा अपरिचित हैं—केवल दशम स्कन्धका यह भाषानुवाद अलग पुस्तक-रूपमें ‘श्रीप्रेम-सुधा-सागर’ के नामसे पाठकोंकी सेवामें प्रस्तुत है। श्रीभगवान्की मधुर लीलाओंके रसास्वादनके लिये तथा लीला-रहस्यको समझनेके लिये स्थान-स्थानपर नयी-नयी टिप्पणियाँ भी दी गयी हैं, जिससे ग्रन्थकी उपादेयता विशेष बढ़ गयी है।

कहना न होगा कि दशम स्कन्धका यह अनुवाद श्रीमद्भागवतके सटीक संस्करणसे ही लिया गया है—जो दो खण्डोंमें प्रकाशित है। जो लोग किसी कारणवश पूरे ग्रन्थको नहीं खरीदना चाहते और केवल श्रीकृष्णलीला-चिन्तनके ही अनुरागी हैं, उनके लिये यह ग्रन्थ विशेष उपयोगी होगा। असलमें उर्ह्राका जीवन धन्य है, जो दिन-रात भगवान्की मधुर लीलाओंके ही अनुरागी एवं चिन्तनमें लगे रहते हैं।

बिनीत—

हनुमानप्रसाद पोद्दार

विषय-सूची

अध्याय	विषय	पृष्ठ-संख्या	अध्याय	विषय	पृष्ठ-संख्या
	दशम स्कन्ध (पूर्वार्ध)				
१-	भगवान् के द्वारा पृथ्वीको आवाहन, वसुदेव- देवकीका विवाह और कंसके द्वारा देवकीके छः पुत्रोंकी हत्या	११५	३१-	गोपिकागीत	११५
२-	भगवान् का गर्भ-प्रवेश और देवताओंद्वारा गर्भ-स्तुति	११७	३२-	भगवान् का प्रकट होकर गोपियोंको शान्तवना देना	११७
३-	भगवान् श्रीकृष्णका प्राकट्य	११९	३३-	महारास	११९
४-	कंसके हाथसे छूटकर योगमायाका आकाशमें जाकर भविष्यवाणी करना	१२२	३४-	सुदर्शन और शङ्खचूड़का उद्धार	१२२
५-	गोकुलमें भगवान् का जन्ममहोत्सव	१२४	३५-	युगलगीत	१२४
६-	पूतना-उद्धार	१२६	३६-	अरिष्टसुरका उद्धार और कंसका श्रीअक्षरजी- को मज्जा भेजना	१२६
७-	शकट-भ्रमण और तृणावर्त उद्धार	१२९	३७-	कैशी और ज्योमासुरका उद्धार तथा नारदजीके द्वारा भगवान् की स्तुति	१२९
८-	नामकरण-संस्कार और बाललीला	१३१	३८-	अक्षरजीकी प्रणयान्ता	१३१
९-	श्रीकृष्णका ऊलछले बाँधा जाना	१३४	३९-	श्रीकृष्ण-वल्लभका मधुरागमन	१३४
१०-	बमलासुतका उद्धार	१३८	४०-	अक्षरजीके द्वारा भगवान् श्रीकृष्णकी स्तुति	१३८
११-	गोकुलसे वृन्दावन जाना तथा वत्सासुर और वकासुरका उद्धार	१४०	४१-	श्रीकृष्णका मधुराजीमें प्रवेश	१४०
१२-	अपासुरका उद्धार	१४२	४२-	कुञ्जापर कृपा, धनुषमङ्ग और कंसकी वधराहट	१४२
१३-	ब्रह्मानीका मोह और उसका नाश	१४८	४३-	कुवलयापीडका उद्धार और अलाहिमें प्रवेश	१४८
१४-	ब्रह्मानीके द्वारा भगवान् की स्तुति	१५०	४४-	चाणूर, श्रुतिक आदि पहलवानोंका तथा कंसका उद्धार	१५०
१५-	धेनुकासुरका उद्धार और ग्वाल्यालोंको कालियमायके बिपसे बचाना	१५८	४५-	श्रीकृष्ण वल्लभका यशोवती और युष्कुल- प्रवेश	१५८
१६-	कालियपर कृपा	१६३	४६-	उद्धवजीकी प्रणयान्ता	१६३
१७-	कालियके कालियदहमें आनेकी कथा तथा भगवान् का ब्रह्मविषोंको दावानलसे बचाना	१६८	४७-	उद्धव तथा गोपियोंकी वातचीत और भ्रमरागीत	१६८
१८-	ब्रह्मरासुर-उद्धार	१७१	४८-	भगवान् का कुञ्जा और अक्षरजीके घर जाना	१७१
१९-	गौओं और गोपोंकी दावानलसे बचाना	१७६	४९-	अक्षरजीका हस्तिनापुर जाना	१७६
२०-	वर्षा और शरद ऋतुका वर्णन	१८०		दशम स्कन्ध (उत्तरार्ध)	
२१-	चैतुर्गीत	१८२	५०-	वराहवधसे युद्ध और द्वारकापुरीका निर्माण	१८२
२२-	चौरहरण	१८४	५१-	कालियवनका मरु होना, सुबुद्धकी कथा	१८४
२३-	बभ्रुवर्तियोंपर कृपा	१८९	५२-	द्वारकागमन, श्रीरत्नमयीका विवाह तथा श्रीकृष्णके पक्ष बन्निमयीकीका सन्देश लेकर प्रासणका आना	१८९
२४-	हन्त्रपक्ष-निवारण	१९१	५३-	चकिपणी हरण	१९१
२५-	गोवर्धनचারণ	१९३	५४-	शिशुपालके साथी राजाओंकी और बन्नीकी हार तथा श्रीकृष्ण-चकिपणी-विवाह	१९३
२६-	जन्मवाशासे गोपोंकी श्रीकृष्णके प्रभावके विषयमें वातचीत	१९८	५५-	प्रद्युम्नका जन्म और शम्भरासुरका वध	१९८
२७-	श्रीकृष्णका अभिषेक	२०१	५६-	स्यमन्तकमणिकी कथा, जायवती और सत्यमामाके साथ श्रीकृष्णका विवाह	२०१
२८-	वसुधैजके नन्दजीको बुझाकर खाना	२०३	५७-	स्यमन्तक-हरण, शतधन्वाका उद्धार और अक्षरजीको फिरसे द्वारका बुलाना	२०३
२९-	रावलीखका आरम्भ	२०६	५८-	भगवान् श्रीकृष्णके अन्यान्य विवाहोंकी कथा	२०६
३०-	श्रीकृष्णके विरहमें गोपियोंकी दशा	२११			

अध्याय	विषय	पृष्ठ-संख्या	अध्याय	विषय	पृष्ठ-संख्या
५९-	भौमासुरका उद्धार और सोलह हजार एक सौ राजकन्याओंके साथ भगवान्का विवाह	... २०९	७५-	राजसूय यज्ञकी पूर्ति और दुर्योधनका अपमान	... २५४
६०-	श्रीकृष्ण-वनिमणी-संवाद	... २१२	७६-	शास्त्रके साथ वादवार्ता युद्ध	... २५७
६१-	भगवान्की सन्ततिका वर्णन तथा अनिरुद्धके विवाहमें कन्याका मरना जाना	... २१७	७७-	शास्त्र-उद्धार	... २५९
६२-	अषा-अनिरुद्ध-सिलन	... २२०	७८-	दन्तवक्त्र और विद्रुयका उद्धार तथा तीर्थ-यात्रामें बलरामजीके हाथसे सुतजीका वध	... २६१
६३-	भगवान् श्रीकृष्णके साथ बाणासुरका युद्ध	... २२२	७९-	बल्लका उद्धार और बलरामजीकी तीर्थयात्रा	... २६३
६४-	दुर्ग राजाकी कथा	... २२५	८०-	श्रीकृष्णके द्वारा सुदामाजीका स्वागत	... २६५
६५-	श्रीबलरामजीका वनगमन	... २२८	८१-	सुदामाजीकी ऐश्वर्यकी प्रशंसा	... २६८
६६-	गोपबन्धु और काशिराजका उद्धार	... २३०	८२-	भगवान् श्रीकृष्ण-बलरामसे गोप-गोपियोंकी मेंट	... २७०
६७-	द्विविदका उद्धार	... २३२	८३-	भगवान्की पटराभियोंके साथ द्रौपदीकी वातचीत	... २७४
६८-	कौरवोंपर बलरामजीका कोप और साम्बका विवाह	... २३४	८४-	बसुदेवजीका यशोत्थन	... २७७
६९-	देवर्षि नारदजीका भगवान्की यज्ञचर्चा देखना	... २३७	८५-	श्रीभगवान्के द्वारा बसुदेवजीको ब्रह्मज्ञानका उपदेश तथा देवकीजीके छः पुत्रोंको लौटा लाना	... २८१
७०-	भगवान् श्रीकृष्णकी नियन्त्रणा और उनके पास जरासन्धके कैदी राजाओंके वृत्तका आना	... २४०	८६-	सुमद्राहरण और भगवान्का मिथिलापुरीमें राजा जनक और अश्वदेव ब्राह्मणके घर एक ही साथ जाना	... २८५
७१-	श्रीकृष्ण भगवान्का इन्द्रप्रस्थ पधरना	... २४३	८७-	वेदस्तुति	... २८९
७२-	पाण्डवोंके राजसूययज्ञका आयोजन और जरासन्धका उद्धार	... २४६	८८-	शिवजीका सङ्कटमोचन	... ३००
७३-	जरासन्धके बेलसे छूटे हुए राजाओंकी विदाई और भगवान्का इन्द्रप्रस्थ लौट आना	... २४९	८९-	शुशुकीके द्वारा विदेवोंकी परीक्षा तथा भगवान्का मरे हुए ब्राह्मण-बालकोंको वापस लाना	... ३०२
७४-	भगवान्की अग्रपूजा और विशुपालका उद्धार	... २५१	९०-	भगवान् कृष्णके लीला-विहारका वर्णन	... ३०६

चित्र-सूची

१-	श्रीव्यामाश्यामकी साँकी	(सुनहरा)	... ५	८-	बालबालकके कन्धेपर हाथ रखते नटवर	(बहुरंगा)	... ९६
२-	अश्वत्थ बालक	(बहुरंगा)	... १६	९-	गोवर्द्धनधारी	(")	... १०२
३-	मैयासे ढरे हुए भगवान्	(")	... ४४	१०-	श्रीकृष्णचरण तथा श्रीराधा-चरण	(")	... ११४
४-	सुमधुर गोपाल	(")	... ६३	११-	तन्मयता	(")	... ११५
५-	गोधुलिबुलरित मुरलीवर	(")	... ७१	१२-	महाराष्ट्र	(")	... ११९
६-	नागपक्षियोंके द्वारा सुश्रुति श्यामसुन्दर	(")	... ७७	१३-	कंस-उद्धार	(")	... १६०
७-	गोपियोंके ध्यानमें श्रीकृष्ण-बलराम	(")	... ८५	१४-	शूरशिरोगणि श्रीकृष्ण	(")	... १८१
				१५-	सुदामा-सत्कार	(")	... २६६





श्रीश्यामाश्यामकी शाँकी

श्रीमद्भागवतमहापुराण

दशम स्कन्ध

(पूर्वार्ध)

पहला अध्याय

भगवान्‌के द्वारा पृथ्वीको आभ्यासन, वसुदेव-देवकीका विवाह और कंसके द्वारा देवकीके छः पुत्रोंकी हत्या

राजा परीक्षितने पूछा—भगवन् । आपने चन्द्रवंश और सूर्यवंशके विस्तार तथा दोनों वंशोंके राजाओंका अत्यन्त अद्भुत चरित्र वर्णन किया । भगवान्‌के परम प्रेमी मुनिवर । आपने स्वभावसे ही धर्मप्रेमी यदुवंशका भी विशद वर्णन किया । अब कृपा करके उसी वंशमें अपने वंश श्रीवत्सराजकी साय अवतीर्ण हुए भगवान्‌ श्रीकृष्ण-के परम पतित्र चरित्र भी हमें सुनाइये ॥ १-२ ॥ भगवान्‌ श्रीकृष्ण समस्त प्राणियोंके जीवनदाता एवं सर्वार्थ हैं । उन्होंने यदुवंशमें अवतार लेकर जो-जो छीलाएँ कीं, उनका विस्तारसे हमलोगोंको श्रवण कराइये ॥ ३ ॥ जिनकी दृष्ट्याकी व्यास सर्वदाके लिये बुद्ध चुकी है, वे जीवन्मुक्त महापुरुष जिसका पूर्ण प्रेमसे अतृप्त रहकर गान किया करते हैं, मुमुक्षुजनोंके लिये जो भवरोगका रामनाथ औषध है तथा विषयी लोगोंके लिये भी उनके कान और मनको परम आह्लाद देनेवाला है, भगवान्‌ श्रीकृष्णचन्द्रके ऐसे सुन्दर सुखद, रसीले, गुणानुवादसे पञ्चाशती अथवा आत्मवाती मनुष्यके अतिरिक्त और ऐसा कौन है जो विमुख हो जाय, उससे प्रीति न करे ! ॥ ४ ॥ (श्रीकृष्ण तो मेरे कुण्डल ही हैं ।) जब कुलक्षेत्रमें महाभारत युद्ध हो रहा था और देवताओंको भी जीत लेनेवाले भीष्म-

पितामह आदि अतिरथियोंसे मेरे दादा पाण्डवोंका युद्ध हो रहा था, उस समय कौरवोंकी सेना उनके लिये अपार समुद्रके समान थी—जिसमें मीमांसा आदि वीर बड़े-बड़े मच्छोंको भी निगल जानेवाले तिमिङ्गिल मच्छोंकी भाँति मय उत्पन्न कर रहे थे । परन्तु मेरे स्वनाम-धन्य पितामह भगवान्‌ श्रीकृष्णके चरणकमलोंकी नौकाका आश्रय लेकर उस समुद्रको अनायास ही पार कर गये—ठीक वैसे ही जैसे कोई मार्गमें चलता हुआ स्वभावसे ही बड़बुढ़के छुर-का गड्ढा पार कर जाय ॥ ५ ॥ महाराज ! मेरा यह शरीर—जो आपके सामने है तथा जो कौरव और पाण्डव दोनों ही वंशोंका एकमात्र सहारा था—अकल्पामा-के श्लाघितसे जल चुका था । उस समय मेरी माता जब भगवान्‌की शरणमें गयी, तब उन्होंने हाथमें चक्र लेकर मेरी माताके गर्भमें प्रवेश किया और मेरी रक्षा की । ६ । (केवल मेरी ही बात नहीं;) वे समस्त शरीरधारियोंके भीतर आत्मारूपसे रहकर अमृतत्वका दान कर रहे हैं और बाहर कालरूपसे रहकर मृत्युका * । मनुष्यके रूपमें प्रतीत होना, यह तो उनकी एक छीजा है । आप उन्हींकी ऐश्वर्य और माधुर्यसे परिपूर्ण छीजाओंका वर्णन कीजिये ॥ ७ ॥

* समस्त देहधारियोंके अन्तःकरणमें अन्तर्यामीरूपसे स्थित भगवान्‌ उनके जीवनके कारण हैं तथा बाहर कालरूपसे स्थित हुए वे ही उनका नाश करते हैं । अतः जो आत्मज्ञानीजन अमर्त्यहोऽक्षर उन अन्तर्यामीकी उपासना करते हैं, वे मोक्षरूप अमरपद पाते हैं और जो विषयपरायण अज्ञानी पुरुष बाह्यदृष्टिसे विषयचिन्तनमें ही लगे रहते हैं, वे अन्ध-मरणरूप मृत्युके मार्गी होते हैं ।

भगवन् ! आपने अभी बतलाया था कि बलरामजी रेहिणीके पुत्र थे । इसके बाद देवकीके पुत्रोंमें भी आपने उनकी गणना की । दूसरा शरीर धारण किये बिना दो माताओंका पुत्र होना कैसे सम्भव है ? ॥ ८ ॥ असुरोंको मुक्ति देनेवाले और भक्तोंको प्रेम वितरण करनेवाले भगवान् श्रीकृष्ण, वात्सल्य-स्नेहसे भरे हुए पिताका घर छोड़कर ब्रजमें क्यों चले गये ! यदुवंशशिरोगणि मल्लकसख प्रसुने नन्द, आदि गोप-बन्धुओंके साथ कहाँ-कहाँ निवास किया ? ॥ ९ ॥ ब्रह्मा और शङ्करका भी शासन करनेवाले प्रसुने ब्रजमें तथा मधुपुरीमें रहकर कौन-कौन-सी लीलाएँ कीं ? और महाराज ! उन्होंने अपनी माँकी भाई मामा कसको अपने हाथों क्यों मार डाला ? वह मामा होनेके कारण उनके द्वारा मारे जाने योग्य तो नहीं था ॥ १० ॥ मनुष्याकार सच्चिदानन्दमय विप्रद्व प्रकट कर्तके द्वाराकापुरीमें यदुवशियोके साथ उन्होंने कितने वर्षोंतक निवास किया ? और उन सर्वशक्तिमान् प्रसुकी पत्नियाँ कितनी थीं ? ॥ ११ ॥ मुने ! मैंने श्रीकृष्णकी जितनी लीलाएँ पढ़ी हैं और जो नहीं पढ़ी हैं, वे सब आप मुझे विस्तारसे सुनाइये; क्योंकि आप सब कुछ जानते हैं और मैं बड़ी श्रद्धाके साथ उन्हें सुनना चाहता हूँ ॥ १२ ॥ भगवन् ! अजकी तो बात ही क्या, मैंने जलका भी परिचय कर दिया है । फिर भी वह असह्य भूख-प्यास (जिसके कारण मैंने मुनिके गलेमें मृत सर्प डालनेका अन्याय किया था) मुझे तनिक भी नहीं सता रही है; क्योंकि मैं आपके मुखकमलसे श्रुती हुई भगवान्की सुधागम्य लीला-कथाका पान कर रहा हूँ ॥ १३ ॥

सूतजी कहते हैं—श्रीनक्षत्री ! भगवान्के प्रेमियोंमें अग्रगण्य एवं सर्वज्ञ श्रीशुकदेवजी महाराजने परीक्षितका ऐसा समीचीन प्रश्न धुनकर (जो संतोंकी समामे भगवान्की लीलाके वर्णनका हेतु हुआ करता है) उनका अभिनन्दन किया और भगवान् श्रीकृष्णकी उन लीलाओंका वर्णन प्रारम्भ किया, जो समस्त कलिभक्तोंको सदाके लिये चो डालती हैं ॥ १४ ॥

श्रीशुकदेवजीने कहा—भगवान्के लीला-रसके रसिक राजर्षे ! तुमने जो कुछ निश्चय किया है, वह बहुत ही

सुन्दर और आदरणीय है; क्योंकि सबके हृदयाराध्य श्रीकृष्णकी लीला-कथा श्रवण करनेमें तुम्हें सहज एवं सुदृढ प्रीति प्राप्त हो गयी है ॥ १५ ॥ भगवान् श्रीकृष्णकी कथाके सम्बन्धमें प्रश्न करनेसे ही वक्ता, प्रश्नकर्ता और श्रोता तीनों ही पवित्र हो जाते हैं—जैसे गङ्गाजीका जल या भगवान् शालग्रामका चरणामृत समीको पवित्र कर देता है ॥ १६ ॥

परीक्षित ! उस समय लखों दैत्योंके दलने बम्ही राजाओंका रूप धारण कर अपने भारी भारसे पृथ्वीको आक्रान्त कर रक्खा था । उससे त्राण पानेके लिये वह ब्रह्माजीकी शरणमें गयी ॥ १७ ॥ पृथ्वीने उस समय गौका रूप धारण कर रक्खा था । उसके नेत्रोंसे आँसू बह-बहकर मुँहपर आ रहे थे । उसका मन तो खिन्न था ही, शरीर भी बहुत कृश हो गया था । वह बड़े कष्ट से खरसे रँभा रही थी । ब्रह्माजीके पास जाकर उसने उन्हे अपनी पूरी कष्ट-कहानी सुनायी ॥ १८ ॥ ब्रह्माजीने बड़ी सहानुभूतिके साथ उसकी दुःख-गथा सुनी । उसके बाद वे भगवान् शङ्कर, शक्ति, अन्यान्य प्रमुख देवता तथा गौके रूपमें आयी हुई पृथ्वीको अपने साथ लेकर क्षीरसागरके तटपर गये ॥ १९ ॥ भगवान् देवताओंके भी आराध्यदेव है । वे अपने भक्तोंकी समस्त अमिलाषाएँ पूर्ण करते और उनके समस्त क्लेशोंको नष्ट कर देते हैं । वे ही जगत्के एकमात्र स्वामी हैं । क्षीरसागरके तटपर पहुँचकर ब्रह्मा आदि देवताओंने 'पुरुषसूक्त' के द्वारा उन्हीं परम पुरुष सर्वान्तर्यामी प्रसुकी स्तुति की । स्तुति करते-करते ब्रह्माजी समाधिस्थ हो गये ॥ २० ॥ उन्होंने समाधि-अवस्थामें आकाशवाणी सुनी । इसके बाद जगत्के निर्माणकर्ता ब्रह्माजीने देवताओंसे कहा—'देवताओ ! मैंने भगवान्की वाणी सुनी है । तुमलोग भी उसे मेरे द्वारा अभी धुन लो और फिर वैसा ही करो । उसके पालनमें विचल्य नहीं होना चाहिये ॥ २१ ॥ भगवान्को पृथ्वीके कष्टका पहचाने ही पता है । वे ईश्वरोंके भी ईश्वर हैं अतः अपनी कालशक्तिके द्वारा पृथ्वीका मार हरण करते हुए वे जवत्क पृथ्वीपर लीज करे, तबतक तुमलोग भी अपने-अपने अंशोंके साथ यदुकुलमें जन्म लेकर उनकी लीलामें

सहयोग दो ॥ २२ ॥ वसुदेवजीके घर खय पुरुषोत्तम भगवान् प्रकट होंगे । उनकी और उनकी प्रियतमा (श्रीराधा)की सेवाके लिये देवाङ्गनाएँ जन्म ग्रहण करें ॥ २३ ॥ स्वयंप्रकाश भगवान् शेष भी, जो भगवान्की कला होनेके कारण अनन्त हैं (अनन्तका अंश भी अनन्त ही होता है) और जिनके सहस्र मुख हैं, भगवान्के प्रिय कार्य करनेके लिये उनसे पहले ही उनके बड़े भाईके रूपमें अवतार ग्रहण करेंगे ॥ २४ ॥ भगवान्की वह ऐश्वर्य-शालिनी योगमाया भी, जिसने सारे जगत्को मोहित कर रक्खा है, उनकी आज्ञासे उनकी लीलाके कार्य सम्पन्न करनेके लिये अशरूपसे अवतार ग्रहण करेगी ॥ २५ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित । प्रजापतियोंके स्वामी भगवान् ब्रह्माजीने देवताओंको इस प्रकार आज्ञा दी और पृथ्वीको समझा-सुझाकर ढाढ़स बैठाया । इसके बाद वे अपने परम धामको चले गये ॥ २६ ॥ प्राचीन कालमें यदुवंशी राजा थे शूरसेन । वे मथुरापुरीमें रहकर माथुरमण्डल और शूरसेनमण्डलका राज्यशासन करते थे ॥ २७ ॥ उसी समयसे मथुरा ही समस्त यदुवंशी नरपतियोंकी राजधानी हो गयी थी । भगवान् श्रीहरि सर्वदा वहाँ निराजमान रहते हैं ॥ २८ ॥ एक बार मथुरामें शूरके पुत्र वसुदेवजी विवाह करके अपनी नवविवाहिता पत्नी देवकीके साथ घर जानेके लिये रथपर सवार हुए ॥ २९ ॥ उपसेनका लडका था कंस । उसने अपनी चचेरी बहिन देवकीको प्रसन्न करनेके लिये उसके रथके घोड़ोंकी रास पकड़ ली । वह स्वयं ही रथ हॉकने लगा, यद्यपि उसके साथ सैकड़ों सोनेके बने हुए रथ चल रहे थे ॥ ३० ॥ देवकीके पिता थे देवक । अपनी पुत्रीपर उनका बड़ा प्रेम था । कन्याको विदा करते समय उन्होंने उसे सोनेके हारोंसे अलङ्कृत चार सौ हाथी, पंद्रह हजार घोड़े, अठारह सौ रथ तथा सुन्दर-सुन्दर क्लामूपणोंसे विभूषित दो सौ सुकुमारी दासियाँ दहेजमें दी ॥ ३१-३२ ॥ विदार्थके समय बर-बधूके मङ्गलके लिये एक ही साथ शङ्ख, तुलसी, शृद्ध और हुन्हुमियाँ बजने लगीं ॥ ३३ ॥ मार्गमें जिस समय घोड़ोंकी रास पकड़कर कंस रथ हॉक रहा था, उस समय आकाशवाणीने उसे सम्बोधन करके कहा—‘अरे मूर्ख ! जिसको दूरधर्म बैसकर लिये जा रहा

है, उसकी आलवे गर्भकी सन्तान तुझे मार डालेगी’ ॥ ३४ ॥ कंस बड़ा पापी था । उसकी दुष्टताकी सीमा नहीं थी । वह भोजवंशका कलङ्क ही था । आकाशवाणी सुनते ही उसने तब्वार खींच ली और अपनी बहिनकी चोटी पकड़कर उसे मारनेके लिये तैयार हो गया ॥ ३५ ॥ वह अत्यन्त क्रूर तो था ही, पाप-कर्म करते-करते निर्लज्ज भी हो गया था । उसका यह काम देखकर महात्मा वसुदेवजी उसको शान्त करते हुए बोले— ॥ ३६ ॥

वसुदेवजीने कहा—राजकुमार ! आप भोजवंशके होनहार वंशधर तथा अपने कुलकी कीर्ति बढ़ानेवाले हैं । बड़े-बड़े शूरवीर आपके गुणोंकी सराहना करते हैं । इधर यह एक तो ली, दूसरे आपकी बहिन और तीसरे यह विवाहका छुम अवसर । ऐसी स्थितिमें आप इसे कैसे मार सकते हैं ? ॥ ३७ ॥ वीरवर ! जो जन्म लेते हैं, उनके शरीरके साथ ही मृत्यु भी जपन होती है । आज हो या सौ वर्षके बाद—जो प्राणी है, उसकी मृत्यु होगी ही ॥ ३८ ॥ जब शरीरका अन्त हो जाता है, तब जीव अपने कर्मके अनुसार दूसरे शरीरको ग्रहण करके अपने पहले शरीरको छोड़ देता है । उसे विवश होकर ऐसा करना पड़ता है ॥ ३९ ॥ जैसे चलते समय मनुष्य एक पैर जमाकर ही दूसरा पैर उठाता है और जैसे जोंक किसी अगले तिनकेको पकड़ लेती है, तब पहलेके पकड़े हुए तिनकेको छोड़ती है—वैसे जीव भी अपने कर्मके अनुसार किसी शरीरको प्राप्त करनेके बाद ही इस शरीरको छोड़ता है ॥ ४० ॥ जैसे कोई पुरुष जाग्रत-अवस्थामें राजाके ऐश्वर्यको देखकर और इन्द्रादिके ऐश्वर्यको सुनकर उसकी अभिलाषा करने लगता है और उसका चिन्तन करते-करते उन्हीं बातोंमें धुल-मिलकर एक हो जाता है तथा स्वप्नमें अपनेको राजा या इन्द्रके रूपमें अनुभव करने लगता है, साथ ही अपने दरिद्र-वस्थाके शरीरको भूल जाता है । कभी-कभी तो जाग्रत-अवस्थामें ही मन-ही-मन उन बातोंका चिन्तन करते-करते तन्मय हो जाता है और उसे स्थूल शरीरकी सुधि नहीं रहती । वैसे ही जीव कर्मकृत कामना और कामनाकृत कर्मके वश होकर दूसरे शरीरको प्राप्त हो जाता है और अपने पहले शरीरको भूल जाता है ॥ ४१ ॥ जीवका

मन अनेक विकारोंका पुष्प है। वेदान्तके समय वह अनेक जन्मोंके सखित और प्रारम्भ कर्मोंकी वासनाओंके अधीन होकर मायाके द्वारा रचे हुए अनेक पाश्चात्त्य शरीरोंमेंसे जिस किसी शरीरके चिन्तनमें तल्लीन हो जाता है और मान बैठता है कि यह मैं हूँ, उसे वही शरीर ग्रहण करके जन्म लेना पड़ता है ॥ ४२ ॥ जैसे सूर्य-चन्द्रमा आदि चमकीली वस्तुएँ जलसे भरे हुए घड़ोंमें या तेल आदि तरल पदार्थोंमें प्रतिबिम्बित होती हैं और हवाके झोंकेसे उनके जल आदिके छिड़ने-छोड़नेपर उनमें प्रतिबिम्बित वस्तुएँ भी चञ्चल जान पड़ती हैं—वैसे ही जीव अपने स्वरूपके अज्ञानद्वारा रचे हुए शरीरोंमें राग करके उन्हें अपना आप मान बैठता है और मोहबुद्ध उनके आने-जानेको अपना आना-जाना मानने लगता है ॥ ४३ ॥ इसलिये जो अपना कल्याण चाहता है, उसे किसीसे श्रेष्ठ नहीं करना चाहिये; क्योंकि जीव कर्मके अधीन हो गया है और जो किसीसे भी श्रेष्ठ करेगा, उसको इस जीवनमें शत्रुसे और जीवनके बाद परलोकसे मयभीत होना ही पड़ेगा ॥ ४४ ॥ कंस ! यह आपकी छोटी बहिन अमी बन्धी और बहुत दीन है। यह तो आपकी कन्याके समान है। इसपर, अमी-अमी इसका विवाह हुआ है, विवाहके मङ्गलचिह्न भी इसके शरीरपरसे नहीं उतारते हैं। ऐसी दशामें आप-जैसे दीनवत्सल पुरुष-को इस बेचारीका वध करना उचित नहीं है ॥ ४५ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित ! इस प्रकार वसुदेवजीने प्रशंसा आदि सामनीति और मय आदि भेद-नीतिसे कंसको बहुत सम्झाया। परन्तु वह क्रूर तो राक्षसोंका अनुयायी हो रहा था; इसलिये उसने अपने घोर सङ्कल्पको नहीं छोड़ा ॥ ४६ ॥ वसुदेवजीने कंसका निवृत्त हठ देखकर यह विचार किया कि किसी प्रकार यह समय तो टाल ही देना चाहिये। तब वे इस निश्चयपर पहुँचे ॥ ४७ ॥ 'बुद्धिमान् पुरुषको, जहाँतक उसकी बुद्धि और बल साथ दें, मृत्युको टालनेका प्रयत्न करना चाहिये। प्रयत्न करनेपर भी वह न टल सके, तो फिर प्रयत्न करनेवालेका कोई दोष नहीं रहता ॥ ४८ ॥ इसलिये इस मृत्युरूप कंसको अपने पुत्र दे देनेकी प्रतिज्ञा करके मैं इस दीन देवकीको बचाऊँ। यदि मेरे ऊँके

होंगे और तबतक यह कंस स्वयं नहीं मर जायगा, तब क्या होगा ? ॥ ४९ ॥ सम्भव है, उल्टा ही हो। मेरा ऊँका ही इसे मार डाले। क्योंकि विधाताके विधानका पार पाना बहुत कठिन है। मृत्यु सामने आकर भी ठल जाती है और ठकी हुई भी लौट आती है ॥ ५० ॥ जिस समय वनमें जाग लगती है, उस समय कौन-सी लकड़ी जले और कौन-सी न जले, दूरी बल जाय और पासकी बच रहे—इन सब बातोंमें अदृष्टके सिवा और कोई कारण नहीं होता। वैसे ही किस प्राणीका कौन-सा शरीर बना रहेगा और किस हेतुसे कौन-सा शरीर नष्ट हो जायगा—इस बातका पता लगा लेना बहुत ही कठिन है ॥ ५१ ॥ अपनी बुद्धिके अनुसार ऐसा निश्चय करके वसुदेवजीने बहुत सम्मानके साथ पापी कंसकी बड़ी प्रशंसा की ॥ ५२ ॥ परीक्षित ! कंस बड़ा क्रूर और निर्लज्ज था; अतः ऐसा करते समय वसुदेवजीके मनमें बड़ी पीड़ा भी हो रही थी। फिर भी उन्होंने ऊपरसे अपने सुख-कामलको प्रफुल्लित करके हँसते हुए कहा—॥ ५३ ॥

वसुदेवजीने कहा—सौम्य ! आपको देवकीसे तो कोई भय है नहीं, जैसा कि आकाशवाणीने कहा है। मय है पुत्रोंसे, सो इसके पुत्र मैं आपको छकार सौंप दूँगा ॥ ५४ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित ! कंस जामता था कि वसुदेवजीके वचन झूठे नहीं होते और इन्होंने जो कुछ कहा है, वह युक्तिसंगत भी है। इसलिये उसने अपनी बहिन देवकीको मारनेका विचार छोड़ दिया। इससे वसुदेवजी बहुत प्रसन्न हुए और उसकी प्रशंसा करके अपने घर चले आये ॥ ५५ ॥ देवकी बड़ी सती-साध्वी थी। सारे देवता उसके शरीरमें निवास करते थे। समय आनेपर देवकीके गर्भसे प्रतिवर्ष एक-एक करके आठ पुत्र तथा एक कन्या उत्पन्न हुई ॥ ५६ ॥ पहले पुत्रका नाम था कर्तिमान् । वसुदेवजीने उसे छकार कंसको दे दिया। ऐसा करते समय उन्हें कष्ट तो अवश्य हुआ, परन्तु उससे भी बड़ा कष्ट उन्हें इस बातका था कि कहीं मेरे वचन झूठे न हो जायें ॥ ५७ ॥ परीक्षित ! सत्यवत् पुरुष बड़े-से-बड़ा कष्ट भी सह लेते हैं; ज्ञानियों-

को किसी बातकी अपेक्षा नहीं होती, नीच पुरुष बुरे-से-बुरा काम भी कर सकते हैं और जो जितेन्द्रिय हैं—जिन्होंने भगवान्‌को हृदयमें धारण कर रखा है, वे सब कुछ त्याग सकते हैं ॥ ५८ ॥ जब कंसने देखा कि वसुदेवजीका अपने पुत्रके जीवन और मृत्युमें समान भाव है एवं वे सत्यमें पूर्ण निष्ठावान् भी हैं, तब वह बहुत प्रसन्न हुआ और उनसे हँसकर बोला ॥ ५९ ॥ वसुदेवजी ! आप इस नन्द-से सुकुमार बालकको ले जाइये । इससे मुझे कोई भय नहीं है । क्योंकि धाकाशवाणीने तो ऐसा कहा था कि देवकीके आठवें गर्भसे उत्पन्न सन्तानके द्वारा मेरी मृत्यु होगी ॥ ६० ॥ वसुदेवजीने कहा—‘ठीक है’ और उस बालकको लेकर वे छोट आये । परन्तु उन्हें मायम था कि कंस क्या दुष्ट है और उसका मन उसके हार्थमें नहीं है । वह किसी क्षण बदल सकता है । इसलिये उन्होंने उसकी बातपर विश्वास नहीं किया ॥ ६१ ॥

परीक्षित । इधर भगवान् नारद कंसके पास आये और उससे बोले कि ‘कंस ! त्रजमें रहनेवाले नन्द आदि गोप, उनकी भिर्या, वसुदेव आदि वृष्णिवंशी पादव, देवकी आदि यदुवंशकी स्त्रियाँ और नन्द, वसुदेव, दोनोंके सजातीय इन्धु-बान्धव और सगे-सम्बन्धी—सब-के-सब देवता हैं; जो इस समय तुम्हारी सेवा कर

रहे हैं, वे भी देवता ही हैं ।’ उन्होंने यह भी वतलया कि ‘दैत्योंके कारण पृथ्वीका मार बढ़ गया है, इसलिये देवताओंकी ओरसे अब उनके वधकी तैयारी की जा रही है’ ॥ ६२—६४ ॥ जब देवर्षि नारद इतना कहकर चले गये, तब कंसको यह निश्चय हो गया कि यदुवंशी देवता हैं और देवकीके गर्भसे विष्णुभगवान् ही मुझे मारनेके लिये पैदा होनेवाले हैं । इसलिये उसने देवकी और वसुदेवको हथकड़ी-बन्दीसे जकड़कर वैदमें बाँध दिया और उन दोनोंसे जो-जो पुत्र होते गये, उन्हें बंध मारता गया । उसे हर बार यह शंका बनी रहती कि कहीं विष्णु ही उस बालकके रूपमें न आ गया हो ॥ ६५-६६ ॥ परीक्षित । पृथ्वीमें यह बात प्रायः देखी जाती है कि अपने प्राणोंका ही पोषण करनेवाले छोटी रात्ता अपने स्वार्यके लिये माता-पिता, भाई बन्धु और अपने अत्यन्त हितैषी इष्ट-मित्रोंकी भी हत्या कर बाँधते हैं ॥ ६७ ॥ कंस जानता था कि मैं पहले कालनेमि असुर था और विष्णुने मुझे मार बाँधा था । इससे उसने यदुवंशियोंसे घोर विरोध ठान लिया ॥ ६८ ॥ कंस क्या बलवान् था । उसने यदु, मोघ और अन्धक-वंशके अधिनायक अपने पिता सप्रसेनको कैद कर लिया और श्रसेन-देशका राज्य वह स्वयं करने लगा ॥ ६९ ॥

दूसरा अध्याय

भगवान्‌का गर्भ-प्रवेश और देवताओंद्वारा गर्भ-स्तुति

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित । कंस एक तो स्वयं बड़ा बळी था और दूसरे, मगधनरेश ब्राह्मणकी उसे बहुत बड़ी सहायता प्राप्त थी । तीसरे, उसके साथी थे—प्रलम्बासुर, वक्रासुर, चाणूर, टृणावर्त, अवासुर, मुष्टिक, अरिष्टासुर, द्विविद, पूतना, केसी और वेतुक । तथा बाणासुर और मौमासुर आदि बहुत-से दैत्य राजा उसके सहायक थे । इनको साथ लेकर वह यदुवर्षियोंको नष्ट करने लगा ॥ १-२ ॥ वे लोग भयभीत होकर कुल, पञ्चाल, केकय, शाल्व, विदर्भ, निषध, विदेह और

कसेल आदि देशोंमें जा बसे ॥ ३ ॥ कुछ लोग ऊपर-ऊपरसे उसके मनके अनुसार काम करते हुए उसकी सेवामें लगे रहे । जब कंसने एक-एक पक्षके देवकीके लः बालक मार डाले, तब देवकीके सातवें गर्भमें भगवान्‌के अंशस्वरूप श्रीशेषजी*—जिन्हें अनन्त भी कहते हैं—पधारे । आनन्दस्वरूप शेषजीके गर्भमें आनेके कारण देवकीको सामानिक ही हर्ष हुआ । परन्तु कंस शायद इसे भी मार डाले, इस भयसे उनका शोक भी बढ़ गया ॥ ४-५ ॥

* शेष भगवान्‌के विचार किया कि व्यागवत्सलमें मैं छोटा भाई बना; इसीसे मुझे बड़े भाईकी आज्ञा माननी पड़ी और बन जानेसे मैं उन्हें रोक नहीं सका । श्रीकृष्णवतारमें मैं बड़ा भाई बनकर भगवान्‌की सच्ची सेवा कर सकूँगा । इसलिये वे श्रीकृष्णसे पहले ही गर्भमें आ गये ।

विश्रामा भगवान्ने देखा कि मुझे ही अपना खात्री और सर्वस्व माननेवाले यदुवंशी कत्सेके द्वारा बहुत ही सताये जा रहे हैं। तब उन्होंने अपनी योगमायाको यह आदेश दिया—॥ ६ ॥ 'देवि ! कल्याणी ! तुम ब्रजमें जाओ। वह प्रदेश ग्वाओं और गौओंसे सुसोमित है। वहाँ नन्दबाबाके गोकुलमें वसुदेवकी पत्नी रोहिणी निवास करती हैं। उनकी और भी पत्नियों कंससे डरकर गुप्त स्थानोंमें रह रही हैं ॥ ७ ॥ इस समय मेरा वह अंश जिसे शेष कहते हैं, देवकीके उदरमें गर्भरूपसे स्थित है। उसे वहाँसे निकालकर तुम रोहिणीके पेटमें रख दो ॥ ८ ॥ कल्याणी ! अब मैं अपने समस्त ज्ञान, कल आदि अंशोंके साथ देवकीका पुत्र बर्द्धन और तुम नन्दबाबाकी पत्नी यशोदाके गर्भसे जन्म लेना ॥ ९ ॥ तुम लोगोंको मुँहमेंगे वरदान देनेमें समर्थ होओगी। मनुष्य तुम्हें अपनी समस्त अभिलाषाओंको पूर्ण करनेवाली जानकर धूप-दीप, नैवेद्य एवं अन्य प्रकारकी सामग्रियोंसे तुम्हारी पूजा करेगा ॥ १० ॥ पृथ्वीमें लोग तुम्हारे छिये बहुत-से स्थान बनायेंगे और दुर्गा, मद्रकाळी, विजया, वैष्णवी, कुमुदा, चण्डिका, कृष्णा, माधवी, कन्या, माया, नारायणी, ईशानी, शारदा और अम्बिका आदि बहुत-से नामोंसे पुकारेंगे ॥ ११-१२ ॥ देवकीके गर्भमेंसे खींचे जानेके कारण शेषकी ओग संसारमें 'संकर्षण' कहेंगे, लोकसंजन करनेके कारण 'श्याम' कहेंगे और बलवानोंमें श्रेष्ठ होनेके कारण 'बलमद्र' भी कहेंगे' ॥ १३ ॥

जब भगवान्ने इस प्रकार आदेश दिया, तब योग-मायाने 'जो आज्ञा'—ऐसा कहकर उनकी बात शिरोधार्य की और उनकी परिक्रमा करके वे पृथ्वीलोकमें चली आयी तथा भगवान्ने जैसा कहा था, वैसे ही किया ॥ १४ ॥ जब योगमायाने देवकीका गर्भ ले जाकर रोहिणीके उदरमें रख दिया, तब पुरावासी बड़े दुःखके साथ आपसमें कहने लगे—'हाय ! बेचारी देवकीका यह गर्भ तो नष्ट ही हो गया' ॥ १५ ॥

भगवान् मर्जोंको अमय करनेवाले हैं। वे सर्वत्र सब रूपमें हैं, उन्हें कहीं जाना-बाना नहीं है। इसलिये

वे वसुदेवजीके मनमें अपनी समस्त कलाओंके साथ प्रकट हो गये ॥ १६ ॥ उसमें विद्यमान रहनेपर भी अपनेको अव्यक्तसे व्यक्त कर दिया। भगवान्की ज्योतिको धारण करनेके कारण वसुदेवकी सूर्यके समान तेजस्वी हो गये, उन्हें देखकर लोगोंकी आँखें चौधिया जातीं। कोई भी अपने कल, वाणी या प्रभावसे उन्हें दबा नहीं सकता था ॥ १७ ॥ भगवान्के उस ज्योतिर्मय अंशको, जो जगत्का परम मङ्गल करनेवाला है, वसुदेवजीके द्वारा आधान किये जानेपर देवी देवकीने प्रहण किया। जैसे पूर्वदिशा 'चन्द्रदेवको धारण करती है, वैसे ही शुद्ध सत्त्वसे सम्पन्न देवी देवकीने विशुद्ध मनसे सर्वात्मा एवं आत्मस्वरूप भगवान्को धारण किया ॥ १८ ॥ भगवान् सारे जगत्के निवासस्थान हैं। देवकी उनका भी निवासस्थान बन गयी। परन्तु बड़े आदिके भीतर बंद किये हुए दीपकका और अपनी विधा दूसरेको न देनेवाले ज्ञानखलकी श्रेष्ठ विधाका प्रकाश जैने चारों ओर नहीं फैलता, वैसे ही कंसके क्षारागारमें बंद देवकीकी भी खतनी शोया नहीं हुई ॥ १९ ॥ देवकीके गर्भमें भगवान् निराजमान हो गये थे। उसके मुखपर पवित्र मुसकान थी और उसके शरीरकी कान्तिसे बंदीगृह जगमगाने लगा था। जब कंसने उसे देखा, तब वह मन-ही-मन कहने लगा—'अबकी बार मेरे प्राणोंके ग्राहक विष्णुने इसके गर्भमें अवश्य ही प्रवेश किया है; क्योंकि इसके पहले देवकी कभी ऐसी न थी ॥ २० ॥ अब इस विषयमें शीघ्र-से-शीघ्र मुझे क्या करना चाहिये ? देवकीको मारना तो ठीक न होगा, क्योंकि वीर पुरुष स्वार्थ-का अपने पराक्रमको कलङ्कित नहीं करते। एक तो यह ही है, दूसरे वहिन और तीसरे गर्भवती है। इसको मारनेसे तो तत्त्वज्ञ ही मेरी कीर्ति, छद्मी और आयु नष्ट हो जायगी ॥ २१ ॥ वह मनुष्य तो जीवित रहने-पर भी मरा हुआ ही है, जो क्षयन्त मूर्ताका व्यवहार करता है। उसकी मृत्युके बाद लोग उसे गाली देते हैं। हत्या ही नहीं, वह देहाभिमानियोंके योग्य घोर नरकमें भी अवश्य-अवश्य जाता है ॥ २२ ॥ यद्यपि कंस देवकीको मार सकता था, किन्तु स्वयं ही वह इस

अत्यन्त क्रूरताके विचारसे निवृत्त हो गया । अब भगवान्‌के प्रति दृढ़ वैरका भाव मनमें गोंठकर उनके जन्मकी प्रतीक्षा करने लगा ॥ २३ ॥ वह उठते-बैठते, खाते-पीते, सोते-जागते और चलते-फिरते—सर्वदा ही श्रीकृष्णके चिन्तनमें लब्ध रहता । जहाँ उसकी आँख पड़ती, जहाँ कुछ खड़का होता, वहाँ उसे श्रीकृष्ण दीख जाते । इस प्रकार उसे सारा जगत् ही श्रीकृष्ण-मय दीखने लगा ॥ २४ ॥

परीक्षित ! भगवान् गह्वर और गह्वराजी कंसके कौटिलानेमें आये । उनके साथ अपने अनुचरोंके सहित समस्त वेवता और नारदादि ऋषि भी थे । वे लोग सुमधुर वचनोंसे सबकी अमिताभा पूर्ण करनेवाले श्रीहरिकी इस प्रकार स्तुति करने लगे ॥ २५ ॥ 'प्रभो ! आप सत्यसङ्कल्प हैं । सत्य ही आपकी प्राप्तिका श्रेष्ठ साधन है । सृष्टिके पूर्व, प्रलयके पश्चात् और संसारकी स्थितिमें समय—इन असाय अवस्थाओंमें भी आप सत्य हैं । पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश—इन पाँच दृश्यमान सत्त्वोंके आप ही कारण हैं । और जन्ममें अन्तर्गामीरूपसे विराजमान भी हैं । आप इस दृश्यमान जगत्‌के परमार्थस्वरूप हैं । आप ही मधुर वाणी और समदर्शनके प्रवर्तक हैं । भगवन् ! आप तो बस, सत्यस्वरूप ही हैं । हम सब आपकी शरणमें आये हैं ॥ २६ ॥ यह संसार क्या है, एक सनातन वृक्ष । इस वृक्षका आश्रय है—एक प्रकृति । इसके दो फल हैं—सुख और दुःख; तीन जडे हैं—सत्त्व, रज और तम; चार रस हैं—धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष । इसके जाननेके पाँच प्रकार हैं—श्रौत, त्वचा, नेत्र, रसना और नासिका । इसके छः स्तम्भ हैं—यैदा होना, रहना, बढ़ना, घटना, घटना और नष्ट हो जाना । इस वृक्षकी छाल है सात धातुएँ—रस, कविर, मांस, मेद, अस्थि, मज्जा और शुक्र । आठ शाखाएँ हैं—पाँच महाभूत, मन, बुद्धि और अहङ्कार । इसमें मुख आदि नवों द्वारा खोदकर हैं । प्राण, अपान, व्यान, उदान, समान,

नाग, कूर्म, कुक्कुल, देवदत्त और धनञ्जय—ये दस प्राण ही इसके दस पत्ते हैं । इस संसाररूप वृक्षपर दो पक्षी हैं—बीव और ईश्वर ॥ २७ ॥ इस संसाररूप वृक्षकी उत्पत्तिके आधार एकमात्र आप ही हैं । आपमें ही इसका प्रलय होता है और आपके ही अनुग्रहसे इसकी रक्षा भी होती है । जिनका चित्त आपकी भाषासे आवृत हो रहा है, इस सत्यको समझनेकी शक्ति खो बैठता है—वे ही उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय करनेवाले ब्रह्मादि देवताओंको अनेक देखते हैं । तत्त्वज्ञानी पुरुष तो सबके रूपमें केवल आपका ही दर्शन करते हैं ॥ २८ ॥ आप ज्ञानस्वरूप आत्मा हैं । चराचर जगत्‌के कल्याणके लिये ही अनेकों रूप धारण करते हैं । आपके वे रूप विशुद्ध अप्राकृत सत्त्वमय होते हैं और सत पुरुषोंको बहुत सुख देते हैं । साथ ही दुष्टोंको उनकी दुष्टताका दण्ड भी देते हैं । उनके लिये भगवत्कृपय भी होते हैं ॥ २९ ॥ कमलके समान कोमल अनुग्रहभरे नेत्रोंवाले प्रभो ! कुछ थिरके लोग ही आपके समस्त पदार्थों और प्राणियोंके आश्रयस्वरूप रूपमें पूर्ण एकाग्रतासे अपना चित्त लगा पाते हैं और आपके चरणकमलरूपी जहाज-का आश्रय लेकर इस संसारसागरकी बछड़ेके खुरके गड़ेके समान अनायास ही पार कर जाते हैं । क्यों न हो, अवतकके संगोंने इसी जहाजसे संसारसागरको पार जो किया है ॥ ३० ॥ परम प्रकाशस्वरूप परमात्मन् ! आपके भक्तजन सारे जगत्‌के निष्कपट प्रेमी, सच्चे हितैषी होते हैं । वे रम्य तो इस भगवद् और कष्टसे पार करनेयोग्य संसारसागरको पार कर ही जाते हैं, किन्तु औरोंके कल्याणके लिये भी वे यहाँ आपके चरण-कमलोंकी नौका स्थापित कर जाते हैं । वास्तवमें सपुरुषोंपर आपकी महान् कृपा है । उनके लिये आप अनुग्रहस्वरूप ही हैं ॥ ३१ ॥ कमलनयन ! जो लोग आपके चरणकमलोंकी शरण नहीं लेते तथा आपके प्रति भक्तिभावसे रहित होनेके कारण जिनकी बुद्धि भी शुद्ध नहीं है, वे अपनेको झूठ-मूठ मुक्त मानते हैं । वास्तवमें तो वे बद्ध ही हैं । वे यदि बन्दी तपस्या और

* जो कव विवाहके मङ्गलचिह्नोंकी धारण की हुई देवकीअ गव्य काटनेके उद्योगसे न हिचका, वही आज इतना सद्‌विचारवान् हो गया; इसका क्या कारण है ? जवब ही आज यह विश्व देवकीको देख रहा है, उसके अन्तरङ्गमें—गर्भमें श्रीभगवान् हैं । जिसके भीतर भगवान् हैं, उसके दर्शनसे उद्बुद्धिका उदय होना कोई आश्चर्य नहीं है ।

साधनाका कष्ट उठाकर किसी प्रकार ऊँचे-से-ऊँचे पद पर भी पहुँच जायें, तो भी वहाँसे नीचे गिर जाते हैं ॥ ३२ ॥ परन्तु भगवन् ! जो आपके अपने निज जन हैं, जिन्होंने आपके चरणोंमें अपनी सबी प्रीति जोड़ रखी है, वे कभी उन ज्ञानाभिमानीयोंकी भाँति अपने साधन-मार्गसे गिरते नहीं । प्रभो ! वे बड़े-बड़े विज्ज ढालने-वालोंकी सेनाके सरदारोंके सिरपर पैर रखकर निर्भय विचरते हैं, कोई भी विज्ज उनके मार्गमें रुकावट नहीं डाल सकता; क्योंकि उनके रक्षक आप जो हैं ॥ ३३ ॥ आप संसारकी स्थितिके लिये समस्त देहचारियोंको परम कल्याण प्रदान करनेवाला विशुद्ध सत्त्वमय, सन्निदानन्द-मय परम दिव्य भङ्गल-विग्रह प्रकट करते हैं । उस रूपके प्रकट होनेसे ही आपके भक्त वेद, कर्मकाण्ड, अष्टाङ्गयोग, तपस्या और समाधिके द्वारा आपकी आराधना करते हैं । बिना किसी आश्रयके वे किसीकी आराधना करेंगे ? ॥ ३४ ॥ प्रभो ! आप सबके विधाता हैं । यदि आपका यह विशुद्ध सत्त्वमय निज स्वरूप न हो, तो अज्ञान और उसके द्वारा होनेवाले भेदभावकी नष्ट करने-वाला अपरोक्ष ज्ञान ही किसीको न हो । जगत्में दीखनेवाले तीनों गुण आपके हैं और आपके द्वारा ही प्रकाशित होते हैं, यह सत्य है । परन्तु इन गुणोंकी प्रकाशक दृष्टियोंसे आपके स्वरूपका केवल अनुमान ही होता है, वास्तविक स्वरूपका साक्षात्कार नहीं होता । (आपके स्वरूपका साक्षात्कार तो आपके इस विशुद्ध सत्त्वमय स्वरूपकी सेवा करनेपर आपकी कृपासे ही होता है) ॥ ३५ ॥ भगवन् ! मन और वेद-वाणीके द्वारा केवल आपके स्वरूपका अनुमानमात्र होता है । क्योंकि आप उनके द्वारा दृश्य नहीं; उनके साक्षी हैं । इसलिये आपके गुण, जन्म और कर्म आदिके द्वारा आपके नाम और रूपका निरूपण नहीं किया जा सकता । फिर भी प्रभो ! आपके भक्तजन उपासना आदि क्रियायोगिके द्वारा आपका साक्षात्कार तो करते ही हैं ॥ ३६ ॥ जो पुरुष आपके मङ्गलमय नामों और

रूपोंका श्रवण, कीर्तन, स्मरण और ध्यान करता है और आपके चरणकमलोंकी सेवामें ही अपना चित्त लगाये रहता है—उसे फिर जन्म-मृत्युरूप संसारके चक्रमें नहीं आना पड़ता ॥ ३७ ॥ सम्पूर्ण दुःखोंके हरनेवाले भगवन् ! आप सर्वेश्वर हैं । यह पृथ्वी तो आपका चरणकमल ही है । आपके अवतारसे इसका मार दूर हो गया । धन्य है । प्रभो ! हमारे लिये यह बड़े सौभाग्य-की बात है कि हमलोग आपके सुन्दर-सुन्दर चिह्नोंसे युक्त चरणकमलोंके द्वारा विमूषित पृथ्वीको देखेंगे और स्वर्गलोककी भी आपकी कृपासे कृतार्थ देखेंगे ॥ ३८ ॥ प्रभो ! आप अजन्मा हैं । यदि आपके जन्मके कारणके सम्बन्धमें हम कोई तर्कना करें, तो यही कह सकते हैं कि यह आपका एक लीला-विनोद है । ऐसा कहनेका कारण यह है कि आप तो हैतक लेशसे रहित सर्व-विघ्नान्तरूप हैं और इस जगत्की उत्पत्ति, स्थिति तथा प्रलय अज्ञानके द्वारा आपमें आरोपित हैं ॥ ३९ ॥ प्रभो ! आपने जैसे बनेकों बार मात्स्य, हयग्रीव, कच्छप, शृङ्गिष्ठ, वराह, हंस, राम, परशुराम और वामन अवतार धारण करके हमलोगोंकी और तीनों लोकोंकी रक्षा की है—वैसे ही आप इस बार भी पृथ्वीका मार हरण कीजिये । यदुनन्दन ! हम आपके चरणोंमें वन्दना करते हैं ॥ ४० ॥ [देवकीजीको सम्बोधित करके] 'माताजी ! यह बड़े सौभाग्यकी बात है कि आपकी कोखमें हम सबका कल्याण करनेके लिये स्वयं भगवान् पुरुषोत्तम अपने ज्ञान, बल आदि बशोंके साथ पधारे हैं । अब आप धँससे तनिक भी मत डरिये । अब तो वह कुछ ही दिनोंका मेहमान है । आपका पुत्र यदुवंशकी रक्षा करेगा' ॥ ४१ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित ! ब्रह्मादि देवताजोंने इस प्रकार भगवान्की स्तुति की । उनका रूप 'यह है' इस प्रकार निश्चितरूपसे तो कहा नहीं जा सकता, सब अपनी-अपनी मतिके अनुसार उसका निरूपण करते हैं । इसके बाद ब्रह्मा और शङ्करजीको आगे करके देवगण स्वर्गमें चले गये ॥ ४२ ॥

तीसरा अध्याय

भगवान् श्रीकृष्णका प्राकट्य

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित ! अब समस्त सौम्य हो रहे थे॥१॥ दिखाएँ खच्छ—प्रसन्न थीं। निर्मल शुभ गुणोंसे युक्त बहुत सुहावना समय आया। रोहिणी आवृत्तार्थमें तारे जगमगा रहे थे। पृथ्वीके बड़े-बड़े नगर, छोटे-नक्षत्र था। आकाशके सभी नक्षत्र, ग्रह और तारे शान्त—छोटे गौन, अहीरोंकी बस्तियाँ और हीरे आदिकी खानें मङ्गल-

॥ जैसे अन्तःकरण शुद्ध होनेपर उसमें भगवान्का आविर्भाव होता है, श्रीकृष्णवतारके अवसरपर भी ठीक उसी प्रकारका समष्टिकी शुद्धिका वर्णन किया गया है। इसमें काल, दिशा, पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, मन और आत्मा—इन नौ ब्रह्मोंका अलग-अलग नामोस्तेख करके साधकके लिये एक अत्यन्त उपयोगी साधन-पद्धतिकी ओर संकेत किया गया है।

काण्ड—

भगवान् कालसे परे हैं। शास्त्रों और सत्पुरुषोंके द्वारा ऐसा निरूपण सुनकर काल मानो क्रुद्ध हो गया था और चक्रम धारण करके सबको निगल रहा था। आज जब उसे मासूम दुष्का कि स्वयं परिपूर्णतम भगवान् श्रीकृष्ण मेरे अंदर अवतीर्ण हो रहे हैं, तब वह आनन्दसे भर गया और समस्त सद्गुणोंकी धारणकर तथा सुहावना बनकर प्रकट हो गया।

दिशा—

१. प्राचीन शास्त्रोंमें दिशाओंको देवी माना गया है। उनके एक-एक स्वामी भी होते हैं—जैसे प्राचीके इन्द्र, प्रचीचीके वरुण आदि। कलके राज्य-कालमें ये देवता पराधीन—कैदी हो गये थे। अब भगवान् श्रीकृष्णके अवतारसे देवताओंकी गणनाके अनुसार चार-बारह दिनोंमें ही उन्हें छुटकारा मिल जायगा। इसलिये अपने पतिव्रतोंके सङ्ग-सौभाग्यका अनुचयान करके देवियों प्रसन्न हो गयीं। जो देव एवं दिशाके परिच्छेदसे रहित हैं, वे ही प्रभु भारत देशके जन-अदेशों में आ रहे हैं, वह अपूर्व आनन्दोत्सव भी दिशाओंकी प्रसन्नताका हेतु है।

२. सस्कृत-साहित्यमें दिशाओंका एक नाम 'आशा' भी है। दिशाओंकी प्रसन्नताका एक अर्थ यह भी है कि अब सत्पुरुषोंकी आशा-अभिलाषा पूर्ण होगी।

३. विराट् पुरुषके अवयव-संख्यानका वर्णन करते समय दिशाओंको उनका कान बताया गया है। श्रीकृष्णके अवतारके अवसरपर दिखाएँ मानो वह लोचकर प्रसन्न हो गयीं कि प्रभु अक्षर-अवाक्ष्योंके उपग्रहसे दुष्खी प्राणियोंकी प्रार्थना सुननेके लिये सतत अवधान हैं।

पृथ्वी—

१. पुराणोंमें भगवान्की दो पत्नियोंका उल्लेख मिलता है—एक अग्निदेवी और दूसरी भूदेवी। ये दोनों चल-सम्पत्ति और अचल-सम्पत्तिकी स्वामिनी हैं। इनके पति हैं—भगवान्, जीव नहीं। किंचित् समय अग्निदेवीके निवासस्थान वैकुण्ठसे उतरकर भगवान् भूदेवीके निवासस्थान पृथ्वीपर आने लगे, तब जैसे परदेखते पतिके आगमनका समाचार सुनकर पत्नी सज-धनकर अगवानी करनेके लिये निजलती है, वैसे पृथ्वीका मङ्गलमयी होगा, मङ्गलचिह्नोंको धारण करना स्वाभाविक ही है।

२. भगवान्के श्रीचरण मेरे वक्षःस्थलपर पड़ेंगे, अपने सौभाग्यका ऐसा अनुसन्धान करके पृथ्वी आनन्दित हो गयी।

३. वामन ब्रह्मचारी थे। परशुरामजीने ब्राह्मणोंको दान दे दिया। श्रीरामचन्द्रने मेरी पुत्री जानकीसे विवाह कर लिया। इसलिये उन अवतारोंमें मैं भगवान्से जो सुख नहीं प्राप्त कर सकी, वही श्रीकृष्णसे प्राप्त करूँगी। यह लोचकर पृथ्वी मङ्गलमयी हो गयी।

४. अपने पुत्र मङ्गलको गोदमें लेकर पतिदेवका स्वागत करने चली।

जल (नदियाँ)—

१. नदियोंने विचार किया कि रामवतारमें छेतु-वन्धके गहने इगरे पिता पर्वतोंकी हमारी ससुराल ससुरमें पहुँचाकर इन्होंने हमें मायकेका सुख दिया था। अब इनके कुमायवतके अवसरपर हमें भी प्रसन्न होकर इनका स्वागत करना चाहिये।

मय हो रही थी ॥ २ ॥ नदियोंका जल निर्मल हो शीतल-मन्द-सुगन्ध वायु अपने स्पर्शसे लोगोंको सुखदान गया था । रात्रिके समय भी सरोवरोंमें कमल खिल रहे वरती हुई बह रही थी । नाइयोंके अग्निहोत्रकी कमी न थे । वनमें वृक्षोंकी पत्तियों रंग-विरंगे पुष्पोंके गुच्छोंसे सुन्दरवासी वस्त्रियों जो कंसके अत्याचारसे दुःख गयी थीं, छद् गयी थीं । कहीं पक्षी चहक रहे थे, तो कहीं मीरे वे इस समय अपने-आप जल छठी ॥ ४ ॥
 गुनगुना रहे थे ॥ ३ ॥ उस समय परम पवित्र और संत पुरुष पहलेसे ही चाहते थे कि असुरोंकी बढ़ती न

२. नदियाँ सब गङ्गाजीसे कहती थीं—सुनो हमारे पिता पर्वत देखे हैं; अपने पिता भगवान् विष्णुके दर्शन कराओ । गङ्गाजीने सुनी-अनसुनी कर दी । अब वे इसलिये प्रसन्न हो गयीं कि हम स्वयं देख लेंगी ।

३. यद्यपि भगवान् समुद्रमें निल्व निवास करते हैं; फिर भी समुद्राल होनेके कारण वे उन्हें वहाँ देख नहीं पाती । अब उन्हें पूर्णरूपसे देख सकेंगी; इसलिये वे निर्मल हो गयीं ।

४. निर्मल हृदयको भगवान् मिलते हैं; इसलिये वे निर्मल हो गयीं ।

५. नदियोंको जो सौभाग्य किसी भी अवतारमें नहीं मिलता, वह कृष्णावतारमें मिलता । श्रीकृष्णकी चतुर्थ पटरानी हैं—श्रीकालिन्दीजी । अवतार लेते ही यमुनाजीके तटपर जाना; ग्वालवाण एवं गोपियोंके साथ जल-क्रीडा करना; उन्हें अपनी पटरानी बनाना—इन सब बातोंको सोचकर नदियाँ आनन्दसे भर गयीं ।

इदम्—

कालिय-दमन करके कालिय-दहका शोकन; ग्वालवाणों और भालूको ब्रह्म-हृदयों ही अपने स्वरूपके दर्शन आदि स्व-वन्द्य भी जीजाओंका अनुसन्धान करके हृदयोंमें कमलके बहाने अपने प्रफुल्लित हृदयको ही श्रीकृष्णके प्रति अर्पित कर दिया । उन्होंने कहा कि भगवन् ! मझे ही इमे योग ब्रह्म समझा करें; आप हमें कभी स्वीकार करेंगे; इस भावी सौभाग्यके अनुसन्धानसे हम सहृदय हो रहे हैं ।

अग्नि—

१. इस अवतारमें श्रीकृष्णने ज्योत्सु, तृणावर्त, कालिके दमनसे आकाश; वायु और जलकी शक्ति की है । मृदु-महापते पृथ्वी और अग्निपानसे अग्निही । भगवान् श्रीकृष्णने दो बार अग्निको अपने मुँहमें धारण किया । इस भावी सुखका अनुसन्धान करके ही अग्निदेव क्षान्त होकर प्रन्वक्षित होने लगे ।

२. देवताओंके लिये यक्ष-भाग आदि रस्य हो जानेके कारण अग्निदेव भी भूले ही थे । अब श्रीकृष्णावतारसे अपने भोजन मिलनेकी आशासे अग्निदेव प्रसन्न होकर प्रन्वक्षित हो उठे ।

वायु—

१. उदारशिरोमणि भगवान् श्रीकृष्णके जन्मके अवसरपर वायुने सुख छुटाना प्रारम्भ किया; क्योंकि समान शीलसे ही मैत्री होती है । जैसे स्वामीके सामने सेवक; प्रजा अपने गुण प्रकट करके उसे प्रसन्न करती है; वैसे ही वायु भगवान्के सामने अपने गुण प्रकट करने लगे ।

२. आनन्दकन्द श्रीकृष्णकन्दके सुखारविन्दपर जब अमञ्जित स्वेदविन्दु आ जायेंगे; तब मैं ही शीतल-मन्द-सुगन्ध गतिसे उसे सुखार्कण्य—बह सोचकर पहलेसे ही वायु सेवाका अभ्यास करने लगा ।

३. यदि मनुष्यको प्रभु-चरणारविन्दके दर्शनकी अलसा हो तो उसे विश्वकी सेवा ही करनी चाहिये; मानो यह उपदेश करता हुआ वायु सबकी सेवा करने लगा ।

४. रामावतारमें मेरे पुत्र हनुमान्ने भगवान्की सेवा की; इससे मैं क्रुतार्थ ही हूँ; परन्तु इस अवतारमें; मुझे स्वयं ही सेवा कर लेनी चाहिये । इस विचारसे वायु ज्योंज्यों सुख पहुँचाने लगा ।

५. सम्पूर्ण विश्वके प्राण वायुने सम्पूर्ण विश्वकी ओरसे भगवान्के स्वागत-समारोहमें प्रतिनिधित्व किया ।

आकाश—

१. आकाशकी एकता; आधारता; विशालता और समताकी उपमा तो सबसे ही भगवान्के साथ दी जाती रही; परन्तु अब उसकी छठी नीलामी भी भगवान्के अङ्गसे उपमा देनेसे चरितार्थ हो जायगी; इसलिये आकाश ने मानो आनन्दोत्सव मनावेके लिये नीले चँदोनेमें हीरोंके समान तारोंकी शालमें छटका ली है ।

होने पाये । अब उनका मन सहसा प्रसन्नतासे भर गया । लगे । विचारियाँ अस्सराओंके साथ नाचने लगीं ॥ ६ ॥ जिस समय भगवान्‌के आविर्भावका अवसर आया, स्वर्गमें बड़े-बड़े देवता और ऋषि-मुनि आनन्दसे भक्तर पुष्पोंकी देवताओंकी हुन्दुमियाँ अपने-आप बज उठीं ॥ ५ ॥ वर्षा करने लगे । जलसे भरे हुए बादल समुद्रके पास विन्नर और गन्धर्व मधुर स्वरमें गाने लगे तथा सिद्ध जाकर धीरे-धीरे गर्जना करने लगे ॥ ७ ॥ जन्म-मृत्युके और चारण भगवान्‌के मङ्गलमय गुणोंकी स्तुति करने चक्रसे छुड़ानेवाले जनार्दनके अवतारका समय था

१. स्वामीके शुभागमनके अवसरपर जैसे सेवक स्वच्छ वेप-सूषा धारण करते हैं और शान्त हो जाते हैं, वही प्रकार आकाशके सय नक्षत्र, ग्रह, तारे शान्त एवं निर्मल हो गये । वक्रता, अविचार और क्रुद्ध छोड़कर श्रीकृष्णका स्वागत करने लगे ।

मन्त्र—

मैं देवताके गर्भसे जन्म ले रहा हूँ तो रोहिणीके सत्त्वके लिये कम-से-कम रोहिणी नक्षत्रमें जन्म तो लेना ही चाहिये । अथवा चन्द्रवशमें जन्म ले रहा हूँ, तो चन्द्रमाकी सबसे प्यारी पत्नी रोहिणीमें ही जन्म लेना उचित है । यह सोचकर भगवान्‌ले रोहिणी नक्षत्रमें जन्म लिया ।

मन—

१. योगी मनका निरोध करते हैं, समुद्र निर्धिपय करते हैं और शिखासु बाध करते हैं । तत्त्वज्ञोंने तो मनका सत्यानाश ही कर दिया । भगवान्‌के अवतारका समय जनकर उठने सोचा कि अब तो मैं अपनी पत्नी—इन्द्रियाँ और विषय—बाल-भस्त्रे सबके साथ ही भगवान्‌के साथ लेखूँगा । निरोध और बाधसे पिच्छ छूटा । इसीसे मन प्रसन्न हो गया ।

२. निर्मलको ही भगवान् मिलने हैं, इसलिये मन निर्मल हो गया ।

३. जैसे शान्त, स्वर्ण, रूप, रस, गन्धका परित्याग कर देनेपर भगवान् मिलते हैं । अब तो स्वयं भगवान् ही वह सब बनकर आ रहे हैं । लौकिक आनन्द भी प्रभुमें मिलेगा । यह सोचकर मन प्रसन्न हो गया ।

४. वसुदेवके मनमें निराश करने के ही भगवान् प्रकट हो रहे हैं । वह हमारी ही आत्मा है, यह सोचकर मन प्रसन्न हो गया ।

५. सुमन (देवता और क्रुद्ध मन) को सुल देनेके लिये ही भगवान्‌का अवतार हो रहा है । यह जानकर सुमन प्रसन्न हो गये ।

६. संतोंमें, स्वर्गमें और उपवनमें सुमन (क्रुद्ध मन, देवता और पुण्य) आनन्दित हो गये । क्यों न हो माधव (विष्णु और वसन्त) का आगमन ओ हो रहा है ।

भाषासा—

भद्र अर्थात् कल्याणका देनेवाला है । कृष्णपक्ष स्वयं कृष्णसे सम्बद्ध है । जड़मी तिथि पक्षके बीचोबीच सन्धि-स्थलपर पड़ती है । रात्रि योगीजनोंकी प्रिय है । विश्वीय यतियोंका सन्ध्याकाल और रात्रिके दो भागोंकी सन्धि है । उस समय श्रीकृष्णके आविर्भावका अर्थ है—अज्ञानके घोर अन्धकारमें दिव्य प्रकाश । निशानाय चन्द्रके वशमें जन्म लेना है, तो निशाने मध्यमामये अवतीर्ण होना उचित भी है । अष्टमीके चन्द्रोदयका समय भी वही है । यदि वसुदेवकी मेरा जातकर्म नहीं कर सकते तो हमारे वंशके आदिपुरुष चन्द्रमा समुद्रस्नान करके अपने कर-किरणोंसे अमृतका वितरण करें ।

* ऋषि, मुनि और देवता जब अपने सुमनकी वर्षा करनेके लिये मधुराक्षी और दौड़े, तब उनका आनन्द भी पीछे छूट गया और उनके पीछे-पीछे दौड़ने लगा । उन्होंने अपने निरोध और दासत्वमन्वी सारे विचार त्याग कर मनको श्रीकृष्णकी ओर जानेके लिये मुक्त कर दिया, उनपर न्यौछावर कर दिया ।

† १. मेघ समुद्रके पास जाकर मन्द-मन्द गर्जना करते हुए कहते—जबनिचे । यह तुम्हारे उपदेश (पाठ आदि) का फल है कि हमारे पास जलही-जल हो गया । अब ऐसा कुछ उपदेश करो कि जैसे तुम्हारे गीतर भगवान् रहते हैं, वैसे हमारे गीतर भी रहें ।

२. बादल समुद्रके पास जाते और कहते कि समुद्र । तुम्हारे द्वयमें भगवान् रहते हैं, हमें भी उनका दर्शन—प्राप्त करवा दो । समुद्र उन्हें बोझ-जल जल देकर वह देता—अपनी दृष्टि तरङ्गोंसे ढकेल देता—जाओ

निशीथ । चारों ओर अन्धकारका साग्राव्य था । उसी समय सबके हृदयमें विराजमान भगवान् विष्णु देवर्षिणी देवकीके गर्भसे प्रकट हुए, जैसे पूर्व दिशामें सोलहों कलाओंसे पूर्ण चन्द्रमाका उदय हो गया हो ॥ ८ ॥

वसुदेवजीने देखा, उनके सामने एक अद्भुत बाळक है । उसके नेत्र कमलके समान कोमल और विशाल हैं । चार सुन्दर हाथोंमें शङ्ख, गदा, चक्र और कमल लिये हुए हैं । वक्षःस्थलपर श्रीवत्सका चिह्न—अप्यन्त सुन्दर सुवर्णमयी रेखा है । गलेमें कौस्तुभमणि झिलमिल रही है । वर्णाकालीन मेघके समान परम सुन्दर श्यामल शरीर-पर मनोहर पीताम्बर पहारा रहा है । बहुमूल्य वैदूर्यमणि-के किरीट और कुण्डलकी कान्तिसे सुन्दर-सुन्दर घुंघराले बाळ सूर्यकी किरणोंके समान चमक रहे हैं । कमरमें चमचमाती करघनीकी लड़ियों लटक रही हैं । बाँहोंमें बाज्रबंद और कलाइयोंमें कङ्कण शोभायमान हो रहे हैं । इन सब आभूषणोंसे सुशोभित बाळकके अङ्ग-अङ्गसे अनोखी छटा छिटक रही है ॥ ९-१० ॥ जब वसुदेवजीने देखा कि मेरे पुत्रके रूपमें तो खय भगवान् ही आये हैं, तब पहले तो उन्हें असीम आश्चर्य हुआ; फिर आनन्दसे उनकी बाँहें खिच उठीं । उनका रोम-रोम परमानन्दमें मग्न हो गया । श्रीकृष्णका जन्मोत्सव मनानेकी उत्साहल्लेमें उन्होंने उसी समय ब्राह्मणोंके लिये दस हजार गायोंका सङ्कल्प कर दिया ॥ ११ ॥ परीक्षित ! भगवान् श्रीकृष्ण अपनी अङ्गकान्तिसे तूत्तिकागृहको अगम्य कर रहे थे । जब वसुदेवजीको यह निश्चय हो गया कि ये तो परम पुरुष परमात्मा ही हैं, तब भगवान्का प्रभाव जान लेनेसे उनका सारा भय जाता रहा । अपनी बुद्धि स्थिर करके उन्होंने भगवान्के चरणोंमें अपना सिर झुका दिया और फिर हाथ जोड़कर वे उनकी स्तुति करने लगे—॥ १२ ॥

वसुदेवजीने कहा—मैं समझ गया कि आप प्रकृति-से अतीत साक्षात् पुरुषोत्तम हैं । आपका स्वरूप है केवल अनुभव और, केवल आनन्द । आप समस्त बुद्धियोंके

एकमात्र साक्षी हैं ॥ १३ ॥ आप ही सर्गके आदिमें अपनी प्रकृतिसे इस त्रिगुणमय जगत्की सृष्टि करते हैं । फिर उसमें प्रविष्ट न होनेपर भी आप प्रविष्टके समान जान पड़ते हैं ॥ १४ ॥ जैसे जबतक महत्तत्त्व आदि कारण-तत्त्व पृथक्-पृथक् रहते हैं, तबतक उनकी शक्ति भी पृथक्-पृथक् होती है; जब वे इन्द्रियादि सोलह विकारोंके साथ मिलते हैं, तभी इस ब्रह्माण्डकी रचना करते हैं और इसे उत्पन्न करके इसीमें अनुप्रविष्ट-से जान पड़ते हैं; परन्तु सच्ची बात तो यह है कि वे किसी भी पदार्थमें प्रवेश नहीं करते । ऐसा होनेका कारण यह है कि उनसे बनी हुई जो भी वस्तु है, उसमें वे पहलेसे ही निभमान रहते हैं ॥ १५-१६ ॥ ठीक वैसे ही बुद्धिके द्वारा केवल गुणोंके लक्षणोंका ही अनुमान किया जाता है और इन्द्रियोंके द्वारा केवल गुणमय विषयोंका ही ग्रहण होता है । यद्यपि आप उनमें रहते हैं, फिर भी उन गुणोंके ग्रहणसे आपका ग्रहण नहीं होता । इसका कारण यह है कि आप सब कुछ हैं, सबके अन्तर्यामी हैं और परमार्थ सत्य, आत्मस्वरूप हैं । गुणोंका आवरण आपको ढका नहीं सकता । इसलिये आपमें न बाहर है न भीतर । फिर आप किसमें प्रवेश करेंगे ? (इसलिये प्रवेश न करनेपर भी आप प्रवेश किये हुएके समान दीखते हैं) ॥ १७ ॥ जो अपने इन दस गुणोंको अपनेसे पृथक् मानकर सत्य समझता है, वही अज्ञानी है । क्योंकि विचार करनेपर ये देह-गेह आदि पदार्थवांछास-के सिवा और कुछ नहीं सिद्ध होते । विचारके द्वारा जिस वस्तुका अस्तित्व सिद्ध नहीं होता, बल्कि जो बाधित हो जाती है, उसको सत्य माननेवाला पुरुष बुद्धिमान कैसे हो सकता है ? ॥ १८ ॥ प्रभो ! कहते हैं कि आप खयं समस्त क्रियाओं, गुणों और विचारोंसे रहित हैं । फिर भी इस जगत्की सृष्टि, स्थिति और प्रलय आपसे ही होते हैं । यह बात परम ऐश्वर्यशाळी परब्रह्म परमात्मा आपके लिये असंगत नहीं है । क्योंकि तीनों

अभी विश्वकी सेवा करके अन्तःकरण शुद्ध करेंगे, तब भगवान्के दर्शन होंगे । स्वयं भगवान् मेघस्वाम बनकर समुद्रके बाहर प्रलय आ रहे हैं । इस रूपमें उनपर आका करेंगे; अपनी ऊँचाई परलाकर जीवन नौकावर करेंगे और उनकी बँसुरीके स्वरपर ताल देंगे । अपने इस सौभाग्यवश अनुसन्धान करके बादल समुद्रके पास पहुँचे और मन्द-मन्द गर्जना करने लगे । मन्द-मन्द दृष्टिले कि वह ज्वानि प्यारे श्रीकृष्णके कानोंतक न पहुँच जाय ।



अद्भुत बालक

गुणोंके आश्रय आप ही हैं, इसलिये उन गुणोंके कार्य आदिका आपमें ही आरोप किया जाता है ॥ १९ ॥ आप ही तीनों लोकोंकी रक्षा करनेके लिये अपनी मायासे सत्त्वमय भुक्त्वनर्ण (पोषणकारी विष्णुरूप) धारण करते हैं, उत्पत्तिके लिये रजःप्रधान रक्तवर्ण (सुखनकारी ब्रह्मारूप) और प्रलयके समय तमोगुणप्रधान कृष्णवर्ण (संहारकारी रुद्ररूप) स्वीकार करते हैं ॥ २० ॥ प्रभो ! आप सर्वशक्तिमान् और सबके स्वामी हैं । इस संसारकी रक्षाके लिये ही आपने मेरे घर अवतार लिया है । आजकल कोटि-कोटि असुर सेनापतियोंने राजाका नाम धारण कर रक्खा है और अपने अधीन बड़ी-बड़ी सेनाएं भर रखी हैं । आप उन सबका संहार करेंगे ॥ २१ ॥ देवताओंके भी आराध्यदेव प्रभो ! यह कंस नका दुष्ट है । इसे जब माझम हुआ कि आपका अवतार हमारे घर होनेवाला है, तब उसने आपके भग्ने आपके बड़े भाइयों-को मार डाला । अभी उसके दूत आपके अवतारका समाचार उसे सुनायेंगे और वह अभी-अभी हाथमें शस्त्र लेकर दौड़ा आयेगा ॥ २२ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित ! इधर देखकीने देखा कि मेरे पुत्रमें तो पुरुषोत्तम भगवान्‌के सभी लक्षण मौजूद हैं । पहले तो उन्हें कंससे कुछ भय माझम हुआ, परन्तु फिर वे बड़े पवित्र भावसे मुसकराती हुई स्तुति करने लगी ॥ २३ ॥

माता देवकीने कहा—प्रभो ! वेदोंने आपके जिस रूपको अभ्यक्त और सबका कारण बतलया है, जो ब्रह्म, ज्योतिःस्वरूप, समस्त गुणोंसे रहित और निकारहीन है, जिसे विशेषणरहित—अनिर्वचनीय, निष्क्रिय एवं केवल विशुद्ध सचाके रूपमें कहा गया है—वही बुद्धि आदिके प्रकाशक विष्णु आप स्वयं हैं ॥ २४ ॥ जिस समय ब्रह्माकी पूरी आयु—दो परार्ध समाप्त हो जाते हैं, कालशक्तिके प्रभावसे सारे लोक नष्ट हो जाते हैं, पञ्च महाभूत अहङ्कारमें, अहङ्कार महत्त्वमें और महत्त्व प्रकृतिमें लीन हो जाता है—उस समय एकमात्र आप ही शेष रह जाते हैं । इसीसे आपका एक नाम 'शेष' भी है ॥ २५ ॥ प्रकृतिके एकमात्र सहायक प्रभो ! निम्नसे लेकर वर्ष-पर्यन्त अनेक विभागोंमें विभक्त जो काल है, जिसकी

चेष्टासे यह सम्पूर्ण विश्व सन्नेह हो रहा है और जिसकी कोई सीमा नहीं है, वह आपकी क्रीडामात्र है । आप सर्वशक्तिमान् और परम कल्याणके आश्रय हैं । मैं आपकी शरण लेती हूँ ॥ २६ ॥ प्रभो ! यह जीव मृत्युभक्त हो रहा है । यह मृत्युरूप कराळ व्यालसे मयमीत होकर सम्पूर्ण लोक-लोकान्तरमें मत्क्रान्त रहा है ; परन्तु इसे कभी कहीं भी ऐसा स्थान न मिल सका, जहाँ यह निर्मय होकर रहे । आज बड़े भागसे इसे आपके चरणारविन्दोंकी शरण मिल गयी । अतः अब यह स्वस्थ होकर सुखकी नौद सो रहा है । औरोंकी तो बात ही क्या, स्वयं भूखु भी इससे मयमीत होकर भाग गयी है ॥ २७ ॥ प्रभो ! आप हैं भक्तमयहारी । और हमलोग इस दुष्ट कंससे बहुत ही मयमीत हैं । अतः आप हमारी रक्षा कीजिये । आपका यह चतुर्भुज दिव्य-रूप प्यानकी वस्तु है । इसे केवल मांस-मज्जाभय शरीर-पर ही दृष्टि रखनेवाले देहमिमानी पुरुषोंके सामने प्रकट मत कीजिये ॥ २८ ॥ मधुसूदन ! इस पापी कंसको यह बात माझम न हो कि आपका जन्म मेरे गर्भसे हुआ है । मेरा वैयं टूट रहा है । आपके लिये मैं कंससे बहुत डर रही हूँ ॥ २९ ॥ विशात्मन् ! आपका यह रूप अलौकिक है । आप शङ्ख, चक्र, गदा और कमलकी शोभासे युक्त अपना यह चतुर्भुजरूप छिपा लीजिये ॥ ३० ॥ प्रलयके समय आप इस सम्पूर्ण विश्वको अपने शरीरमें बैसे ही सामाविक रूपसे धारण करते हैं, जैसे कोई मनुष्य अपने शरीरमें रहनेवाले छिद्ररूप आकाशको । वही परम पुरुष परमात्मा आप मेरे गर्भवासी हुए, यह आपकी अद्भुत मनुष्य-कील नहीं तो और क्या है ! ॥ ३१ ॥

श्रीभगवान्‌ने कहा—देवि ! त्वयाम्भुव मन्वन्तरमें जब तुम्हारा पञ्च जन्म हुआ था, उस समय तुम्हारा नाम था पुष्टि और ये बहुदेव सुतपा नामके प्रजापति थे । तुम दोनोंके हृदय बड़े ही शुद्ध थे ॥ ३२ ॥ जब ब्रह्माजीने तुम दोनोंको सन्तान उत्पन्न करनेकी आज्ञा दी, तब तुमलोगोंने इन्द्रियोंका दमन करके उत्कृष्ट तपस्या की ॥ ३३ ॥ तुम दोनोंने वर्षा, वायु, धाम, शीत, उष्ण आदि कालके विभिन्न गुणोंका सहन किया और प्राणायामके द्वारा अपने मनके मल धो डाले ॥ ३४ ॥ तुम दोनों कभी सूखे पत्ते खा लेते और कभी हवा पीकर ही

रह जाते । तुम्हारा चित्त बड़ा शान्त था । इस प्रकार तुम लोगों ने मुझसे अभीष्ट वस्तु प्राप्त करने की इच्छासे मेरी आराधना की ॥ ३५ ॥ मुझमें चित्त लगाकर ऐसा परम दुष्कर और घोर तप करते-करते देवताओं के बारह हजार वर्ष बीत गये ॥ ३६ ॥ पुण्यमयी देवि ! उस समय मैं तुम दोनों पर प्रसन्न हुआ । क्योंकि तुम दोनों ने तपस्या, श्रद्धा और प्रेममयी भक्तिसे अपने हृदयमें नित्य-निरन्तर मेरी भावना की थी । उस समय तुम दोनों की बगल-बा-पूर्ण करने के लिये वर देनेवालों का राधा मैं इसी रूपसे तुम्हारे सामने प्रकट हुआ । जब मैंने कहा कि 'तुम्हारी जो इच्छा हो, मुझसे माँग लो,' तब तुम दोनों ने मेरे-जैसा पुत्र माँगा ॥ ३७-३८ ॥ उस समय तक विषय-भोगोंसे तुम लोगों का कोई सम्बन्ध नहीं हुआ था । तुम्हारे कोई सन्तान भी न थी । इसलिये मेरी मायसे मोहित होकर तुम दोनों ने मुझसे मोक्ष नहीं माँगा ॥ ३९ ॥ तुम्हें मेरे-जैसा पुत्र होने का वर प्राप्त हो गया और मैं बहोसे खूब गया । जब सफलमनोरथ होकर तुम लोग विषयों का भोग करने लगे ॥ ४० ॥ मैंने देखा कि संसारमें शीघ्र, स्वभाव, उदारता तथा अन्य गुणोंमें मेरे-जैसा दूसरा कोई नहीं है; इसलिये मैं ही तुम दोनों का पुत्र हुआ और उस समय मैं 'पुत्रिगर्भ' के नामसे विख्यात हुआ ॥ ४१ ॥ फिर दूसरे जन्ममें तुम हुई अदिति और वसुदेव हुए कश्यप । उस समय भी मैं तुम्हारा पुत्र हुआ । मेरा नाम था 'उपेन्द्र' । शरीर छोटा होने के कारण लोग मुझे 'धामन' भी कहते थे ॥ ४२ ॥ सती देवकी । तुम्हारे इस तीसरे जन्ममें भी मैं उसी रूपसे फिर तुम्हारा पुत्र हुआ हूँ* ॥ मेरी बाणी सर्वदा सत्य होती है ॥ ४३ ॥ मैंने

तुम्हें अपना यह रूप इसलिये दिखा दिया है कि तुम्हें मेरे पूर्व अवतारों का स्मरण हो जाय । यदि मैं ऐसा नहीं करता, तो केवल मनुष्य-शरीरसे मेरे अवतार की पहचान नहीं हो पाती ॥ ४४ ॥ तुम दोनों मेरे प्रति पुत्रभाव तथा निरन्तर श्रद्धाभाव रखना । इस प्रकार वात्सल्य-स्नेह और चिन्तन के द्वारा तुम्हें मेरे परम पद की प्राप्ति होगी ॥ ४५ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—भगवान् इतना कहकर चुप हो गये । जब उन्होंने अपनी योगमायासे पिता-माता के देखते-देखते तुरंत एक साधारण शिशु का रूप धारण कर लिया ॥ ४६ ॥ तब वसुदेवजीने भगवान् की प्रेरणासे अपने पुत्र को लेकर सूतिकागृहसे बाहर निकलने की इच्छा की । उसी समय नन्दपत्नी यशोदा के गर्भसे उस योगमाया का जन्म हुआ, जो भगवान् की शक्ति होने के कारण उनके समान ही जन्म-रक्षित है ॥ ४७ ॥ उसी योगमाया ने द्वारपाल और पुरवासियों की समस्त श्रृंगार-वृत्तियों की चेतना हर की, वे सब के-सब अचेत होकर सो गये । बंदीगृह के सभी दरवाजे बंद थे । उनमें बड़े-बड़े किवाड़, लोहे की जंजीरें और तालि जड़े हुए थे । उनके बाहर जाना क्या ही कठिन था; परन्तु वसुदेवजी भगवान् श्रीकृष्ण को गोदमें लेकर उठे ही उनके निकट पहुँचे, त्यों ही वे सब दरवाजे आप-से-आप खुल गये । ठीक वैसे ही, जैसे सूर्योदय होते ही अन्धकार दूर हो जाता है । उस समय बादल धीरे-धीरे गरजकर जल की फुहारें छेक रहे थे । इसलिये शेषजी अपने फनोंसे जल को रोकते हुए भगवान् के पीछे-पीछे चलने लगे ॥ ४८-४९ ॥ उन दिनों बार-बार वर्षा होती रहती थी, इससे यमुनाजी

* भगवान् श्रीकृष्ण ने विचार किया कि मैंने इनको वर तो यह दे दिया कि मेरे सदृश पुत्र होगा; परन्तु इसको मैं पूरा नहीं कर सकता । क्योंकि वेदा कोई है ही नहीं । किसीको कोई वस्तु देने की प्रतिज्ञा करके पूरी न कर सकें तो उसके समान शिशुनी वस्तु देनी चाहिये । मेरे सदृश पदार्थ के समान मैं हूँ । अतएव मैं अपने को तीन बार इनका पुत्र बनाऊँगा ।

† उनके नाम-अवधमानसे असुरस्य कर्माकर्ति प्रारब्ध-बन्धन भ्रष्ट हो जाते हैं, वे ही प्रभु जिसकी गोदमें आ गये; उसकी हथकड़ी-बेड़ी खुल जाय; इसमें क्या आश्चर्य है !

‡ बलरामजीने विचार किया कि मैं क्या माई बना तो क्या; सेवा ही मेरा मुख्य धर्म है । इसलिये वे अपने शेष रूपसे श्रीकृष्ण के छत्र बनकर जलका निवारण करते हुए चले । उन्होंने सोचा कि यदि मेरे रहते मेरे स्वामी को कष्ट पहुँचा तो मुझे भिक्षार है । इसलिये उन्होंने अपना किर आगे कर दिया । अथवा उन्होंने यह सोचा कि वे विष्णुपद (आकाश) वासी शेष परोपकार के लिये अवगणित होना स्वीकार कर लेते हैं; इसलिये बलि के समान विरसे बन्दनीय हैं ।

बहुत बढ़ गयी थी* । उनका प्रवाह गहरा और तेज हो गया था । तरल तरङ्गों के कारण जलपर फेन-झी-फेन हो रहा था । सैकड़ों मयानक बैँवर पड़ रहे थे । जैसे सीतापति भगवान् श्रीरामजीको समुहने मार्ग दे दिया था, वैसे ही यमुनाजीने भगवान्को मार्ग दे दिया । ॥५०॥ वसुदेवजीने नन्दबाबाके गोकुलमें जाकर देखा कि सब-के-सब गोप नौदसे अचेत पड़े हुए हैं । उन्होंने अपने पुत्रको यगोदाजीकी शय्यापर सुला दिया और उनकी नवजात कन्या लेकर वे बंदीगृहमें लौट आये ॥ ५१ ॥

जेठमें पहुँचकर वसुदेवजीने उस कन्याको देवकीकी शय्यापर सुला दिया और अपने पैरोंमें वेवियाँ बांध लीं तथा पहलेकी तरह वे बंदीगृहमें बंद हो गये ॥ ५२ ॥ उबर नन्दपत्नी यशोदाजीको इतना तो माहूम हुआ कि कोई सन्तान हुई है, परन्तु वे यह न जान सकीं कि पुत्र है या पुत्री । क्योंकि एक तो उन्हें बड़ा परिश्रम हुआ था और दूसरे योगमायाने उन्हें अचेत कर दिया था । ॥ ५३ ॥

चौथा अध्याय

कंसके हाथसे छूटकर योगमायाका आकाशमें जाकर भविष्यवाणी करना

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित । जब वसुदेवजी अपने आप ही पहलेकी तरह बंद हो गये । इसके बाद लौट आये, तब नगरके बाहरी और भीतरी सब दरवाजे नवजात शिशुके रोनेकी ध्वनि सुनकर द्वारपालोंकी नींद

* १. श्रीकृष्ण शिशुको अपनी ओर आते देखकर यमुनाजीने विचार किया—अहा ! जिनके चरणोंकी धूलि सप्तपद्मोंके मानव-ध्यानका विषय है, वे ही आज मेरे तटपर आ रहे हैं । वे आनन्द और प्रेमसे भर गयीं, आँखोंसे इतने आँसू निकले कि धाव आ गयी ।

२. मुझे यमराजकी पहिन समझकर श्रीकृष्ण अपनी आँख न फेर लें, इसलिये वे अपने विद्याल आसनका प्रदर्शन करने लगीं ।

३. वे गोपालनके लिये गोकुलमें आ रहे हैं, वे सहस्र-सहस्र लहरियाँ गीर्ँ ही होती हैं । वे उनकीके समान इनका भी शालन करें ।

४. एक कालियनाग तो मुझमें पहलेसे ही हैं, यह दूसरे शेषनाग आ रहे हैं । अब मेरी क्या गति होगी—यह सोचकर यमुनाजी अपने यपेहाँसे उनका निवारण करनेके लिये बढ़ गयीं ।

† १. एकाएक यमुनाजीके मनमें विचार आया कि मेरे अग्राध जलको देखकर कहीं श्रीकृष्ण यह न सोच लें कि मैं इधमें खड़ेगा कैरे, इसलिये वे तुरंत कहीं कण्ठभर, कहीं नाभिभर और कहीं घुटनोतक जलवाली हो गयीं ।

२. जैसे झुली मनुष्य दयालु पुरुषके सामने अपना मन सोलकर रस देता है, वैसे ही कालियनागसे प्रदा अपने हृदयका दुःख निवेदन कर देनेके लिये यमुनाजीने भी अपना दिल खोलकर श्रीकृष्णके सामने रस दिया ।

३. मेरी नीरसता देखकर श्रीकृष्ण कहीं जलझीझा करना और पठरानी बनाना असोकार न कर दें, इसलिये वे अञ्जुलूता छोड़कर बड़ी विनयसे अपने हृदयकी सच्चे-पूर्ण रसरीति प्रकट करने लगीं ।

४. जब इन्हीं क्षणवशमें रामावतार ग्रहण किया, तब मार्ग न देनेपर चन्द्रमाके पिता सधुद्रको बाँध दिया था । अब वे चन्द्रवंशमें प्रकट हुए हैं और मैं सूर्यकी पुत्री हूँ । यदि मैं इन्हें मार्ग न दूँगी तो वे मुझे भी बाँध देंगे । इस डरसे मानो यमुनाजी दो मार्गोंमें बँट गयीं ।

५. सप्तपद कहते हैं कि हृदयमें भगवान्के आ जानेपर अलौकिक सुख होता है । मानो उसीका उपयोग करनेके लिये यमुनाजीने भगवान्को अपने भीतर ले लिया ।

६. मेरा नाम कृष्णा, मेरा बल कृष्ण, मेरे बाहर श्रीकृष्ण है । फिर मेरे हृदयमें ही उनकी स्फूर्ति क्यों न हो ?—ऐसा सोचकर मार्ग देनेके बहाने यमुनाजीने श्रीकृष्णको अपने हृदयमें ले लिया ।

† भगवान् श्रीकृष्णने इस प्रसङ्गमें यह प्रकट किया कि जो मुझे प्रेमपूर्वक अपने हृदयमें धारण करता है, उसके बन्धन कुछ जाते हैं, जेष्ठसे शुक्रवार मिला जाता है, बड़े-बड़े फाटक टूट जाते हैं, पहरेदारोंका पता नहीं चलता, भव-नदीका जल सूख जाता है, गोकुल (इन्द्रिय-समुदाय) की वृत्तियाँ क्षय हो जाती हैं और माया हाथमें आ जाती है ।

हूटी ॥ १ ॥ वे तुरंत भोजरान कंसके पास गये और देवकीको सन्तान होनेकी बात कही । कंस तो कहीं आकुलता और घबराहटके साथ इसी बातकी प्रतीक्षा कर रहा था ॥ २ ॥ द्वारपालकी बात सुनते ही वह झटपट पलंगसे उठ खड़ा हुआ और कहीं शीघ्रतासे सृष्टिकारगृहकी ओर शपटा । इस बार तो मेरे कालका ही अन्य हुआ है, यह सोचकर वह बिह्वल हो रहा था और यही कारण है कि उसे इस बातका भी ध्यान न रहा कि उसके बाळ बिलेरे हुए हैं । रास्तेमें कई जगह वह लड़खड़ाकर गिरते-गिरते बचा ॥ ३ ॥ बंदीगृहमें पहुँचने-पर सती देवकीने बड़े दुःख और करुणाके साथ अपने माई कंससे कहा—‘मेरे हितैषी आई । यह कन्या तो तुम्हारी पुत्रवधूके समान है । जीजातिकी है; तुम्हें जीकी हस्या कदापि नहीं करनी चाहिये ॥ ४ ॥ मैया ! तुमने दैववशा मेरे बहुत-से अग्निके समान तेजस्वी बालक मार डाले । अब केवल यही एक कन्या बची है, इसे तो मुझे दे दो ॥ ५ ॥ अवश्य ही मैं तुम्हारी छोटी बहिन हूँ । मेरे बहुत-से बच्चे मर गये हैं, इसलिये मैं अत्यन्त दीन हूँ । मेरे प्यारे और समर्थ माई ! तुम मुझ मन्दभागिनीको यह अन्तिम सन्तान अवश्य दे दो’ ॥ ६ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित ! कन्याको अपनी गोदमें छिपाकर देवकीजीने अत्यन्त दीनताके साथ रोते-रोते याचना की । परन्तु कंस बड़ा दुष्ट था । उसने देवकीजीको सिद्धकर उनके हाथसे वह कन्या छीन ली ॥ ७ ॥ अपनी उस नन्ही-सी नवजात मानकीके पैर पकड़कर कंसने उसे बड़े जोरसे एक चट्टानपर दे मारा । स्तार्थने उसके हृदयसे सौहार्दकी समूल उखाड़ फेका था ॥ ८ ॥ परन्तु श्रीकृष्णकी वह छोटी बहिन साधारण कन्या तो थी नहीं, देवी थी; उसके हाथसे छूटकर तुरंत आकाशमें चली गयी और अपने बड़े-बड़े आठ हाथोंमें आशुष लिये हुए दीख पड़ी ॥ ९ ॥ वह दिव्य माला, वस्त्र, चन्दन और गणिय आभूषणोंसे

विभूषित थी । उसके हाथोंमें वज्र, त्रिशूल, बाण, दाढ़, तल्वार, शङ्ख, चक्र और गदा—ये आठ आयुध थे ॥ १० ॥ सिद्ध, चारण, गन्धर्व, अम्बरा, किन्नर और नागगण बहुत-सी भेंटकी सामग्री समर्पित करके उसकी स्तुति कर रहे थे । उस समय वेहीने कंससे यह कहा—॥ ११ ॥ ‘ये मूर्ख ! मुझे मारनेसे तुझे क्या मिलेगा ? तेरे पूर्वजन्मका शत्रु तुझे मारनेके लिये किसी स्थानपर पैदा हो चुका है । अब तू व्यर्थ निर्दोष बालकोंकी हत्या न किया कर’ ॥ १२ ॥ कंससे इस प्रकार कहकर भगवती योगमाया वहाँसे अन्तर्धान हो गयी और पृथ्वीके अनेक स्थानोंमें विभिन्न नामोंसे प्रसिद्ध हुई ॥ १३ ॥

देवीकी यह बात सुनकर कंसको असीम आश्चर्य हुआ । उसने उसी समय देवकी और वसुदेवको कैदसे छोड़ दिया और कहीं नग्नतासे उनसे कहा—॥ १४ ॥ ‘मेरी प्यारी बहिन और बहनोईजी ! हाय-हाय, मैं बड़ा पापी हूँ । राक्षस जैसे अपने ही बच्चोंको मार डालता है, वैसे ही मैंने तुम्हारे बहुत-से लड़के मार डाले । इस बातका मुझे बड़ा खेद है’ ॥ १५ ॥ मैं इतना दुष्ट हूँ कि करुणाका तो मुझमें लेश भी नहीं है । मैंने अपने माई-बन्धु और हितैषियोंतकका त्याग कर दिया । पता नहीं, अब मुझे किस नरकमें जाना पड़ेगा । बास्तवमें तो मैं ब्रह्मघातीके समान जीवित होनेपर भी मुर्दा ही हूँ ॥ १६ ॥ केवल मनुष्य ही झूठ नहीं बोलते, विषादा भी झूठ बोलते हैं । उसीपर विश्वास करके मैंने अपनी बहिनके बच्चे मार डाले ! ओह ! मैं कितना पापी हूँ ॥ १७ ॥ तुम दोनों महात्मा हो । अपने पुत्रोंके लिये शोक मत करो । उन्हें तो अपने कर्मका ही फल मिल रहा है । सभी प्राणी प्रारब्धके अधीन हैं । इसीसे वे सदा-सर्वदा एक साथ नहीं रह सकते ॥ १८ ॥ जैसे मिट्टीके बने हुए पदार्थ बनते और बिगड़ते रहते हैं, परन्तु मिट्टीमें कोई अदृक्-वदल नहीं होती—वैसे ही शरीरका तो वनना बिगड़ना होता ही रहता है; परन्तु

* जिनके गर्भमें भगवान् ने निवास किया, जिन्हें भगवान् के दर्शन हुए, उन देवकी-वसुदेवके दर्शनका ही यह फल है कि कंसके हृदयमें विनय, विचार, उदारता आदि सत्गुणोंका उदय हो गया । परन्तु अत्यन्त वह उनके सामने रहा समीतक ये सृष्टि रहे । कुछ मन्त्रियोंके बीचमें जाते ही वह फिर ज्यों-का-त्यों हो गया ।

आत्मापर इसका कोई प्रभाव नहीं पड़ता ॥ १९ ॥ जो लोग इस तत्त्वको नहीं जानते, वे इस अनन्ता शरीरको ही आत्मा मान बैठते हैं । यही लज्जुदी बुद्धि अथवा अज्ञान है । इसीके कारण जन्म और मृत्यु होते हैं । और जनतक यह अज्ञान नहीं मिटता, तबतक सुख-दुःखरूप संसारसे छूटकारा नहीं मिलता ॥ २० ॥ मेरी प्यारी बहिन ! यद्यपि मैंने तुम्हारे पुत्रोंको मार डाला है, फिर भी तुम उनके लिये शोक न करो । क्योंकि सभी प्राणियोंको विवश होकर अपने कर्मोंका फल भोगना पड़ता है ॥ २१ ॥ अपने स्वरूपको न जाननेके कारण जीव जबतक यह मानता रहता है कि 'मैं मारनेवाला हूँ या मारा जाता हूँ', तबतक शरीरके जन्म और मृत्युका अविमान करनेवाला वह अज्ञानी बाध्य और बाधक भावको प्राप्त होता है । अर्थात् वह दूसरोंको दुःख देता है और स्वयं दुःख भोगता है ॥ २२ ॥ मेरी यह दृष्टता तुम दोनों क्षमा करो; क्योंकि तुम बड़े ही साधुस्वभाव और दीनोंके रक्षक हो ।' ऐसा कहकर कंसने अपनी बहिन देवकी और वसुदेवजीके चरण पकड़ लिये । उसकी बाँझोंसे आँसू बह-बहकर मुँहतक आ रहे थे ॥ २३ ॥ इसके बाद उसने योगमायाके वचनोंपर विस्वास करके देवकी और वसुदेवको कैदसे छोड़ दिया और वह तरह-तरहसे उनके प्रति अग्ना प्रेम प्रकट करने लगा ॥ २४ ॥ अब देवकीजीने देखा कि आई कंसको पश्चात्ताप हो रहा है, तब उन्होंने उसे क्षमा कर दिया । वे उसके पहले अपराधोंको भूल गयी और वसुदेवजीने हँसकर कंससे कहा— ॥ २५ ॥ 'मनस्वी कंस ! आप जो कहते हैं, वह ठीक वैसा ही है । जीव अज्ञानके कारण ही शरीर आदि-को 'मैं' मान बैठते हैं । इसीसे अपने-परायेका भेद हो जाता है ॥ २६ ॥ और यह भेददृष्टि हो जानेपर तो वे शोक, हर्ष, मय, द्वेष, जेभ, मोह और मदसे अपने हो जाते हैं । फिर तो उन्हें इस बातका पता ही नहीं रहता कि सबके प्रेरक भगवान् ही एक भावसे दूसरे भावका, एक वस्तुसे दूसरी वस्तुका नाश करा रहे हैं' ॥ २७ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित ! जब वसुदेव और देवकीने इस प्रकार प्रसन्न होकर निष्कपटभावसे कंसके साथ बातचीत की, तब उनसे अनुमति लेकर

वह अपने महलमें चला गया ॥ २८ ॥ वह रात्रि वीत जानेपर कंसने अपने मन्त्रियोंको बुलाया और योगमाथाने जो कुछ कहा था, वह सब उन्हें कह सुनाया ॥ २९ ॥ कंसके मन्त्री पूर्णतया नीतिनिपुण नहीं थे । दैत्य होनेके कारण खमावसे ही वे देवताओंके प्रति शत्रुताका भाव रखते थे । अपने स्वामी कंसकी बात सुनकर वे देवताओं-पर और भी चिढ़ गये और कंससे कहने लगे— ॥ ३० ॥ 'भोजराज ! यदि ऐसी बात है तो हम आज ही वड़े-वड़े नगरोंमें, छोटे-छोटे गाँवोंमें, अहीरोंकी वस्तिवोंमें और दूसरे स्थानोंमें जितने बच्चे हुए हैं, वे चाहे दस दिनसे अधिकके हों या कमके, सबको आज ही मार डालेंगे' ॥ ३१ ॥ समझीक देवगण युद्धोद्योग करके ही क्या करेंगे ? वे तो आपके धनुषकी टङ्कार सुनकर ही सदा-सर्वदा धबराये रहते हैं ॥ ३२ ॥ जिस समय युद्धभूमिमें आप चोट-पर-चोट करने लगते हैं, बाण-वर्षित घायक होकर अपने प्राणोंकी रक्षाके लिये समरद्वन्द्व छोड़कर देवतालोग पल्यम-परायण होकर इधर-उधर भाग जाते हैं ॥ ३३ ॥ कुछ देखा तो अपने अक्ष-शस्त्र जमीनपर ढाल देते हैं और हाथ जोड़कर आपके सामने अपनी दीनता प्रकट करने लगते हैं । कोई-कोई अपनी चोटोंके बाळ तथा कण्ठ खोलकर आपकी शरणमें आकर कहते हैं कि— 'हम भयभीत हैं, हमारी रक्षा कीजिये' ॥ ३४ ॥ आप उन शत्रुओंको नहीं मारते जो शस्त्र-अक्ष भूल गये हों, जिनका रथ टूट गया हो, जो डर गये हों, जो लोग युद्ध छोड़कर अन्त्यमनस्क हो गये हों, जिनका धनुष टूट गया हो या जिन्होंने युद्धसे अपना मुँह मोड़ लिया हो— उन्हें भी आप नहीं मारते ॥ ३५ ॥ देवता तो बस वहीं धीर बनते हैं, जहाँ कोई लड़ाई-अगड़ा न हो । रणभूमिके बाहर वे बड़ी-बड़ी ढींग हाँकते हैं । उनसे तथा एकान्तवासी विष्णु, वनवासी शङ्कर, अल्पवीर्य इन्द्र और तपस्वी ब्रह्मासे भी हमें क्या मय हो सकता है ॥ ३६ ॥ फिर भी देवताओंकी उपेक्षा नहीं करनी चाहिये—ऐसी हमारी राय है । क्योंकि हैं तो वे शत्रु ही । इसलिये उनकी जब उखाड़ फेंकनेके लिये आप हम-जैसे विधासपात्र सेवकोंको नियुक्त कर दीजिये ॥ ३७ ॥ जब मनुष्यके शरीरमें रोग हो जाता है और उसकी चिकित्सा नहीं की जाती—उपेक्षा कर दी जाती है,

तब रोग अपनी जड़ जया लेता है और फिर वह असाध्य हो जाता है। अथवा जैसे इन्द्रियोंकी उपेक्षा कर देनेपर उनका दमन असम्भव हो जाता है, वैसे ही यदि पहले शत्रुकी उपेक्षा कर दी जाय और वह अपना पोंव जमा ले, तो फिर उसको हराना कठिन हो जाता है ॥२८॥ देवताओंकी जड़ है विष्णु और वह वहाँ रहता है, जहाँ सनातनधर्म है। सनातनधर्मकी जड़ हैं—वेद, गौ, ब्राह्मण, तपस्या और वे यज्ञ, जिनमें दक्षिणा दी जाती है ॥ ३९ ॥ इसलिये योजराज ! हमलोग वेदवादी ब्राह्मण, तपस्वी, याज्ञिक और यज्ञके लिये धी आदि हविष्य पदार्थ देनेवाली गायोंका पूर्णरूपसे नाश कर डालेंगे ॥ ४० ॥ ब्राह्मण, गौ, वेद, तपस्या, सत्य, इन्द्रियदमन, मनोनिग्रह, अह्मा, दया, सतिष्ठा और यज्ञ विष्णुके शरीर हैं ॥ ४१ ॥ वह विष्णु ही सारे देवताओंका स्वामी तथा असुरोंका प्रधान द्वेषी है। परन्तु वह किसी गुणमें छिपा रहता है। महादेव, ब्रह्मा और सारे देवताओंकी जड़ बही है। उसको मार डालनेका उपाय यह है कि श्रद्धियोंको मार डाला जाय ॥ ४२ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित ! एक तो कंसकी बुद्धि स्वयं ही विगड़ी हुई थी; फिर उसे मन्त्री ऐसे मिले थे, जो उससे भी बढ़कर दुष्ट थे। इस प्रकार उनसे सख्त करके कालके फंदमें फँसे हुए असुर कसने यही ठीक समझा कि ब्राह्मणोंको ही मार डाला जाय ॥ ४३ ॥ उसने हिंसाप्रेमी राक्षसोंको संतपुरुषोंकी हिंसा करनेका आदेश दे दिया। वे इच्छानुसार रूप धारण कर सकते थे। जब वे इधर-उधर चले गये, तब कंसने अपने महत्त्वमें प्रवेश किया ॥ ४४ ॥ उन असुरोंकी प्रकृति थी रजोगुणी। तमोगुणके कारण उनका चित्त उचित और अनुचितके विवेकसे रहित हो गया था। उनके सिरपर गौत नाच रही थी। यही कारण है कि उन्होंने संतोंसे द्वेष किया ॥ ४५ ॥ परीक्षित ! जो लोग महान् संत पुरुषोंका अनादर करते हैं, उनका वह कुकर्म उनकी आयु, छद्मी, कीर्ति, धर्म, लोक-परलोक, विषय-मोग और सब-के-सब कल्याणके साधनोंको नष्ट कर देता है ॥ ४६ ॥

पाँचवाँ अध्याय

शोकुलमें भगवान्का जन्ममहोत्सव

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित ! नन्दबाबा बड़े मनस्वी और उदार थे। पुत्रका जन्म होनेपर तो उनका हृदय विभक्षण आनन्दसे भर गया। उन्होंने ज्ञान किया और पवित्र होकर सुन्दर-सुन्दर वस्त्राभूषण धारण किये। फिर वेदज्ञ ब्राह्मणोंको बुद्धिमान् खस्त्रिवाचन और अपने पुत्रका जातकर्म-संस्कार करवाया। साथ ही देवता और भितरोंकी विधिपूर्वक पूजा भी करवायी ॥ १-२ ॥ उन्होंने ब्राह्मणोंको वस्त्र और आभूषणोंसे सुसज्जित दो छात्र गौएँ दान कीं। रत्नों और सुनहले वस्त्रोंसे ढके हुए तिळके सात पहाड़ दान किये ॥ ३ ॥ (संस्कारोंसे ही गर्मशुद्धि होती है—यह प्रदर्शित करनेके लिये अनेक दृष्टान्तोंका उल्लेख करते हैं—) सम्पत्ति (सुन, जल, वस्तु, भूमि आदि), ज्ञानसे (शरीर आदि), प्रकाशसे (वस्त्रादि), संस्कारोंसे (गर्मादि), तपस्यासे (इन्द्रियादि), यज्ञसे (ब्राह्मणादि), दानसे (धन-धान्यादि) और सन्तोषसे (मन आदि) ग्रन्थ शुद्ध होते हैं। परन्तु आत्माकी शुद्धि तो

आत्मज्ञानसे ही होती है ॥ ४ ॥ उस समय ब्राह्मण, सूर्य, मार्गध और बंदीजैन मङ्गलमय आशीर्वाद देने तथा स्तुति करने लगे। गायक गाने लगे। मेरी और दुन्दुभिणी बार-बार बजने लगी ॥ ५ ॥ ब्रजमण्डलके सभी घरोंके द्वार, आँगन और भीतरी भाग झाड़-झुहार दिये गये; उनमें सुगन्धित जलका छिड़काव किया गया; उन्हें चित्र-विविध पञ्चा-पताक, पुष्पोंकी माळाओं, रंग-बिरंगे वस्त्र और फलवृक्षोंकी वन्दनवारोंसे सजाया गया ॥ ६ ॥ गाय, बैल और बछड़ोंके अङ्गोंमें हल्दी-तेलका लेप कर दिया गया और उन्हें गेरू आदि रंगीन घातुरें, मोरपंख, झल्लेके हार, तरह-तरहके सुन्दर वस्त्र और सोनेकी जंजीरोंसे सजा दिया गया ॥ ७ ॥ परीक्षित ! सभी स्वाल वड्डमूल्य वस्त्र, गहने, आँगरसे और पाण्डियोंसे सुसज्जित होकर और अपने हाथोंमें भेंटकी बहुत-सी सामग्रियों के लियेकर नन्दबाबाके घर आये ॥ ८ ॥

कशोदाजीके पुत्र हुआ है, यह सुनकर गोपियोंको

१. पौराणिक। २. वस्त्राभूषण करनेवाले। ३. सम्मानार्थक उक्तिोंसे स्तुति करनेवाले भाट। जैसा कि कहा है—
‘सूताः पौराणिकाः प्रोक्ता सागवा वंशधराः। बन्दिनस्तत्रमज्जयाः शस्त्रावसद्व्योक्तयः ॥’

भी बड़ा आनन्द हुआ । उन्होंने सुन्दर-सुन्दर वस्त्र, आभूषण और अन्न आदिसे अपना श्रृङ्गार किया ॥ ९ ॥ गोपियोंके मुखकमल बड़े ही सुन्दर जान पड़ते थे । उनपर लगी हुई कुकुम ऐसी लगीती मानो कमलकी केसर हो । उनके नितम्ब बड़े-बड़े थे । वे मेंटकी सामग्री ले-लेकर जल्दी-जल्दी यशोदाजीके पास चलीं । उस समय उनके पयोधर हिल रहे थे ॥ १० ॥ गोपियोंके कानोंमें चमकती हुई मणियोंके कुण्डल झिलमिल रहे थे । गलेमें सोनेके हार (हैकल या हुमेल) जगमगा रहे थे । वे बड़े सुन्दर-सुन्दर रंग-विरंगे वस्त्र पहने हुए थीं । मार्गमें उनकी चोटियोंमें गुँथे हुए फूल बरसते जा रहे थे । हाथोंमें जड़ाऊ कानन अलग ही चमक रहे थे । उनके कानोंके कुण्डल, पयोधर और हार हिलते जाते थे । इस प्रकार नन्दबाबाके घर जाने समय उनकी शोभा बड़ी अगुठी जान पड़ती थी ॥ ११ ॥ नन्दबाबाके घर जाकर वे भवजात शिशुकां आशीर्वाद देतीं 'यह बिरजीवी हो, भगवान् । इसकी रक्षा करो ।' और लोगोंपर हल्दी-तेलसे मिखा हुआ पानी छिड़क देतीं तथा कँचे खरसे मङ्गल-गान करतीं थी ॥ १२ ॥

भगवान् श्रीकृष्ण समस्त जगत्के एकमात्र स्वामी हैं । उनके ऐश्वर्य, माधुर्य, वात्सल्य—सभी अनन्त हैं । वे जब नन्दबाबाके ब्रजमें प्रकट हुए, उस समय उनके जन्मका महान् उत्सव मनाया गया । उसमें बड़े-बड़े विचित्र और मङ्गलमय बाने बजाये जाने लगे ॥ १३ ॥ आनन्दसे मतवाले होकर गोपगण एक दूसरेपर दही, दूध, घी और पानी उड़ेलने लगे । एक-दूसरेके मुँहसे मक्खन मलने लगे और मक्खन फेंक-फेंककर आनन्दोत्सव मनाने लगे ॥ १४ ॥ नन्दबाबा सभ्यसे ही परम उदार और मनस्वी थे । उन्होंने गोपोंको बहुत-से वस्त्र, आभूषण और गोएँ दीं । सूत-मागव-वंदीजनों, नृत्य, वाद्य आदि विद्याओंसे अपना जीवन-निर्वाह करनेवालों तथा दूसरे गुणीजनोंको भी नन्दबाबाने प्रसन्नतापूर्वक उनकी मुँहमाँगी वस्तुएँ देकर उनका यथोचित सत्कार किया । यह सब करनेमें उनका उद्देश्य यही था कि इन कर्मोंसे भगवान् विष्णु प्रसन्न हों और मेरे इस नव-जात शिशुका मङ्गल हो ॥ १५-१६ ॥ नन्दबाबाके अभिनन्दन करनेपर परम सौभाग्यवती रोहिणीजी दिव्य

वस्त्र, माला और गलेके भौंति-भौंतिके गहनसे सुसज्जित होकर गृहस्वामिनीकी भौंति आने-जानेवाली बिर्योका सत्कार करती हुई विचर रही थीं ॥ १७ ॥ परीक्षित । उसी दिनसे नन्दबाबाके ब्रजमें सब प्रकारकी ऋद्धि-सिद्धियाँ अठखेलियाँ करने लगीं और भगवान् श्रीकृष्णके निवास तथा अपने सामाजिक गुणोंके कारण वह लक्ष्मी-जीका क्रीडस्थल बन गया ॥ १८ ॥

परीक्षित । कुछ दिनोंके बाद नन्दबाबाने गोकुलकी रक्षाका भार तो दूसरे गोपोंको सौंप दिया और वे स्वयं कंसका बार्षिक कर चुकानेके लिये मथुरा चले गये ॥ १९ ॥ जब वसुदेवजीको यह मालूम हुआ कि हमारे भाई नन्दजी मथुरामें आये हैं और राजा कंसको उसका कर भी दे चुके हैं, तब वे जहाँ नन्दबाबा ठहरे हुए थे, वहाँ गये ॥ २० ॥ वसुदेवजीको देखते ही नन्दजी सहसा उठकर खड़े हो गये मानो मृतक शरीरमें प्राण आ गया हो । उन्होंने बड़े प्रेमसे अपने प्रियतम वसुदेवजीको दोनों हाथोंसे पकड़कर हृदयसे लगा लिपा । नन्दबाबा उस समय प्रेमसे विहल हो रहे थे ॥ २१ ॥ परीक्षित । नन्दबाबाने वसुदेवजीका बड़ा स्वागत-सत्कार किया । वे आदरपूर्वक आरामसे बैठ गये । उस समय उनका चित्त अपने पुत्रोंमें लगा रहा था । वे नन्दबाबासे कुशल-मङ्गल पूछकर कहने लगे ॥ २२ ॥

[वसुदेवजीने कहा—] 'भाई ! तुम्हारी अवस्था ठीक चली थी और अबतक तुम्हें कोई सन्तान नहीं हुई थी । यहाँतक कि अब तुम्हें सन्तानकी कोई आशा भी न थी । यह बड़े सौभाग्यकी बात है कि अब तुम्हें सन्तान प्राप्त हो गयी ॥ २३ ॥ यह भी बड़े आनन्दका विषय है कि आज हमलोगोंका मिटना हो गया । अपने प्रेमियोंका मिटना भी बड़ा दुर्लभ है । इस संसारका चक्र ही ऐसा है । इसे तो एक प्रकारका पुनर्जन्म ही समझना चाहिये ॥ २४ ॥ जैसे नदीके प्रबल प्रवाहमें बहते हुए वेड़े और तिनके सदा एक साथ नहीं रह सकते, वैसे ही सगे-सम्बन्धी और प्रेमियोंका भी एक स्थानपर रहना सम्भव नहीं है—यद्यपि वह सबको प्रिय लगता है । क्योंकि सबके प्रारब्धकर्म अलग-अलग होते हैं ॥ २५ ॥ आनकल तुम जिस महावनमें अपने

माई-बन्धु और खजनोंके साथ रहते हो, उसमें जल, घास और छाता-पत्रादि तो भरे-पूरे हैं न ? वह कन पशुओंके लिये बहुतकुल और सब प्रकारके रोगोंसे तो बचा है ? ॥ २६ ॥ माई ! मेरा छद्मका अपनी ग्वा (रोहिणी) के साथ तुम्हारे व्रजमें रहता है । उसका अलग-आलग तुम और यशोदा करते हो, इसलिये वह तो तुम्हींको अपने पिता-माता मानता होगा । वह बच्ची तरह है न ! ॥ २७ ॥ मनुष्यके लिये वे ही धर्म, अर्थ और काम शास्त्रविहित हैं, जिनसे उसके खजनोंको सुख मिले । जिनसे केवल अपनेको ही सुख मिलता है; किन्तु अपने खजनोंको दुःख मिलता है, वे धर्म, अर्थ और काम हितकारी नहीं हैं' ॥ २८ ॥

नन्दबाबाके कथा—माई बसुदेव ! कंसने देवकीके गर्भसे उत्पन्न तुम्हारे कई पुत्र मार डाले । जन्तमें एक सबसे छोटी कन्या बच रही थी, वह भी स्वर्ग सिंघार

गयी ॥ २९ ॥ इसमें सन्देह नहीं कि प्राणियोंका सुख-दुःख भाग्यपर ही अवलम्बित है । भाग्य ही प्राणीका एकमात्र आश्रय है । जो जान लेता है कि जीवनके सुख-दुःखका कारण भाग्य ही है, वह उनके प्राप्त होनेपर मोहित नहीं होता ॥ ३० ॥

बसुदेवने कहा—माई ! तुमने राजा कंसको उसका सालना कर चुका दिया । हम दोनों मिल भी चुके । अब तुम्हें यहाँ अधिक दिन नहीं ठहरना चाहिये; क्योंकि आजकल गोकुलमें बड़े-बड़े उत्पात हो रहे हैं ॥ ३१ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित ! जब बसुदेवजीने इस प्रकार कहा, तब नन्द आदि गोपोंने उनसे अनुमति ले, बैठे-बैठे श्रुते हुए छकड़ोंपर सवार होकर गोकुलकी यात्रा की ॥ ३२ ॥

छठा अध्याय

पूतना-वध

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित ! नन्दबाबा जब मथुरासे चले, तब रास्तेमें विचार करने लगे कि बसुदेवजीका कथन झूठ नहीं हो सकता । इससे उनके मनमें उत्पन्न होनेकी आशङ्का हो गयी । तब उन्होंने मन-ही-मन 'भगवान् ही शरण हैं, वे ही रक्षा करेंगे' ऐसा निश्चय किया ॥ १ ॥ पूतना नामकी एक बड़ी भूर राक्षसी थी । उसका एक ही काम था—बच्चोंको मारना । कसकी आँखसे वह नगर, ग्राम और अहीरोंकी वस्तुयोंमें बच्चोंको मारनेके लिये घूमा करती थी ॥ २ ॥ जहाँके लोग अपने प्रतिदिनके कार्योंमें राक्षसोंके भयको दूर भगानेवाले भक्तवत्सल भगवान्के नाम, गुण और छीलाओंका श्रवण, कीर्तन और स्मरण नहीं करते—वहाँ ऐसी राक्षसियोंका बल चखता है ॥ ३ ॥ वह पूतना आकाशमार्गसे चल सकती थी और अपनी इच्छाके अनुसार रूप भी बना लेती थी । एक दिन नन्दबाबाके गोकुलके पास आकर उसने मायासे अपनेको एक सुन्दरी युवती बना लिया और गोकुलके भीतर घुस गयी ॥ ४ ॥ उसने बड़ा सुन्दर रूप बनाया था । उसकी चोटियोंमें

बेलेके फूल गुँथे हुए थे । सुन्दर वस्त्र पहने हुए थी । जब उसके कर्णकुल हिलते थे, तब उनकी चमकसे मुखकी ओर लटकी हुई आँखों और भी शोभायमान हो जाती थी । उसके नितम्ब और कुच-कुक्ष ऊँचे-ऊँचे थे और कमर पतली थी ॥ ५ ॥ वह अपनी मधुर मुसकान और कटाक्षपूर्ण चितवनसे व्रजवासियोंका चित्त चुरा रही थी । उस रूपवती रमणीको हाथमें कमल लेकर आते देख गोपियों ऐसी उत्प्रेक्षा करने लगीं, मानो स्वयं लक्ष्मी ही अपने पतिका दर्शन करनेके लिये आ रही हैं ॥ ६ ॥

पूतना बालकोंके लिये ग्रहके समान थी । वह इधर-उधर बालकोंको डूँढ़ती हुई अनायास ही नन्दबाबाके घरमें घुस गयी । वहाँ उसने देखा कि बालक श्रीकृष्ण शय्यापर सोये हुए हैं । परीक्षित ! भगवान् श्रीकृष्ण दुष्टोंके काळ हैं । परन्तु जैसे आग राखकी ढेरीमें अपनेको छिपाये हुए हो, वैसे ही उस समय उन्होंने अपने प्रचण्ड तेजको छिपा रक्खा था ॥ ७ ॥ भगवान् श्रीकृष्ण चर-अचर सभी प्राणियोंके आत्मा हैं । इसलिये उन्होंने

उसी क्षण जान लिया कि यह बच्चोंको मार डालनेवाला मलमली ग्यानके भीतर छिपी हुई तीखी धारवाली तलवारके
पूतना-ग्रह है और अपने नेत्र बंद कर लिये । जैसे समान पूतनाका हृदय तो नन्दा कुटिल था, किन्तु
कोई पुरुष भ्रमवश सोये हुए सोंपको रस्ती समझ ऊपरसे वह बहुत मधुर और सुन्दर व्यवहार कर रही थी ।
कर उठा ले, वैसे ही अपने कालरूप भगवान् देखनेमें वह एक मद्द महिमाके समान जान पड़ती थी ।
श्रीकृष्णको पूतनाने अपनी गोदमें उठा लिया ॥ ८ ॥ इसलिये रोहिणी और यशोदाजीने उसे धरके भीतर आयी

० पूतनाको देखकर भगवान् श्रीकृष्णने अपने नेत्र बंद कर लिये, इसपर भक्त कवियों और टीकाकारोंने अनेकों
प्रकारकी उल्लेखार्थ की हैं, विनयमें कुछ ये हैं—

१. श्रीमद्वल्सभाचार्यने सुयोधिनीमें कहा है—अविद्या ही पूतना है । भगवान् श्रीकृष्णने सोचा कि मेरी
दृष्टिके सामने अविद्या टिक नहीं सकती, फिर लीला कैसे होगी, इसलिये नेत्र बंद कर लिये ।

२. यह पूतना वास्तविकता है 'पूतनापि नयति' । यह पवित्र बालकोंको भी ले जाती है । ऐसा जन्म कृत्य
करनेवालीरा मुँह नहीं देरना चाहिये, इसलिये नेत्र बंद कर लिये ।

३. हम जन्ममें जो इच्छने कुछ नाशन किया नहीं है । समझ है मुझसे मिलनेके लिये पूर्वजन्ममें कुछ किया हो ।
मानो पूतनाके पूर्व-जन्मके साधन देरनेके लिये ही श्रीकृष्णने नेत्र बंद कर लिये ।

४. भगवान्ने अपने मनमें विचार किया कि मैंने पापिनीका वृष कभी नहीं पिया है । अब जैसे लोग आँख
बंद करके चिरायदेका पाटा पी जाते हैं, वैसे ही हमका वृष भी पी जाऊँ । इसलिये नेत्र बंद कर लिये ।

५. भगवान्ने उदरमें विचार करनेवाये असह्य कोटि ब्रह्माण्डोंके जीव यह जानकर चकरा गये कि क्यासुन्दर
पूतनाके जनममें लगा "लाल विप पीने जा रहे हैं । अतः उन्हें ममत्वानेके लिये ही श्रीकृष्णने नेत्र बंद किये ।

६ श्रीकृष्णविभूतने विचार किया कि मैं गोदुलभ यह सोचकर आया था कि माखन-मिठी खाऊँगा तो
छटीके दिन ही विप पीनेका अवसर आ गया । इसलिये आँख बंद करके मानो शङ्करजीका ध्यान किया कि आप
आकर अपना अमृत विप-पान करीजिये, मैं वृष पीऊँगा ।

७. श्रीकृष्णने नेत्रोंने विचार किया कि परम सतगुरु ईश्वर इस दुष्टाको अच्छी-दुरी बाधे जो राति दे दें, परन्तु
हम दोनों इसे चन्द्रमार्ग अथवा सूर्यमार्ग दोनोंमेंसे एक भी नहीं देंगे । इसलिये उन्होंने अपने द्वार बंद कर लिये ।

८. नेत्रोंने सोचा पूतनाके नेत्र हैं तो हमारी ज्ञातिके; परन्तु ये इस मूर्ख राक्षसीकी धोमा बढ़ा रहे हैं । इसलिये
अपने होनेपर भी ये दर्शनके योग्य नहीं हैं । इसलिये उन्होंने अपनेको परकाँसे बन्ध लिया ।

९. श्रीकृष्णने नेत्रोंमें स्थित धर्मात्मा निमित्त उस दुष्टाको देखना उचित न समझकर नेत्र बंद कर लिये ।

१०. श्रीकृष्णके नेत्र राक्षस हैं । उन्हें बनी पूतनाके दर्शन करनेकी कोई उत्कण्ठा नहीं थी । इसलिये नेत्र
बंद कर लिये ।

११. श्रीकृष्णने विचार किया कि बाहरसे तो इच्छने माताका-सा हम धारण कर सकता है; परन्तु हृदयमें
अपना मूला भरे हुए है । ऐसी स्त्रीका मुँह न देखना ही उचित है । इसलिये नेत्र बंद कर लिये ।

१२. उन्होंने सोचा कि मुझे निन्दर देखकर कहाँ वह ऐसा न समझ जाय कि इसके ऊपर मेरा प्रभाव नहीं चला
और फिर कहाँ लौट न जाय । इसलिये नेत्र बंद कर लिये ।

१३. बाल-लीलाके प्रारम्भमें पहले-पहल जोसे ही मुठभेड़ हो गयी, इस विचारसे विरक्तिपूर्वक नेत्र बंद
कर लिये ।

१४. श्रीकृष्णने मनमें यह बात आयी कि करुणा-दृष्टिसे देखूँगा तो इसे मारूँगा कैसे, और उग्र दृष्टिसे देखूँगा
तो यह अभी मरना ही जायगी । लीलाकी दृष्टिके लिये नेत्र बंद कर लेना ही उत्तम है । इसलिये नेत्र बंद कर लिये ।

१५. यह धार्मीका वेप धारण करके आयी है; मारना उचित नहीं है । परन्तु यह और ग्यालवालोंको मारेगी ।
इसलिये इसका यह वेप देखे बिना ही मार डालना चाहिये । इसलिये नेत्र बंद कर लिये ।

१६. नदे-के-बड़ा अनिष्ट योगसे निवृत्त हो जाता है । उन्होंने नेत्र बंद करके मानो योगदृष्टि सम्पादित की ।

१७. पूतना यह निश्चय करके आयी थी कि मैं त्रज्जे के सारे शिशुओंको मार डालूँगी; परन्तु भक्तशेखरभगवन्
भगवान्की कृपासे प्रकटा एक भी शिशु उसे दिसायी नहीं दिया और बालकोंको खोबदी हुई वह लीलाशक्तिकी

देखकर भी उसकी सौन्दर्यप्रभासे हतप्रतिम-सी होकर कोई रोक-टोक नहीं की, जुपचाप खड़ी-खड़ी देखती रही ॥ ९ ॥ इधर भयानक राक्षसी पूतनाने बालक श्रीकृष्णको अपनी गोदमें लेकर उनके मुँहमें अपना स्तन दे दिया, जिसमें बड़ा भयङ्कर और किसी प्रकार भी पच न सकनेवाला विष लगा हुआ था । भगवान् ने क्रोध-को अपना साथी बनाया और दोनों हाथोंसे उसके स्तनोंको जोरसे दबाकर उसके प्राणोंके साथ उसका दूध पीने लगे (वे उसका दूध पीने लगे और उनका साथी क्रोध प्राण पीने लगा ।) * ॥ १० ॥ अब तो पूतनाके प्राणोंके आश्रयभूत सभी मर्मस्थान फटने लगे । वह पुकारने लगी—‘अरे छोड़ दे, छोड़ दे, अब बस कर !’ वह बार-बार अपने हाथ और पैर पटक-पटककर रोने लगी । उसके नेत्र उल्ट हो गये । उसका सारा शरीर पसीनेसे छपप हो गया ॥ ११ ॥ उसकी कित्ताहटका बेग बड़ा भयङ्कर था । उसके प्रभावसे पहाड़ोंके साथ पृथ्वी और प्रद्वोंके साथ अन्तरिक्ष ढगढगा उठा । सातों पाताल और दिशाएँ पूँज उठीं । बहुत-से लोग नज्रपातकी

आशाङ्कसे पृथ्वीपर गिर पड़े ॥ १२ ॥ परीक्षित ! इस प्रकार निशाचरी पूतनाके स्तनोंमें इतनी पीडा हुई कि वह अपनेको छिपा न सकी, राक्षसीरूपमें प्रकट हो गयी । उसके शरीरसे प्राण निकल गये, मुँह फट गया, नाक बिखर गये और हाथ-पैर फैल गये । जैसे इन्द्रके वज्रसे धायल होकर वृत्रासुर गिर पड़ा था, वैसे ही वह बाहर गोष्ठमें आकर गिर पड़ी ॥ १३ ॥

राजेश्वर ! पूतनाके शरीरने गिरते-गिरते भी छः घोंसके भीतरके बुझोंको कुछल डाला । यह बड़ी ही अद्भुत घटना हुई ॥ १४ ॥ पूतनाका शरीर बड़ा भयानक था, उसका मुँह इन्द्रके समान तीखी और भयङ्कर दाढ़ोंसे युक्त था । उसके नयुने पहाड़की गुफाके समान गहरे थे और स्तन पहाड़से गिरी हुई चट्टानोंकी तरह बड़े-बड़े थे । छाछ-छाल बाळ चारों ओर बिखरे हुए थे ॥ १५ ॥ ओखें अंचे झूँके समान गहरी; नितम्ब नदीके धरारकी तरह भयङ्कर; मुन्नाएँ, जंघें और पैर नदीके पुष्पके समान तथा पेट सुखे हुए सरोवरकी भाँति खान पकता था ॥ १६ ॥ पूतनाके उस शरीरको देखकर सब-के-सब ग्वाल और

प्रेरणाले चीची नन्दाकनमें आ पहुँची; तब भगवान् ने सोचा कि मेरे भक्तका बुरा बौचता है, उस बुराफा मैं मुँह नहीं देखता; प्रज-बालक सभी श्रीकृष्णके सखा हैं; परम भक्त हैं; पूतना उनकी मारनेका चक़रुन करके आयी है; इसलिये उन्होंने नेत्र बंद कर लिये ।

१८. पूतना अपनी मीषण आकृतिको छिपाकर राक्षसी भावसे दिव्य रमणी रूप बनाकर आयी है । भगवान् की दृष्टि पकनेपर भावा रहेगी नहीं और इसका भयानक रूप प्रकट हो जवगा । उसे सामने देखकर यद्योदा मैया डर बाधें और पुत्रकी अनिष्टाशाङ्कसे कहीं उनके हठात् प्राण निकल जायें; इस आशाङ्कसे उन्होंने नेत्र बंद कर लिये ।

१९. पूतना हिंसापूर्ण हृदयसे आयी है; परन्तु भगवान् उसकी हिंसाके लिये उपयुक्त दण्डन देकर उसका प्राण-बधमात्र करके परम कस्याण करना चाहते हैं । भगवान् समस्त स्रुतोंके गम्भार हैं । उनमें धृष्टता आदि दोषोंका छेदा भी नहीं है; इसीलिये पूतनाके कस्याणार्थ भी उसका प्राण-बध करनेमें उन्हें लज्जा आयी है । इस लजासे ही उन्होंने नेत्र बंद कर लिये हैं ।

२०. भगवान् जगत्पिता हैं—असुर-राक्षसादि भी उनकी सन्तान ही हैं । पर वे सर्वथा उच्छृङ्खल और उद्विग्न हो गये हैं; इसलिये उन्हें दण्ड देना आवश्यक है । लोहमय माता-पिता जब अपने उच्छृङ्खल पुत्रको दण्ड देते हैं; तब उसके मनमें दुःख होता है । परन्तु वे उसे मय दिखलानेके लिये उसे बाहर प्रकट नहीं करते । इसी प्रकार भगवान् भी जब असुरोंको मारते हैं; तब पिसाके नाशे उनकी भी दुःख होता है; पर दूसरे असुरोंको मय दिखलानेके लिये वे उसे प्रकट नहीं करते । भगवान् अब पूतनाको मारनेवाले हैं; परन्तु उसकी मृत्युकाळीन पीडाको अपनी जॉलों देखना नहीं चाहते; इसीसे उन्होंने नेत्र बंद कर लिये ।

२१. छोटे बालकोंका स्वभाव है कि वे अपनी गल्ले सामने खूब खेलते हैं; पर किसी अपरिचितको देखकर डर जाते हैं और नेत्र मूंद लेते हैं । अपरिचित पूतनाको देखकर इसीलिये बालकीज-स्निहारी भगवान् नेत्र बंद कर लिये । यह उनकी बालकीजका माधुर्य है ।

* भगवान् रोपके साथ पूतनाके प्राणोंके संहित खन-पान करने लगे; इसका यह अर्थ प्रतीत होता है कि रोप (रोषाधिष्ठान देवता रुद्र) ने प्राणोंका पान किया और श्रीकृष्णने खनका ।

गोपी डर गये । उसकी भयङ्कर चिन्ताहट धुनकर उनके हृदय, कान और सिर तो पहले ही फट रहे थे ॥ १७ ॥ जब गोपियोंने देखा कि बालक श्रीकृष्ण उसकी छातीपर निर्भय होकर खेल रहे हैं तब वे बड़ी धवराहट और उतावलीके साथ झटपट वहाँ पहुँच गयीं तथा श्रीकृष्णको उठा लिया ॥ १८ ॥ इसके बाद यशोदा और रोहिणी-के साथ गोपियोंने गायकी पूँछ घुमाने आदि उपायोंसे बालक श्रीकृष्णके अङ्गोंकी सब प्रकरसे रक्षा की ॥ १९ ॥ उन्होंने पहले बालक श्रीकृष्णको गोपूत्रसे जान कराया, फिर सब अङ्गमें गो-रज लगायी और फिर बारहों अङ्गमें गोबर लगाकर भगवान्‌के केशव आदि नामोंसे रक्षा की ॥ २० ॥ इसके बाद गोपियोंने आचमन करके 'अन' आदि ग्यारह बीज-मन्त्रोंसे अपने शरीरोंमें अज्वा-अज्वा अङ्गन्यास एवं कर्णन्यास किया और फिर बालकके अङ्गोंमें बीजन्यास किया ॥ २१ ॥

वे कहने लगीं—'अजन्मा भगवान् तेरे पैरोंकी रक्षा करें, मणिमान् घुटनोंकी, यक्षपुरुष औंलोंकी, अम्युत कमरकी, हयग्रीव पेटकी, केशव हृदयकी, ईश वक्ष-स्थलकी, सूर्य कण्ठकी, विष्णु बाँहोंकी, उरुक्रम मुखकी और ईश्वर सिरकी रक्षा करें ॥ २२ ॥ चक्रधर भगवान् रक्षाके लिये तेरे आगे रहे, गदाधारी श्रीहरि पीछे, क्रमशः धनुष और खड्ग धारण करनेवाले भगवान् मधुसूदन और अजन दोनों बगलमें, शङ्खधारी उरुगाय चारों ओरमें, उभयप्रउपर, हठधर पृथ्वीपर और भगवान् परमपुरुष तेरे सब ओर रक्षाके लिये रहें ॥ २३ ॥ हृषीकेश भगवान् इन्द्रियोंकी और नारायण प्राणोंकी रक्षा करें । श्वेतद्वीपके अधिपति चिच-की और योगेश्वर मनकी रक्षा करें ॥ २४ ॥ पृथिवीरम तेरी

बुद्धिकी और परमात्मा भगवान् तेरे अङ्गधारकी रक्षा करें । खेलेते समय गोकुन्द रक्षा करें, सोते समय माधव रक्षा करें ॥ २५ ॥ चलते समय भगवान् बैकुण्ठ और बैठते समय भगवान् श्रीपति तेरी रक्षा करें । भोजनके समय समस्त ग्रहोंको भयभीत करनेवाले यक्षभोजा भगवान् तेरी रक्षा करें ॥ २६ ॥ डाकिनी, राक्षसी और कूष्माण्डा आदि बालग्रह; भूत, प्रेत, पिशाच, यक्ष, राक्षस और विनायक, कोटरा, रेवती, ज्येष्ठा, पूतना, मातृका आदि शरीर, प्राण तथा इन्द्रियोंका नाश करनेवाले हन्नाद (पागलपन) एवं अपस्मार (भूरी) आदि रोग; स्वप्नमें देखे हुए महान् उत्पात, बृहद्रथ और बालग्रह आदि—ये सभी अनिष्ट भगवान् विष्णुका नामोच्चारण करनेसे भयभीत होकर नष्ट हो जायें ॥ २७—२९ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित । इस प्रकार गोपियोंने प्रेमपाशमें बँधकर भगवान् श्रीकृष्णकी रक्षा की । गता यशोदाने अपने पुत्रको स्नान पिछाया और फिर पाछेपर सुखा दिया ॥ ३० ॥ इसी समय नन्दबाबा और उनके साथी गोप मथुरासे गोकुलमें पहुँचे । जब उन्होंने पूतनाका भयङ्कर शरीर देखा, तब वे आश्चर्यचकित हो गये ॥ ३१ ॥ वे कहने लगे—'यह तो बड़े आश्चर्यकी बात है, अवश्य ही बसुदेवके रूपमें किसी ऋषिने जन्म ग्रहण किया है । अथवा सम्भव है बसुदेवजी पूर्व-जन्ममें कोई योगेश्वर रहे हों, क्योंकि उन्होंने वैसा कहा था, वैसा ही उत्पात यहाँ देखनेमें आ रहा है ॥ ३२ ॥ तबतक ब्रजवासियोंने कुन्हाड़ीसे पूतनाके शरीरको टुकड़े-टुकड़े कर ढाङ्ग और गोकुलसे दूर ले जाकर छकड़ियोंपर रखकर जला दिया ॥ ३३ ॥ जब उसका शरीर

● पूतनाके बहाःखलपर क्रीडा करते हुए गानो मन-ही-मन कह रहे थे—

स्तनचक्स स्तन एव जीविका दत्तस्त्वया स स्वयमानने मम ।

मया च पीतो श्रितवे यदि त्वया किं वा समागः स्वयमेव कल्पताम् ॥

मैं दुधपूँछों शिष्टा हूँ, स्तनपान ही मेरी जीविका है । तुमने स्वयं अपना स्तन मेरे मुँहमें दे दिया और मैंने पिया । इससे यदि तुम मर जाती हो तो स्वयं तुम्हीं वताओ इसमें मेरा क्या अपराध है ।'

राजा बलिकी कन्या थी रत्नमाला । यक्षराज्यामें वामन भगवान्‌को देखकर उसके हृदयमें पुत्रस्नेहका भाव उदय हो आया । वह मन-ही-मन अभिलाषा करने लगी कि यदि मुझे ऐसा बालक हो और मैं उसे स्तन पिखऊ तो मुझे बड़ी प्रसन्नता होगी । वामन भगवान्‌ने अपने मक बलिकी पुत्रीके इस मनोरथका मन-ही-मन अनुमोदन किया । वही द्वापरमें पूतना हुई और श्रीकृष्णके सर्गसे ठसकी लालसा पूर्ण हुई ।

† इस प्रसङ्गको पदकर भाष्यक मक भगवान्‌से कहता है—'भगवान् जन्म पकता है, आत्मी अपेक्षा मैं आपके नाममें शक्ति अधिक है; क्योंकि आप बिलोकीकी रक्षा करते हैं और नाम आपकी रक्षा कर रहा है ।'

जलने लगा, तब उसमेंसे ऐसा धूर्जो निकला, जिसमेंसे अगरकी-सी सुगन्ध आ रही थी। क्यों न हो, भगवान् ने जो उसका दूध पी लिया था—जिससे उसके सारे पाप तत्काल ही नष्ट हो गये थे ॥ ३४ ॥ पूतना एक राक्षसी थी। लोगोंके बच्चोंको मार डालना और उनका खून पी जाना—यही उसका काम था। भगवान् को भी उसने मार डालनेकी इच्छासे ही स्तन पिछाया था। फिर भी उसे वह परम गति मिली, जो सत्पुरुषोंको मिलती है ॥ ३५ ॥ ऐसी स्थितिमें जो परब्रह्म परमात्मा भगवान् श्रीकृष्णको श्रद्धा और भक्तिसे माताके समान अनुरागपूर्वक अपनी प्रिय-से-प्रिय वस्तु और उनको प्रिय लगनेवाली वस्तु समर्पित करते हैं, उनके सम्बन्धमें तो कहना ही क्या है ॥ ३६ ॥ भगवान् के चरणकमल सधके बन्दनीय ब्रह्मा, शङ्कर आदि देवताओंके द्वारा भी बन्दित हैं। वे मत्तो-के हृदयकी पूँजी हैं। उन्हीं चरणोंसे भगवान् ने पूतनाका शरीर दबाकर उसका स्तन-पान किया था ॥ ३७ ॥ माना कि वह राक्षसी थी, परन्तु उसे उत्तम-से-उत्तम गति—जो माताको मिलनी चाहिये—प्राप्त हुई। फिर जिनके स्तनका दूध भगवान् ने बड़े प्रेमसे पिया, उन गौओं और माताओंकी* तो बात ही क्या है ॥ ३८ ॥ परीक्षित्। देवकीमन्दन भगवान् कैवल्य आदि सब प्रकार-

की मुक्ति और सब कुछ देनेवाले हैं। उन्होंने प्रजकी गोपियों और गौओंका वह दूध, जो भगवान् के प्रति पुत्र-भाव होनेसे वात्सल्य-रूपेण ही अधिकताके कारण स्वयं ही शरता रहता था, मरपेट पान किया ॥ ३९ ॥ राजन्। वे गौएँ और गोपियाँ, जो नित्य-मिरन्तर भगवान् श्रीकृष्ण-को अपने पुत्रके ही रूपमें देखती थीं, फिर जन्म-मृत्यु-रूप संसारके चक्रमें कभी नहीं पड़ सकती; क्योंकि यह संसार तो अज्ञानके कारण ही है ॥ ४० ॥

नन्दबाबाके साथ आनेवाले प्रजवासियोंकी नाकमें जब धिताके धूर्जोकी सुगन्ध पहुँची, तब 'यह क्या है? कहाँसे ऐसी सुगन्ध आ रही है?' इस प्रकार कहते हुए वे प्रजमें पहुँचे ॥ ४१ ॥ वहाँ गोपोंने उन्हें पूतनाके आनेसे लेकर मरनेतकता सारा वृक्षान्त काह सुनाया। वे लोग पूतनाकी मृत्यु और श्रीकृष्णके कुशलपूर्वक बच जानेकी बात सुनकर बड़े ही आश्चर्यचकित हुए ॥ ४२ ॥ परीक्षित्। उदारशिरोमणि नन्दबाबाने मृत्युके मुखसे बचे हुए अपने जालको गोदमें उठा लिया और बार-बार उसका सिर सूँघकर मन-ही-मन बहुत आनन्दित हुए ॥ ४३ ॥ यह 'पूतना-मोक्ष' भगवान् श्रीकृष्णकी अद्भुत बाळ लीला है। जो मनुष्य ब्रह्मपूर्वक इसका श्रवण करता है, उसे भगवान् श्रीकृष्णके प्रति प्रेम प्राप्त होता है ॥ ४४ ॥

सातवाँ अध्याय

शकट-भञ्जन और तुणावर्त-उन्नाह

राजा परीक्षितने पूछा—प्रभो। सर्वशक्तिमान् भगवान् श्रीहरि अनेकों अवतार धारण करके बहुत-सी सुन्दर एवं सुननेमें मधुर लीलाएँ करते हैं। वे सभी मेरे हृदयको बहुत प्रिय लगती हैं ॥ १ ॥ उनके श्रवणमात्रसे मग्न-सम्बन्धी कथासे अरुचि और विविध विषयोंकी तुष्णा माग जाती है। मनुष्यका अन्तःकरण शीघ्र-से-शीघ्र क्षुद्र हो जाता है। भगवान् के चरणोंमें भक्ति और उनके मत्तजनों-

से प्रेम भी प्राप्त हो जाता है। यदि आप मुझे उनके श्रवणका अधिकारी समझते हों, तो भगवान् की ठन्ही मनोहर लीलाओंका वर्णन कीजिये ॥ २ ॥ भगवान् श्रीकृष्णने मनुष्य-श्रेयके प्रकट होकर मनुष्य-जातिके स्वभावका अनुसरण करते हुए जो बाळलीलाएँ की हैं अवश्य ही वे अत्यन्त अद्भुत हैं, इसलिये आप अब उनकी दूसरी बाळ-लीलाओंका भी वर्णन कीजिये ॥ ३ ॥

* जब ब्रह्माजी ग्वालाल और मछनोंको हर ले गये, तब भगवान् स्वयं ही बछड़े और ग्वालाल बन गये। उस समय अपने विभिन्न रूपोंमें अपने छापी अनेकों गोप और कत्तोंकी माताजाना स्तनपान किया। इरीलिये यह बहवचनका प्रयोग किया गया है।

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित ! एक बार * भगवान् श्रीकृष्णके करबट बदलनेका अभिषेक-उत्सव मनाया जा रहा था । उसी दिन उनका जन्मनक्षत्र भी था । घरमें बहुत-सी बिरयोंकी भीड़ लगी हुई थी । गाना बजाना हो रहा था । उन्हीं बिरयोंके बीचमें खड़ी हुई सती साध्वी यशोदाजीने अपने पुत्रका अभिषेक किया । उस समय ब्राह्मणयोग मन्त्र पढ़कर आशीर्वाद दे रहे थे ॥ ४ ॥ नन्दरानी यशोदाजीने ब्राह्मणोंका स्त्र पूजन-सम्मान किया । उन्हे अन्न, वस्त्र, माख, गाय आदि मुँहमाँगी वस्तुएँ दीं । जब यशोदाने उन ब्राह्मणों-द्वारा स्तुतिवाचन कराकर स्वयं बाळकके नहलाने आदिका कार्य सम्पन्न कर लिया, तब यह देखकर कि मेरे लल्लके नेत्रोंमें नींद आ रही है, अपने पुत्रको धीरेसे शय्यापर सुजा दिया ॥ ५ ॥ योषी देरमें श्यामसुन्दरकी आँखें खुलीं, तो वे स्नान-यागके लिये रोने लगे । उस समय मनसिनी यशोदाजी उत्सर्गमें आये हुए ब्रजवासियोंके सागत-सम्पन्नमें बहुत ही तन्मय हो रही थी । इसलिये उन्हें श्रीकृष्णका रोना सुनायी नहीं पड़ा । तब श्रीकृष्ण रोते-रोते अपने पाँव उल्लखने लगे ॥ ६ ॥ शिशु श्रीकृष्ण एक छकड़ेके नीचे सोये हुए थे । उनके पाँव अभी लाल-लाल कोंपलोंके समान बड़े ही कोमल और नन्है-नन्है थे । परन्तु वह नन्हा-सा पाँव छगते ही विशाल छकड़ा छलट गया । उस छकड़ेपर दूध-दही आदि अनेक रसोंसे भरी हुई मटकियाँ

और दूसरे कर्तन रखे हुए थे । वे सबके-सब झट-फाट गये और छकड़ेके पहिये तथा धुरे अस्त-व्यस्त हो गये, उसका जूआ फट गया ॥ ७ ॥ करबट बदलनेके उत्सर्गमें जितनी भी बिरायें आयी हुई थीं, वे सब, और यशोदा, रोहिणी, नन्दबाबा और गोपगण—इस विचित्र घटनाको देखकर व्याकुल हो गये । वे आपसमें कहने लगे—‘अरे, यह क्या हो गया ? यह छकड़ा अपने-आप कैसे उलट गया ?’ ॥ ८ ॥ वे इसका कोई कारण निश्चित न कर सके । वहाँ खेळते हुए बाळकोंने गोपों और गोपियोंसे कहा कि ‘इस कृष्णने ही तो रोते-रोते अपने पाँवकी ठोकरसे इसे उलट दिया है, इसमें कोई सन्देह नहीं’ ॥ ९ ॥ परन्तु गोपोंने उसे ‘बाळकोंकी बात’ मानकर उसपर विश्वास नहीं किया । ठीक ही है, वे गोप उस बाळकके अनन्त बलको नहीं जानते थे ॥ १० ॥

यशोदाजीने समझा यह किसी प्रह आदिका उत्पात है । उन्होंने अपने रोते हुए काँधके लालको गोदमें लेकर ब्राह्मणोंसे वेदमन्त्रोंके द्वारा शान्तिपाठ कराया और फिर वे उसे स्नान पिछाने लगीं ॥ ११ ॥ बलवान् गोपोंने छकड़ेको फिर सीधा कर दिया । उसपर पहलें-की तरह सारी सामग्री रख दी गयी । ब्राह्मणोंने हवन किया और दही, अक्षत, कुश तथा जलके द्वारा भगवान् और उस छकड़ेकी पूजा की ॥ १२ ॥ जो किसीके गुणोंमें दोष नहीं निकालते, झूठ नहीं बोलते, दम्भ, ईर्ष्या और हिंसा नहीं करते तथा अभिमानसे रहित

* यहाँ कदाचित् (एक बार) वेतालसर्व है तीसरे महीनेके जन्मनक्षत्रयुक्त काष्ठे । उस समय श्रीकृष्णकी बाँकी-का देसा वर्णन मिलता है—

शिखाः पश्यति वैष्णवीति भुजयोर्दुग्धं शुद्धाभ्यक्ष्यत्यस्य मधुरं च कूजति परिस्त्रज्ञा च पाकाह्वति ।

कामालामवशादयुष्य लसति क्रन्दत्यपि काष्ठस्य पीतसन्ध्या सपित्तपि पुनर्नाग्रमुदं यच्छति ॥

‘स्नेहसे तर गोपियोंकी आँखें उठाकर देखते हैं और छुसकराते हैं । दोनों जुझाएँ बार-बार झिलते हैं । बड़े मधुरस्वद-से थोड़ा-थोड़ा कूजते हैं । गोदमें आनेके लिये लल्लते हैं । किसी वस्तुको पाकर उससे खेळने लग जाते हैं और न मिलनेसे क्रन्दन करते हैं । कभी-कभी दूध पीकर सो जाते हैं और फिर जागकर आनन्दित करते हैं ।’

† दिग्ग्यासका पुत्र था उत्कच । वह बहुत बलवान् एवं गौरव-सम्पन्न था । एक बार यात्रा करते समय उसने कोमल श्रुतिके आश्रमके धर्मोंकी कुत्तल वाला । कोमल श्रुतिने श्लेष करके शाप दे दिया—‘अरे बुद्ध ! जा, तू देहरहित हो जा ।’ उसी समय साँपके कँजुलके समान उसका शरीर गिरने लगा । वह पड़ामे कोमल श्रुतिके चरणोंपर गिर पड़ा और प्रार्थना की—‘कृपास्त्रियो ! मुझपर कृपा कीजिये । मुझे आपके प्रभावका ज्ञान नहीं था । मेरा शरीर लौटा दीजिये ।’ कोमलश्रुति प्रसन्न हो गये । मृगत्यागोंका शाप भी कर हो जाता है । उन्होंने कहा—‘वैवलत मनन्तरम् श्रीकृष्णके चरण-स्पर्शसे तेरी श्रुति हो जायगी ।’ वही असुर छकड़ेमें आकर बैठ गया था और भगवान् श्रीकृष्णके चरणस्पर्शसे झुक हो गया ।

हैं—उन सत्यशील ब्राह्मणोंका आशीर्वाद कभी विफल नहीं होता ॥ १३ ॥ यह सोचकर नन्दबाबाने बाळक-को गोदमें उठा लिया और ब्राह्मणोंसे साम, शृङ्ग और यजुर्वेदके मन्त्रोंद्वारा संस्कृत एवं पवित्र ओषधियोंसे युक्त जलसे अभिषेक करवाया ॥ १४ ॥ उन्होंने नदी एकाग्रतासे खस्यपनपाठ और हवन कराकर ब्राह्मणोंको अति उत्तम अन्नका भोजन कराया ॥ १५ ॥ इसके बाद नन्दबाबाने अपने पुत्रकी उत्पत्ति और अमिषुद्धि-की कामनासे ब्राह्मणोंको सर्वगुणसम्पन्न बहुत-सी गौएँ दीं । वे गौएँ बल्ल, पुष्पमाला और सोनेके हारोंसे सजी हुई थीं । ब्राह्मणोंने उन्हें आशीर्वाद दिया ॥ १६ ॥ यह बात स्पष्ट है कि जो वेदवेत्ता और सदाचारी ब्राह्मण होते हैं, उनका आशीर्वाद कभी निष्फल नहीं होता ॥ १७ ॥

एक दिनकी बात है, सती यशोदाजी अपने प्यारे छत्ताको गोदमें लेकर झुंजर रही थीं । सहसा श्रीकृष्ण चक्षानके समान भारी बन गये । वे उनका भार न सह सकीं ॥ १८ ॥ उन्होंने भारसे पीड़ित होकर श्रीकृष्ण-को पृथ्वीपर बैठा दिया । इस नयी घटनासे वे अत्यन्त चकित हो रही थीं । इसके बाद उन्होंने भगवान् पुरुषोत्तमका स्मरण किया और वरके काममें लग गयीं ॥ १९ ॥

तृणावर्त नामका एक दैत्य था । वह कंसका निजी सेवक था । कंसकी प्रेरणासे ही बर्बडरके रूपमें वह गोकुलमें आया और बैठे हुए बाळक श्रीकृष्णको उठाकर आकाशमें ले गया ॥ २० ॥ उसने त्रनरजसे सारे गोकुल-को ढक दिया और लोगोंकी देखनेकी शक्ति हर ली । उसके अत्यन्त भयङ्कर शब्दसे दसों दिशार्थ कंप उठीं ॥ २१ ॥ सारा जन दो घड़ीतक रज और तमसे ढका रहा । यशोदाजीने अपने पुत्रको वहाँ बैठा दिया था, वहाँ जाकर देखा तो श्रीकृष्ण वहाँ नहीं थे ॥ २२ ॥ उस समय तृणावर्तने बर्बडररूपसे इतनी बाढ़ उठा

रक्खी थी कि सभी जग अत्यन्त उद्ध्विग्न और बेसुध हो गये थे । उन्हें अपना-पराया कुछ भी नहीं सूझ रहा था ॥ २३ ॥ उस जोरकी आँधी और धूलकी वर्षा अपने पुत्रका पता न पाकर यशोदाको बड़ा शोक हुआ । वे अपने पुत्रकी याद करके बहुत ही दीन हो गयीं और बल्लेके मर जानेपर गायकी जो दशा हो जाती है, वही दशा उनकी हो गयी । वे पृथ्वीपर गिर पड़ीं ॥ २४ ॥ बर्बडरके शान्त होनेपर जब धूलकी वर्षाका वेग कम हो गया, तब यशोदाजीके रोनेका शब्द सुनकर दूसरी गोपियाँ वहाँ दौड़ आयीं । नन्दनन्दन स्वामिसुन्दर श्रीकृष्णको न देखकर उनके हृदयमें भी बड़ा संताप हुआ, आँखोंसे आँसूकी धारा बहने लगी । वे फूट-फूटकर रोने लगीं ॥ २५ ॥

इधर तृणावर्त बर्बडररूपसे जब भगवान् श्रीकृष्णको आकाशमें उठा ले गया, तब उनके भारी बोझको न सहन कर सकनेके कारण उसका वेग शान्त हो गया । वह अधिक चल न सका ॥ २६ ॥ तृणावर्त अपनेसे भी भारी होनेके कारण श्रीकृष्णको नीलगिरि की चट्टान समझने लगा । उन्होंने उसका गला ऐसा पकड़ा कि वह उस अमृत शिशुको अपनेसे अलग नहीं कर सका ॥ २७ ॥ भगवान् ने इतने जोरसे उसका गला पकड़ रक्खा था कि वह असुर निश्चेष्ट हो गया । उसकी आँखें बाहर निकल आयीं । बोळती बंद हो गयी । प्राण-पखेरू सब गये और बाळक श्रीकृष्णके साथ वह त्रयमें गिर पड़ा ॥ २८ ॥ वहाँ जो बियाँ इकट्ठी होकर रो रही थी, उन्होंने देखा कि वह विकराल दैत्य आकाशसे एक चक्षानपर गिर पड़ा और उसका एक-एक अङ्ग चकनाचूर हो गया—ठीक वैसे ही, जैसे भगवान् शङ्करके बाणोंसे आहत हो त्रिपुरासुर गिरकर चूर-चूर हो गया था ॥ २९ ॥ भगवान् श्रीकृष्ण उसके वक्ष-स्थलपर बैठक रहे थे । यह देखकर गोपियाँ विस्मित

* पाण्डुदेशमें सहस्राक्ष नामके एक राजा थे । वे नर्मदा-तटपर अपनी रात्रियोंके साथ विहार कर रहे थे । उधरसे दुर्वास ऋषि निकले, परन्तु उन्होंने प्रणाम नहीं किया । ऋषिने शाप दिया—‘यद् राक्षस हो जा ।’ जब वह उनके चरणोंपर गिरकर गिरगिराया, तब दुर्वासजीने कह दिया—‘भगवान् श्रीकृष्णके त्रिविग्रहका स्पर्श होते ही य् मुक्त हो जायगा ।’ वही राजा तृणावर्त होकर आया था और श्रीकृष्णका संस्पर्श प्राप्त करके मुक्त हो गया ।

हो गयीं । उन्होंने झटपट वहाँ जाकर श्रीकृष्णको गोदमें ले लिया और लकर उन्हें माताको दे दिया । बालक मृखुके मुखसे सकुशल लौट आया । यद्यपि उसे राक्षस आकाशमें उठा ले गया था, फिर भी वह बच गया । इस प्रकार बालक श्रीकृष्णको फिर पाकर यशोदा आदि गोपियों तथा नन्द आदि गोपोंको अत्यन्त आनन्द हुआ ॥ ३० ॥ वे कहने लगे—‘अहो ! यह तो वड़े आश्चर्य की बात है । देखो तो सही, यह कितनी अद्भुत घटना घट गयी ! यह बालक राक्षसके द्वारा मृखुके मुखमें डाल दिया गया था, परन्तु फिर जीता-जागता आ गया और उस हिंसक दुष्टको उसके पाप ही खा गये । सच है, साधुपुरुष अपनी समतासे ही सम्पूर्ण भयोंसे बच जाता है ॥ ३१ ॥ हमने ऐसा कौन-सा तप, भगवान्की पूजा, व्याज-पौसख, कुर्बान-बाकली, बाग-बगीचे आदि पूर्त, यज्ञ, दान अथवा जीवोंकी भलाई की थी, जिसके फलसे हमारा यह बालक भस्कर भी अपने खजनोंको छुली करनेके लिये फिर लौट आया ? अवश्य ही यह बड़े सौभाग्यकी बात है’ ॥ ३२ ॥ जब

नन्दबाबाने देखा कि महाजनमें बहुत-सी अद्भुत घटनाएँ घटित हो रही हैं, तब आश्चर्यचकित होकर उन्होंने वसुदेवजीकी बातका बार-बार समर्थन किया ॥ ३३ ॥ एक दिनकी बात है, यशोदाजी अपने प्यारे शिशु-को अपनी गोदमें लेकर बड़े प्रेमसे स्नान-पान करा रही थीं । वे वात्सल्य-स्नेहसे इस प्रकार सराबोर हो रही थीं कि उनके स्नानोंसे अपने-आप ही दूध सरता जा रहा था ॥ ३४ ॥ जब वे प्रायः दूध पी चुकी और माता यशोदा उनके रुचिर मुस्कानसे युक्तमुखको चूम रही थी, उसी समय श्रीकृष्णको जैभाई आ गयी और माताने उनके मुखमें यह देखा * ॥ ३५ ॥ उसमें आकाश, अन्तरिक्ष, ज्योतिर्मण्डल, दिशाएँ, सूर्य, चन्द्रमा, अग्नि, वायु, समुद्र, द्वीप, पर्वत, नदियाँ, वन और समस्त चराचर प्राणी स्थित हैं ॥ ३६ ॥ परीक्षित ! अपने पुत्रके मुँहमें इस प्रकार सहसा सारा जगत् देखकर मृगशावकनयनी यशोदाजीका शरीर काँप उठा । उन्होंने अपनी नब्बी-नब्बी आँखों बंद कर लीं † । वे अत्यन्त आश्चर्यचकित हो गयीं ॥ ३७ ॥

आठवाँ अध्याय

नामकरण-संस्कार और बालछीला

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित ! यदुवंशियोंके कुल-पुरोहित ये श्रीगर्गाचार्यजी । वे बड़े तपस्वी थे । वसुदेवजीकी प्रेरणासे वे एक दिन नन्दबाबाके गोकुलमें आये ॥ १ ॥ उन्हें देखकर नन्दबाबाकी नब्बी प्रसन्नता हुई । वे हाथ जोड़कर उठ खड़े हुए । उनके चरणोंमें प्रणाम किया । इसके बाद ये स्वयं भगवान् ही हैं—

इस भास्से उनकी पूजा की ॥ २ ॥ जब गर्गाचार्यजी आरामसे बैठ गये और विधिपूर्वक उनका आतिथ्य-स्त्कार हो गया, तब नन्दबाबाने बड़ी ही मधुर वाणीसे उनका अग्निनन्दन किया और कहा—‘भगवन् ! आप तो स्वयं पूर्णकाम हैं, फिर मैं आपकी क्या सेवा करूँ ? ॥ ३ ॥ आप-जैसे महात्माओंका हमारे-जैसे

* स्नेहमयी जननी और स्नेहके सदा मूखे भगवान् । उन्हें दूध पीनेसे तृप्ति ही नहीं होती थी । माँके मनमें शङ्का हुई—कहीं अधिक पीनेसे अपच न हो जाय । प्रेम सर्वदा अनिष्टकी आशङ्का उत्पन्न करता है । श्रीकृष्णने अपने मुखमें विश्वरूप दिखाकर कहा—‘अरी मैया ! तेरा दूध मैं अकेले ही नहीं पीता हूँ । मेरे मुखमें बैठकर सम्पूर्ण विश्व ही इसका पान कर रहा है । तू बचरावे मत’—

सत्यं किम्पि पितृषि शूर्वभर्मकैस्ति वर्तिष्यमाणवचनां जन्मो विमाज्ज ।

विश्वं विमाणि पश्योज्ज्व न केचज्जोहम्मसाददस्ति हरिणा किमु निष्पमास्ये ॥

† वात्सल्यमयी यशोदा माता अपने अलङ्कृत मुखमें विश्व देखकर डर गयीं, परन्तु वात्सल्य प्रेमरस-मग्नित हृदय होनेसे उन्हें विश्वास नहीं हुआ । उन्होंने विचार किया कि वह विश्वका बड़ेका अलङ्कृत मुँहमें कहाँसे आया ? हो-न-हो यह मेरी इन निगोड़ी आँखोंकी ही गड़बड़ है । खनो हलीये उन्होंने अपने नेत्र बंद कर लिये ।

गृहस्थोंके घर आ जाना ही हमारे परम कल्याणका कारण है । हम तो घरोंमें इतने उलझ रहे हैं और इन प्रपञ्चोंमें हमारा चित्त इतना दीन हो रहा है कि हम आपके आश्रमतक जा भी नहीं सकते । हमारे कल्याणके सिवा आपके आगमनका और कोई हेतु नहीं है ॥ ४ ॥ प्रभो ! जो बात साधारणतः इन्द्रियोंकी पहुँचके बाहर है अथवा मृत और भविष्यके गर्भमें निहित है, वह भी ज्योतिष-शास्त्रके द्वारा प्रत्यक्ष ज्ञान की जाती है । आपने उड़ी ज्योतिष-शास्त्रकी रचना की है ॥ ५ ॥ आप ब्रह्मवेत्ताओंमें श्रेष्ठ हैं । इसलिये मेरे इन दोनों बालकोंके नामकरणआदि संस्कार आप ही कर दीजिये; क्योंकि ब्राह्मण जन्मसे ही मनुष्यमात्रका गुरु है ॥ ६ ॥

गर्गाचार्यजीने कहा—नन्दजी ! मैं सब अगह बहु-बंशियोंके आचार्यके रूपमें प्रसिद्ध हूँ । यदि मैं तुम्हारे पुत्रके संस्कार करूँगा, तो लोग समझेंगे कि यह तो देवकीका पुत्र है ॥ ७ ॥ कंसकी बुद्धि घुरी है, वह पाप ही सोचा करती है । बसुदेवजीके साथ तुम्हारी बड़ी घनिष्ठ मित्रता है । जबसे देवकीकी कन्यासे उसने यह बात सुनी है कि उसको मारनेवाला और काही पैदा हो गया है, तबसे वह यही सोचा करता है कि देवकीके आठवें गर्भसे कन्याका जन्म नहीं होना चाहिये । यदि मैं तुम्हारे पुत्रका संस्कार कर दूँ और वह इस बालकको बसुदेवजीका लड़का समझकर मार डाले, तो हमसे बड़ा अन्याय हो जायगा ॥ ८-९ ॥

नन्दबाबाने कहा—आचार्यजी ! आप चुपचाप इस एकान्त गोशालामें केवल छस्तिवाहन करके इस बालकका द्विजातिसमुचित नामकरण-संस्कारमात्र कर दीजिये । औरोंकी कौन कहे, मेरे सगे-सम्बन्धी भी इस बातको न जानने पावे ॥ १० ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—गर्गाचार्यजी तो संस्कार करना चाहते ही थे । जब नन्दबाबाने उनसे इस प्रकार प्रार्थना की, तब उन्होंने एकान्तमें छिपकर श्रुतरूपसे दोनों बालकोंका नामकरण-संस्कार कर दिया ॥ ११ ॥

गर्गाचार्यजीने कहा—यह रोहिणीका पुत्र है । इसलिये इसका नाम होगा रौहिणेय । यह अपने सगे-

सम्बन्धी और मित्रोंको अपने गुणोंसे अत्यन्त आनन्दित करेगा । इसलिये इसका दूसरा नाम होगा 'राम' । इसके बचकी कोई सीमा नहीं है, अतः इसका एक नाम 'वल' भी है । यह यादवोंमें और तुमलोगोंमें कोई भेदभाव नहीं रखेगा और लोगोंमें फूट पड़नेपर मेळ करावेगा, इसलिये इसका एक नाम 'सङ्घर्षण' भी है ॥ १२ ॥ और यह जो सौवर्ण-सौवर्ण है, यह प्रत्येक युगमें शरीर ग्रहण करता है । पिछले युगोंमें इसने क्रमशः ज्वेत, रक्त और पीत—ये तीन विभिन्न रंग स्वीकार किये थे । अबकी यह कृष्णवर्ण हुआ है । इसलिये इसका नाम 'कृष्ण' होगा ॥ १३ ॥ नन्दजी ! यह तुम्हारा पुत्र पहले कभी बसुदेवजीके घर भी पैदा हुआ था, इसलिये इस रहस्यको जाननेवाले लोग इसे 'श्रीमान् बसुदेव' भी कहते हैं ॥ १४ ॥ तुम्हारे पुत्रके और भी बहुत-से नाम हैं तथा रूप भी अनेक हैं । इसके जितने गुण हैं और जितने कर्म, उन सबके अनुसार अलग-अलग नाम पड़ जाते हैं । मैं तो उन नामोंको जानता हूँ, परन्तु संसारके साधारण लोग नहीं जानते ॥ १५ ॥ यह तुमलोगोंका परम कल्याण करेगा । समस्त गोप और गौओंको यह बहुत ही आनन्दित करेगा । इसकी सहायतासे तुमलोग बड़ी-बड़ी विपत्तियोंको बड़ी सुगमतासे पार कर लोगे ॥ १६ ॥ ब्रजराज । पहले युगकी बात है । एक बार पृथ्वीमें कोई राजा नहीं रह गया था । बाहुजोंने चारों ओर छट-छसोट मचा रखी थी । तब तुम्हारे इसी पुत्रने सज्जन पुरुषोंकी रक्षा की और इससे बल पाकर उन लोगोंमें छूटेरोंपर विजय प्राप्त की ॥ १७ ॥ जो मनुष्य तुम्हारे इस सौवर्ण-सुवर्णेने शिष्टसे प्रेम करते हैं, वे बड़े भाग्यवान् हैं । जैसे विष्णुमगवान्के करकामलोंकी छत्रछायामें रहनेवाले देवताओंको अक्षुर नहीं जीत सकते, वैसे ही इससे प्रेम करनेवालोंकी मीतर या बाहर किसी भी प्रकारके शत्रु नहीं जीत सकते ॥ १८ ॥ नन्दजी ! चाहे जिस दृष्टिसे देखे—गुणमें, सम्पत्ति और सौन्दर्यमें, कीर्ति और प्रभावमें तुम्हारा यह बालक साक्षात् भगवान् नारायणके समान है । तुम बड़ी सावधानी और तत्परतासे इसकी रक्षा करो ॥ १९ ॥ इस प्रकार नन्दबाबाको मजीमोति समझाकर, आदेश देकर गर्गाचार्यजी अपने

आश्रमको छौट गये । उनकी बात सुनकर नन्दबाबाको बड़ा ही आनन्द हुआ । उन्होंने ऐसा समझा कि मेरी सब आशा-आलस्यएँ पूरी हो गयीं, मैं अब कृतकृत्य हूँ ॥ २० ॥

परिक्षित् ! कुछ ही दिनोंमें राम और श्याम घुटनों और हाथोंके बल नकैयों चल-चलकर गोकुलमें खेळने लगे ॥ २१ ॥ दोनों माई अपने नन्दे-नन्दे पंखोंको गोकुलकी बीच-बचमें बसीटते हुए चढते । उस समय उनके पोंव और कमरके धुँवक रुनझुन बजने लगते । वह शब्द बड़ा भला माधुर्य पड़ता । वे दोनों स्वयं वह ध्वनि सुनकर खिल उठते । कभी-कभी वे रास्ते चल्ते किसी अज्ञात व्यक्तिके पीछे हो लेते । फिर जब देखते कि यह तो कोई दूसरा है, तब झन्-से रह जाते और चरकर अपनी माताओं—रोहिणीजी और यशोदाजीके पास छौट आते ॥ २२ ॥ माताएँ यह सब देख-देखकर स्नेहसे भर जातीं । उनके स्तनोंसे दूधकी धारा बहने लगती थी । जब उनके दोनों नन्दे-नन्दे-से शिशु अपने शरीरमें बीच-बचका अङ्गराग लगाकर छौटते, तब उनकी सुन्दरता और भी बढ़ जाती थी । माताएँ उन्हें आते ही दोनों हाथोंसे गोदमें लेकर हृदयसे लगा लेती और स्तन-पान कराने लगतीं । जब वे दूध पीने लगते और बीच-बीचमें मुसकरा-मुसकराकर अपनी माताओंकी ओर देखने लगते, तब वे उनकी मन्द-मन्द मुसकान, छोटी-छोटी हँसुलियाँ और भोला-भाला मुँह देखकर आनन्दके समुद्रमें

डूबने-उतराने लगतीं ॥ २३ ॥ जब राम और श्याम दोनों कुछ और बड़े हुए, तब ब्रजमें घरके बाहर ऐसी-ऐसी बालछीछएँ कतने लगे, जिन्हें गोपियाँ देखती ही रह जातीं । जब वे किसी बैठे हुए बछेकी पूँछ पकड़ लेते और बछड़े डरकर इधर-उधर भागते, तब वे दोनों और भी जोरसे पूँछ पकड़ लेते और बछड़े उन्हें बसीटते हुए दौड़ने लगते । गोपियाँ अपने घरका काम-धंधा छोड़कर यही सब देखती रहतीं और हँसते-हँसते छोटपोट होकर परम आनन्दमें मग्न हो जातीं ॥ २४ ॥ कहैया और बलदाऊ दोनों ही बड़े चञ्चल और बड़े खिलड़ी थे । वे कहीं हरिन, गाय आदि सींगवाले पशुओंके पास दौड़ जाते, तो कहीं धधकती हुई आगसे खेलनेके लिये कूद पड़ते । कभी दाँतसे काटनेवाले कुत्तोंके पास पहुँच जाते, तो कभी आँख बचाकर तक-बार उठा लेते । कभी कूँएँ या गड्ढेके पास जलमें गिरते-गिरते बचते, कभी मोर आदि पक्षियोंके निकट चले जाते और कभी कोंटोंकी ओर बढ़ जाते थे । माताएँ उन्हें बहुत बरजतीं, परन्तु उनकी एक न चल्ती । ऐसी स्थितिसे वे धरकर काम-धंधा भी नहीं सम्हाल पाती । उनका चित्त बच्चोंकी भयकी वस्तुओंसे बचानेकी चिन्तासे अत्यन्त चञ्चल रहता था ॥ २५ ॥

राजर्षे ! कुछ ही दिनोंमें यशोदा और रोहिणीके लालसे लाल घुटनोंका सहारा लिये बिना अनायास ही लड़े होकर गोकुलमें चलने फिरने लगे ॥ २६ ॥

* जब श्यामसुन्दर घुटनोंका महारा लिये बिना चलने लगे, तब वे अपने घरमें अनेका प्रकारकी कौतुकमयी खीला करने लगे—

शून्ये चोरयतः स्वयं निबण्डे द्वैकवर्चीनं भणिस्रग्मे स्वप्रतिविम्बमीक्षितवतस्तेनैव साहं भिया ।

भ्रतर्मां वद मातरं भयं समो मागस्तवापीहितो मुह्यतेत्यात्मनो हेतुः कलवचो भवा रहः भूयते ॥

एक दिन सँकरे-सखीने अजराजकुमार श्रीकन्हैयालालकी अपने स्तने भरमें स्वयं ही माखन चुप रहे थे । उनकी हृष्टि मणिके खम्भेमें पड़े हुए अपने प्रतिविम्बपर पड़ी । अब तो वे डर गये । अपने प्रतिविम्बसे बोले—‘अरे मैया ! मेरी मैयासे कहियो मत । तेरा माग भी मेरे बराबर ही सुखे खीकार है ! के, खा । खा के मैया ! यशोदा माता अपने लालकी चोतली बोली सुन रही थीं ।

उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ, वे भरमें मीतर झुन आयीं । माताको देखते ही श्रीकृष्णने अपने प्रतिविम्बको दिखाकर बात बदल दी—

मातः क एष नवनीतमिदं त्वदीयं लोभेन चोरयिष्यथ यह प्रविष्टः ।

मद्वारणं न मनुते मयि रोपमात्रं रोपं तनोति न हि मे नवनीतलोभः ॥

‘मैया ! मैया ॥ यह कौन है ! जोमवश तुम्हारा माखन चुपनेके लिये थाव भरमें झुन आया है । मैं मना

ये ब्रजवासियोंके कन्हैया स्वयं मगवान् हैं, परम सुन्दर करते हुए तरह-तरहके खेल खेलते ॥ २७ ॥ उनके और परम मधुर ! अब वे और बलराम अपनी ही उम्रके बचपनकी चखलताएँ बड़ी ही अनेखी होती थीं । ग्वालियोंको अपने साथ लेकर खेलनेके लिये ब्रजमें गोपियोंको तो वे बड़े ही सुन्दर और मधुर लगतीं । निकल पड़ते और ब्रजकी भाग्यवती गोपियोंको निहाल एक दिन सब की-सब हफ्ठी होकर नन्दबाबाके घर करता हूँ तो मानता नहीं है और मैं क्रोध करता हूँ तो वह भी क्रोध करता है । मैया ! तुम कुछ और मत चीन्हा । मेरे मनमें माखनका तनिक भी लोभ नहीं है ।'

अपने दुध-मुँहे सिद्धकी प्रतिभा देखकर मैया वास्तव्य-स्नेहके आनन्दमें डग हो गयीं ।

× × × × × ×

एक दिन श्यामसुन्दर माताके बाहर बान्नेपर परमें ही माखन-चोरी कर रहे थे । इतनेमें ही दैववश यशोदाजी जेठ आयीं और अपने काढ़ले काळको न देखकर पुकारने लगीं—

कृष्ण ! कासि करोपि किं पितरिति भूत्वैव मातुर्वचः साक्षात् नवनीतचौर्यविरतो विभ्रम्य ताम्रजघीट ।

माताः कङ्कणपद्मरागमहसा पाणिर्मयातप्यते तेनायं नवनीतमाण्डविकरे विन्यस्य निर्वापितः ॥

'कन्हैया ! कन्हैया ! अरे जो मेरे बाप ! कहाँ है, क्या कर रहा है ?'—माताकी यह बात सुनते ही माखनचोर अीकृष्ण डर गये और माखन-चोरिसे जल्मा हो गये । फिर बोली देर जुग रहकर यशोदाजीसे बोले—'मैया, री मैया ! यह जो तुमने मेरे कङ्कणमें पहराया जडा दिया है, इसकी कपटवे मेरा हाथ जक रहा था । इसीसे मैंने इसे माखनके मटकेमें डालकर छुछाया था ।'

माता यह मधुर-मधुर कन्हैयाकी तोतली बोली सुनकर मुग्ध हो गयीं और व्याजो बैठे ।' ऐसा कहकर जडाको गोदमें उठा लिया और प्यारसे चूमने लगीं ।

× × × × × ×

धृष्णाम्या करकुड्मलेन विगलहास्यामुदगम्या वदन् हुं हुं इमिति रक्तकण्ठकुहरादस्यहागिभ्रमः ।

मातासौ नवनीतचौर्यदुष्टुके प्राग्भस्मिताः स्वास्त्रकेनायुष्यास्य मुखं तवैतदक्षिणं वत्सेति कण्ठे कृतः ॥

एक दिन माताने माखनचोरी करनेपर श्यामसुन्दरको धमकाया, डोंट-फटकारा । वर, रोनों नेत्रोंसे आँसुओंकी झड़ी लग गयी । कार-कमलसे आँखें मलने लगे । छेँ-छेँ करके रोने लगे । गला रँच गया । मुँहसे बोला नहीं जाता था । वर, माता यशोदाका सैयँ टूट गया । अपने आँचलसे अपने काळ कन्हैयाका मुँह पोंछा और बड़े प्यारसे गले लगाकर बोली—'काळा ! यह सब तुम्हारा ही है, वह चोरी नहीं है ।'

एक दिनकी बात है—पूर्णचन्द्रकी चाँदनीसे मणिमय आँगन घुल गया था । यशोदा मैयाके साथ गोपियोंकी गोड़ी बुढ़ रही थी । वहीं लेकने-लेकने कृष्णचन्द्रकी दृष्टि चन्द्रमापर पड़ी । उन्होंने पीछेसे आकर यशोदा मैयाका धँसट उतार लिया । और अपने कोमल करोंसे उनकी चोटी खोलकर खींचने लगे और बार-बार पीठ थपथपाने लगे । 'मैं दूँगा, मैं दूँगा'—तोतली बोलीसे इतना ही कहते । जब मैयाकी समझमें बात नहीं आती, तब उसने स्नेहार्द्र दृष्टिसे पाँच बैठी ग्वालियोंकी ओर देखा । अब वे विनयसे, प्यारसे फुसलकर अीकृष्णको अपने पास के आसीं और बोलीं—'माखन ! तुम क्या चाहते हो, दूध ?' अीकृष्ण—'न्या' । 'क्या बहिया दही ?' 'न्या' । 'क्या खुरचन ?' 'न्या' । 'मलाई ?' 'न्या' । 'दाजा माखन ?' 'न्या' । 'ग्वालियोंने कहा—'बेटा ! रुठो मत, रोओ मत । जो माँगो सो दूँगा ।' अीकृष्णने बरिसे कहा—'वरकी वस्तु नहीं चाहिये' और अँगुली उठाकर चन्द्रमाकी ओर संकेत कर दिया । गोपियाँ बोलीं—'ओ मेरे बाप ! यह कोई माखनका लौहा बोधे ही है ! हाय ! हाय ! हम यह कैसे देगी ! यह तो प्यार-प्यारा हंस आकाशके सरोवरमें तैर रहा है !' अीकृष्णने कहा—'मैं भी तो खेलनेके लिये इस हस्को ही माँग रहा हूँ, धीमथा करो । पाप जानेके पूर्व ही धुसे लो दो ।'

अब और भी मचल गये । वरतीपर पाँव पीट-पीटकर और हाथोंसे गला पकड़-पकड़कर 'दो-दो' कहने लगे और पहलसे भी अधिक रोने लगे । दूसरी गोपियोंने कहा—'बेटा ! राम-राम । इन्होंने तुमको बहला दिया है । यह राजहंस नहीं है, यह तो आकाशमें ही रहनेवाला चन्द्रमा है ।' अीकृष्ण हट कर बैठे—'मृदुसे तो यही दो ; मेरे मनमें इसके साथ खेलनेकी बड़ी लालसा है । अमी दो, अमी दो ।' जब बहुत रोने लगे, तब यशोदा माताने गोदमें उठा लिया और प्यार करके बोलीं—'मैंने प्रायः न यह राजहंस है और न तो चन्द्रमा । है यह माखन ही, परन्तु तुमको

आयी और यशोदा माताको सुना-सुनाकर कहैयाके करत कहने लगी ॥ २८ ॥ 'अरी यशोदा ! यह तेरा कान्हा बड़ा नटखट हो गया है । गाय दुहनेका समय न होनेपर भी यह बछड़ोंको खोल देता है और हम बोटती है, तो ठठा-ठठाकर हँसने लगता है । यह चोरीके बड़े-बड़े उपाय करके हमारे भीठे-भीठे दही-दूध चुरा-चुराकर खा जाता है । केवल अपने ही खाता तो भी एक बात थी, यह तो सारा दही-दूध नानरोंको बाँट देता है और जब वे भी पेट भर जानेपर नहीं खा पाते, तब यह हमारे सारोंको ही फोव डालता है । यदि घरमें कोई वस्तु इसे नहीं मिलती तो यह घर और घरवालोंपर बहुत खीझता है और हमारे बच्चोंको रुलाकर भाग जाता है ॥ २९ ॥ जब हम दही-दूधको छीकोंपर रख देती हैं और इसके छोटे-छोटे हाथ बहाँतक नहीं पहुँच पाते, तब यह बड़े-बड़े उपाय रचता है । कहीं दो-चार पीढ़ोंको एकके ऊपर एक रख देता है । कहीं

उखलपर चढ़ जाता है तो कहीं उखलपर पीढ़ा रख देता है, (कमी-भमी तो अपने किसी साथीके कंधेपर ही चढ़ जाता है ।) जब इतनेपर भी काम नहीं चलता, तब यह नीचेसे ही उन वर्तनोंमें छेद कर देता है । इसे इस बातकी पक्की पहचान रहती है कि किस छीकेपर किस वर्तनमें क्या रक्खा है । और ऐसे ढगसे छेद करना जानता है कि किसीको पतातक न चले । जब हम अपनी वस्तुओंको बहुत बँधेरें छिपा देती हैं, तब नन्दरानी ! तुमने जो इसे बहुत-से मणिमय आभूषण पहना रखे हैं, उनके प्रकाशसे अपने-आप ही सब कुछ देख लेता है । इसके शरीरमें भी ऐसी ज्योति है कि जिससे इसे सब कुछ दीख जाता है । यह इतना चालाक है कि कब कौन कहाँ रहता है, इसका पता रखता है और जब हम सब घरके काम-अवॉमें उलझी रहती हैं, तब यह अपना काम बना लेता है ॥ ३० ॥ ऐसा करके भी दिव्यकी बातें करता है—उछटे हुने ही चोर बनाता और अपने घरका मालिक बन जाता

देने योग्य नहीं है । देखो, इसमें वह काळा-काळा विष लगा हुआ है । इससे बढिया होनेपर भी इसे कोई नहीं खाता है ।' श्रीकृष्णने कहा—'मैया ! मैया ! इसमें विष कैसे लग गया ।' बात बदल गयी । मैयाने गोदमें लेकर समुद्र-समुद्र खरसे कथा सुनाना प्रारम्भ किया । मा-बेटेंमें प्रभोत्तर होने लगे ।

यशोदा—'काला ! एक क्षीर-सागर है ।'

श्रीकृष्ण—'मैया ! वह कैसा है ।'

यशोदा—'बेटा ! यह जो तुम दूध देख रहे हो, इसीका एक समुद्र है ।'

श्रीकृष्ण—'मैया ! कितनी गांधीने दूध दिया होगा अब समुद्र बना होगा ।'

यशोदा—'कन्हैया ! वह गायका दूध नहीं है ।'

श्रीकृष्ण—'अरी मैया ! दूध सुझे बहला रही है, भला बिना गायके दूध कैसे !'

यशोदा—'वस्त ! मिलने गायोंमें दूध बनाया है, वह गायके बिना भी दूध बना सकता है ।'

श्रीकृष्ण—'मैया ! वह कौन है ।'

यशोदा—'वह भगवान् हैं परन्तु अग (उनके पास कोई आ नहीं सकता । अथवा भा' कार रहित) हैं ।'

श्रीकृष्ण—'अच्छा ठीक है, आगे कहो ।'

यशोदा—'एक बार देवता और देत्योंमें लड़ाई हुई । असुरोंको मोहित करनेके लिये भगवान्ने क्षीरसागरको मया । मदराचलकी रई बनी । वासुकि नागकी रस्ती । एक ओर देवता लगे, दूसरी ओर दानव ।'

श्रीकृष्ण—'जैसे गोपियों दही मथती हैं, व्यों मैया ।'

यशोदा—'हाँ बेटा ! उसीसे काल्कट नामका विष पैदा हुआ ।'

श्रीकृष्ण—'मैया ! विष तो छोंमें होता है, दूधमें कैसे निकल ।'

यशोदा—'बेटा ! जब शङ्कर भगवान्ने वही विष पी लिया, तब उसकी जो ऊदरों धरतीपर गिर पड़ी, उन्हे पीकर सँप विषधर हो गये । जो बेटा ! भगवान्की ही ऐसी कोई बीजा है, जिससे दूधमेंसे विष निकल ।'

श्रीकृष्ण—'अच्छा मैया ! यह तो ठीक है ।'

यशोदा—'बेटा ! (चन्द्रभागी और दिलाकर) वह मन्त्रन भी उसीसे निकल है । इसलिये वोड़ा सा विष इसमें भी लग गया । देखो, देखो, इसीको जोग कल्ल कहते हैं । जो गैरे प्राण । तुम बरका ही मन्त्रन खाओ ।'

है। इतना ही नहीं, यह हमारे लिये-पुते खण्ड घरोंमें भूज आदि भी कर देता है। तनिक देखो तो इसकी ओर, वहाँ तो चोरीके अनेकों उपाय करके काम बनाता है और यहाँ मादम हो रहा है मानो फयरकी मूर्ति खड़ी हो। बाह रे मोले-मोले साधु।' इस प्रकार गोपियों कहती जातीं और श्रीकृष्णके गीन-चक्षित नेत्रोंसे

मुक्त मुखकमलको देखती जातीं। उनकी यह दश देखकर नन्दरानी कशोदाकी उनके मनका भाव ताब छेदी और उनके हृदयमें स्नेह और आनन्दकी बाढ आ जाती। वे इस प्रकार हँसने लगतीं कि अपने लादले कन्हैयाको इस बातका लज्जहना भी न दे पाती, ढौंढे-की बातक नहीं सोच पाती * ॥ ३१ ॥

कथा सुनते-सुनते श्यामसुन्दरकी आँखोंमें नींद आ गयी और मैथाने उन्हें पलङ्कपर मुखा दिया।

* भगवान्की लीलापर विचार करते समय यह बात स्मरण रखनी चाहिये कि भगवान्का लीलावाम, भगवान्के लीलापात्र, भगवान्का लीलाशरीर और उनकी लीला प्राकृत नहीं होती। भगवान्मे देह-देहीका भेद नहीं है। महाभारतमें आया है—

न भूतसंघसंस्थानो देवस्य परमात्मनः। यो वेत्ति भौतिकं देहं कृष्णस्य परमात्मनः ॥
स सर्वस्वाद् बहिष्कार्यः श्रौतस्मार्तविधानतः। मुञ्च सत्यावलोकेऽपि सचैव ज्ञानमाचरेत् ॥

परमात्माका शरीर भूतसमुदायसे बना हुआ नहीं होता। जो मनुष्य श्रीकृष्ण परमात्माके शरीरको भौतिक जानता-मानता है, उसका समस्त श्रौत-स्मार्त कर्मोंसे बहिष्कार कर देना चाहिये अर्थात् उसका किसी भी शास्त्रीय कर्ममें अधिकार नहीं है। यहाँतक कि उसका मुँह देखनेपर भी सचैव (वक्तसहित) जान करना चाहिये।

श्रीमद्भागवतमे ही ब्रह्मजीने भगवान् श्रीकृष्णकी स्तुति करते हुए कहा है—

अस्यापि देव बपुषो मनुप्रहस्य स्वेच्छामयस्य न तु भूतमयस्य कोऽपि ॥

‘आपने मुझपर कृपा करनेके लिये ही यह स्वेच्छामय सच्चिदानन्दस्वरूप प्रकट किया है, यह पादभौतिक कदापि नहीं है।’

इससे यह स्पष्ट है कि भगवान्का सभी कुछ अप्राकृत होता है। इसी प्रकार यह माखनचोरीकी लीला भी अप्राकृत—दिव्य ही है।

यदि भगवान्के नित्य परमधाममे अभिनयरूपसे नित्य निवास करनेवाली नित्यसिद्धा गोपियोंकी दृष्टिसे न देखकर केवल साधनसिद्धा गोपियोंकी दृष्टिसे देख जाय तो भी उनकी तपस्या इतनी कठोर थी, उनकी बाढसा इतनी अनन्य थी, उनका प्रेम इतना व्यापक था और उनकी स्थान इतनी सभी थी कि भक्तवाग्दत्तकल्पतरु प्रेमरसमय भगवान् उनके हृदयनुसार उन्हें सुख पहुँचानेके लिये माखनचोरीकी लीला करके उनकी इच्छित पूजा ग्रहण करें, चौरहरण करके उनका रक्षा-सहाय्यवानक प्रदा वय दे और रासलीला करके उनको दिव्य सुख पहुँचायें तो कोई बड़ी बात नहीं है।

भगवान्की नित्यसिद्धा चिदानन्दमयी गोपियोंके अतिरिक्त बहुत-सी ऐसी गोपियों और थीं, जो अपनी महान् साधनाके फलस्वरूप भगवान्की मुक्तजन-वाञ्छित सेवा करनेके लिये गोपियोंके रूपमे अवतीर्ण हुई थीं। उनमेंसे कुछ पूर्वजन्मकी देवकन्याएँ थीं, कुछ श्रुतियाँ थीं, कुछ तपस्वी श्रुति से और कुछ अन्य भक्तजन। इनकी कथाएँ विभिन्न पुराणोंमें मिलती हैं। श्रुतिरूपा गोपियों, जो श्रुति-नेतिशेके द्वारा निरन्तर परमात्माका वर्णन करते रहनेपर भी उन्हें साक्षात्काररूपसे प्राप्त नहीं कर सकतीं, गोपियोंके साथ भगवान्के दिव्य रसमय विहारकी बात जानकर गोपियोंकी उपासना करती है और अन्तमें स्वयं गोपीरूपमे परिणत होकर भगवान् श्रीकृष्णको साक्षात् अपने प्रियतमरूपसे प्राप्त करती हैं। इनमे मुख्य श्रुतियोंके नाम हैं—उद्गीता, सुगीता, कल्गीता, कल्कण्डिका और विषयी आदि।

भगवान्‌के श्रीरामावतारमें उन्हें देखकर मुग्ध होनेवाले—अपने-आपको उनके स्वरूप-सौन्दर्यपर न्यौछाकर कर देनेवाले सिद्ध श्रद्धागण, जिनकी प्रार्थनासे प्रसन्न होकर भगवान्‌ने उन्हें गोपी होकर प्राप्त करनेका वर दिया था, व्रजमें गोपीरूपसे अवतीर्ण हुए थे। इसके अतिरिक्त मिथिलाकी गोपी, कोसलकी गोपी, अयोध्याकी गोपी—पुल्लिन्दगोपी, रमवैकुण्ठ द्वेतद्वीप आदिकी गोपियों और जाळन्धरी गोपी आदि गोपियोंके अनेकों यूप थे, जिनको बड़ी तपस्या करके भगवान्‌से वरदान पाकर गोपीरूपमें अवतीर्ण होनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ था। पद्मपुराणके पातालखण्डमें बहुत-से ऐसे श्रद्धालुका वर्णन है, जिन्होंने बड़ी कठिन तपस्या आदि करके अनेकों कल्पोंके बाद गोपीस्वरूपको प्राप्त किया था। उनमेंसे कुछके नाम निम्नलिखित हैं—

१. एक सत्यतपा नामके श्रद्धागि थे। वे अग्निहोत्री और बड़े दृढ़व्रती थे। उनकी तपस्या अद्भुत थी। उन्होंने पद्मदशाक्षरमन्त्रका जाप और रासोन्मत्त नवकिशोर श्यामसुन्दर श्रीकृष्णका ध्यान किया था। सौ कल्पोंके बाद वे सुनन्दनामक गोपकी कन्या 'सुनन्दा' हुए।

२. एक सत्यतपा नामके मुनि थे। वे सूखे पत्थर पर रखकर दशाक्षरमन्त्रका जाप और श्रीराधाजीके दोनों हाथ पकड़कर नाचते हुए श्रीकृष्णका ध्यान करते थे। दस कल्पके बाद वे सुमद्रनामक गोपकी कन्या 'सुमद्रा' हुए।

३. हरिधामा नामके एक श्रद्धागि थे। वे निराहार रहकर 'ह्रीं' कामबीजसे युक्त त्रिंशदक्षरी मन्त्रका जाप करते थे और माधवीमण्डपमें कोमल-कोमल पत्तोंकी शय्यापर लेटे हुए युगल-सरकारका ध्यान करते थे। तीन कल्पके पश्चात्‌ वे सारङ्गनामक गोपके घर 'रङ्गवेणी' नामसे अवतीर्ण हुए।

४. जावाळिके नामके एक ब्रह्मज्ञानी श्रद्धागि थे, उन्होंने एक बार विशाख वनमें विचरते-विचरते एक जगह बहुत बड़ी बावली देखी। उस बावलीके पश्चिम तटपर बड़े कीचे एक तेजस्विनी युवती की कठोर तपस्या कर रही थी। वह बड़ी सुन्दर थी। चन्द्रमाकी शुभ किरणोंके समान उसकी चाँदनी चारों ओर छिन्नक रही थी। उसका बायाँ हाथ अपनी कमरपर था और दाहिने हाथसे वह ज्ञानमुद्रा धारण किये हुए थी। जावाळिके बड़ी मन्त्रताके साथ पृथ्वीपर उस तापसीने बतलाया—

ब्रह्मविद्याहमनुष्ठा योनीर्द्वैर्या च मृत्यते । साहं हरिपद्मभोजकाम्यया सुधिरं तपः ॥

ब्रह्मज्ञानेन पूर्णाहं तेनानन्देन तृप्तधीः । चराम्यस्मिन् चने धीरे ध्यायन्ती पुदघोसमम् ॥

तथापि शून्यमात्मानं मन्ये कृष्णरसि विना ॥

मैं वह ब्रह्मविद्या हूँ, जिसे बड़े-बड़े योगी सदा बूँदा करते हैं। मैं श्रीकृष्णके चरणकमलोंकी प्राप्तिके लिये इस घोर वनमें उन पुरुषोत्तमका ध्यान करती हुई दीर्घकालसे तपस्या कर रही हूँ। मैं ब्रह्मज्ञानन्दसे परिपूर्ण हूँ और मेरी बुद्धि भी उसी आनन्दसे परितृप्त है। परन्तु श्रीकृष्णका प्रेम मुझे अभी प्राप्त नहीं हुआ, इसलिये मैं अपनेको शून्य देखती हूँ।' ब्रह्मज्ञानी जावाळिके उसके चरणोंपर गिरकर दीक्षा की और फिर व्रजवीथियोंमें विहरनेवाले भगवान्‌का ध्यान करते हुए वे एक पैरसे खड़े होकर बड़ी कठोर तपस्या करते रहे। नी कल्पोंके बाद प्रचण्डनामक गोपके घर वे 'चित्रगन्धा'के रूपमें प्रकट हुए।

५. कुशध्वजनामक ब्रह्मर्षिके पुत्र शुचिप्रथा और सुवर्ण देवतत्त्व थे। उन्होंने शीर्षासन करके 'ह्रीं' हंस-मन्त्रका जाप करते हुए और सुन्दर कन्दर्प-गुन्य गोकुलवासी दस वर्षकी उम्रके भगवान्‌ श्रीकृष्णका ध्यान करते हुए घोर तपस्या की। कल्पके बाद वे व्रजमें सुवीरनामक गोपके घर उत्पन्न हुए।

इसी प्रकार और भी बहुत-सी गोपियोंके पूर्वजन्मकी कथाएँ प्राप्त होती हैं, विस्तारमयसे उन सबका उल्लेख यहाँ नहीं किया गया। भगवान्‌के लिये इतनी तपस्या करके इतनी क्लमके साथ कल्पोंतक साधना

करके जिन त्यागी भगवत्प्रेमियोंने गोपियोंका तन-मन प्राप्त किया था, उनकी अभिलाषा पूर्ण करनेके लिये, उन्हें आनन्द-दान देनेके लिये यदि भगवान् उनकी मनचाही चीज करते हैं तो इसमें आश्चर्य और अनाचारकी कौन-सी बात है ? रासलीलाके प्रसङ्गमें खयं भगवान्ने श्रीगोपियोंसे कहा है—

न पारयेऽहं निरवयवसंयुजां स्वसाधुकृत्यं विदुषायुषापि वः ।

या मामजन् दुर्जरजेष्टप्रह्वलाः संवृक्ष्य तद् वः प्रतियातु साधुना ॥

(१० । १२ । २२)

गोपियो ! तुमने लोक और परलोकके सारे बन्धनोंको काटकर मुझसे निष्कपट प्रेम किया है; यदि मैं तुमसे प्रत्येकके लिये अलग-अलग अलग कष्टक जीवन चरण करके तुम्हारे प्रेमका बदला चुकाता चाहूँ तो भी नहीं चुका सकता । मैं तुम्हारा श्रेणी हूँ और श्रेणी ही रहूँगा । तुम मुझे अपने साधुस्वभावसे श्रेष्ठरहित मानकर और भी श्रेणी बना दो । यही उत्तम है । ' सर्वलोकमहेश्वर भगवान् श्रीकृष्ण खयं जिन महाभाग गोपियोंके श्रेणी रहना चाहते हैं, उनकी इच्छा, इच्छा होनेसे पूर्व ही भगवान् पूर्ण कर दें—यह तो सामाजिक ही है ।

महा विचारिये तो सही श्रीकृष्णगतप्राणा, श्रीकृष्णरसमाश्रितमति गोपियोंके मनकी क्या स्थिति थी । गोपियोंका तन, मन, धन—सभी कुछ प्राणप्रियतम श्रीकृष्णका था । वे संसारमें जीती थीं श्रीकृष्णके लिये, घरमें रहती थीं श्रीकृष्णके लिये और घरके सारे काम करती थीं श्रीकृष्णके लिये । उनकी निर्मल और योगीन्द्रदुर्लभ पवित्र बुद्धिमें श्रीकृष्णके सिवा अपना कुछ था ही नहीं । श्रीकृष्णके लिये ही, श्रीकृष्णको सुख पहुँचानेके लिये ही, श्रीकृष्णकी निज सामग्रीसे ही श्रीकृष्णको पूजकर—श्रीकृष्णको सुखी देखकर वे सुखी होती थीं । प्रातःकाल निद्रा टूटनेके समयसे लेकर रातको सोनेतक वे जो कुछ भी करती थीं, सब श्रीकृष्णकी प्रीतिके लिये ही करती थीं । यहाँतक कि उनकी निद्रा भी श्रीकृष्णमें ही होती थी । खम और सुप्रति—दोनोंमें ही वे श्रीकृष्णकी मधुर और शान्त लीला देखतीं और अनुभव करती थीं । रातको दही जमाते समय श्यामसुन्दरकी माधुरी छविका ध्यान करती हुई प्रेममयी प्रत्येक गोपी यह अभिलाषा करती थी कि मेरा दही सुन्दर जमे, श्रीकृष्णके लिये उसे बिलोकर मैं बढिया-सा और बहुत-सा माखन निकालूँ और उसे उतने ही ऊँचे छीकेपर रखूँ, जितनेपर श्रीकृष्णके हाथ आसानीसे पहुँच सकें । फिर मेरे प्राणधन श्रीकृष्ण अपने सखाओंको साथ लेकर हँसते और मीठा करते हुए घरसे पदार्पण करें, माखन छटें और अपने सखाओं और नंदरोंको छुटायें, आनन्दमें मत्त होकर मेरे आँगनमें नाचें और मैं किसी कोनेमें छिपकर इस लीलाको अपनी आँखोंसे देखकर जीवनको सफल करूँ और फिर अचारक ही पकड़कर हृदयसे लगा दूँ । सूरदासजीने गाया है—

मैया री, मोहि माखन भावै । जो मैवा पकवान कहति तू, मोहि नहीं रुचि भावै ॥

मज-खुवती इक पावै ठगरी, सुनत खाम की बात । मन-मन कहति कबहुँ अपने घर, देखौ माखन खात ॥

बैठै जाइ भयनियोंकें विग, मैं तब रहौं छपानी । सूरदास प्रभु अंतरजाली, बालिनि-मन की जानी ॥

एक दिन श्यामसुन्दर कह रहे थे, 'मैया ! मुझे माखन-माता है, तू मेरा-पकवानके लिये कहती है, परन्तु मुझे तो वे रुचते ही नहीं ।' वहीं पीछे एक गोपी खड़ी श्यामसुन्दरकी बात सुन रही थी । उसने मन-ही मन कामना की—'मैं कब इन्हें अपने घर माखन खाते देखूँगी; ये मयानीके पास जाकर बैठेंगे, तब मैं छिप रहूँगी ।' प्रभु तो अन्तर्यामी हैं, गोपीके मनकी जान गये और उसके घर पहुँचे तथा उसके घरका माखन खाकर उसे सुख, दिया—'गये खाम तिहि बालिनि कै घर ।'

उसे इतना आनन्द हुआ कि वह झूली न समायी । सूरदासजी गाते हैं—

झूली फिरि बालिनि मनमें री । सुखति लखी परस्पर नाचै पावो परसौ कहु कहुँ हैं री ?

पुलकित रोम रोम, गद्गद् मुख बानी कहत न जावै । ऐसौ कहा आदि सो सखि री, हम की क्यौन सुनावै ॥
तन म्यारा, सिय एक हमसरो, हम तुम एकै रूप । सुरदास कहै ग्याहि सखिनि सौं, देखौ रूप अनूप ॥

वह खुशीसे छक्कर फूली-फूली फिरने लगी । आनन्द उसके हृदयमें समा नहीं रहा था । सहेलियोंने पूछा—“अरी, तुमसे कहीं कुछ पका घन मिल गया क्या ?” वह तो यह सुनकर और भी प्रेमविह्वल हो गयी । उसका रोम-रोम खिल उठा, वह गद्गद् हो गयी, मुँहसे बोली नहीं निकली । सखियोंने कहा—“सखि ! ऐसी क्या बात है, हमसे सुनाती क्यों नहीं ? हमारे तो शरीर ही दो हैं, हमारा जी तो एक ही है—हम-तुम दोनों एक ही रूप हैं । भज, हमसे छिपानेकी कौन-सी बात है ?” तब उसके मुँहसे इतना ही निकल—“मैं आज अनूप रूप देखा है ।” बस, फिर बाणी रुक गयी और प्रेमके आँसू बहने लगे । सभी गोपियोंकी यही दशा थी ।

ब्रज घर-घर प्रगटी यह बात । इहि माखन चोरी करि कै हरि, ग्याह सखा सँग सात ॥
प्रसन्न-मिता यह सुनि मन हरषित, सद्य हमसरो जावै । माखन सात बघानक पावै, भुज भरि उरहि छुपावै ॥
मगहो मन बलिबाध करति सब हृदय करति यह ज्ञाव । सुरदास प्रभु सौं घर में कै, वैहीं माखन खाव ॥

बड़ी ब्रज घर-घरनि यह बात । नंद-सुख, सँग सखा छिन्हें, चोरि माखन जात ॥
कोठ कहति, मेरे भयन सीतर, अबहि पैठे जाइ । कोठ कहति मोहि देखि द्वारें, उतहि गए पराइ ॥
कोठ कहति, किहि नोंति हरि कै, देखीं अपने घाम । हेरि माखन देखें आछी, खाइ जितनी घाम ॥
कोठ कहति, मैं देखि पावैं, भरि चरैं अँकवार । कोठ कहति, मैं बोंधि राखी, को सकै विरवार ॥
सूर प्रभु के मिथन करव, करति विविध विधार । चोरि कर विविधों जमावति पुन बंधुमार ॥

रातों गोपियों जाग-जागकर प्रातःकाळ होनेकी बात देखतीं । उनका मन ग्रीकृष्णमें लगा रहता । प्रातःकाळ जल्दी-जल्दी दही भयकर, माखन निकालकर छेकेपर रखतीं ; कहीं प्राणवन आकर बैठ न जायें, इसलिये सब काम छोड़कर वे सबसे पहले यही काम करतीं और श्यामसुन्दरकी प्रतीक्षामें व्याकुल होती हुई मन-ही-मन सोचतीं—“हा ! आज प्राणमियक्तम क्यों नहीं आये ? इतनी देर क्यों हो गयी ? क्या आज इस दासीका घर पवित्र न करेंगे ? क्या आज मेरे समर्पण किये हुए इस तुच्छ माखनका भोग लगाकर स्वयं सुखी होकर मुझे सुख न देंगे ? कहीं यथोदा मैयाने तो उन्हें नहीं रोक लिया ? उनके घर तो नौ खज गीरें हैं । माखनकी क्या कमी है ? मेरे घर तो वे कृपा करके ही आते हैं ।” इन्हीं विचारोंमें आँसू बहाती हुई गोपी क्षण-क्षणमें दौबकर दरवाजेपर जाती, लाज छोड़कर रास्तेकी ओर देखती, सखियोंसे पूछती । एक-एक निमेष उसके लिये युगके समान हो जाता । ऐसी माग्यवती गोपियोंकी मनःकामना भगवान् उनके घर पधारकर पूर्ण करते ।

सुरदासजीने गाया है—

प्रथम करि हरि माखन-चोरी । ग्याहनि मन हृदय करि पुरन, आपु भवै ब्रज सौरी ॥
मनमें यह विचार करत हरि, ब्रज घर-घर सब आवैं । गोकुल जगम कियो सुख-कारन, सबकें माखन खावैं ॥
बाळरूप जमुवति मोहि जावै, गोपिनि मिलि सुख भोग । सुखस प्रभु कहत प्रेम सौं ये मेरे ब्रज लोग ॥

अपने निजजन ब्रजवासियोंको सुखी करनेके लिये ही तो भगवान् गोकुलमें पधारे थे । माखन तो नन्दबाबाके घरपर कम न था, लाख-लाख गीरें थीं । वे चाहे जितना खाते-छुयते । परन्तु वे तो केवल नन्दबाबाके ही नहीं, सभी ब्रजवासियोंके अपने थे, सभीको सुख देना चाहते थे । गोपियोंकी अजसा पूरी करनेके लिये ही वे उनके घर जाते और चुरा-चुराकर माखन खाते । यह वास्तवमें चोरी नहीं, यह तो गोपियोंकी पूजा-पद्धतिका भगवान् के द्वारा स्वीकार था । मत्तवत्सल भगवान् भक्तकी पूजा स्वीकार कैसे न करें ?

भगवान् की इस दिव्यलीला—माखनचोरीका रहस्य न जाननेके कारण ही कुछ लोग इसे आदर्शके विपरीत बतलाते हैं । उन्हें पहले समझना चाहिये चोरी क्या वस्तु है, वह किसकी होती है और मौन करता है । चोरी उसे कहते हैं जब किसी दूसरेकी कोई चीज, उसकी इच्छाके बिना, उसके अनजानमें और आगे भी

एक दिन बलराम आदि बालबाल श्रीकृष्णके साथ हितैषिणी यशोदाने श्रीकृष्णका हाथ पकड़ लिया † । उस खेल रहे थे । उन लोगोंने मा यशोदाने पास आकर समय श्रीकृष्णकी आँखें ढरके मारे नाच रही थी ‡ । कहा—‘मा ! कन्हैयाने मिट्टी खायी है’ * ॥ ३२ ॥ यशोदा मैयाने डॉक्टर कहा—॥ ३३ ॥ ‘ममो रे नटखट !

वह जान न पाये—ऐसी इच्छा रखकर ले ली जाती है । भगवान् श्रीकृष्ण गोपियोंके घरसे माखन लेने थे उनकी इच्छासे, गोपियोंके अनजानमे नहीं—उनकी जानमें, उनके देखते-देखते और आगे जनानेकी कोई बात ही नहीं—उनके सामने ही दीड़ते हुए निकल जाते थे । दूसरी बात महत्त्वकी यह है कि संसारमें या संसारके बाहर ऐसी कौन-सी वस्तु है, जो श्रीमगवान्की नहीं है और वे उसकी चोरी करते हैं । गोपियोंका तो सर्वस्व श्रीमगवान्का था ही, सारा जगत् ही उनका है । वे भञ्ज, फिसल चोरी कर सक्ते हैं । हाँ, चोर तो वास्तवमें वे लोग हैं, जो भगवान्की वस्तुको अपनी मानकर ममता-आसक्तिने फँसे रहते हैं और दण्डके पात्र बनते हैं । उपर्युक्त सभी दृष्टियोंसे यही सिद्ध होता है कि माखनचोरी चोरी न थी, भगवान्की दिव्य लीला थी । असलमें गोपियोंने प्रेमकी अधिकतासे ही भगवान्का प्रेमका नाम ‘चोर’ रख दिया था, क्योंकि वे उनके चित्तचोर तो थे ही ।

जो लोग भगवान् श्रीकृष्णको भगवान् नहीं मानते, यद्यपि उन्हें श्रीमद्भागवतमें वर्णित भगवान्की लीलापर विचार करनेका कोई अधिकार नहीं है, परन्तु उनकी दृष्टिसे भी इस प्रसङ्गमें कोई आपत्तिजनक बात नहीं है । क्योंकि श्रीकृष्ण उस समय लगभग दो-तीन वर्षके बच्चे थे और गोपियों अत्यधिक स्नेहके कारण उनके ऐसे-ऐसे मधुर खेल देखना चाहती थी । आशा है, इससे शंका करनेवालोंको कुछ सन्तोष होगा । —हनुमानप्रसाद पोद्दार

* मृदु-भक्षणके हेतु—

१.—भगवान् श्रीकृष्णने विचार किया कि मुझमें मृदु लक्ष्यगुण ही रहता है और आगे बहुत-से लोभगुणी कर्म करने हैं । उनके लिये योदा-सा ‘रत्न’ संग्रह कर लें ।

२.—संस्कृत-साहित्यमें दुष्णीका एक नाम ‘क्षमा’ भी है । श्रीकृष्णने देखा कि बालबाल खुलकर मेरे हाथ लेखते हैं । कभी-कभी अपना भी कर बैठते हैं । उनके साथ लामाया धारण करके ही क्रीडा करनी चाहिये; जिससे कोई विष न पड़े ।

३. संस्कृत-भाषामें दुष्णीको ‘रत्ना’ भी कहते हैं । श्रीकृष्णने सोचा अब रत्न तो ले ही चुका हूँ; अब रत्न-रत्ना आस्वादन करूँ ।

४. इस अवतारमें दुष्णीका हित करना है । इसलिये उसका कुछ अन्न अपने मुख्य (मुख्यमें स्थित) दिवों (दोतों) को पहले दान कर लेना चाहिये ।

५. ब्राह्मण मृदु सात्त्विक कर्ममें लगा रहे है; अब उन्हें असुरोंका संहार करनेके लिये कुछ रागस कर्म भी करने चाहिये । यही युचित्त करनेके लिये मानो उन्होंने अपने मुख्यमें स्थित दिवोंको (दोतोंको) रत्नसे युक्त किया ।

६. पहले विष भक्षण किया था; मिट्टी खाकर उसकी दवा की ।

७. पहले गोपियोंका मनखन खाया था; उसहाना देनेपर मिट्टी खा ली; जिससे मुँह साफ हो जाय ।

८. भगवान् श्रीकृष्णके उदरमें रहनेवाले कोटि-कोटि ब्रह्माण्डोंके बीच नर-रत्न—गोपियोंके चरणोंकी रत्न—प्राप्त करनेके लिये व्याकुल हो रहे थे । उनकी अभिलाषा पूर्ण करनेके लिये भगवान्ने मिट्टी खायी ।

९. भगवान् स्वयं ही अपने मत्तोकी चरण-रत्न मुखके द्वारा अपने हृदयमें धारण करते हैं ।

१०. छोटे बालक समानवे ही मिट्टी खा लिया करते हैं ।

† यशोदानी जानती थी कि इस हाथने मिट्टी खानेमें सहायता की है । चोरका सहायक भी चोर ही है । इसलिये उन्होंने हाथ ही पकड़ा ।

‡ भगवान्के नेत्रमें सूर्य और चन्द्रमाका निवास है । वे कर्मके साक्षी हैं । उन्होंने सोचा कि पता नहीं श्रीकृष्ण मिट्टी खाना स्वीकार करेंगे कि मुकर जावेंगे । अब हमारा कर्तव्य क्या है । इसी मानको युचित्त करते हुए दोनों नेत्र चक्राने लगे ।

तु बहुत ढीठ हो गया है। तुने अकेलेमें छिपकर मिट्टी क्यों खायी ? देख तो तेरे दलके तेरे सखा क्या कह रहे हैं। तेरे बड़े भैया बलदाऊ भी तो उन्हींकी ओरसे गवाही दे रहे हैं ॥ ३४ ॥

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—‘मा ! मैंने मिट्टी नहीं खायी। ये सब झूठ बक रहे हैं। यदि तुम इन्हींकी बात सच मानती हो तो मेरा मुँह तुम्हारे सामने ही है, तुम अपनी आँखोंसे देख लो ॥ ३५ ॥ यशोदाजीने कहा—‘अच्छी बात। यदि ऐसा है, तो मुँह खोल !’ माताके ऐसा कहनेपर भगवान् श्रीकृष्णने अपना मुँह खोल दिया * । परीक्षित् । भगवान् श्रीकृष्णका ऐश्वर्य अनन्त है। वे केवल लीलाके लिये ही मनुष्यके बाळक बने हुए हैं ॥ ३६ ॥ यशोदाजीने देखा कि उनके मुँहमें चर-अचर सम्पूर्ण जगत् विद्यमान है। आकाश (यह रूप जिसमें किसीकी गति नहीं), दिशाएँ, पहाड़, द्वीप और समुद्रोंके सहित सारी पृथ्वी, बहनेवाली वायु, वैष्णव, अग्नि, चन्द्रमा और तारोंके साथ सम्पूर्ण ज्योतिर्मण्डल, जल, तेज, पवन, विषद् (प्राणियोंके चलने-फिरनेका आकाश), वैकारिक अहङ्कारके कार्य देवता, मन-इन्द्रिय, पञ्चतन्मात्राएँ और तीनों गुण श्रीकृष्णके मुखमें दीख पड़े ॥ ३७-३८ ॥ परीक्षित् । जीव, काळ, सभाव, कर्म उनकी वासना और शरीर आदिके द्वारा विविध रूपोंमें दीखनेवाला यह सारा विविध ससार, सम्पूर्ण ब्रज और अपने-आपको भी यशोदाजीने श्रीकृष्णके नन्हे-से खुले हुए मुखमें देखा। वे बड़ी शङ्कामें पड़ गयीं ॥ ३९ ॥ वे सोचने लगीं कि ‘यह कोई खन है या भगवान्की माया ? कहीं मेरी बुद्धिमें ही तो कोई भ्रम नहीं हो गया है ? सम्भव है, मेरे इस बाळकने ही कोई जन्मजात योगसिद्धि हो’ ॥ ४० ॥ ‘जो विद्य, मन, कर्म और बाणीके द्वारा ठीक-ठीक तथा सुगमतासे अनुमानके विषय नहीं होते, यह सारा विश्व जिनके आविष्ट है, जो इसके प्रेरक हैं और जिनकी सत्तासे ही इसकी प्रतीति होती है, जिनका स्रष्टा सर्वथा अचिन्त्य है—उन प्रभुको मैं

प्रणाम करती हूँ ॥ ४१ ॥ यह मैं हूँ और ये मेरे पति तथा यह मेरा लड़का है, साथ ही मैं ब्रजराजकी समस्त सम्पत्तियोंकी स्वामिनी धर्मपत्नी हूँ; ये गोपियों, गोप और गोवन मेरे अधीन हैं—जिनकी मायासे मुझे इस प्रकारकी कुमति घेरे हुए है, वे भगवान् ही मेरे एकमात्र आश्रय हैं—मैं उन्हींकी शरणमें हूँ ॥ ४२ ॥ जब इस प्रकार यशोदा माता श्रीकृष्णका तत्त्व समझ गयी, तब सर्वशक्तिमान् सर्वव्यापक प्रभुने अपनी पुत्रत्वेहमयी वैष्णवी योगमायाका उनके हृदयमें संचार कर दिया ॥ ४३ ॥ यशोदाजीको तुरंत वह घटना भूल गयी। उन्होंने अपने डूबने बाळको गोदमें उठा लिया। जैसे पहले उनके हृदयमें प्रेमका समुद्र उमड़ता रहता था, वैसे ही फिर उमड़ने लगा ॥ ४४ ॥ सारे वेद, उपनिषद्, साङ्ख्य, योग और भक्तजन जिनके माहात्म्यका गीत गाते-गाते अघाते नहीं—उन्हीं भगवान्को यशोदाजी अपना पुत्र मानती थीं ॥ ४५ ॥

राजा परीक्षितने पूछा—भगवान् ! नन्दबाबाने ऐसा कौन-सा बहुत बड़ा मङ्गलमय साधन किया था ? और परमभाग्यवती यशोदाजीने भी ऐसी कौन-सी तपस्या की थी, जिसके कारण स्वयं भगवान्ने अपने श्रीमुखसे उनका स्तन-पान किया ॥ ४६ ॥ भगवान् श्रीकृष्णकी वे बाळ-खिलाएँ, जो वे अपने ऐश्वर्य और महत्ता आदिको छिपाकर भालबाळोंमें करते हैं, इतनी पवित्र हैं कि उनका ध्वज-स्तीर्तन करनेवाले छो-गोंके भी सारे पाप-ताप शान्त हो जाते हैं। त्रिकाण्डदर्शा ज्ञानी पुरुष आज भी उनका पान करते रहते हैं। वे ही खीलाएँ उनके जन्मदाता आत्मा-पिता देवकी-वसुदेवजीको तो देखनेतकको न मिलीं और नन्द-यशोदा उनका अपार सुख छट रहे हैं। इसका क्या कारण है ? ॥ ४७ ॥

अतिशुक्लेश्वरजीने कहा—परीक्षित् । नन्दबाबा पूर्व-जन्ममें एक श्रेष्ठ वसु थे। उनका नाम था द्रोण और उनकी पत्नीका नाम था धरा। उन्होंने ब्रह्मजीके आदेशों-का पाळन करनेकी इच्छासे उनसे कहा—॥ ४८ ॥

* १-मा ! मिट्टी खानेके सम्बन्धमें वे मुझ अकेलेका ही नाम ले रहे हैं। मैंने खायी; वो सबने खायी; देख लो मेरे मुखमें सम्पूर्ण विश्व !

२-श्रीकृष्णने विचार किया कि उध दिन मेरे मुखमें विश्व देखकर मातने अपने नेत्र बंद कर लिये थे। आज भी जब मैं अपना मुँह खोलूँगा, तब यह अपने नेत्र बंद कर केगी। इस विचारसे मुझ खोल दिया।

‘मगवान् ! जब हम पृथ्वीपर जन्म लें, तब जगदीश्वर भगवान् श्रीकृष्णमें हमारी अनन्य प्रेममयी भक्ति हो— जिस भक्तिके द्वारा संसारमें लोग अनायास ही दुर्गतिवशसे पार कर जाते हैं’ ॥४९॥ ब्रह्माजीने कहा—‘ऐसा ही होगा !’ वे ही परमेश्वरी भगवन्मय द्रोण ब्रजमें पैदा हुए और उनका नाम हुआ नन्द । और वे ही बरा इस जन्ममें यशोदाके नामसे उनकी पत्नी हुई ॥ ५० ॥

परीक्षित ! अब इस जन्ममें जन्म-मृत्युके चक्रसे छुड़ाने-वाले भगवान् उनके पुत्र हुए और समस्त गोप-गोपियोंकी अपेक्षा इन पति-युक्ती नन्द और यशोदाजीका उनके प्रति अत्यन्त प्रेम हुआ ॥ ५१ ॥ ब्रह्माजीकी बात सत्य करनेके लिये भगवान् श्रीकृष्ण वत्सराजकी साथ ब्रजमें रहकर समस्त ब्रजवासियोंको अपनी बाल-स्त्रीछासे आनन्दित करने लगे ॥ ५२ ॥

नवौ अध्याय

श्रीकृष्णका ऊखलसे बाँधा जाना

श्रीकृष्णकेवजी कहते हैं—परीक्षित ! एक समय-की बात है, नन्दराजी यशोदाजीने बरकी दासियोंको तो दूसरे कामोंमें लगा दिया और स्वयं (अपने ऊखको मक्खन खिलानेके लिये) दही मयने लगीं * ॥ १ ॥ मैंने तुमसे अबतक भगवान्की विन-विन बाल-स्त्रीछाओंका वर्णन किया है, दधिमन्थनके समय वे उन सभका स्मरण करतीं और गाती भी जाती थीं † ॥ २ ॥ वे अपने स्थूल कटिभागमें सूतसे बाँधकर रेशमी लहंगा

पहने हुए थीं । उनके स्तनोंमेंसे पुत्रस्नेहकी अधिकतासे दूध चूता जा रहा था और वे कौप भी रहे थे । नेती खींचते रहनेसे बोंहें कुछ एक गयी थीं । हाथोंके कंगन और कानोंके कर्णमूल हिल रहे थे । मुँहपर पसीनेकी बूँदें बलक रही थीं । चोटीमें गुंथे हुए माछीके सुन्दर पुष्प गिरते जा रहे थे । सुन्दर मौहोंवाली यशोदा इस प्रकार दही मय रही थी ‡ ॥ ३ ॥

उसी समय भगवान् श्रीकृष्ण स्नान पीनेके लिये दही

* इस प्रसङ्गमें ‘एक समय’का तात्पर्य है कालिक मास । पुराणोंमें इसे ‘दामोदरमास’ कहते हैं । इन्द्र-भागके अवतरण दासियोंका दूसरे कामोंमें लगा जाना स्वाभाविक है । ‘नियुक्तायुः’—इस पदसे ध्वनित होता है कि यशोदा मावनि जान-बूझकर दासियोंको दूसरे काममें लगा दिया । ‘यशोदा’—नाम उल्लेख करनेका अभिप्राय यह है कि अग्नि विष्णुब्रह्मास्तत्त्वप्रेमके व्यवहारसे प्रबैश्वर्यवाली भगवान्को भी प्रेमधीनता; भक्तवन्धताके कारण अपने भक्तोंके हाथों बँध जानेका ‘यश’ यही देती है । गोपराज नन्दके वात्सल्य-प्रेमके आकर्षणसे सच्चिदानन्द-परमानन्दस्वरूप श्रीभगवान् नन्दनन्दनरूपसे कदात्तमें अवतीर्ण होकर जगत्के लोगोंको आनन्द प्रदान करते हैं । जगत्को इस अप्राकृत परमानन्दका रसास्वादन करनेमें नन्दवाता ही कारण हैं । उन नन्दकी पहिणी होनेसे इन्हे ‘नन्दगेहिनी’ कहा गया है । साथ ही ‘नन्दगेहिनी’ और ‘स्वयं’—ये दो पद इस बातके सूचक हैं कि दधिमन्थनकर्म उनके योग्य नहीं है । फिर भी पुत्र-स्नेहकी अधिकतासे यह सोचकर कि मेरे आँखोंके मेरे हाथका माछन ही याता है, वे स्वयं ही दधि मय रही हैं ।

† इस श्लोकमें भक्तके स्वरूपका निरूपण है । शरीरसे दधिमन्थनरूप सेवाकर्म हो रहा है, हृदयमें स्मरणकी घारा सतत प्रवाहित हो रही है; वाणीमें बाल-चरित्रका संगीत । भक्तके वनः मनः वचन—सब अपने प्यारकी सेवामें संलग्न हैं; स्नेह अमूर्त पदार्थ है; यह सेवाके रूपमें ही व्यक्त होता है । स्नेहके ही विमलविशेष हैं—नृत्य और संगीत । यशोदा मैयाके जीवनमें इस समय राग और मोग दोनों ही प्रकट हैं ।

‡ कर्ममें रेशमी लहंगा ओरिये कसकर बँधा हुआ है अर्थात् जीवनमें आलस, प्रमाद, असावधानी नहीं है । सेवा-कर्ममें पूरी तत्परता है । रेशमी लहंगा इसीलिये पहने है कि किसी प्रकारकी अविवशता यह गयी तो मेरे कनैदाको कुछ हो जायगा ।

माताके हृदयका रस-स्नेह—दूध स्तनके मुँह आ गया है, चुचुआ रहा है । बाहर झोंक रहा है । स्वामिमुन्दर आवें, उनकी दृष्टि पहले मुझपर पड़े और वे पहले भूखन न साकर मुझे ही पीवें—यही उसकी आत्मा है ।

स्तनके काँपनेका अर्थ यह है कि उसे डर भी है कि कहीं मुझे नहीं पिया तो ।

मथती हुई अपनी माताके पास आये। उन्होंने अपनी माताके हृदयमें प्रेम और आनन्दको और भी बढ़ाते हुए दहीकी मयानी पकाई ली तथा उन्हें मथनेसे रोक दिया। ॥४॥ श्रीकृष्ण माता यशोदाकी गोदमें चढ़ गये। वास्तव्य-स्नेहकी अधिकतासे उनके स्तनोंसे दूध तो स्वयं झर ही रहा था। वे उन्हें पिछाने लगीं और मन्द-मन्द मुसकानसे युक्त उनका मुख देखने लगीं। इतनेमें ही दूसरी ओर आँगोठीपर रक्खे हुए दूधमें उफान आया। उसे देखकर यशोदाजी

उन्हें अतृप्त ही छोड़कर जल्दीसे दूध उतारनेके लिये चली गयीं † ॥ ५ ॥ इससे श्रीकृष्णकी कुछ क्रोध आ गया। उनके लल-लल होठ फड़कने लगे। उन्हें दाँतोसे दबाकर श्रीकृष्णने पास ही पड़े हुए लोहेसे दहीका मटक परोड़-परोड़ ढाका, बनावटी आँसू आँखोंमें भर लिये और दूसरे घरमें जाकर अकेलेमें बासी माखन खाने लगे। ॥ ६ ॥

कृष्ण और कुण्डल नाच-नाचकर मैयाको बर्षाई दे रहे हैं। यशोदा मैयाके हाथोंके कृष्ण इतलिये शकार-ध्वनि कर रहे हैं कि वे आज उन हाथोंमें रहकर धन्य हो रहे हैं कि जो हाथ भगवान्की सेवामें लगे हैं। और कुण्डल यशोदा मैयाके मुखसे लीला-गान सुनकर परमानन्दसे हिलते हुए कानोंकी चफ़काकी सूचना दे रहे हैं। हाथ वही धन्य हैं, जो भगवान्की सेवा करें और काल वे धन्य हैं, जिनमें भगवान्के लीला-गुण-गानकी सुषाधारा प्रवेश करती रहे। मुँहपर स्नेह और माखनीके पुष्पोंके नीचे गिरनेका ध्यान माताको नहीं है। वह शृंगार और खरीर भूल चुकी हैं। अथवा माखनीके पुष्प स्वयं ही चोटियोंसे झूटकर चरणोंमें गिर रहे हैं कि ऐसी वास्तव्यमयी भाँके चरणोंमें ही रहना योग्य है; हम सिरपर रहनेके अधिकारी नहीं।

● हृदयमें लीलाकी सुखस्मृति; हाथोंके दधिमन्थन और मुखसे लीलागान—इस प्रकार मन; तन; बचन तीनोंका श्रीकृष्णके साथ एकतामय संयोग होते ही श्रीकृष्ण जनकर 'मा-मा' पुकारने लगे। अवशक भगवान् श्रीकृष्ण लोभे हुए-से थे। माकी स्नेह-साधनाने उन्हें जगा दिया। वे निर्गुणसे सगुण हुए; अचकले चक हुए; निष्कामसे सकाम हुए; स्नेहके भूले-स्थाने भाँके पास आये। क्या ही सुन्दर नाम है—'स्तन्यकाम' ! मन्थन करते समय आये, पैदी-ठाकीं पास नहीं।

सर्वत्र भगवान् साधनकी प्रेरणा देते हैं; अपनी ओर आकृष्ट करते हैं; परन्तु मयानी पकड़कर मैयाको रोक लिया। 'मा ! अथ तेरी साधना पूर्ण हो गयी। पिङ्ग-पेषण करनेसे क्या लाभ ! अब मैं तेरी साधनाका इच्छे अधिक भार नहीं सह सकता।' मा प्रेमसे दब गयी—निहाल हो गयी—मेरा लाल भुसे इतना चाहता है।

† मैया मना करती रही—'नेत्र-सा माखन तो निकाल लेने दे।' 'जै-जै-जै-जै ! मैं तो दूध पीऊँगा'—दोनों हाथोंसे मैयाकी कमर पकड़कर एक पोंच मुटनेपर रक्खा और गोदमें चढ़ गये। स्तनका दूध बरत पड़ा। मैया दूध पिछाने लगी; लाला धुनकाने लगे; आँखें मुसकानपर लम गयीं। 'गूँछती' पदका यह अभिप्राय है कि जब लाला मुँह उठाकर देखेगा और मेरी आँखें उसपर लगी मिलेंगी; तब उसे यही सुख होगा।

सामने पद्मगन्धा गायका दूध गरम हो रहा था। उसने बोला—'स्नेहमयी मा यशोदाका दूध कभी कम न होगा; इषामसुन्दरकी व्यास कभी झुसेगी नहीं। उनमें परस्पर होठ लगी है। मैं बैचार युग-युगाका; जन्म-जन्मका इषामसुन्दरके होठोंका स्पर्श करनेके लिये व्याकुल तप-तपकर भर रहा हूँ। अब इस जीवनसे क्या लाभ जो श्रीकृष्णके काम न आये। इससे अच्छा है उनकी आँखोंके सामने आगमें कूद पड़ना।' भाँके नेत्र पटुँच गये। दबाई भाँके श्रीकृष्णका भी ध्यान न रहा; उन्हें एक ओर ढाँककर दौड़ पड़ी। मक भगवान्को एक ओर रक्कर गयीं बुझियोंकी रखा करते हैं। भगवान् अतृप्त ही रह गये। क्या भक्तोंके हृदय-रक्खे; स्नेहसे उन्हें कभी तृप्ति हो सकती है ? उन्नी दिनसे उनका एक नाम हुआ—'अतृप्त'।

‡ श्रीकृष्णके होठ फड़के। श्रेष्ठ होठोंका स्पर्श पाकर कुतार्थ हो गया। लल-लल होठ स्नेह-स्नेह दूधकी दंतुलियोंसे दबा दिये गये; मानो सत्त्वगुण रजोगुणपर शासन कर रहा हो; ब्राह्मण क्षत्रियको पिछा दे रहा हो। वह क्रोध उत्तरा दधिमन्थनके मटकेपर। उसमें एक अक्षुर आ बैठा था। दग्धने कहा—काय, क्रोध और अतृप्तिके बाद मेरी वारी है। वह आँव बनकर आँखोंमें छलक आया। श्रीकृष्ण अपने मकबज़ोंके प्रति अपनी ममताकी धारा उबेलनेके लिये क्या-क्या भाव नहीं अपनाते ! वे काय, क्रोध, जोग और दग्ध भी आज ब्रह्म-सत्यार्थ प्राप्त करनेके धन्य हो गये। श्रीकृष्ण वरमें घुसकर बासी माखन गटकने लगे मानो माको दिखा रहे हों कि मैं कितना भूखा हूँ।

प्रेमी भक्तोंके 'पुरुषार्थ' भगवान् नहीं हैं; भगवान्की सेवा है। वे भगवान्की सेवाने लिये भगवान्का भी त्याग

यशोदाजी औंटे हुए दूधको उतारकर* फिर मथनेके घरमें चली आयी। वहाँ देखती हैं तो दहीका मटका (कमोरा) टुकड़े-टुकड़े हो गया है। वे समझ गयीं कि यह सब मेरे छायाकी ही कारखाना है। साथ ही उन्हें वहाँ न देखकर यशोदा माता हैंसने लगीं ॥ ७ ॥ इधर-उधर हैंदनेपर पता चला कि श्रीकृष्ण एक उल्टे हुए ऊखलपर खड़े हैं और झींकेपरका माखन ले-लेकर बंदरोंको खूब छुटा रहे हैं। उन्हें यह भी डर है कि कहीं मेरी चोरी खुल न जाय, इसलिये चौकन्ने होकर चारों ओर ताकते जाते हैं। यह देखकर यशोदा रानी पीछेसे धीरे-धीरे उनके पास जा पहुँचीं † ॥ ८ ॥ जब श्रीकृष्णने देखा कि मेरी मा हाथमें छड़ी लिये मेरी ही ओर आ रही है, तब शरसे ओखलीपरसे कूद पड़े और डरे हुएकी भोंति भागे। परीक्षित! बड़े-बड़े योगी तपस्याके द्वारा अपने मनको अत्यन्त सूक्ष्म और सुबुद्ध बनाकर भी जिनमें प्रवेश नहीं करा पाते, पानेकी बात

तो दूर रही, उन्हें भगवान्‌के पीछे-पीछे उन्हें पकड़नेके लिये यशोदाजी दौड़ीं ॥ ९ ॥ जब इस प्रकार माता यशोदा श्रीकृष्णके पीछे दौड़ने लगीं, तब कुछ ही देमें बड़े-बड़े एवं हिलते हुए नितम्बोंके कारण उनकी चाल धीमी पड़ गयी। वेगसे दौड़नेके कारण चौड़ीकी गोंठ ढीली पड़ गयी। वे ज्यों-ज्यों आगे बढ़तीं, पीछे-पीछे चौड़ीमें गुँथे हुए झूल गिरते जाते। इस प्रकार सुन्दरी यशोदा ज्यों-ज्यों करके उन्हें पकड़ सकीं ‡ ॥ १० ॥ श्रीकृष्णका हाथ पकड़कर वे उन्हें डराने-भयकाने लगीं। उस समय श्रीकृष्णकी ओंकी कर्षी निष्कृषण हो रही थी। अपराध तो किया ही था, इसलिये रुलाई रोकनेपर भी न रुकती थी। हाथोंसे ओंलें मल रहे थे, इसलिये मुँह-पर काबलकी स्थाही फैल गयी थी। पिटनेके भयसे ओंलें ऊपरकी ओर उठ गयी थीं, उनसे व्याकुलता सूचित होती थी × ॥ ११ ॥ जब यशोदाजीने देखा कि लल्ला बड़बुल डर गया है, तब उनके हृदयमें वात्सल्य-

कर सकते हैं। मैयाके अपने हाथोंं दुहा हुआ वह पद्मगन्धा गायोंका दूध श्रीकृष्णके लिये ही गरम हो रहा था। योही देखके बाध ही उनको पिछाना था। दूध उफान आया तो मेरे खाल भूले रह्ये—रोयेंगे, इसीलिये माताने उन्हें नीचे उतारकर दूधको हैंमाछा।

* यशोदा माता दूधके पास पहुँचीं। प्रेमका अद्भुत हस्स। पुत्रको गोदले उतारकर उसके पेयके प्रति इतनी प्रीति क्यों। अपनी छातीका दूध तो अपना है। वह कहीं जासा नहीं है। परन्तु वह सखीों छटी हुई गायोंके दूधसे पालित पद्मगन्धा गायका दूध फिर कहाँ मिलेगा। बुन्दावनका दूध-अप्राकृत, चिन्मय, प्रेमजगत्का दूध—माको आते देखकर धर्मसे दब गया। 'अहो! आगमें कूदनेका लक्ष्मण करके मैंने माके स्नेहानन्दमें कितना बड़ा विश्र डाला! और मा अपना आनन्द छोड़कर मेरी रक्षाके लिये दौड़ी आ रही है। मुझे बिचार है।' दूधका उफानना बंद हो गया और वह लक्ष्मण अपने खानपर बैठ गया।

† भ्मा! तुम अपनी गोदमें नहीं बैठायोगी तो मैं किसी खालकी गोदमें जा बैदूंगा—यही सोचकर मानो श्रीकृष्ण उल्टे ऊखलके ऊपर जा बैठे। उदार पुरुष भले ही खालोंकी सगलिये जा बैठे, परन्तु उसका शील-स्वभाव बदलता नहीं है। ऊखलपर बैठकर भी वे बन्दरोंको माखन बँटने लगे। सम्भव है रामायतारके प्रति जो कृतज्ञताका भाव उदय हुआ था, उसके कारण अथवा अमी-अमी क्रोध आ गया था। उसका प्रायश्चित्त करनेके लिये।

‡ श्रीकृष्णके नेत्र हैं 'वीर्यविशुद्धि' ध्यान करने योग्य। बैठे तो उनके ललित, कलित, ललित, बलित, चकित आदि अनेकों प्रकारके ध्येय नेत्र हैं, परन्तु ये प्रेमी जनोके हृदयमें गहरी चोट करते हैं।

‡ मीत होकर मागतें हुए भगवान् हैं। अपूर्व शॉकी है। ऐश्वर्यको तो मानो मैयाके वात्सल्य प्रेमपर ल्प्रीलावर करके ब्रजके बाहर ही भँक दिया है। कोई असुर अल-खल लेकर आता तो बुद्धदर्शन चक्रका स्मरण करते। मैयाकी छड़ीका निवारण करनेके लिये कोई भी अल-खल नहीं। भगवान्‌की यह भवभीत भूति कितनी मधुर है। धन्य है इस भयको।

§ माता यशोदाके शरीर और शृंगार दोनों ही बिरोधी हो गये—तुम प्यारे कन्देसकी क्यों खदेड़ रही हो। परन्तु मैयाने पकड़कर ही छोड़ा।

× विश्वके इतिहासमें, भगवान्‌के सम्पूर्ण जीवनमें पहली बार स्वर्ग विश्वेश्वर भगवान्‌ माके सामने अपराधी बनकर खड़े हुए हैं। मानो अपराधी भी मैं ही हूँ—इस लक्ष्मण प्रत्यक्ष कण दिया। बायें हाथसे दोनों ओंलें, रगड़-रगड़कर



मैयासे डरे हुए भगवान्

स्नेह समझ आया । उन्होंने छड़ी पेंक दी । इसके बाद सोचा कि इसकी एक बार रस्सीसे बाँध देना चाहिये (नहीं तो यह कहीं भाग जायगा) । परीक्षित । सच पूछो तो यशोदा मैयाको अपने बाळकके ऐश्वर्यका पता न था ॥ १२ ॥ जिसमें न बाहर है न भीतर, न आदि है और न अन्त; जो जगत्के पहले भी थे, बादमें भी रहेंगे; इस जगत्के भीतर तो हैं ही, बाहरी रूपमें भी हैं; और तो क्या, जगत्के रूपमें भी स्वयं वही हैं; †

यही नहीं, जो समस्त इन्द्रियोंसे परे और अव्यक्त हैं—उन्हीं भगवान्को मनुष्यका-सा रूप धारण करनेके कारण पुत्र समझकर यशोदाएानी रस्सीसे ऊखलमें ठीक वैसे ही बाँध देती हैं, जैसे कोई साधारण सा बाळका हो ॥ १३-१४ ॥ जब माता यशोदा अपने ऊपरी और नटखट लड़केको रस्सीसे बाँधने लगी, तब वह दो अंगुल छोटी पड़ गयी । तब

मानो उनसे कहलाना चाहते हों कि ये किसी कर्मके फल नहीं हैं । ऊपर इसलिये देखा रहे हैं कि जब माता ही पीटनेके लिये तैयार है; तब मेरी सहायता और कौन कर सकता है । नेत्र भयसे विह्वल हो रहे हैं; ये भले ही कह दें कि मैंने नहीं किया; हम कैसे कहें । फिर तो जीज ही बंद हो जायगी ।

माने बोंदा—अरे, अघान्तप्रकृते । वानरवन्धो । मन्थनीस्फोटक । अत्र तुझे मन्थन कहाँसे मिलेगा ? आज मैं तुझे ऐसा बाँधूँगी; ऐसा बाँधूँगी कि न तो दू ग्वालवालोंके साथ खेल ही सकेगा और न आसन-चोरी आदि ऊषम ही मचा सकेगा ।

॥ अरी मैया । मोहि मत मार । † माताने कहा—यदि तुझे पीटनेका इतना डर था तो मटका क्यों फोड़ा । † श्रीकृष्ण—अरी मैया । मैं अब ऐसा कमी नहीं करूँगा । तू अपने हाथसे छड़ी डाल दे । †

श्रीकृष्णका मोलापन देखकर मैयाका हृदय भर आया; वात्सल्य-स्नेहके समुद्रमें डूबा आ गया । वे सोचने लगीं—लाजा अल्पमत डर गया है । कहीं छोड़नेपर वह भागकर जनमें चला गया तो कहीं-कहीं भटकता फिरेगा; भूला-भ्रमावा रहेगा । इसलिये योद्धा देवतक बाँधकर रख दें । वृष-आसन तैयार होनेपर मना खेंगी । यही सोच-विचारकर माताने बाँधनेका निश्चय किया । बाँधनेमें वात्सल्य ही हेतु था ।

भगवान्के ऐश्वर्यका अज्ञान दो प्रकारका होता है; एक तो साधारण प्राकृत जीवोंकी और दूसरा भगवान्के नित्य-सिद्ध प्रेमी परिकरको । यशोदा मैया आदि भगवान्की स्वरूपभूता चिन्मयी लीलाके अप्राकृत नित्य-सिद्ध परिकर हैं । भगवान्के प्रति वात्सल्यभाव; शिशु-प्रेमकी गाढ़ताके कारण ही उनका ऐश्वर्य-ज्ञान अभिवृत्त हो जाता है । अन्यथा उनमें अज्ञानकी संभावना ही नहीं है । इनकी स्थिति दुरीभावसा अथवा समाधिका भी अतिक्रमण करके सहज प्रेममें रहती है । वहाँ प्राकृत अज्ञान; मोह, रजोगुण और तमोगुणकी तो बात ही क्या; प्राकृत स्वप्नकी भी गति नहीं है । इसलिये इनका अज्ञान भी भगवान्की लीलाकी सिद्धिके लिये उनकी लीलाव्यक्तिका ही एक चमत्कारविशेष है ।

समीपक हृदयमें जबता रहती है, जबतक चेतनका स्वरूप नहीं होता । श्रीकृष्णके हाथमें आ जानेपर यशोदा माताने बाँधकी छड़ी पेंक दी—वह सर्वथा स्वाभाविक है ।

मेरी दुस्तिका प्रयत्न छोड़कर छोटी मोटी वस्तुपर दृष्टि डालना केवल अर्ध-व्यक्तिका ही हेतु नहीं है; तुझे भी बाँधोँसे ओझल कर देता है । परन्तु सब कुछ छोड़कर मेरे पीछे दौड़ना मेरी प्राप्तिका हेतु है । क्या मैयाके चरितसे इस बातकी शिक्षा नहीं मिलती ?

तुझे योगियोंकी भी बुद्धि नहीं पकड़ सकती, परन्तु जो सब ओरसे तुझे मोड़कर मेरी ओर दौड़ता है; मैं उसकी छुट्टीमें आ जाता हूँ । यही सोचकर भगवान् यशोदाके हाथों पकड़े गये ।

† इस श्लोकमें श्रीकृष्णकी ब्रह्मरूपता बतायी गयी है । उपनिषदोंमें जैसे ब्रह्मका वर्णन है—अपूर्वम् अनपरम् अचान्तरम् अबाह्यम् इत्यादि । वही बात यहाँ श्रीकृष्णके सम्बन्धमें है । वह सर्वाधिष्ठान, सर्वसाक्षी; सर्वातीत, सर्वान्तर्यामी; सर्वोपादान एवं सर्वरूप ब्रह्म ही यशोदा माताके प्रेमके वश बँधने ला रहा है । बन्धनरूप होनेके कारण उसमें किसी प्रकारकी अवज्ञाति या अनौचित्य भी नहीं है ।

‡ यह फिर कमी ऊसलपर जाकर न बैठे इसके लिये ऊखलसे बाँधना ही उचित है । क्योंकि खलका अधिक सज्ज होनेपर उससे मनमें उद्वेग हो जाता है ।

यह ऊखल भी चोर ही है; क्योंकि इसने कन्हैयाके चोरी करनेमें सहायता की है । दोनोंको बन्धनयोग्य देखकर ही यशोदा माताने दोनोंको बाँधनेका उद्योग किया ।

उन्होंने दूसरी रस्ती काकर उसमें जोड़ी ॥ १५ ॥ भगवान् श्रीकृष्णको न बाँध सकीं । उनकी असफलतापर जब वह भी छोटी हो गयी, तब उसके साथ देखनेवाली गोपियाँ मुसकराने लगीं और वे स्वयं भी और जोड़ीं । इस प्रकार वे ज्यों-ज्यों रस्ती मुसकराती हुई आश्चर्यचकित हो गयीं ॥ १७ ॥ अतीं और जोड़ती गयीं, ज्यों-ज्यों बुझनेपर भी वे सब भगवान् श्रीकृष्णने देखा कि मेरी भाका शरीर पक्षिनेसे दो-दो अंगुल छोटी पड़ती गयीं ॥ १६ ॥ यशोदा-छपप हो गया है, चोटीमें गुँथी हुई माछाएँ गिर गयी रानीने धरकी सारी रस्सियाँ जोड़ छाँकी, फिर भी वे हैं और वे बहुत थक भी गयी हैं; तब कृपा करके वे

* यशोदा माता ज्यों-ज्यों अपने स्नेह, समता आदि गुणों (सद्गुणों या रस्सियों) से श्रीकृष्णका पेट भरने लगीं, ज्यों-ज्यों अपनी नित्यमुक्तता, स्वतन्त्रता आदि सद्गुणोंसे भगवान् अपने स्वरूपको प्रकट करने लगे ।

† १. संस्कृत-साहित्यमें 'गुण' शब्दके अनेक अर्थ हैं—सद्गुण; सत्त्व आदि गुण और रस्ती । सत्त्व, रज आदि गुण भी अखिल ब्रह्माण्डनायक भिन्नोक्तनाय भगवान् स्वयं नहीं कर सकते । फिर यह छोटा-सा गुण (दो बिस्के की रस्ती) उन्हें कैसे बाँध सकता है । वही कारण है कि यशोदा माताकी रस्ती पूरी नहीं पड़ती थी ।

२. संसारके विषय इन्द्रियोंको ही बाँधनेमें समर्थ हैं—विपिण्णमिद इति विपया । ये हृदयमें स्थित अन्तर्गामी और वाह्यीको नहीं बाँध सकते । सब बोधन्यक, (इन्द्रियों या गायोंको बाँधनेवाली) रस्ती गोपति (इन्द्रियों या गायोंके हामी) को कैसे बाँध सकती है ?

३. वेदान्तके सिद्धान्तानुसार अन्धकारमें ही बन्धन होता है, अधिज्ञानमें नहीं । भगवान् श्रीकृष्णका उदर अनन्त-कोटि ब्रह्माण्डोंका अधिज्ञान है । उसमें मल बन्धन कैसे हो सकता है ?

४. भगवान् जिसको अपनी कृपाप्रसादपूर्ण दृष्टिसे देख लेते हैं, वही सर्वदाके लिये बन्धनसे मुक्त हो जाता है । यशोदा माता अपने हाथमें जो रस्ती उठातीं, उसीपर श्रीकृष्णकी दृष्टि पड़ जाती । वह स्वयं मुक्त हो जाती; फिर उसमें गाँठ कैसे लगती ?

५. कोई साधक यदि अपने गुणोंके द्वारा भगवान्को सिखाना चाहे तो नहीं सिखा सकता । मानो वही दूधित करनेके लिये कोई भी गुण (रस्ती) भगवान्के उदरको पूर्ण करनेमें समर्थ नहीं हुआ ।

‡ रस्ती दो अंगुल ही कम क्यों हुई ? इसपर कहते हैं—

१. भगवान्ने सोचा कि जब मैं शूद्रहृदय मत्तजनोंको दर्शन देता हूँ; तब मेरे साथ एकमात्र सत्त्वगुणसे ही सम्बन्धकी स्फूर्ति होती है, रज और तमसे नहीं । इसलिये उन्होंने रस्तीको दो अंगुल कम करके अपना भाव प्रकट किया ।

२. उन्होंने विचार किया कि जहाँ नाम और रूप होते हैं; वहाँ बन्धन भी होता है । मुझ परमात्मानमें बन्धनकी कल्पना कैसे ? जब कि ये दोनों ही नहीं । दो अंगुलकी कमीका वही रहस्य है ।

३. दो शूकोंका उद्धार करना है । वही किया सूचित करनेके लिये रस्ती दो अंगुल कम पड़ गयी ।

४. भगवत्कृपासे द्वैतानुगामी भी मुक्त हो जाता है और असह्य भी प्रेम्से बाँध जाता है । वही दोनों भाव सूचित करनेके लिये रस्ती दो अंगुल कम हो गयी ।

५. यशोदा माताने छोटी-बड़ी जनेकों रस्सियाँ अलग-अलग और एक साथ भी भगवान्की कमरमें लगायीं; परन्तु वे पूरी न पड़ीं, क्योंकि भगवान्में छोटे-नड़ेका कोई भेद नहीं है । रस्सियोंने कहा—भगवान्के समान अनन्तता, अनादिता और विमुक्ता हमलोगोंमें नहीं है । इसलिये इनको बाँधनेकी बात बंद करो । अपना जैसे नदियाँ समुद्रमें समा जाती हैं वैसे ही सारे गुण (सारी रस्सियाँ) अनन्तगुण भगवान्में लीन हो गये; अपना नाम रूप खो बैठे । ये ही दो भाव सूचित करनेके लिये रस्सियोंमें दो अंगुलकी न्यूनता हुई ।

§ वे मन-ही-मन सोचतीं—इसकी कमर मुझीपर की है; फिर भी लेकड़ों हाथ लंबी रस्तीसे यह नहीं बाँधता है । कमर तिलमात्र भी मोटी नहीं होती; रस्ती एक अंगुल भी छोटी नहीं होती; फिर भी वह बाँधता नहीं । कैसा आश्चर्य है । हर बार दो अंगुलकी ही कमी होती है; न तीक्ष्ण; न चारकी; न एककी । यह कैसा अलौकिक चमत्कार है ।

स्वयं ही अपनी माके बन्धनमें बँध गये ॥ १८ ॥ ग्वालिवी यशोदाने मुक्तिदाता मुकुन्दसे जो कुछ परीक्षित । भगवान् श्रीकृष्ण परम स्वतन्त्र हैं । ब्रह्मा, अनिर्वचनीय कृपाप्रसाद प्राप्त किया वह प्रसाद इन्द्र आदिके साथ यह सम्पूर्ण जगत् उनके वशमें है । ब्रह्मा पुत्र होनेपर भी, शङ्कर आत्मा होनेपर भी और फिर भी इस प्रकार बंधकर उन्होंने संसारको यह बात क्लेशखलपर विराजमान लक्ष्मी अर्धाङ्गिनी होनेपर दिखवा दी कि मैं अपने प्रेमी भक्तोंके वशमें हूँ ॥ १९ ॥ भी न पा सके, न पा सके ॥ २० ॥ यह

* १. भगवान् श्रीकृष्णने सोचा कि जब माके हृदयसे दैत-भाचना दूर नहीं हो रही है, तब मैं व्यर्थ अपनी अवज्ञाता क्यों प्रकट करूँ । जो मुझे वह समझता है उसके लिये बह होना ही उचित है । इसलिये वे बँध गये ।

२. मैं अपने भक्तके छोटे-से गुणको भी पूर्ण कर देता हूँ—यह सोचकर भगवान्ने यशोदा माताके गुण (रस्ती) को अपने बाँधने योग्य बना लिया ।

३. यद्यपि मुझमें अनन्त, अचिन्त्य कल्याण-गुण निवास करते हैं, तथापि तबतक वे अचूरे ही रहते हैं, जबतक मेरे भक्त अपने गुणोंकी सुहर उपनयन नहीं लगा देते । वही सोचकर यशोदा मैयाके गुणों (वात्सल्य, स्नेह आदि और रज्जु) से अपनेको पूर्णोदर-दामोदर-बना लिया ।

४. भगवान् श्रीकृष्ण इतने कोमलहृदय हैं कि अपने भक्तके प्रेमको पुष्ट करनेवाला परिभ्रम भी सहन नहीं करते हैं । वे अपने भक्तको परिभ्रमसे मुक्त करनेके लिये स्वयं ही बन्धन स्वीकार कर लेते हैं ।

५. भगवान्ने अपने मन्त्रभागे बन्धन स्वीकार करके यह सूचित किया कि मुझमें तत्त्वदृष्टि बन्धन है ही नहीं। क्योंकि जो वस्तु आगे-पीछे, ऊपर-नीचे नहीं होती, केवल बीचमें मासती है, वह झट्टी होती है । इसी प्रकार वह बन्धन भी झट्टा है ।

६. भगवान् किसीकी शक्ति, साधन या सामग्रीसे नहीं बँधते । यशोदाजीके हाथों धामखुन्दरको न बँधते देखकर पास-पड़ोसकी ग्वालिनें हकट्टी हो गयीं और कहने लगीं—यशोदाजी ! आसानी कमर तो झुट्टीमरकी ही है और जोड़ी-सी किङ्किणी इसमें बन्-छन कर रही है । अब वह इतनी रस्खोरीसे नहीं बँधता तो जान पड़ता है कि विधाताने इसके ललाटमें बन्धन लिखा ही नहीं है । इसलिये अब तुम यह उद्योग छोड़ दो ।

यशोदा मैयाने कहा—चाहे लम्बा हो जाय और बाँधमरकी रस्ती क्यों न हकट्टी करनी पड़े, पर मैं तो इसे बाँधकर ही छोड़ूंगी । यशोदाजीका यह हठ देखकर भगवान्ने अपना हठ छोड़ दिया। क्योंकि जहाँ भगवान् और भक्तके हठमें विरोध होता है, वहाँ भक्तका ही हठ पूरा होता है । भगवान् बँधते हैं तब, जब भक्तकी यकान देखकर कृपापरवश हो जाते हैं । भक्तके भ्रम और भगवान्की झगड़ी कमी ही दो अंगुलकी कमी है । अथवा जब भक्त अहंकार करता है कि मैं भगवान्की बाँध लूँगा, तब वह उनसे एक अंगुल दूर पड़ जाता है और भक्तकी नकल करनेवाले भगवान् भी एक अंगुल दूर हो जाते हैं । जब यशोदा माता यह गर्व, उनका शरीर पतौनेसे लज्जित हो गया, तब भगवान्की सर्व-शक्तिचक्रवर्तिनी परम मासती भगवती कृपा-शक्तिने भगवान्के हृदयको आसनके समान द्रवित कर दिया और स्वयं प्रकट होकर उसने भगवान्की उत्प-संकल्पिता और विसृताके अन्तर्हित कर दिया । इसीसे भगवान् बँध गये ।

† यद्यपि भगवान् स्वयं परमेस्वर है, तथापि प्रेम-परवश होकर बँध जाना परम चमत्कारकारी होनेके कारण भगवान्का भूषण ही है, दूषण नहीं ।

आत्माराम होनेपर भी मूल जाना, पूर्णकाम होनेपर भी अतृप्त रहना, कुछ उत्पत्तरूप होनेपर भी क्रोध करना, सारस्वत-स्वमीसे युक्त होनेपर भी ज़ोरी करना, महाबल भव आदिके भव देनेवाले होनेपर भी बरना और भागना, मनसे भी तीव्र यतिवाले होनेपर भी माताके हाथों पकड़ा जाना, आनन्दमय होनेपर भी दुखी होना, पैना, सर्वव्यापक होनेपर भी बँध जाना—यह सब भगवान्की स्वाभाविक भक्तवत्स्यता है । जो लोग भगवान्को नहीं जानते हैं, उनके लिये तो इसका कुछ उपयोग नहीं है, परन्तु जो श्रीकृष्णको भगवान्के रूपमें पहचानते हैं, उनके लिये यह अत्यन्त चमत्कारकी वस्तु है और यह देखकर—जानकर उनका हृदय द्रवित हो जाता है, अधिकप्रेमसे सपुन्य हो जाता है । अहो ! विश्वेश्वर प्रभु अपने भक्तके हाथों उसलक्षमें बँधे हुए हैं ।

‡ इस वजोकमें सीनी नकारात्मक अन्वय ध्येयिने कियाके साथ करना चाहिये । न पा सके, न पा सके, न पा सके ।

गोपिकानन्दन भगवान् अनन्यप्रेमी भक्तोंके लिये जितने सुख हैं, उतने देहामिमानी कर्मकाण्डी एवं तपसियोंको तथा धापने स्वरूपभूत ज्ञानियोंके लिये भी नहीं हैं* ॥ २१ ॥

इसके बाद नन्दरानी यशोदाजी तो बरके काम-धंधोंमें वृद्धन गयीं और ऊखलमें बैठे हुए भगवान् स्वामिसुन्दरने

उन दोनों अर्जुन-वृद्धोंको मुक्ति देनेकी सोची, जो पहले यक्षराज कुन्तेके पुत्र थे ॥ २२ ॥ इनके नाम थे नलकूबर और मणिप्रीव । इनके पास धन, सौन्दर्य और ऐश्वर्यकी पूर्णता थी । इनका घमंड देखकर ही देवर्षि नारदजीने इन्हें शाप दे दिया था और ये वृद्ध हो गये थे ॥ २३ ॥

दसवीं अध्याय

यमलार्जुनका वन्दन

राजा परीक्षितने पूछा—भगवन् ! आप कृपया यह बतलाइये कि नलकूबर और मणिप्रीवको शाप क्यों मिला । उन्होंने ऐसा कौन-सा निन्दित कर्म किया था, जिसके कारण परम शान्त देवर्षि नारदजीको भी क्रोध आ गया ? ॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजीने कहा—परीक्षित ! नलकूबर और मणिप्रीव—ये दोनों एक तो वनारण्यह कुन्तेके ऊखले छबके थे और दूसरे इनकी गिनती हो गयी कृष्णभगवान्के अनुचरोंमें । इससे उनका घमंड बढ़ गया । एक दिन वे दोनों मन्दाकिनीके तटपर कैलासके रमणीय उपवनमें बाण्णी मदिरा पीकर मदोन्मत्त हो गये थे । नयेके कारण उनकी आँखें धूम रही थीं । बहुत-सी स्त्रियों उनके साथ गा-झंजा रही थी और वे पुण्योसे छदे हुए कनमें उनके साथ विहार कर रहे थे ॥ २-३ ॥ उस समय गङ्गाजीमें पोंत-के-

पोंत कमल खिले हुए थे । वे स्त्रियोंके साथ जलके भीतर घुस गये और जैसे हाथियोंका जोड़ा हथिनियोंके साथ जलम्रीडा कर रहा हो, वैसे ही वे उन युवतियोंके साथ तरह-तरहकी क्रीडा करने लगे ॥ ४ ॥ परीक्षित ! संयोग-का उबरसे परम समर्थ देवर्षि नारदजी आ निकले । उन्होंने उन यक्ष युवकोंको देखा और समझ लिया कि ये इस समय मतवाले हो रहे हैं ॥ ५ ॥ देवर्षि नारदको देखकर बलहीन अप्सराएँ खजा गयीं । शापके डरसे उन्होंने तो अपने-अपने कपड़े झटपट पहन लिये, परन्तु इन यक्षोंने कपड़े नहीं पहने ॥ ६ ॥ जब देवर्षि नारदजीने देखा कि ये देवताओंके पुत्र होकर श्रीमदसे अंधे और मदिरापान करके उन्मत्त हो रहे हैं, तब उन्होंने उनपर अनुग्रह करनेके लिये शाप देते हुए यह कहा— ॥ ७ ॥

* शानी पुत्र भी भक्ति करें तो उन्हें इन सगुण भगवान्की प्राप्ति हो सकती है, परन्तु बड़ी कठिनाई है । ऊखलमें वे भगवान् सगुण हैं । वे निर्गुण प्रेमीको कैसे मिलेंगे !

† स्वयं बँचकर भी अन्धनमें पड़े हुए यक्षोंकी भुक्तिकी चिन्ता करना, सत्यवचके सर्वथा योग्य है ।

जब यशोदा माताकी दृष्टि श्रीकृष्णसे हटकर दूसरेपर पड़ती है, तब वे भी किसी दूसरेको देखने लगते हैं और देण ऊधम मचाते हैं कि सबकी दृष्टि उनकी ओर खिंच आये । देखिये, पूजना, सकटासुर, तुणावर्त आदि का प्रसङ्ग ।

‡ ये अपने मक कुन्तेके पुत्र हैं, इसलिये इनका अर्जुन नाम है । वे देवर्षि नारदके द्वारा दृष्टिभूत किये जा चुके हैं, इसलिये भगवान्ने उनकी ओर देखा ।

जिसे पहले भक्तिकी प्राप्ति हो जाती है, उसपर कृपा करनेके लिये स्वयं बँचकर भी भगवान् जाते हैं ।

§ देवर्षि नारदके शाप देनेमें दो हेतु थे—एक तो अनुग्रह—उनके मदका नाश करना और दूसरा अर्थ—श्रीकृष्ण-प्राप्ति ।

ऐसा प्रतीत होता है कि त्रिकादशी देवर्षि नारदने अपनी जानदृष्टिसे यह जान लिया कि इनपर भगवान्का अनुग्रह होनेवाला है । इन्हींसे उन्हें भगवान्का भावी कृष्णाय समझकर ही उनके साथ छेड़-छाड़ की ।

नारदजीने कहा—जो लोग अपने प्रिय विपर्योक्त सेवन करते हैं, उनकी बुद्धिसे सबसे बढ़कर नष्ट करनेवाला है श्रीमद—धन-सम्पत्तिका नशा। हिंसा आदि रजोगुणी कर्म और कुलीनता आदिका अभिमान भी उससे बढ़कर वैसा बुद्धि-भ्रंशक नहीं है; क्योंकि श्रीमदके साथ-साथ तो बी, ज्ञा और मदिरा भी रहती है ॥ ८ ॥ ऐश्वर्यमद और श्रीमदसे अंधे होकर अपनी इन्द्रियोंके बशमें रहनेवाले मूल पुरुष अपने नाशवान् शरीरको तो अजर-अमर मान बैठते हैं और अपने ही-जैसे शरीरवाले पशुओंकी हत्या करते हैं ॥ ९ ॥ जिस शरीरकी 'भूदेव' 'भरदेव' 'देव' आदि नामोंसे पुकारते हैं—उसकी अन्तर्में क्या गति होगी ? उसमें कीड़े पक्ष जादँगे, पक्षी खाकर उसे विछा बना देंगे या वह जलकर राखका ढेर बन जायगा। उसी शरीरके लिये प्राणियोंसे श्रेष्ठ करनेमें मनुष्य अपना कौन-सा स्वार्थ समझता है ? ऐसा करनेसे तो उसे नरककी ही प्राप्ति होगी ॥ १० ॥ कतलाओ तो सही, यह शरीर किसकी सम्पत्ति है ? अन्न देकर पाछनेवालेकी है या गर्माधान करनेवाले पिताकी ? यह शरीर उसे भी महीने घेठमें रखनेवाली माताका है अथवा माताको भी पैदा करनेवाले नाताका ? जो बलवान् पुरुष बलपूर्वक इससे काम करा लेता है, उसका है अथवा दाम देकर खरीद लेनेवालेका ? चिताकी जिस 'चकती' आगमें यह जल जायगा, उसका है अथवा जो कुचे-स्थार इसको चीथ-चीथ कर खा जानेकी आग छत्रये बैठे है, उनका ? ॥ ११ ॥ यह शरीर एक साधारण-सी वस्तु है। प्रकृतिसे पैदा होता है और उसीमें समा जाता है। ऐसी स्थितिमें मूर्ख पशुओंके सिवा और ऐसा कौन बुद्धिमान् है जो इसको अपना आत्मा मानकर दूसरोंको कष्ट पहुँचायेगा, उनके प्राण लेगा ॥ १२ ॥ जो कुछ श्रीमदसे अंधे हो रहे हैं, उनकी आँखोंमें ज्योति बाढ़नेके लिये दरिद्रता ही सबसे बड़ा अंगन है; क्योंकि दरिद्र यह देख सकता है कि

दूसरे प्राणी भी मेरे ही-जैसे हैं ॥ १३ ॥ जिसके शरीरमें एक बार कौंय गड़ जाता है, वह नहीं चाहता कि किसी भी प्राणीको कौंय गड़नेकी पीड़ा सहनी पड़े; क्योंकि उस पीड़ा और उसके द्वारा होनेवाले विकारोंसे वह समझता है कि दूसरोंको भी वैसी ही पीड़ा होती है। परन्तु जिसे कभी कौंय गड़ा ही नहीं, वह उसकी पीड़ाका अनुमान नहीं कर सकता ॥ १४ ॥ दरिद्रमें वमन और हेकड़ी नहीं होती; वह सब तरहके मर्दोंसे बचा रहता है वल्कि दैववश उसे जो कष्ट उठाना पड़ता है, वह उसके लिये एक बहुत बड़ी तपस्या भी है ॥ १५ ॥ जिसे प्रतिदिन भोजनके लिये अन्न छुटाना पड़ता है, भूख-से जिसका शरीर दुबल-पल्ल हो गया है, उस दरिद्रकी इन्द्रियों भी अधिक विषय नहीं भोगना चाहतीं, सूख जाती हैं और फिर वह अपने भोगोंके लिये दूसरे प्राणियों-को सताता नहीं—उनकी हिंसा नहीं करता ॥ १६ ॥ यद्यपि साधु पुरुष समदर्शी होते हैं, फिर भी उनका समगम दरिद्रके लिये ही सुख है; क्योंकि उसके भोग तो पहलेसे ही छूटे हुए हैं। अब सतोंके सङ्गसे उसकी छलसा-तृष्णा भी मिट जाती है और शीघ्र ही उसका अन्तःकरण शुद्ध हो जाता है* ॥ १७ ॥ जिन महात्माओं-के चित्तमें सबके लिये समता है, जो केवल भगवान्के चरणारविन्दोंका मकरन्द-रस पीनेके लिये सदा अस्वुक्त रहते हैं, उन्हें दुर्योधनके खजाने अथवा दुराचारियोंकी जीविका चखनेवाले और धनके मदसे मतवाले दुष्टोंकी क्या आवश्यकता है ? वे तो उनकी उपेक्षाके ही पात्र हैं† ॥ १८ ॥ ये दोनों यथा शरणी मदिराका पान करके मतवाले और श्रीमदसे अंधे हो रहे हैं। अपनी इन्द्रियोंके अधीन रहनेवाले इन बी-कम्पट यक्षोंका अज्ञान-जन्त मद् में चुर-चुर कर दूँगा ॥ १९ ॥ देखो तो सही, कितना अनर्थ है कि ये लोकपाल कुवेरके पुत्र होनेपर भी मद्योन्मत्त होकर अवैत हो रहे हैं और इनको

* धनी पुरुषमें तीन दोष होते हैं—धन, धनका अभिमान और धनकी तृष्णा। दरिद्र पुरुषमें पहले दो नहीं होते; केवल तीसरा ही दोष रहता है। इच्छित्वे सत्युक्त्यै सङ्गते धनकी तृष्णा मिट जानेपर धनियोंकी अपेक्षा उसका शीघ्र कल्याण हो जाता है।

† धन स्वयं एक दोष है। सतमें स्कन्धमें कहा है कि जितनेसे पेट भर जाय, उससे अधिकको अपना माननेवाला चोर है और दण्डका पात्र है—एव स्तेनो दण्ड्यमर्थेति। भगवान् भी कहते हैं—जिसपर मैं अनुग्रह करता हूँ उसका धन छीन देता हूँ। इच्छित्वे सत्युक्त्यै सङ्गते धनियैकी उपेक्षा करते हैं।

इस बातका भी पता नहीं है कि हम बिबुल नंग-वस्त्र हैं ॥ २० ॥ इसलिये ये दोनों अब वृक्षयोनिमें जानेके योग्य हैं । ऐसा होनेसे इन्हें फिर इस प्रकारका अगमन न होगा । वृक्षयोनिमें जानेपर भी मेरी कृपासे इन्हें भगवान्की स्तुति बनी रहेगी और मेरे अनुग्रहसे देवताओंके सौ वर्ष बीतनेपर इन्हे भगवान् श्रीकृष्णका सान्निध्य प्राप्त होगा; और फिर भगवान्के चरणोंमें परम प्रेम प्राप्त करके ये अपने लोकमें चले आयेगे ॥ २१-२२ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—देवर्षि नारद इस प्रकार कहकर भगवान् नर-नारायणके आश्रमपर चले गये* । नल-कूबर और मणिप्रीव—ये दोनों एक ही साथ ऊर्जुन वृक्ष होकर यमलार्जुन नामसे प्रसिद्ध हुए ॥ २३ ॥ भगवान् श्रीकृष्णने अपने परम प्रेमी भक्त देवर्षि नारदजीकी बात सत्य करनेके लिये धीरे-धीरे ऊल्लूक बसीटते हुए उस ओर प्रस्थान किया, जिधर यमलार्जुन वृक्ष थे ॥ २४ ॥ भगवान्ने सोचा कि 'देवर्षि नारद मेरे अत्यन्त प्यारे हैं और ये दोनों भी मेरे भक्त कुबेरके लड़के हैं । इसलिये महात्मा नारदने जो कुछ कहा है, उसे मैं ठीक उसी रूपमें पूरा करूँगा' ॥ २५ ॥ यह विचार करके भगवान् श्रीकृष्ण दोनों वृक्षोंके बीचमें धुस गये । वे तो दूसरी ओर निकल गये, परन्तु ऊल्लूक टेढ़ा होकर अटक गया ॥ २६ ॥ दामोदर भगवान् श्रीकृष्णकी कमरमें रस्सी कसी हुई थी । उन्होंने अपने पीछे लुढ़कते हुए ऊल्लूक को ज्यों ही तनिक जोरसे खींचा, ज्यों ही पेड़ोंकी सारी जड़ें उखड़ गयीं ॥ समस्त वल-विक्रमके केन्द्र भगवान्का तनिक-सा जोर लगते ही पेड़ोंके तने, शाखाएँ, छेटी-छेटी डालियाँ और एक-एक पत्ते बाँप उठे और वे दोनों बड़े जोरसे तबतबाने हुए पृथ्वीपर गिर पड़े ॥ २७ ॥

उन दोनों वृक्षोंसे अग्निके समान तेजस्वी दो सिद्ध पुरुष निकले । उनके चमचमाते हुए सौन्दर्यसे दिशाएँ दमक उठीं । उन्होंने सम्पूर्ण लोकोंके खामी भगवान् श्रीकृष्णके पास आकर उनके चरणोंमें सिर रखकर प्रणाम किया और हाथ जोड़कर शुद्ध हृदयसे वे उनकी इस प्रकार स्तुति करने लगे—॥ २८ ॥

उन्होंने कहा—सच्चिदानन्दस्वरूप ! सबको अपनी ओर आकर्षित करनेवाले परम योगेश्वर श्रीकृष्ण ! आप प्रकृतिसे अतीत स्वयं पुरुषोत्तम हैं । वेदज्ञ ब्राह्मण यह बात जानते हैं कि यह व्यक्त और अव्यक्त सम्पूर्ण जगत् आपका ही रूप है ॥ २९ ॥ आप ही समस्त प्राणियोंके शरीर, प्राण, अन्तःकरण और इन्द्रियोंके स्वामी हैं । तथा आप ही सर्वशक्तिमान् काल, सर्वव्यापक एवं अविनाशी ईश्वर हैं ॥ ३० ॥ आप ही महत्तत्त्व और वह प्रकृति हैं, जो अत्यन्त सूक्ष्म एवं सत्त्वगुण, रजोगुण और तमोगुणरूपा है । आप ही समस्त स्थूल और सूक्ष्म शरीरोंके कर्म, भाष, धर्म और सत्ताको जाननेवाले सबके साक्षी परमात्मा हैं ॥ ३१ ॥ वृत्तियोंसे प्रहण किये जानेवाले प्रकृतिके गुणों और विकारोंके द्वारा आप पकड़में नहीं आ सकते । स्थूल और सूक्ष्म शरीरके आवरणसे ढका हुआ ऐसा कौन-सा पुरुष है, जो आपको जान सके ? क्योंकि आप तो उन शरीरोंके पहले भी एकरस विद्यमान थे ॥ ३२ ॥ समस्त प्रपञ्चके विधाता भगवान् बाहुदेवको हम नमस्कार करते हैं । प्रभो ! आपके द्वारा प्रकाशित होनेवाले गुणोंसे ही आपने अपनी महिमा छिपा रक्खी है । परब्रह्मस्वरूप श्रीकृष्ण ! हम आपको नमस्कार करते हैं ॥ ३३ ॥

* १. आप-चरदानसे तपस्या खीण होती है । नलकूबर-मणिप्रीवोंके आप देनेके पश्चात् नर-नारायण-आश्रमकी यात्रा करनेका यह अगिप्राय है कि फिरसे तप-सञ्चय कर लिया जाय ।

२. मैंने यहाँपर जो अनुग्रह किया है, वह बिना तपस्याके पूर्ण नहीं हो सकता है, इसलिये ।

३. अपने आराध्यदेव एवं गुरुदेव नारायणके सम्मुख अपना कृत्य निवेदन करनेके लिये ।

† भगवान् श्रीकृष्ण अपनी क्रुद्धादृष्टिसे उन्हें शुक कर सकते थे । परन्तु वृक्षोंके पास जानेका कारण यह है कि देवर्षि नारदने कहा था कि तुम्हें वायुदेवका सान्निध्य प्राप्त होगा ।

‡ वृक्षोंके बीचमें जानेका आशय यह है कि भगवान् जिसके अन्तर्द्वेषमें प्रवेश करते हैं, उसके जीवनमें नुशेधाका लेश भी नहीं रहता । भीतर प्रवेश किये बिना दोनोंका एक साथ उद्धार भी कैसे होता ।

§ जो भगवान्के गुण (भक्त-वत्सल्य आदि) से बँधा हुआ है, वह सर्वत्र गति (पशु-पक्षी या टेढ़ी चालवाला) ही क्यों न हो—पृथ्वीका उद्धार कर सकता है ।

अपने अनुयायियोंके द्वारा किया हुआ काम बितना यक्षस्वर होता है, उतना अपने हाथसे नहीं । मानो यही सोचकर अपने पीछे-पीछे चलनेवाले ऊल्लूकके द्वारा उनका उद्धार करवाया ।

आप प्राकृत शरीरसे रहित हैं। फिर भी जब आप ऐसे पराक्रम प्रकट करते हैं, जो साधारण शरीरधारियोंके लिये शक्य नहीं हैं और जिनसे बढ़कर तो क्या जिनके समान भी कोई नहीं कर सकता, तब उनके द्वारा उन शरीरोंमें आपके अवतारोंका पता चल जाता है ॥ ३४ ॥

प्रभो ! आप वही समस्त लोकोंके अम्युदय और निःश्रेयसके लिये इस समय अपनी सम्पूर्ण शक्तियोंसे अवतीर्ण हुए हैं। आप समस्त अमिलवाओंको पूर्ण करनेवाले हैं ॥ ३५ ॥ परम कल्याण (साध्व) स्वरूप। आपको नमस्कार है। परम मङ्गल (साधन) स्वरूप। आपको नमस्कार है। परम शान्त, सबके हृदयमें विहार करनेवाले यदुर्बंशशिरोमणि श्रीकृष्णको नमस्कार है ॥ ३६ ॥

अनन्त ! हम आपके दासानुदास हैं। आप यह स्वीकार कीजिये। देवर्षि भगवान् नारदके परम अनुग्रहसे ही हम अपराधियोंको आपका दर्शन प्राप्त हुआ है ॥ ३७ ॥

प्रभो ! हमारी बाणी आपके मङ्गलमय गुणोंका वर्णन करती रहे। हमारे कान आपकी रसमयी कथामें लगे रहें। हमारे हाथ आपकी सेवामें और मन आपके चरण-कमलोंकी स्तुतिमें रम जायें। यह सम्पूर्ण जगत् आपका निवास-स्थान है। हमारा मस्तक सबके सामने झुका रहे। सत आपके प्रत्यक्ष शरीर हैं। हमारी आँखें उनके दर्शन करती रहें ॥ ३८ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—सौन्दर्य-माधुर्यनिधि गोकुलेश्वर श्रीकृष्णने नलकूबर और मणिप्रीवके इस प्रकार स्तुति करनेपर रस्तीसे ऊखलमें बेंचे-बेंचे ही हैंसते हुए* उनसे कहा—॥ ३९ ॥

श्रीभगवान् ने कहा—तुमलोग श्रीमदसे अचे हो रहे थे। मैं पहलेसे ही यह बात जानता था कि परम कारुणिक देवर्षि नारदने शाप देकर तुम्हारा ऐश्वर्य नष्ट कर दिया तथा इस प्रकार तुम्हारे ऊपर कृपा की ॥ ४० ॥

जिनकी बुद्धि समदर्शिणी है और हृदय पूर्णरूपसे मेरे प्रति समर्पित है, उन साधु पुरुषोंके दर्शनसे बन्धन होना ठीक वैसे ही सम्भव नहीं है, जैसे सूर्योदय होनेपर मनुष्यके नेत्रोंके सामने अन्धकारका होना ॥ ४१ ॥

इसलिये नलकूबर और मणिप्रीव ! तुमलोग मेरे परायण होकर अपने-अपने घर जाओ। तुमलोगोंको संसारचक्रसे छुड़ानेवाले अनन्य भक्तिभावकी, जो तुम्हें अभीष्ट है, प्राप्ति हो गयी है ॥ ४२ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—जब भगवान् ने इस प्रकार कहा, तब उन दोनोंने उनकी परिक्रमा की और बार-बार प्रणाम किया। इसके बाद ऊखलमें बेंचे हुए सर्वेश्वरकी आज्ञा प्राप्त करके उन लोगोंने उत्तर दिशाकी यात्रा की ॥ ४३ ॥

भारहवाँ अध्याय

गोकुलसे बुन्दावन आना तथा कत्वासुर और बन्धसुरका उद्धार

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित ! वृद्धोंके गिरनेसे जो भयङ्कर शब्द हुआ था, उसे नन्दवाबा आदि गोपोंने भी सुना। उनके मनमें यह शङ्का हुई कि कहीं निजली तो नहीं गिरी। सबके-सब भयभीत होकर वृद्धोंके पास

आ गये ॥ १ ॥ वहाँ पहुँचनेपर उन लोगोंने देखा कि दोनों अर्जुनके वृक्ष गिरे हुए हैं। यद्यपि वृक्ष गिरनेका कारण स्पष्ट था—वहीं उनके सामने ही रस्तीमें धँसा हुआ बालक ऊखल खींच रहा था, परन्तु वे समझ न

* सर्वदा मैं मुक्त रहता हूँ और बड़ जीव मेरी स्तुति करते हैं। आज मैं बड़ हूँ और मुक्त जीव मेरी स्तुति कर रहे हैं। यह विपरीत दृष्टा देखकर भगवान् को हँसी आ गयी।

† यद्यपि निवार किया कि अवतक यह सन्तु (रस्ती) अँ बेंचे हुए हैं, तभीतक हमें इनके दर्शन हो रहे हैं। नियुक्तो तो मनसे सोचा भी नहीं जा सकता। इसीसे भगवान् के बेंचे रहते ही वे चले गये।

स्वरूपस्य उल्लसत् सर्वदा श्रीकृष्णगुणशाली एव भूवाः।

‘ऊखल ! तुम्हारा कल्याण हो; तुम सदा श्रीकृष्णके गुणोंसे बेंचे ही रहो।’—देखा ऊखलको आशीर्वाद देकर यश वंशसे चले गये।

सके । 'यह किसका काम है, ऐसी आश्चर्यजनक दुर्घटना कैसे घट गयी ?' यह सोचकर वे कातर हो गये, उनकी बुद्धि भ्रमित हो गयी ॥ २-३ ॥ वहाँ कुछ बाळक खेल रहे थे । उन्होंने कहा—'अरे, इसी कन्हैयाका तो काम है । यह दोनों बूझोंके बीचसे होकर निकल रहा था । ऊखल तिरछा हो जानेपर दूसरी ओरसे इसने उसे खींचा और वृक्ष गिर पड़े । हमने तो इनमेंसे निकलते हुए दो पुरुष भी देखे हैं' ॥ ४ ॥ परन्तु गोपोंने बाळकोंकी बात नहीं मानी । वे कहने लगे—'एक नन्हा-सा बच्चा इतने बड़े वृक्षोंको उखाड़ डाले, यह कभी सम्भव नहीं है ।' किसी-किसीके चिन्तमें श्रीकृष्णकी पहलेंकी छीछाओंका स्मरण करके सन्देह भी हो आया ॥ ५ ॥ नन्दबाबांने देखा, उनका प्राणोंसे प्यारा बच्चा रस्तीसे बँधा हुआ ऊखल बसीदता जा रहा है । वे हैंसने लगे और जल्दीसे जाकर उन्होंने रस्तीकी गँठ खोल दी ॥ ६ ॥

सर्वशक्तिमान् भगवान् कभी-कभी गोपियोंके फुसलाने-से साधारण बाळकोंके समान नाचने लगते । कभी मोले-भाले अनजान बाळककी तरह गाने लगते । वे उनके हाथकी कठपुतली—उनके सर्वथा अधीन हो गये थे ॥ ७ ॥ कभी उनकी आवासे पीड़ा ले आते, तो कभी दुसरी आदि तीखेके बटखरे उठा लेते । कभी खड़ाऊँ ले आते, तो कभी अपने प्रेमी भक्तोंको आनन्दित करनेके लिये पहलवानोंकी भाँति ताल ठेंकने लगते ॥ ८ ॥ इस प्रकार सर्वशक्तिमान् भगवान् अपनी बाळ-छीछाओंसे ब्रजवासियोंको आनन्दित करते और संसारमें जो लोग उनके रहस्यको जाननेवाले हैं, उनको यह दिखलते कि मैं अपने सेवकोंके वशमें हूँ ॥ ९ ॥

एक दिन कोई फल बेचनेवाली आकर पुकार उठी—'फल, ओ फल !' यह सुनते ही समस्त कर्म और उपासनाओंके फल देनेवाले भगवान् लम्पुत फल खरीदनेके लिये अपनी छोटी-सी औँखोंमें अनाज लेकर दौड़ पड़े ॥ १० ॥ उनकी औँखोंमेंसे अनाज तो रास्तेमें ही

निकल गया, पर फल बेचनेवालीने उनके दोनों हाथ फलसे भर दिये । इधर भगवान्ने भी उसकी फल रखनेवाली देखी खींचे भर दी ॥ ११ ॥

तदनन्तर एक दिन यमलार्जुन वृक्षको तोड़नेवाले श्रीकृष्ण और बळराम बाळकोंके साथ खेलते-खेलते यमुना-तटपर चले गये और खेलमें ही रम गये, तब रोहिणीदेवीने उन्हें पुकारा 'श्रीकृष्ण ! ओ बळराम ! जल्दी आओ' ॥ १२ ॥ परन्तु रोहिणीके पुकारनेपर भी वे आये नहीं; क्योंकि उनका मन खेलमें लग गया था । जब जुलनेपर भी वे दोनों बाळक नहीं आये, तब रोहिणीजीने वात्सल्यलेहमयी यशोदाजीको भेजा ॥ १३ ॥ श्रीकृष्ण और बळराम गाल्गालोंके साथ बहुत देरसे खेल रहे थे, यशोदाजीने जाकर उन्हें पुकारा । उस समय पुत्रके प्रति वात्सल्यलेह-के कारण उनके स्नानोंमेंसे दूध चुसुवा रहा था ॥ १४ ॥ वे जोर-जोरसे पुकारने लगीं—'येरे प्यारे कन्हैया ! ओ कृष्ण ! कमलनयन ! स्पामसुन्दर ! बैदा ! आओ, अपनी माका दूध पी ओ । खेलते-खेलते पक गये हो । बैदा ! अब बस करो । देखो तो सही, तुम भूखसे दुबले हो रहे हो ॥ १५ ॥ मेरे प्यारे बैदा राम ! तुम तो सम्पूरे कुङ्कको आनन्द देनेवाले हो । अपने छोटे भाईको लेकर जल्दीसे आ जाओ तो । देखो, भाई ! आज तुमने बहुत सबेरे कलेऊ किया था । अब तो तुम्हें कुछ खाना चाहिये ॥ १६ ॥ बैदा बळराम ! ब्रजराज भोजन करनेके लिये बैठ गये हैं; परन्तु अभीतक तुम्हारी बात देख रहे हैं । आओ, अब हमें आनन्दित करो । बाळको ! अब तुमको भी अपने-अपने घर जाओ ॥ १७ ॥ बैदा ! देखो तो सही, तुम्हारा एक-एक अङ्ग धूलसे छपप हो रहा है । आओ, जल्दीसे स्नान कर लो । आज तुम्हारा जन्म-नक्षत्र है । पवित्र होकर ब्राह्मणोंको गोदान करो ॥ १८ ॥ देखो—देखो ! तुम्हारे साथियोंको उनकी माताओंने नहल-धुलकर, मीज-पोछकर कैसे सुन्दर-सुन्दर गहने पहना दिये हैं । अब तुम भी नहा-धोकर, खा-पीकर, पहन-

● नन्दबाबा इसलिये हँसे कि कन्हैया कहीं यह लोचकर घर न जाय कि जब माने बाँच दिया, तब पिता कहीं आकर पीटने न लगे ।

माताने बाँचा और पिताने छोड़ा । भगवान् श्रीकृष्णकी जीभसे यह बात छिद्र हुई कि उनके स्वरूपमें बन्धन और भुक्तिकी कल्पना करनेवाले दूरे ही हैं । वे स्वयं न बद्ध हैं, न धुक्त हैं ।

ओढ़कर तब खेल्ना' ॥ १९ ॥ परीक्षित । माता यशोदाका सम्पूर्ण मन-प्राण प्रेम-बन्धनसे बँधा हुआ था । वे चराचर जगत्के शिरोमणि भगवान्‌को अपना पुत्र समझतीं और इस प्रकार कहकर एक हाथसे बलराम तथा दूसरे हाथसे श्रीकृष्णको पकड़कर अपने घर ले आयीं । इसके बाद उन्होंने पुत्रके मङ्गलके लिये जो कुछ करना था, वह बड़े प्रेमसे किया ॥ २० ॥

जब नन्दबाबा आदि बड़े-बूढ़े गोपोंने देखा कि मङ्गलान-में तो बड़े-बड़े उत्पात होने लगे हैं, तब वे लोग इकट्ठे होकर 'अब ब्रजवासियोंको क्या करना चाहिये'—इस विषयपर विचार करने लगे ॥ २१ ॥ उनमेंसे एक गोपका नाम था उपनन्द । वे अवस्थामें तो कहे थे ही, ज्ञानमें भी बड़े थे । उन्हें इस बातका पता था कि किस समय किस स्थानपर किस वस्तुसे कैसा व्यवहार करना चाहिये । साथ ही वे यह भी चाहते थे कि राम और श्याम सुखी रहें, उनपर कोई बिपत्ति न आवे । उन्होंने कहा—॥२२॥ 'भाइयो ! अब यहाँ ऐसे बड़े-बड़े उत्पात होने लगे हैं, जो बच्चोंके लिये तो बहुत ही अनिष्टकारी हैं । इसलिये यदि हमलोग गोकुल और गोकुलवासियोंका भला चाहते हैं, तो हमें यहाँसे अपना बेरा-डँडा उठाकर कूच कर देना चाहिये ॥ २३ ॥ देखो, यह सामने वैरा हुआ नन्दरायका छाबड़ा सबसे पहले तो बच्चोंके लिये काल-खरूपिणी हत्यारी पूतनाके चंगुलसे किसी प्रकार छूटा । इसके बाद भगवान्‌की दूसरी कृपा यह हुई कि इसके ऊपर उतना बड़ा छकड़ा गिरते-गिरते बचा ॥ २४ ॥ बर्बदरूपधारी दैत्यने तो इसे आकाशमें ले जाकर बड़ी भारी विपत्ति (मृषुकके मुख) में ही डाल दिया था, परन्तु वहाँसे जब वह चट्टानपर गिरा, तब भी हमारे कुलके देवेश्वरोंने ही इस बालककी रक्षा की ॥ २५ ॥ यमलार्जुन बूढ़ोंके गिरनेके समय उनके बीचमें आकर भी यह या और कोई बालक न मरा । इससे भी यही समझना चाहिये कि भगवान्‌ने हमारी रक्षा की ॥ २६ ॥ इसलिये जबतक कोई बहुत बड़ा अनिष्टकारी अरिष्ट हमें और हमारे ब्रजको नष्ट न कर दे, तबतक ही हमलोग अपने बच्चोंको लेकर अनुचरोंके साथ यहाँसे अन्यत्र चले चलें ॥ २७ ॥ 'बृन्दावन' नामका एक वन है । उसमें छोटे-छोटे और भी बहुत-से नये-नये हरे-भरे वन

हैं । वहाँ बड़ा ही पवित्र पर्वत, घास और हरी-भरी लता-वनस्पतियों है । हमारे पशुओंके लिये तो वह बहुत ही हितकारी है । गोप, गोपी और गायोंके लिये वह केवल सुविधाका ही नहीं, सेवन करनेयोग्य स्थान है ॥ २८ ॥ सो यदि तुम सब लोगोंको यह बात जँचती हो तो आज ही हमलोग वहाँके लिये कूच कर दें । देर न करें, गाड़ी-छकड़े जोतें और पहले गायोंको, जो हमारी एकमात्र सम्पत्ति हैं, वहाँ भेज दें' ॥ २९ ॥

उपनन्दकी बात सुनकर सभी गोपोंने एक खरसे कहा—'बहुत ठीक, बहुत ठीक ।' इस विषयमें किसीका भी मतभेद न था । सब लोगोंने अपनी झुंड-की-झुंड गायें इकट्ठी कीं और छकड़ोंपर बरकी सब सामग्री लादकर बृन्दावनकी यात्रा की ॥ ३० ॥ परीक्षित । ग्वालोंने बूँतों, बच्चों, बिरियों और सब सामग्रियोंको छकड़ोंपर बड़ा दिया और स्वयं उनके पीछे-पीछे धनुष-बाण लेकर बड़ी सावधानीसे चलने लगे ॥ ३१ ॥ उन्होंने गौ और बछड़ोंको तो सबसे आगे कर लिया और उनके पीछे-पीछे सींग और तुरही जोर-जोरसे बजाते हुए चले । उनके साथ-ही-साथ पुरोहितलोग भी चल रहे थे ॥ ३२ ॥ गोपियों अपने-अपने बन्धु-स्वल्प नयी केसर लगाकर, सुन्दर-सुन्दर वस्त्र पहनकर, गलेमें सोनेके हार धारण किये हुए रथोंपर सवार थीं और बड़े आनन्दसे भगवान्‌ श्रीकृष्णकी लीलाओंके गीत गाती आती थीं ॥ ३३ ॥ यशोदारानी और रोहिणीभी भी बैसे ही सज-धनकर अपने-अपने प्यारे पुत्र श्रीकृष्ण तथा बलरामके साथ एक छकड़ेपर शोभायमान हो रही थीं । वे अपने दोनों बालकोंकी तोतली बोली सुन-सुनकर भी अघाती न थीं, और-और सुनना चाहती थीं ॥ ३४ ॥ बृन्दावन बड़ा ही सुन्दर वन है । चाहे कोई भी शत्रु हो, वहाँ सुख-ही-सुख है । उसमें प्रवेश करके ग्वालोंने अपने छकड़ोंको अर्द्धचन्द्राकार मण्डल बौंधकर खड़ा कर दिया और अपने गोधनकरहने योग्य स्थान बना लिया ॥ ३५ ॥ परीक्षित । बृन्दावनका हरा-भरा वन, अत्यन्त मनोहर गोवर्धन पर्वत और यमुना नदीके सुन्दर-सुन्दर पुलिनोंको देखकर भगवान्‌ श्रीकृष्ण और बलरामजीके हृदयमें उत्तम प्रीतिका उदय हुआ ॥ ३६ ॥ राम और श्याम दोनों ही अपनी तोतली बोली और

अत्यन्त मधुर बाजोचित कील्योंसे गोकुलकी ही तरह वृन्दावनमें भी ब्रजवासियोंको आनन्द देते रहे। बोदे ही दिनोंमें समय धानेपर वे बछड़े चराने लगे ॥ ३७ ॥ दूसरे ग्वालबालोंके साथ खेलनेके लिये बहुत-सी सामग्री लेकर वे घरसे निकल पड़ते और गोष्ठ (गायोंके रहनेके स्थान) के पास ही अपने बछड़ोंको चराते ॥ ३८ ॥ श्याम और राम कहीं बौंसुरी बजा रहे हैं, तो कहीं गुलेल या डेल्लोंससे डेले या गोखियों फेंक रहे हैं। किसी समय अपने पैरोंके धुँवरूपर तान छेड़ रहे हैं, तो कहीं बनावटी गाय और बैल बनकर खेल रहे हैं ॥ ३९ ॥ एक ओर देखिये तो साँव बन-बनकर हँकड़ते हुए आपस-में छड़ रहे हैं तो दूसरी ओर मोर, कोयल, बंदर आदि पशु-पक्षियोंकी बोलियाँ निकाल रहे हैं। परीक्षित ! इस प्रकार सर्वशक्तिमान् भगवान् साधारण बालकोंके समान खेलते रहते ॥ ४० ॥

एक दिनकी बात है, श्याम और बलराम अपने प्रेमी सखा ग्वालबालोंके साथ वसुनातटपर बछड़े चरा रहे थे। उसी समय उन्हें भारनेकी नीयतसे एक दैत्य आया ॥ ४१ ॥ भगवान्ने देखा कि वह बनावटी बछड़ेका रूप धारणकर बछड़ोंके झुंडमें मिला गया है। वे आँखोंके द्वारासे बलरामजीको दिखाते हुए धीरे-धीरे उसके पास पहुँच गये। उस समय ऐसा जान पड़ता था, मानो वे दैत्यको तो पहचानते नहीं और उस हठे-कठे सुन्दर बछड़ेपर मुग्ध हो गये हैं ॥ ४२ ॥ भगवान् श्रीकृष्णने पूँछके साथ उसके दोनों पिछले पैर पकड़कर आकाशमें घुमाया और सर जानेपर कैयके वृक्षपर पटक दिया। उसका लंबा-तगड़ा दैत्यशरीर बहुत-से कैयके वृक्षोंको गिराकर क्षय भी गिर पड़ा ॥ ४३ ॥ यह देखकर ग्वालबालोंके आश्चर्यकी सीमा न रही। वे 'वाह-वाह' करके प्यारे कन्हैयाकी प्रशंसा करने लगे। देवता भी बड़े आनन्दसे फूलोंकी वर्षा करने लगे ॥ ४४ ॥

परीक्षित ! जो सारे लोकोंके एकमात्र रक्षक हैं, वे ही श्याम और बलराम अब वत्सप्राण (बछड़ोंके चरवाहे) बने हुए हैं। वे तबके ही उत्तम फलेवेकी सामग्री ले लेते और बछड़ोंको चराते हुए एक वनसे दूसरे वनमें घूमा करते ॥ ४५ ॥ एक दिनकी बात है,

सब ग्वालबाल अपने झुंड-के-झुंड बछड़ोंको पानी पिलाने-के लिये जलशायके तटपर ले गये। उन्होंने पहले बछड़ोंको जल पिलवा और फिर स्वयं भी पिया ॥ ४६ ॥ ग्वालबालोंने देखा कि वहाँ एक बहुत बड़ा जीव बैठा हुआ है। वह ऐसा मादम पड़ता था, मानो इन्द्रके वज्रसे कटकर कोई पहाड़का टुकड़ा गिरा हुआ है ॥ ४७ ॥ ग्वालबाल उसे देखकर डर गये। वह 'बक' नामका एक बड़ा मारी असुर था, जो बगुलेका रूप धरके वहाँ आया था। उसकी चौंच बड़ी तीखी थी और वह स्वयं बड़ा बलवान् था। उसने झपटकर श्रीकृष्णको निगल लिया ॥ ४८ ॥ जब बलराम आदि बालकोंने देखा कि वह बड़ा मारी गयुल श्रीकृष्णको निगल गया, तब उनकी बड़ी गति हुई जो प्राण निकल जानेपर इन्द्रियोंकी होती है। वे अचेत हो गये ॥ ४९ ॥ परीक्षित ! श्रीकृष्ण लोकपितामह ब्रह्माके भी पिता हैं। वे कीलसे ही गोपाळ-बालक बने हुए हैं। जब वे बगुलेके ताड़के नीचे पहुँचे, तब वे आगके समान उसका ताड़ जलने लगे। अतः उस दैत्यने श्रीकृष्णके शरीरपर बिना किसी प्रकारका क्षात्र किये ही झपट उन्हें उगल दिया और फिर बड़े क्रोधसे अपनी कठोर चौंचसे उनपर चोट करनेके लिये दूट पड़ा ॥ ५० ॥ कंसका सखा बकासुर अभी भक्तवत्सल भगवान् श्रीकृष्णपर झपट ही रहा था कि उन्होंने अपने दोनों हाथोंसे उसके दोनों ठोर पकड़ लिये और ग्वालबालोंके देखते-देखते खेळ-ही-खेळमें उसे वैसे ही चीर बाँटा, जैसे कोई बीरण (गौबर, जिसकी जबका खस होता है) को चीर डाले। इससे देवताओंको बड़ा आनन्द हुआ ॥ ५१ ॥ सभी देवता भगवान् श्रीकृष्णपर मन्दनवनके बेला, चनेली आदिके फूल बरसाने लगे तथा नगरे, शङ्ख आदि बजाकर एवं स्तोत्रोंके द्वारा उनको प्रसन्न करने लगे। यह सब देखकर सबके-सब ग्वालबाल आश्चर्यचकित हो गये ॥ ५२ ॥ जब बलराम आदि बालकोंने देखा कि श्रीकृष्ण बगुलेके मुँहसे निकलकर हमारे पास आ गये हैं, तब उन्हें ऐसा आनन्द हुआ मानो प्राणोंके सञ्चारसे इन्द्रियों सचेत और आनन्दित हो गयी हों। सबने भगवान्को अलग-अलग गले लगाया। इसके बाद अपने-अपने बछड़े

होकर सब व्रजमें आये और वहाँ उन्होंने घरके लोगोसे सारी घटना कह सुनायी ॥ ५३ ॥

परीक्षित ! बकासुरके बधकी घटना सुनकर सब-के-सब गोपी-गोप आश्चर्यचकित हो गये । उन्हें ऐसा जान पड़ा, जैसे कन्हैया साक्षात् मृत्युके मुखसे ही लौटे हों । वे बड़ी उत्सुकता, प्रेम और आदरसे श्रीकृष्णको निहारने लगे । उनके नेत्रोंकी प्यास बढ़ती ही जाती थी, किसी प्रकार उन्हें तृप्ति न होती थी ॥ ५४ ॥ वे आपसमें कहने लगे—‘हाय ! हाय ॥ यह कितने आश्चर्यकी बात है । इस बालकको कई बार मृत्युके मुँहमें जाना पड़ा । परन्तु जिन्होंने इसका अनिष्ट करना चाहा, उन्हींका अनिष्ट हुआ । क्योंकि उन्होंने पहलेसे दूसरोंका अनिष्ट किया था ॥ ५५ ॥ यह सब होनेपर भी वे भयङ्कर असुर इसका कुछ भी नहीं बिगाड़ पाते ।

आते हैं इसे मार डालनेकी नीमतसे, किन्तु आगपर गिरकर पतिगर्भकी तरह उछटे खय खाहा हो जाते हैं ॥ ५६ ॥ सच है, ब्रह्मवेद्या महारामाओंके वचन कभी झूठे नहीं होते । देखो न, महात्मा गर्गाचार्यने जितनी बातें कही थीं, सब-सी-सब सोलहों आने ठीक उतर रही हैं’ ॥ ५७ ॥ नन्दबाबा आदि गोपगण इसी प्रकार बड़े आनन्दसे अपने श्याम और रामकी बातें किया करते । वे उनमें इतने तन्मय रहते कि उन्हें ससारके दुःख-सङ्कटोंका कुछ पता ही न चलता ॥ ५८ ॥ इसी प्रकार श्याम और बलराम ग्वालबालोंके साथ कभी ओंखमिचौनी खेलते, तो कभी पुछ बाँधते । कभी कंदरोंकी भोंति उछलते-कूदते, तो कभी और कोई विविध खेल करते । इस प्रकारके बालोचित खेलोंसे उन दोनोंने व्रजमें अपनी माल्यावस्था व्यतीत की ॥ ५९ ॥

बारहवाँ अध्याय

अघासुरका उद्धार

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित । एक दिन नन्दगन्धन श्यामसुन्दर वनमें ही कलेश करनेके विचारसे बड़े तबड़के उठ गये और सींगकी मधुर मनोहर ध्वनिसे अपने साथी ग्वालबालोंको मनकी बात जनाते हुए उन्हें जगाया और बछड़ोंको आगे करके वे व्रजमण्डलसे निकल पड़े ॥ १ ॥ श्रीकृष्णके साथ ही उनके प्रेमी सहजों ग्वालबाल सुन्दर छँकि, बैत, सींग और बाँसुरी लेकर तथा अपने सहजों बछड़ोंको आगे करके बड़ी प्रसन्नतासे अपने-अपने घरोंसे चल पड़े ॥ २ ॥ उन्होंने श्रीकृष्णके अगणित बछड़ोंमें अपने-अपने बछड़े मिला दिये और स्थान-स्थानपर बालोचित खेल खेलते हुए विचरने लगे ॥ ३ ॥ यद्यपि सब-के-सब ग्वालबाल कौंच, घुँघची, मणि और सुवर्णके गहने पहने हुए थे, फिर भी उन्होंने वृन्दावनके जल-पीले-हरे फलोंसे, नयी-नयी कोंपलोंसे, गुच्छोंसे, रंग-विरंगे फूलों और भोरपखोंसे तथा गेरू आदि रंगीन धातुओंसे अपनेको सजा लिया ॥ ४ ॥ कोई किसीका छँका चुरा लेता, तो कोई किसीकी ब्रेत या बाँसुरी । जब उन वस्तुओंके खामी-

को पता चलता, तब उन्हें लेनेवाला किसी दूसरेके पास दूर फेंक देता, दूसरा तीसरेके और तीसरा और भी दूर चौथेके पास । फिर वे हँसते हुए उन्हें छौटा देते ॥ ५ ॥ यदि श्याम-सुन्दर श्रीकृष्ण वनकी शोभा देखनेके लिये कुछ आगे बढ़ जाते, तो ‘पहले मैं छुँऊँगा, पहले मैं छुँऊँगा’—इस प्रकार आपसमें होठ छ्याकर सब-के-सब उनकी ओर दौड़ पड़ते और उन्हें छू-छूकर आनन्दमग्न हो जाते ॥ ६ ॥ कोई बाँसुरी बजा रहा है, तो कोई सींग ही बँक रहा है । कोई-कोई भौंरोंके साथ गुनगुना रहे हैं, तो बहुत-से कोयलोंके खरमें खर मिलाकर ‘कुड़-कुड़’ कर रहे हैं ॥ ७ ॥ एक ओर कुछ ग्वालबाल आकाशमें उड़ते हुए पक्षियोंकी छायाके साथ दौड़ ला रहे हैं, तो दूसरी ओर कुछ हसोंकी चालकी नकल करते हुए उनके साथ सुन्दर गतिसे चल रहे हैं । कोई बगुलेके पास उसीके समान ओले मूँदकर बैठ रहे है, तो कोई मोरोंको नाचते देख उन्हींकी तरह नाच रहे हैं ॥ ८ ॥ कोई-कोई कंदरोंकी पूँछ पकड़कर खींच रहे हैं, तो दूसरे उनके साथ इस पेड़से उस पेड़पर चढ़ रहे हैं । कोई-

कोई उनके साथ मुँह बना रहे हैं, तो दूसरे उनके साथ एक ढालसे दूसरी ढालपर छल्लों मार रहे हैं ॥ ९ ॥ बहुत-से ग्वालबाल तो नदीके कछारमें छपका खेल रहे हैं और उसमें फुदकते हुए मेंढकोंके साथ खरं मी फुदक रहे हैं। कोई पानीमें अपनी परछाई देखकर उसकी हँसी कर रहे हैं, तो दूसरे अपने शब्दकी प्रतिध्वनिको ही बुरा-भला कह रहे हैं ॥ १० ॥ भगवान् श्रीकृष्ण ज्ञानी संतोंके लिये खरं ब्रह्मानन्दके मूर्तिमान् अनुभव हैं। दास्यभावसे युक्त भक्तोंके लिये वे उनके आराध्यदेव, परम ऐश्वर्यशाली परमेश्वर हैं। और भाया-मोहित विपयान्धोंके लिये वे केवल एक मनुष्य-बालक हैं। उन्हीं भगवान्के साथ वे महान् पुण्यात्मा ग्वालबाल तरह-तरहके खेल खेल रहे हैं ॥ ११ ॥ बहुत जन्मोंतक श्रम और कष्ट उठाकर जिन्होंने अपनी इन्द्रियों और अन्तःकरणको बशमें कर लिया है, उन योगियोंके लिये भी भगवान् श्रीकृष्णके चरणकमलोंकी रज अप्राप्य है। वही भगवान् खरं जिन ब्रजवासी ग्वालबालोंकी आँखोंके सामने रहकर सदा खेल लेखते हैं, उनके सौभाग्यकी महिमा इससे अधिक क्या कही जाय ॥ १२ ॥

परिक्षिप्त ! इसी समय अघासुर घामका भ्रान्त दैत्य आ घमका। उससे श्रीकृष्ण और ग्वालबालोंकी सुखमयी क्रीडा देखी न गयी। उसके हृदयमें अछन होने लगी। वह इतना भयङ्कर था कि अभूतपान करके अमर हुए देवता भी उससे अपने जीवनकी रक्षा करनेके लिये चिन्तित रहा करते थे और इस बातकी वाट देखते रहते थे कि किसी प्रकारसे इसकी मृत्युका अवसर आ जाय ॥ १३ ॥ अघासुर पूतना और बकसुरका छेद भाई तथा कंसका भेजा हुआ था। वह श्रीकृष्ण, श्रीदामा आदि ग्वालबालोंको देखकर मन-ही-मन सोचने लगा कि 'यही मेरे सगे भाई और बहिनको मारनेवाला है। इस-लिये आज मैं इन ग्वालबालोंके साथ इसे मार दूँगा ॥ १४ ॥ जब ये सब मरकर मेरे उन दोनों भई-बहिनोंके वृत्त-तर्पणकी निलाझलि बन जायेंगे, तब ब्रजवासी अपने-आप मरे-जैसे हो जायेंगे। सन्तान ही प्राणियोंके प्राण हैं। जब प्राण ही न रहेंगे, तब शरीर कैसे रहेगा ? इसकी मृत्युसे ब्रजवासी अपने-आप मर जायेंगे ॥ १५ ॥ ऐसा निश्चय करके वह दृष्ट दैत्य अजगरका रूप धारण

कर मार्गमें छेद गया। उसका वह अजगर-शरीर एक योजन छंवे बड़े पर्वतके समान विशाल एवं मोटा था। वह बहुत ही अद्भुत था। उसकी नीयत सब बालकोंको निगल जानेकी थी, इसलिये उसने गुफाके समान अपना बहुत बड़ा मुँह फाड़ रक्खा था ॥ १६ ॥ उसका नीचेका होठ पृथ्वीसे और ऊपरका होठ बादलोंसे लगा रहा था। उसके जबड़े कन्दराओंके समान थे और दाढ़ें पर्वतके शिखर-सी जान पड़ती थीं। मुँहके भीतर घोर अन्धकार था। जीम एक चौड़ी लाल सड़क सी दीखती थी। सौंस आँवीके समान थी और आँखें दावानलके समान दहक रही थीं ॥ १७ ॥

अवासुरका ऐसा रूप देखकर बालकोंमें समझा कि यह भी वृन्दावनकी कोई शोभा है। वे कौतुकवश खेल-ही-खेलमें उल्टेसा करने लगे कि यह मानो अजगरका खुला हुआ मुँह है ॥ १८ ॥ कोई कहता—मित्रो ! भला, बतलाओ तो, यह जो हमारे सामने कोई जीव-सा बैठा है, यह हमें निगलनेके लिये खुले हुए किसी अजगरके मुँह-जैसा नहीं है ? ॥ १९ ॥ दूसरेने कहा—'सचमुच सूर्यकी किरणें पड़नेसे ये जो बादल लाल-लाल हो गये हैं, वे ऐसे मादम होते हैं मानो दीक-दीक इसका ऊपरी होठ ही हो। और उन्हीं बादलोंकी परछाईसे यह जो नीचेकी भूमि कुछ लाल-लाल दीख रही है, वही इसका नीचेका होठ जान पड़ता है' ॥ २० ॥ तीसरे ग्वालबालने कहा—'हाँ, सच तो है। देखो तो सही, क्या ये दायाँ और बायाँ ओरकी गिरि-कन्दराएँ अजगरके जबड़ोंकी होइ नहीं करती ? और ये ऊँची-ऊँची शिखर-पक्षियों तो साफ-साफ इसकी दाढ़ें मादम पड़ती हैं' ॥ २१ ॥ चौथेने कहा—'जरे भई। यह लंबी-चौड़ी सड़क तो दीक अजगरकी जीम-सरीखी मादम पड़ती है और इन गिरि-शृङ्गोंके बीचका अन्धकार तो उसके मुँहके भीतरी भाग-को भी मात करता है' ॥ २२ ॥ किसी दूसरे ग्वालबालने कहा—'देखो, देखो ! ऐसा जान पड़ता है कि कहीं इधर जंगलमें आग लगी है। इसीसे यह गरम और तीखी हवा आ रही है। परन्तु अजगरकी सोंसके साथ इसका क्या ही मेल बैठ गया है। और उसी आगमें जले हुए प्राणियोंकी दुर्गन्ध ऐसी जान पड़ती है, मानो अजगरके

पेटमें भरे हुए जीवोंके संसकी ही दुर्गन्ध हो' ॥ २३ ॥ तब उन्होंनेसे एकने कहा—'यदि हमलोग इसके मुँहमें घुस जायें, तो क्या यह हमें निगल जायगा ? कभी ! यह क्या निगलेगा । कहीं ऐसा करनेकी डिग्री की तो एक क्षणमें यह भी बकासुरके समान नष्ट हो जायगा । हमारा यह कन्हैया इसको छोड़ेगा थोड़े ही ।' इस प्रकार कहते हुए वे ग्वालवाल बकासुरको मारनेवाले श्रीकृष्णका सुन्दर मुख देखते और ताळी पीट-पीटकर हँसते हुए अवासुरके मुँहमें घुस गये ॥ २४ ॥ उन अनजान बच्चोंकी आपसमें की हुई अमूर्ण बातें सुनकर भगवान् श्रीकृष्णने सोचा कि 'अरे, इन्हें तो सच्चा सर्प भी श्रव्य प्रतीत होता है ।' परीक्षित । भगवान् श्रीकृष्ण जान गये कि यह राक्षस है । मन्त्र, उनसे क्या छिपा रहता ? वे तो समस्त प्राणियोंके हृदयमें ही निवास करते हैं । अब उन्होंने यह निश्चय किया कि अपने सखा ग्वाल-बालोंको उसके मुँहमें जानेसे बचा लें ॥ २५ ॥ भगवान् इस प्रकार सोच ही रहे थे कि सबके-सब ग्वालवाल बच्चोंके साथ उस असुरके पेटमें चले गये । परन्तु अवासुरने अभी उन्हें निगल नहीं । इसका कारण यह था कि अवासुर अपने गार्द बकासुर और बहिन पूतनाके बधकी याद करके इस बातकी बाट देख रहा था कि उनकी मारनेवाले श्रीकृष्ण मुँहमें आ जायें, तब सबको एक साथ ही निगल जाऊँ ॥ २६ ॥ भगवान् श्रीकृष्ण सबको अमर देनेवाले हैं । जब उन्होंने देखा कि वे बेचारे ग्वालवाल—जिनका एकमात्र रक्षक मैं ही हूँ—मेरे हाथसे निकल गये और जैसे कोई तिनका उठकर आगमें गिर पड़े, वैसे ही अपने-आप मृत्युरूप अवासुरकी जठराग्निके ग्रास बन गये, तब दैवकी इस विचित्र लीलापर भगवान्‌को बड़ा विस्मय हुआ और उनका हृदय दयासे द्रवित हो गया ॥ २७ ॥ वे सोचने लगे कि 'अब मुझे क्या करना चाहिये ? ऐसा कौन-सा उपाय है, जिससे इस दुष्टकी मृत्यु भी हो जाय और इन संत-समाध मोले-माले बालकोंकी हत्या भी न हो ? ये दोनों काम कैसे हो सकते हैं ?' परीक्षित । भगवान् श्रीकृष्ण मृत, मत्तिय, वर्तमान—सबको प्रत्यक्ष देखते रहते हैं । उनके लिये यह उपाय जानना कोई कठिन न था । वे अपना कर्तव्य निश्चय करके स्वयं उसके मुँहमें घुस गये ॥ २८ ॥ उस

समय बादलोंमें छिपे हुए देवता भयवश 'हाय-हाय' पुकार उठे और अवासुरके हितैषी कंस आदि राक्षस हर्ष प्रकट करने लगे ॥ २९ ॥

अवासुर बछड़ों और ग्वालबालोंके सहित भगवान् श्रीकृष्णको अपनी डाढ़ोंसे चबाकर चूर-चूर कर डालना चाहता था । परन्तु उसी समय अविनाशी श्रीकृष्णने देवताओंकी 'हाय-हाय' सुनकर उसके गलेमें अपने शरीरको बड़ी फुर्तीसे बड़ा लिया ॥ ३० ॥ इसके बाद भगवान्‌ने अपने शरीरको इतना बड़ा कर लिया कि उसका गला ही रूँच गया । ओंखें उल्ट गयीं । वह व्याकुल होकर बहुत ही छटपटने लगा । सौंसे रुककर सारे शरीरमें भर गयी और अन्तमें उसके प्राण ब्रह्मरन्ध्र फोड़कर निकल गये ॥ ३१ ॥ उसी मार्गसे प्राणोंके साथ उसकी सारी शक्तियाँ भी शरीरसे बाहर हो गयीं । उसी समय भगवान् मुकुन्दने अपनी अमृतमयी दृष्टिसे भरे हुए बछड़ों और ग्वालबालोंको जिला दिया और उन सबको साथ लेकर वे अवासुरके मुँहसे बाहर निकल आये ॥ ३२ ॥ उस अजगरके स्थूल शरीरसे एक अत्यन्त अद्भुत और महान् ज्योति निकली । उस समय उस ज्योति-के प्रकाशसे दसों दिशाएँ प्रज्वलित हो उठीं । वह पोकी देरतक तो आकाशमें स्थित होकर भगवान्‌के निकलनेकी प्रतीक्षा करती रही । जब वे बाहर निकल आये, तब वह सब देवताओंके देखते-देखते उन्हींमें समा गयी ॥ ३३ ॥ उस समय देवताओंने फूट बरसाकर, अम्सरोंने नाचकर, गन्धर्वोंने गायकर, विभावरोने बाजे बजाकर, ब्राह्मणोंने स्तुति-पाठकर और पार्षदोंने जय-जयकारके नारे लगाकर बड़े आनन्दसे भगवान् श्रीकृष्णका अभिनन्दन किया । क्योंकि भगवान् श्रीकृष्णने अवासुरको मारकर उन सबका बहुत बड़ा काम किया था ॥ ३४ ॥ उन बहुत स्तुतियों, सुन्दर बाजों, मङ्गलमय गीतों, जय-जयकार और आनन्दोत्सवोंकी मङ्गलध्वनि ब्रह्मलोकके पास पहुँच गयी । जब ब्रह्मजीने वह ध्वनि सुनी, तब वे बहुत ही शीघ्र अपने बाहनपर चढ़कर वहाँ आये और भगवान् श्रीकृष्णकी यह महिमा देखकर आश्चर्यचकित हो गये ॥ ३५ ॥ परीक्षित । जब वृन्दावनमें अजगरका वह चाम सूख गया, तब वह अजवासियोंके लिये बहुत दिनोंतक खेलनेकी

एक अद्भुत गुफा-सी बना रहा ॥ ३६ ॥ यह जो भगवान्ने अपने ग्वालबालोंको शृङ्गके मुखसे बचाया था और अघासुरको मोक्ष-दान किया था, वह लीला भगवान्ने अपनी कुमार-अवस्थामें अर्थात् पौंचवें वर्षमें ही की थी । ग्वालबालोंने उसे उसी समय देखा भी था, परन्तु पौण्ड्र-अवस्था अर्थात् छठे वर्षमें अत्यन्त आश्चर्यचकित होकर ब्रजमें उसका वर्णन किया ॥ ३७ ॥ अघासुरमूर्तिमान् अघ (पाप) ही था । भगवान्के स्पर्शमात्रसे उसके सारे पाप धुल गये और उसे उस सारूप्य-मुक्तिकी प्राप्ति हुई, जो पापियोंको कभी मिल नहीं सकती । परन्तु यह कोई आश्चर्यकी बात नहीं है । क्योंकि मनुष्य-बालककी-सी लीला रचनेवाले ये वे ही परमपुरुष परमात्मा हैं, जो व्यक्त-अव्यक्त और कार्य-कारणरूप समस्त जगत्के एकमात्र विधाता हैं ॥ ३८ ॥ भगवान् श्रीकृष्णके किसी एक भक्तकी भावनिर्मित प्रतिमा यदि प्यानके द्वारा एक बार भी हृदयमें बैठ आ जाय, तो वह सालोक्य, सामीप्य आदि गति का दान करती है, जो भगवान्के बड़े-बड़े भक्तोंको मिलती है । भगवान् आत्मानन्दके नित्य साक्षात्कारस्वरूप हैं । माया उनके पासतक नहीं फटक पाती । वे ही स्वयं अघासुरके शरीरमें प्रवेश कर गये । क्या अब भी उसकी सद्गतिके विषयमें कोई सन्देह है ? ॥ ३९ ॥

सूतजी कहते हैं—शौनकादि ऋषियो ! यदुवंश-शिरोमणि भगवान् श्रीकृष्णने ही राजा परीक्षितको जीवन-दान दिया था । उन्होंने जब अपने रक्षक एवं जीवनसर्वस्वका यह विचित्र चरित्र सुना, तब उन्होंने फिर श्रीशुकदेवजी महाराजसे उन्हींकी पवित्र लीलाके

सम्बन्धमें प्रश्न किया । इसका कारण यह था कि भगवान्की अमृतमयी लीलाके परीक्षितके चित्तको अपने वशमें कर रक्खा था ॥ ४० ॥

राजा परीक्षितने पूछा—भगवान् ! आपने कहा था कि ग्वालबालोंने भगवान्की की हुई पौंचवें वर्षकी लीला ब्रजमें छठे वर्षमें जाकर काही । अब इस विषयमें आप कृपा करके यह बतलाइये कि एक समयकी लीला दूसरे समयमें वर्तमानकालीन कैसे हो सकती है ? ॥ ४१ ॥ महायोगी गुरुदेव ! मुझे इस आश्चर्यपूर्ण रहस्यको जाननेके लिये वक्ष कौतूहल हो रहा है । आप कृपा करके बतलाइये । अवश्य ही इसमें भगवान् श्रीकृष्णकी विचित्र घटनाओंको घटित करनेवाली मायाका कुछ-न-कुछ काम होगा । क्योंकि और किसी प्रकार ऐसा नहीं हो सकता ॥ ४२ ॥ गुरुदेव ! यद्यपि क्षत्रियोचित धर्म ब्राह्मण-सेवासे विमुक्त होनेके कारण मैं अपराधी नाममात्रका क्षत्रिय हूँ, नचापि हमारा अहोभाग्य है कि हम आपके मुखारविन्दसे निरन्तर झरते हुए परम पवित्र मधुमय श्रीकृष्णलीलासूतका बार-बार पान कर रहे हैं ॥ ४३ ॥

सूतजी कहते हैं—भगवान्के परम प्रेमी भक्तोंमें श्रेष्ठ शौनकी ! जब राजा परीक्षितने इस प्रकार प्रश्न किया, तब श्रीशुकदेवजीको भगवान्की वह लीला स्मरण हो आयी । और उनकी समस्त इन्द्रियों तथा अन्तःकरण विवश होकर भगवान्की नित्यलीलामें खिंच गये । कुछ समयके बाद धीरे-धीरे ब्रम और कष्टसे उन्हें बाह्यज्ञान हुआ । तब वे परीक्षितसे भगवान्की लीलाका वर्णन करने लगे ॥ ४४ ॥

तेरहवाँ अध्याय

ब्रह्माजीका मोह और उसका नाश

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित ! तुम बड़े मायवान् हो । भगवान्के प्रेमी भक्तोंमें तुम्हारा स्थान श्रेष्ठ है । तभी तो तुमने इतना सुन्दर प्रश्न किया है । यों तो तुम्हें बार-बार भगवान्की लीला-कथाएँ सुननेको मिलती हैं, फिर भी तुम उनके सम्बन्धमें प्रश्न करके उन्हें और भी सरस—और भी नूतन बना देते

हो ॥ १ ॥ रसिक संतोंकी वाणी, कान और हृदय भगवान्की लीलाके गान, श्रवण और चिन्तनके लिये ही होते हैं—उनका यह स्वभाव ही होता है कि वे क्षण-प्रतिक्षण भगवान्की लीलाओंको अपूर्व रसमयी और नित्य-नूतन अनुभव करते रहें । ठीक वैसे ही, जैसे लम्पट पुरुषोंको बिरयोंकी चर्चामें नया-नया रस जान

पड़ता है ॥ २ ॥ परीक्षित ! तुम एकाग्र चित्तसे श्रवण करो । यद्यपि भगवान्की यह लीला अत्यन्त रहस्यमयी है, फिर भी मैं तुम्हें सुनाता हूँ । क्योंकि दयालु आचार्य-गण अपने प्रेमी शिष्योंको गुप्त रहस्य भी बतल दिया करते हैं ॥ ३ ॥ यह तो मैं तुमसे कह ही चुका हूँ कि भगवान् श्रीकृष्णने अपने साथी ग्वालबालोंको मृत्यु-रूप अभासुरके मुँहसे बचा लिया । इसके बाद वे उन्हें यमुनाके पुलिनपर ले आये और उनसे कहने लगे—॥ ४ ॥ 'मेरे प्यारे मित्रो ! यमुनाजीका यह पुलिन अत्यन्त रमणीय है । देखो तो सही, यहाँकी बाछ फितनी कोमल और स्वच्छ है । हमलोगोंके लिये खेलनेकी तो यहाँ सभी सामग्री विद्यमान है । देखो, एक ओर रंग-विरंगे कमल खिले हुए हैं और उनकी सुगन्धसे क्षिप्तकर और गुंजार कर रहे हैं; तो दूसरी ओर सुन्दर-सुन्दर पक्षी बजा ही मधुर कण्ठ्य कर रहे हैं, जिसकी प्रतिध्वनिते सुशोभित हुआ इस स्थानकी शोभा बढ़ा रहे हैं ॥ ५ ॥ अब हमलोगोंको यहाँ भोजन कर लेना चाहिये । क्योंकि दिन बहुत चढ़ आया है और हमलोग मूखसे पीड़ित हो रहे हैं । बछड़े पानी पीकर समीप ही धीरे-धीरे हरी-हरी घास चरते रहें' ॥ ६ ॥

ग्वालबालोंने एक स्वरसे कहा—'ठीक है, ठीक है !' उन्होंने बछड़ोंको पानी पिलाकर हरी-हरी घासमें छेब दिया और अपने-अपने छीके खोल-खोलकर भगवान्के साथ बड़े आनन्दसे भोजन करने लगे ॥ ७ ॥ सबके बीचमें भगवान् श्रीकृष्ण बैठ गये । उनके चारों ओर ग्वालबालोंने बहुत-सी मण्डलककार पंक्तियाँ बना लीं और एक-से-एक सटकर बैठ गये । सबके मुँह श्रीकृष्णकी ओर थे और सबकी आँखें आनन्दसे खिल रही थीं । धन-भोजनके समय श्रीकृष्णके साथ बैठे हुए ग्वालबाल ऐसे शोभायमान हो रहे थे, मानो कमलकी कर्णिकाके चारों ओर उसकी छोटी-बड़ी फैलुदियों सुशोभित हो रही हों ॥ ८ ॥ कोई पुष्प तो कोई पत्ते और कोई-कोई पल्लव, अंकुर, फल, छीके, छल एव फलरोंके पात्र बनाकर भोजन करते लगे ॥ ९ ॥ भगवान् श्रीकृष्ण और ग्वालबाल सभी परस्पर अपनी-अपनी मिस-मिन्न रुचिका प्रदर्शन करते । कोई किसीको ईसा देता, तो

कोई खर्च ही हँसते-हँसते जेट पीठ हो जाता । इस प्रकार वे सब भोजन करने लगे ॥ १० ॥ (उस समय श्रीकृष्णकी छटा सबसे निराखी थी ।) उन्होंने मुरलीको तो कमरकी पेंटमें आगेकी ओर खोस लिया था । सींग और नेत बगलमें दबा लिये थे । बायें हाथमें बड़ा ही मधुर वृत्तमिश्रित दही-भातका प्राप्त था और आँगुलियोंमें अदरक, नीचू आदिके अचार-मुरब्बे दबा रक्ते थे । ग्वालबाल उनको चारों ओरसे घेरकर बैठे हुए थे और वे खूब सबके बीचमें बैठकर अपनी विनोदमयी बातोंसे अपने साथी ग्वालबालोंको हँसाते जा रहे थे । जो समय यहाँके एकमात्र मोक्षा हैं, वे ही भगवान् ग्वालबालोंके साथ बैठकर इस प्रकार बाल-लीला करते हुए भोजन कर रहे थे और सर्गिके देवता आश्चर्यचकित होकर यह अद्भुत लीला देख रहे थे ॥ ११ ॥

मरतबंशसिरोमणे ! इस प्रकार भोजन करते-करते ग्वालबाल भगवान्की इस रसमयी लीलामें तन्मय हो गये । उसी समय उनके बछड़े हरी-हरी घासके छालचसे और जंगलमें बड़ी दूर निकल गये ॥ १२ ॥ जब ग्वालबालोंका ध्यान उस ओर गया, तब तो वे मयमौत हो गये । उस समय अपने भक्तोंके भयको भगा देनेवाले भगवान् श्रीकृष्णने कहा—'मेरे प्यारे मित्रो ! तुमलोग भोजन करना बंद मत करो । मैं अभी बछड़ोंको लिये आता हूँ' ॥ १३ ॥ ग्वालबालोंसे इस प्रकार कहकर भगवान् श्रीकृष्ण हाथमेंदही-भातका कौर लिये ही पहावों, गुफाओं, कुड्डों एवं अग्न्याश्रय भयङ्कर स्थानोंमें अपने तथा साधियोंके बछड़ोंको ढूँढ़ने चल दिये ॥ १४ ॥ परीक्षित ! ब्रह्मजी पहलेसे ही आकाशमें उपस्थित थे । प्रभुके प्रभावसे अभासुरका मोक्ष देखकर उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ । उन्होंने सोचा कि लीलासे मनुष्य-बाळक बने हुए भगवान् श्रीकृष्णकी कोई और मनोहर महिमामयी लीला देखनी चाहिये । ऐसा सोचकर उन्होंने पहले तो बछड़ोंको, और भगवान् श्रीकृष्णके चले जानेपर ग्वालबालोंको भी, अन्यत्र ले जाकर रक्ष दिया और स्वयं अन्तर्धान हो गये, वन्ततः वे जब कमलकी ही तो सन्तान हैं ॥ १५ ॥

भगवान् श्रीकृष्ण बछड़े न मिलनेपर यमुनाजीके पुलिनपर जेट आये, परन्तु यहाँ क्या देखते हैं कि

ग्यालबाल भी नहीं हैं । तब उन्होंने वनमें घूम-घूमकर चारों ओर उन्हें ढूँढ़ा ॥ १६ ॥ परन्तु जब ग्यालबाल और बछड़े उन्हें कहीं न मिले, तब वे तुरंत जान गये कि यह सब ब्रह्माजी करतूत है । वे तो सारे विश्वके एकमात्र ज्ञाता हैं ॥ १७ ॥ अब भगवान् श्रीकृष्णने बछड़ों और ग्यालबालोंकी माताओंको तथा ब्रह्माजीकी भी आनन्दित करनेके लिये अपने-आपको ही बछड़ों और ग्यालबालों—दोनोंके रूपमें बना लिया ॥ क्योंकि वे ही तो सम्पूर्ण विश्वके कर्ता सर्वशक्तिमान् ईश्वर हैं ॥ १८ ॥ परीक्षित् ! वे बाळक और बछड़े संख्यासे जितने थे, जितने छोटे-छोटे उनके शरीर थे, उनके हाथ-पैर जैसे-जैसे थे, उनके पास जितनी और जैसी छड़ियाँ, सींग, बाँसुरी, पत्ते और छींक थे, जैसे और जितने वशाभूषण थे, उनके शीछ, सभाष, गुण, नाम, रूप और अवस्थाएँ जैसी थीं, जिस प्रकार वे खाते-पीते और चखते थे, ठीक वैसे ही और उतने ही रूपोंमें सर्वस्वरूप भगवान् श्रीकृष्ण प्रकट हो गये । उस समय 'यह सम्पूर्ण जगत् विष्णुरूप है'—यह वेदवाणी मानो मूर्तिमती होकर प्रकट हो गयी ॥ १९ ॥ सर्वात्मा भगवान् स्वयं ही बछड़े बन गये और स्वयं ही ग्याल-बाल । अपने आत्मस्वरूप बछड़ोंको अपने आत्मस्वरूप ग्याल-बालोंके द्वारा धेरकर अपने ही साथ अनेकों प्रकारके खेल खेलते हुए उन्होंने ब्रजमें प्रवेश किया ॥ २० ॥ परीक्षित् ! जिस ग्यालबालके जो बछड़े थे, उन्हें उसी ग्यालबालके रूपसे अलग-अलग ले जाकर उसकी बाखलमें घुसा दिया और विभिन्न बाळकोंके रूपमें उनके भिन्न-भिन्न घरोंमें चले गये ॥ २१ ॥

ग्यालबालोंकी माताएँ बाँसुरीकी तान सुनते ही जल्दी-से दौड़ आयीं । ग्यालबाल बने हुए परब्रह्म श्रीकृष्णको अपने बच्चे समझकर हाथोंसे छत्रकर उन्होंने जोरसे हृदयसे लगा लिया । वे अपने स्तनोंसे वात्सल्य-स्नेहकी अधिकताके कारण सुधासे गी मधुर और आसवसे भी मादक बुबुवाता हुआ दूध उन्हें पिखने लगीं ॥ २२ ॥ परीक्षित् ! इसी प्रकार प्रतिदिन सन्ध्यासमय भगवान् श्रीकृष्ण उन ग्यालबालोंके रूपमें वनसे लौट

आते और अपनी बाळसुखम लीलाओंसे माताओंको आनन्दित करते । वे माताएँ उन्हें उबटन लगातीं, नहलातीं, चन्दनका लेप करतीं और अच्छे-अच्छे वस्त्रों तथा गहनोंसे सजातीं । दोनों मौहोंके बीचमें धीठसे बचानेके लिये काजकला डिठौना लगा देतीं तथा भोजन करातीं और तरह-तरहसे बड़े खद-प्यारसे उनका लाइन पाळन करतीं ॥ २३ ॥ ग्यालिनोंके समान गौएँ भी जब जगलों-मेंसे चरकर जल्दी-जल्दी लौटतीं और उनकी हुंकार सुनकर उनके प्यारे बछड़े दौड़कर उनके पास आ जाते, तब वे बार-बार उन्हें अपनी जीभसे चाटतीं और अपना दूध पिखातीं । उस समय स्नेहकी अधिकताके कारण उनके घनोंसे स्वयं ही दूधकी बारा बहने लगती ॥ २४ ॥ इन गायों और ग्यालिनोंका मातृभाव पहले-जैसा ही ऐश्वर्यज्ञानरहित और निमुद्र था । हाँ, अपने असली पुत्रोंकी अपेक्षा इस समय उनका स्नेह अवश्य अधिक था । इसी प्रकार भगवान् भी उनके पहले पुत्रोंके समान ही पुत्रभाव दिखला रहे थे, परन्तु भगवान्में उन बाळकों-के-जैसा मोहका भाव नहीं था कि मैं इनका पुत्र हूँ ॥ २५ ॥ अपने-अपने बाळकोंके प्रति प्रजवासियोंकी स्नेह-रसा दिन-प्रतिदिन एक वर्षतक धीरे-धीरे बढ़ती ही गयी । यहाँतक कि पहले श्रीकृष्णमें उनका जैसा असीम और अपूर्व प्रेम था, वैसा ही अपने इन बाळकोंके प्रति भी हो गया ॥ २६ ॥ इस प्रकार सर्वात्मा श्रीकृष्ण बछड़े और ग्यालबालोंके अहाने गेपाळ बनकर अपने बाळकरूपसे वस्तरूपका पाळन करते हुए एक वर्षतक वन और गोष्ठमें क्रीडा करते रहे ॥ २७ ॥

जब एक वर्ष पूरा होनेमें पाँच-छः रातें शेष थीं, तब एक दिन भगवान् श्रीकृष्ण बछरामजीके साथ बछड़ों-को चराते हुए वनमें गये ॥ २८ ॥ उस समय गौएँ गोवर्धनकी चोटीपर घास चर रही थीं । वहाँसे उन्होंने ब्रजके पास ही घास चरते हुए बहुत दूर अपने बछड़ोंको देखा ॥ २९ ॥ बछड़ोंको देखते ही गौज्योंका वात्सल्य-स्नेह उमड़ आया । वे अपने-

● भगवान् सर्वसमर्थ हैं । वे ब्रह्माजीके सुपुत्रे हुए ग्यालबाल और बछड़ोंको व्यक्त करते हैं । किन्तु इतने ब्रह्माजीका मोह दूर न होता और वे भगवान्की उलट दिव्य भाषाका ऐश्वर्य न देख सकते, जिससे उनके विश्वकर्ता होनेके अभिमानको नष्ट किया । इसीलिये भगवान् उन्हें ग्यालबाल और बछड़ोंको न बाँकर स्वयं ही वैसे ही एवं उतने ही ग्यालबाल और बछड़े बन गये ।

आपकी सुध-बुध खो बैठी और ग्वालोकें रोकनेकी कुछ भी परवा न कर जिस मार्गसे वे न जा सकते थे, उस मार्गसे हुंकार करती हुई वड़े वेगसे दौड़ पड़ीं । उस समय उनके धनोसे दूध बहता जाता था और उनकी गरदनमें सिकुबकर डीलसे मिल गयी थीं । वे दूँछ तथा सिर उठाकर इतने वेगसे दौड़ रही थीं कि माछम होता था मानो उनके दो ही पैर हैं ॥ ३० ॥ जिन गौओंकी और भी बछड़े हो चुके थे, वे भी गोवर्धनके नीचे अपने पहले बछड़ोंके पास दौड़ आयीं और उन्हें स्नेहवश अपने-आप बहता हुआ दूध पिलाने लगीं । उस समय वे अपने बच्चोंका एक-एक अङ्ग ऐसे चाबसे चाट रही थीं, मानो उन्हें अपने पेटमें रख लेगी ॥ ३१ ॥ गोपोंने उन्हें रोकनेका बहुत कुछ प्रयत्न किया, परन्तु उनका सारा प्रयत्न व्यर्थ रहा । उन्हें अपनी विफलतापर कुछ लज्जा और गायोंपर बड़ा क्रोध आया । जब वे बहुत कष्ट उठाकर उस कठिन मार्गसे उस स्थानपर पहुँचे, तब उन्होंने बछड़ोंके साथ अपने बालकोंको भी देखा ॥ ३२ ॥ अपने बच्चोंको देखते ही उनका हृदय प्रेम-रससे सराबोर हो गया । बालकोंके प्रति अनुरागकी बाढ़ आ गयी, उनका क्रोध न जाने कहाँ हवा हो गया । उन्होंने अपने-अपने बालकोंको गोदमें उठाकर हृदयसे लगा लिया और उनका मस्तक सूँघकर अत्यन्त आनन्दित हुए ॥ ३३ ॥ बूढ़े गोपोंको अपने बालकोंके आलिंगनसे परम आनन्द प्राप्त हुआ । वे मिहाल हो गये । फिर बड़े कष्टसे उन्हें छोड़कर धीरे-धीरे वहाँसे गये । जानेके बाद भी बालकोंके और उनके आलिंगनके स्मरणसे उनके नेत्रोंसे प्रेमके आँसू बहते रहे ॥ ३४ ॥

बकरामजीने देखा कि ब्रजवासी गोप, गौर् और ग्वालिनोंकी उन सन्तानोंपर भी, जिन्होंने अपनी माका दूध पीना छोड़ दिया है, क्षण-प्रतिक्षण प्रेम-सम्पत्ति और उसके अनुरूप उत्कण्ठ बढ़ती ही जा रही है । तब वे विचारमें पड़ गये, क्योंकि उन्हें इसका कारण माछम न था ॥ ३५ ॥ 'यह कैसी विचित्र बात है । सर्वांगी श्रीकृष्णमें ब्रजवासियोंका और मेरा जैसा अधूर्ण स्नेह है, वैसा ही इन बालकों और बछड़ोंपर भी बढ़ता जा रहा है ॥ ३६ ॥ यह कौन-सी माया है ? कहाँसे आयी है ?

यह किसी देवताकी है, मनुष्यकी है अथवा असुरोंकी ? परन्तु क्या ऐसा भी सम्भव है ? नहीं-नहीं यह तो मेरे प्रभुकी ही माया है । और किसीकी मायामें ऐसी सामर्थ्य नहीं, जो मुझे भी मोहित कर ले ॥ ३७ ॥ बकरामजीने ऐसा विचार करके ज्ञानदृष्टिसे देखा, तो उन्हें ऐसा माछम हुआ कि इन सब बछड़ों और ग्वालबालोंके रूपमें केवल श्रीकृष्ण-ही-श्रीकृष्ण हैं ॥ ३८ ॥ तब उन्होंने श्रीकृष्णसे कहा—'भगवन् ! ये ग्वालबाल और बछड़े न देवता हैं और न तो कोई ऋषि ही । इन भिन्न-भिन्न रूपोंका आश्रय लेनेपर भी आप वक्रेक्षे ही इन रूपोंमें प्रकाशित हो रहे हैं । कृपया स्पष्ट करके योदेमें ही यह बात बतला दीजिये कि आप इस प्रकार बछड़े, बालक, सींग, रत्ती आदिके रूपमें अलग-अलग रूपों प्रकाशित हो रहे हैं ? तब भगवान्ने ब्रह्माकी सारी करपुत्र सुनायी और बकरामजीने सब बातें जान लीं ॥ ३९ ॥

परीक्षित । तबतक ब्रह्माजी ब्रह्मलोकसे ब्रजमें लौट आये । उनके कालमानसे अवतक केवल एक वृद्धि (जितनी देरमें तीखी सूर्यसे कमलकी पँखुड़ी छिदे) समय व्यतीत हुआ था । उन्होंने देखा कि भगवान् श्रीकृष्ण ग्वालबाल और बछड़ोंके साथ एक साइसे पहलकी भेति ही क्रीडा कर रहे हैं ॥ ४० ॥ वे सोचने लगे—'गोकुलमें जितने भी ग्वालबाल और बछड़े थे, वे तो मेरी मायामयी शय्यापर सो रहे हैं—उनको तो मैंने अपनी मायासे अचेत कर दिया था; वे तबसे अवतक सचेत नहीं हुए ॥ ४१ ॥ तब मेरी मायासे मोहित ग्वालबाल और बछड़ोंके अतिरिक्त ये उतने ही दूसरे बालक तथा बछड़े कहाँसे आ गये, जो एक साइसे गगनान्के साथ खेल रहे हैं ? ॥ ४२ ॥ ब्रह्माजीने दोनों स्थानोंपर दोनोंको देखा और बहुत देरतक ध्यान करके अपनी ज्ञानदृष्टिसे उनका रहस्य खोजना चाहा; परन्तु इन दोनोंमें कौनसे पहलके ग्वालबाल हैं और कौनसे पीछे बना लिये गये हैं, इनमेंसे कौन सच्चे हैं और कौन बनावटी—यह बात वे किसी प्रकार न समझ सके ॥ ४३ ॥ भगवान् श्रीकृष्णकी मायामें तो सभी मुग्ध हो रहे हैं, परन्तु कोई भी माया-मोह भगवान्का स्पर्श नहीं कर सकता । ब्रह्माजी उन्होंने भगवान् श्रीकृष्णको अपनी मायासे

मोहित करने चले थे । किन्तु उनको मोहित करना तो दूर रहा, वे अजन्मा होनेपर भी अपनी ही मायासे अपने-आप मोहित हो गये ॥ ४४ ॥ जिस प्रकार रातके घोर अन्धकारमें कुहरेके अन्धकारका और दिनके प्रकाशमें धुनूके प्रकाशका पता नहीं चलता, वैसे ही जब क्षुद्र पुरुष महापुरुषोंपर अपनी मायाका प्रयोग करते हैं, तब वह उनका तो कुछ विगाढ़ नहीं सकती, अपना ही प्रभाव खो बैठती है ॥ ४५ ॥

ब्रह्माजी विचार कर ही रहे थे कि उनके देखते-देखते उसी क्षण सभी ग्वालबाल और बड़बड़े श्रीकृष्णके रूपमें दिखायी पड़ने लगे । सबके-सब सजल जलवरके समान इयामवर्ण, पीताम्बरधारी, शङ्ख, चक्र, गदा और पद्मे युक्त—वत्सुर्ज ! सबके सिरपर मुकुट, कानोंमें कुण्डल और कर्णोंमें मनोहर हार तथा वनमाछाएँ शोभायमान हो रही थीं ॥ ४६-४७ ॥ उनके वक्षःस्वरूप पर सुवर्णकी सुमहली रेखा—श्रीकृष्ण, बाहुओंमें बाजूबंद, कलाहयोंमें शङ्काकार रत्नोंसे जड़े कंठन, चरणोंमें नूपुर और कबूते, कमरमें करवनी तथा अँगुलियोंमें अँगूठियाँ जगमगा रही थीं ॥ ४८ ॥ वे नखसे शिखतक समस्त अङ्गोंमें कोमल और नूतन तुलसीकी माछाएँ, जो उन्हें बड़े भाग्यशाली भक्तोंने पहनायी थीं, धारण किये हुए थे ॥ ४९ ॥ उनकी मुसकान चौदनीके समान उज्ज्वल थी और रतनारे नेत्रोंकी कटाक्षपूर्ण चितवन बड़ी ही मधुर थी । ऐसा जान पड़ता था मानो वे इन दोनोंके द्वारा सत्त्वगुण और रजोदुष्टोंको स्वीकार करके भक्तजनोंके हृदयमें शुद्ध लालसाएँ जगाकर उनको पूर्ण कर रहे हैं ॥ ५० ॥ ब्रह्माजीने यह भी देखा कि उन्हींके-जैसे दूसरे ब्रह्मासे लेकर दृष्टतक सभी चराचर जीव मूर्तिमान् होकर नाचते-गाते अनेक प्रकारकी पूजासामग्रीसे अलग-अलग भगवान्‌के उन सब रूपोंकी उपासना कर रहे हैं ॥ ५१ ॥ उन्हें अलग-अलग अणिमा-महिमा आदि सिद्धियाँ, माया-विद्या आदि विभूतियाँ और गह्वराल आदि चौबीसों तत्त्व चारों ओरसे घेरे हुए हैं ॥ ५२ ॥ प्रकृतिमें क्षोभ उत्पन्न करनेवाला काल, उसके परिणामका कारण स्वभाव, वासनाओंको जगनेवाला संस्कार, कामनाएँ, कर्म, विषय और फल—सभी मूर्तिमान् होकर भगवान्‌के प्रत्येक रूपकी उपासना कर रहे हैं । भगवान्‌की सत्ता

और महत्ताके सामने उन सभीकी सत्ता और महत्ता अपना अस्तित्व खो बैठती थी ॥ ५३ ॥ ब्रह्माजीने यह भी देखा कि वे सभी भूत, भविष्यत् और वर्तमान कालके द्वारा सीमित नहीं हैं, त्रिकालबाधित सत्य हैं । वे सबके-सब स्वर्गप्रकाश और कैवल्य अनन्त आनन्दस्वरूप हैं । उनमें जड़ता अथवा चेतनताका भेदभाव नहीं है । वे सबके-सब एकरस हैं । यहाँतक कि उपनिषद्‌शी तत्त्वज्ञानियोंकी दृष्टि भी उनकी अनन्त महिमाका स्पर्श नहीं कर सकती ॥ ५४ ॥ इस प्रकार ब्रह्माजीने एक साथ ही देखा कि वे सबके-सब उन परब्रह्म परमात्मा श्रीकृष्णके ही स्वरूप हैं, जिनके प्रकाशसे यह सारा चराचर जगत् प्रकाशित हो रहा है ॥ ५५ ॥

यह अत्यन्त आश्चर्यमय दृश्य देखकर ब्रह्माजी तो चकित रह गये । उनकी ग्यारहों इन्द्रियों (पाँच कर्मेंद्रिय, पाँच ज्ञानेन्द्रिय और एक मन) क्षुब्ध एवं स्तब्ध रह गयीं । वे भगवान्‌के तेजसे निस्तेज होकर मौन हो गये । उस समय वे ऐसे स्तब्ध होकर खड़े रह गये, मानो ब्रह्मके अविद्यात्-देवताके पास एक पुतली खड़ी हो ॥ ५६ ॥ परीक्षित ! भगवान्‌का स्वरूप तर्कसे परे है । उसकी महिमा असाधारण है । वह स्वर्गप्रकाश, आनन्दस्वरूप और मायासे अतीत है । वेदान्त भी साक्षात्‌रूपसे उसका वर्णन करनेमें असमर्थ है, इसलिये उससे मिश्रित निवेद्य करके आनन्दस्वरूप ब्रह्मा किसी प्रकार कुछ सङ्केत करता है । यद्यपि ब्रह्माजी समस्त विद्याओंके अधिपति हैं, तथापि भगवान्‌के दिव्यस्वरूपको वे तनिक भी न समझ सके कि यह क्या है । यहाँतक कि वे भगवान्‌के उन महिमायुक्त रूपोंको देखनेमें भी असमर्थ हो गये । उनकी आँखें मुँद गयीं । भगवान् श्रीकृष्णने ब्रह्मके इस मोह और असमर्थताको जानकर बिना किसी प्रयासके तुरंत अपनी मायाका परदा हटा दिया ॥ ५७ ॥ इससे ब्रह्माजीको बाह्यज्ञान हुआ । वे मानो मरकट फिर बी उठे । सचेत होकर उन्होंने ज्यों-त्यों करके बड़े कष्टसे अपने नेत्र खोले । तब कहीं उन्हें अपना शरीर और यह जगत् दिखायी पड़ा ॥ ५८ ॥ फिर ब्रह्माजी जब चारों ओर देखने लगे, तब पहले दिखाएँ और उसके बाद तुरंत ही उनके सामने हृन्दावन



सुमधुर गोपाल

दिखायी पड़ा । वृन्दावन सबके लिये एक-सा प्यारा है । निघर देखिये, उधर ही जीवोंको जीवन देनेवाले फल और फूलोंसे लदे हुए, हरे-हरे पत्तोंसे लहलहाते हुए वृक्षोंकी पोंतें शोभा पा रही हैं ॥ ५९ ॥ भगवान् श्रीकृष्णकी लीलामूर्ति होनेके कारण वृन्दावन-धाममें क्रोध, वृथा आदि दोष प्रवेश नहीं कर सकते और वहाँ स्वभावसे ही परस्पर द्रुत्यज्य चैर रखनेवाले मनुष्य और पशु-पक्षी भी प्रेमी मित्रोंके समान हिल-मिलकर एक साथ रहते हैं ॥ ६० ॥ ब्रह्माजीने वृन्दावनका दर्शन करनेके बाद देखा कि अद्वितीय परब्रह्म गोपवंशके बालकका-सा भाव्य कर रहा है । एक होनेपर भी उसके सखा हैं, अनन्त होनेपर भी वह श्वर-उधर घूम रहा है और उसका ज्ञान अगाध होनेपर भी वह अपने ग्वालबाल और बछड़ों-को दूँव रहा है । ब्रह्माजीने देखा कि जैसे भगवान् श्रीकृष्ण पहले अपने हाथमें दही-भातका कौर लिये उन्हें

दूँव रहे थे, वैसे ही अब भी अकेले ही उनकी खोजमें लगे हैं ॥ ६१ ॥ भगवान्को देखते ही ब्रह्माजी अपने बाहन हंसपरसे कूद पड़े और सोनेके समान चमकते हुए अपने शरीरसे पृथ्वीपर दण्डकी भोंति गिर पड़े । उन्होंने अपने चारों मुकुटोंके अग्रभागसे भगवान्के चरण-कमलोंका स्पर्श करके नमस्कार किया और आनन्दके आँसुओंकी धारासे उन्हें नहला दिया ॥ ६२ ॥ वे भगवान् श्रीकृष्णकी पहले देखी हुई महिमाका बार-बार स्मरण करते, उनके चरणोंपर गिरते और उठ-उठकर फिर-फिर गिर पड़ते । इसी प्रकार बहुत देरतक वे भगवान्के चरणोंमें ही पड़े रहे ॥ ६३ ॥ फिर धीरे-धीरे उठे और अपने नेत्रोंके आँसू पोंछे । प्रेम और मुक्तिके एकमात्र उद्गम भगवान्को देखकर उनका सिर झुक गया । वे कर्पणें लगे । अल्लखि बोंधकर बची नवरा और एकाग्रताके साथ गद्गद बाणीसे वे भगवान्की स्तुति करने लगे ॥ ६४ ॥

चौदहवाँ अध्याय

ब्रह्माजीके द्वारा भगवान्की स्तुति

श्रीब्रह्माजीने स्तुति की—प्रभो ! एकमात्र आप ही स्तुति करने योग्य हैं । मैं आपके चरणोंमें नमस्कार करता हूँ । आपका यह शरीर वर्षाकालीन मेवके समान क्षामक है, इसपर स्थिर बिजलीके समान झिलमिल-झिलमिल करता हुआ पीताम्बर शोभा प्रता है, आपके गलेमें झुँघचीकी माला, कानोंमें मकराकृति कुण्डल तथा सिरपर मोरपंखोंका मुकुट है, इन सबकी कान्तिसे आपके मुखपर अनोखी छटा छिटक रही है । वसःस्थलम् कटकती हुई वनमाला और नन्ही-सी हथेलीपर दही-भातका कौर । वगलमें बैत और सींग तथा कमरकी फँटमें आपकी पहचान बतानेवाली बाँसुरी शोभा पा रही है । आपके कमलसे सुकोमल परम सुकुमार चरण और यह गोपाल-बालकका सुमधुर वेष । (मैं और कुछ नहीं जानता; वस, मैं तो इन्हीं चरणोंपर निजवर हूँ) ॥ १ ॥ खय-प्रकाश परमात्मन् । आपका यह श्रीविग्रह मत्तजनोंकी लालसा-अभिलाषा पूर्ण करनेवाला है । यह आपकी चिन्मयी इन्द्राका स्तिमान् स्वरूप मुखपर आपका साक्षात्

रूपा-प्रसाद है । मुझे अनुगृहीत करनेके लिये ही आपने इसे प्रकट किया है । कौन कहता है कि यह पञ्चभूतोंकी रचना है ? प्रभो ! यह तो अप्राकृत छुद्र सत्यमय है । मैं या और कोई समाधि लगाकर भी आपके इस सच्चिदानन्द-स्मिहकी महिमा नहीं जान सकता । फिर आत्मानन्दानुभवस्वरूप साक्षात् आपकी ही महिमाको तो कोई एकाग्रमनसे भी कैसे जान सकता है ॥ २ ॥ प्रभो ! जो लोग ज्ञानके लिये प्रयत्न न करके अपने स्थानमें ही स्थित रहकर केवल सत्सङ्ग करते हैं और आपके प्रेमी संत पुरुषोंके द्वारा गायी हुई आपकी लीला-कथाका, जो उन लोगोंके पास रहनेसे अपने-आप सुननेको मिलती है, शरीर, बाणी और मनसे विनयावनत होकर सेवन करते हैं—यहाँतक कि उसे ही अपना जीवन बना लेते हैं, उसके बिना जी ही नहीं सकते—प्रभो ! यद्यपि आपपर त्रिलोकीमें कोई कभी विजय प्राप्त नहीं कर सकता, फिर भी वे आपपर विजय प्राप्त कर लेते हैं, आप उनके प्रेमके अधीन हो जाते हैं ॥ ३ ॥ भगवन् ! आपकी भक्ति

सब प्रकारके कल्याणका मूलस्रोत—उद्गम है। जो लोग उसे छोड़कर केवल ज्ञानकी प्राप्तिके लिये श्रम उठाते और दुःख भोगते हैं, उनको बस, ज्ञेय-ही-वत्त्वेन हाथ लगता है, और कुछ नहीं—जैसे थोड़ी मूसी कूटनेवालेको केवल श्रम ही मिलता है, चाकल नहीं ॥ ४ ॥

हे अच्युत ! हे अनन्त ! इस लोकमें पहले भी बहुत-से योगी हो गये हैं। जब उन्हें योगादिके द्वारा आपकी प्राप्ति न हुई, तब उन्होंने अपने लौकिक और वैदिक समस्त कर्म आपके चरणोंमें समर्पित कर दिये। उन समर्पित कर्मोंसे तथा आपकी लीला-कथासे उन्हें आपकी भक्ति प्राप्त हुई। उस भक्तिके ही आपके स्वरूपका ज्ञान प्राप्त करके उन्होंने बड़ी दुःखतासे आपके परमपदकी प्राप्ति कर ली ॥ ५ ॥ हे अनन्त ! आपके सगुण-निर्गुण दोनों स्वरूपोंका ज्ञान कठिन होनेपर भी निर्गुण स्वरूपकी महिमा इन्द्रियोंका प्रत्याहार करके शुद्धान्तःकरणसे जानी जा सकती है। (जाननेकी प्रक्रिया यह है कि) विशेष आकारके परित्यागपूर्वक आत्माकर अन्तःकरणका साक्षात्कार किया जाय। यह आत्माकरता घट-पटादि रूपके समान ज्ञेय नहीं है, प्रत्युत आवरणका भ्रूमात्र है। यह साक्षात्कार 'यह ब्रह्म है' 'मैं ब्रह्मको जानता हूँ' इस प्रकार नहीं किन्तु स्वयंप्रकाश रूपसे ही होता है ॥ ६ ॥ परन्तु भगवन् ! जिन समर्थ पुरुषोंने अनेक जन्मोंतक परिश्रम करके पृथ्वीका एक-एक परमाणु, आकाशके हिमकण (ओसकी बूँदें) तथा उसमें चमकनेवाले नक्षत्र एवं तारोंतकको गिन ढाका है—उनमें भी मला, ऐसा कौन हो सकता है जो आपके सगुण स्वरूपके अनन्त गुणोंको गिन सके ? प्रभो ! आप केवल संसारके कल्याणके लिये ही अवतीर्ण हुए हैं। सो भगवन् ! आपकी महिमाका ज्ञान तो बड़ा ही कठिन है ॥ ७ ॥ इसलिये जो पुरुष क्षण-क्षणपर बड़ी उत्सुकतासे आपकी कृपाका ही मलीमोति अनुभव करता रहता है और प्रारब्धके अनुसार जो कुछ सुख या दुःख प्राप्त होता है उसे निर्विकार मनसे योग लेता है, एवं जो प्रेमपूर्ण हृदय, गद्गद वाणी और पुलकित शरीरसे अपनेको आपके चरणोंमें समर्पित करता रहता है—इस प्रकार जीवन व्यतीत करनेवाला पुरुष ठीक

वैसे ही आपके परम पदका अधिकारी हो जाता है, जैसे अपने पिताकी सम्पत्तिको पुत्र ॥ ८ ॥

प्रभो ! मेरी कुटिलता तो देखिये। आप अनन्त आदि-पुरुष परमात्मा हैं और मेरे-जैसे बड़े-बड़े मायावी भी आपकी मायाके चक्रमें हैं। फिर भी मैंने आपपर अपनी माया फैलकर अपना ऐश्वर्य देkhना चाहा। प्रभो ! मैं आपके सामने हूँ ही क्या। क्या आगेके सामने चिंगारीकी भी कुछ गिनती है ? ॥ ९ ॥ भगवन् ! मैं रजोगुणसे ऊपज हुआ हूँ। आपके स्वरूपको मैं ठीक-ठीक नहीं जानता। इसीसे अपनेको आपसे अलग संसारका सामी माने बैठा था। मैं अजन्मा जगत्कर्ता हूँ—इस मायावश मोहके घने अन्धकारसे मैं अंधा हो रहा था। इसलिये आप यह समझकर कि 'यह मेरे ही अधीन है—मेरा भृत्य है, इसपर कृपा करनी चाहिये,' मेरा अपराध क्षमा कीजिये ॥ १० ॥ मेरे स्वामी ! प्रकृति, महत्तत्त्व, अहङ्कार, आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वीरूप आवरणोंसे घिरा हुआ यह ब्रह्माण्ड ही मेरा शरीर है। और आपके एक-एक रोमके छिद्रमें ऐसे-ऐसे अगणित ब्रह्माण्ड उसी प्रकार उबटने-पबटने रहते हैं, जैसे झरोखेकी जाळीमेंसे आनेवाली सूर्यकी किरणोंमें रजके छोटे-छोटे परमाणु उबटने हुए दिखायी पड़ते हैं। कहाँ अपने परिमाणसे साढ़े तीन हाथके शरीरवाला अल्पतः क्षुद्र मैं, और कहाँ आपकी अनन्त महिमा ॥ ११ ॥ वृत्तिघोंकी पकड़में न आनेवाले परमात्मन् ! जब वक्ता माताके पेटमें रहता है, तब अज्ञानवश अपने हाथ-पैर पीटता है; परन्तु क्या माता उसे अपराध समझती है या उसके लिये वह कोई अपराध होता है ? 'ही' और 'नहीं है'—इन शब्दोंसे कहीं जाने-वाली कोई भी वस्तु ऐसी है क्या, जो आपकी कोखके भीतर न हो ? ॥ १२ ॥

श्रुतिवाँ कहती है कि जिस समय तीनों लोक प्रलयकालीन जलमें डूब जायें, उस समय उस जलमें स्थित श्रीनारायणके नाभिकमलसे ब्रह्माका जन्म हुआ। उनका यह कहना किसी प्रकार असत्य नहीं हो सकता। तब आप ही वतलाइये, प्रभो ! क्या मैं आपका पुत्र नहीं हूँ ? ॥ १३ ॥ प्रभो ! आप समस्त जीवोंके आत्मा हैं। इसलिये आप नारायण (नार—जीव और अपन—

आश्रय) है। आप समस्त जगत्के और जीवोंके अधीश्वर हैं, इसलिये आप नारायण (नार—जीव और अयन—प्रवर्तक) हैं। आप समस्त जेवोंके साक्षी हैं, इसलिये भी नारायण (नार—जीव और अयन—जाननेवाला) हैं। नरसे उत्पन्न होनेवाले जलमें निवास करनेके कारण जिन्हें नारायण (नार—जल और अयन—निवासस्थान) कहा जाता है, वे भी आपके एक वंश ही हैं। यह अंशरूपसे दीखना भी सत्य नहीं है, आपकी माया ही है ॥ १४ ॥ मगधन् ! यदि आपका यह विराट् स्वरूप सचमुच उस समय जलमें ही था तो मैंने उसी समय उसे क्यों नहीं देखा, जब कि मैं कमलनालके मार्गसे उसे सौ वर्षतक जलमें डूँडता रहा ? फिर मैंने जब तपस्या की, तब उसी समय मेरे हृदयमें उसका दर्शन कैसे हो गया ? और फिर कुछ ही क्षणोंमें यह पुनः क्यों नहीं दीखा, अन्तर्धान क्यों हो गया ? ॥ १५ ॥ मायाका नाश करनेवाला प्रभो ! दूरकी बात कौन करे—अभी इसी अवतारमें आपने इस बाहर दीखनेवाले जगत्को अपने पेटमें ही दिखल दिया, जिसे देखकर माता यशोदा चकित हो गयी थीं। इससे बही तो सिद्ध होता है कि यह सम्पूर्ण विश्व केवल आपकी माया-ही-माया है ॥ १६ ॥ जब आपके सहित यह सम्पूर्ण विश्व जैसा बाहर दीखता है वैसा ही आपके उदरमें भी दीखा, तब क्या यह सब आपकी मायाके बिना ही आपमें प्रतीत हुआ ? अक्षय ही आपकी लीला है ॥ १७ ॥ उस दिनकी बात जाने दीजिये, आजकी ही लीजिये। क्या आज आपने मेरे सामने अपने अतिरिक्त सम्पूर्ण विश्वको अपनी मायाका छेँक नहीं दिखलाया है ? पहले आप अवैले थे। फिर सम्पूर्ण ग्वाल्वाला, बड़वे और छद्दी-छ्की भी आप ही हो गये। उसके बाद मैंने देखा कि आपके वे सब रूप चतुर्भुज हैं और मेरेसहित सबके-सब तत्व उनकी सेवा कर रहे हैं। आपने अल्ल-अल्ल उतने ही ब्रह्माण्डोंका रूप भी धारण कर लिया था, परन्तु अब आप केवल अपरिमित अद्वितीय ब्रह्मरूपसे ही शेष रह गये हैं ॥ १८ ॥

जो जग अज्ञानका आपके स्वरूपको नहीं जानते, उन्हींको आप प्रकृतिमें स्थित जीवके रूपसे प्रतीत होते हैं और उनपर अपनी मायाका परदा डालकर सृष्टिके समय मेरे (ब्रह्मा) रूपसे, पावनके समय अपने (विष्णु)

रूपसे और संहारके समय रुद्रके रूपमें प्रतीत होते हैं ॥ १९ ॥ प्रभो ! आप सारे जगत्के स्वामी और विधाता हैं। अजन्मा होनेपर भी आप देवता, ऋषि, मनुष्य, पशु-पक्षी और जलचर आदि योनियोंमें अन्तार प्रवृण्ण करते हैं—इसलिये कि इन रूपोंके द्वारा दुष्ट पुरुषोंका घमट तोड़ दें और सत्पुरुषोंपर अनुग्रह करें ॥ २० ॥ मगधन् ! आप अनन्त परमात्मा और योगेश्वर हैं। जिस समय आप अपनी योगमायाका विस्तार करके लीला करने लगते हैं, उस समय त्रिलोकमें ऐसा ध्वनि है, जो यह जान संक कि आपकी लीला कहाँ, किसलिये, कब और कितनी होती है ॥ २१ ॥ इसलिये यह सम्पूर्ण जगत् स्वप्नके समान अस्तव्य, अज्ञानरूप और दुःख-पर-दुःख देनेवाला है। आप परमानन्द, परम ज्ञानस्वरूप एवं अनन्त हैं। यह मायासे उत्पन्न एवं विकीन होनेपर भी आपने आपकी सत्तासे सत्यके समान प्रतीत होता है ॥ २२ ॥ प्रभो ! आप ही एकमात्र सत्य हैं। क्योंकि आप सबके आत्मा जो हैं। आप पुराणपुरुष होनेके कारण समस्त जन्मादि विकारोंसे रहित हैं। आप स्वयंप्रकाश हैं, इसलिये देश, काल और वस्तु—जो परप्रकाश हैं—किसी प्रकार आपको सीमित नहीं कर सकते। आप उनके भी आदि प्रकाशक हैं। आप अविनाशी होनेके कारण नित्य हैं। आपका आनन्द अखण्डित है। आपमें न तो किसी प्रकारका म्ल है और न अभाव। आप पूर्ण, एक हैं। समस्त उपधियोंसे मुक्त होनेके कारण आप अमृतस्वरूप हैं ॥ २३ ॥ आपका यह ऐसा स्वरूप समस्त जीवोंका ही अपना स्वरूप है। जो गुरुस्वरूप सूर्यसे तत्त्वज्ञानरूप दिव्य दृष्टि प्राप्त करके उससे आपको अपने स्वरूपके रूपमें साक्षात्कार कर लेते हैं, वे इस झूठे संसार-सागर-को मानो पार कर जाते हैं। (संसार-सागरके झूठ होनेके कारण इससे पार जाना भी अविचार-दशाकी दृष्टिसे ही है) ॥ २४ ॥ जो पुरुष परमात्माको आत्माके रूपमें नहीं जानते, उन्हें उस अज्ञानके कारण ही इस नामरूपात्मक निखिल प्रपञ्चकी उत्पत्तिका भ्रम हो जाता है। किन्तु ज्ञान होते ही इसका आत्यन्तिक प्रलय हो जाता है। जैसे रस्सीमें भ्रमके कारण ही साँपकी प्रतीति होती है और भ्रमके निवृत्त होते ही उसकी निवृत्ति हो

जाती है ॥ २५ ॥ संसार-सम्बन्धी बन्धन और उससे मोक्ष—ये दोनों ही नाम अज्ञानसे कल्पित हैं । वास्तव-में ये अज्ञानके ही दो नाम हैं । ये सत्य और ज्ञानस्वरूप परमात्मासे भिन्न अस्तित्व नहीं रखते । जैसे सूर्यमें दिन और रातका भेद नहीं है, वैसे ही विचार करनेपर अखण्ड चित्स्वरूप केवल शुद्ध आत्मतत्त्वमेव न बन्धन है और न तो मोक्ष ॥ २६ ॥ भगवन् ! कितने आश्चर्यकी बात है कि आप हैं अपने आत्मा, पर जग आपको पराया मानते हैं । और शरीर आदि हैं पराये, किन्तु आपको आत्मा मान बैठते हैं । और इसके बाद आपको कहीं अलग ढूँढ़ने लगते हैं । भग्न, अज्ञानी जीवोंका यह कितना बड़ा अज्ञान है ॥ २७ ॥ हे अनन्त ! आप तो सबके अन्तःकरणमे ही विराजमान हैं । इसलिये संतजग आपके अतिरिक्त जो कुछ प्रतीत हो रहा है, उसका परित्याग करते हुए अपने भीतर ही आपको ढूँढ़ते हैं । क्योंकि यद्यपि रस्तीमें सोंप नहीं है, फिर भी उस प्रतीयमान सोंपको मिथ्या निश्चय किये बिना भ्रम, कोई स्वरूप सभी रस्तीको कैसे जान सकता है ? ॥ २८ ॥

अपने भक्तजनोके हृदयमें स्वयं स्फुरित होनेवाले भगवन् ! आपके ज्ञानका स्वरूप और महिमा ऐसी ही है, उससे अज्ञानकल्पित जगत्का नाश हो जाता है । फिर भी जो पुरुष आपके युगल चरणकमलोंका तनिका-सा भी कृपा-प्रसाद प्राप्त कर लेता है, उससे अनुगृहीत हो जाता है—वही आपकी सच्चिदानन्दमयी महिमाका सत्त्व जान सकता है । दूसरा कोई भी ज्ञान-वैराग्यादि साधनरूप अपने प्रयत्नसे बहुत काळतक कितना भी अनुसन्धान करता रहे, वह आपकी महिमाका यथार्थ ज्ञान नहीं प्राप्त कर सकता ॥ २९ ॥ इसलिये भगवन् ! मुझे इस जन्ममें, दूसरे जन्ममें अथवा किसी पशु-पक्षी आदिके जन्ममे भी ऐसा सौभाग्य प्राप्त हो कि मैं आपके दासोंमेंसे कोई एक दास हो जाऊँ और फिर आपके चरणकमलोंकी सेवा करूँ ॥ ३० ॥ मेरे स्वामी ! जगत्के बड़े-बड़े यज्ञ सृष्टिके प्रारम्भसे लेकर अबतक आपको पूर्णतः तृप्त न कर सके । परन्तु आपने ब्रह्मकी गणों और आत्मिनोंके बछड़े एवं बालक बनकर उनके स्नानोंका अभ्युत्साह दूध बड़े लगंगसे पिया है । नास्तिकमे उन्हींका जीवन सफल है, वे ही अत्यन्त धन्य हैं ॥ ३१ ॥ अहो, नन्द आदि

ब्रजवासी गोपोंके धन्य भाग्य हैं । वास्तवमें उनका अहो-भाग्य है । क्योंकि परमानन्दस्वरूप सनातन परिपूर्ण ब्रह्म आप उनके अपने सगे-सम्बन्धी और सुहृद् हैं ॥ ३२ ॥ हे अच्युत ! इन ब्रजवासियोंके सौभाग्यकी महिमा तो अलग रही—मन आदि ग्यारह इन्द्रियोंके अधिष्ठा-देवताके रूपमें रहनेवाले महादेव आदि हमलोग बड़े ही भाग्यवान् हैं । क्योंकि इन ब्रजवासियोंकी मन आदि ग्यारह इन्द्रियोंको प्याले बनाकर हम आपके चरणकमलों-का अमृतसे भी भीठ, मदिरासे भी मादक मधुर भक्तान्-द-रस पान करते रहते हैं । जब उसका एक-एक इन्द्रियसे पान करके हम धन्य-धन्य हो रहे हैं, तब समस्त इन्द्रियों-से उसका सेवन करनेवाले ब्रजवासियोंकी तो बात ही क्या है ॥ ३३ ॥ प्रभो ! इस ब्रजभूमिके किसी वनमें और निवेश करके गोकुलमें किसी भी योनिमें जन्म हो जाय, यही हमारे लिये बड़े सौभाग्यकी बात होगी । क्योंकि यहाँ जन्म हो जानेपर आपके किसी-न-किसी प्रेमी-के चरणोंकी धूलि अपने ऊपर पड़ ही जायगी । प्रभो ! आपके प्रेमी ब्रजवासियोंका सम्पूर्ण जीवन आपका ही जीवन है । आप ही उनके जीवनके एकमात्र सर्वज्ञ हैं । इसलिये उनके चरणोंकी धूलि मिखना आपके ही चरणोंकी धूलि मिखना है । और आपके चरणोंकी धूलिकी तो श्रुतियों भी अनादि काळसे अबतक ढूँढ़ ही रही है ॥ ३४ ॥ देवताओंके भी आराध्यदेव प्रभो ! इन ब्रजवासियोंकी इनकी सेवाके बदलेमें आप क्या फल देंगे ? सम्पूर्ण फलोंके फलस्वरूप । आपसे बढ़कर और कोई फल तो है ही नहीं, यह सोचकर मेरा चित्त मोहित हो रहा है । आप उन्हें अपना स्वरूप भी देकर उच्छृण नहीं हो सकते । क्योंकि आपके स्वरूपको तो उस पूतनाने भी अपने सम्बन्धियों—अघासुर, बकासुर आदिके साथ प्राप्त कर लिया, जिसका केवल वेव ही साक्षी स्त्रीका था, पर जो हृदयसे महान् क्रूर थी । फिर, जिन्होंने अपने घर, धन, खजान, प्रिय, शरीर, पुत्र, प्राण और मन—सब कुछ आपके ही चरणोंमें समर्पित कर दिया है, जिनका सब कुछ आपके ही लिये है, उन ब्रजवासियोंको भी वही फल देकर आप कैसे उच्छृण हो सकते हैं ॥ ३५ ॥ सच्चिदानन्दस्वरूप श्यामसुन्दर ! तभीतक राग-द्वेष आदि

दोष चोरोंके समान सर्वस्व अपहरण करते रहते हैं, तभीतक घर और उसके सम्बन्धी कैदकी तरह सम्बन्ध-के बन्धनोंमें बँध रहते हैं और तभीतक मोह पैरकी वेष्टियोंकी तरह जकड़े रहता है—जकड़क जीव आपका नहीं हो जाता ॥ ३६ ॥ प्रभो ! आप विश्वके बसेड़ेसे सर्वथा रहित हैं, फिर भी अपने शरणागत भक्त-जनोंको अनन्त आनन्द किरण धरनेके लिये पृथ्वीमें अवतार लेकर विश्वके समान ही लीलविविधसक्त निस्तार करते हैं ॥ ३७ ॥ मेरे खामी ! बहुत कहनेकी आवश्यकता नहीं—जो लोग आपकी महिमा जानते हैं, वे जानते रहें; मेरे मन, बाणी और शरीर तो आपकी महिमा जाननेमें सर्वथा असमर्थ हैं ॥ ३८ ॥ सच्चिदानन्द-स्वरूप श्रीकृष्ण ! आप सबके साक्षी हैं । इसलिये आप सब कुछ जानते हैं । आप समस्त जगत्के खामी हैं । यह सम्पूर्ण प्रपञ्च आपमें ही स्थित है । आपसे मैं और क्या कहूँ ! अब आप मुझे स्वीकार कीजिये । मुझे अपने लोकमें जानेकी आज्ञा दीजिये ॥ ३९ ॥ सबके मन-प्राण-को अपनी रूप-माधुरीसे आकर्षित करनेवाले इयामसुन्दर ! आप यदुर्बंशरूपी कमलको विकसित करनेवाले सूर्य हैं । प्रभो ! पृथ्वी, देवता, ब्राह्मण और पशुसुख समुद्रकी अमिषिद्धि करनेवाले चन्द्रमा भी आप ही हैं । आप पाण्डिप्योंके धर्मरूप रात्रिका घोर अन्धकार नष्ट करनेके लिये सूर्य और चन्द्रमा दोनोंके ही समान हैं । पृथ्वीपर रहनेवाले राक्षसोंके नष्ट करनेवाले आप चन्द्रमा, सूर्य आदि समस्त देवताओंके भी परम पूजनीय हैं । भगवन् ! मैं अपने जीवनभर, महाकरुणपर्यन्त आपको नमस्कार ही करता रहूँ ॥ ४० ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित ! संसारके रच-यिता ब्रह्माजीने इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्णकी स्तुति की । इसके बाद उन्होंने तीन बार परिक्रमा करके उनके चरणोंमें प्रणाम किया और फिर अपने गन्तव्य स्थान सत्यलोकमें चले गये ॥ ४१ ॥ ब्रह्माजीने कछों और ग्वालबालोंको पहले ही क्यास्थान पहुँचा दिया था । भगवान् श्रीकृष्णने ब्रह्माजीको विदा कर दिया और बछड़ों-को लेकर यमुनाजीके पुच्छिपर आये, जहाँ वे अपने सखा ग्वालबालोंको पहले छोड़ गये थे ॥ ४२ ॥ परीक्षित ! अपने जीवनसर्वस्व—प्राणवत्सल श्रीकृष्णके नियोगमें

यद्यपि एक वर्ष बीत गया था, तथापि उन ग्वालबालोंको वह समय आये क्षणके समान जान पड़ा । क्यों न हो, वे भगवान्की विश्वविमोहिनी योगमायासे मोहित जो हो गये थे ॥ ४३ ॥ जगत्के सभी जीव उसी मायासे मोहित होकर शास्त्र और आचार्योंके बार-बार समझानेपर भी अपने आत्माको निस्तर भूले हुए हैं । वास्तवमें उस मायाकी ऐसी ही शक्ति है । भला, उससे मोहित होकर जीव यहाँ क्या-क्या नहीं भूल जाते हैं ? ॥ ४४ ॥

परीक्षित ! भगवान् श्रीकृष्णको देखते ही ग्वालबालोंने जड़ी उताकलीसे कहा—‘भाई ! तुम भले आये । सागत है, सागत ! अभी तो हमने तुम्हारे बिना एक कौर भी नहीं खाया है । आओ, इधर आओ, आनन्दसे भोजन करो’ ॥ ४५ ॥ तब हँसते हुए भगवान्ने ग्वालबालोंके साथ भोजन किया और उन्हें अवाधुरके शरीरका ढोंचा दिखाते हुए वनसे ब्रजमें छैट आये ॥ ४६ ॥ श्रीकृष्णके सिरपर मोरपंखत मनीषर मुकुट और धुँवराले बालोंमें सुन्दर-सुन्दर मण्ड-मण्ड मँडकते हुए पुष्प गुँप रहे थे । नयी-नयी रंगीन बातुओंसे इयाम शरीरपर चित्रकारी की हुई थी । वे चढते समय रास्तेमें उब खरसे कमी बोंसुरी, कमी पत्ते और कमी सींग बजाकर बाधोत्सवमें मग्न हो रहे हैं । पीछे-पीछे ग्वालबाल उनकी लोकपावन कीर्तिका गान करते जा रहे हैं । कमी वे नाम ले-लेकर अपने बछड़ोंको पुकारते, तो कमी उनके साथ जक लहाने लगते । भगवन् ! दोनों ओर गोपियों खड़ी हैं; जब वे कमी तिरछे नेत्रोंसे उनकी नजरमें नजर मिला देते हैं, तब गोपियों आनन्द-मुग्ध हो जाती हैं । इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्णने गोष्ठमें प्रवेश किया ॥ ४७ ॥ परीक्षित ! उसी दिन बालकोंने ब्रजमें जाकर कहा कि ‘आज यथोदा मैयाके जबले नन्दनन्दनने वनमें एक बड़ा भारी अजगर मार ढाखा है और उससे हमलोगोंकी रक्षा की है’ ॥ ४८ ॥

राजा परीक्षितने कहा—‘अहन् । ब्रजवासियोंके लिये श्रीकृष्ण अपने पुत्र नहीं थे, दूसरेके पुत्र थे । फिर उनका श्रीकृष्णके प्रति इतना प्रेम कैसे हुआ ? ऐसा प्रेम तो उनका अपने बालकोंपर भी पहले कमी नहीं

हुआ था । आप कृपा करके बतलाइये, इसका क्या कारण है ? ॥ ४९ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—राजन् ! संसारके सभी प्राणी अपने आत्मासे ही सबसे बढ़कर प्रेम करते हैं । पुत्रसे, धनसे या और किसीसे जो प्रेम होता है—वह तो इसलिये कि वे वस्तुएँ अपने आत्माको प्रिय लगती हैं ॥ ५० ॥ राजेन्द्र ! यही कारण है कि सभी प्राणियोंका अपने आत्माके प्रति जैसा प्रेम होता है, वैसा अपने कहलानेवाले पुत्र, धन और गृह आदिसे नहीं होता ॥ ५१ ॥ सुश्रेष्ठ ! जो लोग देहको ही आत्मा मानते हैं, वे भी अपने शरीरसे जितना प्रेम करते हैं, उतना प्रेम शरीरके सम्बन्धी पुत्र-मित्र आदिसे नहीं करते ॥ ५२ ॥ जब विचारके द्वारा यह माह्न हो जाता है कि 'यह शरीर मैं नहीं हूँ, यह शरीर मेरा है' तब इस शरीरसे भी आत्माके समान प्रेम नहीं रहता । यही कारण है कि इस देहके जीर्ण-शीर्ण हो जानेपर भी जीनेकी आशा प्रबल रूपसे बनी रहती है ॥ ५३ ॥ इससे यह अत सिद्ध होती है कि सभी प्राणी अपने आत्मासे ही सबसे बढ़कर प्रेम करते हैं और उसीके लिये इस सारे कराकर जगत्से भी प्रेम करते हैं ॥ ५४ ॥ इन श्रीकृष्णको ही तुम सब आत्माओंका आत्मा समझो । संसारके कल्याणके लिये ही योगमायाका आश्रय लेकर वे यहाँ देहधारीके समान जान पड़ते हैं ॥ ५५ ॥ जो लोग भगवान् श्रीकृष्णके बाह्यभक्त स्वरूपको जानते हैं, उनके लिये तो इस जगत्से जो कुछ भी कराकर पदार्थ हैं, अथवा इससे

परे परमात्मा, ब्रह्म, नारायण आदि जो भगवत्स्वरूप हैं, सभी श्रीकृष्णस्वरूप ही हैं । श्रीकृष्णके अतिरिक्त और कोई प्राकृत-अप्राकृत वस्तु है ही नहीं ॥ ५६ ॥ सभी वस्तुओंका अन्तिम रूप अपने कारणमें स्थित होता है । उस कारणके भी परम कारण हैं भगवान् श्रीकृष्ण । तब मला बताओ, किस वस्तुको श्रीकृष्णसे भिन्न बतलायें ॥ ५७ ॥ जिन्होंने पुण्यकीर्ति मुकुन्द मुरारीके पदपङ्कजकी नौकाका आश्रय लिया है, जो कि सत्पुरुषोंका सर्वस्व है, उनके लिये यह भव-सागर बड़बड़े खुरके गढेके समान है । उन्हें परमपदकी प्राप्ति हो जाती है और उनके लिये विपत्तियोंका निवासस्थान—यह संसार नहीं रहता ॥ ५८ ॥

परीक्षित ! तुमने मुझसे पूछा था कि भगवान् के पाँचवें वर्षकी छीज ग्वाल्मालोंने छठे वर्षमें कैसे कही, उसका सारा रहस्य मैंने तुम्हें बतल दिया ॥ ५९ ॥ भगवान् श्रीकृष्णकी ग्वाल्मालोंके साथ वनकीड़ा, अवासर-को मारना, हरी-हरी वाससे युक्त भूमिपर बैठकर योजन करना, अप्राकृतस्वरूपवारी बछड़ों और ग्वाल्मालोंका प्रकट होना और ब्रह्मजीके द्वारा की हुई इस महान् स्तुतिकी जो मनुष्य सुनता और कहता है—उस-उसको धर्म, अर्थ, काम और मोक्षकी प्राप्ति हो जाती है ॥ ६० ॥ परीक्षित ! इस प्रकार श्रीकृष्ण और बलरामने कुमार-अवस्थाके अनुरूप औष्ठमिचौनी, सेतुबन्धन, बंदरोंकी भौंति उछलना-कूदना आदि अनेकों लीलाएँ करके अपनी कुमार-अवस्था ब्रजमें ही त्याग दी ॥ ६१ ॥

पंद्रहवाँ अध्याय

बेनुकासुरका उद्धार और ग्वाल्मालोंको कालियनागके विषसे बचाना

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित ! अब बलराम और श्रीकृष्णने पौगण्ड-अवस्थामें अर्थात् छठे वर्षमें प्रवेश किया । अब उन्हें गौएँ चरानेकी स्वीकृति मिल गयी । वे अपने सखा ग्वाल्मालोंके साथ गौएँ चरते हुए वृन्दावनमें जाते और अपने चरणोंसे वृन्दावनको अत्यन्त पावन करते ॥ १ ॥ यह वन गौओंके लिये हरी-हरी घाससे युक्त एवं रंग-बिरंगे पुष्पोंकी खान हो रहा था । आगे-आगे गौएँ, उनके पीछे-पीछे बोंसुरी बजाते हुए, स्वाम-

सुन्दर, तदनन्तर बलराम और फिर श्रीकृष्णके यशका गान करते हुए ग्वाल्माल—इस प्रकार विहार करनेके लिये उन्होंने उस वनमें प्रवेश किया ॥ २ ॥ उस वनमें कहीं तो और बड़ी मधुर गुंजार कर रहे थे, कहीं ह्रुं-के-ह्रुं हरीन चौकड़ी भर रहे थे और कहीं सुन्दर-सुन्दर पक्षी चहक रहे थे । वड़े ही सुन्दर-सुन्दर सरोवर थे, जिनका जल महात्माओंके हृदयके समान खञ्ज और निर्मल था । वनमें क्लिष्टे हुए कमलोंके सौरभसे सुवासित होकर शीतल-

मन्द-सुगन्ध वायु उस वनकी सेवा कर रही थी। इतना मनोहर या वह वन कि उसे देखकर भगवान्ने मन-ही-मन उसमें विहार करनेका संकल्प किया ॥३॥ पुरुषोत्तम भगवान्ने देखा कि बड़े-बड़े वृक्ष फल और फूलोंके भारसे झुककर अपनी डालियों और नूतन कोंपलोंकी छल्लामसे उनके चरणोंका स्पर्श कर रहे हैं, तब उन्होंने बड़े आनन्दसे कुछ मुसकराते हुए-से अपने बड़े भाई बलराम-जीसे कहा ॥ ४ ॥

भगवांन् श्रीकृष्णने कहा—देवसिरोमणे ! मैं तो बड़े-बड़े देवता आपके चरणकमलोंकी पूजा करते हैं; परन्तु देखिये तो, ये वृक्ष भी अपनी डालियोंसे सुन्दर पुष्प और फलोंकी सामग्री लेकर आपके चरणकमलोंमें छुका रहे हैं, नमस्कार कर रहे हैं। क्यों न हो, इन्होंने इसी सौमन्यके लिये तथा अपना दर्शन एवं भ्रमण करने-वालोंके अज्ञानका नाश करनेके लिये ही तो बुन्दान्न-धाममें वृक्ष-योनि प्रवृत्त की है। इनका जीवन धन्य है ॥ ५ ॥ आदिपुरुष ! यद्यपि आप इस बुन्दान्नमें अपने ऐश्वर्यरूपको छिपाकर बालकोंकी-सी छीछ कर रहे हैं, फिर भी आपके श्रेष्ठ भक्त मुनिगण अपने इच्छ-वेष्टको पहचानकर यहाँ भी प्रायः नौरोंके रूपमें आपके सुवन-पावन यशका निरन्तर गान करते हुए आपके भजनमें लगे रहते हैं। वे एक क्षणके लिये भी आपके नहीं छेड़ना चाहते ॥ ६ ॥ भाईजी ! वास्तवमें आप ही स्तुति करने योग्य हैं। देखिये, आपको अपने घर आया देख वे मोर आपके दर्शनसे आनन्दित होकर नाच रहे हैं। हरिणियाँ मृगमयी गोपियोंके समान अपनी प्रेममयी तिरछी चितवनसे आपके प्रति प्रेम प्रकट कर रही हैं, आपको प्रसन्न कर रही हैं। ये कोयलें अपनी मधुर कुह-कुह ध्वनिसे आपका चित्तमा सुन्दर साग्न कर रही हैं। ये वनवासी होनेपर भी धन्य हैं। क्योंकि सत्पुरुषोंका समाग ही ऐसा होता है कि वे घर आये अतिथिको अपनी प्रियसे प्रिय वस्तु भेंट कर देते हैं ॥ ७ ॥ बाज यहाँकी मूमी अपनी हरी-हरी घासके साथ आपके चरणोंका स्पर्श प्राप्त करके धन्य हो रही है। अर्धकि वृक्ष, छाताएँ और शादियाँ आपकी अँगुलियोंका स्पर्श प्राप्त अपना अहोभाग्य मान रही है। आपकी दयामयी चितवनसे नदी, पर्वत, पशु, पक्षी—सब कृतार्थ हो रहे हैं और मनुष्यों गोपियों आपके वक्षःस्पर्श प्राप्त करके,

जिसके लिये खय लक्ष्मी भी ललप्यति रहती है, धन्य-धन्य हो रही है ॥ ८ ॥

श्रीकृष्णदेवजी कहते हैं—परीक्षित् ! इस प्रकार परम सुन्दर बुन्दान्नको देखकर भगवान् श्रीकृष्ण बहुत ही आनन्दित हुए। वे अपने सखा ग्वालबालोंके साथ गोवर्धनकी तराईमें, यमुनातटपर गौओंको चराते हुए अनेकों प्रकारकी छीछाएँ करने लगे ॥ ९ ॥ एक ओर ग्वालबाल भगवान् श्रीकृष्णके चरित्रोंकी मधुर तान छेड़े रहते हैं, तो दूसरी ओर बलरामजीके साथ वनमाछा पहने हुए श्रीकृष्ण मतवाले मैरोंकी सरीरी गुनगुनाहटमें अपना खर मिलाकर मधुर संगीत बजावने लगते हैं ॥ १० ॥ कभी-कभी श्रीकृष्ण कूचते हुए राजहंसोंके साथ खर भी कूचने लगते हैं और कभी नाचते हुए मोरोंके साथ खर भी ठुमुक-ठुमुक नाचने लगते हैं और ऐसा नाचते हैं कि मयूरको उपहासास्पद बना देते हैं ॥ ११ ॥ कभी मेवके समान गम्भीर वाणीसे दूर गये हुए पशुओंको उनका नाम लेकर बड़े प्रेमसे पुकारते हैं। उनके कण्ठकी मधुर ध्वनि सुनकर गणों और ग्वालबालोंका चित्त भी अपने वशमें नहीं रहता ॥ १२ ॥ कभी चकोर, क्राँच (कॉकुब्ज), चकवा, भरदूळ और मोर आदि पक्षियोंकी-सी बोकी बोल्ते तो कभी बाघ, सिंह आदिकी गर्जनासे डरे हुए जीवोंके समान खर भी भयभीतकी-सी छीछ करते ॥ १३ ॥ जब बलरामजी खेलते-खेलते थककर किसी ग्वालबालकी गोदके तकियेपर सिर रखकर छेद जाते, तब श्रीकृष्ण उनके पैर दबाने लगते, पंखा झलने लगते और इस प्रकार अपने बड़े भाईकी बकावट बूर करते ॥ १४ ॥ जब ग्वाल-बाल नाचने-गाने लगते, अथवा ताळ ठोंक-ठोंक कर एक दूसरेसे कुत्ती लडने लगते, तब श्याम और राम दोनों भाई हाथों हाथ बलकर खड़े हो जाते और हँस-हँसकर 'आह-वाह' करते ॥ १५ ॥ कभी-कभी खर श्रीकृष्ण भी ग्वालबालोंके साथ कुत्ती लड़ते-लड़ते थक जाते तथा किसी सुन्दर वृक्षके नीचे कोमल पल्लवोंकी सेजपर किसी ग्वालबालकी गोदमें सिर रखकर छेद जाते ॥ १६ ॥ परीक्षित् ! उस समय कोई-कोई पुण्यके सुतिमान स्वरूप ग्वालबाल महात्मा श्रीकृष्णके चरण दबाने लगते और दूसरे निष्पाप बालक उन्हें बड़े-बड़े पतों या अँगोछियोंसे

पंखा झलने लगते ॥ १७ ॥ किसी-किसीके हृदयमें प्रेमकी धारा उमड़ आती तो वह धीरे-धीरे उदारशिरोमणि परममनस्वी श्रीकृष्णकी लीलाओंके अनुरूप उनके मनको प्रिय लगनेवाले मनोहर गीत गाने लगता ॥ १८ ॥ भगवान्ने इस प्रकार अपनी योगमायासे अपने ऐश्वर्यमय स्वरूपको छिपा रक्खा था । वे ऐसी लीलाएँ करते, जो ठीक-ठीक गोपबालकोंकी-सी ही माध्व पदती ॥ स्वयं भगवती लक्ष्मी जिनके चरणकमलोंकी सेवामें संलग्न रहती हैं, वे ही भगवान् इन प्रामीण बालकोंके साथ बड़े प्रेमसे प्रामीण खेल खेल करते थे । परीक्षित ! ऐसा होनेपर भी कभी-कभी उनकी ऐश्वर्यमयी लीलाएँ भी प्रकट हो जाया करती ॥ १९ ॥

बलरामजी और श्रीकृष्णके सखाओंमें एक प्रचाल गोप-बालक थे श्रीदामा । एक दिन उन्होंने तथा सुनल और खोककृष्ण (छोटे कृष्ण) आदि बालबालोंने क्याम और रामसे बड़े प्रेमके साथ कहा—॥ २० ॥ हमलोगोंको सर्वदा सुख पहुँचानेवाले बलरामजी ! आपके बाहु-बलकी तो कोई पाह ही नहीं है । हमारे मनमोहन श्रीकृष्ण ! दुष्टोंको नष्ट कर डालना तो तुम्हारा स्वभाव ही है । यहाँसे थोड़ी ही दूरपर एक बड़ा भारी वन है । वन, उसमें पौत-के-पौत ताड़के वृक्ष भरे पड़े हैं ॥ २१ ॥ वहाँ बहुत-से ताड़के फल पक-पककर गिरते रहते हैं और बहुत-से पहेल्लेके गिरि झूप भी हैं । परन्तु वहाँ चेलुक नामका एक दुष्ट दैत्य रहता है । उसने उन फलोंपर रोक लगा रक्खी है ॥ २२ ॥ बलराम-जी और मैया श्रीकृष्ण ! वह दैत्य गव्हेके रूपमें रहता है । वह स्वयं तो बड़ा बलवान् है ही, उसके साथ और भी बहुत-से उसीके समान बलवान् दैत्य उसी रूपमें रहते हैं ॥ २३ ॥ मेरे शत्रुघाती मैया ! उस दैत्यने अबतक न जाने कितने मनुष्य खा डाले हैं । यही कारण है कि उसके डरके मारे मनुष्य उसका सेवन नहीं करते और पशु-पक्षी भी उस जंगलमें नहीं जाते ॥ २४ ॥ उसके फल हैं तो बड़े सुगन्धित, परन्तु हमने कभी नहीं खाये । देखो न, चारों ओर उन्हींकी मन्द-मन्द सुगन्ध फैल रही है । तनिक-सा घ्याल देनेसे उसका रस मिळने लगता है ॥ २५ ॥ श्रीकृष्ण ! उनकी सुगन्धसे हमारा मन मोहित हो गया है और उन्हें पानेके लिये मचल

रहा है । तुम हमें वे फल अवश्य खिलाओ । दाउ दादा ! हमें उन फलोंकी वड़ी उत्कट अभिलाषा है । आपको रुचे तो वहाँ अवश्य चलिये ॥ २६ ॥

अपने सख्ख ग्यालबालोंकी यह बात सुनकर भगवान् श्रीकृष्ण और बलरामजी दोनों हैंसे और फिर उन्हें प्रसन्न करनेके लिये उनके साथ तालवनके लिये चल पड़े । २७ । उस वनमें पहुँचकर बलरामजीने अपनी बाँहोंसे उन ताड़के पेड़ोंको पकड़ लिया और भतवाले हाथीके बन्धेके समान उन्हें बड़े जोरसे हिलकर बहुत-से फल नीचे गिरा दिये ॥ २८ ॥ जब गव्हेके रूपमें रहनेवाले दैत्यने फलोंके गिरनेका शब्द सुना, तब वह पर्वतोंके साथ सारी पृथ्वी-को कँपता हुआ उनकी ओर दौड़ा ॥ २९ ॥ वह बड़ा बलवान् था । उसने बड़े वेगसे बलरामजीके सामने आकर अपने पिछले पैरोंसे उनकी छातीमें दुखती मारी और इसके बाद वह दुष्ट गव्हे जोरसे रेंकता हुआ वहाँसे हट गया ॥ ३० ॥ राजन् ! वह गधा क्रोधमें भरकर फिर रेंकता हुआ दूसरी बार बलरामजीके पास पहुँचा और उनकी ओर पीठ करके फिर गव्हे क्रोधसे अपने पिछले पैरोंकी दुखती चलायी ॥ ३१ ॥ बलरामजीने अपने एक ही हाथसे उसके दोनों पैर पकड़ लिये और उसे आकाशमें धुमाकर एक ताड़के पेड़पर दे मारा । धुमाते समय ही उस गव्हेके प्राणपखेरू उड़ गये थे ॥ ३२ ॥ उसके गिरनेकी चोटसे वह महान् ताड़का वृक्ष—जिसका ऊपरी भाग बहुत विशाल था—स्वयं तो तबतबाकर गिर ही पड़ा, सटे हुए दूसरे वृक्षको भी उसने तोड़ डाला । उसने तीसरेको, तीसरेने चौथेको—इस प्रकार एक-दूसरेको गिराते हुए बहुत-से तालवृक्ष गिर पड़े ॥ ३३ ॥ बलरामजीके लिये तो यह एक खेल था । परन्तु उनके द्वारा फेंके हुए गव्हेके शरीरसे चोट खा-खाकर वहाँ सब-के-सब ताड़ झिल गये । ऐसा जान पड़ा, मानो सबको झंझावातने झकझोर दिया हो ॥ ३४ ॥ भगवान् बलराम स्वयं जगदीश्वर हैं । उनमें यह सारा संसार ठीक वैसा ही व्योतप्रोत है, जैसे सुतोंमें वज्र । तब भला, उनके लिये यह कौन आश्चर्यकी बात है ॥ ३५ ॥ उस समय चेलुकसुरके यहई-बन्धु अपने भाईके मारे जानेसे क्रोधके मारे आगबबूझ हो गये । सब-के-सब गव्हे बलरामजी और श्रीकृष्णपर बड़े केसे दूट पड़े ॥ ३६ ॥ राजन् !



गोपूलि-धूसरित मुरलीधर

उनमेंसे जो-जो पास आया, उसी-उसीको बलरामजी और श्रीकृष्णने खेल-खेलमें ही पिछले पैर पकड़कर साठवृत्तों-पर दे मारा ॥ ३७ ॥ उस समय वह भूमि ताबके फलोंसे पट गयी और टूटे हुए वृक्ष तथा दैत्योंके प्राणहीन शरीरोंसे भर गयी । जैसे बादलोंसे आकाश ढक गया हो, उस भूमिकी वैसी ही शोया होने लगी ॥ ३८ ॥ बलरामजी और श्रीकृष्णकी यह मङ्गलमयी लीला देखकर देवतागण उनपर फूल बरसाने लगे और बान्ने बजा-बजाकर स्तुति करने लगे ॥ ३९ ॥ जिस दिन चेतुकासुर मरा, उसी दिनसे लोग निडर होकर उस वनके ताळमूला खाने लगे तथा पशु भी खच्छन्दताके साथ वास करने लगे ॥ ४० ॥

इसके बाद कमलदलोजन भगवान् श्रीकृष्ण वड़े भाई बलरामजीके साथ व्रजमें आये । उस समय उनके साथी ग्वालवाक उनके पीछे-पीछे चले हुए उनकी स्तुति करते जाते थे । क्यों न हो; भगवान्की लीलाओंका श्रवण-कीर्तन ही सबसे बढ़कर पवित्र जो है ॥ ४१ ॥ उस समय श्रीकृष्णकी धुँधराही अलकोंपर गौओंके छुरोंसे उड़-उड़कर धूलि पड़ी हुई थी, सिरपर मोरपंखका मुकुट था और बालोंमें सुन्दर-सुन्दर जंगली पुष्प गुँथे हुए थे । उनके नेत्रोंमें मधुर चितवन और मुखपर मनोहर मुसकान थी । वे मधुर-मधुर मुरकी बजा रहे थे और साथी ग्वालवाक उनकी ललित कीर्तिका गान कर रहे थे । वंशीकी ध्वनि सुनकर बहुत-सी गोपियों एक साथ ही सबसे बाहर निकल आयीं । उनकी आँखें न जाने कबसे श्रीकृष्णके दर्शनके लिये तरस रही थीं ॥ ४२ ॥ गोपियोंने अपने नेत्ररूप अमरोंसे भगवान्के मुखारविन्दका मकरन्द-रस पान करके दिनभरके विरहकी जलन शान्त की । और भगवान्ने भी उनकी लाजमरी हँसी तथा निनयसे युक्त प्रेममयी तिरछी चितवनका सत्कार स्वीकार करके व्रजमें प्रवेश किया ॥ ४३ ॥ तब यशोदा मैया और रोहिणी-

जीका हृदय वात्सल्यसेहसे उमड़ रहा था । उन्होंने श्याम और रामके घर पहुँचते ही उनकी इच्छाके अनुसार तथा समयके अनुरूप पहलेसे ही सोच-सँजोकर रक्खी हुई वस्तुएँ उन्हें खिलायीं-पिलायीं और पहनायीं ॥ ४४ ॥ माताजोंने तेज-उबटन आदि छात्रकर स्नान कराया । इससे उनकी दिनभर घूमने-फिरनेकी मार्गकी थकान दूर हो गयी । फिर उन्होंने सुन्दर वस्त्र पहनाकर दिव्य पुष्पोंकी माला पहनायी तथा चन्दन लगाया ॥ ४५ ॥ तपश्चात् दोनों माइयोंने माताओंका परोसा हुआ खादिष्ट अन्न भोजन किया । इसके बाद बड़े लाड़-प्यारसे दुलार-दुलार-कर यशोदा और रोहिणीने उन्हें सुन्दर शय्यापर सुलाया । श्याम और राम बड़े आरामसे सो गये ॥ ४६ ॥

भगवान् श्रीकृष्ण इस प्रकार दुन्दावनमें अनेकों लीलाएँ करते । एक दिन अपने सखा ग्वालवाकोंके साथ वे यमुनातटपर गये । राजन् ! उस दिन बलरामजी उनके साथ नहीं थे ॥ ४७ ॥ उस समय ज्येष्ठ-आषाढ़के वामसे गौएँ और ग्वालवाक अत्यन्त पीड़ित हो रहे थे-प्यासे उनका कण्ठ सूख रहा था । इसलिये उन्होंने यमुनाजीका विषैला जल पी लिया ॥ ४८ ॥ परीक्षित ! होनहारके बश उन्हें इस बातका ध्यान ही नहीं रहा था । उस मिलेले जलके पीते ही सब गौएँ और ग्वालवाक प्राणहीन होकर यमुनाजीके तटपर गिर पड़े ॥ ४९ ॥ उन्हें ऐसी अवस्थामें देखकर योगेश्वरोंके भी ईश्वर भगवान् श्रीकृष्णने अपनी अमृत बरसानेवाली दृष्टिसे उन्हें जीवित कर दिया । उनके खामी और सर्वस्र तो एकमात्र श्रीकृष्ण ही थे ॥ ५० ॥ परीक्षित ! चेतना आनेपर वे सब यमुनाजीके तटपर उठ खड़े हुए और आश्चर्यचकित होकर एक-दूसरेकी ओर देखने लगे ॥ ५१ ॥ राजन् ! अन्तमें उन्होंने यही निश्चय किया कि हमलोग विषैला जल पी लेनेके कारण मर चुके थे, परन्तु हमारे श्रीकृष्णने अपनी अनुग्रहमयी दृष्टिसे देखकर हमें फिरसे जिञ्ज दिया है ॥ ५२ ॥

सोलहवाँ अध्याय

काश्रियपर कृपा

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित ! भगवान् श्रीकृष्ण-ने देखा कि महाविषधर काश्रिय नामने यमुनाजीका जल

विषैला कर दिया है । तब यमुनाजीको शूद्र करनेके निचारसे उन्होंने वहाँसे उस सर्पको निकाल दिया ॥ १ ॥

पत्ता परीक्षितले पूछा—भगवान् ! भगवान् श्रीकृष्णने यमुनाजीके अगाध जलमे किस प्रकार उस सर्पका दमन किया ? फिर कालिय नाग तो जलवर जीव नहीं था, ऐसी दशमे वह अनेक युगोत्तक जलमे क्यों और कैसे रहा ? सो बताइये ॥२॥ ब्रह्मस्वरूप महात्मन् ! भगवान् अनन्त है । वे अपनी लीला प्रकट करके स्तम्भद विह्वल करते हैं । गोपालरूपसे उन्होंने जो उदार लीला की है, वह तो अमृतस्वरूप है । मन्त्र, उसके सेवनसे कौन नष्ट हो सकता है ? ॥ ३ ॥

श्रीधृक्देवजीने कहा—परीक्षित ! यमुनाजीमे कालिय नागका एक कुण्ड था । उसका जल विषकी गर्मसि खीरसा रहता था । यहाँतक कि उसके ऊपर उड़नेवाले पक्षी भी छलसकर उसमे गिर जाया करते थे ॥ ४ ॥ उसके बिचैले जलकी उताहल तरङ्गोंका स्पर्श करके तथा उसकी छोटी-छोटी बूँदें लेकर जब बाधु बाहर आती और तटके बास-पात, वृक्ष, पशु-पक्षी आदिका स्पर्श करती, तब वे उसी समय मर जाते थे ॥ ५ ॥ परीक्षित ! भगवान्का अवतार तो दृष्टोका दमन करनेके लिये होता ही है । जब उन्होंने देखा कि उस सौंपके विषका वेग बड़ा प्रचण्ड (मयकर) है और वह भयानक विष ही उसका महान् बल है तथा उसके कारण मेरे मित्रारका स्थान यमुनाजी भी दूषित हो गयी हैं, तब भगवान् श्रीकृष्ण अपनी कमरका फेंटा कसकर एक बहुत ऊँचे कदम्बके वृक्षपर चढ़ गये और वहाँसि ताल टेंककर उस बिचैले जलमे कूद पड़े ॥ ६ ॥ यमुनाजीका जल सौंपके विषके कारण पहलेसे ही खौल रहा था । उसकी तरङ्गें लज-मीठी और अत्यन्त मयङ्कर उठ रही थीं । पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्णके क्रूद पड़नेसे उसका जल और भी उछलने लगा । उस समय तो कालियदहका जल इक्कर-उधर उछलकर चार सौ हाथतक फैल गया ! अविनश्य अनन्त बलशाली भगवान् श्रीकृष्णके लिये इसमें कोई आश्चर्यकी बात नहीं है ॥ ७ ॥ प्रिय परीक्षित ! भगवान् श्रीकृष्ण कालियदहमे कूदकर अतुल बलशाली मतवाले गजराजके समान जल उछलने लगे । इस प्रकार जल-क्रीडा करनेपर उनकी गुञ्जाधोकी टाकरसे जलमें बड़े जोरका शब्द होने लगा । आँखसे ही सुननेवाले कालिय नागने वह आवाज सुनी और देखा कि कोई मेरे निवास-

स्थानका तिरस्कार कर रहा है । उसे यह सहन न हुआ । वह चिढ़कर भगवान् श्रीकृष्णके सामने आ गया ॥ ८ ॥ उसने देखा कि सामने एक सौंपका-सलोना बालक है । वर्षाकालीन मेघके समान अत्यन्त सुकुमार शरीर है, उसमें लंगर आँखें हटनेका नाम ही नहीं लेतीं । उसके वक्षः-सम्पर्क एक सुनहली रेखा—श्रीवत्सका चिह्न है और वह पीले रंगका वस्त्र धारण किये हुए है । बड़े मधुर एवं मनोहर मुखपर मन्द-मन्द मुसकान अत्यन्त शोभायमान हो रही है । चरण हलने सुकुमार और सुन्दर हैं, मानो कमलकी गद्दी हो । इतना आकर्षक रूप होनेपर भी जब कालिय नागने देखा कि बालक तनिक भी न डरकर इस बिचैले जलमे गौचसे खेल रहा है, तब उसका क्रोध और भी बढ़ गया । उसने श्रीकृष्णकी मर्मस्थानोंमें हँसकर अपने शरीरके बन्धनसे छुट्टे जकड़ लिया ॥ ९ ॥ भगवान् श्रीकृष्ण नागप्रशमन बंधकर निबेध हो गये । यह देखकर उनके प्यारे सखा ग्वालवार बहुत ही पीड़ित हुए और उसी समय दुःख, पश्चात्ताप और भयसे मूर्छित होकर पृथ्वीपर गिर पड़े । क्योंकि उन्होंने अपने शरीर, सुहृद्, धन-सम्पत्ति, स्त्री, पुत्र, भोग और कामनाएँ—सब कुछ भगवान् श्रीकृष्णको ही समर्पित कर रक्खा था ॥ १० ॥ गाय, बैल, बछिया और बड़े बड़े दुःखसे डकारने लगे । श्रीकृष्णकी ओर ही उनकी ठकली बंध रही थी । वे डरकर इस प्रकार खड़े हो गये, मानो रो रहे हों । उस समय उनका शरीर हिलता-डोलता तक न था ॥ ११ ॥

इधर ब्रजमे पृथ्वी, आकाश और शरीरोंमें बड़े मयङ्कर-मयङ्कर तीनों प्रकारके उत्पात उठ खड़े हुए, जो इस बातकी सूचना दे रहे थे कि बहुत ही शीघ्र कोई अशुभ घटना घटनेवाली है ॥ १२ ॥ नन्दबाबा आदि गोपोंने पहले तो उन अशुभानुको देखी और पीछेसे यह जाना कि आज श्रीकृष्ण बिना बलराजके ही गाय चराने चले गये । वे भयसे व्याकुल हो गये ॥ १३ ॥ वे भगवान्का प्रभाव नहीं जानते थे । इसीलिये उन अशुभानुको देखकर उनके मनमे यह बात आयी कि आज तो श्रीकृष्णकी मृत्यु ही हो गयी होगी । वे उसी क्षण दुःख, शोक और भयसे आतुर हो गये । क्यों न हों, श्रीकृष्ण ही उनके प्राण, मन और सर्वस्व जो थे ॥ १४ ॥ प्रिय परीक्षित ! ब्रजके बालक, वृद्ध और स्त्रियोंका खभाव गायों-जैसा

ही वास्तव्यपूर्ण था । वे मनमें ऐसी बात चाते ही अत्यन्त दीन हो गये और अपने प्यारे कन्हैयाको देखनेकी उत्कट चाहसाते घरद्वार छोड़कर निकल पड़े ॥ १५ ॥ बछरामजी स्वयं भगवान्‌के स्वरूप और सर्वशक्तिमान् हैं । उन्होंने जब ब्रजवासियोंको इतना कातर और इतना आतुर देखा, तब उन्हें हँसी आ गयी । परन्तु वे कुछ बोले नहीं, चुप ही रहे । क्योंकि वे अपने छोटे भाई श्रीकृष्णका प्रभाव मलीमौलि जानते थे ॥ १६ ॥ ब्रजवासी अपने प्यारे श्रीकृष्णको ढूँढने लगे । कोई अधिक कठिनाई न हुई; क्योंकि मार्गमें उन्हें भगवान्‌के चरणचिह्न मिलते जाते थे । जौ, कमल, अङ्गुश आदिसे युक्त होनेके कारण उन्हें पहचान होती जाती थी । इस प्रकार वे यमुना-तटकी ओर जाने लगे ॥ १७ ॥

परीक्षित ! मार्गमें गौओं और दूसरोंके चरणचिह्नोंके बीच-बीचमें भगवान्‌के चरणचिह्न भी टीख जाते थे । उनमें कमल, जौ, अङ्गुश, कज्र और पञ्जाके चिह्न बहुत ही स्पष्ट थे । उन्हें देखते हुए वे बहुत शीघ्रतासे चले ॥ १८ ॥ उन्होंने दूरसे ही देखा कि कालियदहमें कालिय नागके शरीरसे बँधे हुए श्रीकृष्ण चेष्टाहीन हो रहे हैं । कुण्डके किनारेपर गालगाल अचेत हुए पड़े हैं और गौएँ, बैल, बछड़े आदि बड़े आर्तसारसे बकरा रहे हैं । यह सब देखकर वे सब गोप अत्यन्त व्याकुल और अन्तर्में मूर्छित हो गये ॥ १९ ॥ गोपियोंका मन अत्यन्त गुणगणनिष्ठ भगवान् श्रीकृष्णके प्रेमके रंगमें रँगा हुआ था । वे तो नित्य-निरन्तर भगवान्‌के सौहार्द, उनकी मधुर मुसकान, प्रेमभरी चितवन तथा मीठी वाणीका ही स्मरण करती रहती थीं । जब उन्होंने देखा कि हमारे प्रियतम श्यामसुन्दरको काले साँपने जकड़ रक्खा है, तब तो उनके हृदयमें बड़ा ही दुःख और बड़ी ही जलन हुई । अपने प्राणवल्गम जीवनसर्वस्वके बिना उन्हें तीनों लोक सूने दीखने लगे ॥ २० ॥ माता यशोदा तो अपने लड़के लालके पीछे कालियदहमें कूदने ही जा रही थीं; परन्तु गोपियोंने उन्हें पकड़ लिया । उनके हृदयमें भी वैसी ही पीड़ा थी । उनकी आँखोंसे भी आँसुओंकी झड़ी लगी हुई थी । सबकी आँखें श्रीकृष्णके मुखकमलपर लगी थीं । जिनके शरीरमें चेतना थी, वे ब्रजमोहन

श्रीकृष्णकी पूतना-बध आदिकी प्यारी-प्यारी ऐश्वर्यकी छीछाएँ कह-कहकर यशोदाजीको धीरज बँवाने लगीं । किन्तु अधिकांशतो मुर्देकी तरह पड़ ही गयी थीं ॥ २१ ॥ परीक्षित ! नन्दबाबा आदिके जीवन-प्राण तो श्रीकृष्ण ही थे । वे श्रीकृष्णके लिये कालियदहमें घुसने लगे । यह देखकर श्रीकृष्णका प्रभाव जाननेवाले भगवान् बछरामजीने किन्हींको समझा-बुझाकर, किन्हींको वलपूर्वक और किन्हींको उनके हृदयोंमें प्रेरणा करके रोक दिया ॥ २२ ॥

परीक्षित ! यह सोंपके शरीरसे बँध जाना तो श्रीकृष्णकी मनुष्यों-वैसी एक छीछा थी । जब उन्होंने देखा कि ब्रजके सभी लोग ली और बच्चोंके साथ मेरे लिये इस प्रकार अत्यन्त दुखी हो रहे हैं और सचमुच मेरे सिवा इनका कोई दूसरा सहारा भी नहीं है, तब वे एक मुहूर्ततक सपके बन्धनमें रहकर बाहर निकल आये ॥ २३ ॥ भगवान् श्रीकृष्णने उस समय अपना शरीर फुलकर खूब मोटा कर लिया । इससे सोंपका शरीर टूटने लगा । वह अपना नागपाश छोड़कर अलग खड़ा हो गया और क्रोधसे आगबबूला हो अपने फण ऊँचा करके फुफ्फुसों से मारने लगा । घात मिलते ही श्रीकृष्णपर चोट करनेके लिये वह उनकी ओर टकटकी लगाकर देखने लगा । उस समय उसके मधुनाँसे विषकी फुहारें निकल रही थीं । उसकी आँखें सिर थीं और इतनी लज्ज-लज्ज हो रही थीं, मानो मझीपर तापा हुआ खपड़ा हो । उसके मुँहसे आगकी लपटें निकल रही थीं ॥ २४ ॥ उस समय कालिय नाग अपनी दुहरी जीम लपलपाकर अपने होठोंके दोनों किनारोंको चाट रहा था और अपनी कराछ आँखोंसे विषकी प्लाछा उगलता जा रहा था । अपने वाहन गरुड़के समान भगवान् श्रीकृष्ण उसके साथ खेळते हुए पैतरा बदलने लगे । और वह सोंप भी ऊपर चोट करनेका दौँव देखता हुआ पैतरा बदलने लगा ॥ २५ ॥ इस प्रकार पैतरा बदलते-बदलते उसका बल क्षीण हो गया । तब भगवान् श्रीकृष्णने उसके बड़े-बड़े सिरोंको तनिक दबा दिया और उल्टकर ऊपर सवार हो गये । कालिय नागके मल्लकों-पर बहल-सी लज्ज-लज्ज मणियाँ थीं । उनके स्पर्शसे भगवान्‌के मुकुमार तल्लुओंकी लालिमा और भी बढ़

गयी । नृत्य-गान आदि समस्त कलाओंके आदिप्रवर्तक भगवान् श्रीकृष्ण उसके सिरोपर कलापूर्ण नृत्य करने लगे ॥ २६ ॥ भगवान्के प्यारे भक्त गन्धर्व, सिद्ध, देवता, चारण और देवाङ्गनाओंने जब देखा कि भगवान् नृत्य करना चाहते हैं, तब वे बड़े प्रेमसे मुद्रङ्ग, ढोल, नगारे आदि बाजे बजाते हुए, सुन्दर-सुन्दर गीत गाते हुए, पुष्पोंकी वर्षा करते हुए और अपनेको निछावर करते हुए मँट ले-लेकर उसी समय भगवान्के पास आ पहुँचे ॥ २७ ॥ परीक्षित । कालिय नागके एकसौ एक सिर थे । वह अपने जिस सिरको नहीं छुकाता था, उसीको प्रचण्ड दण्डधारी भगवान् अपने पैरोंकी चोटसे कुचल डालते । इससे कालिय नागकी जीवनशक्ति क्षीण हो चली, वह मुँह और नयनोंसे खून उगलने लगा । अन्तमें चक्कर काटते-काटते वह बेहोश हो गया ॥ २८ ॥ तनिक भी चेत होता तो वह अपनी आँखोंसे बिच उगलने लगा और झोझके मारे जोर-जोरसे फुफ्फुारें मारने लगा । इस प्रकार वह अपने सिरोमेंसे जिस सिरको ऊपर उठाता, उसीको नाचते हुए भगवान् श्रीकृष्ण अपने चरणोंकी ठोकरसे छुकाकर रौंद डालते । उस समय पुराण-पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्णके चरणोंपर जो खूनकी बूँदें पड़ती थी, उनसे ऐसा माखम होता, मानो रक्त-पुष्पोंसे उनकी पूजा की जा रही हो ॥ २९ ॥ परीक्षित । भगवान्के इस अद्भुत ताण्डव-नृत्यसे कालियके फणरूप छत्ते छिन्न-भिन्न हो गये । उसका एक-एक अंग चूर-चूर हो गया और मुँहसे खूनकी उछली होने लगी । अब उसे सारे जगत्के आदिशिखक पुराण-पुरुष भगवान् मारायणकी स्तुति हुई । वह मन-ही-मन भगवान्की शरणमें गया ॥ ३० ॥ भगवान् श्रीकृष्णके उदरमें सम्पूर्ण विश्व है । इसलिये उनके भारी बोझसे कालिय नागके शरीरकी एक-एक गौँठ ढीली पड़ गयी । उनकी एड़ियोंकी चोटसे उसके छत्रके समान फण छिन्न-भिन्न हो गये । अपने पतिकी यह दशा देखकर उसकी पत्नियाँ भगवान्की शरणमें आयीं । वे अस्थिर आतुर हो रही थीं । भयके मारे उनके बलामूषण अस्त-व्यस्त हो रहे थे और कैशकी चोटियों भी बिकर रही थीं ॥ ३१ ॥ उस समय उन साध्वी नागपत्नियोंके चित्तमें बड़ी बकड़ाहट थी । अपने नाककोंको आगे करके वे पृथ्वीपर झोट गयीं और

हाथ जोड़कर उन्होंने समस्त प्राणियोंके एकमात्र स्वामी भगवान् श्रीकृष्णको प्रणाम किया । भगवान् श्रीकृष्णको शरणागतवत्सल जानकर अपने अपराधी पतिको छुड़ानेकी इच्छासे उन्होंने उनकी शरण ग्रहण की ॥ ३२ ॥

नागपत्नियोंने कहा—प्रभो ! आपका यह अवतार ही दुष्टोंको दण्ड देनेके लिये हुआ है । इसलिये इस अपराधीको दण्ड देना सर्वथा उचित है । आपकी दृष्टिमें शत्रु और पुत्रका कोई भेदभाव नहीं है । इसलिये आप जो निस्तीको दण्ड देते हैं, वह उसके पापोंका प्रायश्चित्त कराने और उसका परम कल्याण करनेके लिये ही ॥ ३३ ॥ आपने हमलोगोंपर यह बड़ा ही अनुग्रह किया । यह तो आपका कृपा-प्रसाद ही है । क्योंकि आप जो दुष्टोंको दण्ड देते हैं, उससे उनके सारे पाप नष्ट हो जाते हैं । इस सर्पके अपराधी होनेमें तो कोई समदेह ही नहीं है । यदि यह अपराधी न होता, तो इसे सर्पकी योनि ही क्यों मिलती ? इसलिये हम सच्चे हृदयसे आपके इस क्रोधको भी आपका अनुग्रह ही समझती हैं ॥ ३४ ॥ अवश्य ही पूर्वजन्ममें इसने खय मानरहित होकर और दूसरोंका सम्मान करते हुए कोई बहुत बड़ी तपस्या की है । अथवा सब जीवोंपर दया करते हुए इसने कोई बहुत बड़ा धर्म किया है । तभी तो आप इसके ऊपर स्नतुष्ट हुए हैं । क्योंकि सर्व-जीवस्वरूप आपकी प्रसन्नताका यही उपाय है ॥ ३५ ॥ भगवन् ! हम नहीं समझ पाती कि यह इसकी किस्त साधनाका फल है, जो यह आपके चरणकमलोंकी धूलका स्पर्श पानेका अधिकारी हुआ है । आपके चरणोंकी रज इतनी दुर्लभ है कि उसके लिये आपकी अर्द्धाङ्गिनी लक्ष्मीजीकी भी बहुत दिनोंतक समस्त भोगोका त्याग करके नियमोंका पाछन करते हुए तपस्या करनी पड़ी थी ॥ ३६ ॥ प्रभो ! जो आपके चरणोंकी धूलकी शरण ले लेते हैं, वे मनुजजन सर्वाङ्ग राज्य या पृथ्वीकी बादशाही नहीं चाहते । न वे रसातलका ही राज्य चाहते और न तो ब्रह्माका पद ही लेना चाहते हैं । उन्हें अणिमादि योग-सिद्धियोंकी भी चाह नहीं होती । यहाँतक कि वे जन्म-मृत्युसे छुड़ानेवाले कैवल्य-मोक्षकी भी इच्छा नहीं करते ॥ ३७ ॥ स्वामी ! यह नागराज तमोगुणी योनिमें उत्पन्न हुआ है और

अत्यन्त क्रोधी है। फिर भी इसे आपकी वह परम पवित्र चरणरज प्राप्त हुई, जो दूसरोंके लिये सर्वथा दुर्लभ है; तथा जिसको प्राप्त करनेकी इच्छमात्रसे ही संसारचक्रमें पड़े हुए जीवको संसारके दैत्य-सम्पत्तिकी तो बात ही क्या—मोक्षकी भी प्राप्ति हो जाती है ॥ ३८ ॥

प्रभो ! हम आपको प्रणाम करती हैं। आप अनन्त एवं अचिन्त्य ऐश्वर्यके नित्य निधि हैं। आप सबके अन्तःकरणोंमें विराजमान होनेपर भी अनन्त हैं। आप समस्त प्राणियों और पदार्थोंके आश्रय तथा सब पदार्थोंके रूपमें भी विद्यमान हैं। आप प्रकृतिसे परे स्वयं परमात्मा हैं ॥ ३९ ॥ आप सब प्रकारके ज्ञान और अनुभवोंके खजाने हैं। आपकी महिमा और शक्ति अनन्त है। आपका स्वरूप अप्राकृत—दिव्य चिन्मय है, प्राकृतिक गुणों एवं विकारोंका आप कभी स्पर्श ही नहीं करते। आप ही ब्रह्म हैं, हम आपको नमस्कार कर रही हैं ॥ ४० ॥ आप प्रकृतिमें क्षीम उत्पन्न करनेवाले काळ हैं, काळशक्तिके आश्रय हैं और काळके क्षण-क्षण आदि समस्त अवयवोंके साक्षी हैं। आप विचरूप होते हुए भी उससे अलग रहकर उसके द्रष्टा हैं। आप उसके बनानेवाले निमित्त-कारण तो हैं ही, उसके रूपमें बननेवाले उपादानकारण भी हैं ॥ ४१ ॥ प्रभो ! पञ्चभूत, उनकी तन्मात्राएँ, इन्द्रियों, प्राण, मन, बुद्धि और इन सबका खजाना चित्त—ये सब आप ही हैं। तीनों गुण और उनके कार्योंमें होनेवाले अविमानके द्वारा आपने अपने साक्षात्कार-को छिपा रक्खा है ॥ ४२ ॥ आप देश, काल और वस्तुओंकी सीमासे बाहर—अनन्त हैं। सूक्ष्मसे भी सूक्ष्म और कार्य-कारणोंके समस्त विकारोंमें भी एकरस, विकाररहित और सर्वज्ञ हैं। ईश्वर हैं कि नहीं हैं, सर्वज्ञ हैं कि अल्पज्ञ इत्यादि अनेक मतमेंदोंके अनुसार आप उन-उन मतवादीयोंको उन्हीं-उन्हीं रूपोंमें दर्शन देते हैं। समस्त शब्दोंके अर्थके रूपमें तो आप हैं ही, शब्दोंके रूपमें भी हैं तथा उन दोनोंका सम्बन्ध जोड़ने-वाली शक्ति भी आप ही हैं। हम आपको नमस्कार करती हैं ॥ ४३ ॥ प्रत्यक्ष-अनुमान आदि जितने भी प्रमाण हैं, उनको प्रमाणित करनेवाले मूल आप ही हैं। समस्त शास्त्र आपसे ही निकले हैं और आपका ज्ञान

स्वतःसिद्ध है। आप ही मनको ध्यानेकी विधिके रूपमें और उसको सब कहींसे हटा लेनेकी आज्ञाके रूपमें प्रवृत्तिमार्ग और निवृत्तिमार्ग हैं। इन दोनोंके मूल वेद भी स्वयं आप ही हैं। हम आपको बार-बार नमस्कार करती हैं ॥ ४४ ॥ आप शुद्धसत्त्वमय वसुदेवके पुत्र वसुदेव, सङ्कर्षण एवं प्रद्युम्न और अनिरुद्ध भी हैं। इस प्रकार चतुर्व्यूहके रूपमें आप भक्तों तथा यादवोंके स्वामी हैं। श्रीकृष्ण ! हम आपको नमस्कार करती हैं ॥ ४५ ॥ आप अन्तःकरण और उसकी वृत्तियोंके प्रकाशक हैं, और उन्हींके द्वारा अपने-आपको ढक रखते हैं। उन अन्तःकरण और वृत्तियोंके द्वारा ही आपके स्वरूपका कुछ-कुछ संकेत भी मिलता है। आप उन गुणों और उनकी वृत्तियोंके साक्षी तथा स्वयंप्रकाश हैं। हम आपको नमस्कार करती हैं ॥ ४६ ॥ आप मूलप्रकृतिसे नित्य विद्यार करते रहते हैं। समस्त स्थूल और सूक्ष्म जगत्की सिद्धि आपसे ही होती है। इमीकेश ! आप मननशील आत्माराम हैं। मौन ही आपका स्वभाव है। आपको हमारा नमस्कार है ॥ ४७ ॥ आप स्थूल, सूक्ष्म समस्त गतियोंके जाननेवाले तथा सबके साक्षी हैं। आप नामरूपात्मक विश्वप्रपञ्चके निषेधक अवधि तथा उसके अधिष्ठान होनेके कारण विश्वरूप भी हैं। आप विश्वके व्यास तथा अपव्यक्त के साक्षी हैं एवं अज्ञानके द्वारा उसकी सत्यत्वान्ति एवं स्वरूपज्ञानके द्वारा उसकी आत्यन्तिक निवृत्तिके भी कारण हैं। आपको हमारा नमस्कार है ॥ ४८ ॥

प्रभो ! यद्यपि कर्तापन न होनेके कारण आप कोई भी कर्म नहीं करते, निष्क्रिय हैं—तथापि अनादि कालशक्तिको स्वीकार करके प्रकृतिके गुणोंके द्वारा आप इस विश्वकी उत्पत्ति, स्थिति और प्रलयकी जीव्य करते हैं। क्योंकि आपकी वीज्यएँ अमोघ हैं। आप सत्य-सङ्कल्प हैं। इसलिये जीवोंके संस्काररूपसे छिपे हुए स्वभावोंको अपनी दृष्टिसे जाग्रत कर देते हैं ॥ ४९ ॥ त्रिलोकीमें तीन प्रकारकी योनियाँ हैं—सत्त्वगुण प्रधान शान्त, रजोगुणप्रधान अशान्त और तमोगुणप्रधान मूढ़। ये सब-की-सब आपकी वीज्यमूर्तियाँ हैं। फिर भी इस समय आपको सत्त्वगुणप्रधान शान्तजन ही विशेष प्रिय हैं। क्योंकि आपका यह अवतार और ये वीज्यएँ साधुजनों-

की रक्षा तथा धर्मकी रक्षा एवं विस्तारके लिये ही हैं ॥ ५० ॥ शान्तात्मन् ! स्वामीको एक बार अपनी प्रजाका अपराध सह लेना चाहिये । यह मूढ़ है, आपको पहचानता नहीं है, इसलिये इसे क्षमा कर दीजिये ॥ ५१ ॥ भगवन् ! कृपा कीजिये, अब यह सर्प मरनेहीवाला है । साधु पुरुष सदासे ही हम अवलम्बित दया करते आये हैं । अतः आप हमें हमारे प्राणस्वरूप पतिदेवको दे दीजिये ॥ ५२ ॥ हम आपकी दासी हैं । हमें आप आज्ञा दीजिये, आपकी क्या सेवा करें ? क्योंकि जो श्रद्धाके साथ आपकी आज्ञाओंका पाठन—आपकी सेवा करता है, वह सब प्रकारके भयोंसे छुटकारा पा जाता है ॥ ५३ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित ! भगवान्‌के चरणोंकी ओकरोसे कालिय नागके फण छिन्न-भिन्न हो गये थे । वह बेसुध हो रहा था । अब नागपत्नियोंने इस प्रकार भगवान्‌की स्तुति की, तब उन्होंने दया करके उसे छोड़ दिया ॥ ५४ ॥ धीरे-धीरे कालिय नागकी इन्द्रियों और प्राणोंमें कुछ-कुछ चेतना आ गयी । वह बड़ी कठिनतासे श्वास लेने लगा और थोड़ी देरके बाद बड़ी दीनतासे हाथ जोड़कर भगवान्‌ श्रीकृष्णसे इस प्रकार बोला ॥ ५५ ॥

कालिय नागने कहा—नाथ ! हम जन्मसे ही दुष्ट, तमोगुणी और बहुत दिनोंके बाद भी बदला लेनेवाले—बड़े क्रोधी जीव हैं । जीवोंके लिये अपना स्वभाव छोड़ देना बहुत कठिन है । इसीके कारण संसारके लोग नाना प्रकारके दुराग्रहोंमें फँस जाते हैं ॥ ५६ ॥ विश्वविवाता ! आपने ही गुणोंके भेदसे इस जगत्‌में नाना प्रकारके स्वभाव, वीर्य, बल, योगि, नीज, चित्त और आकृतियोंका निर्माण किया है ॥ ५७ ॥ भगवन् ! आपकी ही सृष्टिमें हम सर्प भी हैं । हम जन्मसे ही बड़े क्रोधी होते हैं । हम इस मायाके चक्रमें खंभ मोहित हो रहे हैं । फिर अपने प्रयत्नसे इस दुस्त्यज मायाका त्याग कैसे करें ॥ ५८ ॥ आप सर्वज्ञ और सम्पूर्ण जगत्‌के स्वामी हैं । आप ही

हमारे स्वभाव और इस मायाके भी कारण हैं । अब आप अपनी इच्छासे—जैसा ठीक समझे—कृपा कीजिये या दण्ड दीजिये ॥ ५९ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—कालिय नागकी बात सुनकर लीलामनुष्य भगवान्‌ श्रीकृष्णने कहा—सर्प ! अब तुझे यहाँ नहीं रहना चाहिये । तू अपने जाति-भार्य, पुत्र और बिरोंधे साथ शीघ्र ही यहाँसे समुद्रमें चला जा । अब गौड़ और मनुष्य यमुना-जलका उपभोग करें ॥ ६० ॥ जो मनुष्य दोनों समय तुझको दी हुई मेरी इस आज्ञाका स्मरण तथा कीर्तन करे, उसे सौंपेसे कभी भय न हो ॥ ६१ ॥ मैंने इस कालियदहमें कीटा की है । इसलिये जो पुरुष इसमें स्नान करके जलसे देवता और पितरोंका तर्पण करेगा, एवं उपवास करके मेरा स्मरण करता हुआ मेरी पूजा करेगा—वह सब पापोंसे मुक्त हो जायगा ॥ ६२ ॥ मैं जानता हूँ कि तू गड़बड़े भयसे रमणक द्वीप छोड़कर इस दहमें आ बसा था । अब तेरा शरीर मेरे चरणचिह्नोंसे अक्षित हो गया है । इसलिये जा, अब गड़ब तुझे लायेंगे नहीं ॥ ६३ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—भगवान्‌ श्रीकृष्णकी एक-एक लीला अद्भुत है । उनकी ऐसी आज्ञा पाकर कालिय नाग और उसकी पत्नियोंने आनन्दसे भरकर बड़े आदरसे उनकी पूजा की ॥ ६४ ॥ उन्होंने दिव्य कल, पुष्पमाला, मणि, बहुमूल्य आभूषण, दिव्य गन्ध, चन्दन और अति उत्तम कमलोंकी माछासे जगत्‌के स्वामी गड़बध्वज भगवान्‌ श्रीकृष्णका पूजन करके उन्हें प्रसन्न किया । इसके बाद बड़े प्रेम और आनन्दसे उनकी परिक्रमा की, कन्दना की और उनसे अनुमति ली । तब अपनी पत्नियों, पुत्रों और बन्धु-बान्धवोंके साथ रमणक द्वीपकी, जो समुद्रमें सर्पोंके रहनेका एक स्थान है, यात्रा की । लीला-मनुष्य भगवान्‌ श्रीकृष्णकी कृपासे यमुनाजीका जल केवल विषहीन ही नहीं, बल्कि उसी समय अमृतके समान मधुर हो गया ॥ ६५-६७ ॥

सत्रहवाँ अध्याय

कालियके कालियदहमें आनेकी कथा तथा भगवान्‌का मञ्जवासियोंको दावानलसे बचाना
राजा परीक्षितले पूछे—भगवन् ! कालिय नागने नागोंके निवासस्थान रमणक द्वीपको क्यों छोड़ा था ?



नागपत्नियोंके द्वारा सुभूषित श्यामसुन्दर

और उस अकेलेने ही गरुडजीका कौन-सा अपराध किया था ? ॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजीने कहा—परीक्षित ! पूर्वकालमें गरुडजीको उपहारस्वरूप प्राप्त होनेवाले सर्पोंने यह नियम कर लिया था कि प्रत्येक मासमें निर्दिष्ट वृक्षके नीचे गरुडको एक सर्पकी भेंट दी जाय ॥ २ ॥ इस नियमके अनुसार प्रत्येक अमावस्याको सारे सर्प अपनी रक्षाके लिये महात्मा गरुडजीको अपना-अपना भोग देते रहते थे* ॥ ३ ॥ उन सर्पोंमें कद्रुक पुत्र काष्ठिय नाग अपने निष और कलके घमंडसे भतवाळा हो रहा था । उसने गरुडका तिरस्कार करके स्वर्ग तो बलि देना दूर रहा—दूसरे सर्प जो गरुडको बलि देते, उसे भी खा लेता ॥ ४ ॥ परीक्षित ! यह सुनकर भगवान्‌के प्यारे पार्षद शक्तिशाली गरुडको बड़ा क्रोध आया । इसलिये उन्होंने काष्ठिय नागको मार डालनेके विचारसे बड़े बेगसे उसपर आक्रमण किया ॥ ५ ॥ विषधर काष्ठिय नागने जब देखा कि गरुड बड़े बेगसे मुझपर आक्रमण करने आ रहे हैं तब वह अपने एक सौ एक फण फैलाकर डसनेके लिये उनपर दूट पड़ा । उसके पास शक्त वे केवल दौत, इसलिये उसने दौतोंसे गरुडको डस लिया । उस समय वह अपनी भयावही जीमें लपक्या रहा था, उसकी सौंस छँबी चल रही थी और आँखें बड़ी डरावनी जान पड़ती थीं ॥ ६ ॥ तार्क्ष्यनन्दन गरुडजी विष्णुभगवान्‌के बाह्यन हैं और उनकी वेग तथा पराक्रम भी असुलनीय है । काष्ठिय नागकी यह टिठाई देखकर उनकी क्रोध और भी बढ़ गया तथा उन्होंने उसे अपने शरीरसे शटककर फेंक दिया एवं अपने सुनहले बायें पंखसे काष्ठिय नागपर बड़े जोरसे प्रहार किया ॥ ७ ॥ उनके पंखकी चोटसे काष्ठिय नाग घायल हो गया । वह घबड़ाकर वहाँसे भगा और यमुनाजीके इस कुण्डमें चला आया । यमुनाजीका यह कुण्ड गरुडके लिये आगम्य था । साथ ही वह इतना गहरा था कि उसमें

दूसरे जोग भी नहीं जा सकते थे ॥ ८ ॥ इसी आनपर एक दिन झुवातुर गरुडने तपस्वी सौमरिके मना करनेपर भी अपने अभीष्ट भक्ष्य मत्स्यको बलपूर्वक पकड़कर खा लिया ॥ ९ ॥ अपने मुखिया मत्स्यराजके मारे जानेके कारण मछलियोंको बड़ा काट हुआ । वे अत्यन्त दीन और व्याकुल हो गयीं । उनकी यह दशा देखकर महर्षि सौमरिके बड़ी दया आयी । उन्होंने उस कुण्डमें रहनेवाले सब जीवोंकी मछलियोंके लिये गरुडको यह शाप दे दिया ॥ १० ॥ 'यदि गरुड पितृ कभी इस कुण्डमें घुसकर मछलियोंको खायेगे, तो उसी क्षण प्राणोंसे हाथ जो बैठेंगे । मैं यह सत्य-साध्य कहता हूँ ॥ ११ ॥ परीक्षित ! महर्षि सौमरिके इस शापकी बात काष्ठिय नागके सिवा और कोई सर्प नहीं जानता था । इसलिये वह गरुडके मयसे वहाँ रहने लगा था और अब भगवान्‌ श्रीकृष्णने उसे निर्मय करके वहाँसे रमणक द्वीपमें भेज दिया ॥ १२ ॥

परीक्षित ! इधर भगवान्‌ श्रीकृष्ण दिव्य माळा, गन्ध, वस्त्र, महामूल्य मणि और सुवर्णमय आभूषणोंसे विभूषित हो उस कुण्डसे बाहर निकले ॥ १३ ॥ उनको देखकर सब-के-सब ब्रजवासी इस प्रकार उठ खड़े हुए, जैसे प्राणोंको पाकर इन्द्रियों सचेत हो जाती है । सभी गोपोंका हृदय आनन्दसे भर गया । वे बड़े प्रेम और प्रसन्नतासे अपने कन्हैयाको हृदयसे लगाने लगे ॥ १४ ॥ परीक्षित ! यशोदारानी, रोहिणीजी, नन्दबाबा, गोपी और गोप—सभी श्रीकृष्णको पाकर सचेत हो गये । उनका मनोरय सफल हो गया ॥ १५ ॥ कलरामजी तो भगवान्‌का प्रभाव जानते ही थे । वे श्रीकृष्णको हृदयसे लगाकर हैंसने लगे । पर्वत, वृक्ष, गाय, बैल, बछड़े—सब-के सब आनन्दमग्न हो गये ॥ १६ ॥ गोपोंके कुलगुरु ब्राह्मणोंने अपनी पत्नियोंके साथ नन्दबाबाके पास आकर कहा—नन्दबाबा ! तुम्हारे बालकको काष्ठिय नागने पकड़ लिया था । सो छूटकर आ गया । यह बड़े सौभाग्यकी

* यह कथा इस प्रकार है—गरुडजीकी माता विनवा और सर्पोंकी माता कद्रुयें परस्पर वैर था । माताका वैर स्मरण कर गरुडजी जो सर्प मिलता उसीको खा जाये । इससे व्याकुल होकर सब सर्प ब्रह्मानीकी शरणमें गये । तब ब्रह्मानीने यह नियम कर दिया कि प्रत्येक अमावस्याको प्रत्येक सर्पपरिवार बारी-बारीसे गरुडजीको एक सर्पकी बलि दिसा करे ।

वात है । ॥ १७ ॥ श्रीकृष्णके मुखसे जैट आनेके उपलक्ष्यमें तुम ब्राह्मणोंको दान करो ।' परीक्षित् । ब्राह्मणोंकी बात सुनकर नन्दबाबाको बड़ी प्रसन्नता हुई । उन्होंने बहुत-सा सोना और गौएँ ब्राह्मणोंको दान दीं ॥ १८ ॥ परमसौभाग्यवती देवी वशोदाने भी कालके गालसे बचे हुए अपने आलको गोदमे लेकर हृदयसे चिपका लिया । उनकी आँखोंसे आनन्दके आँसुओंकी बूँदें बार-बार टपकी पड़ती थीं ॥ १९ ॥

राजेन्द्र ! ब्रजवासी और गौएँ सब बहुत ही एक गये थे । ऊपरसे मूख-प्यास भी लग रही थी । इसलिये उस रात वे ब्रजमे नहीं गये, वहाँ यमुनाजीके तटपर सो रहे ॥ २० ॥ गर्मकि दिन थे, उपरका वन सूख गया था । आधी रातके समय उसमे आग लग गयी । उस आगने सोये हुए ब्रजवासियोंको चारों ओरसे घेर लिया और वह उन्हें जलने लगी ॥ २१ ॥ आगकी

आँच लगनेपर ब्रजवासी घबड़ाकर उठ खड़े हुए और जीव-मनुष्य भगवान् श्रीकृष्णकी शरणमें गये ॥ २२ ॥ उन्होंने कहा—प्यारे श्रीकृष्ण ! श्यामसुन्दर ! महाभाग्यवान् कछाराम ! तुम दोनोंका बल-विक्रम अनन्त है । देखो, देखो, यह भयङ्कर आग तुम्हारे सगे-सम्बन्धी हम खजनोंको जलाना ही चाहती है ॥ २३ ॥ तुममें सब सामर्थ्य है । हम तुम्हारे सुहृद् हैं इसलिये इस प्रलयकी अपार आगसे हमें बचाओ । प्रभो ! हम शत्रुसे नहीं डरते; परन्तु तुम्हारे अनुतोम्य चरणकमल छोड़नेमें हम असमर्थ हैं ॥ २४ ॥ भगवान् अनन्त हैं; वे अनन्त शक्तियोंको धारण करते हैं, उन जगदीश्वर भगवान् श्रीकृष्णने जब देखा कि मेरे खजन इस प्रकार व्याकुल हो रहे हैं, तब वे उस भयङ्कर आगको पी गये ।* ॥ २५ ॥

अठारहवाँ अध्याय

प्रलम्बासुर-उदार

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित् ! अब आनन्दित खजन-सम्बन्धियोंसे घिरे हुए एवं उनके मुखसे अपनी कीर्तिका गान सुनते हुए श्रीकृष्णने गोकुलमण्डित गोष्ठमे प्रवेश किया ॥ १ ॥ इस प्रकार अपनी योगमायासे ग्वालका-सा वेव बनाकर राम और श्याम ब्रजमे क्रीड़ा कर रहे थे । उन दिनों ग्रीष्म ऋतु थी । यह शरीर-वारियोंको बहुत प्रिय नहीं है ॥ २ ॥ परन्तु वृन्दावनके खाभाविक गुणोंसे वहाँ वसन्तकी ही छाया छिटक रही थी । इसका कारण था, वृन्दावनमें परम मधुर भगवान् श्यामसुन्दर श्रीकृष्ण और कछारामजी निवास जो करते

थे ॥ ३ ॥ शींगुरोंकी तीखी झंकार झरनोंके मधुर झर-झरमें छिप गयी थी । उन झरनोंसे सदा-सर्वथा बहुत ठंडी जलकी फुहारें उबा करती थीं, जिनसे वहाँके वृक्षोंकी हरियाली देखते ही बनती थी ॥ ४ ॥ जिधर देखिये, हरी-हरी दृक्से पृथ्वी हरी-हरी हो रही है । नदी, सरोवर एवं झरनोंकी लहरोंका स्पर्श करके जो वायु चलती थी उसमें आल-पीले-नीले, तुरलके खिले हुए, देरके खिले हुए—कछार, लपक आदि अनेकों प्रकारके कमलोंका पराग मिजा हुआ होता था । इस शीतल, मन्द और सुगन्ध वायुके कारण वनवासियों-

अग्नि-भाष

* १-मैं सक्का दाह दूर करनेके लिये ही अतीर्थ हुआ हूँ । इसलिये यह दाह दूर करना भी मेरा कर्तव्य है ।

२-रामावतारमें श्रीजानकीजीको सुरक्षित रखकर अग्निने मेरा उपकार किया था । अब उसको जलने दुखमें स्थापित करके उसका सत्कार करना कर्तव्य है ।

३. कार्यका कारणमें लग होता है । भगवान् के मुखसे अग्नि प्रकट हुआ—सुखाद् अग्निरज्जयत । इसलिये भगवान् उसे मुखमें ही स्थापित किया ।

४. मुखके द्वारा अग्नि शान्त करके यह भाव प्रकट किया कि भव-दावात्रिको शान्त करनेमें भगवान् के मुख-स्थानीय ब्राह्मण ही समर्थ हैं ।

को गर्माका किसी प्रकारका बखेरा नहीं सहना पड़ता था । न दाबासिका ताप लगता था और न तो सूर्यका घाम ही ॥ ५ ॥ नदियोंमें अगाध जब मरा हुआ था । बड़ी-बड़ी लहरें उनके सटोंको चूम जाया करती थीं । वे उनके पुछनोंसे टकरातीं और उन्हें खण्ड बना जातीं । उनके कारण आस-पासकी भूमि गीली बनी रहती और सूर्यकी अत्यन्त उग्र तथा तीखी किरणें भी वहाँकी पृथ्वी और हरी-भरी घासको नहीं सुखा सकती थीं, चारों ओर हरियाली छा रही थी ॥ ६ ॥ उस वनमें वृक्षोंकी पौत-की-पौत फल्लेंसे ढक रही थी । जहाँ देखिये, वहाँसे सुन्दरता फूटी पड़ती थी । कहीं रंग-बिरंगे पक्षी चहक रहे हैं, तो कहीं तरह-तरहके हरित चौकड़ी मर रहे हैं । कहीं मोर कूक रहे हैं, तो कहीं मीरे गुंजार कर रहे हैं । कहीं कोयलें कुहक रही हैं, तो कहीं सारस अलग ही अपना अलग छेड़े हुए हैं ॥ ७ ॥ ऐसा सुन्दर वन देखकर श्यामसुन्दर श्रीकृष्ण और गौरसुन्दर बलरामजीने उसमें विहार करनेकी इच्छा की । आगे-आगे गौएँ चली, पीछे-पीछे ग्वालवाण और बीचमें अपने बड़े भाईके साथ बोंसुरी बजाते हुए श्रीकृष्ण । ॥ ८ ॥

राम, श्याम और ग्वालवालोंने नव फल्लों, मोरपंखके गुच्छों, सुन्दर-सुन्दर पुष्पोंके हारों और गेरू आदि रंगीन बाहुओंसे अपनेकी भौंति-भौंतिसे सजा लिया । फिर कोई आनन्दमें मग्न होकर नाचने लगा, तो कोई ताळ ठोंककर कुत्ती छड़ने लगा और किसी-किसीने गग अथपना शुरू कर दिया ॥ ९ ॥ जिस समय श्रीकृष्ण नाचने लगते, उस समय कुछ ग्वालवाण गाने लगने और कुछ बोंसुरी तथा सींग बजाने लगते । कुछ हथैलीसे ही ताळ देते, तो कुछ 'वाह-वाह' करने लगते ॥ १० ॥ परिशिष्ट । उस समय नट जैसे अपने नायककी प्रशंसा करते हैं, वैसे ही देवतालोग ग्वालवालोंका रूप धारण करके वहाँ आते और गोपजातिमें जन्म लेकर छिपे हुए बलराम और श्रीकृष्णकी स्तुति करने लगते ॥ ११ ॥ बुँधराली अलकोंवाल श्याम और बलराम कभी एक-दूसरेका हाथ पकड़कर कुम्हारके चाकरी तरह चक्कर काटते—धुमरी-परेता खेलते, कभी एक-दूसरेसे अधिक

फौंद जानेकी इच्छासे कूदते—कूड़ी बाकते, कभी कहीं होड़ लगाकर डेले फेंकते, तो कभी ताळ ठोंक-ठोंककर रस्साकसी करते—एक दल दूसरे दलके विपरीत रस्सी पकड़कर खींचता और कभी कहीं एक-दूसरेसे कुत्ती छड़ते-छड़ते । इस प्रकार तरह-तरहके खेल खेलते ॥ १२ ॥ कहीं-कहीं जब दूसरे ग्वालवाण नाचने लगते तो श्रीकृष्ण और बलरामजी गाते या बोंसुरी, सींग आदि बजाते । और महाराज । कभी-कभी वे 'वाह-वाह' कहकर उनकी प्रशंसा भी करने लगते ॥ १३ ॥ कभी एक-दूसरेपर बैक, जायफळ या औंखलेके फल हाथमें लेकर फेंकते । कभी एक-दूसरेकी औंख बंद करके छिप जाते और वह पीछेसे ढूँढ़ता—इस प्रकार औंखमिचौनी खेलते । कभी एक दूसरेको छूनेके लिये बहुत दूर-दूरतक दौड़ते रहते और कभी पशु-पक्षियोंकी चेष्टाओंका अनुकरण करने ॥ १४ ॥ कहीं मेढकोंकी तरह फुदक-फुदककर चलते, तो कभी मुँह बना-बनाकर एक दूसरेकी हँसी उड़ाते । कहीं रस्सियोंसे इसोपर झूल बाँककर झूलते, तो कभी दो बाँककोंको खड़ा कराकर उनकी बाँहोंके बलपर ही छटकने लगते । कभी किसी राजाकी नकाब करने लगते ॥ १५ ॥ इस प्रकार राम और श्याम बुन्दावनकी नदी, पर्वत, घाटी, कुहा, वन और सरोवरोंमें वे सभी खेल खेलते, जो साधारण बच्चे संसारमें खेल करते हैं ॥ १६ ॥

एक दिन जब बलराम और श्रीकृष्ण ग्वालवालोंके साथ उस वनमें गौएँ चरा रहे थे, तब ग्वालके वेषमें प्रलम्ब नामका एक असुर आया । उसकी इच्छा थी कि मैं श्रीकृष्ण और बलरामको हर ले जाऊँ ॥ १७ ॥ भगवान् श्रीकृष्ण सर्वज्ञ है । वे उसे देखते ही पहचान गये । फिर भी उन्होंने उसका मित्रताका प्रस्ताव स्वीकार कर लिया । वे मन-ही-मन यह सोच रहे थे कि किस युक्तिसे इसका वध करना चाहिये ॥ १८ ॥ ग्वालवालोंमें सबसे बड़े खिखड़ी, खेलोंके आचार्य श्रीकृष्ण ही थे । उन्होंने सब ग्वालवालोंको बुलाकर कहा—'मेरे प्यारे मित्रों ! आज हमलोग अपनेको उचित रीतिसे दो दर्जोंमें बाँट लें । और फिर आनन्दसे खेलें ॥ १९ ॥ उस खेलमें ग्वालवालोंने बलराम और श्रीकृष्णको नायक

बनाया । कुछ श्रीकृष्णके साथी बन गये और कुछ बलरामके ॥ २० ॥ फिर उन लोगोंने तरह-तरहसे ऐसे बहुत-से खेल खेले, जिनमें एक दलके लोग दूसरे दलके लोगोंको अपनी पीठपर चढ़ाकर एक निर्दिष्ट स्थानपर ले जाते थे । जीतनेवाला दल चढ़ता था और हारनेवाला दल होता था ॥ २१ ॥ इस प्रकार एक दूसरेकी पीठपर चढ़ते-चढ़ाते श्रीकृष्ण आदि ग्वालवाण गौएँ चराते हुए भाण्डीर नामक वटके पास पहुँच गये ॥ २२ ॥

परीक्षित ! एक बार बलरामजीके दलवाले श्रीदामा, वृषभ आदि ग्वालवालोंने खेलमें बाजी मार ली । तब श्रीकृष्ण आदि उन्हें अपनी पीठपर चढ़ाकर होने लगे ॥ २३ ॥ हारे हुए श्रीकृष्णने श्रीदामाको अपनी पीठपर चढ़ाया, भद्रसेनने वृषभको और प्रलम्बने बलरामजीको ॥ २४ ॥ दानवपुत्र प्रलम्बने देखा कि श्रीकृष्ण तो बड़े बलवान् हैं, उन्हें मैं नहीं हरा सकूँगा । अतः वह उन्हेंके पक्षमें हो गया और बलरामजीको लेकर फुर्तसे भाग पड़ा, और पीठपरसे उतारनेके लिये जो स्थान नियत था उससे आगे निकल गया ॥ २५ ॥ बलरामजी बड़े भारी पर्वतके समान बोलवाले थे । उनको लेकर प्रलम्बासुर दूरतक न जा सका, उसकी पाठ रुक गयी । तब उसने अपना सामाजिक दैत्यरूप धारण कर लिया । उसके काले शरीरपर सोनेके गहने चमक रहे थे और गौरसुन्दर बलरामजीको धारण करनेके कारण उसकी ऐसी शोभा हो रही थी, मानो विजलीसे युक्त काला बादल चन्द्रमाको धारण किये हुए हो ॥ २६ ॥ उसकी आँखें आगकी तरह धधक रही थीं और दाढ़ें मोहोंतक पहुँची हुई बड़ी भयावनी थीं । उसके लाल-लाल बाल इस तरह बिखर रहे थे, मानो आगकी लपटें

उठ रही हों । उसके हाथ और पैरोंमें कड़े, सिरपर मुकुट और कानोंमें कुण्डल थे । उनकी कान्तिसे वह बड़ा अद्भुत लग रहा था । उस भयानक दैत्यको बड़े वेगसे आकाशमें जाते देख पहले तो बलरामजी कुछ धक्का-से गये ॥ २७ ॥ परन्तु दूसरे ही क्षण अपने स्वरूपकी याद आते ही उनका मन जाता रहा । बलरामजीने देखा कि जैसे चोर किसीका धन चुराकर ले जाय, वैसे ही यह शत्रु मुझे चुराकर आकाश-मार्गसे छिपे जा रहा है । उस समय जैसे इन्द्रने पर्वतोंपर कज चमकाया था, वैसे ही उन्होंने क्रोध करके उसके सिरपर एक घूँसा कसकर जमाया ॥ २८ ॥ घूँसा लगना था कि उसका सिर चूर-चूर हो गया । वह मुँहसे खून उगलने लगा, चेतना जाती रही और बड़ा भयङ्कर शब्द करता हुआ इन्द्रके द्वारा वज्रसे मारे हुए पर्यन्तके समान वह उसी समय प्राणहीन होकर पृथ्वीपर गिर पड़ा ॥ २९ ॥

बलरामजी परम बलशाली थे । जब ग्वालवालोंने देखा कि उन्होंने प्रलम्बासुरको मार डाला, तब उनके आश्चर्यकी सीमा न रही । वे बार-बार 'वाह-वाह' करने लगे ॥ ३० ॥ ग्वालवालोंका चित्त प्रेमसे विह्वल हो गया । वे उनके लिये झुम कामनाओंकी वर्षा करने लगे और मानो भरकर लौट आये हों, इस भावसे आलिङ्गन करके प्रशंसा करने लगे । वस्तुतः बलरामजी इसके योग्य ही थे ॥ ३१ ॥ प्रलम्बासुर मूर्तिमान् पाप था । उसकी मूर्खसे देवताओंको बड़ा सुख मिला । वे बलरामजीपर फूल बरसाने लगे और 'बहुत अच्छा किया, बहुत अच्छा किया' इस प्रकार कहकर उनकी प्रशंसा करने लगे ॥ ३२ ॥

उन्नीसवाँ अध्याय

गौओं और गोपोंको दावानलसे बचाना

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित ! उस समय जब ग्वालवाल खेल-कूदमें लग गये, तब उनकी गौएँ बेरोक-टोक चरती हुई बहुत दूर निकल गयीं और हरी-हरी घासके जंगमसे एक गहन जंगम घुस गयीं ॥ १ ॥

उनकी बकरियों, गायें और भैंसें एक जंगमसे दूसरे जंगम होती हुई आगे बढ़ गयीं तथा गर्मियों तापसे व्याकुल हो गयीं । वे केसुध-पत्ती होकर अन्तमें डकराती हुई मुखाटवी (सरकड़के जंगम) में घुस गयीं ॥ २ ॥

जब श्रीकृष्ण, बलराम आदि ग्वालबालों ने देखा कि हमारे पशुओंका तो कहीं पता-ठिकाना ही नहीं है, तब उन्हें अपने खेल-कूदपर बड़ा पछतावा हुआ और वे बहुत कुछ खोज-बीन करनेपर भी अपनी गौओंका पता न लगा सके ॥ ३ ॥ गौएँ ही तो ब्रजवासियोंकी जीविकाका साधन थीं । उनके न मिलनेसे वे अकेले-से हो रहे थे । अब वे गौओंके खुर और दोंतोंसे कटी हुई बास तथा घुँघरीयुक्त जूते हुए-खुरोंके चिह्नोंसे उनका पता लगाते हुए आगे बढ़े ॥ ४ ॥ अन्तमें उन्होंने देखा कि उनकी गौएँ सुझावनीमें रास्ता मूलकर बकरा रही हैं । उन्हें पाकुर, वे जौटानेकी चेष्टा करने लगे । उस समय वे एकदम थक गये, वे और उन्हें प्यास भी बढ़े जोरसे लगी हुई थी । इससे वे व्यकुल हो रहे थे ॥ ५ ॥ उनकी यह दृशा देखकर भगवान् श्रीकृष्ण अपनी मेढके समान गम्भीर बाणीसे नाम-के-लेकर गौओंको पुकारने लगे । गौएँ अपने नामकी ज्वलि-भुनकत बहुत हर्षित हुईं । वे भी उत्तरमें हुंकारने और 'म्याने लगीं ॥ ६ ॥

परीक्षित । इस प्रकार भगवान् उन गौओंको पुकार ही रहे थे कि उस वनमें सब और अकुत्सात् दावागि र्णा गयी, जो वनवासी जीवोंका काल ही होती है । साथ ही बढ़े जोरकी आवाजों से चलकर उस अग्निके बड़नेमें सहायता देने लगीं । इससे सब और पैली हुईं । बड़े प्रचण्ड अग्नि अपनी मयङ्गीर लपेटोंसे समस्त वनपर जीवोंको मससात् करने लगीं ॥ ७ ॥ जब ग्वालों और गौओंने देखा कि दावलोक चारों ओरसे हमारी ही ओर बढ़ता आ रहा है, तब वे अत्यन्त भयभीत हो गये । और मृत्युके मयसे खड़े हुए जीव जिसे प्रकार भयभीतकी शरणमें आते हैं, वैसे ही वे श्रीकृष्ण और बेलरामजीके शरणापन्न होकर उन्हें पुकारते हुए गयीं ॥ ८ ॥

प्रमाण ।

१. भगवान् श्रीकृष्ण अन्तर्निहारा अर्थात् प्रेम-मग्नि द्वारा प्रकाशमान पान करते हैं । अग्निके मयसे उलीका खाद लेनेकी लालसा हो आयी । अग्निके सस्नेहत्व ही मुख्य-प्रवेश किया ।

२. विवागि, मुझादित्य और दावागि-जीनोंका पान करके मगबावने अपनी विवापनाशकी शक्ति व्यक्त की ।

३. पहले रात्रिमें अग्निमान किया था, दूसरी बार दिनमें । भगवान् अपने भक्तजीवोंका ताप हरनेके लिये सदा तत्पर रहते हैं ।

४. पहली बार सबके सामने और दूसरी बार सबकी ओलें बंद करके श्रीकृष्णने अग्निपान किया । एकदम, अग्निप्राय यह है कि भगवान् परोक्ष और अपरोक्ष दोनों ही प्रकारसे वे भक्तजीवोंका हित करते हैं ।

बोले—॥ ८ ॥ भगवान् श्रीकृष्ण । प्यारे श्रीकृष्ण । परम कल्याणी बलराम । हम तुम्हारे शरणागत हैं । देखो, इस समय हम दावानलसे जलना ही चाहते हैं । तुम दोनों हमें इससे बचाओ ॥ ९ ॥ श्रीकृष्ण । जिनके तुम्हीं माँह, कन्ध और सब कुछ हो, उन्हें तो किसी प्रकारका कुछ नहीं होना चाहिये । सब धर्मोंके ज्ञाता श्यामसुन्दर । तुम्हीं हमारे एकमात्र रक्षक एवं खामी हो; हमें केवल तुम्हारा ही भरोसा है ॥ १० ॥

श्रीकृष्णदेवजी कहते हैं—अपने सखा ग्वालबालोंके ये दीनतासे भरे वक्त्र सुनकर भगवान् श्रीकृष्णने कहा— 'हरो मत, तुम अपनी ओलें बंद कर दो' ॥ ११ ॥ भगवान् की आज्ञा सुनकर उन ग्वालबालोंने कहा 'बहुते अक्ष' और अपनी ओलें बंद कीं । तब योगेश्वर-भगवान् श्रीकृष्णने उस भयङ्कर घण्टाके अन्त में मुँहसे प्री लिया * और जिस प्रकार उन्हें उत्तमोत्तम संकटसे छुड़ा दिया ॥ १२ ॥ इसके बाद जब ग्वालबालोंने अपनी-अपनी ओलें खोलकर देखा, तब अपनेको मण्डीर घटके पास पाया । इस प्रकार अपने-आपको और गौओंको दावानलसे बचा देख वे ग्वालबाल बहुत ही विस्मित हुए ॥ १३ ॥ श्रीकृष्णकी इस योग-सिद्धि तथा योगप्रत्ययके प्रभाक्ती एवं दावानलसे अपनी आत्माके वैश्वरूप-सम्बन्ध, पृथी-ससम्पत्ति श्रीकृष्ण कोई वेत्ता है ॥ १४ ॥

परीक्षित । सायंकाल होनेपर बलरामजीके साथ भगवान् श्रीकृष्णने गौएँ (गौदार्पण) और वंशी बजाते हुए उनके पीछे-पीछे ब्रजकी आत्मा की न उस समय ग्वालबाल उनकी कृतज्ञता-करते आ रहे थे ॥ १५ ॥ इस वृत्तमें गोपियोंके श्रीकृष्णके विना एक-एक क्षण सी-सौ सुगमो सघर्ष हो रहा था ॥ जव-भगवान् श्रीकृष्ण ज्येष्ठ-सुख-सुखका दर्शन करने लगे प्रसन्नमन्यमें मान हो गयीं ॥ १६ ॥

वीसवीं अध्याय

वर्षा और शरदऋतुका वर्णन

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परिस्त्रिंशत्कालाब्धौ नैव पञ्चवक्त्रा अपनी मा, बहिन आदि स्त्रियोंसे श्रीकृष्ण और बलरामने जो कुछ अद्भुत कर्म किये थे—दाक्षानलसे उनको बचाना, प्रलम्बको मारना इत्यादि—सबका वर्णन किया ॥ १ ॥ बड़े-बड़े बड़े गोप और गोपियों भी राम और श्यामकी अलौकिक लीलाएँ सुनकर विस्मित हो गयीं । वे सब ऐसा मानने लगे कि 'श्रीकृष्ण और बलरामके क्षेत्रमें कोई बहुत बड़े देवता ही मजने पचारे हैं' ॥ २ ॥

इसके बाद वर्षाऋतुका सुव्यागमन हुआ । इस ऋतुमें सभी प्रकारके प्राणियोंकी बढ़ती हो जाती है । उस समय सूर्य और चन्द्रमापर बार-बार प्रकाशमय मण्डल बैठने लगे । बादल, वायु, चमक, कड़क आदिसे आकाश सुन्दर सा दीखने लगा ॥ ३ ॥ आकाशमें नीले और चने बादल घिर आये, बिजली कौंधने लगी, बार-बार गद्गद्गाहट सुनायी पवती; सूर्य, चन्द्रमा और तारे ढके रहते । इससे आकाशकी ऐसी शोभा होती, जैसे ब्रह्मस्वरूप होनेपर भी गुणोंसे ढक जानेपर जीवकी होती है ॥ ४ ॥ सूर्यने राजाकी तरह धृष्टीरूप प्रजापते आठ महीनेतक जलका कर प्रहण किया था, अब समय आनेपर वे अपने किरण-करोंसे फिर उसे बाँटने लगे ॥ ५ ॥ जैसे दयालु पुरुष जब देखते हैं कि प्रजा बहुत पीड़ित हो रही है, तब वे दयापरक होकर अपने जीवन प्राण-तक निष्कावर कर देते हैं—वैसे ही बिजलीभी चमकते शोभायमान धनधोर बादल तेज हवाकी प्रेरणासे प्राणियोंके कल्याणके लिये अपने जीवनस्वरूप जलको बरसाने लगे ॥ ६ ॥ जेठ-आषाढ़की गर्मीसे धृष्टी सुख गयी थी । अब वर्षाके जलसे सिंचकर वह फिर हरी-भरी हो गयी—जैसे सकामभावसे तपस्या करते समय पहले तो शरीर दुर्बल हो जाता है, परन्तु जब उसका फल मिलता है, तब दृढ़-पुष्ट हो जाता है ॥ ७ ॥ जबकि सायङ्कालमें बादलोंसे घना अँधेरा छा जानेपर ग्रह और तारोंका प्रकाश तो नहीं दिखलभी पड़ता, परन्तु जुगलू चमकने लगते हैं—जैसे कलियुगमें पापकी प्रबलता हो जानेसे पाखण्ड मर्त्याका प्रचार हो जाता है और वैदिक

सम्प्रदाय छप्त हो जाते हैं ॥ ८ ॥ जो मंदक पहले 'उपचाप सो रहे थे, अब वे बादलोंकी गरज सुनकर छर-छर करने लगे—जैसे नित्य-नियमसे निवृत्त होनेपर गुरुके आदेशानुसार ब्रह्मचारी लोग वेदपाठ करने लगते हैं ॥ ९ ॥ छोटी-छोटी नदियाँ, जो जेठ-आषाढ़में बिल्कुल सूखनेकी आ गयी थीं, वे अब उमड़-मुसड़कर अपने क्षेत्रसे बाहर बहने लगीं—जैसे अत्रितेन्द्रिय पुरुषके शरीर और वन-सम्पत्तियोंका कुमार्गमें उपयोग होने लगता है ॥ १० ॥ पृथ्वीपर कहीं-कहीं हरी-हरी घासकी हरियाली थी, तो कहीं-कहीं बीरबहूतियोंकी लाकिया और कहीं-कहीं बरसानी छत्तों (सफेद कुकुनमुत्तों) के कारण वह सफेद साक्ष्य देती थी । इस प्रकार उसकी ऐसी शोभा हो रही थी, याने किसी राजाकी रंगबिरंगी सेना हो ॥ ११ ॥ सब क्षेत्र अनाजोंसे भरे-भरे बहलहा रहे थे । उन्हें देखकर किसान तो मारे आनन्दके फूले न समाते थे, परन्तु सब कुछ प्रारब्धके अधीन है—यह बात न जाननेवाले धनियोंके चित्तमें बड़ी जलन हो रही थी कि अब हम इन्हें अपने पतेमें कैसे रख सकेंगे ॥ १२ ॥ नये बरसती जलके सेवनसे सभी जलचर और पक्षचर प्राणियोंकी सुन्दरता बढ़ गयी थी, जैसे भगवान्की सेवा करनेसे बाहर और भीतरके दोनों ही रूप सुषुप्त हो जाते हैं ॥ १३ ॥ वर्षा-ऋतुमें हवाके झोंकोंसे समुद्र एक तो यों ही उताळ तरङ्गोंसे युक्त हो रहा था, जब नदियोंके सयोगसे वह और भी सुस्पष्ट हो उठा—ठीक वैसे ही, जैसे वासनायुक्त योगीका चित्त विषयोंका सम्पर्क होनेपर कामनाओंके उमारसे भर जाता है ॥ १४ ॥ भूस्खलन वर्षाकी चोट खाते रहनेपर भी पर्वतोंको कोई व्यथ नहीं होती थी—जैसे दुःखोंकी भरमार होनेपर भी उन पुरुषोंको किसी प्रकारकी व्यथ नहीं होती, जिन्होंने अपना चित्त यमज्ञानको ही समर्पित कर रखा है ॥ १५ ॥ जो मार्ग कभी साफ नहीं किये जाते थे वे घाससे ढक गये और उनकी पहचानना कठिन हो गया—जैसे जब द्विजाति वेदोंका अभ्यास नहीं करते तब काष्ठक्रमसे वे उन्हें सूख जाते हैं ॥ १६ ॥ वर्षा

बादल बड़े लोकोपकारी हैं, फिर भी बिजलियाँ उनमें स्थिर नहीं रहतीं—ठीक वैसे ही, जैसे चपल अतुराग-वाली कामिनी स्त्रियाँ गुणी पुरुषोंके पास भी स्थिर भावसे नहीं रहतीं ॥ १७ ॥ आकाश मेघोंके गर्जन तर्जनसे भर रहा था। उसमें निर्गुण (बिना डोरीके) इन्द्रधनुषकी वैसी ही शोभा हुई, जैसी सत्त्व-रज आदि गुणोंके क्षोभसे होनेवाले विश्वके बलेदेमें निर्गुण ब्रह्माकी ॥ १८ ॥ यद्यपि चन्द्रमाकी उज्ज्वल चाँदनीसे बादलोंका पता चलता था, फिर भी उन बादलोंने ही चन्द्रमाको ढककर शोभाहीन भी बना दिया था—ठीक वैसे ही, जैसे पुरुषके आभाससे आभासित होनेवाला अहङ्कार ही उसे ढककर प्रकाशित नहीं होने देता ॥ १९ ॥ बादलोंके शुभाग्रमनसे मोरोंका रोम-रोम भिन्न रहा था, वे अपनी कुक्षक और धुपके द्वारा आनन्दोत्सव मना रहे थे—ठीक वैसे ही जैसे गृहस्त्रीके जंताळमें रँगे हुए जोग, जो अधिकतर हीनों तापोंसे जलते और धबझने रहते हैं, भगवान्‌के भक्तोंके शुभाग्रमनसे आनन्दमग्न हो जाते हैं ॥ २० ॥ जो वृक्ष जेठ-आषाढ़में सूख गये थे, वे अब अपनी जड़ोंसे जल पीकर पत्ते, फूल तथा ढाड़ियोंसे खूब सज-धज गये—जैसे सकामभावसे तपस्या करनेवाले पहले तो दुर्बल हो जाते हैं, परन्तु कामना पूरी होनेपर मोटे-तगड़े हो जाते हैं ॥ २१ ॥ पराक्षित! ताळगोंके तट कटि-काच और जलके बहावके कारण प्रायः अशान्त ही रहते थे, परन्तु सारस एक क्षणके लिये भी उन्हें नहीं छोड़ते थे—जैसे अशुद्ध हृदयवाले विनयी पुरुष काम-धर्मोंकी शृङ्खलामें कभी छुटकारा नहीं पाते, फिर भी धर्मों ही पड़े रहते हैं ॥ २२ ॥ वर्षा ऋतुमें इन्द्रकी प्रेरणासे मूस-धार वर्षा होती है, इससे नदियोंके बाँध और खेतोंकी मेढ़े टूट-फूट जाती हैं—जैसे कल्पिगुप्तमें पाण्डिप्योंके तरह-तरहके मिथ्या मतवादोंसे वैदिक धर्मकी मर्यादा ढीली पड़ जाती है ॥ २३ ॥ वायुकी प्रेरणासे बने बादल प्राणियोंके लिये अमृतमय जलकी वर्षा करने लगते हैं—जैसे ब्राह्मणोंकी प्रेरणामें धनीजोग समय-समयकर दानके द्वारा प्रजाकी अभिलाषाएँ पूर्ण करते हैं ॥ २४ ॥

वर्षाऋतुमें वृन्दावन इसी प्रकार शोभायमान और पके हुए खजूर तथा आमनोंसे भर रहा था। उसी कर्मों

विहार करनेके लिये स्थान और बलरामने ग्वालवाक और गौओंके साथ प्रवेश किया ॥ २५ ॥ गौएँ अपने धनोंके भारी भारके कारण बहुत ही धीरे-धीरे चल रही थीं। जब भगवान् श्रीकृष्ण उनका नाम लेकर पुकारते, तब वे प्रेमपरवश होकर जन्दी-जन्दी दौड़ने लगतीं। उस समय उनके धनोंसे दूधकी धारा गिरती जाती थी ॥ २६ ॥ भगवान्‌ने देखा कि वनवासी भील और भीलनियों आनन्दमग्न हैं। बूझोंकी पङ्क्तियाँ मधुघरा जड़े लगी हैं। पर्वतोंसे सर-सर करते हुए बरने सर रहे हैं। उनकी आवाज बड़ी सुरीली जान पड़ती है और साथ ही वर्षा होनेपर छिपनेके लिये बहुत-सी गुफाएँ भी हैं ॥ २७ ॥ जब वर्षा होने लगी, तब श्रीकृष्ण कभी किसी वृक्षकी गोदमें या खोइरमें जा छिपते। कभी-कभी किसी गुफामें ही जा बैठने और कभी कन्द-मूत्र-मल खाकर ग्वालवालोंके साथ खेलते रहते ॥ २८ ॥ कभी जलके पास ही किसी चट्टानपर बैठ जाने और चक्रामजी तथा ग्वाल-वालोंके साथ मिलाकर बरसे खाया हुआ दही-भात दाब-शायक आदिके साथ खाते ॥ २९ ॥ वर्षाऋतुमें बैल, बछड़े और पनोंके भारी भारसे बकी हुई गौएँ थोड़ी ही बेरमें भरपेट वास चर लेतीं और हरी-हरी घासपर बैठकर ही खैल मँदकर झुगझी करती रहतीं। वर्षा ऋतुकी सुन्दरता अपार थी। वह सभी प्राणियोंको सुख पहुँचा रही थी। इसमें सन्देह नहीं कि वह ऋतु, गाय, बैल, बछड़े—सब-के-सब भगवान्‌की कीलके ही विकास थे। फिर भी उन्हें देखकर भगवान् बहुत प्रसन्न होते और बार-बार उनकी प्रशंसा करते ॥ ३०-३१ ॥

इस प्रकार स्थान और बलराम बड़े आनन्दसे ब्रजमें निवास कर रहे थे। इसी समय वर्षा वीतनेपर शरद ऋतु आ गयी। अब आकाशमें बादल नहीं रहे, जल निर्मल हो गया, वायु बड़ी धीमी गतिसे चलने लगी ॥ ३२ ॥ शरद ऋतुमें कमलोंकी उत्पत्तिसे जलशयोके जलने अपनी सहज सच्छता प्राप्त कर ली—ठीक वैसे ही, जैसे योगब्रह्म पुरुषोंका चित्त फिरसे योगका सेवन करनेसे निर्मल हो जाता है ॥ ३३ ॥ शरद ऋतुमें आकाशके बादल, वर्षाऋतुके बड़े हुए जीव, पृथ्वी और जलके भटमैलेजनको नष्ट कर दिया

की 'मौलि' प्रसिद्धि, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यासियों के सब प्रकारके कष्टों और अशुभोंका शठपट नाश कर देती है ॥३४॥ बादल अपने सर्वत्र जलका दान करने उज्ज्वल कान्तिसे सुशोभित होने लगे—ठीक वैसे ही, जैसे 'लोक-परलोक', 'बी-पुत्र' और 'वन-सम्पत्तिसम्बन्धी चिन्ता' और 'कामनाओंका परित्याग' कर देनेपर संसारके बन्धनसे छूटे हुए परम शान्त संन्यासी शोभमान होते हैं ॥३५॥ अब पूर्वोक्त कहो—कहाँ करने करते थे और कहाँ-कहाँ थे अपने कल्याणकारी जलको नहीं भी बहाते—ये जैसे ज्ञानी पुरुष समयपर अपने अमृतमय ज्ञानका स्रव किसी अधिकारीको कर देते हैं—और किसी-किसीको नहीं भी करते ॥३६॥ छोट-छोटे गड्ढों में भरे हुए जलके जलकर यह नहीं जानते कि इस गड्ढेका जल दिन-पर-दिन सूखता जा रहा है—जैसे कुटुम्बके मरण-पोषणमें भूले हुए मूढ़ यह नहीं जानते कि हमारी आयु क्षण-क्षण क्षीण हो रही है ॥३७॥ थोड़े जलमें रहनेवाले प्राणियोंको शरत्कालीन सूर्यकी प्रखर किरणोंसे बड़ी पीडा होने लगी—जैसे अपनी इन्द्रियोंके बशमें रहनेवाले रूपण एवं द्रष्टृ कुटुम्बीको तरह-तरहके ताप सताते ही रहते हैं ॥३८॥ पृथ्वी धीरे-धीरे अपना कीचड़ छोड़ने लगी और वास-पात धीरे-धीरे अपनी कृत्रिमता छोड़ने लगे—ठीक वैसे ही, जैसे विवेकसम्पन्न साधक धीरे-धीरे शरीर आदि अनात्म पदार्थोंसे 'यह मैं हूँ' और 'यह मेरा है' यह अहंता और ममता छोड़ देते हैं ॥३९॥ शरद् ऋतुमें समुद्रका जल स्थिर, गम्भीर और शान्त हो गया—जैसे मनके निःसङ्कल्प हो जानेपर आभाराम पुरुष कर्मकाण्डका झमेला छोड़कर शान्त हो जाता है ॥४०॥ किसान खेतोंकी मेढ मजबूत करके जलका बहना रोकने लगे—जैसे योगीजन अपनी इन्द्रियोंकी विषयोंकी ओर जानेसे रोकतत्र, प्रत्याहार करके उनके द्वारा क्षीण होते हुए ज्ञानकी रक्षा करते हैं ॥४१॥ शरद् ऋतुमें दिनके

समय बड़ी बड़ी धूप होती, लोगोंको बहुत कष्ट होता, परन्तु चन्द्रमा रात्रिके समय लोगोंका सारा संताप वैसे ही हर लेते—जैसे देहाभिमानसे होनेवाले दुःखको ज्ञान और भगवद्विरहसे होनेवाले गोपियोंके दुःखको श्रीकृष्ण नष्ट कर देते हैं ॥४२॥ जैसे वेदोंके 'अर्थको स्पष्ट रूपसे ज्ञाननेवाला सर्वगुणों' विराजित शोभामयन होता है, वैसे ही शरद् ऋतुमें रातके समय मेघोंसे रहित निर्मल आकाश तारोंकी 'अभ्यतिरेक' जगमाने लगा ॥४३॥ परिशिष्ट । जैसे पृथ्वीतलमें यदुर्वीक्ष्योके बीच यदुपति भगवान् श्रीकृष्णकी शोभा होती है, वैसे ही आकाशमें तारोंके बीच पूर्ण चन्द्रमा सुशोभित होने लगा ॥४४॥ फलोंसे लदे हुए वृक्ष और 'लताओंमें' होकर बड़ी ही सुन्दर 'वायु' बहती; वहाँ न अधिक ठंडी होती और न अधिक गरम । उस वायुके रससे सब लोगोंकी जलन तो मिट जाती; परन्तु गुणोंपियोंकी जलन और भी बढ़ जाती; क्योंकि उनका 'चित्त' उनके हाथमें नहीं था, श्रीकृष्णने उसे 'पुनः' लिया था ॥४५॥ शरद् ऋतुमें गौएँ, हरिनियाँ, चिड़ियों और नारियों ऋतुमती—सन्तानोत्पत्तिकी कामनासे युक्त हो गयीं तथा सौँद, हरिन, पक्षी और पुरुष उनका अनुसरण करने लगे—ठीक वैसे ही, जैसे समर्थ पुरुषके द्वारा की हुई क्रियाओंका अनुसरण उनके फल करते हैं ॥४६॥ परिशिष्ट । जैसे राजाके शुभागमनसे बाहु-चोरोंके सिवा और सब लोग निर्मय हो जाते हैं, वैसे ही सूर्योदयके कारण कुसुदिनी (कुँई या कोई) के अतिरिक्त और सभी प्रकारके कमल खिल गये ॥४७॥ उस समय बड़े-बड़े शहरों और गाँवोंमें नवान्नाप्राशन और इन्द्रसम्बन्धी उत्सव होने लगे । खेतोंमें अनाज पक गये और पृथ्वी भगवान् श्रीकृष्ण तथा नवरात्रजीकी उपस्थितिसे अत्यन्त सुशोभित होने लगी ॥४८॥ साधना करके सिद्ध हुए पुरुष जैसे समय आनेपर अपने देव आदि शरीरोंके प्राप्त होने हैं, वैसे ही वैश्य, सन्यासी, राजा और क्षात्रक—जो कर्णिक कारण एक स्थानपर रुके हुए थे—वहसे चलकर अपने-अपने अभीष्ट काम-काजमें लगा गये ॥४९॥

इकीसवाँ अध्याय

वेणुगीत

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परिशिष्ट । शरद्-ऋतुके कारण वह वन बड़ा सुन्दर हो रहा था । जल निर्मल

था और जलशयोंमें खिले हुए कमलोंकी सुगन्धसे सनकर वायु मन्द-मन्द चल रही थी । भगवान् श्रीकृष्णने गौऔ



गोपियोंके ध्यानमें श्रीकृष्ण-वलराम

और ग्वालवालोंके साथ उस वनमें प्रवेश किया ॥ १ ॥ सुन्दर-सुन्दर पुष्पोंसे परिपूर्ण हरी-हरी वृक्ष-पंक्तिमें मतवाले और स्थान-स्थानपर गुनगुना रहे थे और तरह-तरहके पक्षी झुंड-के-झुंड अलग-अलग कलरव कर रहे थे, विसरे उस वनके सरोवर, नदियों और पर्वत—सब-के-सब गूँजते रहते थे । मधुपति श्रीकृष्णने कल्याण-की और ग्वालवालोंके साथ उसके भीतर घुसकर गौओं-को चराते हुए अपनी बौंसुरीपर बड़ी मधुर तान छोड़ी ॥ २ ॥ श्रीकृष्णकी वह वंशीध्वनि अग्नानुके प्रति प्रेमभावकी, उनके मिलनकी आकाङ्क्षाको जगनेवाली थी । (उसे सुनकर गोपियोंका हृदय प्रेम्से परिपूर्ण हो गया) वे एकान्तमें अपनी सखियोंसे उनके रूप, गुण और वंशीध्वनिके प्रभावका वर्णन करने लगीं ॥ ३ ॥ ब्रजकी गोपियोंने वंशीध्वनिका माधुर्य आपसमें वर्णन करना चाहा तो अवश्य; परन्तु वंशीका स्मरण होते ही उन्हें श्रीकृष्णकी मधुर चेष्टाओंकी, प्रेमपूर्ण चितवन, मौहोंके इशारे और मधुर मुसकान आदिकी याद हो आयी । उनकी भगवान्से मिलनेकी आकाङ्क्षा और भी बढ़ गयी । उनका मन हाथसे निकल गया । वे मन-ही-मन वहाँ पहुँच गयीं, जहाँ श्रीकृष्ण थे । अब उनकी बाणी बोले कैसे ! वे उसके वर्णनमें असमर्थ हो गयीं ॥ ४ ॥ (वे मन ही-मन देखने लगीं कि) श्रीकृष्ण ग्वालवालोंके साथ वृन्दावनमें प्रवेश कर रहे हैं । उनके सिरपर मयूर-पिच्छ है और कानोंपर कनेरके पीछे-पीछे पुष्प; शरीरपर सुनहला पीताम्बर और गलेमें पाँच प्रकारके झुगन्धित पुष्पोंकी बनी बैजयन्ती माला है । रंगमञ्चपर अभिनय करते हुए श्रेष्ठ नटका-सा क्या ही सुन्दर वेव है । बौंसुरीके छिद्रोंको वे अपने अधरामृतसे भर रहे हैं । उनके पीछे-पीछे ग्वालवाल उनकी लोकमगन कीर्तिका गान कर रहे हैं । इस प्रकार वैकुण्ठसे भी श्रेष्ठ वह वृन्दावनधाम उनके चरणचिह्नसे और भी रमणीय बन गया है ॥ ५ ॥ परीक्षित । यह वंशीध्वनि जड़, चेतन—समस्त भूतोंका मन चुरा लेती है । गोपियोंने उसे सुना और सुनकर उसका वर्णन करने लगीं । वर्णन करते-करते वे तन्मय हो गयीं और श्रीकृष्णको पाकर आलिङ्गन करने लगीं ॥ ६ ॥

गोपियाँ आपसमें बातचीत करने लगीं—अरी सखी ! हमने तो आँखवालोंके जीवनकी और उनकी

आँखोंकी बस, यही—इतनी ही संपत्ति समझी है; और तो हमें कुछ माछम ही नहीं है । वह कौन-सा लज है ! वह यही है कि जब श्यामसुन्दर श्रीकृष्ण और गौरसुन्दर बलराम ग्वालवालोंके साथ गाँवोंको हाँककर वनमें ले जा रहे हों या लौटकर ब्रजमें ला रहे हों, उन्होंने अपने अधरोपर मुरली धर रखी हो और प्रेमभरी तिरछी चितवनसे हमारी ओर देख रहे हों, उस समय हम उनकी मुख-माधुरीका पान करती रहे ॥ ७ ॥ अरी सखी ! जब वे आमकी नयी कोंपलें, मोरोंके पंख, फूलोंके गुच्छे, रंग-विरंगे कमल और कुमुदकी मालाएँ धारण कर लेते हैं, श्रीकृष्णके सौन्दर्य शरीरपर पीताम्बर और बलयमके गोरे शरीरपर नागाम्बर पहनने लगता है, तब उनका वेव बढ़ा विचित्र बन जाता है । ग्वालवालोंकी गोष्टीमें वे दोनों बीचोबीच बैठ जाते हैं और मधुर सङ्गीतकी तान छेड़ देते हैं । मेरी प्यारी सखी ! उस समय ऐसा जान पड़ता है मानो दो चतुर नट रंगमञ्चपर अभिनय कर रहे हों । मैं क्या बताऊँ कि उस समय उनकी कितनी शोभा होती है ॥ ८ ॥ अरी गोपियो ! यह वेणु पुरुषवातिक्षा होनेपर भी पूर्वजन्ममें न जाने ऐसा कौन-सा साधन-मन्त्रन कर चुका है कि इस गोपियोंकी अपनी सम्पत्ति—दामोदरके अधरोकी सुधा स्त्रय ही इस प्रकार पिये जा रहा है कि इसलोगोंके छिये थोड़ा-सा भी रस शेष नहीं रहेगा । इस वेणुकी अपने रससे साँचनेवाली हृदिनिचाँ आज कमलोंके मिस रोमाञ्चित हो रही हैं और अपने वंशमें भगवत्प्रेमी सन्तानोंको देखकर श्रेष्ठ पुरुषोंके समान वृक्ष भी इसके साथ अपना सम्बन्ध जोड़कर आँखोंसे आनन्दामृत बहा रहे हैं ॥ ९ ॥

अरी सखी ! यह वृन्दावन वैकुण्ठलोकतक पुष्पीकी कीर्तिका निस्तार कर रहा है । क्योंकि यशोदानन्दन श्रीकृष्णके चरणकमलोंके चिह्नसे यह चिह्नित हो रहा है । सखि ! जब श्रीकृष्ण अपनी मुनिजनमोहिनी मुरली बजाते हैं, तब मेरे मतवाले होकर उसकी तालपर नाचने लगते हैं । यह देखकर पर्वतकी चोटियोंपर विचरनेवाले सगी पक्ष-पक्षी चुप-चाप—शान्त होकर खड़े रह जाते हैं । अरी सखी ! जब प्राणवल्लभ श्रीकृष्ण विचित्र वेव धारण करके बौंसुरी बजाते हैं,

तब मूढ़ बुद्धिवाली ये हरिनियों भी बंशीकी तान सुनकर अपने पति कृष्णसार युगोंके साथ नन्दनन्दनके पास चली आती हैं और अपनी प्रेममयी बड़ी-बड़ी आँखोंसे उन्हें निरखने लगती हैं । निरखती क्या हैं, अपनी कमलके समान बड़ी-बड़ी आँखें श्रीकृष्णके चरणोंपर निछावर कर देती हैं और श्रीकृष्णकी प्रेममयी चितवनके द्वारा किया हुआ अपना सत्कार स्वीकार करती हैं । ' बासवमें उनका जीवन धन्य है । (हम बुन्दावनकी गोपी होनेपर भी इस प्रकार ऊपर अपनेको निछावर नहीं कर पाती, हमारे बरबाले फुड़ने लगते हैं । कितनी विहम्बना है ।) ॥ १०-११ ॥ अरी सखी ! हरिनियोंकी तो बात ही क्या है—सर्गकी देवियों जब युवतियोंको आनन्दित करनेवाले सौन्दर्य और शीलके खजाने श्रीकृष्णको देखती हैं और बाँसुरीपर उनके द्वारा गाया हुआ मधुर संगीत सुनती हैं, तब उनके चित्र-निचित्र आकाश मुन्कर वे अपने विमानपर ही सुध-बुध खो बैठती हैं—मूर्छित हो जाती हैं । यह कैसे माछम हुआ सखी ! सुनो तो, जब उनके हृदयमें श्रीकृष्णसे मिलनेकी तीव्र आकाङ्क्षा जग जाती है तब वे अपना धरज खो बैठती हैं, बेहोश हो जाती हैं; उन्हें इस बातका भी पता नहीं चलता कि उनकी थोठियोंमें गुंथे हुए फूल पृथ्वीपर गिर रहे हैं । यहौतक कि उन्हें अपनी साजीका भी पता नहीं रहता, वह कमरसे किसकमर जमीनपर गिर जाती है ॥ १२ ॥ अरी सखी ! तुम देवियोंकी बात क्या कह रही हो, इन गौओंकी नहीं देखती ! जब हमारे कृष्ण-प्यारे अपने मुखसे बाँसुरीमें खर भरते हैं और गौरों उनका मधुर संगीत सुनती हैं, तब वे अपने दोनों कानोंके दोने सम्माल लेती हैं—खड़े कर लेती हैं और मानो उनसे अभुन पी रही हों, इस प्रकार उस सङ्गीतका रस लेने लगती हैं । ऐसा क्यों होता है सखी ! अपने नेत्रोंके द्वारसे श्यामसुन्दरको हृदयमें ले जाकर वे उन्हें वहीं विराजमान कर देती हैं और मन-ही-मन उनका आलिङ्गन करती हैं । देखती नहीं हो, उनके नेत्रोंसे आनन्दके आँसू छलकने लगते हैं ! और उनके बछड़े, बछड़ोंकी तो दशा ही निराखी हो जाती है । यद्यपि

गर्बोंके घनोमें अपने-आप दूध भरता रहता है, वे जब दूध पीते-पीते अचानक ही बशीष्मनि सुनते हैं, नव मुँहमें छिया हुआ दूधका घूँट न उगल पाते हैं और न निगल पाते हैं । उनके हृदयमें भी होता है भगवान्का संपर्क और नेत्रोंमें छलकते होते हैं आनन्दके आँसू । वे ज्यों-के-त्यों ठिठके रह जाते हैं ॥ १३ ॥ अरी सखी ! गौरों और बछड़े तो हमारी धरकी वस्तु हैं । उनकी बात तो जाने ही दो । बुन्दावनके पक्षियोंकी तुम नहीं देखती हो ! उन्हें पक्षी कहना ही मूढ़ है ! सब पूछो तो उनमेंसे अधिकांश बड़े-बड़े भ्रमि मुनि हैं । वे बुन्दावनके सुन्दर-सुन्दर वृक्षोंकी लगी और मनोहर कोंपलोंवाली डालियोंपर चुपचाप बैठ जाते हैं और आँखें बंद नहीं करते, निर्मिमेध मननोंसे श्रीकृष्णकी रूप-माधुरी तथा प्यारमयी चित्रन देख-देखकर मिठाळ होने रहते हैं, तथा कानोंसे अन्य सब प्रकारके शब्दोंको छोड़कर केवल उन्हींकी मोहनी ग्राणी और बंशीक त्रिसुवनमोहन सङ्गीत सुनते रहते हैं । मेरी प्यारी सखी ! उनका जीवन कितना धन्य है ॥ १४ ॥

अरी सखी ! देवता, गौओं और पक्षियोंकी बात क्यों करती हो ! वे तो चेतन हैं । इन जब नदियोंको नहीं देखती ! इनमें जो मैत्र दीख रहे हैं, उनसे इनके हृदयमें श्यामसुन्दरसे मिलनेकी तीव्र आकाङ्क्षा पता चलता है । उसके वेगसे ही तो इनका प्रवाह रुक गया है । इन्होंने भी प्रेमस्वरूप श्रीकृष्णकी बशीष्मनि सुन ली है । देखो, देखो ! ये अपनी तरङ्गोंके हाथोंसे उनके चरण पकड़कर कमलके छल्लोंका उपहार चढ़ा रही हैं और उनका आलिङ्गन कर रही हैं मानो उनके चरणोंपर अपना हृदय ही निछावर कर रही हैं ॥ १५ ॥ अरी सखी ! ये नदियाँ तो हमारी पृथ्वीकी, हमारे बुन्दावनकी वस्तुएँ हैं; तनिक इन बादलोंको भी देखो ! जब वे देखते हैं कि ब्रजराजकुमार श्रीकृष्ण और बलरामजी ग्वालबालोंके साथ घूममें गौरों चरा रहे हैं और साथ-साथ बाँसुरी भी बजाते जा रहे हैं, तब उनके हृदयमें प्रेम उमड़ आता है—वे उनके ऊपर मैदरने लगते हैं और वे श्यामधन अपने सखा घनश्यामके ऊपर अपने शरीरको ही छाता बनाकर तान देते हैं ।

हना ही नहीं, सखी ! वे जब उनपर मन्दी-मन्दी छुड़ियोंकी वर्षा करने लगते हैं, तब ऐसा जान पड़ता है कि वे उनके ऊपर सुन्दर-सुन्दर श्वेत कुसुम चढ़ा रहे हैं । नहीं सखी, उनके बहाने वे तो अपना जीवन ही निछावर कर देते हैं । ॥ १६ ॥

अरी मट् ! हम तो वृन्दावनकी इन मीठनियोंकी ही धन्य और कृतकृत्य मानती हैं । ऐसा क्यों सखी ! इसलिये कि इनके हृदयमें बड़ा प्रेम है । जब वे हमारे कृष्ण-न्यारेको देखती हैं, तब इनके हृदयमें भी उनसे मिलनेकी तीव्र आकाङ्क्षा जाग उठती है । इनके हृदयमें भी प्रेमकी व्याधि छा जाती है । उस समय ये क्या उपाय करती हैं, यह भी सुन लो । हमारे प्रियतमकी प्रेयसी गोपियों अपने वक्ष स्थलोंपर जो केसर लगाती हैं, वह श्याम-सुन्दरके चरणोंमें छगी होती है और वे जब वृन्दावनके घास-पातपर चरते हैं, तब उनमें भी छा जाती है । ये सौभाग्यवती भीकनियों उगहे उन तिनकोंपरसे छुड़ाकर अपने स्नानों और मुखोंपर मल लेती हैं और इस प्रकार अपने हृदयकी प्रेम-पीड़ा शांत करती है ॥ १७ ॥ अरी गोपियो ! यह गिरिराज गोवर्द्धन तो भगवान्‌के भक्तोंमें बहुत ही श्रेष्ठ है । धन्य हैं इसके भाग्य । देखती नहीं हो, हमारे प्राणकलम श्रीकृष्ण और मनमिराम बलरामके चरणकमलोंका स्पर्श प्राप्त करके यह कितना आनन्दित रहता है ! इसके भाग्यकी

सरहना कौन करे ? यह तो उन दोनोंका—मालमालों और गौओंका बड़ा ही सन्कार करता है । ज्ञान-पानके लिये शरनोंका जल देता है, गौओंके लिये सुन्दर हरी-हरी घास प्रस्तुत करता है । विभ्राम करनेके लिये कन्दराएँ और खानेके लिये कन्द-मूल-फल देता है । वास्तवमें यह धन्य है ॥ १८ ॥ अरी सखी ! इन सौंदर्य-गोरे किशोरोंकी तो गति ही निराली है । जब वे सि-पर नोचना (दुइते समय गायके पैर बाँधनेकी रस्ती) छपेटकर और कंबोपर फंदा (भागनेवाली गायोंको पकड़नेकी रस्ती) रखकर गायोंको एक वनसे दूसरे वनमें हाँककर ले जाते हैं, सापमे म्यालमाल भी होते हैं और मधुर-मधुर संगीत गाते हुए बौसुरीकी तान छेबते हैं, उस समय मनुष्योंकी तो बात ही क्या, अन्य शरीरधारियोंमें भी चलनेवाले चैनन पशु पक्षी और जल नदी आदि तो स्थिर हो जाते हैं तथा अचल-वृक्षोंकी भी रोमाञ्च हो आता है । आदमी वंशिका और क्या चमत्कार सुनाऊँ ! ॥ १९ ॥

परीक्षित ! वृन्दावनविहारी श्रीकृष्णकी ऐसी ऐसी एक नहीं, अनेक छल्लएँ हैं । गोपियों प्रतिदिन आपसमें उनका वर्णन करती और तन्मय हो जाती । भगवान्‌की छीछाएँ उनके हृदयमें स्फुरित होने लगती ॥ २० ॥

बाईसवाँ अध्याय

बीरहरण

भीष्मकुवेरजी कहते हैं—परीक्षित ! अब हेमन्त ऋतु आया । उसके पहले ही महीनेमें अर्थात् मार्गशीर्षमें मन्दराबाके व्रजकी कुमारियों कात्यायनी देवीकी पूजा और व्रत करने लगीं । वे केवल हविष्याचल ही खानी थीं ॥ १ ॥ राजन् ! वे कुमारी कन्याएँ पूर्व दिशाका क्षितिज ढाल होते होते यमुनाजलमें स्नान कर लेतीं और तटपर ही देवीकी बालकामयी मूर्ति बनाकर सुगन्धित चन्दन, फूलोंके हार, भोगि भोगिके नैवेद्य, धूप-दीप, छोटी-बड़ी मेंटकी सामग्री, पल्लव, फल और चावल आदिसे उनकी पूजा करतीं ॥ २-३ ॥ साथ

ही वे कात्यायनी ! हे महाभय ! हे महायोगिनी ! हे सबकी एकमात्र स्वामिनी ! आप मन्दनन्दन श्रीकृष्णको हमारा पति बना दाँजिये । देवि ! हम आपके चरणोंमें नमस्कार करती हैं ।—इस मन्त्रका जप करती हुई वे कुमारियों देवीकी आराधना करतीं ॥ ४ ॥ इस प्रकार उन कुमारियों-ने, जिनका मन श्रीकृष्णपर निछावर हो चुका था, इस सङ्घर्षके साथ एक महीनेतक भद्रकालीकी मर्लामांति पूजा की कि 'मन्दनन्दन श्यामसुन्दर ही हमारे पति हों' ॥ ५ ॥ वे प्रतिदिन उषाकालमें ही नाम ले-लेकर एक-दूसरी सखीको पुकार लेतीं और परस्पर

की और उन्हें कठपुतलियोंके समान नचाया; यहाँतक कि उनके वक्षतक हर लिये । फिर भी वे उनसे रुष्ट नहीं हुई, उनकी इन चेष्टाओंको दोष नहीं माना, बल्कि अपने प्रियतमके सङ्गसे वे और भी प्रसन्न हुई ॥ २२ ॥ परीक्षित ! गोपियोंने अपने-अपने वक्ष पहन लिये । परन्तु श्रीकृष्णने उनके चित्तको इस प्रकार अपने वक्षमें कर रखा था कि वे वहाँसे एक पा भी न चले सकीं । अपने प्रियतमके समागमके लिये सजकर वे उन्हींकी ओर लजीली चितवनसे निहसती रहीं ॥ २३ ॥

भगवान् श्रीकृष्णने देखा कि उन कुमारियोंने उनके चरणकमलोंके स्पर्शकी कामनासे ही मत धारण किया है और उनके जीवमका यही एकमात्र सङ्कल्प है । तब गोपियोंके प्रेमके अधीन होकर ऊखळतकमें बँध जानेवाले

भगवान्ने उनसे कहा— ॥ २४ ॥ मेरी परम प्रेयसी कुमारियो ! मैं तुम्हारा यह सङ्कल्प जानता हूँ कि तुम मेरी पूजा करना चाहती हो । मैं तुम्हारी इस अभिलाषाका अनुगोदन करता हूँ, तुम्हारा यह सङ्कल्प सत्य होगा । तुम मेरी पूजा कर सकोगी ॥ २५ ॥ जिन्होंने अपना मन और प्राण मुझे समर्पित कर रखा है, उनकी कामनाएँ उन्हें सासारिक भोगोंकी ओर ले जानेमें समर्थ नहीं होती; ठीक वैसे ही, जैसे मुने या उदाके हुए बीज फिर अद्भुतके रूपमें उगनेके योग्य नहीं रह जाते ॥ २६ ॥ इसलिये कुमारियो ! अब तुम अपने-अपने घर लौट जाओ । तुम्हारी साधना सिद्ध हो गयी है । तुम जानेवाली शरद् ऋतुकी रात्रियोंमें मेरे साथ विहार करोगी । सतिथो ! इसी उद्देश्यसे तो तुमलोगोंने यह मत और काव्यायनी वेदीकी पूजा की थी ? ॥ २७ ॥

* चौर-हरणके प्रसंगको लेकर कई तरहकी शङ्काएँ की जाती हैं, अतएव इस सन्बन्धमें कुछ विचार करना आवश्यक है । वास्तवमें बात यह है कि सच्चिदानन्दचन भगवान्की दिव्य मयुर रसमयी लीलाओंका रहस्य जाननेका सौभाग्य बहुत थोड़े लोगोंको होता है । जिस प्रकार भगवान् चिन्मय हैं, उसी प्रकार उनकी लीला भी चिन्मयी ही होती है । सच्चिदानन्द-रसमय साम्राज्यके जिस परमेष्ठन स्तरमें यह लीला उभा करती है, उसकी ऐसी निरूपणता है कि कई बार तो ज्ञान विज्ञानस्वरूप विभुद्ध चेतन परम ब्रह्ममें भी उसका प्राकट्य नहीं होता और इसीलिये ब्रह्म-साक्षात्कारको प्राप्त महात्मा जेग भी इस लीला-रसका समासादन नहीं कर पाते । भगवान्की इस परमोज्ज्वल दिव्य-रस-लीलाका यथार्थ प्रकाश तो भगवान्की स्वरूपभूता ह्लादिनी शक्ति निरत्यनिकुञ्जेश्वरी श्रीवृषभानुनदिनी श्रीराधाजी और तत्प्रभूता प्रेममयी गोपियोंके ही हृदयमें होता है और वे ही निराकरण होकर भगवान्की इस परम अन्तरङ्ग रसमयी लीलाका समासादन करती हैं ।

यों तो भगवान्के जन्म-कर्मकी सभी लीलाएँ दिव्य होती हैं, परन्तु ब्रजकी लीला, ब्रजमें निकुञ्जलीला और निकुञ्जमें भी केवल रसमयी गोपियोंके साथ होनेवाली मयुर लीला तो दिव्यतिदिव्य और सर्वगुह्यतम है । यह लीला सर्वसाधारणके समुच्च प्रकट नहीं है, अन्तरङ्ग लीला है और इसमें प्रवेशकर अधिकार केवल श्रीगोपी-जनोंको ही है । अस्तु,

दशम स्कन्धके इक्कीसवें अध्यायमें ऐसा वर्णन आया है कि भगवान्की रूप-माधुरी, वंशीध्वनि और प्रेममयी लीलाएँ देख-सुनकर गोपियों मुख हो गयीं । नाईसर्वे अध्यायमें उसी प्रेममयी पूर्णता प्राप्त करनेके लिये वे साधनमें लग गयी हैं । इसी अध्यायमें भगवान्ने आकर उनकी साधना पूर्ण की है । यही चौर-हरणका प्रसङ्ग है ।

गोपियों क्या चाहती थीं, यह बात उनकी साधनारो स्पष्ट है । वे चाहती थी—श्रीकृष्णके प्रति पूर्ण आत्मसमर्पण, श्रीकृष्णके साथ इस प्रकार छुल-मिल जाना कि उनका रोम-रोम, मन-प्राण, सम्पूर्ण आत्मा केवल श्रीकृष्णमय हो जाय । शरत्-कालमें उन्होंने श्रीकृष्णकी वंशीध्वनिकी चर्चा आपसमें की थी, हेमन्तके पहले ही महीनेमें अर्थात् भगवान्के विभूतिस्वरूप मार्गशीर्षमें उनकी साधना प्रारम्भ हो गयी । विरह उनके लिये असह्य था । जाड़ेके दिनमें वे प्रातःकाल ही यमुना-स्नानके लिये जातीं, उन्हें शरीरकी परवा नहीं थी । बहुत-सी कुमारियाँ लज्जित एक साथ ही जातीं, उनमें ईर्ष्य-द्वेष नहीं था । वे ऊँचे स्तरसे श्रीकृष्णका नामकीर्तन करती हुई

जातीं, उन्हें गाँव और जातिवालोंका भय नहीं था । वे घरमें भी हविष्याचक्र ही भोजन करतीं, वे श्रीकृष्णके लिये इतनी व्याकुल हो गयी थीं कि उन्हें माता-पितातकका सङ्कोच नहीं था । वे विधिपूर्वक देवीकी बालकामयी मूर्ति बनाकर पूजा और मन्त्र-जप करती थीं । अपने इस कार्यके सर्वथा उचित और प्रशस्त मानती थीं । एक वाक्यमें—उन्होंने अपना कुल, परिवार, धर्म, सङ्कोच और व्यक्तिगत भगवान्‌के चरणोंमें सर्वथा समर्पण कर दिया था । वे यही जपती रहती थीं कि एकमात्र मन्दनन्दन ही हमारे प्राणोंके स्वामी हो । श्रीकृष्ण तो वस्तुतः उनके स्वामी थे ही । परन्तु छीलकी दृष्टिसे उनके समर्पणमें थोड़ी कमी थी । वे निरावरणरूपसे श्रीकृष्णके सामने नहीं जा रही थीं, उनमें थोड़ी शिक्षक भी; उनकी यही शिक्षक दूर करनेके लिये—उनकी साधना, उनका समर्पण पूर्ण करनेके लिये उनका आवरण भङ्ग कर देनेकी आवश्यकता थी, उनका यह आवरणरूप चीर हर लेना जरूरी था और यही काम भगवान् श्रीकृष्णने किया । इसीके लिये वे योगेश्वरोंके ईश्वर भगवान् अपने मित्र ग्वालवालोंके साथ यमुनातटपर पधारे थे ।

साधक अपनी शक्तिसे, अपने बल और सङ्कल्पसे केवल अपने निश्चयसे पूर्ण समर्पण नहीं कर सकता । समर्पण भी एक क्रिया है और उसका करनेवाला असमर्पित ही रह जाता है । ऐसी स्थितिमें अन्तरात्माका पूर्ण समर्पण तब होता है, जब भगवान् स्वयं आकर वह सङ्कल्प स्वीकार करते हैं और सङ्कल्प करनेवालेको भी स्वीकार करते हैं । यही जाकर समर्पण पूर्ण होता है । साधकका कर्तव्य है—पूर्ण समर्पणकी तैयारी । उसे पूर्ण तो भगवान् ही करते हैं ।

भगवान् श्रीकृष्ण यों तो छीलपुरुषोत्तम हैं; फिर भी जब अपनी छील प्रकट करते हैं, तब मर्यादाका उल्लङ्घन नहीं करते, स्थापना ही करते हैं । विधिका अतिक्रमण करके कोई साधनाके मार्गमें अप्रसर नहीं हो सकता । परन्तु हृदयकी निष्कपटता, सचाई और सच्चा प्रेम विधिके अतिक्रमणको भी विधिलिख कर देता है । गोपियों श्रीकृष्णको प्राप्त करनेके लिये जो साधना कर रही थीं, उसमें एक त्रुटि थी । वे शास्त्र-मर्यादा और परम्परागत सुनातन मर्यादाका उल्लङ्घन करके नग्न-स्नान करती थीं । यद्यपि उनकी यह क्रिया अज्ञानपूर्वक ही थी, तथापि भगवान्‌के द्वारा इसका मार्जन होना आवश्यक था । भगवान्‌ने गोपियोंसे इसका प्रायश्चित्त भी करवाया । जो जोग भगवान्‌के प्रेमके नामपर विधिका उल्लङ्घन करते हैं, उन्हें यह प्रसङ्ग ध्यानसे पढ़ना चाहिये और भगवान्‌ शास्त्रविधिका कितना आदर करते हैं, यह देखना चाहिये ।

वैधी भक्तिका पर्ववसान रागात्मिका भक्तिमें है और रागात्मिका भक्ति पूर्ण समर्पणके रूपमें परिणत हो जाती है । गोपियोंने वैधी भक्तिका अनुष्ठान किया, उनका हृदय तो रागात्मिका भक्तिसे भरा हुआ था ही । जब पूर्ण समर्पण होना चाहिये । चौरहरणके द्वारा बही कार्य सम्पन्न होता है ।

गोपियोंने जिनके लिये जोक-परलेक, स्वार्थ-परमार्थ, जाति-कुल, पुरजन-परिजन और गुरुजनोंकी परवा नहीं की, जिनकी प्रातिके लिये ही उनका यह महान् अनुष्ठान है, जिनके चरणोंमें उन्होंने अपना सर्वस्व निछावर कर रक्खा है, जिनसे निरावरण मिलनकी ही एकमात्र अभिलाषा है, उन्हीं निरावरण रसमय भगवान् श्रीकृष्णके सामने वे निरावरण भावसे न जा सके—क्या यह उनकी साधनाकी अपूर्णता नहीं है ! है, अवश्य है । और यह समझकर ही गोपियों निरावरणरूपसे उनके सामने गयीं ।

श्रीकृष्ण चराचर प्रकृतिमें एकमात्र अधीश्वर है; समस्त क्रियाओंके कर्ता, मोक्ष और साक्षी भी वही हैं । ऐसा एक भी व्यक्त या अव्यक्त पदार्थ नहीं है, जो बिना किसी परदेके उनके सामने न हो । वही सर्वव्यापक, अन्तर्यामी हैं । गोपियोंके, गोपोंके और निखिल विश्वके वही आत्मा हैं । उन्हें स्वामी, गुरु, पिता, माता, संखा, पति आदिके रूपमें मानकर जोग उन्हींकी उपासना करते हैं । गोपियों उन्हीं भगवान्‌को जान-भूझकर कि वही

भगवान् हैं—यही योगेश्वरेश्वर, क्षराक्षरातीत पुरुषोत्तम हैं—पतिके रूपमें प्राप्त करना चाहती थीं । श्रीमद्भगवत-के दशम स्कन्धका श्रद्धामावसे पाठ कर जानेपर यह बात बहुत ही स्पष्ट हो जाती है कि गोपियों श्रीकृष्णके वास्तविक स्वरूपको जानती थीं, पहचानती थीं । वेणुगीत, गोपीगीत, युगलगीत और श्रीकृष्णके अन्तर्धान हो जानेपर गोपियोंके अन्वेषणमें यह बात कोई भी देख-सुन-समझ सकता है । जो लोग भगवान्‌को भगवान् मानते हैं, उनसे सम्बन्ध रखते हैं, स्वामी-सुहृद् आदिके रूपमें उन्हें मानते हैं, उनके हृदयमें गोपियोंके इस जेकोत्तर माधुर्यसम्बन्ध और उसकी साधनाके प्रति शङ्का ही कैसे हो सकती है ।

गोपियोंकी इस दिव्य लीलाका जीवन उच्च श्रेणीके साधकके लिये आदर्श जीवन है । श्रीकृष्ण जीवके एकमात्र प्राप्तव्य साक्षात् परमात्मा हैं । हमारी बुद्धि, हमारी दृष्टि देहतक ही सीमित है । इसलिये हम श्रीकृष्ण-और गोपियोंके प्रेमको भी केवल दैहिक तथा क्षमनाकलुषित समझ बैठते हैं । उस अपार्षित और अप्राकृत लीला-को इस प्रकृतिके राज्यमें घसीट लाना हमारी स्थूल वासनाओंका हानिकर परिणाम है । जीवका मन भोगाभिमुख वासनाओंसे और तनोगुणी प्रवृत्तियोंसे अभिभूत रहता है । वह विषयोंमें ही इधर-से-उधर भटकता रहता है और अनेकों प्रकारके रोग-शोकसे आक्रान्त रहता है । जब कभी पुण्यकर्मोंके फल उदय होनेपर भगवान्‌की अचिन्त्य अद्वैतकी कृपासे विचारका उदय होता है, तब जीव दुःखज्वालासे त्राण पानेके लिये और अपने प्राणोंको शान्ति-मय धाममें पहुँचानेके लिये उत्सुक हो उठता है । वह भगवान्‌के लीलाधामोंकी यात्रा करता है, सत्सङ्ग प्राप्त करता है और उसके हृदयकी छतपटी उस आकाङ्क्षाको लेकर, जो अवतक सुप्त थी, जगत्तर बड़े वेगसे परमात्मा-की ओर चल पड़ती है । चिरकाळसे विषयोंका ही अभ्यास होनेके कारण वीच-बीचमें विषयोंके स्पर्श उसे सताते हैं और बार-बार निक्षेपोंका सामना करना पड़ता है । परन्तु भगवान्‌की प्रार्थना, कीर्तन, स्मरण, चिन्तन करते-करते चित्त सरस होने लगता है और धीरे-धीरे उसे भगवान्‌की सन्निविष्ट अनुभव भी होने लगता है । पोढ़ा-सा रसका अनुभव होते ही चित्त बड़े वेगसे अन्तर्देशमें प्रवेश कर जाता है और भगवान् मार्गदर्शकके रूपमें संसार-सागरसे पार ले जानेवाली नावपर कैतव्यके रूपमें अयश यों कहें कि साक्षात् चिदस्वरूप गुरुदेवके रूपमें प्रकट हो जाते हैं । ठीक उसी क्षण अभाव, अपूर्णता और सीमाका बन्धन नष्ट हो जाता है, विशुद्ध आनन्द—विशुद्ध ज्ञानकी अनुभूति होने लगती है ।

गोपियों, जो अभी-अभी साधनसिद्ध होकर भगवान्‌की अन्तरङ्ग लीलामें प्रविष्ट होनेवाली हैं, चिरकाळसे श्रीकृष्णके प्राणोंमें अपने प्राण मिल देनेके लिये उत्कण्ठित हैं, सिद्धिअभके समीप पहुँच चुकी हैं । अथवा जो नित्यसिद्धा होनेपर भी भगवान्‌की इच्छाके अनुसार उनकी दिव्य लीलामें सहयोग प्रदान कर रही हैं, उनके हृदयके समस्त भावोंके एकान्त ज्ञाता श्रीकृष्ण बोंसुरी बजाकर उन्हें आकृष्ट करते हैं और जो कुछ उनके हृदयमें बचे-खुचे पुराने संस्कार हैं, मानो उन्हें धो डालनेके लिये साधनामें लगाते हैं, उनकी कितनी दया है, वे अपने प्रेमियोंसे कितना प्रेम करते हैं—यह सोचकर चित्त मुग्ध हो जाता है, गद्गद हो जाता है ।

श्रीकृष्ण गोपियोंके वक्षोंके रूपमें उनके समस्त संस्कारोंके आवरण अपने हाथमें लेकर पास ही कदम्बके वृक्षपर चढ़कर बैठ गये । गोपियों जलमे थीं, वे जलमें सर्वव्यापक सर्वदर्शी भगवान् श्रीकृष्णसे मानो अपनेको गुप्त समझ रही थीं—वे मानो इस तत्त्वको मूल गथी थीं कि श्रीकृष्ण जलमे ही नहीं है स्वयं जलस्वरूप भी वही हैं । उनके पुराने संस्कार श्रीकृष्णके सममुख जानेंमें बाधक हो रहे थे, वे श्रीकृष्णके लिये सब कुछ मूल गथी थीं परन्तु अबतक अपनेको नहीं मूली थीं । वे चाहती थीं केवल श्रीकृष्णको, परन्तु उनके संस्कार वीचमें एक परदा रखना चाहते थे । प्रेम प्रेमी और प्रियतमके बीचमें एक पुष्पका भी परदा नहीं रखना चाहता । प्रेमकी प्रकृति है सर्वथा व्यवधानरहित, अबाध और अन्तःमिलन । जहाँतक अपना सर्वस्व—इसका विस्तार चाहे जितना

हो—प्रेमकी आँखोंमें मसम नहीं कर दिया जाता, वहाँतक प्रेम और समर्पण दोनों ही अपूर्ण रहते हैं। इसी अपूर्णताको दूर करते हुए, 'शुद्ध भावसे प्रसन्न हुए' (शुद्धभावप्रसादितः) श्रीकृष्णने कहा कि 'मुझसे अनन्य प्रेम करनेवाली गोपियो ! एक बार, केवल एक बार अपने सर्वस्वको और अपनेको भी मूलकर मेरे पास आओ तो सही। तुम्हारे हृदयमें जो अन्यक्त त्याग है, उसे एक क्षणके लिये व्यक्त तो करो। क्या तुम मेरे लिये स्तना भी नहीं कर सकती हो ?' गोपियोंने मानो कहा—'श्रीकृष्ण ! हम अपनेको कैसे भूँछें ' हमारी जन्म-जन्मकी धारणाएँ मूलने दें, तब न। हम संसारके अग्राच जलमें आकण्ट मग्न हैं। जादेका कष्ट भी है। हम आना चाहनेपर भी नहीं आ पाती हैं। क्यामसुन्दर ! प्राणोंके प्राण ! हमारा हृदय तुम्हारे सामने उन्मुक्त है। हम तुम्हारी दासो हैं। तुम्हारी आज्ञाओंका पालन करेंगी। परन्तु हमें निराकरण करके अपने सामने मत बुलाओ।' साधककी यह दशा—भगवान्को चाहना और साध ही संसारको भी न छोड़ना, संस्कारोंमें ही ठकसे रहना—मायाके परदेको बनाये रखना, बड़ी द्विविधाकी दशा है। भगवान् यही सिखाते हैं कि 'संस्कारशून्य होकर, निराकरण होकर, मायाका परदा हटाकर आओ; मेरे पास आओ। अरे, तुम्हारा यह मोहका परदा तो मैंने ही छीन लिया है; तुम अब इस परदेके मोहमें क्यों पड़ी हो ? यह परदा ही तो परमात्मा और जीवके बीचमें बड़ा व्यवधान है; यह हट गया, बड़ा कल्याण हुआ। अब तुम मेरे पास आओ, वही तुम्हारी चिरसञ्चित आकाङ्क्षा पूरी हो सकेगी।' परमात्मा श्रीकृष्णका यह आह्वान, आत्माके आत्मा परम प्रियतमके मित्रनका यह मधुर आमन्त्रण भगवत्कृपासे जिसके अन्तर्दशमें प्रकट हो जाता है, वह प्रेममें निमग्न होकर सब कुछ छोड़कर, छोड़ना भी मूलकर प्रियतम श्रीकृष्णके चरणोंमें दौड़ आता है। फिर न उसे अपने बर्त्ताकी छुपि रहती है और न छोड़ोका ध्यान। न वह जगत्को देखता है न अपनेको। यह भगवत्प्रेमका रहस्य है। विशुद्ध और अनन्य भगवत्प्रेममें ऐसा होता ही है।

गोपियों आयीं, श्रीकृष्णके चरणोंके पास मूकभावसे खड़ी हो गयीं। उनका मुख कलावनत था। यत्किञ्चिद् संस्कारशेष श्रीकृष्णके पूर्ण आभिसम्बन्धमें प्रतिबन्ध हो रहा था। श्रीकृष्ण मुसकराये। उन्होंने इशारेसे कहा—'स्तने बड़े त्यागमें यह सङ्कोच कलङ्क है। तुम तो सदा निष्कलङ्का हो; तुम्हें इसका भी त्याग, त्यागके भावका भी त्याग—त्यागकी स्मृतिका भी त्याग करना होगा।' गोपियोंकी दृष्टि श्रीकृष्णके मुखकमलपर पड़ी। दोनों हाथ अपने-आप जुड़ गये और सूर्यमण्डलमें विराजमान अपने प्रियतम श्रीकृष्णसे ही उन्होंने प्रेमकी शिक्षा माँगी। गोपियोंके इसी सर्वस्वत्यागने, इसी पूर्ण समर्पणने, इसी उच्चतम आत्मविस्तृतिने उन्हें भगवान् श्रीकृष्णके प्रेमसे भर दिया। वे दिव्य रसके अलौकिक अप्राकृत मधुके अनन्त समुद्रमें डूबने-उतराने लगीं। वे सब कुछ भूल गयीं, भूलनेवालेको भी भूल गयीं, उनकी दृष्टिमें अब क्यामसुन्दर थे। बस, केवल क्यामसुन्दर थे।

जब प्रेमी भक्त आत्मविस्तृत हो जाता है, तब उसका दायित्व प्रियतम भगवान्पर होता है। अब मर्यादारक्षके लिये गोपियोंको तो क्लृप्ति आवश्यकता नहीं थी। क्योंकि उन्हें जिस वस्तुकी आवश्यकता थी, वह मिल चुकी थी। परन्तु श्रीकृष्ण अपने प्रेमीको मर्यादाभ्युत नहीं होने देते। वे स्वयं बन्ध देते हैं और अपनी अमृतमयी बाणीके द्वारा उन्हें निस्तृप्तिसे जगाकर फिर जगत्में जाते हैं। श्रीकृष्णने कहा—'गोपियो ! तुम सती-साध्वी हो। तुम्हारा प्रेम और तुम्हारी साधना मुझसे छिपी नहीं है। तुम्हारा सङ्कल्प सत्य होगा। तुम्हारा यह सङ्कल्प—तुम्हारी यह कामना तुम्हें उस पदपर स्थित करती है, जो निस्तङ्कपता और निष्कामताका है। तुम्हारा उद्देश्य पूर्ण, तुम्हारा समर्पण पूर्ण और अब आगे आनेवाली आरतीय रात्रियोंमें हमारा रमण पूर्ण होगा। भगवान्ने साधना सफल होनेकी अवधि निर्धारित कर दी। इससे भी स्पष्ट है कि भगवान् श्रीकृष्णमें किसी भी कामविकारकी कल्पना नहीं थी। कामी पुरुषका चित्त बलहीन स्त्रियोंको देखकर एक क्षणके लिये भी कब क्यामें रह सकता है।

एक बात बड़ी विलक्षण है। भगवान्‌के सम्मुख जानेके पहले जो वस्त्र समर्पणकी पूर्णतामें बाधक हो रहे थे—विशेषका काम कर रहे थे—वही भगवान्‌की कृपा, प्रेम, सान्निध्य और कर्दान प्राप्त होनेके पश्चात् 'प्रसाद'—स्वरूप हो गये। इसका कारण क्या है? इसका कारण है भगवान्‌का सम्बन्ध। भगवान्‌ने अपने हाथसे उन वस्त्रोंको उठाया था और फिर उन्हें अपने उत्तम अङ्ग कबेपर रख लिया था। नीचेके शरीरमें पहननेकी सादियों भगवान्‌के कबेपर चढ़कर—उनका संस्पर्श पाकर कितनी अप्राकृत रसालम्ब हो गयीं, कितनी पवित्र—कृष्णमय हो गयीं, इसका अनुमान कौन लगा सकता है। वसुधैव कुटुम्बकम् यह संसार तभीतक बाधक और विशेषजनक है, जबतक यह भगवान्‌से सम्बन्ध और भगवान्‌का प्रसाद नहीं हो जाता। उनके द्वारा प्राप्त होनेपर तो यह बन्धन ही मुक्तिसरूप हो जाता है। उनके सम्पर्कमें जाकर माया झुड़ विद्या बन जाती है। संसार और उसके समस्त कर्म अद्यतमय आनन्दरससे परिपूर्ण हो जाते हैं। तब बन्धनका भय नहीं रहता। कोई भी आनन्द भगवान्‌के दर्शनसे वञ्चित नहीं रह सकता। नरक नरक नहीं रहता, भगवान्‌का दर्शन होते रहनेके कारण वह वैकुण्ठ बन जाता है। इसी स्थितिमें पहुँचकर बड़े-बड़े साधक प्राकृत पुरुषके समान आचरण करते हुएसे दीखते हैं। भगवान्‌ श्रीकृष्णकी अपनी होकर गोपियों पुनः वे ही वस्त्र धारण करती हैं अथवा श्रीकृष्ण वे ही वस्त्र धारण करते हैं; परन्तु गोपियोंकी दृष्टिमें अब ये वस्त्र वे वस्त्र नहीं हैं; वस्तुतः वे हैं भी नहीं—अब तो ये दूसरी ही वस्तु हो गये हैं। अब तो वे भगवान्‌के पावन प्रसाद हैं, फल-स्वरूप भगवान्‌का स्मरण करनेवाले भगवान्‌के परम सुन्दर प्रतीक हैं। इसीसे उन्होंने स्वीकार भी किया। उनकी प्रेममयी स्थिति मर्यादाके ऊपर थी, फिर भी उन्होंने भगवान्‌की इच्छासे मर्यादा स्वीकार की। इस दृष्टिसे विचार करनेपर ऐसा ज्ञान पड़ता है कि भगवान्‌की यह चरित्र-कीर्ति भी अन्य लीलाओंकी भाँति उच्चतम मर्यादासे परिपूर्ण है।

भगवान्‌ श्रीकृष्णकी लीलाओंके सम्बन्धमें केवल वे ही प्राचीन आर्षग्रन्थ प्रमाण हैं, जिनमें उनकी लीलाका वर्णन हुआ है। उनमेंसे एक भी ऐसा ग्रन्थ नहीं है जिसमें श्रीकृष्णकी भगवत्ताका वर्णन न हो। श्रीकृष्ण 'स्वयं भगवान्' हैं, यही बात सर्वत्र मिळती है। जो श्रीकृष्णको भगवान्‌ नहीं मानते, वह स्पष्ट है कि वे उन ग्रन्थोंको भी नहीं मानते। और जो उन ग्रन्थोंको ही प्रमाण नहीं मानते, वे उनमें वर्णित लीलाओंके आधारपर श्रीकृष्ण-चरित्रकी समीक्षा करनेका अधिकार भी नहीं रखते। भगवान्‌की लीलाओंको मानवीय-चरित्रके समकक्ष रखना शास्त्र-दृष्टिसे एक महान्‌ अपराध है और उसके अनुकरणका तो सर्वथा ही निषेध है। मानवबुद्धि—जो स्थूलताओंसे ही परिवेष्टित है—केवल जड़के सम्बन्धमें ही सोच सकती है, भगवान्‌की दिव्य चिन्मयी लीलाके सम्बन्धमें कोई कल्पना ही नहीं कर सकती। वह बुद्धि स्वयं ही अपना उपहास करती है, जो समस्त बुद्धियोंके प्रेरक और बुद्धियोंसे अत्यन्त परे रहनेवाले परमात्माकी दिव्य लीलाको अपनी कसौटीपर कसती है।

हृदय और बुद्धिके सर्वथा निपरीत होनेपर भी यदि थोड़ी देरके लिये मान लें कि श्रीकृष्ण भगवान्‌ नहीं थे या उनकी यह लीला मानवीय थी, तो भी तर्क और युक्तिके सामने ऐसी कोई बात नहीं टिक पाती जो श्रीकृष्णके चरित्रमें लज्जित हो। श्रीमद्भागवतका पारायण करनेवाले जानते हैं कि ब्रजमें श्रीकृष्णने केवल ग्यारह वर्षकी अवस्थातक ही निवास किया था। यदि रास-लीलाका समय दसवाँ वर्ष मानें, तो नवें वर्षमें ही चरित्र-लीला हुई थी। इस बातकी कल्पना भी नहीं हो सकती कि आठ-नौ वर्षके बालकमें कर्मोत्तेजना हो सकती है। गौवकी गैवारिन मालिनें, जहाँ वर्तमानकालकी नागरिक मनोवृत्ति नहीं पहुँच पायी है, एक आठ-नौ वर्षके बालकसे अवैध सम्बन्ध करना चाहें और उसके लिये साधना करें—यह कदापि सम्भव नहीं दीखता। उन कुमारी गोपियोंके मनमें कल्पित वृत्ति थी, यह वर्तमान कल्पित मनोवृत्तिकी उदङ्गना है। आजकल जैसे गौवकी छोटी-छोटी लड़कियाँ 'राम'-सा वर और 'लक्ष्मण'-सा देवर पानेके लिये देवी-देवताओंकी पूजा करती हैं, वैसे ही

उन कुमारियोंने भी परम सुन्दर परम मधुर श्रीकृष्णको पानेके लिये देवी-पूजन और व्रत किये थे । इसमें दोषकी कौन-सी बात है ?

आजकी बात निराखी है । भोगप्रधान देशोंने तो नग्नसम्प्रदाय और नग्नस्नानके छत्र भी बने हुए हैं । उनकी दृष्टि इन्द्रिय-वृत्तितक ही सीमित है । भारतीय मनोवृत्ति इस उत्तेजक एवं मखिन व्यापारके विरुद्ध है । नग्नस्नान एक दोष है, जो कि पशुत्वको बढ़ानेवाला है । शास्त्रोंमें इसका निषेध है, 'न नग्नः स्नायात्'—यह शास्त्रकी आज्ञा है । श्रीकृष्ण नहीं चाहते थे कि गोपियों शास्त्रके विरुद्ध आवरण करें । केवल लौकिक अनर्थ ही नहीं—भारतीय ऋषियोंका वह सिद्धान्त, जो प्रत्येक वस्तुमें पृथक्-पृथक् देवताओंका अस्तित्व मानता है इस नग्नस्नानको देवताओंके विपरीत बतलाता है । श्रीकृष्ण जानते थे कि इससे वरुण देवताका अपमान होता है । गोपियों अगनी जमीठ-सिद्धिके लिये जो तपस्या कर रही थीं, उसमें उनका नग्नस्नान अनिष्ट फल देनेवाला था और इस प्रयागके प्रभातमें ही यदि इसका विरोध न कर दिया जाय तो आगे चलकर इसका विस्तार हो सकता है; इसलिये श्रीकृष्णने अलौकिक ढंगसे इसका निषेध कर दिया ।

गोवोंकी म्वाङ्गिनोंको इस प्रयागकी सुराई किस प्रकार समझायी जाय, इसके लिये भी श्रीकृष्णने एक मौलिक उपाय सोचा । यदि वे गोपियोंके पास जाकर उन्हें देवतावादकी फिस्ससफ़ी समझाते, तो वे सरलतासे नहीं समझ सकती थीं । उन्हें तो इस प्रयागके कारण होनेवाली विपत्तिका प्रत्यक्ष अनुभव करा देना था । और विपत्तिका अनुभव करानेके पश्चात् उन्होंने देवताओंके अपमानकी बात भी बता दी तथा अञ्जलि बॉधकर क्षमा-प्रार्थनारूप प्रायश्चित्त भी करवाया । महापुरुषोंमें उनकी नास्नानस्यामें भी ऐसी प्रतिभा देखी जाती है ।

श्रीकृष्ण आठ-नौ वर्षके थे, उनमें कामोत्तेजना नहीं हो सकती और नग्नस्नानकी कुप्रथाको नष्ट करनेके लिये उन्होंने चरहरण किया—यह उच्च सम्भव होनेपर भी मूढमें आये हुए 'काम' और रमण शब्दोंसे कई लोग भबक उठते हैं । यह केवल शब्दकी पकड़ है, जिसपर महात्मायोग प्यान नहीं देते । श्रुतिमें और गीतामें भी अनेकों बार 'काम', 'रमण' और 'रति' आदि शब्दोंका प्रयोग हुआ है; परन्तु वहाँ उनका अस्वीकृत्य नहीं होता । गीतामें तो 'धर्माविरुद्ध काम' को परमात्माका स्वरूप बतलाया गया है । महापुरुषोंका आत्ममग्न, आत्मनिष्ठ और आत्मरति प्रसिद्ध ही है । ऐसी स्थितिमें केवल कुछ शब्दोंको देखकर भबकना विचारणीय पुरुषोंका काम नहीं है । जो श्रीकृष्णको केवल मनुष्य समझते हैं उन्हें रमण और रति शब्दका अर्थ केवल क्राडा अथवा खिलवाड़ समझना चाहिये, जैसा कि व्याकरणके अनुसार ठीक है—'रमु क्रीडायाम्' ।

दृष्टिभेदे श्रीकृष्णकी लील मित-मित रूपमें दीख पड़ती है । अध्यात्मवादी श्रीकृष्णको आत्माके रूपमें देखते हैं और गोपियोंको वृत्तियोंके रूपमें । वृत्तियोंका आवरण नष्ट हो जाना ही 'चरहरणलीला' है और उनका आत्मामें रम जाना ही 'रास' है । इस दृष्टिसे भी समस्त लीलजगत्की संगति बैठ जाती है । भक्तोंकी दृष्टि में गेलोकधिपति पूर्णतम पुरुषोत्तम मगवान् श्रीकृष्णका यह सब नित्यलील-निलास है और अनादिकाळसे अनन्तकाळतक यह नित्य चळता रहता है । कभी-कभी भक्तोंपर कृपा करके वे अपने नित्य धाम और नित्य सखा-सहचरियोंके साथ लीलधाममें प्रकट होकर लील करते हैं और भक्तोंके स्मरण-चिन्तन तथा आनन्द-महलकी सामग्री प्रकट करके पुनः अन्तर्धान हो जाते हैं । साधकोंके लिये किन्तु प्रकार कृपा करके मगवान् अन्तर्मलको और अनादिकाळसे सञ्चित संस्कारपटको विशुद्ध कर देते हैं, यह बात भी इस चरहरण-लीलासे प्रकट होनी है । मगवान् की लील रहस्यमयी है, उसका तत्त्व केवल मगवान् ही जानते हैं और उनकी कृपासे उन ही लीलमें प्रविष्ट भाग्यवान् भक्त कुछ-कुछ जानते हैं । यहाँ तो शास्त्रों और सतोंकी वाणीके आधारपर ही कुछ लिखनेकी धृष्टता की गयी है ।

हनुमानप्रसाद पोद्दार

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित् ! भगवान् की यह आज्ञा पाकर वे कुमारियों का भान् श्रीकृष्णके चरण-कमलोंका ध्यान करती हुई जानेकी इच्छा न होनेपर भी बड़े कष्टसे ब्रजनमें गयीं । अब उनकी सारी कामनाएँ पूर्ण हो चुकी थीं ॥ २८ ॥

प्रिय परीक्षित् ! एक दिन भगवान् श्रीकृष्ण बलराम-जी और ग्वालालोंके साथ गौएँ चराते हुए वृन्दावनसे बहुत दूर निकल गये ॥ २९ ॥ ग्रीष्म ऋतु थी । सूर्यकी किरणें बहुत ही प्रखर हो रही थीं । परन्तु घने-घने वृक्ष भगवान् श्रीकृष्णके ऊपर छत्तेका काम कर रहे थे । भगवान् श्रीकृष्णने वृक्षोंको छाया करते देख स्तेजकृष्ण, अंशु, श्रीदामा, सुबल, अर्जुन, विशाल, श्रवण, तेजस्वी, देवप्रसन्न और वसुधप आदि ग्वालालोंको सम्बोधन करके कहा ॥ ३०-३१ ॥ 'मेरे प्यारे मित्रो ! देखो, ये वृक्ष कितने भागवान् हैं । इनका सारा जीवन केवल दूसरोंकी मछई करनेके लिये ही है । ये स्वयं तो हवाके झोंके, वर्षा, धूप और पाछा—सब कुछ सहते हैं, परन्तु हमलोगोंकी उनसे रक्षा करते हैं ॥ ३२ ॥ मैं कहता हूँ कि इन्हींका जीवन सबसे श्रेष्ठ है । क्योंकि इनके द्वारा सब प्राणियोंको सहारा मिलता है, उनका

जीवन-निर्वाह होता है । जैसे किसी सज्जन पुरुषके घरसे कोई याचक खाली हाथ नहीं लौटता, वैसे ही इन वृक्षोंसे भी सभीको कुछ-न-कुछ मिल ही जाता है ॥ ३३ ॥ ये अपने पत्ते, फल, फल, छाया, बड़, छल, लकड़ी, गन्ध, गोंद, राख, कोयल, कजूर और कोंपलोंसे भी लोगोंकी कामना पूर्ण करते हैं; ॥ ३४ ॥ मेरे प्यारे मित्रो ! संसारमें प्राणी तो बहुत हैं; परन्तु उनके जीवनकी सफलता इतनेमें ही है कि जहाँतक हो सके अपने धनसे, विवेक-निचारसे, जाणीसे और प्राणोंसे भी ऐसे ही कर्म किये जायें, जिनसे दूसरोंकी मछई हो ॥ ३५ ॥ परीक्षित् ! दोनों ओरके वृक्ष नयी-नयी कोंपलों, गुच्छों, फल-झों और पत्तोंसे ढके रहे थे । उनकी डालियाँ पृथ्वीतक झुकी हुई थीं । इस प्रकार भाषण करते हुए भगवान् श्रीकृष्ण उन्हींकी नीचसे यमुना-तटपर निकल आये ॥ ३६ ॥ राजन् ! यमुनाजीका जब बड़ा ही मधुर, वीर्यवान् और खच्छ था । उन लोगोंने पहले गौओंको पिछाया और इसके बाद स्वयं भी जी भरकर खादु जलका पान किया ॥ ३७ ॥ परीक्षित् ! जिस समय वे यमुनाजीके तटपर हरे-भरे उपवनमें बड़ी खतन्त्रतासे अपनी गौएँ चरा रहे थे, उसी समय कुछ भूले ग्वालोंने भगवान् श्रीकृष्ण और बलराम-जीके पास आकर यह बात कही— ॥ ३८ ॥

तेईसवाँ अध्याय

यहपक्षियोंपर हुआ

ग्वालालोंने कहा—नयनाभिराम बलराम ! तुम बड़े पराक्रमी हो । हमारे चित्तचोर श्यामसुन्दर ! तुमने बड़े-बड़े दुष्टोंका सहारा किया है । उन्हीं दुष्टोंके समान यह भूख भी हमें सता रही है । अतः तुम दोनों इसे भी दुश्मानका कोई उपाय करो ॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजीने कहा—परीक्षित् ! जब ग्वालालोंने देवकीनन्दन भगवान् श्रीकृष्णसे इस प्रकार प्रार्थना की तब उन्होंने मयुराकी अपनी भक्त ब्राह्मणपक्षियोंपर अनुग्रह करनेके लिये यह बात कही— ॥ २ ॥ 'मेरे प्यारे मित्रो ! यहसे योद्धा ही दूरपर वेदवादी ब्राह्मण स्वर्गकी कामनासे आक्षिप्त नामका यज्ञ कर रहे हैं । तुम उनकी

यज्ञशालामें जाओ ॥ ३ ॥ ग्वालालो ! मेरे मेजनेसे ब.न. जाकर तुमलोग मेरे बड़े भाई भगवान् श्रीबलराम-जीका और मेरा नाम लेकर कुछ थोड़ा-सा भात—भोजनकी सामग्री माँग लवो ॥ ४ ॥ जब भगवान् ने ऐसी आज्ञा दी, तब ग्वालाल उन ब्राह्मणोंकी यज्ञशालामें गये और उनसे खानानकी आज्ञाके अनुसार ही अन्न माँगा । पहले उन्होंने पृथ्वीपर गिरकर दण्डवत्-प्रणाम किया और फिर हाथ जोड़कर कहा— ॥ ५ ॥ 'पृथ्वीके मूर्तिमान् देवता ब्राह्मणो ! आपका कृतपाण हो ! आपसे निवेदन है कि हम ब्रजके ग्वाल हैं । भगवान् श्रीकृष्ण और बलरामकी आज्ञासे हम आपके पास आये हैं । आप

हमारी बात सुनें ॥ ६ ॥ भगवान् बलराम और श्रीकृष्ण गौएँ चराते हुए यहाँसे थोड़ी ही दूरपर आये हुए हैं । उन्हें इस समय मूख लगी है और वे चाहते हैं कि आपलोग उन्हें थोड़ा-सा भात दे दें । ब्राह्मणो ! आप धर्मका मर्म जानते हैं । यदि आपकी श्रद्धा हो, तो उन भोजनार्थियोंके लिये कुछ भात दे दीजिये ॥७॥ सबनो ! जिस यक्षदीक्षामें पशुबलि होती है, उसमें और सौत्रामणी यक्षमें दीक्षित पुरुषका अन्न नहीं खाना चाहिये । इनके अतिरिक्त और किसी भी समय किसी भी यक्षमें दीक्षित पुरुषका भी अन्न खानेमें कोई दोष नहीं है' ॥ ८ ॥ परीक्षित ! इस प्रकार भगवान्के अन्न भोगनेकी बात सुनकर भी उन ब्राह्मणोंने उसपर कोई ध्यान नहीं दिया । वे चाहते थे खर्गादि तुच्छ फल, और उनके लिये बड़े-बड़े कर्मोंमें उलझे हुए थे । सब पूछे तो वे ब्राह्मण ज्ञानकी दृष्टिसे थे बालक ही, परन्तु अपनेको बड़ा ज्ञानवृद्ध मानते थे ॥९॥ परीक्षित ! देवा, काळ, अनेक प्रकारकी सामग्रियों, मित्र-मित्रा कर्मोंमें विनियुक्त मन्त्र, अनुष्ठानकी पद्धति, ऋत्विज-ब्रह्मा आदि यज्ञ करानेवाले, अग्नि, देवता, यजमान, यज्ञ और धर्म—इन सब रूपोंमें एक-मात्र भगवान् ही प्रकट हो रहे हैं ॥ १० ॥ वे ही इन्द्रियातीत परब्रह्म भगवान् श्रीकृष्ण सर्वग्यालालोंके द्वारा भात भोग रहे हैं । परन्तु इन मूर्खोंने, जो अपनेको शरीर ही माने बैठे हैं, भगवान्को भी एक साधारण मनुष्य ही माना और उनका सम्मान नहीं किया ॥११॥ परीक्षित ! जब उन ब्राह्मणोंने 'हैं' या 'ना'—कुछ नहीं कहा, तब ग्यालालोंकी आशा टूट गयी; वे छैट आये और वहाँकी सब बात उन्होंने श्रीकृष्ण तथा बलरामसे कह दी ॥१२॥ उनकी बात सुनकर सारे जगतके स्वामी भगवान् श्रीकृष्ण हँसने लगे । उन्होंने ग्यालालोंको समझाया कि 'ससारमें असफलता तो बार-बार होती ही है, उससे निराश नहीं होना चाहिये; बार-बार प्रयत्न करते रहनेसे सफलता मिल ही जाती है ।' फिर उनसे कहा— ॥ १३ ॥ 'मेरे प्यारे ग्यालालो ! इस बार तुम-लोग उनकी पत्नियोंके पास जाओ और उनसे कहो कि राम और इश्याम यहाँ आये हैं । तुम जितना चाहोगे उतना भोजन वे तुम्हें देगी । वे मुझसे क्या प्रेम करती

हैं । उनका मन सदा-सर्वदा मुझमें लगा रहता है' ॥१४॥

अबकी बार ग्यालाल पत्नीशालामें गये । वहाँ जाकर देखा तो ब्राह्मणोंकी पत्नियाँ सुन्दर-सुन्दर वस्त्र और गहनोंसे सब-धनकर बैठी हैं । उन्होंने द्विजपत्नियोंको प्रणाम करके बड़ी नम्रतासे यह बात कही— ॥१५॥ 'आप विप्रपत्नियोंको हम नमस्कार करते हैं । आप कृपा करके हमारी बात सुनें । भगवान् श्रीकृष्ण यहाँसे थोड़ी ही दूरपर आये हुए हैं और उन्होंने ही हमें आपके पास भेजा है ॥ १६ ॥ वे ग्यालाल और बलरामजीके साथ गौएँ चराते हुए इधर बहुत दूर आ गये हैं । इस समय उन्हें और उनके साथियोंको मूख लगी है । आप उनके लिये कुछ भोजन दे दें ॥१७॥ परीक्षित ! वे ब्राह्मणों बहुत दिनोंसे भगवान्की मनोहर लीलाएँ सुनती थीं । उनका मन उनमें लगा चुका था । वे सदा-सर्वदा इस बातके लिये उत्सुक रहतीं कि किसी प्रकार श्रीकृष्णके दर्शन हो जायें । श्रीकृष्णके आनेकी बात सुनते ही वे उतावली हो गयी ॥१८॥ उन्होंने बर्तनोंमें अल्पत खादिष्ट और हितकर भक्ष्य, भोज्य, लेह्य और चोष्य—चारों प्रकारकी भोजन-सामग्री ले ली तथा आई-कण्डू, पति-पुत्रोंके रोक्ते खनेपर भी अपने प्रियतम भगवान् श्रीकृष्णके पास जानेके लिये बरसे निकल पड़ीं—ठीक वैैसे ही, जैसे नदियाँ समुद्र-के लिये । क्यों न हो; न जाने कितने दिनोंसे पवित्र-कीर्ति भगवान् श्रीकृष्णके गुण, लीला, सौन्दर्य और माधुर्य आदिका वर्णन सुन-सुनकर उन्होंने उनके चरणोंपर अपना हृदय निछावर कर दिया था ॥१९-२०॥ ब्राह्मणपत्नियोंने जाकर देखा कि यमुनाके तटपर नये-नये कोंपलोंसे शोभायमान अशोक-वनमें ग्यालालोंसे घिरे हुए बलरामजीके साथ श्रीकृष्ण इधर-उधर घूम रहे हैं ॥ २१ ॥ उनके साँके शरीरपर सुनहल पीताम्बर झिलमिला रहा है । गलेमें वनमाळा छटक रही है । मस्तकपर मोरपंखक मुकुट है । अङ्ग-अङ्गमें रंगीन चातुर्वर्णसे चित्रकारी कर रखी है । नये-नये कोंपलोंके गुच्छे शरीरमें लगाकर नक्का-सा वेव बना रक्खा है । एक हाथ अपने सखा ग्यालालके कंधेपर रखे हुए हैं और दूसरे हाथ-से कमलवत् फूल नचा रहे हैं । कानोंमें कमलोंके कुण्डल हैं, कनोलेपर सुँवराली अलकों छटक रही हैं और मुख-



भवाल-बालकके कन्धेपर हाथ रखे नटवर

कमल मन्द-मन्द मुसकानकी रेखासे प्रफुल्लित हो रहा है ॥ २२ ॥ परीक्षित । अन्तक अपने प्रियतम श्याम-सुन्दरके गुण और लीलाएँ अपने कानोंसे सुन सुनकर उन्होंने अपने मनको उन्हींके प्रेमके रंगमें रँग डाला था, उसीमें सराबोर कर दिया था । अब नेत्रोंके मार्गसे उन्हें मीतर ले जाकर बहुत देरतक वे मन-ही-मन उनका आलिंगन करती रहीं और इस प्रकार उन्होंने अपने हृदयकी जलन शान्त की — ठीक वैसे ही, जैसे जाग्रत और स्वप्न अवस्थाओंकी वृत्तियाँ स्थूल हैं, यह भेरा इस भावसे जलती रहती हैं, परन्तु सुषुप्ति-अवस्थामें उसके अभिमानी प्राणको पाकर उसीमें लीन हो जाती हैं और उनकी सारी जलन मिट जाती है ॥ २३ ॥

प्रिय परीक्षित । भगवान् सबके हृदयकी बात जानते हैं, सबकी बुद्धियोंके साक्षी हैं । उन्होंने जब देखा कि ये ब्राह्मणपत्नियों अपने माई-बन्धु और पति-पुत्रोंके रोकने-पर भी सब सगे-सम्बन्धियों और मित्रियोंकी आशा छोड़कर केवल भरे दर्शनकी छाछसासे ही भरे पास आयी हैं, तब उन्होंने उनसे कहा । उस समय उनके मुखारविन्द-पर हास्यकी तरङ्गें उठकेछिपीं कर रही थीं ॥ २४ ॥ भगवान् ने कहा — 'महामाग्यवती देवियो ! तुम्हारा स्वागत है । आओ, बैठो । कहो, हम तुम्हारा क्या स्वागत करें ? तुमलोग हमारे दर्शनकी इच्छासे यहाँ आयी हो, यह तुम्हारे-जैसे प्रेम-पूर्ण हृदयवालोंके योग्य ही है ॥ २५ ॥ इसमें सन्देह नहीं कि संसारमें अपनी सबी भलाईको समझनेवाले जितने भी बुद्धिमान् पुरुष हैं, वे अपने प्रियतमके समान ही मुझसे प्रेम करते हैं, और ऐसा प्रेम करते हैं, जिसमें किसी प्रकारकी कामना नहीं रहती — जिसमें किसी प्रकारका व्यवधान, सङ्कोच, छिपाव, दुमिधा या द्वैत नहीं होता ॥ २६ ॥ प्राण, बुद्धि, मन, शरीर, स्वजन, श्री, पुत्र और धन आदि संसारकी सभी वस्तुएँ जिसके छिये और जिसकी सन्निधिसे प्रिय लगती हैं — उस आत्मासे, परमात्मासे, मुझ श्रीकृष्णसे बढ़कर और कौन प्यारा हो सकता है ॥ २७ ॥ इसलिये तुम्हारा आना उचित ही है । मैं तुम्हारे प्रेमका अभिलम्बन करता हूँ । परन्तु अब तुमलोग मेरा दर्शन कर चुकीं । अब अपनी यज्ञशालामें लौट जाओ । तुम्हारे पति ब्राह्मण गृहस्थ हैं । वे तुम्हारे साथ मिल्कर ही अपना यज्ञ पूर्ण कर सकेंगे' ॥ २८ ॥

ब्राह्मणपत्नियोंने कहा — अन्तर्यामी श्यामसुन्दर ! आपकी यह बात निष्पूरतासे पूर्ण है । आपको ऐसी बात नहीं कहनी चाहिये । श्रुतियाँ कहती हैं कि जो एक बार भगवान् को प्राप्त हो जाता है, उसे फिर संसारमें नहीं लौटना पड़ता । आप अपनी यह वेदवाणी सत्य कीजिये । हम अपने समस्त सगे-सम्बन्धियोंकी आज्ञाका उल्लङ्घन करके आपके चरणोंमें इसलिये आयी हैं कि आपके चरणोंसे गिरी हुई तुलसीकी माळा अपने केशोंमें चारण करे ॥ २९ ॥ स्यामी ! अब हमारे पति-पुत्र, माता-पिता, माई-बन्धु और स्वजन-सम्बन्धी हमें स्वीकार नहीं करेंगे; फिर दूसरोंकी तो बात ही क्या है । वीरशिरोमणे ! अब हम आपके चरणोंमें आ पड़ी हैं । हमें और किसीका सहारा नहीं है । इसलिये अब हमें दूसरोंकी शरणमें न जाना पड़े; ऐसी व्यवस्था कीजिये ॥ ३० ॥

भगवान् श्रीकृष्णने कहा — देवियो ! तुम्हारे पति-पुत्र, माता-पिता, माई-बन्धु — कोई भी तुम्हारा तिरस्कार नहीं करेंगे । उनकी तो बात ही क्या, सारा संसार तुम्हारा सम्मान करेगा । उसका कारण है । अब तुम मेरी हो गयी हो, मुझसे युक्त हो गयी हो । देखो न, ये देवता मेरी बातका अनुमोदन कर रहे हैं ॥ ३१ ॥ देवियो ! इस संसारमें मेरा अङ्ग-सङ्ग ही मनुष्योंमें मेरी प्रीति या अनुरागता कारण नहीं है । इसलिये तुम जाओ, अपना मन मुझमें लगा दो । तुम्हें बहुत शीघ्र मेरी प्राप्ति हो जायगी ॥ ३२ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं — परीक्षित ! जब भगवान् ने इस प्रकार कहा, तब वे ब्राह्मणपत्नियों यज्ञशालामें लौट गयीं । उन ब्राह्मणोंने अपनी स्त्रियोंमें तनिक भी दोषदृष्टि नहीं की । उनके साथ मिल्कर अपना यज्ञ पूरा किया ॥ ३३ ॥ उन स्त्रियोंमेंसे एकको आनेके समय ही उसके पतिने वज्रपूर्वक रोक लिया था । इसपर उस ब्राह्मणपत्नीने भगवान् के वैसे ही स्वरूपका ध्यान किया, जैसा कि बहुत दिनोंसे सुन रक्खा था । जब उसका ध्यान जम गया, तब मन-ही-मन भगवान् का आलिंगन करके उसने कर्मके द्वारा बने हुए अपने शरीरको छोड़ दिया — (शुद्धसत्त्वमय दिव्य शरीरसे

उसने भगवान्‌की सजिवि प्राप्त कर ली) ॥ ३४ ॥
इधर भगवान् श्रीकृष्णने ब्रह्मणियोंके लिये हुए उस
चार प्रकारके अन्नसे पहले ग्वालवालोंको भोजन कराया
और फिर उन्होंने स्वयं भी भोजन किया ॥ ३५ ॥
परीक्षित् । इस प्रकार लीलामनुष्य भगवान्-श्रीकृष्णने
मनुष्यकी-सी लीला की और अपने सौन्दर्य, आधुर्य,
बाणी तथा कर्मोंसे गौरव, ग्वालवाल और गोपियोंको
आनन्दित किया और स्वयं भी उनके अलौकिक
प्रेमरसका आस्वादन करके आनन्दित हुए ॥ ३६ ॥

परीक्षित् । इधर जब ब्राह्मणोंको यह भाव्य हुआ
कि श्रीकृष्ण तो स्वयं भगवान् हैं, तब उन्हें बड़ा
पछतावा हुआ । वे सोचने लगे कि जगदीश्वर भगवान्
श्रीकृष्ण और बलरामकी आज्ञाका उल्लङ्घन करके हमने
बड़ा भारी अपराध किया है । वे तो मनुष्यकी-सी
लीला करते हुए भी परमेश्वर ही हैं ॥ ३७ ॥ अब
उन्होंने देखा कि हमारी पत्नियोंके हृदयमें तो भगवान्‌का
अलौकिक प्रेम है और हमलोग उससे विरक्त रीते हैं,
तब वे पछता-पछताकर अपनी निन्दा करने लगे
॥ ३८ ॥ वे कहने लगे—‘हाय ! हम भगवान्
श्रीकृष्णसे विमुख हैं । बड़े ऊँचे कुलमें हमारा जन्म
हुआ, गायत्री ग्रहण करके हम द्विजाति हुए, वेदाध्ययन
करके हमने बड़े-बड़े यज्ञ किये; परन्तु वह सब किस
कामका ? भिक्षार है, विचार है । हमारी विद्या व्यर्थ
गयी, हमारे व्रत भुरे सिद्ध हुए । हमारी इस बहुलताको
भिक्षार है । ऊँचे वंशमें जन्म लेना, कर्मकाण्डमें निपुण
होना किसी काम न आया । इन्हें बार-बार भिक्षार है
॥ ३९ ॥ निश्चय ही भगवान्‌की माया बड़े-बड़े योगियोंको
भी मोहित कर लेती है । तभी तो हम कहलाते हैं
मनुष्योंके गुरु और ब्राह्मण, परन्तु अपने सच्चे स्वार्थ
और परमार्थके विषयमें विरक्त मूले हुए हैं ॥ ४० ॥
कितने आश्चर्यकी बात है । देखो तो सही—यद्यपि
ये जिवों हैं, तथापि जगद्गुरु भगवान् श्रीकृष्णमें इनका
किनना अगाध प्रेम है, अलङ्घ्य अनुराग है ! उसीसे
इन्होंने गृहस्थीकी वह बहुत बड़ी पॉसी भी काट डाली,
जो मृत्युके साथ भी नहीं कटती ॥ ४१ ॥ इनके न
तो द्विजातिके योग्य यज्ञोपवीत आदि संस्कार हुए हैं

और न तो इन्होंने गुरुकुलमें ही निवास किया है ।
न इन्होंने तपस्या की है और न तो आत्मिक सम्पन्नमें
ही कुछ विवेक-विचार किया है । उनकी बात तो दूर
रही, इनमें न तो पूरी पवित्रता है और न तो शुभकर्म
ही ॥ ४२ ॥ फिर भी समस्त योगेश्वरोंके ईश्वर पुण्य-
कीर्ति भगवान् श्रीकृष्णके चरणोंमें इनका दृढ़ प्रेम है ।
और हमने अपने संस्कार किये हैं, गुरुकुलमें निवास
किया है, तपस्या की है, आत्मानुसन्धान किया है,
पवित्रताका निर्वाह किया है तथा अण्डे-अण्डे कर्म किये
हैं; फिर भी भगवान्‌के चरणोंमें हमारा प्रेम नहीं है
॥ ४३ ॥ सच्ची बात यह है कि हमलोग गृहस्थीके
क्षम-धर्ममें मतवाले हो गये थे, अपनी भलाई और
शुद्धिको विरक्त मूल गये थे । अहो, भगवान्‌की
कितनी कृपा है ! भक्तवत्सल प्रभुने ग्वालवालोंको
भेजकर उनके बचनेसे हमें चेतावनी दी, अपनी याद
दिखायी ॥ ४४ ॥ भगवान् स्वयं पूर्णकाम हैं और
कैवल्यमोक्षपर्यन्त कितनी भी कामनाएँ होती हैं, उनको
पूर्ण करनेवाले हैं । यदि हमें सचेत नहीं करना होगा
तो उनका हम-सरीखे क्षुद्र जीवोंसे प्रयोजन ही क्या
हो सकता था ? अवश्य ही उन्होंने इसी उद्देश्यसे
भौंगनेका वहना बनाया । अन्यथा उन्हें भौंगनेकी मज
क्या आवश्यकता थी ? ॥ ४५ ॥ स्वयं लक्ष्मी अन्य
सब देवताओंको छोड़कर, और अपनी चञ्चलता, गर्व
आदि दोषोंका परित्याग कर केवल एक बार उनके
चरणकमलोंका स्पर्श पानेके लिये सेवा करती रहती
है । वे ही प्रभु किन्तीसे भोजनकी याचना करें, यह
लोगोंको मोहित करनेके लिये नहीं तो और क्या है ?
॥ ४६ ॥ देश, काल, पुण्य-पृथक् सामर्थ्यों, उन-उन
कर्मोंमें विनियुक्त मन्त्र, अनुष्ठानकी पद्धति, ऋत्विज,
अग्नि, देवता, यजमान, यज्ञ और धर्म—सब भगवान्‌के
ही स्वरूप हैं ॥ ४७ ॥ ये ही योगेश्वरोंके भी ईश्वर
भगवान् विष्णु स्वयं श्रीकृष्णके रूपमें यदुवंशियोंमें अवतीर्ण
हुए हैं, यह बात हमने सुन रखी थी; परन्तु हम
इतने मूढ़ हैं कि उन्हें पहचान न सके ॥ ४८ ॥
यह सब होनेपर भी हम धन्यातिधन्य हैं, हमारे अयो-
माय्य है तभी तो हमें वैसी पत्नियों प्राप्त हुई हैं ।

उनकी भक्तिसे हमारी बुद्धि भी भगवान् श्रीकृष्णके अविचल प्रेमसे युक्त हो गयी है ॥ ४९ ॥ प्रभो ! आप अचिन्त्य और अनन्त ऐश्वर्योक्ति खामी हैं । श्रीकृष्ण ! आपका ज्ञान अनाध है । आपकी ही मायासे हमारी बुद्धि मोहित हो रही है और हम कर्मोंके पचदेमें मटक रहे हैं । हम आपको नमस्कार करते हैं ॥ ५० ॥ वे आदिपुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्ण हमारे इस अपराधको क्षमा करें । क्योंकि हमारी बुद्धि उनकी

मायासे मोहित हो रही है और हम उनके प्रभावको न जाननेवाले अज्ञानी हैं ॥ ५१ ॥

परीक्षित ! उन ब्राह्मणोंने श्रीकृष्णका तिरस्कार किया था । अतः उन्हें अपने अपराधकी स्मृतिसे बड़ा पश्चात्ताप हुआ और उनके हृदयमें श्रीकृष्ण-वल्लभके दर्शनकी बड़ी इच्छा भी हुई, परन्तु कसके डरके मारे वे उनका दर्शन करने न जा सके ॥ ५२ ॥

चौवीसवाँ अध्याय

इन्द्रयज्ञ-निवारण

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित ! भगवान् श्रीकृष्ण वल्लभजीके साथ इन्द्रयज्ञ करनेकी तैयारी कर रहे हैं ॥ १ ॥ भगवान् श्रीकृष्ण सबके अन्तर्यामी और सर्वज्ञ हैं । उनसे कोई बात छिपी नहीं थी, वे सब जानते थे । फिर भी विनयावनत होकर उन्होंने नन्दबाबा आदि बड़े-बड़े गोपोंसे पूछा—॥ २ ॥ 'पिताजी ! आपलोगोंके सामने यह कौन-सा बड़ा भारी काम, कौन-सा उत्सव आ पड़वा है ? इसका फल क्या है ? किस उद्देश्यसे, कौन लोग, किन साधनोंके द्वारा यह यज्ञ किया करते हैं ? पिताजी ! आप मुझे यह अग्रिम बतलाइये ॥ ३ ॥ आप मेरे पिता हैं और मैं आपका पुत्र । ये बातें सुननेके लिये मुझे बड़ी उत्कण्ठ भी है । पिताजी ! जो सत पुरुष सबको अपनी आत्मा मानते हैं, जिनकी दृष्टिमें अपने और परायेका भेद नहीं है, जिनका न कोई मित्र है, न शत्रु और न उदासीन—उनके पास छिपानेकी तो कोई बात होती ही नहीं । परन्तु यदि ऐसी स्थिति न हो, तो रहस्यकी बात शत्रुकी भोति उदासीनसे भी नहीं कहनी चाहिये । मित्र तो अपने समान ही कहा गया है, इसलिये उससे कोई बात छिपायी नहीं जाती ॥ ४-५ ॥ यह संसारी मनुष्य समझे-वेसमसे अनेकों प्रकारके कर्मोंका अनुष्ठान करता है । उनमेंसे समझ-बूझकर करनेवाले पुरुषोंके कर्म जैसे सफल होते हैं, वैसे वेसमझमें नहीं ॥ ६ ॥ अतः इस समय आपलोग जो क्रियायोग करने जा रहे हैं, वह

सुहृदोंके साथ विचारित—शासकसम्मत है अथवा लौकिक ही है—मैं यह सब जानना चाहता हूँ; आप कृपा करके स्पष्टरूपसे बतलाइये' ॥ ७ ॥

मनुवाचावते कथा—वेद्य ! भगवान् इन्द्र वर्षा करने-वाले मेघोंके खामी हैं । ये मेघ उन्हींके अपने रूप हैं । वे समस्त प्राणियोंको तृप्त करनेवाला एवं जीवनदान करनेवाला एक बरसाते हैं ॥ ८ ॥ मेरे प्यारे पुत्र ! हम और दूसरे लोग भी उन्हीं मेघपति भगवान् इन्द्रकी यज्ञोंके द्वारा पूजा किया करते हैं । जिन सामग्रियोंसे यज्ञ होता है, वे भी उनके बरसाये हुए शक्तिशाली जलसे ही उत्पन्न होती हैं ॥ ९ ॥ उनका यज्ञ करनेके बाद जो कुछ बच रहता है, उसी अकसे हम सब मनुष्य धर्म, धर्म और कामरूप विवर्गकी सिद्धिके लिये अपना जीवन-निर्वाह करते हैं । मनुष्योंके खेती आदि प्रयत्नोंके फल देनेवाले इन्द्र ही हैं ॥ १० ॥ यह धर्म हमारी कुल-परम्परासे चला आया है । जो मनुष्य काम, लोभ, भय अथवा द्वेषरूप ऐसे परम्परागत धर्मको छोड़ देता है, उसका कभी मङ्गल नहीं होता ॥ ११ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित ! ब्रह्मा, शङ्कर आदिके भी शासन करनेवाले केशव भगवान् ने नन्दबाबा और दूसरे मनुष्योंकी बात सुनकर इन्द्रको क्रोध दिखानेके लिये अपने पिता नन्दबाबासे कहा ॥ १२ ॥

श्रीभगवान् ने कहा—पिताजी ! प्राणी अपने कर्मके अनुसार ही पैदा होता और कर्मसे ही मर जाता है । उसे उसके कर्मके अनुसार ही सुख-दुःख, भय और मङ्गलके

निमित्तोंकी प्राप्ति होती है ॥ १३ ॥ यदि कर्मोंकी ही सब कुछ न मानकर उनसे भिन्न जीवोंके कर्मका फल देनेवाला ईश्वर माना भी जाय तो वह कर्म करनेवालोंको ही उनके कर्मके अनुसार फल दे सकता है। कर्म न करनेवालोंपर उसकी प्रशुता नहीं चल सकती ॥ १४ ॥

जब सभी प्राणी अपने-अपने कर्मोंका ही फल भोग रहे हैं, तब हमें इन्द्रकी क्या आवश्यकता है ? पिताजी ! जब वे पूर्वसंस्कारके अनुसार प्राप्त होनेवाले मनुष्योंके कर्म-फलको बदल ही नहीं सकते—तब उनसे प्रयोजन ? ॥ १५ ॥ मनुष्य अपने स्वभाव (पूर्व-संस्कारों) के अधीन है। वह उसीका अनुसरण करता है। यहाँतक कि देवता, असुर, मनुष्य आदिको छिये हुए यह सारा जगत् स्वभावमें ही स्थित है ॥ १६ ॥ जीव अपने कर्मों-

के अनुसार उत्तम और अधम शरीरोंको ग्रहण करता और छोड़ता रहता है। अपने कर्मोंके अनुसार ही प्यह शत्रु है, यह मित्र है, यह उदासीन है—ऐसा व्यवहार करता है। कदाँतक कहूँ, कर्म ही गुरु है और कर्म ही ईश्वर ॥ १७ ॥ इसलिये पिताजी ! मनुष्यको चाहिये कि पूर्वसंस्कारोंके अनुसार अपने कर्म तथा आश्रमके अनुकूल धर्मोंका पालन करता हुआ कर्मका ही आदर करे। जिसके द्वारा मनुष्यकी जीविका सुगमतासे चलती है, वही उसका इष्टदेव होता है ॥ १८ ॥ जैसे अपने विवाहित पतिको छोड़कर जार पतिका सेवन करनेवाली व्यभिचारिणी की कभी शान्तिजन्म नहीं करती, वैसे ही जो मनुष्य अपनी आजीविका चलनेवाले एक देवताको छोड़कर किसी दूसरेकी उपासना करते हैं, उससे उन्हें कभी सुख नहीं मिलता ॥ १९ ॥

॥ २० ॥ ब्राह्मण वेदोंके अध्ययन-अध्यापनसे, क्षत्रिय पृथ्वीपालनसे, वैश्य वार्ता-वृत्तिसे और शूद्र ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्योंकी सेवासे अपनी जीविकाका निर्वाह करे ॥ २० ॥ वैश्योंकी वार्तावृत्ति चार प्रकारकी है—कृषि, वाणिज्य, गोरक्षा और व्याज लेना। हमलोग उन चारोंमेंसे एक केवल गोपालन ही सदासे करते आये हैं ॥ २१ ॥ पिताजी ! इस संसारकी स्थिति, उत्पत्ति और वन्त्यके कारण क्रमशः सत्त्वगुण, रजोगुण और तमोगुण हैं। यह विविध प्रकारका सम्पूर्ण जगत् क्षी-गुरुभके संयोगसे रजोगुणके द्वारा

उत्पन्न होता है ॥ २२ ॥ उसी रजोगुणकी प्रेरणासे भेषगण सब कहीं जल वरसते हैं। उसीसे जन और जनसे ही सब जीवोंकी जीविका चलती है। इसमें भला इन्द्रका क्या लेना-देना है ? वह भला, क्या कर सकता है ? ॥ २३ ॥

पिताजी ! न तो हमारे पास किसी देशका राज्य है और न तो बड़े-बड़े नगर ही हमारे अधीन हैं। हमारे पास गाँव या घर भी नहीं हैं। हम तो सदाके कनवासी हैं, कन और पहाड़ ही हमारे घर हैं ॥ २४ ॥ इसलिये हमलोग गौओं, ब्राह्मणों और गिरिराजका यजन करनेकी तैयारी करे। इन्द्र-यज्ञके लिये जो सामग्रियाँ इकट्ठी की गयी हैं, उन्हींसे इस यज्ञका अनुष्ठान होने दे ॥ २५ ॥ अनेकों प्रकारके एकवान—खीर, हल्वा, पूसा, पूरी आदिसे लेकर दूँगाकी दाहृतक बनाये जायें। जवका सारा दूध एकत्र कर लिया जाय ॥ २६ ॥ वेद-वादी ब्राह्मणोंके द्वारा भस्मीभूति हुवन करवाया जाय तथा उन्हें अनेकों प्रकारके अन्न, गौर्य और दक्षिणार्घ्य दी जायें ॥ २७ ॥ और भी, चाण्डाल, पतित तथा कुचो-तकसे यथायोग्य वस्तुएँ देकर गायोंको चारा दिया जाय और फिर गिरिराजको भोग लगाया जाय ॥ २८ ॥ इसके बाद खूब प्रसाद खा-पीकर, सुन्दर-सुन्दर वस्त्र पहनकर, गहनोंसे सज-सजा लिया जाय और चन्दन लगाकर गौ, ब्राह्मण, अग्नि तथा गिरिराज गोवर्धनकी प्रदक्षिणा की जाय ॥ २९ ॥ पिताजी ! मेरी तो ऐसी ही सम्मति है। यदि आप लोगोंको रुचे, तो ऐसा ही कीजिये। ऐसा यज्ञ गौ, ब्राह्मण और गिरिराजको तो प्रिय होगा ही; मुझे भी बहुत प्रिय है ॥ ३० ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित ! कालाला भगवान्की इच्छा थी कि इन्द्रका घमण्ड चूर-चूर कर दें। नन्दबाबा आदि गोपोंने उनकी बात सुनकर बड़ी प्रसन्नतासे स्वीकार कर ली ॥ ३१ ॥ भगवान् श्रीकृष्णने जिस प्रकारका यज्ञ करनेको कहा था, वैसा ही यज्ञ उन्होंने प्रारम्भ किया। पहले ब्राह्मणोंसे खस्तिवाचन कराकर उसी सामग्रीसे गिरिराज और ब्राह्मणोंको सादर भेंट दी; तथा गौओंको हरी-हरी घास खिलायी। इसके बाद नन्दबाबा आदि गोपोंने गौओंको आगे करके गिरिराजकी प्रदक्षिणा

की ॥ ३२-३३ ॥ ब्राह्मणोंका आशीर्वाद प्राप्त करके वे और गोपियों मलीभोगि शृङ्गार करके और वैजंसे जुती गडियोंपर सवार होकर भगवान् श्रीकृष्णकी ठीठोंका गान करती हुई गिरिराजकी परिक्रमा करने लगीं ॥ ३४ ॥ भगवान् श्रीकृष्ण गोपोंको विश्वास दिलानेके लिये गिरिराजके ऊपर एक दूसरा विशाल शरीर धारण करके प्रकट हो गये, तथा मैं गिरिराज हूँ इस प्रकार कहते हुए सारी सामग्री आरोहण लगे ॥ ३५ ॥ भगवान् श्रीकृष्णने अपने उस स्वरूपको दूसरे ब्रजवासियोंके साथ स्वयं भी प्रणाम किया और कहने लगे—देखो, कैसा आश्चर्य

है ! गिरिराजने साक्षात् प्रकट होकर हमपर कृपा की है ॥ ३६ ॥ ये चाहे जैसा रूप धारण कर सकते हैं । जो वनवासी जीव इनका निरादर करते हैं, उन्हें ये नष्ट कर डालते हैं । आओ, अपना और गौओंका कल्याण करनेके लिये इन गिरिराजको हम नमस्कार करें' ॥ ३७ ॥ इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्णकी प्रेरणासे नन्दबाबा आदि बड़े-बड़े गोपोंने गिरिराज, गौ और ब्राह्मणोंका विधिपूर्वक पूजन किया तथा फिर श्रीकृष्णके साथ सब ब्रजमें लौट आये ॥ ३८ ॥

पचीसवाँ अध्याय

शोकपूर्णधारण

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित ! जब इन्द्रको पता लगा कि मेरी पूजा बन्द कर दी गयी है, तब वे नन्दबाबा आदि गोपोंपर बहुत ही क्रोधित हुए । परन्तु उनके क्रोध करनेसे होता क्या, उन गोपोंके रक्षक तो स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण थे ॥ १ ॥ इन्द्रको अपने पदका बड़ा घमण्ड था, वे समझते थे कि मैं ही त्रिलोकका ईश्वर हूँ । उन्होंने क्रोधसे तिलमिलकर प्रलय करनेवाले मेघोंके सावर्तक नामक गणको ब्रजपर चढ़ाई करनेकी आज्ञा दी और कहा—॥ २ ॥ 'गौड, इन जंगली ग्वालोंको इतना घमण्ड ! सचमुच यह धनका ही नशा है । भण देखो तो सही, एक साधारण मनुष्य कृष्णके बलपर उन्होंने मुझ देवराजका अपमान कर डाला ॥ ३ ॥ जैसे पृथ्वीपर बहुतसे मन्दबुद्धि पुरुष भवसागरसे पार जानेके सच्चे साधन ब्रह्मविद्याको तो छोड़ देते हैं और नाममात्रकी टूटी हुई नावसे—कर्ममय यज्ञोंसे इस घोर संसार-सागरको पार करना चाहते हैं ॥ ४ ॥ कृष्ण वक्त्रादी, नादान, अमिमानी और मूर्ख होनेपर भी अपनेको बहुत बड़ा ज्ञानी समझता है । वह स्वयं मृशुका प्राप्त है । फिर भी उसीका सहारा लेकर इन अहोरेने मेरी अवहेलना की है ॥ ५ ॥ एक तो ये यों ही धनके नशेमें चूर हो रहे थे; दूसरे कृष्णने इनको और बढ़ावा दे दिया है ।

अब तुमलोग जाकर इनके इस धनके घमण्ड और हेकड़ीको धूलमें मिखा दो तथा उनके पशुओंका संहार कर डालो ॥ ६ ॥ मैं भी तुम्हारे पीछे-पीछे ऐरावत हाथीपर चढ़कर नन्दके ब्रजका नाश करनेके लिये महापराक्रमी मरुद्गणोंके साथ जाता हूँ' ॥ ७ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित ! इन्द्रने इस प्रकार प्रलयके मेघोंको आज्ञा दी और उनके बन्धन खोल दिये । अब वे बड़े वेगसे नन्दबाबाके ब्रजपर चढ़ आये और मूसलधार पानी बरसाकर सारे ब्रजको पीड़ित करने लगे ॥ ८ ॥ चारों ओर विजलियाँ चमकने लगीं, बादल आपसमें टकराकर कड़कने लगे और प्रचण्ड आँधीकी प्रेरणासे वे बड़े-बड़े ओले बरसाने लगे ॥ ९ ॥ इस प्रकार जब दल-के-दल बादल बार-बार आ-आकर खंभेके समान मोटी-मोटी धाराएँ गिराने लगे, तब ब्रजभूमिकर कोना-कोना पानीसे भर गया और कहाँ नीचा है, कहाँ ऊँचा—इसका पता चलना कठिन हो गया ॥ १० ॥ इस प्रकार मूसलधार वर्षा तथा संज्ञावतके झपाटेसे जब एक-एक पशु ठिठुरने और कौंपने लगा, ग्वाल और ग्वालिनें भी ठंडके मारे अत्यन्त न्याकुल हो गयीं, तब वे सब-के-सब भगवान् श्रीकृष्णकी शरणमें आये ॥ ११ ॥ मूसलधार बरसि सताये जानेके कारण सबने अपने-अपने सिर और बच्चोंको निहकतार अपने शरीरके नीचे छिपा लिया

था और वे कौपने-कौपते भगवान्‌की चरणशरणमें पहुँचे ॥ १२ ॥ और बोले—‘प्यारे श्रीकृष्ण ! तुम बड़े भाग्यवान् हो । अब तो कृष्ण ! केवल तुम्हारे ही भाग्यसे हमारी रक्षा होगी । प्रभो ! इस सारे गोकुलके एकमात्र स्वामी, एकमात्र रक्षक तुम्हीं हो । भक्तकसल ! इन्द्रके क्रोधसे अब तुम्हीं हमारी रक्षा कर सकते हो’ ॥ १६ ॥ भगवान्‌ने देखा कि वर्षा और ओलोंकी भारसे पीबित होकर सब बेहोश हो रहे हैं । वे समझ गये कि यह सारी करतूत इन्द्रकी है । उन्होंने ही क्रोधवश ऐसा किया है ॥ १४ ॥ वे मन-ही-मन कहने लगे—‘हमने इन्द्रका यज्ञ भङ्ग कर दिया है, इसीसे वे ब्रजका नाश करनेके लिये बिना ऋतुके ही यह प्रचण्ड वायु और ओलोंके साथ घनघोर वर्षा कर रहे हैं ॥ १५ ॥ अच्छा, मैं अपनी योगमायासे इसका मकीमोति जवाब दूँगा । ये मूर्खतावश अपनेको लोकपात्र मानते हैं, इनके ऐश्वर्य और घनका घण्ट तथा ध्वान मैं चूर-चूर कर दूँगा ॥ १६ ॥ देवतालेग तो सत्त्वप्रधान होते हैं । इनमें अपने ऐश्वर्य और पदका अभिमान न होना चाहिये । अतः यह उचित ही है कि इन सत्त्वगुणसे व्युत्पन्न द्रष्टव्यताओंका मैं भ्रम-भङ्ग कर दूँ । इससे अन्तमें उन्हें शान्ति ही मिलेगी ॥ १७ ॥ यह सारा ब्रज मेरे आश्रित है, मेरे द्वारा लीकृत है और एकमात्र मैं ही इसका रक्षक हूँ । अतः मैं अपनी योगमायासे इसकी रक्षा करूँगा । सर्वोंकी रक्षा करना तो मेरा व्रत ही है । अब उसके पाठनका अवसर आ पहुँचा है’ ॥ १८ ॥

इस प्रकार कहकर भगवान् श्रीकृष्णने खेल-खेलमें एक ही हाथसे गिरिराज गोवर्द्धनको उखाड़ लिया और जैसे छोटे-छोटे बालक बरसाती छत्रके पुष्पको उखाड़कर हाथमें रख लेते हैं, वैसे ही उन्होंने उस पर्वतको धारण कर लिया ॥ १९ ॥ इसके बाद भगवान्‌ने गोपीसे कहा—‘माताजी, पिताजी और ब्रजवासियों ! तुमलोग अपनी गौओं और सब सामग्रियोंके साथ इस पर्वतके गढ़में आकर आरामसे बैठ जाओ ॥ २० ॥ देखो, तुमलोग ऐसी शङ्का न करना कि मेरे हाथसे

यह पर्वत गिर पड़ेगा । तुमलोग तनिक भी मत डरो । इस आँधी-पानीके डरसे तुम्हें बचानेके लिये ही मैंने यह युक्ति रखी है’ ॥ २१ ॥ जब भगवान् श्रीकृष्णने इस प्रकार सबको आश्वासन दिया—‘दाढ़स बँधाया, तब सब-के-सब म्हाल अपने-अपने गोधन, छक्कों, आश्रितों, पुरोहितों और श्रुत्योक्तों अपने-अपने साथ लेकर सुभीतेके अनुसार गोवर्द्धनके गढ़में आ बसो ॥ २२ ॥ भगवान् श्रीकृष्णने सब ब्रजवासियोंके देखते-देखते मूख-भ्यासकी पीढ़ा, आराम-निश्रामकी आकम्पकता आदि सब कुछ मुख्यकर सात दिनतक लगातार उस पर्वतको उठाये रक्खा । वे एक ढग भी बर्हसे इधर-उधर नहीं हुए ॥ २३ ॥ श्रीकृष्णकी योगमायाका यह प्रभाव देखकर इन्द्रके आश्चर्यका ठिकाना न रहा । अपना सकृत्पूरा न होनेके कारण उनकी सारी हेकड़ी बंद हो गयी, वे मौनचक्के-से रह गये । इसके बाद उन्होंने मेवोंको अपने-आप वर्षा करनेसे रोक दिया ॥ २४ ॥ जब गोवर्द्धनधारी भगवान् श्रीकृष्णने देखा कि वह भयङ्कर आँधी और घनघोर वर्षा बंद हो गयी, आकाशसे बादल छँट गये और सूर्य दीखने लगे, तब उन्होंने गोपीसे कहा—‘ ॥ २५ ॥ मेरे प्यारे गोपी ! अब तुमलोग निबर हो जाओ और अपनी स्त्रियों, गोधन तथा बच्चोंके साथ बाहर निकल आओ । देखो, अब आँधी-पानी बंद हो गया तथा नदियोंका पानी भी उतर गया’ ॥ २६ ॥ भगवान्‌की ऐसी आज्ञा पाकर अपने-अपने गोधन, स्त्रियों, बच्चों और बूढ़ोंको साथ ले तथा अपनी सामग्री छक्कोंपर ज़दकर धीरे-धीरे सब जगह बाहर निकल आये ॥ २७ ॥ सर्वशक्तिमान् भगवान् श्रीकृष्णने भी सब प्राणियोंके देखते-देखते खेल-खेलमें ही गिरिराजको पूर्ववत् उसके स्थानपर रख दिया ॥ २८ ॥

ब्रजवासियोंका हृदय प्रेमके आनेगसे भर रहा था । पर्वतको रखते ही वे भगवान् श्रीकृष्णके पास दौड़ आये । कोई उन्हें हृदयसे लगाने और कोई चूमने लगा ।

* भगवान् करते हैं—

सकृदेव प्रपञ्चाय तवास्तीति च वाचते । अमय सर्वभूतेभ्यो ददाय्मेतद्गत मम ॥

‘जो केवल एक बार मेरी शरणमें आ जाता है और मैं उम्हारा हूँ’ इस प्रकार वाचना करता है, उसे मैं सम्पूर्ण प्राणियोंति अमय कर देता हूँ—यह मेरा व्रत है ।’



गोवर्द्धनधारी

सबने उनका सत्कार किया। बड़ी-बूढ़ी गोपियोंने बड़े आनन्द और स्नेहसे दही, चावल, जल आदिसे उनका मङ्गल-तिलक किया और उन्मुख हृदयसे शुभ आशीर्वाद दिये ॥ २९ ॥ यशोदरानी, रोहिणीजी, नन्दबाबा और बलवानोंने श्रेष्ठ बलरामजीने स्नेहातुर होकर श्रीकृष्णको हृदयसे लगा लिया तथा आशीर्वाद दिये ॥ ३० ॥ परीक्षित । उस समय आकाशमें स्थित देवता, साध्य, सिद्ध, गन्धर्व और चारण आदि प्रसन्न होकर भगवान्की स्तुति करते हुए उनपर फलोंकी वर्षा करने

लगे ॥ ३१ ॥ राजन् । स्वर्गमें देवतालोग शङ्ख और गोवंत बजाने लगे । तुम्हुरु आदि गन्धर्वराज भगवान्की मधुर लीलाका गान करने लगे ॥ ३२ ॥ इसके बाद भगवान् श्रीकृष्णने व्रजकी यात्रा की । उनके बगलमें बलरामजी चल रहे थे और उनके प्रेमी ग्वालवाल उनकी सेवा कर रहे थे । उनके साथ ही प्रेममयी गोपियाँ भी अपने हृदयको आकर्षित करनेवाले, उसमें प्रेम जगाने-वाले भगवान्की गोवर्धनधारण आदि लीलाओंका गान करती हुई बड़े आनन्दसे व्रजमें छोट आयी ॥ ३३ ॥

छन्वीसवाँ अध्याय

नन्दबाबासे गोपोंकी श्रीकृष्णके प्रभावके विषयमें बातचीत

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित । व्रजके गोप भगवान् श्रीकृष्णके ऐसे अलौकिक कर्म देखकर बड़े आश्चर्यमें पड़ गये । उन्हें भगवान्की अनन्त शक्तिका तो पता था नहीं, वे इकट्ठे होकर आपसमें इस प्रकार कहने लगे ॥ १ ॥ 'इस बालकके ये कर्म बड़े अलौकिक हैं । इसका हमारे-जैसे गंधार ग्रामीणोंमें जन्म लेना तो इसके लिये बड़ी निन्दाकी बात है । यह भूल, कैसे उचित हो सकता है ॥ २ ॥ जैसे गजराज कोई कमल उखाड़कर उसे ऊपर उठा ले और धारण करे, वैसे ही इस नन्दसे सात वर्षके बालकने एक ही हाथसे गिरिराज गोवर्धनको उखाड़ लिया और खेल-खेलमें सात दिनोंतक उठाये रक्खा ॥ ३ ॥ यह साधारण मनुष्यके लिये भूल, कैसे सम्भव है ? जब यह नन्दा-सा बच्चा था, उस समय बड़ी मयङ्कर राक्षसी पूतना आयी और इसने आँख बंद किये-किये ही उसका स्नान तो किया ही, प्राण भी पी डाले—ठीक वैसे ही, जैसे काल शरीरकी आयुको निगल जाता है ॥ ४ ॥ जिस समय यह केवल तीन महीनेका था और छकड़ेके नीचे सोकर सो रहा था, उस समय रोते-रोते इसने ऐसा पाँव उछाला कि उसकी ठोकरसे वह बड़ा भारी छकड़ा उल्टकर गिर ही पड़ा ॥ ५ ॥ उस समय तो यह एक ही वर्षका था, जब दैत्य वधरके रूपमें इसे बैठे-बैठे आकाशमें उड़ा ले गया था । तुम सब जानते ही हो कि इसने उस

दृणावर्त दैत्यको गला बोटकर मार डाला ॥ ६ ॥ उस दिनकी बात तो सभी जानते हैं कि माखनचोरी करने-पर यशोदरानीने इसे छलछसे बाँध दिया था । यह घुटनोंके बल बकैयों खींचते-खींचते उन दोनों विशाल अर्जुन-वृक्षोंके बीचमेंसे निकल गया और उन्हें उखाड़ ही डाला ॥ ७ ॥ जब यह ग्वालवाल और बलरामजीके साथ बठकोंको चरानेके लिये वनमें गया हुआ था, उस समय इसको मार डालनेके लिये एक दैत्य बगुलेके रूपमें आया और इसने दोनों हाथोंसे उसके दोनों ठोर पकड़कर उसे तिनकेकी तरह चौर डाला ॥ ८ ॥ जिस समय इसको मार डालनेकी इच्छासे एक दैत्य बछड़ेके रूपमें बछड़ोंके झुंडमें घुस गया था, उस समय इसने उस दैत्यको खेल-ही-खेलमें मार डाला और उसे कैपके पेड़ोंपर पटककर उन पेड़ोंको भी गिरा दिया ॥ ९ ॥ इसने बलरामजीके साथ मिलकर गधेके रूपमें रहनेवाले चेतुकासुर तथा उसके सार्ध-बन्धुओंको मार डाला और फेंके हुए फर्रोंसे पूर्ण तालवन्को सबके लिये उपयोगी और मङ्गलमय बना दिया ॥ १० ॥ इसीने बलशाली बलरामजीके द्वारा झूर प्रल्म्बासुरको मरवा डाला तथा दावानलसे गौओं और ग्वालबालोंको उबार लिया ॥ ११ ॥ यमुनाजलमें रहनेवाला कालिय नाग कितना विप्रेता था ? परन्तु इसने उसका भी मान मर्दन कर उसे बलपूर्वक दहसे निकाल दिया और यमुनाजीका जल सदाके लिये निररहित—अशुतमय बना दिया ॥ १२ ॥ नन्दजी !

हम यह भी देखते हैं कि तुम्हारे इस सौंके बाळकपर हम सभी ब्रजवासियोंका अनन्त प्रेम है और इसका भी हमपर सामाविक ही स्नेह है । क्या आप बतल सकते हैं कि इसका क्या कारण है ॥ १३ ॥ यज्ञ, कहाँ तो यह सात वर्षका नन्हा-सा बाळक और कहाँ इतने बड़े गिरिराजको सात दिनोत्तक उठाये रखना ! ब्रजराज ! इसीसे तो तुम्हारे पुत्रके सम्बन्धमें हमें बड़ी शङ्का हो रही है ॥ १४ ॥

नन्दबाबा ने कहा—गोपो ! तुमलोग सावधान होकर मेरी बात सुनो । मेरे बाळकके विषयमें तुम्हारी शङ्का दूर हो जाय । क्योंकि महर्षि गर्भे इस बाळकको देखकर इसके विषयमें ऐसा ही कहा था ॥ १५ ॥ 'तुम्हारा यह बाळक प्रत्येक युगमें धारी प्रहण करता है । विभिन्न युगोंमें इसने श्वेत, रक्त और पीत—ये भिन्न-भिन्न रंग स्वीकार किये थे । इस बार यह कृष्णवर्ण हुआ है ॥ १६ ॥ मन्दजी ! यह तुम्हारा पुत्र पहले कहीं वसुदेवके घर भी पैदा हुआ था, इसलिये इस रहस्यको जानने-वाले लोग 'इसका नाम श्रीमान् वासुदेव है'—ऐसा कहते हैं ॥ १७ ॥ तुम्हारे पुत्रके गुण और कर्मोंके अनुरूप और भी बहुत-से नाम हैं तथा बहुत-से रूप । मैं तो उन नामोंको जानता हूँ, परन्तु संसारके साधारण लोग नहीं जानते ॥ १८ ॥ यह तुमलोगोंका परम कल्याण करेगा, समस्त गोप और गौणोंको यह बहुत ही आनन्दित करेगा । इसकी सहायतासे तुमलोग बड़ी-बड़ी विपत्तियोंको बड़ी दृढ़तासे पार कर लगे ॥ १९ ॥ ब्रजराज ! पूर्वकालमें एक बार पृथ्वीमें कोई राजा नहीं रह गया था । बाहुओंने चारों ओर छट-खसोट मचा रखी थी । तब तुम्हारे इसी पुत्रने सज्जन पुरुषोंकी रक्षा की और इससे बल पाकर उन लोगोंने छटेपौर निजय प्राप्त की ॥ २० ॥ नन्दबाबा ! जो तुम्हारे इस सौंके शिशुसे प्रेम करते हैं, वे बड़े भाग्यवान् हैं । जैसे विष्णुमग्नान्के

करकमलोंकी छत्र-छायामें रहनेवाले देवताओंको असुर नहीं जीत सकते, वैसे ही इससे प्रेम करनेवालोंको भीतरी या बाहरी—किसी भी प्रकारके शत्रु नहीं जीत सकते ॥ २१ ॥ मन्दजी ! चाहे जिस दृष्टिसे देखें—गुणसे, ऐश्वर्य और सौन्दर्यसे, कीर्ति और प्रभावसे तुम्हारा बाळक स्वयं भगवान् नारायणके ही समान है । अतः इस बाळकके अलौकिक कार्योंको देखकर आश्चर्य न करना चाहिये ॥ २२ ॥ गोपो ! मुझे स्वयं गर्गाचार्यकी यह आदेश देकर अपने घर चले गये । तबसे मैं अलौकिक और परम सुखद कर्म करनेवाले इस बाळकको भगवान् नारायणका ही अंश मानता हूँ ॥ २३ ॥ जब ब्रजवासियोंने नन्दबाबाके मुखसे गर्गजीकी यह बात सुनी, तब उनका विस्मय जाता रहा । क्योंकि अब वे अमित तेजस्वी श्रीकृष्णके प्रभावको पूर्णरूपसे देख और सुन चुके थे । आनन्दमें भ्रूकर उन्होंने नन्दबाबा और श्रीकृष्णकी भूरि-भूरि प्रशंसा की ॥ २४ ॥

जिस समय अपना यज्ञ भङ्ग हो जानेके कारण इन्द्र ऋषिके गारे आग-बबूल हो गये थे और मूसलधार बर्षा करने लगे थे, उस समय वज्रपात, ओलोंकी बौझर और प्रचण्ड आँधीसे ली, पशु तथा माले आपन्न पीड़ित हो गये थे । अपनी शरणमें रहनेवाले ब्रजवासियोंकी यह दशा देखकर भगवान्का हृदय करुणासे भर आया । परन्तु फिर एक नयी लीला करनेके विचारसे वे तुरन्त ही मुसकराने लगे । जैसे कोई नन्हा-सा निर्बल बाळक खेल-खेलमें ही बरसाती छतेका पुष्प उखाड़ ले, वैसे ही उन्होंने एक हाथसे ही गिरिराज गोवर्द्धनको उखाड़कर धारण कर लिया और सारे ब्रजकी रक्षा की । इन्द्रका मद्द चूर करनेवाले वे ही भगवान् गोविन्द हमपर प्रसन्न हो ॥ २५ ॥

सत्ताईसवाँ अध्याय

श्रीकृष्णका अभिषेक

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परिव्रित् ! जब भगवान् श्रीकृष्णने गिरिराज गोवर्द्धनको धारण करके मूसलधार वर्षसे ब्रजको बचा लिया, तब उनके पास गौलेकसे

कामधेनु (बर्षा देनेके लिये) और स्वर्गसे देवराज इन्द्र (अपने अपराधको क्षमा करनेके लिये) आये ॥ १ ॥ भगवान्का तिरस्कार करनेके कारण इन्द्र बहुत ही ऊजित

ये । इसलिये उन्होंने एकान्त-स्थानमें भगवान्‌के पास जाकर अपने सूर्यके समान तेजस्वी मुकुटसे उनके चरणों-का स्पर्श किया ॥ २ ॥ परमतेजस्वी भगवान्‌ श्रीकृष्णका प्रभाव देख-सुनकर इन्द्रका यह घमंड जाता रहा कि मैं ही तीनों लोकोंका स्वामी हूँ । अब उन्होंने हाथ जोड़कर सनकी स्तुति की ॥ ३ ॥

इन्द्रने कहा—भगवन्‌ ! आपका स्वरूप परम शान्त, हानमय, रजोगुण तथा तमोगुणसे रहित एवं विष्णुका अग्रकृत सत्त्वमय है । यह गुणोंके प्रवाहरूपसे प्रतीत होनेवाला प्रपञ्च केवल माधमय है । क्योंकि आपका स्वरूप न जाननेके कारण ही आपमें इसकी प्रतीति होती है ॥ ४ ॥ जब आपका सम्बन्ध अज्ञान और उसके कारण प्रतीत होनेवाले वेदादिसे है ही नहीं, फिर उन वेद आदिकी प्राप्तिके कारण तथा उन्हींसे होनेवाले ओम-श्रोत्र आदि दोष तो आपमें हो ही कैसे सकते हैं ? प्रभो ! इन दोषोंका होना तो अज्ञानका लक्षण है । इस प्रकार यद्यपि अज्ञान और उससे होनेवाले जगत्‌से आपका कोई सम्बन्ध नहीं है, फिर भी कर्मकी रक्षा और दुष्टोंका दमन करनेके लिये आप अतार प्रहण करते हैं और निग्रह-अनुग्रह भी करते हैं ॥ ५ ॥ आप जगत्‌के पिता, गुरु और स्वामी हैं । आप जगत्‌का नियन्त्रण करनेके लिये दण्ड धारण किये हुए दुस्तर काल हैं । आप अपने मज्जोंकी अछत्ता पूर्ण करनेके लिये खण्डन्दतासे जील-शरीर प्रकट करते हैं और जो लोग हमारी तरह अपनेको ईश्वर मान बैठते हैं, उनका मान भर्दन करते हुए अनेकों प्रकारकी खीछाएँ करते हैं ॥ ६ ॥ प्रभो ! जो मेरे-जैसे अज्ञानी और अपनेको जगत्‌का ईश्वर मानने-वाले हैं, वे अब देखते हैं कि बड़े-बड़े भयके अक्सरोंपर भी आप निर्भय रहते हैं, तब वे अपना घमंड छोड़ देते हैं और गर्वहित होकर संतपुरुषोंके द्वारा सेवित भक्ति-मार्गका आश्रय लेकर आपका भजन करते हैं । प्रभो ! आपकी एक-एक चेष्टा दुष्टोंके लिये दण्डविधान है ॥ ७ ॥ प्रभो ! मैंने ऐश्वर्यके भदसे चूर होकर आपका अपराध किया है । क्योंकि मैं आपकी शक्ति और प्रभुत्वके सम्बन्धमें बिल्कुल अनजान था । परमेश्वर ! आप क्षमा करके सुख मूर्ख अपराधीका यह अपराध क्षमा करें और ऐसी क्षमा करें कि मुझे फिर कभी ऐसे दृढ़ अज्ञानका शिकार

न होना पड़े ॥ ८ ॥ स्वयंप्रकाश, इन्द्रियातीत परमात्मा ! आपका यह अतार इसलिये हुआ है कि जो असुर-सेनापति केवल अपना पेट पाछनेमें ही लगे रहे हैं और पृथ्वीके लिये बड़े भरी भारके कारण बन रहे हैं, उनका वध करके उन्हें मोक्ष दिया जाय, और जो आपके चरणोंके सेनक हैं—आज्ञाकारी भक्तजन हैं, उनका अम्युदय हो—उनकी रक्षा हो ॥ ९ ॥ भगवन्‌ ! मैं आपको नमस्कार करता हूँ । आप सर्वान्तर्यामी पुरुषोत्तम तथा सर्वोत्तम वासुदेव हैं । आप यदुवंशियोंके एकमात्र स्वामी, भक्तसत्त्व एवं सबके चित्तको आकर्षित करनेवाले हैं । मैं आपको बार-बार नमस्कार करता हूँ ॥ १० ॥ आपने जीवोंके समान कर्मवश होकर नहीं, स्वतन्त्रतासे अपने भक्तोंकी तथा अपनी इच्छाके अनुसार शरीर स्वीकार किया है । आपका यह शरीर भी विष्णुदशानामरूप है । आप सब कुछ हैं, सबके कतरण हैं और सबके आत्मा हैं । मैं आपको बार-बार नमस्कार करता हूँ ॥ ११ ॥ भगवन्‌ ! मेरे अस्मिमानका अन्त नहीं है और मेरा क्रोध भी बहुत ही तीव्र, मेरे बचने काहर है । जब मैंने देखा कि मेरा यज्ञ तो गड़ कर दिया गया, तब मैंने मूसरुधार बर्षा और आँधीके द्वारा सारे ब्रजमण्डलको नष्ट कर देना चाहा ॥ १२ ॥ परन्तु प्रभो ! आपने मुझपर बहुत ही अनुग्रह किया । मेरी चेष्टा व्यर्थ होनेसे मेरे घमंडकी जड़ उखड़ गयी । आप मेरे स्वामी हैं, गुरु हैं और मेरे आत्मा हैं । मैं आपकी शरणमें हूँ ॥ १३ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित ! जब देवराज इन्द्रने भगवान्‌ श्रीकृष्णकी इस प्रकार स्तुति की, तब उन्होंने दृष्टते हुए मेघके समान गम्भीर वाणीसे इन्द्रको सम्बोधन करके कहा— ॥ १४ ॥

श्रीभगवान्‌ने कहा—इन्द्र ! तुम ऐश्वर्य और धन-सम्पत्तिके भदसे पूरे-पूरे मत्तवाले हो रहे थे । इसलिये तुम्हपर अनुग्रह करके ही मैंने तुम्हारा यज्ञ भङ्ग किया है । यह इसलिये कि अब तुम मुझे नित्य-निरन्तर स्मरण रख सको ॥ १५ ॥ जो ऐश्वर्य और धन-सम्पत्तिके भदसे जंवा हो जाता है, वह यह नहीं देखता कि मैं कालरूप परमेश्वर हाथमें दण्ड लेकर उसके सिरपर सवार हूँ । मैं जिसपर अनुग्रह करना चाहता हूँ, उसे ऐश्वर्यभट्ट कर

देता हूँ ॥ १६ ॥ इन्द्र ! तुम्हारा भक्त हो । अब तुम अपनी राजधानी अरावतीमें जाओ और मेरी आज्ञाका पालन करो । अब कभी घमंड न करना । नित्य-निरन्तर मेरी सन्निधिका, मेरे संयोगवत् अवस्थ करके रहना और अपने अधिकारके अनुसार उचित रीतिसे मर्यादाका पालन करना ॥ १७ ॥

परीक्षित ! भगवान् इस प्रकार आज्ञा दे ही रहे थे कि मनसिनी कामधेनुने अपनी सन्तानोंके साथ गोपके-धारी परमेश्वर श्रीकृष्णकी कन्दना की और उनको सम्बोधित करके कहा—॥ १८ ॥

कामधेनुने कहा—सखिदानन्दस्वरूप श्रीकृष्ण ! आप महायोगी—योगेश्वर हैं । आप स्वयं विश्व हैं, विश्वके परमकारण हैं, अभ्युत हैं । सम्पूर्ण विश्वके स्वामी आपको अपने रक्षकके रूपमें प्राप्तकर हम सनाथ हो गयीं ॥ १९ ॥ आप जगत्के स्वामी हैं । परन्तु हमारे तो परम पूजनीय आराध्यदेव ही हैं । प्रभो ! इन्द्र त्रिलोकीके इन्द्र हुआ करें, परन्तु हमारे इन्द्र तो आप ही हैं । अतः आप ही गौ, ब्राह्मण, उक्ता और साधुजनोंकी रक्षाके लिये हमारे इन्द्र बन जाइये ॥ २० ॥ हम गौएँ ब्रह्माजीकी प्रेरणासे आपको अपना इन्द्र मानकर अभिवेक करेंगी । विशात्मन् ! आपने पृथ्वीका भार उतारनेके लिये ही अवतार धारण किया है ॥ २१ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित ! भगवान्

श्रीकृष्णसे ऐसा कहकर कामधेनुने अपने दूधसे और देवमाताओंकी प्रेरणासे देवराज इन्द्रने ऐरावतकी सूँठके द्वारा अपने हुए आकाशगङ्गाके जलसे देवर्षियोंके साथ यदुनाथ श्रीकृष्णका अभिवेक किया और उन्हें 'गोविन्द' नामसे सम्बोधित किया ॥ २२-२३ ॥ उस समय वहाँ नारद, तुम्बुरु आदि गन्धर्व, विद्याधर, सिद्ध और चारण पहलेसे ही आ गये थे । वे समस्त संसारके पाप-ताप-को मिटा देनेवाले भगवान्के लोकमन्त्रपद पश्चात् गाम करने लगे और अन्तराष्ट्र आनन्दसे भरकर नृत्य करने लगे ॥ २४ ॥ मुख्य-मुख्य देवता भगवान्की स्तुति करके उनपर नन्दनवनके दिव्य पुष्पोंकी वर्षा करने लगे । तीनों लोकोंमें परमानन्दकी बाढ़ आ गयी और गौओंके स्थानोंसे आप-ही-आप इतना दूध गिरा कि पृथ्वी गीली हो गयी ॥ २५ ॥ नदियोंमें विविध रसोंकी बाढ़ आ गयी । वृक्षांसि मधुधारा बहने लगी । बिना जोते-बोये पृथ्वीमें अनेकों प्रकारकी ओषधियाँ, अन्न पैदा हो गये । पर्वतोंमें छिपे हुए मणि-माणिक्य स्वयं ही बाहर निकल आये ॥ २६ ॥ परीक्षित ! भगवान् श्रीकृष्णका अभिवेक होनेपर जो जीव सम्भवसे ही मूर्छा हैं, वे भी वैरहीन हो गये, उनमें भी परस्पर मित्रता हो गयी ॥ २७ ॥ इन्द्रने इस प्रकार गौ और गोकुलके स्वामी श्रीगोविन्दका अभिवेक किया और उनसे अनुग्रहित प्राप्त होनेपर देवता, गन्धर्व आदिके साथ स्वर्गकी यात्रा की ॥ २८ ॥

अट्ठाईसवाँ अध्याय

वधनल्लोकसे मन्दजीको बुद्धाकर लाना

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित ! नन्दबाबाने कार्तिक शुक्ल एकादशीका उपवास किया और भगवान्की पूजा की तथा उसी दिन रातमें द्वादशी लगनेपर स्नान करनेके लिये यमुना-जलमें प्रवेश किया ॥ १ ॥ नन्दबाबाको यह मात्तम नहीं था कि यह असुरोंकी वेला है, इसलिये वे रातके समय ही यमुनाजलमें डुब गये । उस समय वरुणके सेवक एक असुरने उन्हें पकड़ लिया और वह अपने स्वामीके पास ले गया ॥ २ ॥ नन्दबाबाके खो जानेसे व्रजके सारे गोप 'श्रीकृष्ण ! अब तुम्हीं

अपने पिताको ला सकते हो; बलराम ! अब तुम्हारा ही भरोसा है'—इस प्रकार कहते हुए रोने-पीटने लगे । भगवान् श्रीकृष्ण सर्वशक्तिमान् हैं एवं सदासे ही अपने भक्तोंका मय भगाते आये हैं । जब उन्होंने व्रजवासियोंका रोना-पीटना सुना और यह जाना कि पिताजीको वरुणका कोई सेवक ले गया है, तब वे वरुणजीके पास गये ॥ ३ ॥ जब लोकपाल वरुणने देखा कि समस्त जगत्के अन्तरिन्द्रिय और बहिरिन्द्रियोंके प्रवर्तक भगवान् श्रीकृष्ण स्वयं ही उनके यहाँ पवारे हैं, तब उन्होंने उनकी बहुत बड़ी पूजा

की । भगवान्‌के दर्शनमे उनका रोम-रोम आनन्दसे खिल उठा । इसके बाद उन्होंने भगवान्‌ने जिवेन किया ॥४॥

वरुणजीने कहा—प्रभो ! आज मेरा शरीर चरण करना सफल हुआ । आज मुझे सम्पूर्ण पुरुषार्थ प्राप्त हो गया । क्योंकि आज मुझे आपके चरणोंकी सेवाका शुभ अवसर प्राप्त हुआ है । भगवन् ! जिन्हें भी आपके चरणकमलोंकी सेवाका सुवन्सर मिले, वे भवसागरसे पार हो गये ॥ ५ ॥ आप भक्तोंके भगवान्, वेदान्तियोंके ब्रह्म और योगियोंके परमात्मा हैं । आपके स्वरूपमें विभिन्न लोकसृष्टियोंकी कल्पना करनेवाली माया नहीं है—ऐसा श्रुति कहती है । मैं आपके नमस्कार करता हूँ ॥६॥ प्रभो! भिरा यह सेवाक वडा मूढ और अनजान है । वह अपने कर्तव्यको भी नहीं जानता । वही आपके पिताजीको ले आया है, आप कृपा करके उसका अपराध क्षमा कीजिये ॥७॥ गोविन्द ! मैं जानता हूँ कि आप अपने पिताके प्रति बड़ा प्रेमभाव रखते हैं । ये आपके पिता हैं । इन्हें आप ले जाइये । परन्तु भगवन् ! आप सबके अन्तर्यामी, सबके साक्षी हैं । इसलिये त्रिशक्तिगोहर्न श्रीकृष्ण ! आप मुझ दासपर भी कृपा कीजिये ॥ ८ ॥

भीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित ! भगवान् श्री-कृष्ण ब्रह्मा आदि ईश्वरोंके भी ईश्वर हैं । लोकपालवरुणने इस प्रकार उनकी स्तुति करके उन्हें प्रसन्न किया । इसके बाद भगवान् अपने पिता नन्दजीकी लेकर ब्रजमें चले आये और व्रजवासी मर्द्ध-बन्धुओंको आनन्दित किया ॥९॥ नन्दबाबाने वरुणलोकमें लोकपालके इन्द्रियातीत ऐश्वर्य और सुख-सम्पत्तिको देखा तथा यह भी देखा कि वहाँके निवासी उनके पुत्र श्रीकृष्णके चरणोंमें झुक-झुक-कर प्रणाम कर रहे हैं । उन्हें बडा विस्मय हुआ । उन्होंने ब्रजमें आकर अपने जाति-भाइयोंको सब बातें कह सुनायी ॥ १० ॥ परीक्षित ! भगवान्‌के प्रेमी गोप

यह सुनकर ऐसा समझने लगे कि अरे, ये तो स्वयं भगवान् हैं । तब उन्होंने मन-ही-मन बड़ी उत्सुकतासे विचार किया कि क्या कभी बगदीश्वर भगवान् श्रीकृष्ण हमलोगोंको भी अपना वह मायातीत स्वधाम, जहाँ केवल इनके प्रेमी भक्त ही जा सकते हैं, दिखलायेंगे ॥११॥ परीक्षित ! भगवान् श्रीकृष्ण स्वयं सर्वदर्शी हैं । भला, उनसे यह बात कैसे छिपी रहती ? वे अपने आश्रमीय गोपोंकी यह अभिलषा जान गये और उनका सङ्कल्प सिद्ध करनेके लिये कृपासे भरकर इस प्रकार सोचने लगे ॥ १२ ॥ 'इस संसारमें जीव अज्ञानवशा शरीरमें आत्मबुद्धि करके भौति-भौतिकी कामना और उनकी पूर्तिके लिये नाना प्रचक्रके कर्म करता है । फिर उनके फलस्वरूप देवता, मनुष्य, पशु, पक्षी आदि जैनी-नीची योनियोंमें भटकता फिरता है, अपनी असली गतिको—आत्मस्वरूपको नहीं पहचान पाता ॥१३॥ परमदयालु भगवान् श्रीकृष्णने इस प्रकार सोचकर उन गोपोंको मायान्वयकरसे भरीत अपना परमधाम दिखलाया ॥१४॥ भगवान्‌ने पहले उनको उस ब्रह्मका साक्षात्कार करवाया जिसका स्वरूप सत्य, ज्ञान, अनन्त, सनातन और ज्योतिः-स्वरूप है तथा समाधिनिष्ठ गुणातीत पुरुष ही जिसे देख पाते हैं ॥१५॥ जिस जलशयमें अक्षरको भगवान्‌ने अपना स्वरूप दिखलया था, उसी ब्रह्मस्वरूप ब्रह्महृदमें भगवान् उन गोपोंको ले गये । वहाँ उन लोगोंने उसमें डुबकी लगायी । वे ब्रह्महृदमें प्रवेश कर गये । तब भगवान्‌ने उसमेंसे उनको निकालकर अपने परमधामका दर्शन कराया ॥ १६ ॥ उस दिव्य भगवत्स्वरूप लोकको देखकर नन्द आदि गोप परमानन्दमें मग्न हो गये । वहाँ उन्होंने देखा कि सारे वेद धूर्तिमान् होकर भगवान् श्रीकृष्णकी स्तुति कर रहे हैं । यह देखकर वे सब-को सब परम निश्चित हो गये ॥ १७ ॥

उन्तीसवाँ अध्याय

रासलीलाका आरम्भ

भीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित ! शरद् ऋतु पुष्प खिलकर गहूँ-गहूँ गहूँकर रहे थे । भगवान्‌ने चौर-पी । उसके कारण केला, चमेडी आदि सुगन्धित हरणके समय गोपियोंको निम्न रात्रियोंका सङ्केत किया

था, वे सब-की-सब पुञ्जीभूत होकर एक ही रात्रिके रूपमें सञ्चित हो रही थीं । भगवान् ने उन्हें देखा, देखकर दिव्य बनाया । गोपियों तो चाहती ही थीं । अब भगवान् ने भी अपनी अचिन्त्य महाशक्ति योगमायाको सहारे उन्हें निमित्त बनाकर रसमयी रासकीड़ा करनेका सङ्कल्प किया । अमना होनेपर भी उन्होंने अपने प्रेमियों-की इच्छा पूर्ण करनेके लिये मन खीकार किया ॥ १ ॥ भगवान् के सङ्कल्प करते ही चन्द्रदेवने प्राची दिशाके मुखमण्डलपर अपने शीतल किरणरूपी करकमलोंसे छाछिमाकी रोछी-केशर मछ दी, जैसे बहुत दिनोंके बाद अपनी प्राणप्रिया पत्नीके पास आकर उसके प्रियतम पतिने उसे आनन्दित करनेके लिये ऐसा किया हो । इस प्रकार चन्द्रदेवने उदय होकर न केवल पूर्वदिशाका, प्रत्युत संसारके समस्त चर-अचर प्राणियोंका सन्ताप—जो दिनमें शरत्कालीन प्रखर सूर्यस्पर्शके कारण बढ़ गया था—दूर कर दिया ॥ २ ॥ उस दिन चन्द्रदेवका मण्डल अण्डाकार था । पूर्णिमाकी रात्रि थी । वे नूतन केशरके समान लाल-लाल हो रहे थे, कुछ सङ्कोचमिश्रित अमिलभासे युक्त जान पड़ते थे । उनका मुखमण्डल लक्ष्मीजीके समान मादुर हो रहा था । उनकी कोमल किरणोंसे सारा बन अनुरागके रंगमें रँग गया था । उनके कोने-कोनेमें उन्होंने अपनी चौदनीके द्वारा अभूतका समुद्र लबेह दिया था । भगवान् श्रीकृष्णने अपने दिव्य उज्ज्वल रसके उदीपनकी पूरी सामग्री उन्हें और उस वनको देखकर अपनी बाँसुरीपर ब्रजसुन्दरियोंके मनको हरण करने-वाली कामबीज 'झों' की अस्पष्ट एवं मधुर तान डेरी ॥ ३ ॥ भगवान् का वह वंशीवादन भगवान् के प्रेमको, उनके मित्रकी लाजसाको अत्यन्त उकसानेवाला—बढ़ानेवाला था । यों तो इयामसुन्दरने पहलेसे ही गोपियोंके मनको अपने वशमें कर रखा था । अब तो उनके मनकी सारी वस्तुएँ—मय, सङ्कोच, वैर्य, मर्यादा आदिकी वृत्तियाँ भी—छीन लीं । वंशीध्वनि सुनते ही उनकी विचित्र गति हो गयी । जिन्होंने एक साथ साधना की थी श्रीकृष्णको पतिरूपमें प्राप्त करनेके लिये, वे गोपियों भी एक-दूसरेकी सूचना न देकर—यहाँ तक कि एक दूसरेसे अपनी चेष्टाको छिपकर जहाँ वे थे, वहाँके लिये

चल पड़ीं । परीक्षित ! वे इतने वेगसे चली थीं कि उनके कानोंके कुण्डल झोंके खा रहे थे ॥ ४ ॥

वंशीध्वनि सुनकर जो गोपियाँ दूध दुह रही थी, वे अत्यन्त उत्सुकतावश दूध दुहना छोड़कर चल पड़ीं । जो चूल्हेपर दूध औंठ रही थीं, वे उफनता हुआ दूध छोड़कर, और जो लपसी पका रही थीं वे पकी हुई लपसी बिना उतारे ही ज्यों-की-त्यों छोड़कर चल दीं ॥ ५ ॥ जो भोजन परस रही थीं वे परसना छोड़कर, जो छोटे-छोटे बच्चोंको दूध पिठा रही थीं वे दूध पिलाना छोड़कर, जो पतियोंकी सेवा-शुश्रूषा कर रही थीं वे सेवा-शुश्रूषा छोड़कर और जो खप भोजन कर रही थीं वे भोजन करना छोड़कर अपने कृष्णप्यारके पास चल पड़ीं ॥ ६ ॥ कोई-कोई गोपी अपने शरीरमें अङ्गारग, चन्दन और उबड़न लगा रही थीं और कुछ औंछामें अंजन लगा रही थीं । वे उन्हें छोड़कर तथा लठ्ठे-पठ्ठे वह धारणकर श्रीकृष्णके पास पहुँचनेके लिये चल पड़ीं ॥ ७ ॥ पिता और पतिवोंने, माई और जाति-बन्धुबंधोंने उन्हें रोका, उनकी मङ्गलमयी प्रेमयात्रा में विघ्न डाला । परन्तु वे इतनी मोहित हो गयी थीं कि रोकनेपर भी न रुकीं, न रुक सकीं । रुकती कैसे ? निश्चयिहो न श्रीकृष्णने उनके प्राण, मन और आत्मा सब कुल्लुका अपहरण जो कर लिया था ॥ ८ ॥ परीक्षित ! उस समय कुछ गोपियाँ वरोंके भीतर थीं । उन्हें बाहर निकलनेका मार्ग ही न मिला । तब उन्होंने अपने नेत्र बँद लिये और बड़ी तन्मयतासे श्रीकृष्णके सौन्दर्य, माधुर्य और लीलाओंका ध्यान करने लगीं ॥ ९ ॥ परीक्षित ! अपने परम प्रियतम श्रीकृष्णके असह्य निरहकी तीव्र केदनासे उनके हृदयमें इतनी व्यथा—इतनी जरून हुई कि उनमें जो कुछ अशुभ संस्कारोंका छेद्यमात्र अवशेष था, वह मरम हो गया । इसके बाद तुरंत ही ध्यान लग गया । ध्यानमें उनके सामने भगवान् श्रीकृष्ण प्रकट हुए । उन्होंने मन-ही-मन बड़े प्रेमसे, बड़े आवेगसे उनका आलिंगन किया । उस समय उन्हें इतना सुख, इतनी शान्ति मिली कि उनके सब-के-सब पुण्यके संस्कार एक साथ ही क्षीण हो गये ॥ १० ॥ परीक्षित ! यद्यपि उनका उस समय

श्रीकृष्णके प्रति आरम्भ भी था, तथापि कहीं सत्य वस्तु भी भावकी अपेक्षा रखती है ? उन्होंने जिनका आलिङ्गन किया, चाहे किसी भी भावसे किया हो, वे स्वयं परमात्मा ही तो थे। इसलिये उन्होंने पाप और पुण्यरूप कर्मके परिणामसे बने हुए गुणमय शरीरका परित्याग कर दिया। (भगवान्‌की जीवमें सम्मिलित होनेके योग्य दिव्य अप्राकृत शरीर प्राप्त कर लिया।) इस शरीरसे योगी जानेवाले कर्मबन्धन तो ध्यानके समय ही छिन्न-भिन्न हो चुके थे ॥ ११ ॥

राजा परीक्षितने पूछा—भगवन् ! गोपियों तो भगवान्‌ श्रीकृष्णको केवल अपना परम प्रियतम ही मानती थीं। उनका उनमें प्रसन्नभाव नहीं था। इस प्रकार उनकी दृष्टि प्राकृत गुणोंमें ही आसक्त दीखती है। ऐसी स्थितिमें उनके लिये गुणोंके प्रबलरूप इस संसारकी निवृत्ति कैसे सम्भव हुई ? ॥ १२ ॥

श्रीधुक्‌देवर्षीने कहा—परीक्षित ! मैं तुमसे पहले ही कह चुका हूँ कि वेदिराज शिशुपाक भगवान्‌के प्रति द्वेष-भाव रखनेपर भी अपने प्राकृत शरीरको छोड़कर अप्राकृत शरीरसे उनका पार्षद हो गया। ऐसी स्थितिमें जो समस्त प्रकृति और उसके गुणोंसे अतीत भगवान्‌ श्रीकृष्णकी प्यारी हैं और उनसे अन्य प्रेम करती हैं, वे गोपियाँ उन्हें प्राप्त हो जायँ—इसमें कौन-सी आश्चर्यकी बात है ॥ १३ ॥ परीक्षित ! वास्तवमें भगवान्‌ प्रकृतिसम्बन्धी बुद्धि-विनाश, प्रमाण-प्रमेय और गुणगुणीभावसे रहित हैं। वे अचिन्त्य-अनन्त अप्राकृत परम कल्याणस्वरूप गुणोंके एकमात्र आश्रय हैं। उन्होंने यह जो अपनेको तथा अपनी जीवाको प्रकट किया है, उसका प्रयोजन केवल इतना ही है कि जीव उसके सहारे अपना परम कल्याण सम्पादन करे ॥ १४ ॥ इसलिये भगवान्‌से केवल सम्बन्ध हो जाना चाहिये। यह सम्बन्ध चाहे जैसा हो—कामका हो, क्रोधका हो या भयका हो; स्नेह, नातेदारी या सौहार्दका हो। चाहे जिस भावसे भगवान्‌में नित्य-निरन्तर अपनी वृत्तियाँ जोड़ दी जायँ, वे भगवान्‌से ही जुबती हैं। इसलिये वृत्तियाँ भगवन्‌मय हो जाती हैं, और उस जीवको भगवान्‌की ही प्राप्ति

होती है ॥ १५ ॥ परीक्षित ! तुम्हारे-जैसे परम भागवत, भगवान्‌का रहस्य जाननेवाले भक्तों श्रीकृष्णके सम्बन्धमें ऐसा सन्देह नहीं करना चाहिये। योगेश्वरोंके भी ईश्वर अजन्मा भगवान्‌के लिये भी यह कोई आश्चर्य-की बात है ? खरे ! उनके सङ्कल्पमात्रसे—सौंहेकि इयारेसे सारे जगत्‌का परम कल्याण हो सकता है ॥ १६ ॥ जब भगवान्‌ श्रीकृष्णने देखा कि जनकी अनुपम किमूर्तियाँ गोपियाँ मेरे विलुक्त पास आ गयी हैं, तब उन्होंने अपनी विनोदमयी वाक्‌चातुरीसे उन्हें मोहित करते हुए कहा। क्यों न हो—भूत, भविष्य और वर्तमानकालके जितने वक्ता हैं, उनमें वे ही तो सर्वश्रेष्ठ हैं ॥ १७ ॥

भगवान्‌ श्रीकृष्णने कहा—महामायावती गोपियो ! तुम्हारा ज्ञात है। बतलाओ, तुम्हें प्रसन्न करनेके लिये मैं कौन-सा काम करूँ ? नयनों तो सब कुशल-मङ्गल है न ? कहो, इस समय यहाँ आनेकी क्या आवश्यकता पड़ गयी ? ॥ १८ ॥ सुन्दरी गेपियो ! रातका समय है, यह स्वयं ही बका भयावना होता है और इसमें बड़े-बड़े भयानके जीव-जन्तु इधर-उधर घूमते रहते हैं। अतः तुम सब तुरंत ब्रजमें छौट जाओ। रातके समय घोर जंगलमें लियोंको नहीं रुकना चाहिये ॥ १९ ॥ तुम्हें न देखकर तुम्हारे भौं-बाप, पति-पुत्र और भाई-बन्धु बूढ़ रहे होंगे। उन्हें भयमें न डालो ॥ २० ॥ तुमलोगोंने रंग-विरंगे पुष्पोंसे ढंके हुए इस वनकी शोभाको देखा। पूर्ण चन्द्रमाकी कोमल रश्मियोंसे यह रँग हुआ है, मानो उन्होंने अपने हाथों चित्रकारी की हो; और यमुनाजीके जलका स्पर्श करके बहनेवाले सौतल समीरकी मन्द-मन्द गतिसे झिलते हुए ये वृक्षोंके पत्ते तो इस वनकी शोभाको और भी बढ़ा रहे हैं। परन्तु अब तो तुमलोगोंने यह सब कुछ देख लिया ॥ २१ ॥ अब देर मत करो, शीघ्र-से-शीघ्र ब्रजमें छौट जाओ। तुमलोग कुलीन जी हो और स्वयं भी सती हो; जाओ, अपने पतियोंकी और सतियोंकी सेवा-शुश्रूषा करो। देखो, तुम्हारे घरके मन्दे-मन्दे बच्चे और गौओंके बछड़े रो-रँभा रहे हैं; उन्हें दूध पिनाओ, गौरें दूधो ॥ २२ ॥ अपना यदि मेरे

प्रेमसे परवश होकर तुमलोग यहाँ आयी हो तो इसमें कोई अनुचित बात नहीं हुई, यह तो तुम्हारे योग्य ही है। क्योंकि जगत्के पशु-पक्षीतक मुझसे प्रेम करते हैं, मुझे देखकर प्रसन्न होते हैं ॥ २३ ॥ कल्याणी गोपियो! ब्रियोंका परम धर्म यही है कि वे पति और उसके भार्य-बन्धुओंकी निष्कपटभावसे सेवा करें और सन्तानका पाछन-पोषण करें ॥ २४ ॥ जिन ब्रियोंको उत्तम लोक प्राप्त करनेकी अभिलाषा हो, वे पातकीको छोड़कर और किसी भी प्रकारके पस्तिका परित्याग न करें। मले ही वह बुरे समाधवाला, माय्यहीन, धृष्ट, दुर्ब, रोगी या निर्बल ही क्यों न हो ॥ २५ ॥ कुलीन ब्रियोंके लिये जार पुरुषकी सेवा सब तरहसे निन्दनीय ही है। इससे उनका परलोक बिगड़ता है, स्वर्ग नहीं मिलता, इस लोकमें अपयश होता है। यह कुर्मर खर्ये तो अत्यन्त दुष्ट, क्षणिक है ही; इसमें प्रत्यक्ष—कर्त्तमानमें भी कष्ट ही-कष्ट है। मोक्ष आदिकी तो बात ही कौन करे, यह साक्षात् परम भय—नरक आदिक हेतु है ॥ २६ ॥ गोपियो! मेरी लीला और गुणोंके अवगणने, रूपके दर्शनसे, उन सबके कीर्तन और ध्यानसे मेरे प्रति जैसे अनन्य प्रेमकी प्राप्ति होती है, वैसे प्रेमकी प्राप्ति पास रहनेसे नहीं होती। इसलिये तुमलोग अभी अपने-अपने घर लौट जाओ ॥ २७ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित! भगवान् श्री-कृष्णका यह अप्रिय भाषण सुनकर गोपियों उदास, खिन्न हो गयीं। उनकी आवाज टूट गयी। वे चिन्ताके अवाह एवं अपार समुद्रमें डूबने-उतराने लगीं ॥ २८ ॥ उनके बिम्बाफल (पके हुए कुँदरू) के समान जल-जल अथर शोकेके कारण चकनेवाली लंबी और गरम सौंसे सूख गये। उन्होंने अपने मुँह नीचेकी ओर छटका लिये, वे पैरोंके नखोंसे धरती कुदेने लगीं। नेत्रोंसे दुःखके आँसू बह-बहकर कानोंके साथ वक्षःखण्ड पर पहुँचने और वहाँ लगी हुई केसरको जोने लगे। उनका हृदय दुःखसे इतना भर गया कि वे कुछ बोल न सकीं, चुपचाप खड़ी रह गयीं ॥ २९ ॥ गोपियोंने अपने प्यारे श्यामसुन्दरके लिये सारी कामनाएँ, सारे योग छोड़ दिये थे। श्रीकृष्णमें उनका अनन्य अनुराग, परम प्रेम था। जब उन्होंने अपने प्रियतम श्रीकृष्णकी यह

निष्प्रतापे मरी बात सुनी, जो बड़ी ही अप्रिय-सी मालूम हो रही थी, तब उन्हें बड़ा दुःख हुआ। ओखें रोते-रोते जल हो गयीं, आँसुओंके मारे रूँच गयीं। उन्होंने धीरज धारण करके अपनी आँखोंके आँसू पोछे और फिर प्रणयकोपके कारण वे गद्गद वाणीसे कहने लगीं ॥ ३० ॥

गोपियोंने कहा—प्यारे श्रीकृष्ण! तुम घट-वट-व्यापी हो। हमारे हृदयकी बात जानते हो। तुम्हें इस प्रकार निष्प्रतापे वचन नहीं कहने चाहिये। हम सब कुछ छोड़कर केवल तुम्हारे चरणोंमें ही प्रेम करती हैं। इसमें सन्देह नहीं कि तुम स्वतन्त्र और हठीले हो। तुमपर हमारा कोई वश नहीं है। फिर भी तुम अपनी ओरसे, जैसे आदि पुरुष भगवान् नारायण कृपा करके अपने सुमुख मन्त्रोंसे प्रेम करते हैं, वैसे ही हमें स्वीकार कर लो। हमारा ध्याग मत करो ॥ ३१ ॥ प्यारे श्यामसुन्दर! तुम सब धर्मोंका रहस्य जानते हो। तुम्हारा यह कहना कि 'अपने पति, पुत्र और भार्य-बन्धुओंकी सेवा करना ही ब्रियोंका स्वधर्म है'—अक्षरशः ठीक है। परन्तु इस उपदेशके अनुसार हमें तुम्हारी ही सेवा करनी चाहिये; क्योंकि तुम्हीं सब उपदेशोंके पद (चरम शब्द) हो; साक्षात् भगवान् हो। तुम्हीं समस्त शरीरधारियोंके सुहृद् हो, आत्मा हो और परम प्रियतम हो ॥ ३२ ॥ आत्मज्ञानमें निपुण महापुरुष तुमसे ही प्रेम करते हैं; क्योंकि तुम नित्य प्रिय एवं अपने ही आत्मा हो। अनित्य एवं दुःखद पति-पुत्रादिके क्या प्रयोजन है! परमेश्वर! इसलिये हमपर प्रसन्न होओ। कृपा करो। कर्मछनयन। चिरकावसे तुम्हारे प्रति पात्री-पेसी आशा-अभिलाषाकी लहलहाती ज्वाला छेदन मत करो ॥ ३३ ॥ मनमोहन! अब-तक हमारा चित्त धरके काम-धर्मोंमें लगता था। इसीसे हमारे हाथ भी ऊपरों रमे हुए थे। परन्तु-तुमने हमारे देखते-देखते हमारा वह चित्त छूट लिया। इसमें तुम्हें कोई कठिनाई भी नहीं उठानी पड़ी, तुम तो सुखस्वरूप हो न। परन्तु अब तो हमारी गति-मति निराली ही हो गयी है। हमारे ये पैर तुम्हारे चरणकमलोंको छोड़कर एक पग भी हटनेके लिये तैयार नहीं हैं, नहीं

हट रहे है । फिर हम ब्रजमें कैसे जायें ? और यदि वहाँ जायें भी तो करें क्या ? ॥ ३४ ॥ प्राणच्छम ! हमारे प्यारे सख ! तुम्हारी मन्द-मन्द मधुर मुसकान, प्रेममयी चितवन और मनोहर संगीतने हमारे हृदयमें तुम्हारे प्रेम और मिलनकी आग धक्का दी है । उसे तुम अपने अधरोंकी रसधारारे बुझा दो । नहीं तो प्रियतम ! हम सच कहती हैं, तुम्हारी विरह-व्यथाकी आगसे हम अपने-अपने शरीर जल देंगी और ध्यानके द्वारा तुम्हारे चरणकमलोंको प्राप्त करेंगी ॥ ३५ ॥

प्यारे कमलनयन ! तुम बनवासियोंके प्यारे हो और वे भी तुमसे बहुत प्रेम करते हैं । इससे प्रायः तुम उन्हींके पास रहते हो । यहाँतक कि तुम्हारे जिन चरणकमलोंकी सेवाका अवसर स्वयं लक्ष्मीजीको भी कमी-कमी ही मिलता है, उन्हीं चरणोंका स्पर्श हमें प्राप्त हुआ । जिस दिन यह सौभाग्य हमें मिल और तुमने हमें स्वीकार करके आनन्दित किया, उसी दिनसे हम और किसीके सामने एक क्षणके लिये भी ठहरनेमें असमर्थ हो गयी हैं—पति-पुत्रादिकोंकी सेवा तो दूर रही ॥ ३६ ॥ हमारे स्वामी ! जिन लक्ष्मीजीका कृपा-कटाक्ष प्राप्त करनेके लिये बड़े-बड़े देवता तपस्या करते रहते हैं, वही लक्ष्मीजी तुम्हारे वक्षःस्थलमें बिना किसीकी प्रतिद्वन्द्विताके स्थान प्राप्त कर लेनेपर भी अपनी सौत तुलसीके साथ तुम्हारे चरणोंकी रज पानेकी अभिलाषा किया करती हैं । अबतकके सभी भक्तोंने उस चरणरजका सेवन किया है । उन्हींके समान हम भी तुम्हारी उसी चरणरजकी शरणमें आयी हैं ॥ ३७ ॥ भगवन् ! अबतक जिसने भी तुम्हारे चरणोंकी शरण ली, उसके सारे कष्ट तुमने मिटा दिये । अब तुम हमपर कृपा करो । हमें भी अपने प्रसादका भाजन बनाओ । हम तुम्हारी सेवा करनेकी आशा-अभिलाषासे घर, गौव, कुटुम्ब—सब कुछ छोड़कर तुम्हारे शुक्ल चरणोंकी शरणमें आयी हैं । प्रियतम ! वहाँ तो तुम्हारी आराधनाके लिये अवकाश ही नहीं है । पुरुषवृषण ! पुरुषोत्तम ! तुम्हारी मधुर मुसकान और चारु चितवनने हमारे हृदयमें प्रेमकी—मिलनकी आकांक्षाकी आग धक्का दी है; हमारा रोम-रोम उससे जल रहा है ।

तुम हमें अपनी दासीके रूपमें स्वीकार कर लो । हमें अपनी सेवाका अवसर दो ॥ ३८ ॥ प्रियतम ! तुम्हारा सुन्दर मुखकमल, जिसपर घुँघराली अलकों झलक रही हैं; तुम्हारे ये कमनीय कपोल, जिनपर सुन्दर-सुन्दर कुण्डल अपना अनन्त सौन्दर्य बिखेर रहे हैं; तुम्हारे ये मधुर वक्त्र, जिनकी सुधा सुधाको भी लजानेवाली है; तुम्हारी यह नयनमनोहारी चितवन, जो मन्द-मन्द मुसकानसे लुलित हो रही है; तुम्हारी ये दोनों मुचाएँ, जो शरणागतोंको अमयदाय देनेमें अत्यन्त उदार हैं और तुम्हारा यह वक्षःस्थल, जो लक्ष्मीजीका—सौन्दर्यकी एकमात्र देवीका नित्य क्रीडास्थल है, देखकर हम सब तुम्हारी दासी हो गयी हैं ॥ ३९ ॥ प्यारे स्वामिसुन्दर ! तीनों लोकोंने भी और ऐसी कौन-सी स्त्री है, जो मधुर-मधुर पद और आरोह-अवरोह-क्रमसे विविध प्रकारकी मूर्च्छनाओंसे युक्त तुम्हारी वंशीकी तान सुनकर तथा इस त्रिलोकसुन्दर मोहिनी मूर्तिसे—जो अपने एक बँव सौन्दर्यसे त्रिलोकोंको सौन्दर्यका दान करती है एवं जिसे देखकर गौ, पक्षी, वृक्ष और हरिन भी रोमाञ्चित, पुलकित हो जाते हैं—अपने नेत्रोंसे निहारकर आर्द्र-भर्पादासे विचलित न हो जाय, कुल-कान और लोकजनोंको त्यागकर तुममें अनुरक्त न हो जाय ॥ ४० ॥ हमसे यह बात छिपी नहीं है कि जैसे भगवान् नारायण देवताओंकी रक्षा करते हैं, वैसे ही तुम ब्रजमण्डलका भय और दुःख मिटानेके लिये ही प्रकट हुए हो । और यह भी स्पष्ट ही है कि दीन-दुखियोंपर तुम्हारा बड़ा प्रेम, बड़ी कृपा है । प्रियतम ! हम भी बड़ी दुःखिनी हैं । तुम्हारे मिलनकी आकांक्षाकी आगसे हमारा वक्षःस्थल जल रहा है । तुम अपनी इन दासियोंके वक्षःस्थल और सिरपर अपने कोमल करकमल रखकर इन्हें अपना लो; हमें जीवनदान दो ॥ ४१ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित ! भगवान् श्रीकृष्ण सनकादि योगियों और शिवादि योगेश्वरोंके भी ईश्वर हैं । जब उन्होंने गोपियोंकी व्यथा और व्याकुलतासे भरी बाणी सुनी, तब उनका हृदय दयासे भर गया और यद्यपि वे आत्मराम हैं—अपने-अपने

ही रमण करते रहते हैं, उन्हें अपने अतिरिक्त और किसी भी बाह्य वस्तुकी अपेक्षा नहीं है, फिर भी उन्होंने हँसकर उनके साथ क्रीडा प्रारम्भ की ॥४२॥ भगवान् श्रीकृष्णने अपनी भाव-भङ्गी और चेष्टाएँ गोपियोंके अनुकूल कर दीं; फिर भी वे अपने स्वरूपमें व्यो-के-स्योँ एकरस स्थित थे, अभ्युत थे । जब वे झुलकर हँसते, तब उनके उज्ज्वल-उज्ज्वल दौत कुन्दकलीके समान जान पड़ते थे । उनकी प्रेममयी चितवनसे और उनके दर्शनके आनन्दसे गोपियोंका मुखकमल प्रफुल्लित हो गया । वे उन्हें चारों ओरसे घेरकर खड़ी हो गयीं । उस समय श्रीकृष्णकी ऐसी शोभा हुई, मानो अपनी पत्नी तारिकाजैसे घिरे हुए वनप्रभा ही हों ॥ ४३ ॥ गोपियोंके शत-शत दूरोंके खामी भगवान् श्रीकृष्ण वैजयन्ती भाञ्ज पहने हुन्दावन-को शोभायमान करते हुए विचरण करने लगे । कभी गोपियों अपने प्रियतम श्रीकृष्णके गुण और लीलाओंका गान करतीं, तो कभी श्रीकृष्ण गोपियोंके प्रेम और सौन्दर्यके गीत गाने लगते ॥ ४४ ॥ इसके बाद भगवान् श्रीकृष्णने गोपियोंके साथ यमुनाजीके पावन पुष्पिनपर, जो कभूरके समान चमकीली बाहसे जगमगा

रहा था, पदार्पण किया । वह यमुनाजीकी तरह तल्लों-के स्पर्शसे शीतल और कुमुदिनीकी सहज सुगन्धसे सुधासिक्त बाबुके द्वारा सेनित हो रहा था । उस आनन्दप्रद पुष्पिनपर भगवान्ने गोपियोंके साथ क्रीडा की ॥ ४५ ॥ हाथ फैलाना, आङ्गिकन करना, गोपियोंके हाथ दबाना, उनकी चौटी, जोंघ, गीवी और स्तन आदिका स्पर्श करना, विनोद करना, नखक्षत करना, विनोदपूर्ण चितवनसे देखना और मुसकाना—इन क्रियाओंके द्वारा गोपियोंके दिव्य कामरसको, परमोज्ज्वल प्रेमभावको उत्तेजित करते हुए भगवान् श्रीकृष्ण उन्हें क्रीडाद्वारा आनन्दित करने लगे ॥ ४६ ॥ उदारशिरोमणि सर्वव्यापक भगवान् श्रीकृष्णने जब इस प्रकार गोपियोंका सम्मान किया, तब गोपियोंके मनमें ऐसा भाव आया कि संसारकी समस्त शियोंमें हम ही सर्वश्रेष्ठ हैं, हमारे सम्मान और कोई नहीं है । वे कुछ मानवती हो गयीं ॥ ४७ ॥ जब भगवान्ने देखा कि इन्हें तो अपने सुहागमत्त कुल गर्व हो आया है और अब मान भी करने लगी हैं, तब वे उनका गर्व शान्त करनेके लिये तथा उनका मान दूर कर प्रसन्न करनेके लिये वहीं— उनके बीचमें ही अन्तर्धान हो गये ॥ ४८ ॥

तीसवाँ अध्याय

श्रीकृष्णके विचरणमें गोपियोंकी दशा

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित । भगवान् सहस्रा अन्तर्धान हो गये । उन्हें न देखकर ब्रजयुवतियोंकी वैसी ही दशा हो गयी, जैसे मूषपति गजराजके बिना हयिनियोंकी होती है । उनका हृदय विरहकी ज्वालासे जलने लगा ॥ १ ॥ भगवान् श्रीकृष्णकी मदोन्मत्त गजराजकी-सी चाल, प्रेममयी मुसकान, विद्यासमरी चितवन, मनोरम प्रेमाञ्जप, भिज-भिज प्रकारकी लीलाओ तथा शृङ्गार-रसकी भाव-भङ्गियोंने उनके चितको चुरा लिया था । वे प्रेमकी मतवाली गोपियों श्रीकृष्णमय हो गयीं और फिर श्रीकृष्णकी विभिन्न चेष्टाओंका अनुकरण करने लगीं ॥ २ ॥ अपने प्रियतम श्रीकृष्णकी चाल-ढाल, हास-विहास और चितवन-बोझ

आदिमें श्रीकृष्णकी प्यारी गोपियों उनके समान ही बन गयीं; उनके शरीरमें भी वही गति-मति, वही याव-भाङ्गी उत्तर आयी । वे अपनेको सर्वथा भूलकर श्रीकृष्णस्वरूप हो गयीं और उन्हींकी लीज-विजसका अनुकरण करती हुई 'मैं श्रीकृष्ण ही हूँ'—इस प्रकार कहने लगीं । ॥ ३ ॥ वे सब परस्पर भिजकर ऊँचे खरसे उन्हींकी गुणोंका गान करने लगीं और मतवाली होकर एक-दूसरे-दूसरे, एक-आदीसे दूसरी आदीमें जा-आकर श्रीकृष्णको ढूँढ़ने लगीं । परीक्षित । भगवान् श्रीकृष्ण कहीं दूर चोढ़े ही गये थे । वे तो समस्त जङ्गल-वेतन पदार्थोंमें तथा उनके बाहर भी आकाशके सञ्चन एकरस स्थित ही हैं । वे वही थे, उन्हींमें थे; परन्तु उन्हें न

देखकर गोपियों वनस्पतियोंसे—येद-पौधोंसे उनका पता
पूछने लगीं ॥ ४ ॥

(गोपियोंने पहले बड़े-बड़े वृक्षोंसे जाकर पूछा)
‘हे पीपल, पाकर और बरगद ! नन्दनन्दन श्यामसुन्दर
अपनी प्रेममयी सुसकान और चितवनसे हमारा मन
चुराकर चले गये हैं । क्या तुम लोगोंने उन्हें देखा है ?
॥ ५ ॥ कुरवक, अशोक, नागकेजूर, पुनाग और
चम्पा । बलरामजीके छोटे भाई, जिनकी सुसकानमात्रसे
बकी-बकी मानिनियोंका मानमर्दन हो जाता है, इधर
आये थे क्या ? ॥ ६ ॥ (अब उन्होंने जीजातिके पौधोंसे
कहा—) ‘बहिन तुलसी ! तुम्हारा हृदय तो बड़ा
कोमल है, तुम तो सभी लोगोंका कल्याण चाहती हो ।
भगवान्‌के चरणोंमें तुम्हारा प्रेम तो है ही, वे भी
तुमसे बहुत प्यार करते हैं । तभी तो अँरिंके मेंढराते
रहनेपर भी वे तुम्हारी माया नहीं उतारते, सर्वदा
पहने रहते हैं । क्या तुमने अपने परम प्रियतम श्याम-
सुन्दरको देखा है ? ॥ ७ ॥ प्यारी मावली ! मझिके ।
जाती और जह्नी ! तुमलोगोंने कदाचित् हमारे ध्यारे
माधवकी देखा होगा । क्या वे अपने कोमल कोंसे स्पर्श
करके तुम्हें आनन्दित करते हुए इधरसे गये हैं ? ॥ ८ ॥
‘साल, मियाल, कटहल, पीतशाल, कचनार,
जामुन, आक, बेर, मीलसिरी, आम, कदम्ब और
नीम तथा अन्यान्य वनजाके तटपर विराजमान सुखी
तरुवो ! तुम्हारा जन्म-जीवन केवल परोपकारके लिये
है । श्रीकृष्णके बिना हमारा जीवन सूना हो रहा है ।
हम बेहोश हो रही हैं । तुम हमें उन्हें पानेका मार्ग
बता दो’ ॥ ९ ॥ ‘भगवान्‌की प्रेयसी पृथ्वीदेवी ! तुमने
ऐसी कौन-सी तपस्या की है कि श्रीकृष्णके चरणकमलों-
का स्पर्श प्राप्त करके तुम आनन्दसे भर रही हो और
तृण-लता आदिके रूपमें अपना रोमाञ्च प्रकट कर रही
हो ? तुम्हारा यह उल्लास-विलास श्रीकृष्णके चरणस्पर्शके
कारण है अथवा वामनावतारमें विश्वरूप धारण
करके उन्होंने तुम्हें जो नाया था, उसके कारण है ?
कहीं उनसे भी पहले यराहभगवान्‌के अङ्ग-सङ्गके कारण
तो तुम्हारी यह दशा नहीं हो रही है ? ॥ १० ॥ ‘अरी
सखी ! हरिनियों ! हमारे श्यामसुन्दरके अङ्ग-सङ्गसे
सुपमा-सौन्दर्यकी धारा बहती रहती है, वे कहीं अपनी

प्राणप्रियके साथ तुम्हारे मननोंको परमानन्दका दान
करते हुए इधरसे ही तो नहीं गये हैं ? देखो, देखो;
यहाँ कुलपति श्रीकृष्णकी कुन्दकलीकी मालाकी मनोहर
गन्ध आ रही है, जो उनकी परम प्रेयसीके अङ्ग-सङ्गसे
उगे हुए कुच-कुङ्कुमसे अनुरक्षित रहती है’ ॥ ११ ॥
‘तरुवो ! उनकी मावलीकी तुलसीमें ऐसी सुगन्ध है कि
उसकी गन्धके लोभी मतवाले भीरे प्रत्येक क्षण उसपर
मेंढराते रहते हैं । उनके एक हाथमें लीलाकमल होगा
और दूसरा हाथ अपनी प्रेयसीके कंधेपर रखते होंगे ।
हमारे प्यारे श्यामसुन्दर इधरसे विचरते हुए अवश्य गये
होंगे । जान पड़ता है, तुमलोग उन्हें प्रणाम करनेके
लिये ही लुके हो । परन्तु उन्होंने अपनी प्रेममयी
चितवनसे भी तुम्हारी बन्दनाका अभिनन्दन किया है
या नहीं ? ॥ १२ ॥ ‘अरी सखी ! इन लताओंसे पूछो ।
वे अपने पति वृक्षोंको भुजपाशमें बांधकर आच्छिन्न
किये हुए हैं, इससे क्या हुआ ! इनके शरीरमें जो
पुलक है, रोमाञ्च है, वह तो भगवान्‌के नखोंके
स्पर्शसे ही है । अहो ! इनका कैसा सौभाग्य
है ? ॥ १३ ॥

परीक्षित् । इसप्रकार मतवाली गोपियों प्रणामकरती
हुई भगवान्‌ श्रीकृष्णको ढूँढ़ते-ढूँढ़ते कातर हो रही थीं ।
अब और भी गाढ़ आवेश हो जानेके कारण वे भगवन्‌मय
होकर भगवान्‌की विभिन्न लीलाओंका अनुकरण करने
लगीं ॥ १४ ॥ एक पूतना बन गयी, तो दूसरी श्रीकृष्ण
बनकर उसका स्नान पीने लगी । कोई छफड़ा बन गयी,
तो किसीने बाळकृष्ण बनकर रोते हुए उसे पैरकी ठोकर
मारकर उलट दिया ॥ १५ ॥ कोई सखी बाळकृष्ण बनकर
बैठ गयी तो कोई तृणावर्त दैत्यका रूप धारण करके
उसे हर ले गयी । कोई गोपी पाँव घसीट-घसीटकर
कुटनोंके बल बकैये चढ़ने लगी और उस समय उसके
पायजेवर रुन्हुन-रुन्हुन बोलने लगे ॥ १६ ॥ एक वनी कृष्ण,
तो दूसरी वनी कल्याण, और बहुत-सी गोपियों ग्वालवालोंके
रूपमें हो गयीं । एक गोपी बन गयी कत्तासुर, तो
दूसरी वनी बकासुर । तब तो गोपियोंने अलग-अलग श्रीकृष्ण
बनकर कत्तासुर और बकासुर वनी हुई गोपियोंको मारनेकी
लीला की ॥ १७ ॥ जैसे श्रीकृष्ण वनमें करते थे, वैसे ही
एक गोपी बोंसुरी बजा-बजाकर दूर गये हुए पशुओंको

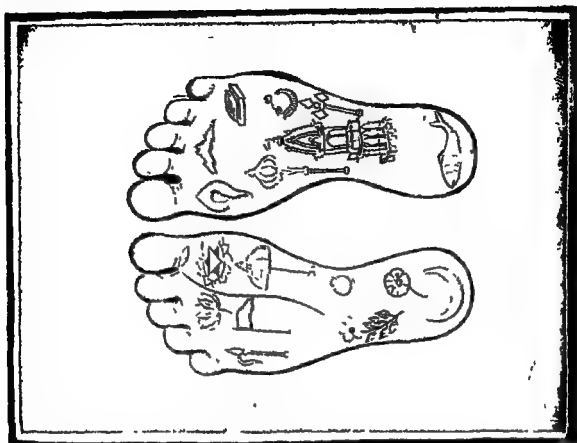
बुलानेका खेल खेलने लगी । तब दूसरी गोपियाँ 'बाह-बाह' करके उसकी प्रशंसा करने लगीं ॥ १८ ॥ एक गोपी अपनेको श्रीकृष्ण समझकर दूसरी सखीके गलेमें बाँह बाँधकर चलती और गोपियोंसे कहने लगी— 'मित्रो ! मैं श्रीकृष्ण हूँ । तुमलोग मेरी यह मनोहर चाल देखो' ॥ १९ ॥ कोई गोपी श्रीकृष्ण बनकर कहती— 'अरे ब्रजवासियो ! तुम बाँधी-पानीसे मत बरो । मैंने उससे बचनेका उपाय निकाल लिया है ।' ऐसा कहकर गोवर्धन-धारणका अनुकरण करती हुई वह अपनी ओढ़नी उठाकर ऊपर तान लेती ॥ २० ॥ परीक्षित । एक गोपी बनी कालिय नाग, तो दूसरी श्रीकृष्ण बनकर उसके सिरपर पैर रखकर चढ़ी-चढ़ी बोलने लगी— 'रे बृद्ध सौंप ! तू यहाँसे चला जा । मैं दुष्टोंका दमन करनेके लिये ही उत्पन्न हुआ हूँ' ॥ २१ ॥ इतनेमें ही एक गोपी बोली— 'अरे गाली ! देखो, कनमें बड़ी भयङ्कर आग लगी है । तुमलोग जन्दी-से-जन्दी अपनी आँखें मूँद लो, मैं अनायास ही तुमलोगोंकी रक्षा कर दूँगा' ॥ २२ ॥ एक गोपी यशोदा बनी और दूसरी बनी श्रीकृष्ण । यशोदाने झूलोंकी माछसे श्रीकृष्णको ऊछलमें बाँध दिया । अब वह श्रीकृष्ण बनी हुई सुन्दरी गोपी हाथोंसे मुँह धापकर भयभीत नकल करने लगी ॥ २३ ॥

परीक्षित । इस प्रकार खेल करते-करते गोपियाँ बुन्दावनके वृक्ष और कला आदिसे फिर भी श्रीकृष्णका पता पूछने लगीं । इसी समय उन्होंने एक स्थानपर भगवान्‌के चरणचिह्न देखे ॥ २४ ॥ वे आपसमें कहने लगीं— 'अवश्य ही ये चरणचिह्न उदारशिरोमणि नन्द-नन्दन श्यामसुन्दरके हैं; क्योंकि हममें भजा, कमल, वज्र, अङ्गुश और जी आदिके चिह्न स्पष्ट ही देख रहे हैं' ॥ २५ ॥ उन चरणचिह्नोंके द्वारा ब्रजकछम भगवान्‌को ईकृती हुई गोपियों आगे बढ़ी, तब उन्हें श्रीकृष्णके साथ किसी व्रजयुवतीके भी चरणचिह्न दीख पड़े । उन्हें देखकर वे व्याकुल हो गयीं और आपसमें कहने लगीं— ॥ २६ ॥ 'जैसे हयिनी अपने प्रियतम गजराजके साथ गयी हो, वैसे ही नन्दनन्दन श्यामसुन्दरके साथ उनके कचेपर हाथ रखकर चलनेवाली किस बड़-भागिनीके ये चरणचिह्न हैं ? ॥ २७ ॥ अवश्य ही सर्व-

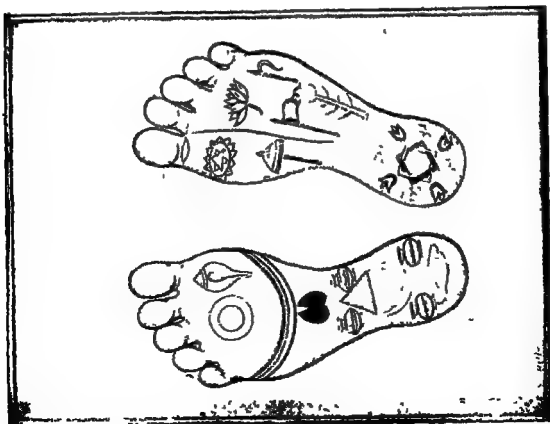
शक्तिमान् भगवान् श्रीकृष्णकी यह 'आराधिका' होगी । इसीलिये इसपर प्रसन्न होकर हमारे प्राणप्यारे श्याम सुन्दरने हमें छेद दिया है और इसे एकान्तमें ले गये हैं' ॥ २८ ॥ प्यारी सखियो ! भगवान् श्रीकृष्ण अपने चरण कमलसे जिस रजका स्पर्श कर देते हैं, वह धन्य हो जाती है, उसके अहोभाग्य हैं । क्योंकि ब्रह्मा, शङ्कर और लक्ष्मी आदि भी अपने अशुभ गष्ट करनेके लिये उस रजको अपने सिरपर धारण करते हैं' ॥ २९ ॥ 'अरी सखी ! चाहे कुछ भी हो—यह जो सखी हमारे सर्वत्र श्रीकृष्णको एकान्तमें ले जाकर अकेले ही उनकी अपर-सुधाका रस पी रही है, इस गोपीके उभरे हुए चरणचिह्न तो हमारे हृदयमें बड़ा ही खोभ उत्पन्न कर रहे हैं' ॥ ३० ॥ यहाँ उस गोपीके पैर नहीं दिखलायी देते । माछम होता है, यहाँ प्यारे श्यामसुन्दरने देखा होगा कि मेरी प्रेयसीके सुकुमार चरणकमलोंमें घासकी नोक गबती होगी; इसलिये उन्होंने उसे अपने कंचेपर चढ़ा लिया होगा ॥ ३१ ॥ सखियो ! यहाँ देखो, प्यारे श्रीकृष्णके चरणचिह्न अधिक गहरे—माछमें घँसे हुए हैं । इससे सूचित होता है कि यहाँ वे किसी भारी वस्तुको उठाकर चले हैं, उसीके जेम्मेसे उनके पैर जमीनमें घँस गये हैं । हो-न-हो यहाँ उस कसरीने अपनी प्रियतमाको अवश्य कंचेपर चढ़ाया होगा ॥ ३२ ॥ देखो-देखो, यहाँ परमप्रेमी ब्रजबल्लभने फूल चुननेके लिये अपनी प्रेयसीको नीचे उतार दिया है और यहाँ परम प्रियतम श्रीकृष्णने अपनी प्रेयसीके लिये फूल चुने हैं । उचक-उचककर फूल तोड़नेके कारण यहाँ उनके पंजे तो धरतीमें गड़े हुए हैं और एकीका पता ही नहीं है ॥ ३३ ॥ परम प्रेमी श्रीकृष्णने कामी पुरुषके समान यहाँ अपनी प्रेयसीके केश सँवारे हैं । देखो, अपने चुने हुए फूलोंको प्रेयसीकी 'चोटीमें सूँघनेके लिये वे यहाँ अवश्य ही बैठे रहे होंगे' ॥ ३४ ॥ परीक्षित ! भगवान् श्रीकृष्ण आत्माराम हैं । वे अपने-आपमें ही सन्तुष्ट और पूर्ण हैं । जब वे अवलम्ब हैं, उनमें दूसरा कोई है ही नहीं, तब उनमें कामकी कल्पना कैसे हो सकती है ? फिर भी उन्होंने कामियोंकी दीनता—जीपरवशता और ब्रिगोंकी कुटिलता दिखलाते हुए वहाँ उस गोपीके साथ एकान्तमें क्रीडा की थी—एक खेल रचा था ॥ ३५ ॥

इस प्रकार गोपियाँ मतवाली-सी होकर— अपनी सुध-बुध छोड़कर एक दूसरेको भगवान् श्रीकृष्णके चरणचिह्न

श्रीराधा-चरण



श्रीकृष्ण-चरण





तन्मयता

दिखाती हुई वन-वनमें भटक रही थी । इकर भगवान् श्रीकृष्ण दूसरी गोपियोंको वनमें छोड़कर जिस भाग्यवती गोपीको एकान्तमें ले गये थे, उसने समझ कि 'मैं ही समस्त गोपियोंमें श्रेष्ठ हूँ । इसीलिये तो हमारे प्यारे श्रीकृष्ण दूसरी गोपियोंको छोड़कर, जो उन्हें इतना चाहती है, केवल मेरा ही मान करते हैं । मुझे ही आदर दे रहे हैं ॥ ३६-३७ ॥ भगवान् श्रीकृष्ण ब्रह्म और शङ्करके भी शासक हैं । वह गोपी वनमें जाकर अपने प्रेम और सौभाग्यके मदसे मतवाली हो गयी और उन्होंने श्रीकृष्णसे कहने लगी—प्यारे ! मुझसे अब तो और नहीं चला आता । मेरे सुकुमार पौत्र तक गये हैं । अब तुम जहाँ चला चाहो, मुझे अपने कंचेपर चढ़ाकर ले चलो' ॥ ३८ ॥ अपनी प्रियतमाकी यह बात सुनकर श्यामसुन्दरने कहा—'अच्छ प्यारी ! तुम अब मेरे कंचेपर चढ़ लो ।' यह सुनकर वह गोपी ज्यों ही उनके कंचेपर चढ़ने चली, त्यों ही श्रीकृष्ण अन्तर्धान हो गये और वह सौभाग्यवती गोपी रोने-पछताने लगी ॥ ३९ ॥ 'हा नाथ ! हा रमण ! हा प्रेष्ठ ! हा भगामुख ! तुम कहाँ हो ! कहाँ हो ! मेरे सखा ! मैं तुम्हारी दीन-हीन दासी हूँ । शीघ्र ही मुझे अपने सामिप्यका अनुभव कराओ, मुझे दर्शन दो' ॥ ४० ॥ परीक्षित ! गोपियों भगवान्के चरणचिह्नोंके सहारे उनके जाने-का मार्ग ढूँढ़ती-ढूँढ़ती वहाँ जा पहुँचीं । योड़ी दूरसे ही उन्होंने देखा कि उनकी सखी अपने प्रियतमके

वियोगसे दुखी होकर खचेत हो गयी है ॥ ४१ ॥ जब उन्होंने उसे जगया, तब उसने भगवान् श्रीकृष्णसे उसे जो प्यार और सम्मान प्राप्त हुआ था, वह उनको सुनाया । उसने यह भी कहा कि मैंने कुटिलतावश उनका अपमान किया, इसीसे वे अन्तर्धान हो गये ।' उसकी बात सुनकर गोपियोंके आश्चर्यकी सीमा न रही ॥ ४२ ॥

इसके बाद वनमें जहाँतक चन्द्रदेवकी चाँदनी छिंटक रही थी, वहाँतक वे उन्हें ढूँढ़ती हुईं गयीं । परन्तु जब उन्होंने देखा कि आगे क्या अव्यकार है—घोर जंगल है—हम ढूँढ़ती जायँगी तो श्रीकृष्ण और भी उसके बंदर कुस जायँगे, तब वे उधरसे छौट आयी ॥ ४३ ॥ परीक्षित ! गोपियोंका मन श्रीकृष्णमय हो गया था । उनकी वाणीसे कृष्णचर्चके अतिरिक्त और कोई बात नहीं निकलती थी । उनके शरीरसे केवल श्रीकृष्णके लिये और केवल श्रीकृष्णकी चेष्टाएँ ही होती थी । कहाँतक कहूँ ; उनका रोम-रोम, उनकी आत्मा श्रीकृष्णमय हो रही थी । वे केवल उनके गुणों और लीलाओंका ही गान कर रही थीं और उनमें इतनी तन्मय हो रही थी कि उन्हें अपने शरीरकी भी धुब नहीं थी, फिर बरकी याद कौन करता ! ॥ ४४ ॥ गोपियोंका रोम-रोम इस बातकी प्रतीक्षा और आकाङ्क्षा कर रहा था कि जल्दी-से-जल्दी श्रीकृष्ण आयें । श्रीकृष्णकी ही भावनामें डूबी हुई गोपियाँ यमुनाजीके पावन पुलिनपर—रमणरेतीमें छौट आयी और एक साथ मिलकर श्रीकृष्णके गुणोंका गान करने लगी ॥ ४५ ॥

इकतीसवाँ अध्याय

गोपिकागीत

गोपियाँ विपदावेद्यमें माने लगीं—प्यारे ! तुम्हारे जन्मके कारण वैकुण्ठ आदि लोकोंसे भी ब्रजकी महिमा बढ़ गयी है । तभी तो सौन्दर्य और मृदुलताकी देवी लक्ष्मीजी अपना निवासस्थान वैकुण्ठ छोड़कर यहाँ नित्य-निरन्तर निवास करने लगी है, इसकी सेवा करने लगी हैं । परन्तु प्रियतम ! देखो तुम्हारी गोपियाँ जिन्होंने तुम्हारे चरणोंमें ही अपने प्राण समर्पित कर रखे हैं, वन-वनमें भटककर तुम्हें ढूँढ़ रही हैं ॥ १ ॥ हमारे प्रेमपूर्ण हृदयके सामी ! हम तुम्हारी बिना मोलकी दासी

हैं । तुम शरत्कालीन जलशयमें सुन्दर-से-सुन्दर सरसिज-की कर्णिकाके सौन्दर्यको चुरानेवाले नेत्रोंसे हमें घायल कर चुके हो । हमारे मनोरथ पूर्ण करनेवाले प्राणेश्वर ! क्या नेत्रोंसे मारना वह नहीं है ? अबोंसे हत्या करना ही वह है ! ॥ २ ॥ पुरुषशिरोमणे ! यमुनाजीके विषैले जलसे होनेवाली मृत्यु अजगरके रूपमें खानेवाले अघासुर, रुद्रकी बर्षा, औषी, बिजली, दावानल, वृषभासुर और ज्योमासुर आदिसे एवं मिन-मिन अवसरोपर सब प्रकारके भयोंसे तुमने बार-बार हमलोगोंकी रक्षा की है ॥ ३ ॥

तुम केवल यशोदानन्दन ही नहीं हो; समस्त शरीरधारियों-
के हृदयमें रहनेवाले उनके साक्षी हो, अन्तर्धामी हो ।
सखे ! ब्रह्माजीकी प्रार्थनासे विश्वकी रक्षा करनेके लिये
तुम यदुर्वशमें अवतीर्ण हुए हो ॥ ४ ॥

अपने प्रेमियोंकी अभिलाषा पूर्ण करनेवालोंमें
अप्राण्य यदुर्वशशिरोमणे ! जो ज्ञेय जन्य-मृत्युरूप
संसारके चक्रसे ढरकर तुम्हारे चरणोंकी शरण ग्रहण
करते हैं, उन्हें तुम्हारे करकमल अपनी छत्रछायामें
लेकर अभय कर देते हैं । हमारे प्रियतम ! सबकी
छाजसा-अभिलाषाओंको पूर्ण करनेवाला बही करकमल,
जिससे तुमने छस्मीजीका हाथ पकड़ा है, हमारे सिरपर
रख दो ॥ ५ ॥ ब्रजवासियोंके दुःख दूर करनेवाले वीर-
शिरोमणि श्यामसुन्दर ! तुम्हारी मन्द-मन्द मुसकानकी
एक उज्ज्वल रेखा ही तुम्हारे प्रेमीजनोंके सारे मान-
मदकी चूर-चूर कर देनेके लिये पर्याप्त है । हमारे प्यारे
सखा ! हमसे कठो मत, प्रेम करो । हम तो तुम्हारी
दासी हैं, तुम्हारे चरणोंपर निष्ठावर हैं । हम अवस्थाओंको
अपना वह परम सुन्दर सौंका-सौंका मुखकमल
दिखलाओ ॥ ६ ॥ तुम्हारे चरणकमल शरणागत प्राणियोंके
सारे पापोंको नष्ट कर देते हैं । वे समस्त सौन्दर्य,
माधुर्यकी खान हैं और स्वयं छस्मीजी उनकी सेवा करती
रहती हैं । तुम उन्हीं चरणोंसे हमारे बड़ोंके पीछे-पीछे
चलते हो और हमारे लिये उन्हें सौंपके फणोंतकपर
रखनेमें भी तुमने सङ्कोच नहीं किया । हमारा हृदय
तुम्हारी विरह-व्यथाकी आगसे जल रहा है, तुम्हारी
मिलनकी आकाङ्क्षा हमें सता रही है । तुम अपने वे
ही चरण हमारे वक्षःस्थलपर रखकर हमारे हृदयकी
ज्वालाको शान्त कर दो ॥ ७ ॥ कमलजनक ! तुम्हारी
बाणी कितनी मधुर है । उसका एक-एक पद, एक-एक
शब्द, एक-एक अक्षर मधुरातिमधुर है । बड़े-बड़े
विद्वान् उसमें रम जाते हैं । उसपर अपना सर्वस्व
निष्ठावर कर देते हैं । तुम्हारी उसी बाणीका रसाखादन
करके तुम्हारी आज्ञाकारिणी दासी गोपियों मोहित हो
रही हैं । दामवीर ! अब तुम अपना दिव्य अधृतसे भी
मधुर अक्षर-रस पिटाकर हमें जीवन-दान दो, छात्र
दो ॥ ८ ॥ प्रभो ! तुम्हारी जीलकथा भी अमृतस्वरूप
है । विरहसे सताये हुए जोगोंके लिये तो वह जीवन-

सर्वस्व ही है । बड़े-बड़े ज्ञानी महात्माओं—भक्त
कवियोंने उसका गान किया है, वह सारे पाप-ताप तो
मिटती ही है, साथ ही भ्रवणमात्रसे परम मङ्गल—
परम कल्याणका दान भी करती है । वह परम सुन्दर,
परम मधुर और बद्धत निस्तृत भी है । जो तुम्हारी उस
जील-कथाका गान करते हैं, वास्तवमें भूलोकमें वे ही
सबसे बड़े दाता हैं ॥ ९ ॥ प्यारे ! एक दिन वह था, जब
तुम्हारी प्रेममयी हँसी और चितवन तथा तुम्हारी तरह-
तरहकी क्रीडाओंका ध्यान करके हम आनन्दमें मग्न हो
जाया करती थीं । उनका ध्यान भी परम मङ्गलदायक
है, उसके बाद तुम मिले । तुमने एकान्तमें हृदयस्पर्शी
ठिठोहियों कीं, प्रेमकी बातें कहीं । हमारे कपटी मित्र !
अब वे सब बातें याद आकर हमारे मनको क्षुब्ध किये
देती हैं ॥ १० ॥

हमारे प्यारे सखी ! तुम्हारे चरण कमलसे भी
सुकोमल और सुन्दर हैं । जब तुम गौओंको चरणोंके
लिये ब्रजसे निकलते हो तब यह सोचकर कि तुम्हारे
वे युगल चरण कंकड़, तिनके और कुत्ता-कटि गड जानेसे
कष्ट पाते होंगे, हमारा मन बेचैन हो जाता है । हमें बड़ा
दुःख होता है ॥ ११ ॥ दिन ढलनेपर जब तुम वनसे
घर लौटते हो, तो हम देखती हैं कि तुम्हारे मुखकमल-
पर नीली-नीली अलकें छटक रही हैं और गौओंके खुरसे
उड़-उड़कर बनी धूल पड़ी हुई है । हमारे वीर प्रियतम !
तुम अपना वह सौन्दर्य हमें दिखा-दिखाकर हमारे हृदयमें
मिलनकी आकाङ्क्षा—प्रेम उत्पन्न करते हो ॥ १२ ॥
प्रियतम ! एकमात्र तुम्हीं हमारे सारे दुःखोंको मिटाने-
वाले हो । तुम्हारे चरणकमल शरणागत मत्तोंकी समस्त
अभिलाषाओंको पूर्ण करनेवाले हैं । स्वयं छस्मीजी उनकी
सेवा करती हैं और पृथ्वीके तो वे भूषण ही हैं ।
आपत्तिके समय एकमात्र उन्हींका चिन्तन करना उचित
है, जिससे सारी आपत्तियाँ कट जाती हैं । कुञ्ज-
विहारी ! तुम अपने वे परम कल्याणस्वरूप चरणकमल
हमारे वक्षःस्थलपर रखकर हृदयकी व्यथा शान्त कर
दो ॥ १३ ॥ वीरशिरोमणे ! तुम्हारा अवश्राप्यत मिलनके
सुखको, आकाङ्क्षाको बढ़ानेवाला है । वह विरहजन्य
समस्त शोक-सन्तापको नष्ट कर देता है । यह गानेवाली

बाँसुरी मलीभौति उसे चूमती रहती है । बिन्दुहोने एक बार उसे पी लिया, उन लोगोंको फिर दूसरों और दूसरोंकी आसक्तियोंका स्मरण भी नहीं होता । हमारे वीर । अपना बही अधराभूत हमें क्लिष्ट करके, पिछाओ ॥ १४ ॥ प्यारे ! दिनके समय जब तुम वनमें बिहार करनेके लिये चले जाते हो, तब तुम्हें देखे बिना हमारे लिये एक-एक क्षण युगके समान हो जाता है और जब तुम सन्ध्याके समय लौटते हो तथा घुँघराकी अलकोंसे युक्त तुम्हारा परम सुन्दर मुखारविन्द हम देखती हैं, उस समय पलकोंका गिरना हमारे लिये भार हो जाता है और ऐसा जान पड़ता है कि इन नेत्रोंकी पलकोंकी बनानेवाला विधाता मूर्ख है ॥ १५ ॥ प्यारे श्यामसुन्दर ! हम अपने पति-पुत्र, भाई-बन्धु और कुछ-परिवारका त्याग कर, उनकी इच्छा और आज्ञाओंका उल्लङ्घन करके तुम्हारे पास आयी हैं । हम तुम्हारी एक-एक चाल जानती हैं, सङ्केत समझती हैं और तुम्हारे मधुर गानकी गति समझकर, उसीसे मोहित होकर यहाँ आयी हैं । कपटी ! इस प्रकार रात्रिके समय आयी हुई युवतियोंको तुम्हारे सिवा और कौन छोड़ सकता है ॥ १६ ॥ प्यारे ! एकान्तमें तुम मित्रकी आकाङ्क्षा, प्रेम-भावको जगनेवाली बातें करते थे ।

ठिठोकी करके हमें लेहते थे । तुम प्रेमभरी चितवनसे हमारी ओर देखकर मुसकरा देते थे और हम देखती थीं तुम्हारा वह निःशब्द वक्षःस्थल, जिसपर लक्ष्मीजी नित्य-निरन्तर निवास करती हैं । तबसे अबतक निरन्तर हमारी आलस्य बढ़ती ही जा रही है और हमारा मन अधिकाधिक मुग्ध होता जा रहा है ॥ १७ ॥ प्यारे ! तुम्हारी यह अमिव्यक्ति ब्रज-वनवासियोंके सम्पूर्ण दुःख-तापको नाश करनेवाली और विश्वास पूर्ण मङ्गल करनेके लिये है । हमारा हृदय तुम्हारे प्रति आलसासे भर रहा है । कुछ थोड़ी-सी ऐसी ओषधि दो, जो तुम्हारे निजजननोंके हृदयरोगको सर्वथा निर्मूल कर दे ॥ १८ ॥ तुम्हारे चरण कमलसे भी सुकुमार हैं । उन्हें हम अपने कठोर स्तनोंपर भी बरते-बरते बहुत धीरेसे रखती हैं कि कहीं उन्हें चोट न लग जाय । ऊन्हीं चरणोंसे तुम रात्रिके समय घोर जंगलमें छिये-छिये भटक रहे हो ! क्या कंकड़, पत्थर आदिकी चोट लगनेसे उनमें पीड़ा नहीं होती ? हमें तो इसकी सम्भावनामात्रसे ही चक्कर आ रहा है । हम अचेत होती जा रही हैं । श्रीकृष्ण ! श्यामसुन्दर ! प्राणनाथ ! हमारा जीवन तुम्हारे लिये है, हम तुम्हारे लिये जी रही हैं, हम तुम्हारी हैं ॥ १९ ॥

वत्सीसौ अध्याय

भगवान्का प्रकट होकर गोपियोंकी साल्पना देना

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित ! भगवान्की प्यारी गोपियों विरहके आवेशमें इस प्रकार भौंति-भौंतिसे गाने और प्रणय करने लगीं । अपने कृष्ण प्यारेके दर्शनकी आलसासे वे अपनेको रोक न सकीं, करुणा-जनक धुमधुर स्वरसे फट-फटकर रोने लगीं ॥ १ ॥ ठीक उसी समय उनके बीचोबीच भगवान् श्रीकृष्ण प्रकट हो गये । उनका मुखकमल मन्द-मन्द मुसकानसे खिल हुआ था । गलेमें वनमाला थी, पीताम्बर धारण किये हुए थे । उनका यह रूप क्या था, सबके मनको मय ढालनेवाले कामदेवके मनको भी मगनेवाला था ॥ २ ॥ कोटि-कोटि कामसे भी सुन्दर परम मनोहर प्राण-

बल्लभ श्यामसुन्दरको आया देख गोपियोंके नेत्र प्रेम और आनन्दसे खिल उठे । वे सब-की-सब एक ही साथ इस प्रकार उठ खड़ी हुईं, मानो प्राणहीन शरीरमें दिव्य प्राणोंका सञ्चार हो गया हो, शरीरके एक-एक अङ्गमें नवीन चेतना—नूतन रक्षति आ गयी हो ॥ ३ ॥ एक गोपीने बड़े प्रेम और आनन्दसे श्रीकृष्णके करकमलको अपने दोनों हाथोंमें ले लिया और वह धीरे-धीरे उसे सहजने लगी । दूसरी गोपीने उनके चन्दनचर्चित भुजदण्डको अपने कंधेपर रख लिया ॥ ४ ॥ तीसरी सुन्दरीने भगवान्का चबाया हुआ पान अपने हाथोंमें ले लिया । चौथी गोपी, जिसके हृदयमें

भगवान्‌के बिरहसे बड़ी जटन हो रही थी, बैठ गयी और उनके चरणकमलको अपने वक्षःस्थलपर रख लिया ॥ ५ ॥ पाँचवीं गोपी प्रणयकोपसे विह्वल होकर, भौंई चढ़ाकर, दौंतेसे होट दबाकर अपने कट्याश-भागसे बीधती हुई उनकी ओर तानने लगी ॥ ६ ॥ छठी गोपी अपने निर्निमेष मनसे उनके मुखकमलका मकरन्द-रस पान करने लगी । परन्तु जैसे संत पुरुष भगवान्‌के चरणोंके दर्शनसे कभी तृप्त नहीं होते, वैसे ही वह उनकी मुख-माधुरीका निरन्तर पान करते रहनेपर भी तृप्त नहीं होती थी ॥ ७ ॥ सातवीं गोपी नेत्रोंके मार्गसे भगवान्‌को अपने हृदयमें ले गयी और फिर उसने आँखें बंद कर लीं । अब मन-ही-मन भगवान्‌का आच्छिन्न करनेसे उसका शरीर पुलकित हो गया । रोम-रोम खिल उठ और वह सिद्ध योगियोंके समान परमानन्दमें मग्न हो गयी ॥ ८ ॥ परीक्षित ! जैसे मुमुक्षुजन परम ज्ञानी संत पुरुषको प्राप्त करके संसारकी पीड़ासे मुक्त हो जाते हैं, वैसे ही सभी गोपियोंको भगवान्‌ श्रीकृष्णके दर्शनसे परम आनन्द और परम उल्लास प्राप्त हुआ । उनके बिरहके कारण गोपियोंको जो दुःख हुआ था, उससे वे मुक्त हो गयीं और शान्तिके समुद्रमें डूबने-उतराने लगीं ॥ ९ ॥ परीक्षित ! यों तो भगवान्‌ श्रीकृष्ण अद्भुत और एकरस हैं, उनका सौन्दर्य और माधुर्य निरतिशय है; फिर भी बिरह-व्यथासे मुक्त हुई गोपियोंके बीचमें उनकी शोभा और भी बढ़ गयी । ठीक वैसे ही, जैसे परमेश्वर अपने नित्य ज्ञान, बल आदि शक्तियोंसे सेवित हीनेपर और भी शोभायमान होता है ॥ १० ॥

इसके बाद भगवान्‌ श्रीकृष्णने उन ब्रजसुन्दरियोंको साथ लेकर यमुनाजीके पुलिनमें प्रवेश किया । उस समय खिले हुए कुन्द और मन्दारके पुष्पोंकी सुरभि लेकर बड़ी ही शीतल और सुगन्धित मन्द-मन्द वायु चल रही थी और उसकी गहँकाते मतबले होकर मीरे श्वर-उपर मँडरा रहे थे ॥ ११ ॥ शरत्पूर्णिमाके चन्द्रमाकी चाँदनी अपनी निराखी ही छत्र दिखल रही थी । उसके कारण रात्रिके अन्धकारका तो कहीं पता ही न था, सर्वत्र आनन्द-मञ्जुलका ही साक्षात्त्व छाया

था । वह पुलिनी क्या था, यमुनाजीने स्वयं अपनी लहरोंके हाथों भगवान्‌की लीलाके लिये सुकोमल बाहुकावा रंगमञ्च बना रक्खा था ॥ १२ ॥ परीक्षित ! भगवान्‌ श्रीकृष्णके दर्शनसे गोपियोंके हृदयमें इतने आनन्द और इतने रसका उल्लास हुआ कि उनके हृदयकी सारी आवि-व्याधि मिट गयी । जैसे कर्मकाण्डकी श्रुतियाँ उसका वर्णन करते-करते अन्तमें ज्ञानकाण्डका प्रतिपादन करने लगती हैं और फिर वे समस्त मनोरथोंसे ऊपर उठ जाती हैं, कृतकृत्य हो जाती हैं—वैसे ही गोपियों भी पूर्णकाम हो गयीं । अब उन्होंने अपने वक्षःस्थलपर लगी हुई रोली-केसरसे विहित ओढ़नीको अपने परम प्यारे सुहृद् श्रीकृष्णके विराजनेके लिये निज दिया ॥ १३ ॥ बड़े-बड़े योगेश्वर अपने योग-साधनसे पवित्र किये हुए हृदयमें जिनके लिये आसनकी कल्पना करते रहते हैं, किन्तु फिर भी अपने हृदय-सिंहासनपर बिठा नहीं पाते, वही सर्वशक्तिमान् भगवान् यमुनाजीकी देतीमें गोपियोंकी ओढ़नीपर बैठ गये । सहस्र-सहस्र गोपियोंके बीचमें उनसे पूजित होकर भगवान्‌ बड़े ही शोभायमान हो रहे थे । परीक्षित ! तीनों लोकोंमें—तीनों कालोंमें जितना भी सौन्दर्य प्रकाशित होता है, वह सब तो भगवान्‌के विन्दुमात्र सौन्दर्यका आभासभर है । वे उसके एकमात्र आश्रय हैं ॥ १४ ॥ भगवान्‌ श्रीकृष्ण अपने इस अलौकिक सौन्दर्यके द्वारा उनके प्रेम और आकाङ्क्षाको और भी उमाव रहे थे । गोपियोंने अपनी मन्द-मन्द सुसकान, निवासपूर्ण चितवन और तिरछी मौहोंसे उनका सम्मान किया । किसीने उनके चरणकमलोंको अपनी गोदमें रख लिया, तो किसीने उनके करकमलोंको । वे उनके संपर्कका आनन्द लेती हुई कभी-कभी कष्ट उठती थीं—कितना सुकुमार है, कितना मधुर है । इसके बाद श्रीकृष्णके छिप जानेसे मन-ही-मन तनिक रुठकर उनके मुँहसे ही उनका दोष खीकार करनेके लिये वे कहने लगीं— ॥ १५ ॥

गोपियोंने कहा—नटनागर ! कुछ लोग तो ऐसे होते हैं, जो प्रेम करनेवालोंसे ही प्रेम करते हैं और कुछ लोग प्रेम न करनेवालोंसे भी प्रेम करते हैं । परन्तु

कोई-कोई दोनोंसे ही प्रेम नहीं करते । प्यारे । इन तीनोंमें तुम्हें कौन-सा अच्छा लगता है ? ॥ १६ ॥

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—मेरी प्रिय सखियो ! जो प्रेम करनेपर प्रेम करते हैं, उनका तो सारा उद्योग स्वार्थको लेकर है । लेन-देनग्राह्य है । न तो उनमें सौहार्द है और न तो धर्म । उनका प्रेम केवल स्वार्थके लिये ही है; इसके अतिरिक्त उनका और कोई प्रयोजन नहीं है ॥ १७ ॥ सुन्दरियो ! जो लोग प्रेम न करने-वालेसे भी प्रेम करते हैं—जैसे स्वभावसे ही कल्याणशील सज्जन और माता-पिता—उनका हृदय सौहार्दसे, हितैचिन्तासे भरा रहता है और सच पूछे, तो उनके व्यवहारमें निष्कल सत्य एवं पूर्ण धर्म भी है ॥ १८ ॥ कुछ लोग ऐसे होते हैं, जो प्रेम करनेवालोंसे भी प्रेम नहीं करते, न प्रेम करनेवालोंका तो उनके सामने कोई प्रश्न ही नहीं है । ऐसे लोग चार प्रकारके होते हैं । एक तो वे, जो अपने स्वरूपमें ही मस्त रहते हैं—जिनकी दृष्टिमें कभी हित भासता ही नहीं । दूसरे वे, जिन्हें हित तो भासता है, परन्तु जो कृतकृत्य हो चुके हैं; उनका किसीसे कोई प्रयोजन ही नहीं है । तीसरे वे हैं, जो जानते ही नहीं कि हमसे कौन प्रेम करता है; और चौथे वे हैं, जो जान-बूझकर अपना हित करनेवाले परोपकारी गुरुकृत्य लोगोंसे भी द्रोह करते हैं, उनको सताना चाहते हैं ॥ १९ ॥ गोपियो ! मैं तो प्रेम करनेवालोंसे भी प्रेमका

वैसा व्यवहार नहीं करता, जैसा करना चाहिये । मैं ऐसा केवल इसीलिये करता हूँ कि उनकी चित्तवृत्ति और भी मुझमें लगे, निरन्तर लगी ही रहे । जैसे निर्वन पुरुषको कभी बहुत-सा धन मिल जाय और फिर खो जाय तो उसका हृदय खोये हुए धनकी चिन्तासे भर जाता है, वैसे ही मैं भी मिल-मिलकर छिप-छिप जाता हूँ ॥ २० ॥ गोपियो ! इसमें सन्देह नहीं कि तुम लोगोंने मेरे लिये लोक-मर्यादा, वेदमार्ग और अपने सगे सम्बन्धियोंको भी छोड़ दिया है । ऐसी स्थितिमें तुम्हारी मनोवृत्ति और कहीं न जाय, अपने सौन्दर्य और सुहागकी चिन्ता न करने लगे, मुझमें ही लगी रहे—इसीलिये परोक्षरूपसे तुम लोगोंसे प्रेम करता हुआ ही मैं छिप गया था । इसलिये तुमलोग मेरे प्रेममें दोष मत निकालो । तुम सब मेरी प्यारी हो और मैं तुम्हारा प्यारा हूँ ॥ २१ ॥ मेरी प्यारी गोपियो ! तुमने मेरे लिये घर-गृहस्त्रीकी उन वैधियोंको तोड़ बाँध है, जिन्हें बड़े-बड़े योगी-यति भी नहीं तोड़ पाते । मुझसे तुम्हारा यह मित्रन, यह आत्मिक संयोग सर्वथा निर्मल और सर्वथा निर्दोष है । यदि मैं अमर शरीरसे—अमर जीवनसे अनन्त कालतक तुम्हारे प्रेम, सेवा और त्यागका बदला चुकाना चाहूँ तो भी नहीं चुका सकता । मैं जन्म-जन्मके लिये तुम्हारा ऋणी हूँ । तुम अपने सौम्य स्वभावसे, प्रेमसे मुझे उन्नत कर सकती हो । परन्तु मैं तो तुम्हारा ऋणी ही हूँ ॥ २२ ॥

तैत्तिरीयों अध्याय

महाराजस

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—राजन् ! गोपियों भगवान् की इस प्रकार प्रेमसरी सुमधुर वाणी सुनकर जो कुछ विरहजन्य ताप शेष था, उससे भी मुक्त हो गयीं और सौन्दर्य-माधुर्यनिधि प्राणप्यारेके अङ्ग-सङ्गसे सफल-मनोरथ हो गयीं ॥ १ ॥ भगवान् श्रीकृष्णकी प्रेयसी और सेविका गोपियों एक-दूसरेकी बाँह-में बाँह ढाले खड़ी थी । उन स्त्रीलोकोंके साथ यमुनाजीके पुच्छिनपर भगवान्ने अपनी रसमयी रासकीड़ा प्रारम्भ की ॥ २ ॥ सम्पूर्ण योगोंके स्वामी भगवान् श्रीकृष्ण दो-दो गोपियोंके बीचमे प्रकट हो गये और उनके गलेमें अपना हाथ ढाल दिया । इस प्रकार एक गोपी और एक श्रीकृष्ण, यही

क्रम था । सभी गोपियाँ ऐसा अनुभव करती थीं कि हमारे प्यारे तो हमारे ही पास हैं । इस प्रकार सहस्र-सहस्र गोपियोंसे शोभायमान भगवान् श्रीकृष्णका दिव्य रासोत्सव प्रारम्भ हुआ । उस समय आकाशमें शत-शत विभक्तियोंकी मीढ़ लगी गयी । सभी देवता अपनी-अपनी पत्नियोंके साथ वहाँ आ पहुँचे । रासोत्सवके दर्शनकी लालसासे, उत्सुकतासे उनका मन उनके वशमे नहीं था ॥ ३-४ ॥ स्वर्गकी दिव्य द्रुमुर्मियों अपने-आप बज उठी । स्वर्गाय पुष्पोंकी वर्षा होने लगी । गन्धर्वगण अपनी-अपनी पत्नियोंके साथ भगवान्के निर्मल यशका गान करने लगे ॥ ५ ॥ रासमण्डलमें सभी गोपियाँ अपने

प्रियतम श्यामसुन्दरके साथ नृत्य करने लगीं । उनकी कलाइयोंके कंगन, पैरोंके पायजेब और कारधनीके छोटे-छोटे घुँघरू एक साथ बज उठे । अलङ्कार गोपियों थीं, इसलिये यह मधुर ध्वनि भी बड़े ही जोरझोर हो रही थी ॥ ६ ॥ यमुनाजीकी रमणरेतीपर ब्रजसुन्दरियोंके बीचमें भगवान् श्रीकृष्णकी बड़ी अनोखी शोभा हुई । ऐसा जान पड़ता था, मानो अगणित पीली-पीली दमकती हुई सुवर्ण-मणियोंके बीचमें ज्योतिर्मयी नीलमणि चमक रही हो ॥ ७ ॥ उसके समय गोपियों तरह-तरहसे ठुसक-ठुसककर अपने पोंब कमी आगे बढ़ातीं और कमी पीछे हटा लेतीं । कमी गतिके अनुसार धीरे-धीरे पोंब रखतीं, तो कमी बड़े वेगसे; कमी चाककी तरह घूम जातीं, कमी अपने हाथ उठा-उठाकर भाव बतातीं, तो कमी विभिन्न प्रकारसे उन्हे चमकातीं । कमी बड़े कलापूर्ण ढंगसे सुसकारातीं, तो कमी गीँहें मटकतीं । नाचते-नाचते उनकी पतली कमर ऐसी लचक जाती थी; मानो टूट गयी हो । झुकने, बैठने, उठने और चलनेकी फुर्तसे उनके स्तन हिल रहे थे तथा कब उभे जा रहे थे । कानोंके कुण्डल हिल-हिलकर कपोलोंपर आ जाते थे । नाचनेके परिश्रमसे उनके मुँहपर पसीनेकी बूँदें झलकने लगी थीं । केशोंकी चोटियाँ कुछ ढीली पड़ गयी थीं । नीचीकी गोटें खुली जा रही थीं । इस प्रकार नटवर नन्दलालकी परम प्रेयसी गोपियों उनके साथ गा-गाकर नाच रही थीं । परीक्षित ! उस समय ऐसा जान पड़ता था, मानो बहुत-से श्रीकृष्ण तो सोंवले-सोंवले मेघ-मण्डल हैं और उनके बीच-बीचमें चमकती हुई गोरी गोपियों बिजली हैं । उनकी शोभा असीम थी ॥ ८ ॥ गोपियोंका जीवन भगवान्की रति है, प्रेम है । वे श्रीकृष्णसे सटकर नाचते-नाचते ऊँचे खरसे मधुर गान कर रही थीं । श्रीकृष्णका संस्पर्श पा-पाकर और भी आनन्दमग्न हो रही थीं । उनके राग-रागिनियोंसे पूर्ण गानसे यह सारा जगद् अब भी गूँज रहा है ॥ ९ ॥ कोई गोपी भगवान्के साथ—उनके खरमें खर मिलाकर गा रही थी । वह श्रीकृष्णके खरकी वपेक्षा और भी ऊँचे खरसे राग अलापने लगी । उसके बिलक्षण और उच्चम खरकी सुनकर वे बहुत ही प्रसन्न हुए और बाह-बाह करके उसकी प्रशंसा करने लगे । उड़ी रागको एक

दूसरी सखीने छुपदमें गाया । उसका भी भगवान्ने बहुत सम्मान किया ॥ १० ॥ एक गोपी नृत्य करते-करते थक गयी । उसकी कलाइयोंसे कंगन और चोटियोंसे नेत्रके फूल खिसकने लगे । तब उसने अपने बगलमें ही खड़े मुखीमनोहर श्यामसुन्दरके कंधेको अपनी बाँहसे कसकर पकड़ लिया ॥ ११ ॥ भगवान् श्रीकृष्णने अपना एक हाथ दूसरी गोपीके कंधेपर रख रक्खा था । वह खभावसे तो कमलके समान सुगन्धसे युक्त था ही, उसपर बड़ा सुगन्धित चन्दनका लेप भी था । उसकी सुगन्धसे वह गोपी पुलकित हो गयी, उसका रोम रोम खिल उठा । उसने झटसे उसे चूम लिया ॥ १२ ॥ एक गोपी नृत्य कर रही थी । नाचनेके कारण उसके कुण्डल हिल रहे थे, उनकी छत्रसे उसके कपोल और भी चमक रहे थे । उसने अपने कपोलोंको भगवान् श्रीकृष्णके कपोलसे सटा दिया और भगवान्ने उसके मुँहमें अपना चबाया हुआ पान दे दिया ॥ १३ ॥ कोई गोपी नृपुत्र और करधनीके घुँघरूओंको झनकाती हुई नाच और गा रही थी । वह जब बहुत थक गयी, तब उसने अपने बगलमें ही खड़े श्यामसुन्दरके शीतल करकमलको अपने दोनों स्तनोंपर रख लिया ॥ १४ ॥

परीक्षित ! गोपियोंका सौभाग्य लक्ष्मीजीसे भी बढ़कर है । लक्ष्मीजीके परम प्रियतम एकान्त-वृद्धभ भगवान् श्रीकृष्णको अपने परम प्रियतमके रूपमें पाकर गोपियों गान करती हुई उनके साथ विहार करने लगीं । भगवान् श्रीकृष्णने उनके गलोंको अपने मुनपाशमें बाँध रक्खा था, उस समय गोपियोंकी बड़ी अपूर्व शोभा थी ॥ १५ ॥ उनके कानोंमें कमलके कुण्डल शोभायमान थे । घुँघराळी अलङ्के कपोलोंपर लटक रही थीं । पसीनेकी बूँदें झलकनेसे उनके मुखकी छटा निराळी ही हो गयी थी । वे रासमण्डलमें भगवान् श्रीकृष्णके साथ नृत्य कर रही थीं । उनके कंगन और पायजेबोंके बाजे बज रहे थे । खीरे उनके ताल-धुरमें अपना धुर मिलाकर गा रहे थे । और उनके नङ्गों और चोटियोंमें गुँथे हुए फूल गिरते जा रहे थे ॥ १६ ॥ परीक्षित ! जैसे नन्हा सा शिशु निर्विकारभावसे अपनी परछाईके साथ खेळता है, वैसे ही रमारमण भगवान् श्रीकृष्ण कभी उन्हें अपने हृदयसे छापा लेते, कभी

हाथसे उनका अङ्गस्पर्श करते, कभी प्रेमभरी स्त्रिच्छी चितवनसे उनकी ओर देखते तो कभी झीझसे उन्मुक्त हैंसी हैंसने लगते । इस प्रकार उन्होंने ब्रजसुन्दरियोंके साथ क्रीडा की, विहार किया ॥ १७ ॥ परीक्षित् ! भगवान्‌के अङ्गोंका संस्पर्श प्राप्त करके गोपियोंकी इन्द्रियों प्रेम और आनन्दसे विह्वल हो गयीं । उनके केश बिखर गये । फूलोंके हार टूट गये और गहने अस्त-व्यस्त हो गये । वे अपनेकेश, कल और कंकुकीको भी पूर्णतया सम्राज्यमें असमर्थ हो गयीं ॥ १८ ॥ भगवान्‌ श्रीकृष्णकी यह रासक्रीडा देखकर खर्गकी देवाङ्गनाएँ भी मिछनकी कामनासे मोहित हो गयीं और समस्त तारों तथा ग्रहोंके साथ चन्द्रमा चकित, विस्मित हो गये ॥ १९ ॥ परीक्षित् ! कल्पि भगवान्‌ आत्माराम हैं—उन्हे अपने अतिरिक्त और किसीकी भी आवश्यकता नहीं है—फिर भी उन्होंने जितनी गोपियों थीं, उतने ही रूप धारण किये और खेल-खेलमें उनके साथ इस प्रकार विहार किया ॥ २० ॥ जब बहुत देरतक गान और नृत्य आदि विहार करनेके कारण गोपियों थक गयीं, तब कृष्णामय भगवान्‌ श्रीकृष्णने बड़े प्रेमसे स्वयं अपने सुखद करकमलोंके द्वारा उनके मुँह पोंछे ॥ २१ ॥ परीक्षित् ! भगवान्‌के करकमल और नखस्पर्शसे गोपियोंको बड़ा आनन्द हुआ । उन्होंने अपने उन कपोलोंके सौन्दर्यसे, जिनपर सोनेके कुण्डल झिलमिला रहे थे और घुँघराळी अलंके लटक रही थीं, तथा उस प्रेमभरी चितवनसे, जो सुधासे भी मीठी मुसकानसे उज्ज्वल हो रही थी, भगवान्‌ श्रीकृष्णका सम्मान किया और प्रभुकी परम पवित्र छीलाओंका गान करने लगीं ॥ २२ ॥ इसके बाद जैसे यका हुआ गजराज किन्नारोंको तोड़ता हुआ हृदिनियोंके साथ जलमें घुसकर क्रीडा करता है, वैसे ही लोक और वेदकी मर्यादाका अतिक्रमण करनेवाले भगवान्‌ने अपनी यकान दूर करनेके लिये गोपियोंके माथ जलक्रीडा करनेके उद्देश्यसे यमुनाके जलमें प्रवेश किया । उस समय भगवान्‌की वनमाळ गोपियोंके अङ्गकी रगड़से कुछ कुचल-सी गयी थी और उनके वस्त्र-स्वच्छकी केसरसे वह रँग भी गयी थी । उसके चारों ओर गुनगुनाते हुए भौरे उनके पीछे-पीछे इस प्रकार चले

रहे थे, जानो गन्धर्वराज उनकी कीर्तिका गान करते हुए पीछे-पीछे चल रहे हों ॥ २३ ॥ परीक्षित् ! यमुनाजलमें गोपियोंने प्रेमभरी चितवनसे भगवान्‌की ओर देख-देखकर तथा हैंस-हँसकर उनपर इधर-उधरसे जलकी खूब चौखरें डालीं । जल उलीच-उलीचकर उन्हें खूब नहलाया । विगानोंपर चढ़े हुए देवता पुष्पोंकी वर्षा करके उनकी स्तुति करने लगे । इस प्रकार यमुनाजलमें स्वयं आत्माराम भगवान्‌ श्रीकृष्णने गजराजके समान जलविहार किया ॥ २४ ॥ इसके बाद भगवान्‌ श्रीकृष्ण ब्रजयुवतियों और भौरोंकी मीढ़से घिरे हुए यमुनातटके उपवनमें गये । वह वन ही रमणीय था । उसके चारों ओर जल और खलमे बड़ी सुन्दर सुगन्ध-वाले फूल खिले हुए थे । उनकी सुवास लेकर मन्द-मन्द वायु चल रही थी । उसमें भगवान्‌ इस प्रकार विचरण करने लगे, जैसे मदमत्त गजराज हृदिनियोंके झुंके साथ घूम रहा हो ॥ २५ ॥ परीक्षित् ! शरदूकी वह रात्रि जिसके रूपमें अनेक रात्रियों पुञ्जीभूत हो गयी थीं, बहुत ही सुन्दर थी । चारों ओर चन्द्रमाकी बड़ी सुन्दर चाँदनी छिटक रही थी । काव्योंमें शरद् ऋतुकी जिन रस-सामग्रियोंका वर्णन मिळता है, उन सभीसे वह शुक्ल थी । उसमें भगवान्‌ श्रीकृष्णने अपनी प्रेयसी गोपियोंके साथ यमुनाके पुष्पिन, यमुनाजी और उनके उपवनमें विहार किया । यह बात स्मरण रखनी चाहिये कि भगवान्‌ सत्यसङ्करूप हैं । यह सब उनके चिन्मय सङ्कल्पकी ही चिन्मयी छीला है । और उन्होंने इस छीलामें कामभावको, उसकी चेष्टाओंको तथा उसकी क्रियाओंको सर्वथा अपने अधीन कर रक्खा था, उन्हे अपने आपमें कैद कर रक्खा था ॥ २६ ॥

पञ्चा परीक्षितेन पूज्य—भगवन् । भगवान्‌ श्रीकृष्ण सारे जगत्‌के एकमात्र स्वामी हैं । उन्होंने अपने अंश श्रीवल्लभके सहित पूर्णरूपमें अवतार ग्रहण किया था । उनके अवतारका उद्देश्य ही यह था कि धर्मकी स्थापना हो और अधर्मका नाश ॥ २७ ॥ ब्रह्मन् ! वे धर्ममर्यादाके बनानेवाले, उपदेश करनेवाले और रक्षक थे । फिर उन्होंने स्वयं धर्मके विपरीत परिस्थितियोंका स्पर्श कैसे किया ॥ २८ ॥ मैं मानता हूँ कि भगवान्‌

श्रीकृष्ण पूर्णकाम थे, उन्हें किसी भी वस्तुकी कामना नहीं थी, फिर भी उन्होंने किस अमिप्रायसे यह मिन्दनीय कर्म किया ! परम ब्रह्मचारी मुनीश्वर ! आप कृपा करके मेरा यह सन्देह मिटाइये ॥ २९ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—सूर्य, अग्नि आदि ईश्वर (समर्थ) कभी-कभी धर्मका उल्लङ्घन और साहसका काम करते देखे जाते हैं । परन्तु उन कामोंसे उन तेजस्वी पुरुषोंको कोई दोष नहीं होता । देखो, अग्नि सब कुछ खा जाता है, परन्तु उन पदार्थोंके दोषसे क्षिप्त नहीं होता ॥ ३० ॥ जिन जगोंमें ऐसी सामर्थ्य नहीं है, उन्हें मनसे भी वैसी बात कभी नहीं सोचनी चाहिये, शरीरसे करना तो दूर रहा । यदि मुखतावश कोई ऐसा काम कर बैठे, तो उसका नाश हो जाता है । भगवान् शङ्करने हलहल त्रिपि लिया था, दूसरा कोई मिये तो वह जलकर भस्म हो जाया ॥ ३१ ॥ इसलिये इस प्रकारके जो शङ्कर आदि ईश्वर हैं, अपने अधिकारके अनुसार उनके वचनको ही सत्य मानना और उसीके अनुसार आचरण करना चाहिये । उनके आचरणका अनुकरण तो कहीं-कहीं ही किया जाता है । इसलिये बुद्धिमान् पुरुषोंको चाहिये कि उनका जो आचरण उनके उपदेशके अनुकूल हो, उसीको जीवनमें उतारे ॥ ३२ ॥ परीक्षित ! वे सामर्थ्यान् पुरुष अहङ्कारहीन होते हैं, शुभकर्म करनेमें उनका कोई सासारिक स्वार्थ नहीं होता और अशुभ कर्म करनेमें अनर्थ (नुकसान) नहीं होता । वे स्वार्थ और अनर्थसे ऊपर उठे होते हैं ॥ ३३ ॥ जब ऊर्ध्वोंके सम्बन्धमें ऐसी बात है तब जो पशु, पक्षी, मनुष्य, देवता आदि समस्त चराचर जीवोंके एकमात्र प्रभु सर्वेश्वर भगवान् हैं, उनके साथ मानवीय झुम और अशुभका सम्बन्ध कैसे जोड़ा जा सकता है ॥ ३४ ॥ जिनके चरणकमलोंके रजका सेवन करके

भक्तजन तृप्त हो जाते हैं, जिनके साथ योगप्राप्त करके उसके प्रभावसे योगीजन अपने सारे कर्मबन्धन काट डालते हैं और निचाराशील ज्ञानीजन जिनके तत्त्वका निचार करके तत्त्वरूप हो जाते हैं तथा समस्त कर्म-बन्धनोंसे मुक्त होकर स्वच्छन्द विचरते हैं, वे ही भगवान् अपने भक्तोंकी इच्छासे अपना चिन्मय श्रीविग्रह प्रकट करते हैं; तब मला, उनमें कर्मबन्धनकी कल्पना ही कैसे हो सकती है ॥ ३५ ॥ गोपियोंके, उनके पतियोंके और सम्पूर्ण शरीरधारियोंके अन्तःकरणोंमें जो आत्मरूपसे निराजमान है, जो सबके साथी और परमपति हैं, वही तो अपना दिव्य-चिन्मय श्रीविग्रह प्रकट करके यह खीज कर रहे हैं ॥ ३६ ॥ भगवान् जीवोंपर कृपा करनेके लिये ही अपनेको मनुष्यरूपमें प्रकट करते हैं और ऐसी खीजाएँ करते हैं, जिन्हें सुनकर जीव भगवत्परायण हो जायें ॥ ३७ ॥ ब्रजवासी गोपोंने भगवान् श्रीकृष्णमें तनिक भी दोषबुद्धि नहीं की । वे उनकी योगमायासे मोहित होकर ऐसा समझ रहे थे कि हमारी पत्नियाँ हमारे पास ही हैं ॥ ३८ ॥ ब्रह्माकी रात्रिके बराबर वह रात्रि भीत गयी । ब्राह्मसुषुप्त आया । पवति गोपियोंकी इच्छा अपने घर लौटनेकी नहीं थी, फिर भी भगवान् श्रीकृष्णकी आज्ञासे वे अपने-अपने घर चली गयीं । क्योंकि वे अपनी प्रत्येक चेष्टासे, प्रत्येक सङ्कल्पसे केवल भगवान्को ही प्रसन्न करना चाहती थीं ॥ ३९ ॥

परीक्षित ! जो वीर पुरुष ब्रजयुवतियोंके साथ भगवान् श्रीकृष्णके इस चिन्मय रास-विलासका भ्रष्टाके साथ बार-बार श्रवण और वर्णन करता है, उसे भगवान्के चरणोंमें परा भक्तिकी प्राप्ति होती है और वह बहुत ही शीघ्र अपने हृदयके रोग—कामविकारसे छुटकारा पा जाता है । उसका कामभाव सर्वदोषोंके लिये नष्ट हो जाता है * ॥ ४० ॥

* श्रीमद्भागवतमें ये रासकील्यके पाँच अध्याय उसके पाँच प्राण माने जाते हैं । भगवान् श्रीकृष्णकी परम अन्तरङ्गलीला, निजस्वरूपभूता गोपिकाओं और हृदिनी शक्ति श्रीराधाजीके साथ होनेवाली भगवान्की दिव्यातिदिव्य क्रीडा—इन अध्यायोंमें कही गयी है । 'रास' शब्दका मूल रस है और रस स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण ही हैं—परसे

वै स' । जिस दिव्य क्रीडामें एक ही रस अनेक रसोंके रूपमें होकर अनन्त-अनन्त रसका समास्वादन करे, एक रस ही रस-समूहके रूपमें प्रकट होकर स्वयं ही आत्मा-आत्मादक, लीला, धाम और विभिन्न आलम्बन एवं उद्दीपनके रूपमें क्रीडा करे—उसका नाम रस है । भगवान्की यह दिव्य लीला भगवान्के दिव्य धाममें दिव्य-रूपसे निरन्तर हुआ करती है । यह भगवान्की निरालेख कृपासे प्रेमी साधकोंके हितार्थ कभी-कभी अपने दिव्य धामके साथ ही भूमण्डलपर भी अवतीर्ण हुआ करती है, जिसको देख-सुन एवं गंकर तथा स्मरण-चिन्तन करके अधिकारी पुरुष रसस्वरूप भगवान्की इस परम रसमयी लीलाका आनन्द ले सकें और स्वयं भी भगवान्की लीलामें सम्मिलित होकर अपनेको कृतकृत्य कर सकें । इस पञ्चाध्यायीमें वंशीध्वनि, गोपियोंके अभिसार, श्रीकृष्णके साथ उनकी बातचीत, रमण, श्रीराजाजीके साथ अन्तर्धान, पुनः प्राकट्य, गोपियोंके द्वारा दिये हुए वसनासनपर विराजना, गोपियोंके कूट प्रश्नका उत्तर, रासलुप्य, क्रीडा, जलकेलि और कनविहारका वर्णन है—जो मानवी भाषामें होनेपर भी वस्तुतः परम दिव्य है ।

समयके साथ ही मानव-मस्तिष्क भी पलटता रहता है । कभी अन्तर्दृष्टिकी प्रधानता हो जाती है और कभी बहिर्दृष्टिकी । आजका युग ही ऐसा है, जिसमें भगवान्की दिव्य-लीलाओंकी तो बात ही क्या, स्वयं भगवान्के अस्तित्वपर ही अविश्वास प्रकट किया जा रहा है । ऐसी स्थितिमें इस दिव्य लीलाका रहस्य न समझकर लोग तरह-तरहकी बाधाका प्रकट करें, इसमें आश्चर्यकी कोई बात नहीं है । यह लीला अन्तर्दृष्टिसे और मुख्यतः भगवत्कृपासे ही समझमें आती है । किन भाग्यवान् और भगवत्कृपाप्राप्त महात्माओंने इसका अनुभव किया है, वे धन्य हैं और उनकी चरण-धूलिके प्रतापसे ही निजोकी धन्य है । उन्हींकी उक्तिमेंका आश्रय लेकर यहाँ रासलीलाके सम्बन्धमें पंक्तिभिद् लिखनेकी छुटता की जाती है ।

यह बात पढ़के ही समझ लेनी चाहिये कि भगवान्का शरीर जीव-शरीरकी भाँति जब नहीं होता । जबकी सत्ता केवल जीवकी दृष्टिमें होती है, भगवान्की दृष्टिमें नहीं । यह देह है और यह देही है, इस प्रकारका भेद-भाव केवल प्रकृतिके राज्यमें होता है । अप्राकृत लोकमें—जहाँकी प्रकृति भी चिन्मय है—सब कुछ चिन्मय ही होता है; वहाँ अचिदात्मी प्रतीति तो केवल चिदात्मास अथवा भगवान्की लीलाकी सिद्धिके लिये होती है । इसलिये स्थूलार्थमें—या यों कहिये कि जडराज्यमें रहनेवाला मस्तिष्क जब भगवान्की अप्राकृत लीलाओंके सम्बन्धमें विचार करने लगता है, तब वह अपनी पूर्व भासनावर्णके अनुसार जडराज्यकी चारपायों, कल्पनाओं और क्रियाओंका ही आरोप उस दिव्य राज्यके विषयमें भी करता है, इसलिये दिव्यलीलाके रहस्यको समझनेमें असमर्थ हो जाता है । यह रास वस्तुतः परम उज्ज्वल रसका एक दिव्य प्रकाश है । जब जगत्की बात तो दूर रही, ज्ञानरूप या विज्ञानरूप जगत्में भी यह प्रकट नहीं होता । अधिक क्या, साक्षात् चिन्मय तत्त्वमें भी इस परम दिव्य उज्ज्वल रसका लेशामास नहीं देखा जाता । इस परम रसकी स्फूर्ति तो परम भावमयी श्रीकृष्णप्रेमस्वरूपा गोपीजनोंके मधुर हृदयमें ही होती है । इस रासलीलाके वयार्यस्वरूप और परम माधुर्यका आस्वाद उन्हींको मिलता है, दूसरे लोग तो इसकी कल्पना भी नहीं कर सकते ।

भगवान्के समान ही गोपियों भी परमरसमयी और सच्चिदानन्दमयी ही हैं । साधनाकी दृष्टिसे भी उन्होंने न केवल जड शरीरका ही त्याग कर दिया है, बल्कि सूक्ष्म शरीरसे प्राप्त होनेवाले स्वर्ग, वैश्वत्यसे अनुभव होनेवाले मोक्ष—और तो क्या, जडताकी दृष्टिका ही त्याग कर दिया है । उनकी दृष्टिमें केवल चिदानन्दस्वरूप श्रीकृष्ण हैं, उनके हृदयमें श्रीकृष्णको तृप्त करनेवाला प्रेमासूत है । उनकी इस अलौकिक स्थितिमें स्थूलशरीर, उसकी सृष्टि और उसके सम्बन्धसे होनेवाले अङ्ग-सङ्गकी कल्पना किसी भी प्रकार नहीं की जा सकती । ऐसी कल्पना तो केवल देहात्मबुद्धिसे जकड़े हुए जीवोंकी ही होती है । जिन्होंने गोपियोंको पहचाना है, उन्होंने गोपियोंकी

चरणधूलिका स्पर्श प्राप्त करके अपनी कृतकृत्यता चाही है। महत्ता, शङ्कर, उद्भव और अर्जुनने गोपियोंकी उपासना करके भगवान्‌के चरणोंमें वैसे प्रेमका वरदान प्राप्त किया है या प्राप्त करनेकी अभिलाषा की है। उन गोपियोंके दिव्य भावको साधारण स्त्री-पुरुषके भावजैसा मानना गोपियोंके प्रति, भगवान्‌के प्रति और वास्तवमें सत्यके प्रति महान् अन्याय एवं अपराध है। इस अपराधसे बचनेके लिये भगवान्‌की दिव्य लीलाओंपर विचार करते समय उनकी अप्राकृत दिव्यताका स्मरण रखना परमावश्यक है।

भगवान्‌का चिदानन्दधन शरीर दिव्य है। वह अजन्मा और अविनाशी है, हानोपादानरहित है। वह नित्य सनातन शुद्ध भगवत्स्वरूप ही है। इसी प्रकार गोपियों दिव्य जगत्‌की भगवान्‌की स्वरूपभूता अन्तरङ्गशक्तियों है। इन दोनोंका सम्बन्ध भी दिव्य ही है। यह उच्चतम भावराज्यकी लीला स्थूल शरीर और स्थूल मनसे परे है। आवरण-भङ्गके अनन्तर अर्थात् चिरहरण वरके जब भगवान् लीकृति देते हैं, तब इसमें प्रवेश होता है।

प्राकृत वेहका निर्माण होता है स्थूल, सूक्ष्म और कारण—इन तीन देहोंके संयोगसे। जबतक 'कारण शरीर' रहता है, तबतक इस प्राकृत देहसे जीवको छुटकारा नहीं मिलता। 'क्तरण शरीर' कहते हैं पूर्वकृत कर्मोंके उन स्त्कारोंको, जो वेह-निर्माणमें कारण होते हैं। इस 'कारण शरीर' के आधारपर जीवको बार-बार जन्म-मृत्युके चक्करमें पकना होता है और यह चक्र जीवकी मुक्ति न होनेतक अव्या 'कारण' का सर्वथा अभाव न होनेतक चलता ही रहता है। इसी कर्मबन्धनको कारण पाञ्चभौतिक स्थूलशरीर मिलता है—जो रक्त, मांस, अस्थि आदिसे भरा और चमड़ेसे ढका होता है। प्रकृतिके राज्यमें जितने शरीर होते हैं, सभी वस्तुतः योनि और बिन्दुके संयोगसे ही बनते हैं; फिर चाहे कोई कामजनित निष्ठ मैथुनसे उत्पन्न हो या ऊर्चरीता महापुरुषके सङ्कल्पसे, बिन्दुके अयोगामी होनेपर कर्तव्यरूप श्रेष्ठ मैथुनसे हो, अथवा बिना ही मैथुनके नामि, हृदय, कण्ठ, कर्ण, नेत्र, सिर, मस्तिष्क आदिके स्पर्शसे, बिना ही स्पर्शके केवल दृष्टिमात्रसे अथवा बिना देखे केवल सङ्कल्पसे ही उत्पन्न हो। ये मैथुनी-अमैथुनी (अथवा कमी-कमी स्त्री या पुरुष-शरीरके बिना भी उत्पन्न होनेवाले) सभी शरीर हैं योनि और बिन्दुके संयोगजनित ही। ये सभी प्राकृत शरीर हैं। इसी प्रकार योगियोंके द्वारा निर्मित 'निर्माणकाय' यद्यपि अपेक्षाकृत शुद्ध हैं, परन्तु वे भी हैं प्राकृत ही। पितर या देवोंके दिव्य कहलानेवाले शरीर भी प्राकृत ही हैं। अप्राकृत शरीर इन सबसे विच्छेद हैं, जो महाप्रलयमें भी नष्ट नहीं होते। और भगवद्देह तो साक्षात् भगवत्स्वरूप ही है। देह-शरीर प्रायः रक्त-मांस-मेद-अस्थिवाले नहीं होते। अप्राकृत शरीर भी नहीं होते। फिर भगवान् श्रीकृष्णका भगवत्स्वरूप शरीर तो रक्त-मांस-अस्थिमय होता ही कैसे। वह तो सर्वथा चिदानन्दमय है। उसमें देह-देही, गुण-गुणी, रूप-रूपी, नाम-नामी और लीला तथा लीलापुरुषोत्तमका मेद नहीं है। श्रीकृष्णका एक-एक अङ्ग पूर्ण श्रीकृष्ण है। श्रीकृष्णका मुखमण्डल जैसे पूर्ण-श्रीकृष्ण है, वैसे ही श्रीकृष्णका पदनल भी पूर्ण श्रीकृष्ण है। श्रीकृष्णकी सभी इन्द्रियोंसे सभी काम हो सकते हैं। उनके कान देख सकते हैं, उनकी आँखें सुन सकती हैं, उनकी नाक स्पर्श कर सकती है, उनकी रसना सूँघ सकती है, उनकी त्वचा खाद ले सकती है। वे हाथोंसे देख सकते हैं, आँखोंसे चूँच सकते हैं। श्रीकृष्णका सब कुछ श्रीकृष्ण होनेके कारण वह सर्वथा पूर्णतम है। इसीसे उनकी रूपमाधुरी नित्यवर्द्धनशील, नित्य नवीन सौन्दर्यमयी है। उसमें ऐसा चमत्कार है कि वह स्वयं अपनेको ही आकर्षित कर लेती है। फिर उनके सौन्दर्य-माधुर्यसे गौ-हरिन और वृद्ध-बाल पुत्रपुत्र हो जायें, इसमें तो कहना ही क्या है। भगवान्‌के ऐसे स्वरूपभूत शरीरसे गंदा मैथुनकर्म सम्भव नहीं। मनुष्य जो कुछ खाता है, उससे क्रमशः रक्त, रक्त, मांस, मेद, मज्जा और अस्थि बनकर अन्तमें शुक्र बनता है; इसी शुक्रके आधारपर शरीर रहता है और मैथुनक्रियामें इसी शुक्रका क्षरण हुआ करता है। भगवान्‌का शरीर न तो कर्म-जन्य है, न मैथुनी सृष्टिका है और न दैवी ही है। वह तो इन सबसे परे सर्वथा विगुह्य भगवत्स्वरूप है। उसमें रक्त, मांस, अस्थि आदि नहीं हैं। अतएव उसमें शुक्र भी नहीं है। इसलिये उससे प्राकृत पाञ्चभौतिक

शरीरोंवाले स्त्री-पुरुषोंके रमण या मैथुनकी कल्पना भी नहीं हो सकती । इसीलिये भगवान्‌को उपनिषद्‌में 'अखण्ड ब्रह्मचारी' बतलाया गया है और इसीसे भागवतमें उनके लिये 'अकन्दसौरत' आदि शब्द आये हैं । फिर कोई शङ्का करे कि उनके सोलह हजार एक सौ आठ रात्रियोंके इतने पुत्र कैसे हुए तो इसका सीधा उत्तर यही है कि यह सारी भागवती सृष्टि थी, भगवान्‌के सङ्कल्पसे हुई थी । भगवान्‌के शरीरमें जो रक्त-मांस आदि दिखलायी पड़ते हैं, वह तो भगवान्‌की योगमायाका चमत्कार है । इस विवेचनसे भी यही सिद्ध होता है कि गोपियोंके साथ भगवान्‌ श्रीकृष्णका जो रमण हुआ वह सर्वथा दिव्य भगवत्-राज्यकी जीव है, लौकिक काम-क्रीडा नहीं ।

x

x

x

x

इन गोपियोंकी साधना पूर्ण हो चुकी है । भगवान्‌ने अगली रात्रियोंमें उनके साथ विहार करनेका प्रेम-सङ्कल्प कर लिया है । इसीके साथ उन गोपियोंको भी जो नित्यसिद्धा हैं, जो लोकदृष्टिमें विवाहिता भी हैं, इन्हीं रात्रियोंमें दिव्य-लीलासे सम्मिलित करना है । वे अगली रात्रियाँ कौन-सी हैं, यह बात भगवान्‌की दृष्टिके सामने है । उन्होंने शारदीय रात्रियोंको देखा । 'भगवान्‌ने देखा'—इसका अर्थ सामान्य नहीं, विशेष है । जैसे सृष्टिके प्रारम्भमें 'स ऐक्षत एकोऽहं बहु स्याम्'—भगवान्‌के इस ईक्षणसे जगत्‌की उत्पत्ति होती है, वैसे ही रासके प्रारम्भमें भगवान्‌के प्रेमशीक्षणसे शरत्कालकी दिव्य रात्रियोंकी सृष्टि होती है । मल्लिका-पुष्प, चन्द्रिका आदि समस्त उदीपनसामग्री भगवान्‌के द्वारा वीक्षित है अर्थात् लौकिक नहीं, अलौकिक—अप्राकृत है । गोपियोंने अपना मन श्रीकृष्णके मनमें मिला दिया था । उनके पास स्वयं मन न था । अब प्रेम-दान करनेवाले श्रीकृष्णने विहारके लिये नवीन मनकी, दिव्य मनकी सृष्टि की । योगेश्वरेश्वर भगवान्‌ श्रीकृष्णकी यही योगमाया है, जो रासलीलाके लिये दिव्य स्थल, दिव्य सामग्री एवं दिव्य मनका निर्माण किया करती है । इतना होनेपर भगवान्‌की बाँझुरी नजती है ।

भगवान्‌की बाँझुरी जबको चेतन, चेतनको जब, चक्रको अचक्र और अचक्रको चक्र, विक्षिप्तको समाधिस्थ और समाधिस्थको विक्षिप्त बनाती ही रहती है । भगवान्‌का प्रेमदान प्राप्त करके गोपियाँ निस्तसङ्कल्प, निश्चिन्त होकर वरके काममें लगी हुई थीं । कोई गुरुजनोंकी सेवा-शुश्रूषा—धर्मके काममें लगी हुई थी, कोई गो-दोहन आदि अर्थके काममें लगी हुई थी, कोई साज-शृङ्गार आदि कामके साधनमें व्यस्त थी, कोई पूजा-पाठ आदि मोक्षसाधनमें लगी हुई थी । सब लगी हुई थीं अपने-अपने काममें, परन्तु वास्तवमें वे उनमेंसे एक भी पदार्थ चाहती न थीं । यही उनकी विशेषता थी और इसका प्रत्यक्ष प्रमाण यह है कि वंशीध्वनि सुनते ही कर्मकी पूर्णतापर उनका ध्यान नहीं गया, काम पूरा करके चले, ऐसा उन्होंने नहीं सोचा । वे चक्र पड़ी उस साधक संन्यासीके समान, जिसका हृदय वैराग्यकी प्रदीप्त आलससे परिपूर्ण है । किसीने किसीसे पूछा नहीं, सबाह नहीं की; अस्त-व्यस्त गतिसे जो जैसे थी, वैसे ही श्रीकृष्णके पास पहुँच गयी । वैराग्यकी पूर्णता और प्रेमकी पूर्णता एक ही बात है, दो नहीं । गोपियों ब्रज और श्रीकृष्णके बीचमें मूर्तिमान् वैराग्य है या मूर्तिमान् प्रेम, क्या इसका निर्णय कोई कर सकता है ?

साधनाके दो मेद हैं—१—मर्यादापूर्ण वैध साधना और २—मर्यादाहिन अवैध प्रेमसाधना । दोनोंके ही अपने-अपने स्वतन्त्र नियम हैं । वैध साधनामें जैसे नियमोंके बन्धनका, सनातन पद्धतिका, कर्तव्योंका और विविध पाठनीय धर्मोंका त्याग साधनासे अछ करनेवाला और महान्‌ हानिकार है, वैसे ही अवैध प्रेमसाधनामें इनका पाठन कलङ्करूप होता है । यह बात नहीं कि इन सब आत्मोन्नतिके साधनोंको वह अवैध प्रेमसाधनाका साधक जान-बूझकर छोड़ देता है । बात यह है कि वह स्तर ही ऐसा है, जहाँ इनकी आवश्यकता नहीं है । ये वहाँ अपने-आप वैसे ही छूट जाते हैं, जैसे नदीके पार पहुँच जानेपर स्नायविक ही नौकाकी सवारी छूट जाती है । जमीनपर न तो नौकापर बैठकर चलनेका प्रश्न उठता है और न ऐसा चाहने या करनेवाला बुद्धिमान् ही माना

जाता है । ये सब साधन वर्द्धितक रहते हैं, जहाँतक सारी वृत्तियाँ सहज स्वेच्छसे सदा-सर्वदा एकमात्र भगवान् की ओर दौढ़ने नहीं लग जाती । इसीलिये भगवान् ने गीतामें एक जगह तो अर्जुनसे कहा है—

न मे पार्यास्ति कर्तव्यं त्रिषु लोकेषु किञ्चन । नानवाप्तमवाप्तव्यं वर्त एव च कर्मणि ॥
यदि ह्यहं न वर्तेयं जातु कर्मण्यतस्मिन् । मम कर्माणुवर्तन्ते मनुज्याः पार्थ सर्वदा ॥
उत्सीदियुरिमे लोका न कुर्यां कर्म चेदहम् । सङ्करस्य च कर्ता स्यामुपहन्त्यामिमाः प्रजाः ॥
सकाः कर्मण्यधिष्ठासो यथा कुर्वन्ति भारत । कुर्याद्विद्वांस्यासकश्चिकीर्षुर्लोकसंग्रहम् ॥

(३ । १२-१५)

‘अर्जुन ! यद्यपि तीनों लोकोंमें मुझे कुछ भी करना नहीं है, और न मुझे किसी वस्तुको प्राप्त ही करना है, जो मुझे न प्राप्त हो; तो भी मैं कर्म करता ही हूँ । यदि मैं साधधान होकर कर्म न करूँ तो अर्जुन ! मेरी देखा-देखी लोग कर्मोंको छोड़ बैठें और यों मेरे कर्म न करनेसे ये सारे लोक नष्ट हो जायें तथा मैं हूँ वर्ण-सङ्कर बनानेवाला और सारी प्रजाका नाश करनेवाला बनूँ । इसलिये मेरे इस आदर्शके अनुसार अनासक्त ज्ञानी पुरुषको भी लोकसंग्रहके लिये वैसे ही कर्म करना चाहिये, जैसे कर्मसे व्यासक्त अज्ञानी लोग करते हैं ।’

यहाँ भगवान् आदर्श लोकसंग्रही महापुरुषके रूपमें बोलते हैं, लोकनायक बनकर सर्वसाधारणको शिक्षा देते हैं । इसीलिये स्वयं अपना उदाहरण देकर लोगोंको कर्ममें प्रवृत्त करना चाहते हैं । ये ही भगवान् उसी गीतामें जहाँ अन्तरङ्गताकी बात कहते हैं, वहाँ स्पष्ट कहते हैं—

सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं ब्रज ।

(१८ । ६९)

‘सारे धर्मोंका त्याग करके तू केवल एक मेरी शरणमें आ जा ।’

यह बात सबके लिये नहीं है । इसीसे भगवान् १८ । ६४ में इसे सबसे बढ़कर छिपी हुई गुप्त बात (सर्वगुहात्म) कहकर इसके बादके ही श्लोकमें कहते हैं—

इदं ते नातपस्काय नाभक्ताय कदाचन ।

न चाशुभ्रपदे वाच्यं न च मां वोऽभ्यसूयति ॥

(१८ । ६७)

‘मैया अर्जुन ! इस सर्वगुहात्म बातको जो इन्द्रिय-विषयी तपस्वी न हो, मेरा भक्त न हो, धुनना न चाहता हो और मुझमें दोष लगाता हो, उसे न कहना ।’

श्रीगोपीजन साधनाके इसी उच्च स्तरमें परम आदर्श थी । इसीसे उन्होंने देह-मोह, पति-पुत्र, लोक-परलोक, कर्तव्य-धर्म—सबको छोड़कर, सबका उछड़ान कर, एकमात्र परमधर्मस्वरूप भगवान् श्रीकृष्णको ही पानेके लिये अभिसार किया था । उनका यह पति-पुत्रोंका त्याग, यह सर्वधर्मका त्याग ही उनके स्तरके अनुरूप स्वधर्म है ।

इस ‘सर्वधर्मत्याग’ रूप स्वधर्मका आचरण गोपियों-जैसे उच्च स्तरके साधकोंमें ही सम्भन है । क्योंकि सब धर्मोंका यह त्याग बड़ी कर सकते हैं, जो इसका यथाविधि पूरा पाठन कर चुकनेके बाद इसके परमफल अनन्य और अचिन्त्य देवदुर्लभ भगवत्प्रेमको प्राप्त कर चुकते हैं, वे भी जान-बूझकर त्याग नहीं करते । सूर्यका प्रखर प्रकाश हो जानेपर तैलदीपककी भाँति स्वतः ही ये धर्म उसे त्याग देते हैं । यह त्याग तिरस्कारमूलक नहीं, वरं तृप्तिमूलक है । भगवत्प्रेमकी उँची स्थितिका यही स्वरूप है । देवर्षि नारदजीका एक सूत्र है—

‘वेदापि संन्यस्यति; केवलमभिधिष्णन्नातुरायं लभते ।’

‘जो वेदोंका (वेदमूळक समस्त धर्ममर्यादाओंका) भी गम्भीरमूर्ति त्याग कर देता है, वह अखण्ड, असीम भगवत्प्रेमको प्राप्त करता है ।’

जिसको भगवान् अपनी वंशीच्यवि सुनाकर—नाम ले-लेकर बुलायें, वह भक्त, किसी दूसरे धर्मकी ओर ताककर कब और कैसे रुक सकता है ।

रोकनेवालोंने रोक भी, परन्तु हिमालयसे निकलकर समुद्रमें गिरनेवाली ब्रह्मपुत्र नदीकी प्रखर धाराको क्या कोई रोक सकता है ? वे न रुकतीं, नहीं रोकी जा सकतीं । जिनके चित्तमें कुछ प्राक्तन संस्कार अवशिष्ट थे, वे अपने अवधिकारके कारण सशरीर जानेमें समर्थ न हुईं । उनका शरीर वरमें पड़ा रह गया, भगवान्‌के वियोग-दुःखसे उनके सारे कलुष धुल गये, ध्यानमें प्राप्त भगवान्‌के प्रेमालिङ्गनसे उनके समस्त सौमन्यका परमफल प्राप्त हो गया और वे भगवान्‌के पास सशरीर जानेवाली गोपियोंके पहुँचनेसे पहले ही भगवान्‌के पास पहुँच गयीं । भगवान्‌में मिल गयीं । यह शास्त्रका प्रसिद्ध सिद्धान्त है कि पाप-पुण्यके कारण ही बन्धन होता है और झुमाछुभका भोग होता है । झुमाछुभ कर्मोंके भोगसे जब पाप-पुण्य दोनों नष्ट हो जाते हैं, तब जीवकी मुक्ति हो जाती है । यद्यपि गोपियों पाप-पुण्यसे रहित श्रीभगवान्‌की प्रेम-प्रतिमास्वरूपा थीं, तथापि छीजके छिये यह दिखाया गया है कि अपने प्रियतम श्रीकृष्णके पास न जा सकनेसे, उनके विरहान्धसे उनको इतना महान् सन्ताप हुआ कि उससे उनके सम्पूर्ण अञ्जुभक्त भोग हो गया, उनके समस्त पाप नष्ट हो गये । और प्रियतम भगवान्‌के ध्यानसे उन्हें इतना आनन्द हुआ कि उससे उनके सारे पुण्योंका फल मिल गया । इस प्रकार पाप-पुण्योंका पूर्णरूपसे अभाव होनेसे उनकी मुक्ति हो गयी । चाहे किसी भी भावसे हो—कामसे, क्रोधसे, लोभसे—जो भगवान्‌के मङ्गलमय श्रीविग्रहका चिन्तन करता है, उसके भावकी अपेक्षा न करके वस्तुस्थितिसे ही उसका कल्याण हो जाता है । यह भगवान्‌के श्रीविग्रहकी विशेषता है । भावके द्वारा तो एक प्रस्तरमूर्ति भी परम कल्याणका दान कर सकती है, बिना भावके ही कल्याणदान भगवद्विग्रहका सहज दान है ।

भगवान् हैं बड़े छीलमय । जहाँ वे अखिल विश्वके विधाता ब्रह्म-सिंह आदिके भी बन्दनीय, निश्छिन्न जीवोंके प्रत्यगात्मा हैं, वहाँ वे छीलमटकर गोपियोंके इशारेपर नाचनेवाले भी हैं । उन्हींकी इच्छासे, उन्हींके प्रेमाह्वानसे, उन्हींके वंशी-निमग्नणसे प्रेरित होकर गोपियों उनके पास आयीं; परन्तु उन्हींने ऐसी भावभङ्गी प्रकट की, ऐसा झोंग बनाया, मानो उन्हें गोपियोंके आनेका कुछ पता ही न हो । शायद गोपियोंके मुँहसे वे उनके हृदयकी बात, प्रेमकी बात सुनना चाहते हों । सम्भव है, वे बिग्रहम्भके द्वारा उनके मिलन-भावको परिपुष्ट करना चाहते हों । बहुत करके तो ऐसा माहम होता है कि कहीं लोग इसे साधारण बात न समझ लें, इसलिये साधारण लोगोंके लिये उपदेश और गोपियोंका अधिकार भी उन्होंने सबके सामने रख दिया । उन्होंने बतलाया—‘गोपियो ।’ भ्रममें कोई त्रिपत्ति तो नहीं आयी, वर रात्रिमें यहाँ आनेका कारण क्या है ? घरवाले डूँढ़ते होंगे, अब यहाँ खरना नहीं चाहिये । कनकी शोभा देख ली, अब बच्चों और बछड़ोंका भी ध्यान करो । धर्मके अनुकूल मोक्षके खुले द्वार अपने सगे-सम्बन्धियोंकी सेवा छोड़कर वनमें दर-दर भटकना जिनके लिये अनुचित है । छीजको अपने पतिकी ही सेवा करनी चाहिये, वह कैसा भी क्यों न हो । यही सनातन धर्म है । इसीके अनुसार तुम्हें चलना चाहिये । मैं जानता हूँ कि तुम सब मुझसे प्रेम करती हो । परन्तु प्रेममें शारीरिक सन्निधि आवश्यक नहीं है । अन्न, स्पर्श, दर्शन और ध्यानसे सान्निध्यकी अपेक्षा अधिक प्रेम बढ़ता है । जाओ, तुम सनातन सदाचारका पालन करो । इधर-उधर मनको मत भटकने दो ।’

श्रीकृष्णकी यह शिक्षा गोपियोंके लिये नहीं, सामान्य नारी-जातिके लिये है । गोपियोंका अधिकार विशेष था और उसको प्रकट करनेके लिये ही भगवान् श्रीकृष्णने ऐसे वचन कहे थे । इन्हे सुनकर गोपियोंकी क्या

दशा हुई और इसके उत्तरमें उन्होंने श्रीकृष्णसे क्या प्रार्थना की; वे श्रीकृष्णको मनुष्य नहीं मानती, उनके पूर्णरूप सनातन स्वरूपको भलीभाँति जानती हैं और यह जानकर ही उनसे प्रेम करती हैं—इस बातका कितना सुन्दर परिचय दिया, यह सब विषय सूखे ही पाठ करनेयोग्य है। सचमुच जिनके हृदयमें भगवान्‌के परमतत्त्वका वैसा अनुपम ज्ञान और भगवान्‌के प्रति वैसा महान्‌ अनन्य अनुराग है और सचाईके साथ जिनकी वाणीमें वैसे उद्गार हैं, वे ही विशेष अविकारवान्‌ हैं।

गोपियोंकी प्रार्थनासे यह बात स्पष्ट है कि वे श्रीकृष्णको अन्तर्यामी, योगेश्वरेश्वर परमात्माके रूपमें पहचानती थीं और जैसे दूसरे लोग गुरु, सखा या माता-पिताके रूपमें श्रीकृष्णकी उपासना करते हैं, वैसे ही वे पतिके रूपमें श्रीकृष्णसे प्रेम करती थी, जो कि शास्त्रोंमें मधुर भावक—उज्ज्वल परम रसक नामसे कहा गया है। जब प्रेमके सभी भाव पूर्ण होते हैं और साधकोंको खामि-सुखादिके रूपमें भगवान्‌ मिलते हैं, तब गोपियोंने क्या अपराध किया था कि उनका यह उच्चतम भाव—जिसमें शान्त, दास्य, सख्य और वात्सल्य सबके-सब अन्तर्भूत हैं और जो सबसे उच्च एवं सबका अन्तिम रूप है—म पूर्ण हो ? भगवान्‌ने उनका भाव पूर्ण किया और अपनेको असंख्य रूपोंमें प्रकट करके गोपियोंके साथ क्रीड़ा की। उनकी क्रीड़ाका स्वरूप बतलाते हुए कहा गया है—‘रेमे रमेशो ब्रजसुन्दरीमिर्ययार्मकः स्वप्रतिबिम्बविभ्रमः’। जैसे बन्हा-सा शिष्ट दर्पण अपना जलमें पड़े हुए अपने प्रतिबिम्बके साथ खेलता है, वैसे ही रमेश भगवान्‌ और ब्रजसुन्दरियोंने रमण किया। अर्थात्‌ सच्चिदानन्दवन सर्वान्तर्यामी प्रमरस-स्वरूप, छिछरसम्प परमात्मा भगवान्‌ श्रीकृष्णने अपनी हृदिनी शक्तिरूपा आनन्द-विन्मयरस-प्रतिभाविता अपनी ही प्रतिमूर्तिसे उत्पन्न अपनी प्रतिबिम्ब-स्वरूपा गोपियोंसे आत्मक्रीड़ा की। पूर्णरूप सनातन रसस्वरूप रसराज रसिक-शेखर रसपरब्रह्म अखिरसाधुतविग्रह भगवान्‌ श्रीकृष्णकी इस चिदानन्द-रसमयी दिव्य क्रीड़ाका नाम ही रस है। इसमें न कोई जड़ शरीर था, न प्राकृत अङ्ग-सङ्ग था, और न इसके सम्बन्धकी प्राकृत और स्थूल कल्पनाएँ ही थीं। यह था चिदानन्दस्य भगवान्‌का दिव्य विहार, जो दिव्य लीलाधाममें सर्वदा होते रहनेपर भी कभी-कभी प्रकट होता है।

वियोग ही संयोगका पोषक है, मान और मद ही भगवान्‌की छीलासे बाधक हैं। भगवान्‌की दिव्य लीलामें मान और मद भी, जो कि दिव्य हैं, इसीलिये होते हैं कि उनसे लीलामें रसकी और भी पुष्टि हो। भगवान्‌की इच्छासे ही गोपियोंमें लीलानुरूप मान और मदका सञ्चार हुआ और भगवान्‌ अन्तर्धान हो गये। जिनके हृदयमें लेशमात्र भी मद अवशेष है, नाममात्र भी मानका स्वरूप शेष है, वे भगवान्‌के सम्मुख रहनेके अधिकारी नहीं। अथवा वे भगवान्‌का, पास रहनेपर भी, दर्शन नहीं कर सकते। परन्तु गोपियों गोपियों थीं, उनसे जगत्‌के किसी प्राणीकी तिलमात्र भी तुलना नहीं है। भगवान्‌के वियोगमें गोपियोंकी क्या दशा हुई, इस बातको रासलीलाका प्रत्येक पाठक जानता है। गोपियोंके शरीर-मन-प्राण, वे जो कुष्ठ थीं—सब श्रीकृष्णमें एकता हो गये। उनके प्रेमान्वादाका यह गीत, जो उनके प्राणोंका प्रत्यक्ष प्रतीक है, आज भी गावुक मर्त्तोंको भावमग्न करके भगवान्‌की लीलाकोमें पहुँचा देता है। एक बार सरस हृदयसे हृदयहीन होकर नहीं, पाठ करनेवासे ही यह गोपियोंकी महत्ता सम्पूर्ण हृदयमें भर देता है। गोपियोंके उस ‘महामाव’—उस ‘जलौकिक प्रेमोन्माद’को देखकर श्रीकृष्ण भी अन्तर्हित न रह सके, उनके सामने ‘साक्षान्मसमभ्यसः’ रूपसे प्रकट हुए और उन्होंने मुक्तकण्ठसे स्वीकार किया कि गोपियो। मैं तुम्हारे प्रेमभावका चिर-ऋणी हूँ। यदि मैं अनन्त कालकाल तुम्हारी सेवा करता रहूँ, तो भी तुमसे उज्ज्वल नहीं हो सकूँ। मेरे अन्तर्धान होनेका प्रयोजन तुम्हारे चित्तको दुखाना नहीं था, बल्कि तुम्हारे प्रेमको और भी उज्ज्वल एवं समृद्ध करना था।’ इसके बाद रासलीला प्रारम्भ हुई।

जिन्होंने अध्यात्मशास्त्रका व्याख्या किया है, वे जानते हैं कि योगसिद्धिप्राप्त साधारण योगी भी कायस्थूलके द्वारा एक साथ अनेक शरीरोंका निर्माण कर सकते हैं और अनेक स्थानोंपर उपस्थित रहकर प्रयत्न-प्रयत्न

कार्य कर सकते हैं। इन्द्रादि देवगण एक ही समय अनेक स्थानोंपर उपस्थित होकर अनेक यज्ञोंमें युगपद आहुति स्वीकार कर सकते हैं। निखिल योगियों और योगेश्वरोंके ईश्वर सर्वसमर्थ भगवान् श्रीकृष्ण यदि एक ही साथ अनेक गोपियोंके साथ क्रीड़ा करें, तो इसमें आश्चर्यकी कौन-सी बात है ? जो लोग भगवान्को भगवान् नहीं स्वीकार करते, वही अनेकों प्रकारकी शङ्का-कुशङ्काएँ करते हैं। भगवान्की निम्न छीजमें इन तर्कोंका सर्वथा प्रवेश नहीं है।

गोपियों श्रीकृष्णकी स्त्रीत्व भी या परकीया, यह प्रश्न भी श्रीकृष्णके स्वरूपको सुझाकर ही उठया जाता है। श्रीकृष्ण जीव नहीं हैं कि जगत्की वस्तुओंमें उनका हिस्सेदार दूसरा भी जीव हो। जो कुछ भी था, है और आगे होगा—उसके एकमात्र पति श्रीकृष्ण ही हैं। अपनी प्रार्थनामें गोपियोंने और परीक्षितके प्रश्नके उत्तरमें श्रीशुकदेवजीने यही बात कही है कि गोपी, गोपियोंके पति, उनके पुत्र, सगे-सम्बन्धी और जगत्के समस्त प्राणियोंके हृदयमें आत्मारूपसे, परमात्मारूपसे जो प्रभु स्थित हैं—वही श्रीकृष्ण हैं। कोई भ्रमसे, अज्ञानसे, भले ही श्रीकृष्णको पराया समझे, वे किसीके पराये नहीं हैं, सबके अपने हैं, सब उनके हैं। श्रीकृष्णकी दृष्टिसे, जो कि वास्तविक दृष्टि है, कोई परकीया है ही नहीं; सब स्त्रीया है, सब केवल अपना ही जीजाबिलस हैं, सभी स्वरूपभूता अन्तरङ्गा शक्ति हैं। गोपियों इस बातको जानती थी और स्थान-स्थानपर उन्होंने ऐसा कहा है।

ऐसी स्थितिमें 'जारमाव' और 'औपस्य' का कोई औक्तिक अर्थ नहीं रह जाता। जहाँ काम नहीं है, अङ्ग-सङ्ग नहीं है, वहाँ 'औपस्य' और 'जारमाव' की कल्पना ही कैसे हो सकती है ? गोपियों परकीया नहीं थी, स्त्रीया थी; परन्तु उनमें परकीया-भाव था। परकीया होनेमें और परकीयाभाव होनेमें आकाश-माताका अन्तर है। परकीयाभावमें तीन बातें बड़े महत्त्वकी होती हैं—अपने प्रियतमका निरन्तर चिन्तन, मित्रकी उत्कट उत्प्रेक्षा और दोषदृष्टिका सर्वथा अभाव। स्त्रीयाभावमें निरन्तर एक साथ रहनेके कारण ये तीनों बातें गौण हो जाती हैं; परन्तु परकीया-भावमें ये तीनों भव बने रहते हैं। कुछ गोपियों जारमावसे श्रीकृष्णको चाहती थी, इसका इतना ही अर्थ है कि वे श्रीकृष्णका निरन्तर चिन्तन करती थीं, मित्रके लिये उत्कटित रहती थीं और श्रीकृष्णके प्रत्येक व्यवहारको प्रेमकी आँखोंसे ही देखती थीं। चौथा भव विशेष महत्त्वका और है—वह यह कि स्त्रीया अपने बरका, अपना और अपने पुत्र एवं कन्याओंका पाछन-पोषण, रक्षणालेखण पतिसे चाहती है। वह समझती है कि इनकी देखरेख करना पतिका कर्तव्य है; क्योंकि ये सब उसीके आश्रित हैं, और वह पतिसे ऐसी आश भी रखती है। कितनी ही पतिपरायणा क्यों न हो, स्त्रीयामें यह स्वभावमय छिपा रहता ही है। परन्तु परकीया अपने प्रियतमसे कुछ नहीं चाहती, कुछ भी आशा नहीं रखती; वह तो केवल अपनेको देखर ही उसे सुखी करना चाहती है। श्रीगोपियोंमें यह भाव भी अशीमति प्रफुल्लित था। इसी विशेषताके कारण संस्कृत-साहित्यके कई ग्रन्थोंमें निरन्तर चिन्तनके उदाहरणस्वरूप परकीयाभावका वर्णन आता है।

गोपियोंके इस भावके एक नहीं, अनेक दृष्टान्त श्रीमद्भागवतमें मिलते हैं; इसलिये गोपियोंपर परकीयापनका आरोप उनके भावको न समझनेके कारण है। जिसके जीवनमें साधारण धर्मकी एक हल्की-सी प्रकाशरेखा आ जाती है उसीका जीवन परम पवित्र और दूसरोंके लिये आदर्शस्वरूप बन जाता है। फिर वे गोपियाँ, जिनका जीवन साधनाकी चरम सीमापर पहुँच चुका है, अथवा जो नित्यसिद्ध एवं भगवान्की स्वरूपभूता हैं, या जिन्होंने कर्णोत्तक साधना करके श्रीकृष्णकी कृपासे उनका सेवाविकार प्राप्त कर लिया है, सदाचारका उल्लङ्घन कैसे कर सकती हैं और समस्त धर्म-मर्यादाओंके संस्थापक श्रीकृष्णपर धर्मोल्लङ्घनका अञ्जन कैसे उग्राया जा सकता है ? श्रीकृष्ण और गोपियोंके सम्बन्धमें इस प्रकारकी कुकल्पनाएँ उनके दिव्य स्वरूप और दिव्यजीवाके विषयमें अनभिज्ञता ही प्रकट करती हैं।

श्रीमद्भागवतपर, दशम स्कन्धपर और रासपञ्चाध्यायीपर जबतक अनेकानेक भाष्य और टीकाएँ लिखी जा चुकी हैं—जिनके लेखकोंमें जगद्गुरु श्रीवल्लभाचार्य, श्रीश्रीधरस्वामी, श्रीजीवनेश्वरस्वामी आदि हैं। उन लोगोंने बड़े विस्तारसे रासलीलकी महिमा समझायी है। किसीने इसे कम्पन विजय बतलाया है, किसीने भगवान्‌क दिव्य विहार बतलाया है और किसीने इसका व्याप्यात्मिक अर्थ लिया है। भगवान्‌ श्रीकृष्ण आत्मा हैं। आत्माकार वृत्ति श्रीराधा हैं और शेष आत्माभिमुख वृत्तियाँ गोपियाँ हैं। उनका भाराप्रवाहरूपसे निरन्तर आत्मरमण ही रास है। किसी भी दृष्टिसे देखें, रासलीलकी महिमा अधिकाधिक प्रकट होती है।

परन्तु इससे ऐसा नहीं मानना चाहिये कि श्रीमद्भागवतमें वर्णित रास या रमण-असङ्ग केवल रूपक या कल्पना-मात्र है। वह सर्वथा सत्य है और जैसा वर्णन है वैसा ही मिथुन-विलसादिरूप शृङ्गारका रसाख्यान भी हुआ था। भेद इतना ही है कि वह लौकिक सी-पुरुषोंका मिथुन न था। उसके नायक थे सम्बिदानन्दविग्रह, परात्परतन्त्र, पूर्णतम स्वाधीन और निरङ्कुश स्वेच्छाविहारी गोपीनाथ भगवान्‌ नन्दनन्दन, और नायिका थीं स्वयं ह्लादिनीशक्ति श्रीराधाजी और उनकी कायक्यहूरुपा, उनकी वनीभूत पुर्तियाँ श्रीगोपिजन। अतएव इनकी यह लीला अप्राकृत थी। सर्वथा मीठी मिश्रीकी अत्यन्त कबुए इन्द्रायण (तूँवे)-जैसी कोई आकृति बना ली जाय, जो देखनेमें ठीक तूँवे-जैसी ही मान्य हो; परन्तु इससे असलमें क्या वह मिश्रीका तूँवा कबुआ पोड़े ही हो जाता है? क्या तूँवेके आकारकी होनेसे ही मिश्रीके सामाजिक गुण मधुरताका अभाव हो जाता है? नहीं-नहीं, वह किसी भी आकारमें हो—सर्वत्र, सर्वदा और सर्वथा केवल मिश्री-ही-मिश्री है। बल्कि इसमें लील-चमत्कारकी बात जरूर है। लोग समझते हैं कबुआ तूँवा, और होती है वह मधुर मिश्री। इसी प्रकार अखिलरसामृतसिन्धु सम्बिदानन्दविग्रह भगवान्‌ श्रीकृष्ण और उनकी अन्तरङ्गा अभिन्नरूपा गोपियोंकी लीला भी देखनेमें कैसी ही क्यों न हो, वस्तुतः वह सम्बिदानन्दमयी ही है। उसमें सांसारिक गंदे कामका कबुआ खाद है ही नहीं। हाँ, यह अवश्य है कि इस लीलाकी नकल किसीको नहीं करनी चाहिये, करना सम्भव भी नहीं है। नायिक पदार्थोंके द्वारा मायातीत भगवान्‌का अनुकरण कोई कैसे कर सकता है? कबुए तूँवेको चाहे जैसी सुन्दर मिठाईकी आकृति दे दी जाय, उसका कबुआपन कभी मिट नहीं सकता। इसीलिये जिन मोहप्रसन्न मनुष्योंने श्रीकृष्णकी रास आदि अन्तर्ज्ञ-लीलाओंका अनुकरण करके नायक-नायिकाका रसाख्यान करना चाहा था चाहते हैं, उनका खोर पतन हुआ है और होगा। श्रीकृष्ण-की इन लीलाओंका अनुकरण तो केवल श्रीकृष्ण ही कर सकते हैं। इसीलिये शुक्रदेवजीने रासपञ्चाध्यायीके अन्तमें सबको सावधान करते हुए कह दिया है कि भगवान्‌के उपदेश तो सब मानने चाहिये, परन्तु उनके समी आचरणोंका अनुकरण नहीं करना चाहिये।

जो लोग भगवान्‌ श्रीकृष्णकी केवल मनुष्य मानते हैं, और केवल मानवीय भाव एवं आदर्शकी कसौटीपर उनके चरित्रको कसना चाहते हैं वे पहले ही शास्त्रसे विमुख हो जाते हैं, उनके चित्रमें धर्मकी कोई धारणा ही नहीं रहती और वे भगवान्‌को भी अपनी बुद्धिके पीछे चलावा चाहते हैं। इसलिये साधकोंके सामने उनकी उक्ति-युक्तियोंका कोई महत्त्व ही नहीं रहता। जो शास्त्रके 'श्रीकृष्ण स्वयं भगवान्‌ हैं' इस वचनको नहीं मानता, वह उनकी लीलाओंको किस आधारपर सत्य मानकर उनकी आलोचना करता है—यह समझमें नहीं आता। जैसे मानवधर्म, देवधर्म और पशुधर्म पृथक्-पृथक् होते हैं, वैसे ही भगवद्धर्म भी पृथक् होता है और भगवान्‌के चरित्रका परीक्षण उसकी ही कसौटीपर होना चाहिये। भगवान्‌का एकमात्र धर्म है—प्रेम-परवशता, दयापरवशता और सर्वांगी अस्मिताकी पूर्ति। यशोदाके हाथसे लखलमें बँध जानेवाले श्रीकृष्ण अपने निजजन गोपियोंके प्रेम्मे कारण उनके साथ नाचे, यह उनका सहज धर्म है।

यदि यह हट ही हो कि श्रीकृष्णका चरित्र मानवीय धारणाओं और आदर्शोंके अनुकूल ही होना चाहिये, तो इसमें भी कोई आपत्तिकी बात नहीं है। श्रीकृष्णकी अवस्था उस समय दस वर्षके लगभग थी, जैसा नि

भागवतमें स्पष्ट वर्णन मिलता है। गौर्वीमें रहनेवाले बहुत-से दस कर्षके बच्चे तो नंगे ही रहते हैं। उन्हें काम-वृत्ति और स्त्री-पुरुष-सम्बन्धका कुछ ज्ञान ही नहीं रहता। छद्मे-छद्मी एक साथ खेल्ते हैं, नाचते हैं, गाते हैं, लोहार मनाते हैं, गुदुई-गुदुईकी शब्दी करते हैं, वारात ले जाते हैं और आपसमें मोह-मत्त भी करते हैं। गौर्वके बड़े-बूढ़े लोग बच्चोंका यह मनोरञ्जन देखकर प्रसन्न ही होते हैं, उनके मनमें किसी प्रकारका दुर्भाव नहीं आता। ऐसे बच्चोंको युवती बहियाँ भी बड़े प्रेमसे देखती हैं, आदर करती हैं, नहलाती हैं, खिलाती हैं। यह तो साधारण बच्चोंकी बात है। श्रीकृष्ण-जैसे असाधारण धी-शक्तिसम्पन्न बालक निनके अनेक सद्गुण बाल्यकालमें ही प्रकट हो चुके थे, जिनकी सम्मति, चातुर्थ और शक्तिसे वही-वही विपत्तियोंसे त्रजवासियोंने त्राण पाया था; उनके प्रति बहोंकी स्त्रियों, बालिकाओं और बालकोंका किन्ना आदर रहा होगा—इसकी कल्पना नहीं की जा सकती। उनके सौन्दर्य, माधुर्य और ऐश्वर्यसे आकृष्ट होकर गौर्वकी बालक-बालिकाएँ उनके साथ ही रहती थीं और श्रीकृष्ण भी अपनी मौलिक प्रतिभासे राग, लाल आदि नये-नये ढंगसे उनका मनोरञ्जन करते थे और उन्हें शिक्षा देते थे। ऐसे ही मनोरञ्जनोंमेंसे रासलीला भी एक थी, ऐसा समझना चाहिये। जो श्रीकृष्णको केवल मनुष्य समझते हैं, उनकी दृष्टिमें भी यह शेषकी बात नहीं होनी चाहिये। वे उदारता और बुद्धिमानीके साथ भागवतमें आये हुए काम-रनि आदि शब्दोंका ठीक वैसा ही अर्थ समझे, जैसा कि उपनिषद् और गीतामें इन शब्दोंका अर्थ होता है। वास्तवमें गोपियोंके निष्कपट प्रेमका ही नामान्तर काम है और भगवान् श्रीकृष्णका आत्मरमण अथवा उनकी दिव्य कीर्ति ही रति है। इसीलिये स्थान-स्थानपर उनके लिये विष्णु, परमेश्वर, कृष्णीपति, भगवान्, योगेश्वरेश्वर, आत्माराम, मन्मथमन्मथ आदि शब्द आये हैं—जिससे किसीको कोई भ्रम न हो जाय।

जब गोपियों श्रीकृष्णकी बंसीध्वनि सुनकर मनमें जाने लगी थी, तब उनके सगे-सम्बन्धियोंने उन्हें जानेसे रोका था। रातमें अपनी बालिकाओंको भोज, कौन बाहर जाने देता। फिर भी वे चली गयीं और इससे घर-बाजोंको किसी प्रकारकी अप्रसन्नता नहीं हुई। और न तो उन्होंने श्रीकृष्णपर या गोपियोंपर किसी प्रकारका खल्लन ही लगाया। उनका श्रीकृष्णपर, गोपियोंपर विश्वास था और वे उनके वचन और खेलोंसे परिचित थे। उन्हें तो ऐसा मान्य हुआ मानो गोपियों हमारे पास ही हैं। इसको दो प्रकारसे समझ सकते हैं। एक तो यह कि श्रीकृष्णके प्रति उनका इतना विश्वास था कि श्रीकृष्णके पास गोपियोंका रहना भी अपने ही पास रहना है। यह तो मानवीय दृष्टि है। दूसरी दृष्टि यह कि श्रीकृष्णकी योगमायाने ऐसी व्यवस्था कर रखी थी, गोपोंको वे घरमें ही हीखती थीं। किसी भी दृष्टिसे रासलीला दूषित प्रसङ्ग नहीं है, बल्कि अधिकारी पुरुषोंके लिये तो यह सम्पूर्ण मनोमलको नष्ट करनेवाला है। रासलीलाके अन्तमें कहा गया है कि जो पुरुष अज्ञा-भक्तिपूर्वक रास-लीलाका श्रवण और वर्णन करता है, उसके हृदयका रोग कम बहुत ही शीघ्र नष्ट हो जाता है और उसे भगवान्का प्रेम प्राप्त होता है। भागवतमें अनेक स्थानपर ऐसा वर्णन आता है कि जो भगवान्की मायाका वर्णन करता है, वह मग्नसे पार हो जाता है। जो भगवान्के कामजयका वर्णन करता है, वह कामपर विजय प्राप्त करता है। राजा परीक्षितने अपने प्रश्नोंमें जो शङ्काएँ की हैं, उनका उत्तर प्रश्नोंके अत्ररूप ही अर्थात् २९ के श्लोक १३ से १६ तक और अध्याय ३३ के श्लोक ३० से ३७ तक श्रीशुकदेवजीने दिया है।

उस उत्तरसे ये शङ्काएँ तो हट गयी हैं, परन्तु भगवान्की दिव्यलीलाका रहस्य नहीं खुलने पाया; सम्भवतः उस रहस्यकी गुप्त रखनेके लिये ही ३३ वें अध्यायमें रासलीलाप्रसङ्ग समाप्त कर दिया गया। वस्तुतः इस लीलाके गूढ़ रहस्यकी प्राकृत-जगत्में व्याख्या की भी नहीं जा सकती। क्योंकि यह इस जगत्की कीर्ति ही नहीं है। यह तो उस दिव्य ज्ञानन्दय रसमय राज्यकी चमत्कारमयी लीला है, जिसके श्रवण और दर्शनके लिये परमहंस मुनिगण भी सदा उत्कण्ठित रहते हैं। कुछ लोग इस लीला-प्रसङ्गको भागवतमें श्लेषक मानते हैं, वे

चौतीसवाँ अध्याय

सुदर्शन और शङ्खचूडका उद्धार

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित । एक बार नन्दबाबा आदि गोपोंने शिवरात्रिके अवसरपर बड़ी उत्सुकता, कौतूहल और आनन्दसे भरकर बैठे। उसी क्षण गङ्गा नदी बहती हुई गङ्गाधरोंपर सवार होकर अम्बिकावनकी यात्रा की ॥ १ ॥ राजन् । वहाँ उन लोगोंने सरस्वती नदीमें स्नान किया और सर्वाङ्गान्तर्गामी पञ्चपति भगवान् शङ्करजीका तथा भगवती अम्बिकाजीका बड़ी भक्तिसे अनेक प्रकारकी सामग्रियोंके द्वारा पूजन किया ॥ २ ॥ वहाँ उन्होंने आदरपूर्वक गौरों, सोया, कसर, मधु और मधुर अन्न ब्राह्मणोंको दिये तथा उनको खिलवा-पिलाया । वे कैवल्य यही चाहते थे कि इससे देवाधिपति भगवान् शङ्कर हमपर प्रसन्न हों ॥ ३ ॥ उस दिन परम भाग्यवान् नन्द-मुनन्द आदि गोपोंने उपवास कर रक्खा था, इसलिये वे लोग कैवल्य जल पीकर रातके समय सरस्वती नदीके तटपर ही बैठे-ठके सो गये ॥ ४ ॥

उस अम्बिकावनमें एक बड़ा भारी अजगर रहता था । उस दिन वह भूखा भी बहुत था । दैववश वह उभर ही आ निकला और उसने सोये हुए नन्दजीको पकड़ लिया ॥ ५ ॥ अजगरके पकड़ लेनेपर नन्दरायजी चिल्लाने लगे—‘बेटा कृष्ण ! कृष्ण ! दौड़ो, दौड़ो । देखो बेटा ! यह अजगर मुझे निगल रहा है । मैं तुम्हारी चरणमें हूँ । जल्दी-मुझे इस सङ्कटसे बचाओ’ ॥ ६ ॥ नन्दबाबाका चिल्लाना सुनकर सबके-सब गोप एकाएक उठ खड़े हुए और उन्हें अजगरके मुँहमें देखकर वचका गये । अब वे लुकाटियों (अण्डजकी ज्वलितियों) से उस अजगरको मारने लगे ॥ ७ ॥ किन्तु लुकाटियोंसे मारे

जाने और जलनेपर भी अजगरने नन्दबाबाको छोड़ा नहीं । इतनेमें ही भक्तवत्सल भगवान् श्रीकृष्णने वहाँ पहुँचकर अपने चरणोंसे उस अजगरको छू दिया ॥ ८ ॥ भगवान्के श्रीचरणोंका स्पर्श होते ही अजगरके सारे अङ्गुल मसम हो गये और वह उसी क्षण अजगरका शरीर छोड़कर विद्याधराचित्त सर्वाङ्गसुन्दर रूपवान् बन गया ॥ ९ ॥ उस पुरुषके शरीरसे दिव्यज्योति निकल रही थी । वह सोनेके हार पहने हुए था । जब वह प्रणाम करनेके बाद हाथ जोड़कर भगवान्के सामने खड़ा हो गया, तब उन्होंने उससे पूछा—॥ १० ॥ ‘तुम कौन हो ? तुम्हारे अङ्ग-अङ्गसे सुन्दरता बहती पड़ती है । तुम देखनेमें बड़े अद्भुत जान पड़ते हो । तुम्हें यह अत्यन्त मिन्दनीय अजगर-योनि क्यों प्राप्त हुई थी ? अवश्य ही तुम्हें विश्वास होकर इसमें आना पड़ा होगा’ ॥ ११ ॥

अजगरके शरीरसे निकला हुआ पुरुष बोला— भगवान् । मैं पहले एक विद्याधर था । मेरा नाम था सुदर्शन । मेरे पास सौन्दर्यतो था ही, लक्ष्मी भी बहुत थी । इससे मैं विमानपर चढ़कर यहाँ-से-यहाँ घूमता रहता था ॥ १२ ॥ एक दिन मैंने अङ्गिरा गोत्रके कुरूप ऋषियोंको देखा । अपने सौन्दर्यके धर्मबसे मैंने उनकी हँसी उखाड़ी । मेरे इस अपराधसे क्रुपित होकर उन लोगोंने मुझे अजगर-योनिमें जानेका शाप दे दिया । यह मेरे पापोंका ही फल था ॥ १३ ॥ उन कुरूप ऋषियोंने अनुग्रहके लिये ही मुझे शाप दिया था । क्योंकि यह उसीका प्रभाव है कि आज चराचरके गुरु स्वयं आपने अपने चरणकमलोंसे मेरा स्पर्श किया है, इससे मेरे सारे अङ्गुल

वास्तवमें दुराग्रह करते हैं । क्योंकि प्राचीन-से-प्राचीन प्रतियोंमें भी यह प्रसङ्ग मिलता है और जरा विचार करके देखनेसे यह सर्वथा सुसंगत और निर्दोष प्रतीत होता है । भगवान् श्रीकृष्ण कृपा करते ऐसी विमल मुद्रि दें, जिससे हमलोग इसका कुछ रहस्य समझनेमें समर्थ हों ।

भगवान्के इस दिव्य-क्रीलाके वर्णनका यही प्रयोजन है कि जीव गोपियोंके उस अद्वैतक प्रेमका, जो कि श्रीकृष्णको ही सुख पहुँचानेके लिये था, स्मरण करे और उसके द्वारा भगवान्के रसमय दिव्यलीलाकेमें भगवान्के अनन्त प्रेमका अनुभव करे । हमें रासलीलाका अध्ययन करते समय किसी प्रकारकी भी शङ्का न करके इस भावको जगाये रखना चाहिये । —इतुमानप्रसाद पोद्दार

नष्ट हो गये ॥ १४ ॥ समस्त पापोंका नाश करनेवाले प्रभो ! जो लोग जन्म-मृत्युरूप संसारसे मयभीत होकर आपके चरणोंकी शरण ग्रहण करते हैं, उन्हें आप समस्त मयोंसे मुक्त कर देते हैं । अब मैं आपके श्रीचरणोंके स्पर्शसे शापसे छूट गया हूँ और अपने लोकमें बानेकी अनुमति चाहता हूँ ॥ १५ ॥ भक्तवत्सल ! महायोगेश्वर पुरुषोत्तम ! मैं आपकी शरणमें हूँ । इन्द्रादि समस्त लोकेश्वरोंके परमेश्वर ! स्वयंप्रकाश परमात्मन् ! मुझे आज्ञा दीजिये ॥ १६ ॥ अपने स्वरूपमें नित्य-निर्गुण एकतरस रहनेवाले अभ्युत ! आपके दर्शनमात्रसे मैं ब्राह्मणोंके शापसे मुक्त हो गया, यह कोई आश्चर्यकी बात नहीं है; क्योंकि जो पुरुष आपके नामोंका उच्चारण करता है, वह अपने-आपको और समस्त श्रोताओंको भी तुरंत पवित्र कर देता है । फिर मुझे तो आपने स्वयं अपने चरणकमलोंसे स्पर्श किया है । तब भज, मेरी मुक्तिमें क्या सन्देह हो सकता है ? ॥ १७ ॥ इस प्रकार सुदर्शनने भगवान् श्रीकृष्णसे विनती की, परिक्रमा की और प्रणाम किया । फिर उनसे आज्ञा लेकर वह अपने लोकमें चला गया और गन्धर्वाभा इस भारी सङ्कटसे छूट गये ॥ १८ ॥ राजन् ! जब ब्रजवासियोंने भगवान् श्रीकृष्णका यह अद्भुत प्रमाण देखा, तब उन्हें बड़ा विलम्ब हुआ । उन लोगोंने उस क्षेत्रमें जो नियम के रखते थे, उनको पूर्ण करके वे बड़े आदर और प्रेमसे श्रीकृष्णकी उस छीजका गान करते हुए पुनः ब्रजमें छीट आये ॥ १९ ॥

एक दिनकी बात है, अलौकिक कर्म करनेवाले भगवान् श्रीकृष्ण और बलरामजी रात्रिके समय वनमें गोपियोंके साथ विहार कर रहे थे ॥ २० ॥ भगवान् श्रीकृष्ण निर्मल पीताम्बर और बलरामजी नीलाम्बर धारण किये हुए थे । दोनोंके गलेमें कूर्जोंके सुन्दर-सुन्दर हार लटक रहे थे तथा शरीरों अङ्गराग, सुगन्धित चन्दन लगा हुआ था और सुन्दर-सुन्दर आभूषण पहने हुए थे । गोपियाँ बड़े प्रेम और आनन्दसे अलित स्त्रियों की गुणोंका गान कर रही थीं ॥ २१ ॥ अमी-अमी साथझूझ हुआ था । आकाशमें तारे उग आये थे और चाँदनी छिटक रही थी । बेछोके सुन्दर गन्धसे मतवाले होकर मीरे श्वर-उधर गुनगुना रहे थे तथा जलजलमें

खिली हुई कुसुमिनीकी सुगन्ध लेकर वायु मन्द-मन्द चल रही थी । उस समय उनका सम्मान करते हुए भगवान् श्रीकृष्ण और बलरामजीने एक ही साथ मिलकर राग अञ्जना । उनका राग आरोह-अवरोह खरोंके चढ़ाव-उतारसे बहुत ही सुन्दर लगा रहा था । वह अङ्गुलके समस्त प्राणियोंके मन और कानोंको आनन्द-से भर देनेवाला था ॥ २२-२३ ॥ उनका यह गान सुनकर गोपियाँ मोहित हो गयीं । परीक्षित ! उन्हें अपने शरीरकी भी झुबि नहीं रही कि वे उसपरसे किसकते हुए बहों और चोटियोंसे निखरते हुए पुष्पोंको सम्हाल सकें ॥ २४ ॥

जिस समय बलराम और स्वाम दोनों भाई इस प्रकार खण्डूद विहार कर रहे थे और उन्मत्तकी भाँति गा रहे थे, उसी समय वहाँ शङ्खचूड़ नामका एक यक्ष आया । वह कुबेरका अनुचर था ॥ २५ ॥ परीक्षित ! दोनों माइयोंके देखते-देखते वह उन गोपियोंको लेकर बेछटके उत्तरकी ओर भाग चला । जिनके एकमात्र स्वामी भगवान् श्रीकृष्ण ही हैं, वे गोपियाँ उस समय रो-रोकर चिल्लाते लगीं ॥ २६ ॥ दोनों माइयोंने देखा कि जैसे कोई झकू गौओंको छूट के जाय, वैसे ही यह यक्ष हमारी प्रियसियोंको छिने जा रहा है और वे 'हा कृष्ण ! हा राम !' पुकारकर रो-पीड रही हैं । उसी समय दोनों भाई उसकी ओर दौड़ पड़े ॥ २७ ॥ 'बरो मत, बरो मत' इस प्रकार अमयवाणी कहते हुए हाथमें शालका बूझ लेकर बड़े बेगसे क्षणभरमें ही उस नीच यक्षके पास पहुँच गये ॥ २८ ॥ यक्षने देखा कि काळ और मृत्युके समान ये दोनों भाई मेरे पास आ पहुँचे । तब वह मूढ़ धबड़ा गया । उसने गोपियोंको तो नहीं छोड़ दिया, स्वयं प्राण बचानेके लिये भागा ॥ २९ ॥ तब स्त्रियोंकी रक्षा करनेके लिये बलरामजी तो नहीं खड़े रह गये, परन्तु भगवान् श्रीकृष्ण जहाँ-जहाँ वह जागकर गया, उसके पीछे-पीछे दौड़ते गये । वे चाहते थे कि उसके सिरकी चूड़ामणि निकाल लें ॥ ३० ॥ कुछ ही दूर जानेपर भगवान्ने उसे पकड़ लिया और उस डूबके सिरपर वस्त्रकर एक घूँसा जमाया और चूड़ामणिके साथ उसका सिर भी चढ़से अलग कर

लिया ॥ ३१ ॥ इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्ण शङ्खचूड़को मारकर और वह चमकीली मणि लेकर छोट आये तथा

सब गोपियोंके सामने ही उन्होंने बड़े प्रेमसे वह मणि वदे माई बलरामजीको दे दी ॥ ३२ ॥

पैंतीसवाँ अध्याय

शुगलगीत

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित ! मन्वान् श्रीकृष्णके गौओंको चरानेके लिये प्रतिदिन वनमें चले जाने-पर उनके साथ गोपियोंका चित्त भी चला जाता था । उनका मन श्रीकृष्णका चिन्तन करता रहता और वे बाणीसे उनकी लीलाओंका गान करती रहतीं । इस प्रकार वे बड़ी कठिनाईसे अपना दिन बितातीं ॥ १ ॥

गोपियाँ आपसमें कहतीं—अरी सखी ! अपने प्रेमी-जनकों प्रेम वितरण करनेवाले और द्वेष करनेवालोंतकको मोक्ष दे देनेवाले इयामसुन्दर नटनगर जब अपने बायें कपोलको बायाँ बाँहकी ओर छट्फा देते हैं और अपनी माँहिं नचाते हुए बाँसुरीको अघोरसे लगाते हैं तथा अपनी झुकमार अंगुलियोंको उसके छेदोंपर फिराते हुए मधुर तान छेड़ते हैं, उस समय सिद्धपक्षियाँ आकाशमें अपने पति सिद्धगणोंके साथ विमानोंपर चढ़कर आ जाती हैं और उस तानको सुनकर अत्यन्त ही चकित तथा विस्मित हो जाती हैं । पहले तो उन्हें अपने पतियोंके साथ रहनेपर भी चित्तकी यह दशा देखकर रज्जा माझम होती है; परन्तु क्षणभरमें ही उनका चित्त कामबाणसे बिंध जाता है, वे विवश और अचेत हो जाती हैं । उन्हें इस बातकी भी सुधि नहीं रहती कि उनकी नीबी खुल गयी है और उनके वक्त्र खिसक गये हैं ॥ २-३ ॥

अरी गोपियो ! तुम यह आश्चर्यकी बात सुनो ? ये नन्दनन्दन कितने सुन्दर हैं । जब वे हँसते हैं तब हास्यरेखाएँ हारका रूप धारण कर लेती हैं, शुभ्र मोती-सी चमकने लगती हैं । अरी वीर ! उनके वक्त्रःस्वलपर लहराते हुए हारमें हास्यकी विरणें चमकने लगती हैं । उनके वक्त्रःस्वलपर जो श्रीकृष्णकी सुनहली रेखा है, वह तो ऐसी जान पड़ती है, मानो इयाम मेघपर बिजली ही स्फिरूपसे बैठ गयी है । वे जब दुखीजनकोंको सुख देनेके लिये, विरहियोंके धृतक शरीरमें प्राणोंका सञ्चार

करनेके लिये बाँसुरी बजाते हैं, तब वनके झुंड-के-झुंड बैल, गौएँ और हरिन उनके पास ही दौड़ आते हैं । केवल आते ही नहीं, सखी ! दौँतोंसे-चन्नाया हुआ वासकत्रास उनके मुँहमें ज्यों-का-यों पड़ा रह जाता है, वे उसे न निगल पाते और न तो उगल ही पाते हैं । दोनों कान खड़े करके इस प्रकार स्मिरभावसे खड़े हो जाते हैं, मानो सो गये हैं या केवल भीतपर खिड़े हुए पत्र हैं । उनकी ऐसी दशा होना सामान्य ही है, क्योंकि यह बाँसुरीकी तान उनके चित्तको चुरा लेती है ॥ ४-५ ॥

हे सखि ! जब वे नन्दके लाड़ले काल अपने स्तिर-पर मोरपंखका मुकुट बाँध लेते हैं, धुँधराही अलकोंमें झलके गुच्छे खीस लेते हैं, रंगीन धातुओंसे अपना अङ्ग-अङ्ग रँग लेते हैं और भये-भये पल्लवोंसे ऐसा वेध सजा लेते हैं, जैसे कोई बहुत बड़ा पहलवान हो और फिर बलरामजी तथा गालगालोंके साथ बाँसुरीमें गौओंका नाम ले-लेकर उन्हें पुकारते हैं; उस समय प्यारी सखियो ! नदियोंकी गति भी रुक जाती है । वे चाहती हैं कि वधु उदाकर हमारे प्रियतमके चरणोंकी धूलि हमारे पास पहुँचा दे और उसे पाकर हम निहाल हो जाएँ, परन्तु सखियो ! वे भी हमारेही-जैसी भन्दभागिनी हैं । जैसे नन्दनन्दन श्रीकृष्णका आकिर्णन करते समय हमारी सुजाएँ काँप जाती हैं और जङ्घारूप सञ्चारीभावका उदय हो जानेसे हम अपने हाथोंको हिलान भी नहीं पातीं, वैसे ही वे भी प्रेमके कारण काँपने लगती हैं । दो-चार बार अपनी तरङ्गरूप सुजाओंको काँपते-काँपते उछाती तो अवश्य हैं, परन्तु फिर विवश होकर स्थिर हो जाती हैं, प्रेमावेशसे सम्मिश्र हो जाती हैं ॥ ६-७ ॥

अरी वीर ! जैसे देवता जग अनन्त और अचिन्त्य ऐश्वर्योंके स्वामी भगवान् नारायणकी शक्तियोंका गान

करते हैं, वैसे ही ग्वालबाळ अनन्तसुन्दर नटनागर श्रीकृष्णकी लीलाओंका गान करते रहते हैं। वे अचिन्त्य-ऐश्वर्य-सम्पन्न श्रीकृष्ण जब वृन्दावनमें विहार करते रहते हैं और बोंसुरी बजाकर गिरिराज गोवर्धनकी तराईमें चरती हुई गौओंको नाम लेतेकर पुकारते हैं, उस समय बनके वृक्ष और लताएँ फूल और फलोंसे उद जाती हैं, उनके भारसे ढालियाँ झुककर भरती छूने लगती हैं, मानो प्रणाम कर रही हों, वे वृक्ष और लताएँ अपने भीतर भगवान् विष्णुकी अभिव्यक्ति सूचित करती हुई-सी प्रेमसे फूल उठती हैं, उनका रोम-रोम खिल जाता है और सब-की-सब मधुधाराएँ उँकेलने लगती हैं ॥ ८-९ ॥

अरी सखी ! जितनी भी वस्तुएँ संसारमें या उसके बाहर देखनेयोग्य हैं, उनमें सबसे सुन्दर, सबसे मधुर, सबके शिरोमणि है—ये हमारे मनमोहन। उनके सोंबले छटाटपर केसरकी लौर कितनी फवती है—बस, देखती ही जाओ। गलेमें घुटनौतक फटकती हुई कमाल, उसमें पिरोयी हुई तुलसीकी दिव्य गन्ध और मधुर मधुसे मतभाले होकर झुंझ-के-झुंझ भीरे बड़े मनोहर एवं उब खरसे गुंजार करते रहते हैं। हमारे नटनागर श्यामसुन्दर भीरोंकी उस गुनगुनाहटका आदर करते हैं और उन्हेंकि खरमें-खर मिलाकर अपनी बोंसुरी फँकने लगते हैं। उस समय सखि ! उस मुनिजनमोहन संगीतको सुनकर सरोवरमें रहनेवाले सारस-हंस आदि पक्षियोंका भी चित्त उनके हाथसे निकल जाता है, छिन जाता है। वे विवश होकर प्यारे श्यामसुन्दरके पास आ बैठते हैं तथा ओंखें मूँद, चुपचाप, चित्त एकाग्र करके उनकी आराधना करने लगते हैं—मानो कोई विहङ्गम-वृत्तिके रसिक परमईस ही हों, मला कइ तो यह कितने आश्चर्यकी बात है। ॥ १०-११ ॥

अरी ब्रजदेवियो ! हमारे श्यामसुन्दर जब पुष्पोंके कुण्डल बनाकर अपने कानोंमें धारण कर लेते हैं और बलरामजीके साथ गिरिराजके भिन्नरोंपर खड़े होकर सारे जगत्की हर्षित करते हुए बोंसुरी बजाने लगते हैं—बोंसुरी क्या बजाते हैं, आनन्दमें भरकर उसकी ध्वनिके द्वारा सारे विश्वका आलङ्कन करने लगते हैं—

उस समय श्याम भेष बोंसुरीकी तानके साथ मन्द-मन्द गरजने लगता है। उसके चित्तमें इस बातकी शङ्का बनी रहती है कि कहीं मैं जोरसे गर्जना कर उठूँ और वह कहीं बोंसुरीकी तानके विपरीत पड़ जाय, उसमें बेसुरापन ले जाये, तो मुझसे महात्मा श्रीकृष्णका अपराध हो जायगा। सखी ! वह इतना ही नहीं करता; वह जब देखता है कि हमारे सखा धनश्यामको घाम लगा रहा है, तब वह उनके ऊपर आकर छाया कर लेता है, उनका छत्र बन जाता है। अरी वीर ! वह तो प्रसन्न होकर बड़े प्रेमसे उनके ऊपर अपना जीवन ही निछावर कर देता है—नन्ही-मन्ही फुहियोंके रूपमें ऐसा बरसने लगता है, मानो दिव्य पुष्पोंकी वर्षा कर रहा हो। कभी-कभी कादंबेकी ओठमें छिपकर देवताछोग भी पुष्पवर्षा कर जाया करते हैं ॥ १२-१३ ॥

सतीशिरोमणि यशोदाजी ! तुम्हारे सुन्दर कुँवर ग्वालबाळोंके साथ खेल खेलनेमें बड़े निपुण हैं। रानीजी ! तुम्हारे जबले काळ सबके प्यारे तो हैं ही, चतुर भी बहुत हैं। देखो, उन्होंने बोंसुरी बजाना किसीसे सीखा नहीं। अपने ही अनेकों प्रकारकी राग-रागिनियों उन्होंने निकाल ली। जब वे अपने बिम्बा-फळसदृश लाल-लाल अश्रुओंपर बोंसुरीरखकर श्वाभ, मिचाद आदि खरोंकी अनेक जातियों बजाने लगते हैं, उस समय बंधीकी परम मोहिली और कभी तान सुनकर ब्रह्मा, शङ्कर और इन्द्र आदि बड़े-बड़े देवता भी—जो सर्वह हैं—उसे नहीं पहचान पाते। वे इतने मोहित हो जाते हैं कि उनका चित्त तो उनके रोकनेपर भी उनके हाथसे निकलकर बंधी-ध्वनिमें तल्लीन हो ही जाता है, सिर भी झुक जाता है, और वे अपनी सुष-शुष खोकर उसीमें तन्मय हो जाते हैं ॥ १४-१५ ॥

अरी वीर ! उनके चरणकमलोंमें ध्वजा, वज्र, कमल अङ्गुश आदिके विचित्र और सुन्दर-सुन्दर चिह्न हैं। जब ब्रजधूमि गौओंके खुरसे खुद जाती है, तब वे अपने सुकुमार चरणोंसे उसकी पीड़ा मिटाते हुए गबरानके समान मन्दगतिसे आते हैं और बोंसुरी भी बजाते रहते हैं। उनकी वह कशीध्वनि, उनकी वह चाल और उनकी वह किञ्चसमरी चितवन हमारे हृदयने प्रेमका,

मिथनकी आकांक्षाका आवेग बढ़ा देती है। हम उस समय इतनी मुग्ध, इतनी मोहित हो जाती हैं कि हिङ्गु-कोलक नहीं सकती, मानो हम जड़ वृक्ष हों। हमें तो इस बातका भी पता नहीं चलता कि हमारा जड़ा खुल गया है या बँधा है, हमारे शरीरपरका वज्र उतर गया है या है ॥ १६-१७ ॥

अरी धीर ! उनके गलेमें मणियोंकी माछ बहुत ही भली माछम होती है। तुलसीकी मधुर गन्ध उन्हें बहुत प्यारी है। इसीसे तुलसीकी माछको तो वे कभी छोड़ते ही नहीं, सदा धारण किये रहते हैं। जब वे श्यामसुन्दर उस मणियोंकी माछसे गौओंकी भिन्ती करते-करते किसी प्रेमी सखाके गलेमें बाँह डाल देते हैं और भाव बता-बताकर बाँसुरी बजाते हुए गाने लगते हैं, उस समय बजती हुई उस बाँसुरीके मधुर स्वरसे मोहित होकर कृष्णसार भृगोंकी पत्नी हरिनिर्घो भी अपना चित्त उनके चरणोंपर निछावर कर देती हैं और जैसे हम गोपियों अपने घर-गृहस्थीकी आशा-अभिलाषा छोड़कर गुणसागर नागर नन्दनन्दनको घेरे रहती हैं, वैसे ही वे भी उनके पास दौब आती हैं और वहाँ एकटक देखती हुई खड़ी रह जाती हैं, जौटनेका नाम भी नहीं लेती ॥ १८-१९ ॥

मन्दरानी यशोदाजी ! वास्तवमें तुम वही पुण्यवती हो। तभी तो तुम्हें ऐसे पुत्र मिले हैं। तुम्हारे वे छाबले काळ बड़े प्रेमी हैं, उनका चित्त बड़ा कोमल है। वे प्रेमी सखाओंको तरह-तरहसे हास-परिहास-के द्वारा सुख पहुँचाते हैं। कुन्दकलीका हार पहनकर जब वे अपनेको विचित्र वेषमें सजा लेते हैं और ग्वालबाल तथा गौओंके साथ यमुनाजीके तटपर खेलने लगते हैं, उस समय मलयज चन्दनके समान शीतल और सुगन्धित स्पर्शसे मन्द-मन्द अनुकूल बहकर वायु तुम्हारे लालकी सेवा करती है और गन्धर्व जाति उपदेवता बंदीजनोंके समान गान-बजाकर उन्हें सन्तुष्ट करते हैं तथा अनेकों प्रकारकी मूर्ते देते हुए सब ओरसे घेरकर उनकी सेवा करते हैं ॥ २०-२१ ॥

अरी सखी ! श्यामसुन्दर ब्रजकी गौबोंसे बड़ा प्रेम करते हैं। इसीलिये तो उन्होंने गोवर्धन धारण किया था। अब वे सब गौओंको जौटाकर आते ही होंगे;

देखो, सायङ्काल हो चला है। तब इतनी देर क्यों होती है, सखी ! रास्तेमें बड़े-बड़े ब्रह्मा आदि वयोवृद्ध और शङ्कर आदि ज्ञानवृद्ध उनके चरणोंकी कन्दना जो करने लगते हैं ! अब गौओंके पीछे-पीछे बाँसुरी बजाते हुए वे आते ही होंगे। ग्वालबाल उनकी कीर्तिका गान कर रहे होंगे। देखो न, यह क्या आ रहे हैं। गौओंके खुरोंसे उड़-उड़कर बहुत-सी धूल वनमाछापर पड़ गयी है। वे दिनभर जंगलोंमें घूमते-घूमते एक गये हैं। फिर भी अपनी इस शोभासे हमारी आँखोंको कितना सुख, कितना आनन्द दे रहे हैं। देखो, ये यशोदाकी कोखसे प्रकट हुए सबको आह्लादित करने-वाले कन्दमा हम प्रेमी जनोंकी भलाईके लिये, हमारी आशा-अभिलाषाओंको पूर्ण करनेके लिये ही हमारे पास चले आ रहे हैं ॥ २२-२३ ॥

सखी ! देखो कैसा सौन्दर्य है ! मदमरी आँखें कुछ चढ़ी हुई हैं। कुछ-कुछ लज्जा लिये हुए कैसी भली जान पड़ती हैं। गलेमें वनमाछा लहरा रही है। सोनेके कुण्डलोंकी कान्तिसे वे अपने कोमल कपोलों-को अलङ्कृत कर रहे हैं। इसीसे मुँहपर अथपके बैरके समान कुछ पीलापन जान पड़ता है। और रोम-रोमसे विशेष करके मुखकमलसे प्रसभता झट्टी पड़ती है। देखी, अब वे अपने सखा ग्वालबालोंका सम्मान करके उन्हें विदा कर रहे हैं। देखो, देखो सखी ! ब्रज-विभूषण श्रीकृष्ण गजराजके समान मदमरी पाखरे इस सन्ध्या बेलामें हमारी ओर आ रहे हैं। अब ब्रजमें रहनेवाली गौओंका, हमझोंगोंका दिनभरका असह्य निरह-ताप मिटानेके लिये उदित होनेवाले चन्द्रमाकी मूर्ति ये हमारे प्यारे श्यामसुन्दर समीप चले आ रहे हैं ॥ २४-२५ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित् ! बड़भागिनी गोपियोंका मन श्रीकृष्णमें ही लगा रहता था। वे श्रीकृष्णमय हो गयी थीं। जब भगवान् श्रीकृष्ण दिनोंमें गौओंको चरानेके लिये वनमें चले जाते, तब वे उन्हींका चिन्तन करती रहतीं और अपनी-अपनी सखियोंके साथ कलम-कलम उन्हींकी छिछाओंका गान करके उसीमें रम जातीं। इस प्रकार उनके दिन बीत जाते ॥ २६ ॥

छत्तीसवाँ अध्याय

अरिष्टासुरका उद्धार और कंसका श्रीमद्वरजीको ब्रज मेजना

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित् । जिस समय भगवान् श्रीकृष्ण ब्रजमें प्रवेश कर रहे थे और वहाँ आनन्दोत्सवकी धूम मची हुई थी, उसी समय अरिष्टासुर नामका एक दैत्य बैलका रूप धारण करके आया । उसका ककुद् (कंचेका पुट्टा) या झुआ और ढील-ढौल दोनों ही बहुत बड़े-बड़े थे । वह अपने छुरोंको इतने जोरसे पटक रहा था कि उससे धरती काँप रही थी ॥ १ ॥ वह बड़े जोरसे गर्ज रहा था और पैरोंसे धूल उछाळता जाता था । पूँछ खड़ी किये हुए था और सींगोंसे चहारदीवारी, खेतोंकी मेंढ आदि तोड़ता जाता था ॥ २ ॥ बीच-बीचमें बार-बार मृतका और गोबर छोड़ता जाता था । आँखें फाटकर इधर-उधर दौड़ रहा था । परीक्षित् । उसके जोरसे हँकबनेसे—निष्ठुर गर्जनासे भयवश बियों और गौओंके सीन-बार महीनेके गर्भ क्षति हो जाते थे और पाँच-छः महीनेके गिर जाते थे । और तो क्या कहूँ, उसके ककुद्को पर्वत समझकर बादल उसपर आकर ठहर जाते थे ॥ ३-४ ॥ परीक्षित् । उस तीखे सींगवाले बैलको देखकर गोपियों और गोप सभी भयभीत हो गये । पशु तो इतने डर गये कि अपने रहनेका स्थान छोड़कर भाग ही गये ॥ ५ ॥ उस समय सभी ब्रजवासी 'श्रीकृष्ण ! श्रीकृष्ण ! हमें इस भयसे बचाओ' इस प्रकार पुकारते हुए भगवान् श्रीकृष्णकी शरणमें आये । भगवान्ने देखा कि हमारा गोकुल अत्यन्त भयानुर हो रहा है ॥ ६ ॥ तब उन्होंने 'हरनेकी कोई बात नहीं है'—यह कहकर सबको दाढ़स बँधाया और फिर दृष्टासुरको छलकारा, 'अरे मूर्ख ! महादुष्ट ! तू इन गौओं और ग्वालोकों क्यों डरा रहा है ? इससे क्या होगा ॥ ७ ॥ देख, तुझ-जैसे दुरात्मा दुष्टोंके वलका धर्मद चूर-चूर कर देनेवाला यह मैं हूँ ।' इस प्रकार छलकारकर भगवान्ने ताल ठोंकी और उसे क्रोधित करनेके लिये वे अपने एक सखाके गलेमें बाँह डालकर खड़े हो गये । भगवान् श्रीकृष्णजी इस चुनौतीसे वह क्रोधके मारे तिलमिल उठ और अपने छुरोंसे बड़े

जोरसे धरती खोदता हुआ श्रीकृष्णकी ओर झपटा । उस समय उसकी उखयी हुई पूँछके धक्केसे आकाशके बादल तितर-बितर होने लगे ॥ ८-९ ॥ उसने अपने तीखे सींग आगे कर लिये । छल-छाल बाँझोंसे टकटकी लगाकर श्रीकृष्णकी ओर टेढ़ी नजरसे देखता हुआ वह ऊपर इतने वेगसे दूट्य, मानो हनुके हाथसे छोड़ा हुआ वज्र हो ॥ १० ॥ भगवान् श्रीकृष्णने अपने दोनों हाथोंसे उसके दोनों सींग पकड़ लिये और जैसे एक हाथी अपनेसे मिटनेवाले दूसरे हाथीको पीछे हटा देता है, वैसे ही उन्होंने उसे अठारह पग पीछे ठेलकर गिरा दिया ॥ ११ ॥ भगवान्के इस प्रकार ठेल देनेपर वह फिर तुरत ही उठ खड़ा हुआ और क्रोधसे अचेत होकर लथे-लथी साँस छोड़ता हुआ फिर ऊपर झपटा । उस समय उसका सारा शरीर पसीनेसे छपप हो रहा था ॥ १२ ॥ भगवान्ने जब देखा कि वह अब मुझपर प्रहार करना ही चाहता है, तब उन्होंने उसके सींग पकड़ लिये और उसे जल मारकर जमीनपर गिरा दिया और फिर पैरोंसे दबाकर इस प्रकार उसका कंधुमर निकाल, जैसे कोई गीला कपड़ा निचोड़ रहा हो । इसके बाद उसीका सींग उखाड़कर उसको खूब पीटा, जिससे वह पका ही रह गया ॥ १३ ॥ परीक्षित् । इस प्रकार वह दैत्य झूठसे खून उगलता और गोबर-मूत करता हुआ पैर पटकने लगा । उसकी आँखें उलट गयीं और उसने बड़े कष्टके साथ प्राण छोड़े । अब देवताओं भगवान्पर झूल बरसा-बरसाकर उनकी स्तुति करने लगे ॥ १४ ॥ जब भगवान् श्रीकृष्णने इस प्रकार बैलके रूपमें आनेवाले अरिष्टासुरको मार डाला, तब सभी गोप उनकी प्रशंसा करने लगे । उन्होंने बलरामजीके साथ गोष्ठमें प्रवेश किया और उन्हें देख-देखकर गोपियोंके नयन-मन आनन्दसे भर गये ॥ १५ ॥

परीक्षित् । भगवान्की कीड़ा अत्यन्त अद्भुत है । इधर जब उन्होंने अरिष्टासुरको मार डाला, तब भगवन्मय नारद, जो ओगोंको शीघ्र-से-शीघ्र भगवान्का दर्शन कराते रहते हैं, कंसके पास पहुँचे । उन्होंने उससे कहा—॥ १६ ॥ 'कंस ! जो कन्या तुम्हारे हाथसे छूटकर

आकाशमें चली गयी, वह तो यशोदाकी पुत्री थी। और ब्रजमें जो श्रीकृष्ण हैं, वे देवकीके पुत्र हैं। वहाँ जो बलरामजी हैं, वे रोहिणीके पुत्र हैं। वसुदेवने तुमसे डरकर अपने मित्र नन्दके पास उम दोनोंको रख दिया है। उन्होंने ही तुम्हारे अनुचर दैत्योंका वध किया है।' यह बात सुनते ही कंसकी एक-एक इन्द्रिय क्रोधके मारे काँप उठी ॥ १७-१८ ॥ उसने वसुदेवजीको मार डालनेके लिये तुरंत तीखी तलवार उठा ली, परन्तु नारदजीने रोक दिया। जब कंसको यह मालूम हो गया कि वसुदेवके लड़के ही हमारी मृत्युके कारण हैं, तब उसने देवकी और वसुदेव दोनों ही पति-पत्नीको हथकड़ी और बेड़ीसे जकड़कर फिर जेलमें डाल दिया। जब देवर्षिनारद चले गये, तब कंसने कैशरीको बुलाया और कहा—'तुम ब्रजमें जाकर बलराम और कृष्णको मार डालो।' वह चला गया। इसके बाद कंसने मुष्टिक, चाणूर, शूल, तोशक आदि पहलवानों, मन्त्रियों और महाबलोंको बुलाकर कहा—'भीरवर चाणूर और मुष्टिक! तुमलोग ध्यानपूर्वक मेरी बात सुनो। १९-२२। वसुदेवके दो पुत्र बलराम और कृष्ण नन्दके ब्रजमें रहते हैं। उनकी हथसे मेरी मृत्यु बतलनी जाती है ॥ २३॥ अतः जब वे यहाँ आवें, तब तुमलोग उन्हें कुत्ती छद्मे-छद्मानेके बहाने मार डालना। अब तुमलोग भौतिक-भौतिके मंच बनाओ और उन्हें अखाड़ेके चारों ओर गोछ-गोछ सजा दो। उनपर बैठकर नगरवासी और देशकी दूसरी प्रजा इस खण्ड्यदंगलको देखें ॥ २४॥ महावत! तुम बड़े चतुर हो। देखो माई! तुम दंगलके घेरेके फाटकपर ही अपने कुक्कल्यपीठ हाथीको रखना और जब मेरे शत्रु उधरसे निकले, तब उसीके द्वारा उन्हें मरवा डालना ॥ २५॥ इसी चतुर्दशीको विधिपूर्वक धनुषयज्ञ आरम्भ कर दो और उसकी सफलताके लिये वरदानी मृतनाथ मरुवको बहुतसे पवित्र पशुओंकी बलि चढ़ाओ ॥ २६॥

परीक्षित! कंस तो केवल स्वार्थ-साधनका सिद्धान्त जानना था, इसलिये उसने मन्त्री, पहलवान और महावत-को इस प्रकार आज्ञा देकर श्रेष्ठ यदुवंशी अक्रूरको बुलाया और उनका हाथ अपने हाथमें लेकर बोझ—॥ २७॥ 'अक्रूरजी! आप तो बड़े उदार दानी हैं। सब तरहसे

मेरे आदरणीय हैं। आज आप मेरा एक मित्रोचित काम कर दीजिये; क्योंकि सोलहवीं और वृष्णिवंशी यादवोंमें आपसे बढ़कर मेरी मछई करनेवाला दूसरा कोई नहीं है ॥ २८॥ यह काम बहुत बड़ा है, इसलिये मेरे मित्र! मैंने आपको आश्रय लिया है। ठीक वैसे ही जैसे इन्द्र समर्थ होनेपर भी विष्णुका आश्रय लेकर अपना स्वार्थ साधता रहता है ॥ २९॥ आप नन्दरायके ब्रजमें जाइये। वहाँ वसुदेवजीके दो पुत्र हैं। उन्हें इसी रथपर चढ़ाकर यहाँ ले आइये। बस, अब इस काममें देर नहीं होनी चाहिये ॥ ३०॥ सुनते हैं, विष्णुके भरोसे जीनेवाले देवताओंने उन दोनोंको मेरी मृत्युका कारण निश्चित किया है। इसलिये आप उन दोनोंको तो ले ही आइये, साथ ही नन्द आदि गोपोंको भी बड़ी-बड़ी मेंढोंके साथ ले आइये ॥ ३१॥ यहाँ आनेपर मैं उन्हें अपने कलके समान कुक्कल्यपीठ हाथीसे मरवा डालूँगा। यदि वे कदाचित् उस हाथीसे बच गये, तो मैं अपने ब्रजके समान मजबूत और कुतलि पहलवान मुष्टिक-चाणूर आदिसे उन्हें मरवा डालूँगा ॥ ३२॥ उनके मारे जानेपर वसुदेव आदि वृष्णि, भोज और दशार्हवंशी उनके यहाँ-वन्धु शोकाकुल हो जायेंगे। फिर उन्हें मैं अपने हाथों मार डालूँगा ॥ ३३॥ मेरा पिता उमसेन यों तो बड़ा हो गया है, परन्तु अभी उसको राज्यका लोभ बना हुआ है। यह सब कर चुकनेके बाद मैं उसको, उसके भाई देवकको और दूसरे भी जो-जो मुझसे द्वेष करनेवाले हैं—उन सबको तलवारके घाट उतार दूँगा ॥ ३४॥ मेरे मित्र अक्रूरजी! फिर तो मैं होऊँगा और आप होंगे, तथा होगा इस पृथ्वीका अकण्ठक राज्य। जरासन्ध हथारे बड़े-बड़े ससुर हैं और वानरराज द्विविद मेरे प्यारे सखा हैं ॥ ३५॥ शम्भुरासुर, नरकासुर और बाण्णासुर—ये तो मुझसे मित्रता करते ही हैं, मेरा मुँह देखते रहते हैं; इन सबकी सहायतासे मैं देवताओंके पक्षपाती नरपतियोंको मारकर पृथ्वीका अकण्ठक राज्य भोगूँगा ॥ ३६॥ यह सब अपनी गुप्त बातें मैंने आपको बतला दी। अब आप जहदी-से-जहदी बलराम और कृष्णको यहाँ ले आइये। जमी तो वे बच्चे ही हैं। उनको मार डालनेमें क्या लजता है! उनसे केवल इतनी ही बात

काहियेगा कि वे जोग धनुषयज्ञके दर्शन और यदुवसियों-
की राजधानी मथुराकी शोभा देखनेके लिये यहाँ आ
जायें ॥ ३७ ॥

अक्रूरीजीने कहा—महाराज ! आप अपनी मृत्यु,
अपना अरिष्ट दूर करना चाहते हैं, इसलिये आपका ऐसा
सोचना ठीक ही है । मनुष्यको चाहिये कि चाहे सफलता
हो या असफलता, दोनोंके प्रति समभाव रखकर अपना
काम करता जाय । फल तो प्रयत्नसे नहीं, दैवी प्रेरणासे
मिलते हैं ॥ ३८ ॥ मनुष्य बड़े-बड़े मनोरथोंके पुल
बोधता रहता है, परन्तु वह यह नहीं जानता कि दैवने,

प्रारब्धने इसे पहलेसे ही नष्ट कर रक्खा है । यही कारण
है कि कभी प्रारब्धके अनुकूल होनेपर प्रयत्न सफल हो
जाता है, तो वह हर्षसे झूट उठता है और प्रतिकूल
होनेपर निष्फल हो जाता है तो शोकग्रस्त हो जाता है ।
फिर भी मैं आपकी आज्ञाका पालन तो कर ही रहा हूँ ॥ ३९ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—कंसने मन्त्रियों और
जम्बूजीको इस प्रकारकी आज्ञा देकर सबको विदा कर
दिया । तदनन्तर वह अपने महलमें चला गया और
अक्रूरी अपने घर लौट आये ॥ ४० ॥

सैंतीसवाँ अध्याय

केशी और ज्योत्सामासुरका उद्धार तथा मारवलीके द्वारा भगवान्की स्तुति

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित ! कंसने जिस
केशी नामक दैत्यको भेजा था, वह बड़े भारी जोड़ेके
रूपमें मनके समान बेगसे दौड़ता हुआ ब्रजमें आया ।
वह अपनी टाँपोंसे धरती खोदता आ रहा था ! उसकी
गरदनके छितराये हुए बाणोंके झटकेसे आकाशके बादल
और बिमानोंकी भीड़ तितर-बितर हो रही थी । उसकी
भयानक हिनहिनाहटसे सब-कुछ भयसे काँप रहे थे ।
उसकी बड़ी-बड़ी आँखें घी, मुँह क्या था, मानो किसी
बृक्षका खोबर ही हो । उसे देखनेसे ही डर लगता था ।
बड़ी मोटी गरदन थी । शरीर इतना विशाल था कि
माखन होता था काळी-काळी बादलकी वद है । उसकी
नीयतमें पाप भरा था । वह श्रीकृष्णको मारकर अपने
खामी कसका हित करना चाहता था । उसके चलनेसे
भूकम्प होने लगता था ॥ १-२ ॥ भगवान् श्रीकृष्णने देखा
कि उसकी हिनहिनाहटसे उनके आश्रित रहनेवाले गोकुल
भयभीत हो रहा है और उसकी पूँछके बाणोंसे बादल तितर-
बितर हो रहे हैं, तथा वह लड़नेके लिये उन्हींको हूँद गी
रहा है—तब वे बढ़कर उसके सामने आ गये और
उन्होंने सिंहके समान गरजकर उसे छेड़करा ॥ ३ ॥
भगवान्को सामने आया देख वह और भी चिढ़ गया
तथा उनकी ओर इस प्रकार मुँह फैलकर दौड़ा, मानो
आकाशको पी जायगा । परीक्षित ! सचमुच केशीका

वेग बड़ा प्रचण्ड था । उसपर विजय पाना तो कठिन
था ही, उसे पकड़ लेना भी आसान नहीं था । उसने
भगवान्के पास पहुँचकर डुलछी झाड़ी ॥ ४ ॥ परन्तु
भगवान्ने उससे अपनेको बचा लिया । भला, वह इन्द्रिया-
तीतको कैसे मार पाता ! उन्होंने अपने दोनों हाथोंसे
उसके दोनों पिछले पैर पकड़ लिये और जैसे गरुड़
सोंपको पकड़कर झटक देते हैं, उसी प्रकार क्रोधसे
उसे घुमाकर बड़े अपमानके साथ चार सौ हाथकी दूरी-
पर फेंक दिया और स्वयं अकड़कर खड़े हो गये ॥ ५ ॥
थोड़ी ही देरके बाद केशी फिर सचेत हो गया और ठ
खड़ा हुआ । इसके बाद वह क्रोधसे तिलमिळकर और
मुँह फाड़कर बड़े बेगसे भगवान्की ओर झपट । उसको
दौड़ते देख भगवान् मुसकताने लगे । उन्होंने अपना
बाँया हाथ उसके मुँहमें इस प्रकार डाल दिया, जैसे
सर्प बिना किसी आशङ्कके अपने बिलमें घुस जाता
है ॥ ६ ॥ परीक्षित ! भगवान्का अत्यन्त कोमल कर-
कमल भी उस समय ऐसा हो गया, मानो तपाया हुआ
ओहा हो । उसका स्पर्श होते ही केशीके दाँत टूट-
टूटकर गिर गये और जैसे जखेदर रोग उपेक्षा कर देने-
पर बहुत बढ़ जाता है, वैसे ही श्रीकृष्णका मुजदण्ड
उसके मुँहमें बड़ने लगा ॥ ७ ॥ अचिन्त्यशक्ति भगवान्
श्रीकृष्णका हाथ उसके मुँहमें इतना बढ़ गया कि उसकी

सौंसके भी आने-जानेका मार्ग न रहा । अब तो दम घुटनेके कारण वह पैर पीठने लगा । उसका शरीर पसीनेसे छपप हो गया, आँखोंकी पुतली उल्ट गयी, वह मल-त्याग करने लगा । थोड़ी ही देरमें उसका शरीर निश्चेष्ट होकर पृथ्वीपर गिर पड़ा तथा उसके प्राण-पखेरू उड़ गये ॥ ८ ॥ उसका निष्प्राण शरीर फूट हुआ होनेके कारण गिरते ही पकी ककड़ीकी तरह फट गया । महाबाहु भगवान् श्रीकृष्णने उसके शरीरसे अपनी मुजा खींच ली । उन्हें इससे कुछ भी आश्चर्य या गर्व नहीं हुआ । बिना प्रयत्नके ही शत्रुका नाश हो गया । देवताओंको अवश्य ही इससे बड़ा आश्चर्य हुआ । वे प्रसन्न हो-होकर भगवान्के ऊपर पुष्प बरसाने और उनकी स्तुति करने लगे ॥ ९ ॥

परीक्षित । देवर्षि नारदजी भगवान्के परम प्रेमी और समस्त जीवोंके सच्चे हितैषी हैं । कंसके यहंसि छौटकर वे अनायास ही अवसृत कर्म करनेवाले भगवान् श्रीकृष्ण-के पास आये और एकान्तमें उनसेकहने लगे—॥ १० ॥ 'सच्चिदानन्दस्वरूप श्रीकृष्ण ! आपका स्वरूप मन और वाणीका विषय नहीं है । आप योगेश्वर हैं । सारे जगत्-का नियन्त्रण आप ही करते हैं । आप सबके हृदयमें निवास करते हैं और सबके-सब आपके हृदयमें निवास करते हैं । आप भक्तोंके एकमात्र बाष्पनीय, यदुवंश-शिरोमणि और हमारे स्वामी हैं ॥ ११ ॥ जैसे एक ही अग्नि सभी लकड़ियोंमें व्याप्त रहती है, वैसे एक ही आप समस्त प्राणियोंके आत्मा हैं । आत्माके रूपमें होनेपर भी आप अपनेको छिपाये रखते हैं; क्योंकि आप पञ्च-कोशरूप गुणोंके भीतर रहते हैं । फिर भी पुरुषो-त्तमके रूपमें, सबके नियन्ताके रूपमें और सबके साक्षीके रूपमें आपका अनुभव होता ही है ॥ १२ ॥ प्रभो ! आप सबके अधिष्ठान और स्वयं अधिष्ठानरहित हैं । आपने सृष्टिके प्रारम्भमें अपनी मायासे ही गुणोंकी सृष्टि की और उन गुणोंको ही स्वीकार करके आप जगत्की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय करते रहते हैं । यह सब करनेके लिये आपको अपनेसे अतिरिक्त और किसी भी वस्तुकी आवश्यकता नहीं है । क्योंकि आप सर्वशक्ति-मान् और सत्यसङ्कल्प हैं ॥ १३ ॥ वही आप दैत्य,

प्रमथ और राक्षसोंका, जिन्होंने आजकल राजाओंका वेध धारण कर रक्खा है, विनाश करनेके लिये तथा धर्मकी मर्यादाओंकी रक्षा करनेके लिये यदुवंशमें अव-तीर्ण हुए हैं ॥ १४ ॥ यह बड़े आनन्दकी बात है कि आपने खेल-ही-खेलमें घोड़ेके रूपमें रहनेवाले इस केशी दैत्यको मार डाला । इसकी हिनहिनाहटसे डरकर देवता-लोग अपना स्वर्ग छोड़कर भाग जाया करते थे ॥ १५ ॥

प्रभो ! अब परसों मैं आपके हाथों काण्ड, मुष्टिक, दूसरे फल्लवान, कुम्भवापीड हाथी और स्वयं कंसको भी मरते देखूँगा ॥ १६ ॥ उसके बाद शङ्खासुर, काक-यवन, भुर और नरकासुरका वध देखूँगा । आप क्षिति कल्पवृक्ष उखाड़ लायेंगे और इन्द्रके भी-चपड़ करनेपर उनको उसका मजा चखायेंगे ॥ १७ ॥ आप अपनी कृपा, वीरता, सौन्दर्य आदिका झुलक देकर वीर-कन्याओं-से विवाह करेंगे, और जगदीश्वर ! आप द्वारकामें रहते हुए नृगको पापसे छुड़ायेंगे ॥ १८ ॥ आप जाम्बवतीके साथ स्मन्तक मणिको जाम्बवान्से ले आयेंगे और अपने धामसे ब्राह्मणोंके मरे हुए पुत्रोंको जा देगे ॥ १९ ॥ इसके पश्चात् आप पौण्ड्रक—मिथ्याबाहुदेवका वध करेंगे । काशीपुरीको बल देंगे । युधिष्ठिरके राजसूय-यज्ञमें चेदिराज शिशुपालको और बहंसि छौटते समय उसके मौसरे भारी दन्तवक्त्रको नष्ट करेंगे ॥ २० ॥ प्रभो ! द्वारकामें निवास करते समय आप और भी बहुत-से पराक्रम प्रकट करेंगे, जिन्हें पृथ्वीके बड़े-बड़े शानी और प्रतिभाशील पुरुष आगे चलकर गायेंगे । मैं वह सब देखूँगा ॥ २१ ॥ इसके बाद आप पृथ्वीका भार उतारने-के लिये काकरूपसे अर्जुनके सारथि बनेंगे और अनेक अधोहिपी सेनात्मक संहार करेंगे । यह सब मैं अपनी आँखोंसे देखूँगा ॥ २२ ॥

प्रभो ! आप सिद्ध विज्ञानधन हैं । आपके स्वरूपमें और किसीका अस्तित्व है ही नहीं । आप नित्य-निरन्तर अपने परमानन्दस्वरूपमें स्थित रहते हैं । इसलिये सारे पदार्थ आपको नित्य प्राप्त ही हैं । आपका सङ्कल्प जगमोघ है । आपकी चिन्मयी शक्तिके सामने माया और मायासे होनेवाला यह निगुणमय संसार-चक्र नित्यनिवृत्त है—कभी हुआ ही नहीं । ऐसे आप अखण्ड, एकरस, सच्चिदानन्दस्वरूप, निरतिशय ऐश्वर्यसम्पन्न भगवान्की

मैं शरण ग्रहण करता हूँ ॥ २३ ॥ आप सबके अन्त-
र्यामी और नियन्ता हैं । अपने-आपमें स्थित, परम
स्वतन्त्र हैं । जगत् और उसके विशेष विदेशों—माव-
धमावरूप सारे भेद-विभेदोंकी कल्पना केवल आपकी
मायासे ही हुई है । इस समय आपने अपनी लीला प्रकट
करनेके लिये मनुष्यका-सा श्रीविग्रह प्रकट किया है ।
और आप यदु, दृष्टि तथा सात्वतवंशियोंके शिरोमणि बने
हैं । प्रभो ! मैं आपको नमस्कार करता हूँ ॥ २४ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित ! भगवान्‌के
परमप्रेमी भक्त देवर्षि नारदजीने इस प्रकार भगवान्‌की
स्तुति और प्रणाम किया । भगवान्‌के दर्शनोके आह्लादसे
नारदजीका रोम-रोम खिल उठ । तदनन्तर उनकी आज्ञा
प्राप्त करके वे चले गये ॥ २५ ॥ इधर भगवान्‌ श्रीकृष्ण
केशीको लबाईमें मारकर फिर अपने प्रेमी एवं प्रसन्न-
चित्त ग्वालवारोंके साथ पूर्ववत् पशुपालनके कर्ममें लग गये
तथा ब्रजवासियोंको परमानन्द वितरण करने लगे ॥ २६ ॥
एक समय वे सब ग्वालवाल पहाड़की चोटियोंपर गाय
आदि पशुओंको चरा रहे थे तथा कुछ चोर और कुछ रक्षक
बनकर छिपने-छिपानेका—छुका-छुकीका खेल खेल रहे
थे ॥ २७ ॥ राजन् ! उन लोगोंमेंसे कुछ तो चोर और कुछ
रक्षक तथा कुछ भेड़ बन गये थे । इस प्रकार वे निर्भय
होकर खेलते रम गये थे ॥ २८ ॥ उसी समय ग्वालका
बेष धारण करके ज्योमासुर वहाँ आया । वह मायवियोंके

आचार्य मयासुरका पुत्र था और स्वयं भी बड़ा मायावी
था । वह खेलमें बड़का चोर ही बनता और भेड़ बने
हुए बहुत-से बालकोंको चुराकर छिपा आता ॥ २९ ॥
वह गहान् जसुर बार-बार ऊर्ध्व ले जाकर एक पहाड़की
गुफामें डाल देता और उसका दरवाजा एक बड़ी
चट्टानसे ढक देता । इस प्रकार ग्वालवारोंमें केवल
चार-पाँच बालक ही बच रहे ॥ ३० ॥ भक्तवत्सल
भगवान्‌ उसकी यह करतूत जान गये । जिस समय
वह ग्वालवारोंको लिये जा रहा था, उसी समय उन्होंने,
जैसे सिंह भेड़ियोंकी दबोच ले उसी प्रकार, उसे धर
दबाया ॥ ३१ ॥ ज्योमासुर बड़ा बली था । उसने
पहाड़के समान अपना असली रूप प्रकट कर दिया और
चाहा कि अपनेको छुड़ा दे । परन्तु भगवान्‌ने उसको
इस प्रकार अपने शिकंजेमें फँस छिया था कि वह
अपनेको छुड़ा न सका ॥ ३२ ॥ तब भगवान्‌
श्रीकृष्णने अपने दोनों हाथोंसे जकड़कर उसे भूमिपर
गिरा दिया और पशुकी मँति गन्ना बोंटकर मार बाजा ।
देवताओंके निगमोंपर चढ़कर उनकी यह लीला देख
रहे थे ॥ ३३ ॥ अब भगवान्‌ श्रीकृष्णने गुफाके
द्वारपर लगे हुए चट्टानोंके पिहान तोड़ डाले और
ग्वालवारोंको उस सङ्कटपूर्ण स्थानसे निकाल छिया ।
बड़े-बड़े देवता और ग्वालवाल उनकी स्तुति करने
लगे और भगवान्‌ श्रीकृष्ण ब्रजमें चले आये ॥ ३४ ॥

अइतीसवाँ अध्याय

अक्रूरजीकी ब्रजयात्रा

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित ! महामति
अक्रूरजी भी वह रात मथुरापुरीमें वितकर प्रातःकाल
होते ही रथपर सवार हुए और नन्दबाबाके गोकुलकी
ओर चल दिये ॥ १ ॥ परम मायवान्‌ अक्रूरजी
ब्रजकी यात्रा करते समय अर्धमें कमलनयन मायान्‌
श्रीकृष्णकी परम प्रेममयी भक्तिसे परिपूर्ण हो गये । वे
इस प्रकार सोचने लगे— ॥ २ ॥ मैंने ऐसा कौन-सा
शुभ कर्म किया है, ऐसी कौन-सी श्रेष्ठ उपस्था की है
अथवा किसी सत्पात्रको ऐसा कौन-सा गृहस्त्वपूर्ण दान

दिया है, जिसके फलस्वरूप आज मैं भगवान्‌ श्रीकृष्णके
दर्शन करूँगा ॥ ३ ॥ मैं बड़ा विषयी हूँ । ऐसी
स्थितिमें, बड़े-बड़े सात्विक पुरुष भी जिनके गुणोंका
ही गान करते रहते हैं, दर्शन नहीं कर पाते—उन
भगवान्‌के दर्शन मेरे लिये अत्यन्त दुर्लभ हैं, ठीक वैसे
ही, जैसे शूद्रकुलके बालकके लिये वेदोंका कीर्तन
॥ ४ ॥ परन्तु नहीं, मुझ अवगको भी भगवान्‌ श्रीकृष्णके
दर्शन होंगे ही । क्योंकि जैसे नदीमें बहते हुए तिनके
कभी-कभी इस पारसे उस पार लगे जाते हैं, वैसे ही

समयके प्रवाहसे भी कहीं कोई इस संसारसागमको पार कर सकता है ॥ ५ ॥ अवश्य ही आज मेरे सारे अशुभ नष्ट हो गये । आज मेरा जन्म सफल हो गया । क्योंकि आज मैं भगवान्‌के उन चरणकमलोंमें साक्षात् नमस्कार करूँगा, जो बड़े-बड़े योगी-यतियोंके भी केवल ध्यानके ही विषय हैं ॥ ६ ॥ अहो ! कंसने तो आज मेरे ऊपर बड़ी ही कृपा की है । उसी कंसके भेजनेसे मैं इस मूल्यपर अवतीर्ण स्वयं भगवान्‌के चरणकमलोंके दर्शन पाऊँगा । जिनके नखमण्डलकी कान्तिका ध्यान करके पहले श्रुंगेके श्रुति-महर्षि इस अज्ञानरूप अपार अन्धकारराशिको पार कर चुके हैं, स्वयं बड़ी भगवान् तो अवतार ग्रहण करके प्रकट हुए हैं ॥ ७ ॥ ब्रह्मा, शङ्कर, इन्द्र आदि बड़े-बड़े देवता जिन चरणकमलोंकी उपासना करते रहते हैं, स्वयं भगवती लक्ष्मी एक क्षणके लिये भी जिनकी सेवा नहीं छोड़ती, प्रेमी भक्तोंके साथ बड़े-बड़े ज्ञानी भी जिनकी आराधनामें संलग्न रहते हैं—भगवान्‌के वे ही चरण-कमल गौड़ोंको चरानेके लिये व्याख्याओंके साथ कन-धनमें विचरते हैं । वे ही सुर-मुनि-वन्दित श्रीचरण गोपियोंके वक्षःस्थलपर लगी हुई केसरसे रँग जाते हैं, चिह्नित हो जाते हैं, ॥ ८ ॥ मैं अवश्य-अवश्य उनका दर्शन करूँगा । मरकतमणिके समान सुस्निग्ध कान्ति-मान् उनके कोमल कपोल हैं, तोतेकी ठोरेके समान लुकीली नासिका है, होठोंपर मन्द-मन्द मुसकान, प्रेममयी चितवन, कमल-से कोमल रतनारे लोचन और कपोलोंपर झुँघराती अलकों छटक रही हैं । मैं प्रेम और मुक्तिके परम दानी श्रीमुकुन्दके उस मुखकमलका आज अवश्य दर्शन करूँगा । क्योंकि हरिण मेरी दायी ओरसे निकल रहे हैं ॥ ९ ॥ भगवान् निष्णु पृथ्वीका भार उतारनेके लिये स्वेच्छासे मनुष्यकी-सी लीला कर रहे हैं । वे सम्पूर्ण अव्ययके धाम हैं । सौन्दर्यकी मूर्तिमान् निधि हैं । आज मुझे उन्हींका दर्शन होगा । अवश्य होगा । आज मुझे सहजमे ही आँखोंका फल मिल जायगा ॥ १० ॥ भगवान् इस कार्य-कारणरूप जगत्‌के द्रष्टाग्राह हैं, और ऐसा होनेपर भी द्रष्टापनका अहङ्कार उन्हें छूटक नहीं गया है । उनकी चिन्मयी शक्तिके अज्ञानके कारण होनेवाला

मेदभ्रम अज्ञानसहित दूरसे ही निरस्त रहता है । वे अपनी योगमायासे ही अपने-आपमें भूविज्ञानमात्रसे प्राण, इन्द्रिय और बुद्धि आदिके सहित अपने स्वरूप-भूत जीवोंकी रचना कर लेते हैं और उनके साथ वृन्दावनकी कुञ्जोंमें तथा गोपियोंके घरोंमें तरह-तरहकी लीलाएँ करते हुए प्रतीत होते हैं ॥ ११ ॥ जब समस्त पापोंके नाशक उनके परम मङ्गलमय गुण, कर्म और जन्मकी लीलाओंसे शुक्त होकर बाणी उनका गान करती है, तब उस गानसे संसारमें जीवनकी रक्षति होने लगती है, शोभाकर सञ्चार हो जाता है, सारी अपवित्रताएँ धुलकर पवित्रताका साम्राज्य छा जाता है; परन्तु जिस बाणीसे उनके गुण, लीला और जन्मकी कथाएँ नहीं गयी जातीं, वह तो मुर्दोंकी ही शोभित करनेवाली है, होनेपर भी नहींकि समान—व्यर्थ है ॥ १२ ॥ जिनके गुणगानका ही ऐसा माहात्म्य है, वे ही भगवान् स्वयं यदुर्वशमें अवतीर्ण हुए हैं । किसलिये । अपनी ही बनायी मर्मादाका पाछन करनेवाले श्रेष्ठ देवताओंका कल्याण करनेके लिये । वे ही परम ऐश्वर्यशाली भगवान् आज ब्रजमें निवास कर रहे हैं और वहीसे अपने यशका विस्तार कर रहे हैं । उनका यश कितना पवित्र है ! अहो, देवतालोग भी उस सम्पूर्ण मङ्गलमय यशका गान करते रहते हैं ॥ १३ ॥ इसमें सन्देह नहीं कि आज मैं अवश्य ही उन्हें देखूँगा । वे बड़े-बड़े संतों और लोकपालोंके भी एकमात्र आश्रय हैं । सबके परम गुरु हैं । और उनका रूप-सौन्दर्य तीनों लोकोंके मनको मोह लेनेवाला है । जो मेत्रबाले हैं, उनके लिये वह आनन्द और रसकी चरम सीमा है । इसीसे स्वयं लक्ष्मीजी भी, जो सौन्दर्यकी अवीश्वरी हैं, उन्हें पानेके लिये ललकती रहती हैं । हाँ, तो मैं उन्हें अवश्य देखूँगा । क्योंकि आज मेरा मङ्गल-प्रवात है, आज मुझे प्राप्त-कावसे ही अच्छे-अच्छे शकुन दीख रहे हैं ॥ १४ ॥

जब मैं उन्हें देखूँगा तब सर्वश्रेष्ठ पुरुष बलराम तथा श्रीकृष्णके चरणोंमें नमस्कार करनेके लिये तुरंत अपने कूद पहुँचा । उनके चरण पकड़ लूँगा । ओह ! उनके चरण कितने दुर्लभ हैं । बड़े-बड़े योगी-यति आत्म-

साक्षात्कारके लिये मन-ही-मन अपने हृदयमें उनके चरणों-की धारणा करते हैं और मैं, मैं तो उन्हें प्रत्यक्ष पा जाऊँगा और छोट जाऊँगा उनपर । उन दोनोंके साथ ही उनके वनवासी सखा एक-एक म्वाल्वालेके चरणोंकी भी वन्दना करूँगा ॥ १५ ॥ मेरे अहोभाग्य ! जब मैं उनके चरणकमलोंमें गिर जाऊँगा, तब क्या वे अपना करकमल मेरे सिरपर रख देंगे । उनके वे करकमल उन खेगोंको सदाके लिये अमयदान दे चुके हैं, जो कालरूपी सौंपके भयसे क्षयन्त घबड़ाकर उनकी शरण चाहते और शरणमें आ जाते हैं ॥ १६ ॥ इन्द्र तथा दैत्यराज बलिने भगवान्‌के उन्हीं करकमलोंमें पूजाकी भेंट समर्पित करके तीनों खेगोंका प्रभुत्व—इन्द्रपद प्राप्त कर लिया । भगवान्‌के उन्हीं करकमलोंमें, जिनमेंसे दिव्य कमलकी-सी सुगन्ध आया करती है, अपने स्पर्शसे रासलीलाके समय ब्रज-शुवतियोंकी सारी थकान मिटा दी थी ॥ १७ ॥ मैं कंसका दूत हूँ । उसीके भेजनेसे उनके पास आ रहा हूँ । कहीं वे मुझे अपना शत्रु तो न समझ बैठेंगे ? राम राम ! वे ऐसा कदापि नहीं समझ सकते । क्योंकि वे निर्बिकार हैं, सम हैं, अन्युत हैं, सारे विश्वके साक्षी हैं, सर्वज्ञ हैं, वे बिस्वके बाहर भी हैं और भीतर भी । वे क्षेत्रज्ञरूपसे स्थित होकर अन्तःकरणकी एक-एक चेष्टा-को अपनी निर्मल ज्ञानदृष्टिके द्वारा देखते रहते हैं ॥ १८ ॥ तब मेरी शक्का व्यर्थ है । अवश्य ही मैं उनके चरणोंमें हाथ जोड़कर विनीतभावसे खड़ा हो जाऊँगा । वे मुसकराते हुए दयाभरी स्निग्ध दृष्टिसे मेरी ओर देखेंगे । उस समय मेरे जन्म-जन्मके समस्त अशुभ संस्कार उसी क्षण नष्ट हो जायेंगे और मैं निःशङ्क होकर सदाके लिये परमानन्दमें मग्न हो जाऊँगा ॥ १९ ॥ मैं उनके कुटुम्बका हूँ । और उनका अत्यन्त हित चाहता हूँ । उनके सिवा और कोई मेरा आराध्यदेव भी नहीं है । ऐसी स्थितिमें वे अपनी लंघी-लवी बाँहोंसे पकड़कर मुझे अवश्य अपने हृदयसे लगा लेंगे । अहा ! उस समय मेरी तो देह पवित्र होगी ही, वह दूसरोंको पवित्र करनेवाली भी बन जायगी और उसी समय—उनका आच्छिन्न प्राप्त होते ही—मेरे कर्ममय बन्धन, जिनके कारण मैं अनादिकात्से भटक रहा हूँ, टूट जायेंगे ॥ २० ॥ जब वे मेरा आच्छिन्न कर चुकेंगे और मैं हाथ जोड़ सिर झुकाकर उनके सामने

खड़ा हो जाऊँगा तब वे मुझे 'चाचा अकूर !' इस प्रकार कहकर सम्बोधन करेंगे । क्यों न हो, इसी पवित्र और गभुर यशस्वा विस्तार करनेके लिये ही तो वे लीला कर रहे हैं । तब मेरा जीवन सफल हो जायगा । भगवान्‌ श्रीकृष्णने जिसको अपनाया नहीं, जिसे आदर नहीं दिया—उसके उस जन्मको, जीवनको धिक्कार है ॥ २१ ॥ न तो उन्हें कोई प्रिय है और न तो अप्रिय । न तो उनका कोई आत्मीय सुहृद् है और न तो शत्रु । उनकी उपेक्षाका पात्र भी कोई नहीं है । फिर भी जैसे कल्पवृक्ष अपने निकट आकर याचना करनेवालोंको उनकी सुँह-मोंगी वस्तु देता है, वैसे ही भगवान्‌ श्रीकृष्ण भी, जो उन्हें जिस प्रकार भजता है, उसे उसी रूपमें भजते हैं—वे अपने प्रेमी भक्तोंसे ही पूर्ण प्रेम करते हैं ॥ २२ ॥ मैं उनके सामने विनीत भावसे सिर झुकाकर खड़ा हो जाऊँगा और बछारामजी मुसकराते हुए मुझे अपने हृदयसे लगा लेंगे और फिर मेरे दोनों हाथ पकड़कर मुझे घरके भीतर ले जायेंगे । वहाँ सब प्रकारसे मेरा सत्कार करेंगे । इसके बाद मुझसे पूछेंगे कि 'कंस हमारे घरवालोंके साथ कैसा व्यवहार करता है ?' ॥ २३ ॥

श्रीकृष्णदेवजी कहते हैं—परीक्षित ! खपलकलन्दन अकूर मार्गमें इसी चिन्तनमें डूबे-डूबे रयसे मन्दगोव पहुँच गये और सूर्य अस्ताचलपर चले गये ॥ २४ ॥ जिनके चरणकमलकी रजको समी खेकपाल अपने किरीटोंके द्वारा सेवन करते हैं, अकूरजीने गोष्ठमें उनके चरणचिह्नोंके दर्शन किये । कमल, बव, अङ्गुश आदि असाधारण चिह्नोंके द्वारा उनकी पहचान हो रही थी और उनसे पृथ्वीकी शोभा बढ़ रही थी ॥ २५ ॥ उन चरणचिह्नोंके दर्शन करते ही अकूरजीके हृदयमें इतना आह्लाद हुआ कि वे अपनेको सँभाल न सके, बिह्व हो गये । प्रेमके आवेगसे उनका रोम-रोम खिल उठा, नेत्रोंमें आँसू भर आये और टपटप टपकने लगे । वे रयसे कूदकर उस धूलिमें छोटने लगे और कहने लगे—'अहो ! यह हमारे प्रभुके चरणोंकी रज है' ॥ २६ ॥ परीक्षित ! कंसके सन्देशसे लेकर यहाँतक अकूरजीके चित्तकी जैसी अवस्था रही है, यही जीविके देह धारण करनेका परम लाभ है । इसलिये जीवमात्रका यही परम कर्तव्य है कि दम्भ, भय और शोक त्याग कर भगवान्‌की श्रुति (प्रतिष्ठा, भक्त आदि)

चिह्न, लीला, स्थान तथा गुणोंके दर्शन-प्रवण आदिके द्वारा ऐसा ही भाव संपादन करें ॥ २७ ॥

ब्रजमें पहुँचकर अमूरजीने श्रीकृष्ण और बलराम दोनों भाइयोंको गाय दुहनेके स्थानमें निराजमान देखा । स्वाम-सुन्दर श्रीकृष्ण पीताम्बर धारण किये हुए थे और गौर-सुन्दर बलराम नीलाम्बर । उनके नेत्र शरत्कालीन कमलके समान खिले हुए थे ॥ २८ ॥ उन्होंने अभी किशोर-अवस्थामें प्रवेश ही किया था । वे दोनों गौर-श्याम निखिल सौन्दर्यकी खान थे । घुटनोंपर स्पर्श करनेवाली लची-लची मुजाएँ, सुन्दर बदन, परम मनोहर और गजशायकके समान ललित चाल थी ॥ २९ ॥ उनके चरणोंमें चूजा, वज्र, अङ्गुश और कमलके चिह्न थे । जब वे चलते थे, उनसे चिह्नित होकर पृथ्वी शोभायमान हो जाती थी । उनकी मन्द-मन्द सुसकान और चितवन ऐसी थी, मानो दया बरस रही हो । वे उदारताकी तो मानो मूर्ति ही थे ॥ ३० ॥ उनकी एक-एक लीला उदारता और सुन्दर कलासे भरी थी । गलेमें वनमाला और भणियोंके हार जगमगा रहे थे । उन्होंने अभी-अभी स्नान करके निर्मल वस्त्र पहने थे और शरीरमें पवित्र अङ्गराग तथा चन्दनका लेप किया था ॥ ३१ ॥ परीक्षित । अमूरने देखा कि जगत्के आदिकारण, जगत्के परमपति, पुरुषोत्तम ही संसारकी रक्षाके लिये अपने सम्पूर्ण अंशोंसे बलरामजी और श्रीकृष्णके रूपमें अवतीर्ण होकर अपनी अङ्गकान्तिसे दिशाओंका अन्धकार दूर कर रहे हैं । वे ऐसे भले माहूम होते थे, जैसे सोनेसे मडे हुए मरकतमणि और चाँदीके पर्वत जगमगा रहे हों ॥ ३२-३३ ॥ उन्हें देखते ही अमूरजी प्रेमावेगसे अधीर होकर रफसे क्रूढ़ पडे और मगवान् श्रीकृष्ण तथा बलरामके चरणोंके पास साष्टाङ्ग लोट गये ॥ ३४ ॥ परीक्षित । मगवान्के दर्शनसे उन्हें इतना आश्चर्य हुआ कि उनके नेत्र आँसूसे सर्वथा भर गये । सारे शरीरमें पुलकावली छा गयी । उत्क्रान्त-वश गला भर आनेके कारण वे अपना नाम भी न

बतला सके ॥ ३५ ॥ शरणागतवत्सल भगवान् श्रीकृष्ण उनके मनका भाव जान गये । उन्होंने बड़ी प्रसन्नतासे चक्राङ्कित हाथोंके द्वारा उन्हें खींचकर उठाया और हृदयसे लगा लिया ॥ ३६ ॥ इसके बाद जब वे परम मनलसी श्रीबलरामजीके सामने विनीत भावसे खडे हो गये, तब उन्होंने उनकी गले लगा लिया और उनका एक हाथ श्रीकृष्णने पकड़ा तथा दूसरा बलरामजीने । दोनों भाई उन्हें धर ले गये ॥ ३७ ॥

धर ले जाकर मगवान्ने उनका बड़ा स्वागत-सत्कार किया । कुशल-मङ्गल पूछकर श्रेष्ठ आसनपर बैठाया और विविधपूर्वक उनके पाँच पञ्चरकर मधुपर्क (शहद मिठा हुआ दही) आदि पूजाकी सामग्री मँट की ॥ ३८ ॥ इसके बाद मगवान्ने अतिथि अमूरजीको एक गाय दी और पैर दबाकर उनकी थकावट दूर की तथा बड़े आदर एवं श्रद्धासे उन्हें पवित्र और अनेक गुणोंसे युक्त अन्नका भोजन कराया ॥ ३९ ॥ जब वे भोजन कर चुके, तब धर्मके परम मर्मज्ञ मगवान् बलरामजीने बड़े प्रेमसे मुखवास (पान-शल्यपत्री आदि) और सुगन्धित माला आदि देकर उन्हें अत्यन्त आनन्दित किया ॥ ४० ॥ इस प्रकार सत्कार हो चुकनेपर नन्दरायजीने उनके पास आकर पूछा—अमूरजी । आपलोग निर्दयी कंसके जीते-जी किस प्रकार अपने दिन काटते हैं ? अरे ! उसके रहते आप जोगोंकी बड़ी दशा है, जो कसाईद्वारा पाकी हुई भेड़ोंकी होती है ॥ ४१ ॥ जिस इन्धियारा में आपनी बिलखती हुई बहनके नन्हे-नन्हे बच्चोंको मार डाला । आपलोग उसकी प्रजा हैं । फिर आप सुखी हैं, यह अनुमान तो हम कर ही कैसे सकते हैं ? ॥ ४२ ॥ अमूरजीने नन्दबाबासे पहले ही कुशल-मङ्गल पूछ लिया था । जब इस प्रकार नन्दबाबाने मधुर वाणीसे अमूरजीसे कुशल-मङ्गल पूछा और उनका सम्मान किया तब अमूरजीके शरीरमें रास्ता चलनेकी जो कुल थकावट थी, वह सब दूर हो गयी ॥ ४३ ॥

उन्तालीसवाँ अध्याय

श्रीकृष्ण-बलरामका मधुरागमन

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—मगवान् श्रीकृष्ण और बलरामजीने अमूरजीका भलीभाँति सम्मान किया । वे वाराम-

से पछाँपर बैठ गये । उन्होंने मार्गमें जो-जो अभिलषाएँ की थी वे सब पूरी हो गयीं ॥ १ ॥ परीक्षित । वृषीके

आश्रयस्थान भगवान् श्रीकृष्णके प्रसन्न होनेपर ऐसी कौन-सी वस्तु है, जो प्राप्त नहीं हो सकती ! फिर भी भगवान्‌के परम प्रेमी भक्तजन किसी भी वस्तुकी कामना नहीं करते ॥ २ ॥ देवकीनन्दन भगवान् श्रीकृष्णने सायङ्कालका भोजन करनेके बाद अक्रूरजीके पास जाकर अपने स्वजन-सम्बन्धियोंके साथ कंसके व्यवहार और उसके आगे कार्यक्रमके सम्बन्धमें पूछा ॥ ३ ॥

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—चाचाजी ! आपका हृदय बड़ा शुद्ध है । आपको यात्रामें कोई कष्ट तो नहीं हुआ ? स्वागत है । मैं आपकी भङ्गलकामना करता हूँ । मथुराके हमारे आभीषय सुहृद्, दुष्टस्त्री तथा अन्य सम्बन्धी सब सकुशल और स्वस्थ हैं न ? ॥ ४ ॥ हमारा नाममात्रका मामा कंस तो हमारे कुलके लिये एक भयङ्कर व्याधि है । जवत्तक उसकी बदती हो रही है, तबतक हम अपने बधावालों और उनके बाळ-बर्बादों कुशल-भङ्गल क्या पूछें ॥ ५ ॥ चाचाजी ! हमारे लिये यह बड़े खेदकी बात है कि मेरे ही कारण मेरे निरपराध और सदाचारी माता-पिताको अनेकों प्रकारकी यातनाएँ सेलनी पड़ीं, तरह-तरहके कष्ट उठाने पड़े । और तो क्या कहूँ, मेरे ही कारण उन्हें हयकड़ी-बेड़ीसे जकड़कर जेलमें डाल दिया गया तथा मेरे ही कारण उनके बन्ने भी मार डाले गये ॥ ६ ॥ मैं बहुत दिनोंसे चाहता था कि आपलोगोंमेंसे किसी-न-किसीका दर्शन हो । यह बड़े सौभाग्यकी बात है कि आज मेरी वह अभिलाषा पूरी हो गयी । सौम्य स्वभाव चाचाजी ! अब आप कृपा करके यह बतलाइये कि आपका शुभागमन किस निमित्तसे हुआ ? ॥ ७ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित ! जब भगवान् श्रीकृष्णने अक्रूरजीसे इस प्रकार प्रश्न किया, तब उन्होंने बतलाया कि 'कंसने तो सभी यदुवंशियोंसे घोर वैर ठान रक्खा है । वह वसुदेवजीको मार डालनेका भी उद्यम कर चुका है' ॥ ८ ॥ अक्रूरजीने कंसका सन्देश और जिस उद्देश्यसे उसने स्वयं अक्रूरजीको दूत बनाकर भेजा था और नारदजीने जिस प्रकार वसुदेवके घर श्रीकृष्ण-के जन्म लेनेका इच्छान्त उसको बताया था, सो सब कह सुनाया ॥ ९ ॥ अक्रूरजीकी यह बात सुनकर निपथी

शत्रुओंका दमन करनेवाले भगवान् श्रीकृष्ण और बलराम-जी हैंसने लगे और इसके बाद उन्होंने अपने पिता नन्दजीको कंसकी आवा सुना दी ॥ १० ॥ तब नन्द-बाबाने सब गेयोंको आवा दी कि 'सारा गौरस एकत्र करो । मेटकी सामग्री ले लो और छकड़े जोबो ॥ ११ ॥ कल प्रातःकाल ही हम सब मथुराकी यात्रा करेंगे और वहाँ चलकर रात्ना कंसकी गौरस देंगे । वहाँ एक बहुत बड़ा उत्सव हो रहा है । उसे देखनेके लिये देशकी सारी प्रजा इकट्ठी हो रही है । हमलोग भी उसे देखेंगे ।' नन्दबाबाने गँवके कोतवालेके द्वारा यह घोषणा सारे ब्रजमें करवा दी ॥ १२ ॥

परीक्षित ! जब गेयियोंने सुना कि हमारे मनमोहन श्यामसुन्दर और गौरसुन्दर बलरामजीको मथुरा ले जानेके लिये अक्रूरजी ब्रजमें आये हैं, तब उनके हृदयमें बड़ी व्यथा हुई । वे व्याकुल हो गयीं ॥ १३ ॥ भगवान् श्री-कृष्णके मथुरा जानेकी बात सुनते ही बहूतोंके हृदयमें ऐसी जलन हुई कि गरम सोंस चढ़ने लगी; मुखकमल कुम्हल गया । और बहूतोंकी ऐसी दशा हुई—वे इस प्रकार अचेत हो गयीं कि उन्हें खिसकी हुई ओढ़नी, गिरते हुए कंल और डीले हुए जूड़ोंतकका पता न रहा ॥ १४ ॥ भगवान्‌के स्वरूपका ध्यान आते ही बहूत-सी गेयियोंकी चित्तवृत्तियाँ सर्वथा निवृत्त हो गयीं, मानो वे समाविष्ट—आत्मामें स्थित हो गयी हों, और उन्हें अपने शरीर और संसारका कुछ ध्यान ही न रहा ॥ १५ ॥ बहूत-सी गेयियोंके सायने भगवान् श्रीकृष्णका प्रेम, उनकी मन्द-मन्द मुसकान और हृदयको स्पर्श करने-वाली विचित्र पदोंसे युक्त मधुर वाणी नाचने लगी । वे उसमें तल्लीन हो गयीं । मोहित हो गयीं ॥ १६ ॥ गेयियों मन-ही-मन भगवान्‌की लटकीली चाल, भाव-मङ्गी, प्रेममयी मुसकान, चितवन, सारे शोकोंको मिटा देनेवाली टिठेलियों तथा उदारतामयी जीजाओंका चिन्तन करने लगीं और उनके निरहके मयसे कातर हो गयीं । उनका हृदय, उनका जीवन—सब कुछ भगवान्‌के प्रति समर्पित था । उनकी चौखोंसे आँसू बह रहे थे । वे झुंड-की-झुंड इकट्ठी होकर इस प्रकार कहने लगीं ॥ १७-१८ ॥

गेयियोंने कहा—कन्य हो निशता ! तुम सब कुछ

विधान तो करते हो, परन्तु तुम्हारे हृदयमें दयाका लेश भी नहीं है। पहले तो तुम सौहार्द और प्रेमसे जगतके प्राणियोंको एक-दूसरेके साथ जोड़ देते हो, उन्हें आपसमें एक कर देते हो, मिछ देते हो; परन्तु अभी उनकी आशा-अभिलाषाएँ पूरी भी नहीं हो पातीं, वे तुम भी नहीं हो पाते कि तुम उन्हें व्यर्थ ही अलग-अलग कर देते हो। सच है, तुम्हारा यह खिलवाड़ बच्चोंके खेलकी तरह व्यर्थ ही है ॥ १९ ॥ यह कितने दुःखकी बात है। विधाता। तुमने पहले हमें प्रेमका वितरण करनेवाले श्यामसुन्दरका मुखकमल दिखाया। कितना सुन्दर है वह। काले-काले झुँगराले बाल करोलोंपर झकक रहे हैं। मरकतमणि-से बिकने सुन्निध कपोल और तोतेकी चौंच-सी सुन्दर नासिका तथा अवशोंपर मन्द-मन्द मुसकानकी सुन्दर रेखा, जो सारे शोकोको तत्क्षण मगा देती है। विधान। तुमने एक बार तो हमें वह परम सुन्दर मुखकमल दिखाया और अब उसे ही हमारी आँखोंसे ओझल कर रहे हो। सचमुच तुम्हारी यह कारतूत बहुत ही अनुचित है ॥ २० ॥ हम जानती हैं, इसमें अक्रूरका दोष नहीं है; यह तो साफ तुम्हारी कृता है। बास्तवमें तुम्हीं अक्रूरके नामसे यहाँ आये हो और अपनी ही दी हुई आँखें तुम हमसे मूर्खकी भोति छीन रहे हो। इनके द्वारा हम श्यामसुन्दरके एक-एक अङ्गमें तुम्हारी सृष्टिका सम्पूर्ण सौन्दर्य निहारती रहती थीं। विधाता। तुम्हें ऐसा नहीं चाहिये ॥ २१ ॥

अहो। नन्दनन्दन श्यामसुन्दरको भी नये-नये ज्यो-से नेह लगानेकी चाट पड़ गयी है। देखो तो सही—इनका सौहार्द, इनका प्रेम एक क्षणमें ही कहाँ चला गया! हम तो अपने घर-द्वार, सजन-सम्बन्धी, पति-पुत्र आदिको छोड़कर इनकी दासी बनीं और इन्हींके लिये आज हमारा हृदय शोकातुर हो रहा है, परन्तु ये ऐसे हैं कि हमारी ओर देखतेतक नहीं ॥ २२ ॥ आजकी रातका प्रातःकाल मथुराकी स्त्रियोंके लिये निश्चय ही बड़ा मङ्गलमय होगा। आज उनकी बहुत दिनोंकी अभिलाषाएँ अवश्य ही पूरी हो जायँगी। जब हमारे ब्रजराज श्यामसुन्दर अपनी तिरछी चितवन और मन्द-मन्द मुसकानसे युक्त मुखारविन्दका मादक मधु वितरण करते

हुए मथुरापुरीमें प्रवेश करेंगे, तब वे उसका पान करके धन्य-धन्य हो जायँगी ॥ २३ ॥ यद्यपि हमारे श्याम-सुन्दर वैयँवान् होनेके साथ ही नन्दबाबा आदि गुरुजनों की आश्रममें रहते हैं, तथापि मथुराकी युवतियों अपने मधुके समान मधुर वचनोंसे इनका चित्त बरबस अपनी ओर खींच लेंगी और ये उनकी सलज्ज मुसकान तथा विजसपूर्ण मान-मंजीसे वहाँ रम जायँगी। फिर हम गँवर न्यायिनोंके पास ये लौटकर क्यों आने लो ॥ २४ ॥ धन्य है आज हमारे श्यामसुन्दरका दर्शन करके मथुराके दार्शार्थ, भोज, अन्धक और वृष्णिवंशी यदवोंके नेत्र अक्षय्य ही परमानन्दका साक्षात्कार करेंगे। आज उनके यहाँ महान् उत्सव होगा। साथ ही जो जोग यहाँसे मथुरा आते हुए रमारमण गुणसागर नटनागर देवकीनन्दन श्यामसुन्दरका मार्गमें दर्शन करेंगे, वे भी निहाल हो जायँगे ॥ २५ ॥

देखो सखी। यह अक्रूर कितना मिठुर, कितना हृदयहीन है। इधर तो हम गोपियों इतनी दुःखित हो रही हैं और यह हमारे परम प्रियतम नन्ददुखारे श्यामसुन्दरको हमारी आँखोंसे ओझल करके बहुत दूर ले जाना चाहता है और दो बात कहकर हमें धीरज भी नहीं बैठाता, आशासन भी नहीं देता। सचमुच ऐसे अत्यन्त क्रूर पुरुषका 'अक्रूर' नाम नहीं होना चाहिये था ॥ २६ ॥ सखी। हमारे ये श्यामसुन्दर भी तो कम मिठुर नहीं हैं। देखो-देखो, वे भी रथपर बैठ गये। और सतवाले गोपगण छकाईं द्वारा उनके साथ जानेके लिये कितनी जल्दी मचा रहे हैं। सचमुच ये मूर्ख हैं। और हमारे बड़े-बूढ़े। उन्होंने तो इन ज्योत्स्नीकी जन्मवाची देखकर उपेक्षा कर दी है कि 'जाओ जो मनमें आवे, करो।' अब हम क्या करें? आज विधाता सर्वथा हमारे प्रतिकूल चेष्टा कर रहा है ॥ २७ ॥ चलो, हम स्वयं ही चलाकर अपने प्राणप्यारे श्यामसुन्दरको रोकेँगी; कुल्के बड़े-बूढ़े और वन्धुजन हमारा क्या कर लेंगे? अरी सखी। हम आवे क्षणके लिये भी प्राणवल्गम नन्दनन्दनका सङ्ग छोड़नेमें असमर्थ थीं। आज हमारे दुर्भाग्यने हमारे सामने उनका वियोग उपस्थित करके हमारे चित्तको निमग्न एवं व्याकुल कर

दिया है ॥ २८ ॥ सखियो ! जिनकी प्रेममयी मनोहर मुसकान, रहस्यकी मीठी-मीठी बातें, विद्यासपूर्ण चितवन और प्रेमालिङ्गनसे हमने रासलीलाकी वे रात्रियाँ—जो बहुत विशाल थीं—एक क्षणके समान बिता दी थीं । अब मछ, उनके बिना हम उन्हींकी दी हुई अपार विरहभयाका पार कैसे पावेंगी ॥ २९ ॥ एक दिनकी नहीं, प्रतिदिनकी बात है, सायंकालमें प्रतिदिन वे ग्वालबालोंसे घिरे हुए बलरामजीके साथ बनसे गौँरे चराकर औटते हैं । उनकी काळी-काळी धुँकराळी अलकों और गलेके पुष्पहार गौँजोंके खुरकी रणसे ढके रहते हैं । वे बोंसुरी बजाते हुए अपनी मन्द-मन्द मुसकान और तिरछी चितवनसे देख-देखकर हमारे हृदयको बेध डालते हैं । उनके बिना मछ, हम कैसे जी सकेंगी ? ॥ ३० ॥

श्रीकृष्णदेवजी कहते हैं—परीक्षित । गोपियों बाणीसे तो इस प्रकार कह रही थीं; परन्तु उनका एक-एक मनोभाव भगवान् श्रीकृष्णका स्पर्श, उनका आलिङ्गन कर रहा था । वे विरहकी सम्भावनासे अत्यन्त व्याकुल हो गयीं और लाज छेदकर धै गोविन्द ! हे दामोदर ! हे माधव !—इस प्रकार ऊँची आवाजसे पुकार-पुकारकर सुललित खरसे रोने लगीं ॥ ३१ ॥ गोपियाँ इस प्रकार रो रही थीं । रोते-रोते सारी रात बीत गयी, सूर्योदय हुआ । अक्रूरजी सम्प्रा-कन्दन आदि नित्य कर्मोंसे निवृत्त होकर रथपर सवार हुए और उसे हाँक ले चले ॥ ३२ ॥ नन्दबाबा आदि गोपोंने भी दूध, दही, मक्खन, घी आदिसे भरे मटके और भेंटकी बहुत-सी सामग्रियों ले लीं तथा वे छत्राङ्गोपर चढ़कर उनके पीछे-पीछे चले ॥ ३३ ॥ इसी समय अनुरागके रंगमें रँगी हुई गोपियाँ अपनेप्राणप्यारे श्रीकृष्णके पास गयीं और उनकी चितवन, मुसकान आदि निरखकर कुछ-कुछ सुखी हुईं । अब वे अपने प्रियतम श्यामसुन्दरसे कुछ सन्देश पानेकी आकांक्षासे वहाँ खड़ी हो गयीं ॥ ३४ ॥ यदुवंशशिरोगमि भगवान् श्रीकृष्णने देखा कि मेरे मधुरा जानसे गोपियोंके हृदयमें बड़ी जलन हो रही है, वे सन्तप्त हो रही हैं, तब उन्होंने दूतके द्वारा मैं आऊँगा यह प्रेम-सन्देश भेजकर

उन्हें धीरज बैठाया ॥ ३५ ॥ गोपियोंको जबतक रथकी चक्का और पहियोंसे उबटती हुई धूल दीखती रही, तबतक उनके शरीर चित्रलिखित-से वहाँ अ्यों-के-न्नों खड़े रहे । परन्तु उन्होंने अपना चित्त तो मनमोहन प्राणवल्लभ श्रीकृष्णके साथ ही भेज दिया था ॥ ३६ ॥ अभी उनके मनमें आशा थी कि शायद श्रीकृष्ण कुछ दूर जाकर औट आयें । परन्तु जब नहीं औटे, तब वे निराश हो गयीं और अपने-अपने घर चली आयीं । परीक्षित ! वे रात-दिन अपने प्यारे श्यामसुन्दरकी कल्लवोंका ग्यान करती रहतीं और इस प्रकार अपने शोकसन्तप्तको हल्का करतीं ॥ ३७ ॥

परीक्षित ! श्वर भगवान् श्रीकृष्ण भी बलरामजी और अक्रूरजीके साथ वायुके समान वेगवाले रथपर सवार होकर पापनाशिनी यमुनाजीके किनारे जा पहुँचे ॥ ३८ ॥ वहाँ उन लोगोंने हाथ-मुँह धोकर यमुनाजीका मरकतमणिके समान नीला और अभ्रतके समान मीठा जल पिया । इसके बाद बलरामजीके साथ भगवान् धृष्टके धुरसुटमें खड़े रथपर सवार हो गये ॥ ३९ ॥ अक्रूरजीने दोनों माइयोंको रथपर बैठाकर उनसे आवाज की और यमुनाजीके कुण्ड (जनस्त-सीर्थ या ब्रह्महृद) पर आकर वे विधिपूर्वक स्नान करने लगे ॥ ४० ॥ उस कुण्डमें स्नान करनेके बाद वे जलमें डुबकी लगाकर गङ्गातीका जप करने लगे । उसी समय जलके भीतर अक्रूरजीने देखा कि श्रीकृष्ण और बलराम दोनों भाई एक साथ ही बैठे हुए हैं ॥ ४१ ॥ अब उनके मनमें यह शङ्का हुई कि श्वसुदेवजीके पुत्रोंको तो मैं रथपर बैठा आया हूँ, अब वे यहाँ जलमें कैसे आ गये ? जब यहाँ हैं तो शायद रथपर नहीं होंगे । ऐसा सोचकर उन्होंने सिर बाहर निकालकर देखा ॥ ४२ ॥ वे उस रथपर भी पूर्ववत् बैठे हुए थे । उन्होंने यह सोचकर कि मैंने उन्हें जो जलमें देखा था, वह भ्रम ही रहा होगा, फिर डुबकी लगायी ॥ ४३ ॥ परन्तु फिर उन्होंने वहाँ भी देखा कि साक्षात् अनन्तदेव श्रीशेषजी विराजमान हैं और सिद्ध, चारण, गन्धर्व एवं असुर अपने-अपने सिर झुकाकर उनकी स्तुति कर रहे हैं ॥ ४४ ॥ शेषजीके हजार सिर हैं और प्रत्येक

फणपर मुकुट सुशोभित है। कमलमालके समान उज्ज्वल शरीरपर नीलाम्बर धारण किये हुए हैं और उनकी ऐसी शोभा हो रही है, मानो सहस्र शिखरोंसे युक्त श्वेतगिरि कौनस शोभायमान हो ॥ ४५ ॥ अक्रूरजीने देखा कि शेषजीकी गोदमें स्थग्य मेघके समान धनश्याम विराजमान हो रहे हैं। वे रेशमी पीताम्बर पहने हुए हैं। बड़ी ही शान्त चतुर्भुज मूर्ति है और कमलके रक्तदलके समान रतनारे नेत्र हैं ॥ ४६ ॥ उनका बदन बड़ा ही मनोहर और प्रसन्नताका सदन है। उनका मधुर हास्य और चारु चितवन चित्तको चुराये लेती है। मीठे सुन्दर और नासिका तनिक ऊँची तथा बड़ी ही सुवक्त्र है। सुन्दर कान, कपोल और लाल-लाल अवरोली छटा निरासी ही है ॥ ४७ ॥ बाँहें छुटनौतक लक्ष्मी और हृदय-पुष्ट हैं। कंधे ऊँचे और वक्षःस्थल लक्ष्मीजीका आश्रयस्थान है। शङ्खके समान उतार-चढ़ाववाला सुचीक गला, गहरी नाभि और त्रिवलीयुक्त उदर पीपलके पत्तेके समान शोभायमान है ॥ ४८ ॥ स्थूल कटिप्रदेश और नितम्ब, हाथीकी सूँठके समान जोड़े, सुन्दर घुटने एवं पिंडलियों हैं। एड़ीके ऊपरकी गोंठें उमरी हुई हैं और लाल-लाल नखोंसे दिव्य ज्योतिर्मय किरणें फैल रही है। चरण-कमलकी अंगुलियाँ और अंगुठे नयी और कोमल पैलुबियोंके समान सुशोभित हैं ॥ ४९-५० ॥ अत्यन्त बहुमूल्य मणियोंसे जड़ा हुआ मुकुट, कर्ण, बाजूबद, करधनी, हार, नूपुर और कुण्डलोंसे तथा यक्षोपवीतसे वह दिव्य मूर्ति अलंकृत हो रही है। एक हाथमे पद्म

शोभा पा रहा है और शेष तीन हाथोंमें शङ्ख, चक्र और गदा, वक्षःस्थलपर श्रीवात्सका चिह्न, गलेमें कौस्तुभ-मणि और वनमाला लटक रही हैं ॥ ५१-५२ ॥ नन्द-सुनन्द आदि पार्षद अपने 'क्षामी', सनकादि परमर्षि 'परब्रह्म', ब्रह्मा, महादेव आदि देवता 'सर्वेश्वर', मरीचि आदि नौ ब्राह्मण 'भ्रजापति' और प्रह्लाद-नारद आदि भगवान्‌के परम प्रेमी भक्त तथा भाठों वसु अपने परम प्रियतम 'भगवान्' समक्षकर भिन्न-भिन्न भावोंके अनुसार निर्दोष वेदवाणीसे भगवान्‌की स्तुति कर रहे हैं ॥ ५३-५४ ॥ साय ही लक्ष्मी, पुष्टि, सरस्वती, कान्ति, कीर्ति और तुष्टि (अर्थात् ऐश्वर्य, वल, ज्ञान, श्री, यश और वैराग्य—ये बहैश्वर्यरूप शक्तियाँ), इन्द्र (सम्पत्तिरूप धृष्टी-शक्ति), ऊर्जा (जीवशक्ति), विद्या-अविद्या (जीवोंके मोक्ष और बन्धनमे कारणरूप बहिरङ्ग शक्ति), ह्लादिनी, सनिद् (अन्तरङ्ग शक्ति) और माया आदि शक्तियाँ मूर्तिमान् होकर उनकी सेवा कर रही हैं ॥ ५५ ॥

भगवान्‌की यह शक्ति निरखकर अक्रूरजीका बदन परमनन्दसे लबालब भर गया। उन्हें परम भक्ति प्राप्त हो गयी। सारा शरीर हर्षवैशसे पुष्किल हो गया। प्रेमभावका उद्रेक होनेसे उनके नेत्र औसूसे भर गये ॥ ५६ ॥ अब अक्रूरजीने अपना साहस बटोरकर भगवान्‌के चरणोंमें स्निग्ध रखकर प्रणाम किया और वे उसके बाद हाथ जोड़कर बड़ी सावधानीसे धीरे-धीरे गद्गद स्वरसे भगवान्‌की स्तुति करने लगे ॥ ५७ ॥

चालीसवाँ अध्याय

अक्रूरजीके द्वारा भगवान्‌की श्रीकृष्णकी स्तुति

अक्रूरजी बोले—प्रभो ! आप प्रकृति आदि समस्त कारणोंके परम कारण हैं। आप ही अविनाशी पुरुषोत्तम नारायण हैं तथा आपके ही नामिकमलसे उन ब्रह्माजीका आविर्भाव हुआ है, जिन्होंने इस चराचर जगत्‌की सृष्टि की है। मैं आपके चरणोंमें नमस्कार करता हूँ ॥ १ ॥ धृष्टी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, अहङ्कार, महत्तत्त्व,

प्रकृति, पुरुष, मन, इन्द्रिय, सम्पूर्ण इन्द्रियोंके विषय और उनके अधिष्ठानदेवता—यही सब चराचर जगत् तथा उसके व्यवहारके कारण हैं और ये सबके-सब आपके ही अङ्गस्वरूप हैं ॥ २ ॥ प्रकृति और प्रकृतिये उत्पन्न होनेवाले समस्त पदार्थ 'इन्द्रवृत्ति' के द्वारा ग्रहण किये जाते हैं, इसलिये ये सब अनात्मा हैं। अनात्मा

होनेके कारण जब हैं और इसलिये आपका स्वरूप नहीं जान सकते। क्योंकि आप तो खयें आत्मा ही ठहरे। ब्रह्माजी अवश्य ही आपके स्वरूप हैं। परन्तु वे प्रकृतिके गुण रजसे युक्त हैं, इसलिये वे भी आपकी प्रकृतिका और उसके गुणोंसे परेका स्वरूप नहीं जानते ॥ ३ ॥ साधु योगी स्वयं अपने अन्तःकरणमें स्थित 'अन्तर्यामी' के रूपमें; समस्त भूत-भौतिक पदार्थोंमें व्याप्त 'परमात्मा' के रूपमें और सूर्य, चन्द्र, अग्नि आदि देवमण्डलमें स्थित 'इन्द्रदेवता' के रूपमें तथा उनके साक्षी महापुरुष एवं नियन्ता ईश्वरके रूपमें साक्षात् आपकी ही उपासना करते हैं ॥ ४ ॥ बहुत-से कर्मकाण्डी ब्राह्मण कर्ममार्गका उपदेश करनेवाली ब्रवीषिषाके द्वारा, जो आपके इन्द्र, अग्नि आदि अनेक देववाचक नाम तथा वज्रहस्ता, सप्तार्चि आदि अनेक रूप बतलाती है, बड़े-बड़े यज्ञ करते हैं और उनसे आपकी ही उपासना करते हैं ॥ ५ ॥ बहुत-से ज्ञानी अपने समस्त कर्मोंका संन्यास कर देते हैं और शान्तभावमें स्थित हो जाते हैं। वे इस प्रकार ज्ञानयज्ञके द्वारा ज्ञानस्वरूप आपकी ही आराधना करते हैं ॥ ६ ॥ और भी बहुत-से संस्कारसम्पन्न अथवा छुद्रचित्त वैष्णव-जन आपकी बतलायी हुई पाञ्चरात्र आदि विधियोंसे तन्मय होकर आपके चतुर्भुज आदि अनेक और नारायणरूप एक स्वरूपकी पूजा करते हैं ॥ ७ ॥ भगवन्! दूसरे लोग शिवजीके द्वारा बतलाये हुए मार्गसे, जिसके आचार्य-भेदसे अनेक अवान्तर भेद भी हैं, शिवस्वरूप आपकी ही पूजा करते हैं ॥ ८ ॥ सामिन्! जो लोग दूसरे देवताओंकी भक्ति करते हैं और उन्हें आपसे भिन्न समझते हैं, वे सब भी वास्तवमें आपकी ही आराधना करते हैं; क्योंकि आप ही समस्त देवताओंके रूपमें हैं और सर्वेश्वर भी हैं ॥ ९ ॥ प्रभो! जैसे पर्वतोंसे सब ओर बहुत-सी नदियाँ निकलती हैं और कहीं कहीं से भरकर धूमती-भागती समुद्रमें प्रवेश कर जाती हैं, वैसे ही सभी प्रकारके उपासना-मार्ग धूम-धामकर देर-सवेर आपके ही पास पहुँच जाते हैं ॥ १० ॥

प्रभो! आपकी प्रकृतिके तीन गुण हैं—सत्त्व, रज और तम। ब्रह्मसे लेकर स्वाकार्पण्य सम्पूर्ण चराचर जीव प्राकृत हैं और जैसे वह सूर्यसे जोतप्रोत

रहते हैं, वैसे ही ये सब प्रकृतिके उन गुणोंसे ही जोतप्रोत हैं ॥ ११ ॥ परन्तु आप सर्वस्वरूप होनेपर भी उनके साथ लित नहीं हैं। आपकी दृष्टि निर्लिप्त है, क्योंकि आप समस्त वृत्तियोंके साक्षी हैं। यह गुणोंके प्रभावसे होनेवाली सृष्टि अज्ञानमूलक है और वह देवता, मनुष्य, पशु-पक्षी आदि समस्त योनिमें व्याप्त है; परन्तु आप उससे सर्वथा अलग हैं। इसलिये मैं आपको नमस्कार करता हूँ ॥ १२ ॥ अग्नि आपका मुख है। पृथ्वी चरण है। सूर्य और चन्द्रमा नेत्र हैं। आकाश नाभि है। दिशाएँ कान हैं। स्वर्ग सिर है। देवेन्द्रगण मुजाएँ हैं। समुद्र कोख है और यह वायु ही आपकी प्राणशक्तिके रूपमें उपासनाके लिये कल्पित हुई है ॥ १३ ॥ बृह और ओषधियाँ रोम हैं। मेघ सिरके केश हैं। पर्वत आपके अस्त्रिसमूह और नख हैं। दिन और रात पलकेंका खोलना और सींचना है। प्रजापति जननेन्द्रिय हैं और वृष्टि ही आपका वीर्य है ॥ १४ ॥ अविनाशी भगवन्! जैसे जलमें बहुत-से मल्लर जीव और मूख-के फलोंमें मन्हे-मन्हे कीट रहते हैं, उसी प्रकार उपासनाके लिये स्वीकृत आपके मनोमय पुरुषरूपमें अनेक प्रकारके जीव-जन्तुओंसे भरे हुए लोक और उनके लोकपाठ कल्पित किये गये हैं ॥ १५ ॥ प्रभो! आप क्रीडा करनेके लिये पृथ्वीपर जो-जो रूप धारण करते हैं, वे सब अवतार लोगोंके शोक-मोहकी धो-महा देते हैं और फिर सब लोग बड़े आनन्दसे आपके निर्मल यशका गान करते हैं ॥ १६ ॥ प्रभो! आपने वेदों, ऋषियों, ओषधियों और सत्यमत आदिकी रक्षा-दीक्षाके लिये मत्स्वरूप धारण किया था और प्रलयके समुद्रमें स्वच्छन्द विहर किया था। आपके मत्स्वरूपको मैं नमस्कार करता हूँ। आपने ही मनु और वैटम नामके असुरोंका संहार करनेके लिये हयग्रीव अवतार ग्रहण किया था। मैं आपके उस रूपको भी नमस्कार करता हूँ ॥ १७ ॥ आपने ही वह विशाल कच्छपरूप ग्रहण करके मन्दराचल-को धारण किया था, आपको मैं नमस्कार करता हूँ। आपने ही पृथ्वीके उद्धारकी लीला करनेके लिये वराहरूप स्वीकार किया था, आपको मेरे बार-बार नमस्कार ॥ १८ ॥ ब्रह्मा-जैसे साजुजनोंका भेदभय मिटानेवाले प्रभो!

आपके उस भौतिक वृत्तिरूपको मैं नमस्कार करता हूँ । आपने वामनरूप ग्रहण करके अपने पगोंसे तीनों लोक नाप लिये थे, आपको मैं नमस्कार करता हूँ ॥ १९ ॥ धर्मका उल्लङ्घन करनेवाले घमंडी क्षत्रियोंके वनका छेदन कर देनेके लिये आपने मृगपति परशुरामरूप ग्रहण किया था । मैं आपके उस रूपको नमस्कार करता हूँ । रावणका नाश करनेके लिये आपने रघुवंशमें मगवान् रामके रूपसे अवतार ग्रहण किया था । मैं आपको नमस्कार करता हूँ ॥ २० ॥ वैष्णवबनों तथा यदुवंशियोंका पावन-योग्य करनेके लिये आपने ही अपनेको वासुदेव, सङ्कर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध—इस चतुर्व्यूहके रूपमें प्रकट किया है । मैं आपको बार-बार नमस्कार करता हूँ ॥ २१ ॥ दैत्य और दानवोंको मोहित करनेके लिये आप शुब अहिंसामार्गिक प्रवर्तक बुद्धका रूप ग्रहण करेंगे । मैं आपको नमस्कार करता हूँ । और पृथ्वीके क्षत्रिय जब स्नेच्छप्राय हो जायेंगे, तब उनका नाश करनेके लिये आप ही कल्किके रूपमें अवतीर्ण होंगे । मैं आपको नमस्कार करता हूँ ॥ २२ ॥

मगवान् । ये सब के-सब जीव आपकी मायासे मोहित हो रहे हैं और इस मोहके कारण ही 'यह मैं हूँ और यह मेरा है' इस झूठे दुराग्रहमें फँसकर कर्मके मार्गमें भटक रहे हैं ॥ २३ ॥ मेरे स्वामी । इसी प्रकार मैं भी स्वप्नमें दीखनेवाले पदार्थोंके समान झूठे देह-मोह, पक्षी-पुत्र और धन-स्वजन आदिको सत्य समझकर उन्हींके मोहमें फँस रहा हूँ और भटक रहा हूँ ॥ २४ ॥

मेरी मूर्खता तो देखिये, प्रभो ! मैंने अनित्य वस्तुओंको नित्य, अनात्माको आत्मा और दुःखको सुख समझ लिया । मन्ना इस उलटी बुद्धिकी भी कोई सीमा है । इस प्रकार अज्ञानवश सांसारिक सुख-दुःख आदि दृष्टिमें ही रम गया और यह बात नित्युक्त मूल गया कि आप ही हमारे सच्चे प्यारे हैं ॥ २५ ॥ जैसे कोई अनजान मनुष्य

जल्के लिये ताजाबपर जाय और उसे उसीसे पैदा हुए सिवार आदि घासोंसे ढका देखकर ऐसा समझ ले कि यहाँ जल नहीं है, तथा सूर्यकी किरणोंमें झटमूठ प्रतीत होनेवाले जल्के लिये मृगतृष्णाकी ओर दौड़ पड़े, वैसे ही मैं अपनी ही मायासे छिपे रहनेके कारण आपको छोड़कर विषयोंमें सुखकी आशासे भटक रहा हूँ ॥ २६ ॥ मैं अविनाशी अक्षर वस्तुके ज्ञानसे रहित हूँ । इसीसे मेरे मनमें अनेक वस्तुओंकी कामना और उनके लिये कर्म करनेके सङ्कल्प उठते ही रहते हैं । इसके अतिरिक्त ये इन्द्रियों भी जो बड़ी प्रबल एवं दुर्दमनीय हैं, मनको मग्न-मग्नकर बलपूर्वक इधर-उधर घसीट ले जाती हैं । इसीलिये इस मनको मैं रोक नहीं पाता ॥ २७ ॥ इस प्रकार भटकता हुआ मैं आपके उन चरणकमलोंकी छत्रछायामें आ पहुँचा हूँ, जो दुष्टोंके लिये दुर्लभ हैं । मेरे स्वामी ! इसे भी मैं आपका कृपाप्रसाद ही मानता हूँ । क्योंकि पशनाम । जब जीवके संसारसे मुक्त होने-का समय आता है, तब सत्पुरुषोंकी उपासनासे विचित्रि आपमें क्लृप्ति है ॥ २८ ॥ प्रभो ! आप केवल विज्ञान-स्वरूप हैं, विज्ञानचन हैं । जितनी भी प्रतीतियाँ होती हैं, जितनी भी वृत्तियाँ हैं, उन सबके आप ही कारण और अधिष्ठान हैं । जीवके रूपमें एवं जीवोंके सुख-दुःख आदिके निमित्त क्लृप्त, कर्म, खभाव तथा प्रकृतिके रूपमें भी आप ही हैं । तथा आप ही उन सबके नियन्ता भी हैं । आपकी शक्तियाँ अनन्त हैं । आप स्वयं ब्रह्म हैं । मैं आपको नमस्कार करता हूँ ॥ २९ ॥ प्रभो ! आप ही वासुदेव, आप ही समस्त जीवोंके आश्रय (सङ्कर्षण) हैं; तथा आप ही बुद्धि और मनके अधिष्ठाद-देवता हृषीकेश (प्रद्युम्न और अनिरुद्ध) हैं । मैं आपको बार-बार नमस्कार करता हूँ । प्रभो ! आप मुझ शरणागतकी रक्षा कीजिये ॥ ३० ॥

इकतालीसवाँ अध्याय

श्रीकृष्णका मथुराज्यमें प्रवेश

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित् ! अक्रूरजी इस प्रकार स्तुति कर रहे थे । उन्हें मगवान् श्रीकृष्णने जलमें

अपने दिव्यरूपके दर्शन कराये और फिर उसे छिपा लिया, ठीक वैसे ही, जैसे कोई नट अभिनयमें कोई रूप

दिखाकर फिर उसे परदेकी ओटमें छिपा दे ॥ १ ॥ जब अक्रूजीने देखा कि भगवान् का वह दिव्यरूप अन्तर्धान हो गया, तब वे जलसे बाहर निकल आये और फिर जल्दी-जल्दी सारे आवश्यक कर्म समाप्त करके रथपर चले आये । उस समय वे बहुत ही विस्मित हो रहे थे ॥ २ ॥ भगवान् श्रीकृष्णने उनसे पूछा—‘चाचाजी ! आपने पृथ्वी, आकाश या जलमें कोई अद्भुत वस्तु देखी है क्या ? क्योंकि आपकी आकृति देखनेसे ऐसा ही जान पड़ता है’ ॥ ३ ॥

अक्रूजीने कहा—‘प्रभो ! पृथ्वी, आकाश या जलमें और सारे जगत् में जितने भी अद्भुत पदार्थ हैं, वे सब आपमें ही हैं । क्योंकि आप विश्वरूप हैं । जब मैं आपको ही देख रहा हूँ तब ऐसी कौन-सी अद्भुत वस्तु रह जाती है, जो मैंने न देखी हो ॥ ४ ॥ भगवन् ! जितनी भी अद्भुत वस्तुएँ हैं, वे पृथ्वीमें हों या जल अथवा आकाशमें—सब-कहीं-सब जिनमें हैं, उन्हीं आपको मैं देख रहा हूँ । फिर भला, मैंने यहाँ अद्भुत वस्तु कौन-सी देखी ?’ ॥ ५ ॥ गण्डिनीनन्दन अक्रूजीने यह कहकर रथ हॉक दिया और भगवान् श्रीकृष्ण तथा बलरामजीको लेकर दिन ढलते-ढलते वे मथुरापुरी जा पहुँचे ॥ ६ ॥ परीक्षित ! मार्गमें स्थान-स्थानपर गाँवोंके लोग मिठनेके लिये आते और भगवान् श्रीकृष्ण तथा बलरामजीको देखकर आनन्दमग्न हो जाते । वे एकटक उनकी ओर देखने लगते, अपनी दृष्टि हटा न पाते ॥ ७ ॥ नन्दबाबा आदि ब्रजवासी तो पहलेसे ही वहाँ पहुँच गये थे, और मथुरापुरीके बाहरी उपक्रममें रुककर उनकी प्रतीक्षा कर रहे थे ॥ ८ ॥ उनके पास पहुँचकर जगदीश्वर भगवान् श्रीकृष्णने विनीतभावसे खड़े अक्रूजीका हाथ अपने हाथमें लेकर मुसकराते हुए कहा—॥ ९ ॥ ‘चाचाजी ! आप रथ लेकर पहले मथुरापुरीमें प्रवेश कीजिये और अपने घर जाइये । हमलोग पहले यहाँ उतरकर फिर नगर देखनेके लिये आयेगे’ ॥ १० ॥

अक्रूजीने कहा—‘प्रभो ! आप दोनोंके बिना मैं मथुरामें नहीं जा सकता । सभी ! मैं आपका मक हूँ । मकनत्सल प्रभो ! आप मुझे मत छोड़िये ॥ ११ ॥

भगवन् ! आइये, चलें । मेरे परम हितैषी और सच्चे सुहृद् भगवन् ! आप बलरामजी, स्वालबाजों तथा नन्दरायजी आदि आत्मीयोंके साथ चलकर हमारा घर सनाथ कीजिये ॥ १२ ॥ हम गृहस्थ हैं । आप अपने चरणोंकी धूलिसे हमारा घर पवित्र कीजिये । आपके चरणोंकी धोवन (मङ्गलजल या चरणामृत) से शक्ति, देवता, पितर—सब-के-सब तृप्त हो जाते हैं ॥ १३ ॥ प्रभो ! आपके शुभल चरणोंके पखारकर महात्मा बलिने वह यज्ञ प्राप्त किया, जिसका गान संत पुरुष करते हैं । केवल यज्ञ ही नहीं—उन्हें अतुलनीय ऐश्वर्य तथा वह गति प्राप्त हुई, जो अन्यत्र प्रेमी मत्तोंको प्राप्त होती है ॥ १४ ॥ आपके चरणोदक—गङ्गाजीने तीनों लोक पवित्र कर दिये । सचमुच वे श्रुतिमान् पवित्रता हैं । उन्हींके स्पर्शसे समस्त पुत्रोंको सन्तति प्राप्त हुई और उसी जल-को स्वयं भगवान् शङ्करने अपने सिरपर धारण किया ॥ १५ ॥ यदुवंशशिरोमणे ! आप देवताओंके भी आराध्यदेव हैं । जगत् के स्वामी हैं । आपके गुण और लीलाओंका श्रवण तथा कीर्तन बड़ा ही मङ्गलकारी है । उत्तम पुरुष आपके गुणोंका कीर्तन करते रहते हैं । नारायण ! मैं आपको नमस्कार करता हूँ ॥ १६ ॥

श्रीभगवान् ने कहा—‘चाचाजी ! मैं दाऊन मैयाके साथ आपके घर आऊँगा और पहले इस यदुवंशियोंके दोही कसको गारकर तब अपने सभी सुहृद्-स्वजनोंका प्रिय करूँगा ॥ १७ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—‘परीक्षित ! भगवान् के इस प्रकार कहनेपर अक्रूजी कुछ अनमनेसे हो गये । उन्होंने पुरीमें प्रवेश करके कंससे श्रीकृष्ण और बलरामके ले आनेका समाचार निवेदन किया और फिर अपने घर गये ॥ १८ ॥ दूसरे दिन तीसरे पहर बलरामजी और स्वालबाजों-के साथ भगवान् श्रीकृष्णने मथुरापुरीको देखनेके लिये नगरमें प्रवेश किया ॥ १९ ॥ भगवान् ने देखा कि नगरके परकोटेमें स्फटिकगणि (विडौर) के बहुत ऊँचे-ऊँचे गोपुर (प्रधान दरवाजे) तथा घरोंमें भी बड़े-बड़े फाटक बने हुए हैं । उनमें सोनेके बड़े-बड़े किताब ढगे हैं और सोनेके ही तोरण (बाहरी दरवाजे) बने हुए हैं । नगरके चारों ओर तौबे और पीतलकी चहारदीवारी बनी हुई है । खईके

कारण और कहींसे उस नगरमें प्रवेश करना बहुत कठिन है। स्थान-स्थानपर सुन्दर-सुन्दर उद्यान और रमणीय उपवन (केवल छियोंके उपयोगमें आनेवाले वगीचे) शोभायमान हैं ॥ २० ॥ सुवर्णसे सजे हुए चौराहे, धनियोंके महल, उन्हींके साथके वगीचे, कारीगरोंके बैठनेके स्थान या प्रजापतिके समा-भवन (ठगनहाल) और साधारण लोगोंके निवासगृह नगरकी शोभा बढा रहे हैं। वैदूर्य, हीरे, स्फटिक (बिल्वीर), नीलम, मृंगे, मोती और पन्ने आदिसे जड़े हुए छज्जे, चबूतर, बराले एवं फर्श आदि जगमगा रहे हैं। उनपर बैठे हुए कबूतर, मोर आदि पक्षी भौंति-भौंतिकी बोली बोल रहे हैं। सबक, बाजार, गली एवं चौराहोंपर खूब छिबकाय किया गया है। स्थान-स्थानपर फूलोंके गजरे, जवारे (जौके अङ्कुर), खीरु और चावल बिखरे हुए हैं ॥ २१-२२ ॥ बरोंके दरवाजोंपर दही और चन्दन आदिसे चर्चित जलसे भरे हुए कलश रखे हैं और वे फल, दीपक, नयी-नयी कोंपलें, फलसहित केले और सुपारीके वृक्ष, छोटी-छोटी झंडियों और रेशमी वस्त्रोंसे भजीभौंति सजाये हुए हैं ॥ २३ ॥

परीक्षित ! वसुदेवनन्दन भगवान् श्रीकृष्ण और बलरामजीने ग्वालनालोंके साथ राजपथसे मथुरा नगरीमें प्रवेश किया। उस समय नगरकी नारियाँ बड़ी उत्सुकतासे उन्हें देखनेके लिये झटपट अदरियोंपर चढ़ गयीं ॥ २४ ॥ किसी-किसीने जल्दीके कारण अपने वस्त्र और गहने सलटे पहन लिये। किसीने मूलसे कुम्हल, कंगन आदि जोड़ेसे पहने जानेवाले आभूषणोंमेंसे एक ही पहना और चल पड़ी। कोई एक ही कानमें पत्रनामक आभूषण धारण कर पायी थी, तो किसीने एक ही पोंवमें पाय-जेब पहन रक्खा था। कोई एक ही आँखमें अलखन आँज पायी थी और दूसरीमें बिना आँखे ही चल पड़ी ॥ २५ ॥ कई रमणियों तो भोजन कर रही थीं, वे हाथका कौर फेंककर चल पड़ीं। सबका मन उत्साह और आनन्दसे भर रहा था। कोई-कोई उकटन लग्ना रही थीं, वे बिना स्नान किये ही दौड़ पड़ीं। जो सो रही थीं, वे कोड़ाहल सुनकर उठ खड़ी हुईं और उसी अवस्थामें दौड़ चलीं। जो माताएँ बच्चोंको दूध पिख रही

थीं, वे उन्हें गोदसे हटाकर भगवान् श्रीकृष्णको देखनेके लिये चल पड़ीं ॥ २६ ॥ कमलनयन भगवान् श्रीकृष्ण मतवाले गजराजके समान बड़ी मस्तीसे चल रहे थे। उन्होंने लक्ष्मीको भी आनन्दित करनेवाले अपने श्याम-सुन्दर विग्रहसे नगरनारियोंके नेत्रोंको बडा आनन्द दिये और अपनी विजयसूर्य प्रगल्भ हँसी तथा प्रेममयी चितवन-से उनके मन चुप लिये ॥ २७ ॥ मथुराकी छियाँ बहुत दिनोंसे भगवान् श्रीकृष्णकी अद्भुत लीलाएँ सुनती आ रही थीं। उनके चित्त चिरकालसे श्रीकृष्णके लिये चञ्चल, व्याकुल हो रहे थे। आज उन्होंने उन्हें देखा। भगवान् श्रीकृष्णने भी अपनी प्रेममयी चितवन और मन्द सुसकान-की सुघामे सीचकर उनका सम्मान किया। परीक्षित ! उन छियोंने नेत्रोंके द्वारा भगवान्को अपने हृदयमें ले जाकर उनके आनन्दमय स्वरूपका आलिङ्गन किया। उनका गरीर पुलकित हो गया और बहुत दिनोंकी विरह-व्याधि शान्त हो गयी ॥ २८ ॥ मथुराकी नारियाँ अपने-अपने महलोंकी अदरियोंपर चढ़कर बलराम और श्रीकृष्णपर पुष्पोंकी वर्षा करने लगीं। उस समय उन छियोंके मुखकमल प्रेमके आवेगसे खिल रहे थे ॥ २९ ॥

प्राक्ष्ण, क्षत्रिय और वैश्योंने स्थान-स्थानपर दही, अक्षत, जलसे भरे पात्र, फूलोंके हार, चन्दन और मೆठकी सामग्रियोंसे आनन्दमग्न होकर भगवान् श्रीकृष्ण और बलरामजीकी पूजा की ॥ ३० ॥ भगवान्को देखकर सभी पुरवासी आपसमें कहने लगे—'धन्य है। धन्य है।' गोपियोंने ऐसी कौन-सी महान् तपस्या की है, जिसके कारण वे मनुष्यमात्रको परमानन्द देनेवाले इन दोनों मनोहर किशोरोंको देखती रहती हैं ॥ ३१ ॥

इसी समय भगवान् श्रीकृष्णने देखा कि एक घोड़ी, जो कागडे ँगनेका भी काम करता था, उनकी ओर आ रहा है। भगवान् श्रीकृष्णने उससे धुले हुए उत्तम-उत्तम कपड़े मँगे ॥ ३२ ॥ भगवान्ने कहा—'माई ! तुम हमें ऐसे वस्त्र दो, जो हमारे शरीरमें पूरे-पूरे आ जायें। वास्तवमें हमलोग उन वस्त्रोंके अधिकारी हैं। इसमें सन्देह नहीं कि यदि तुम हमलोगोंको वस्त्र दोगे, तो तुम्हारा परम कल्याण होगा' ॥ ३३ ॥ परीक्षित ! भगवान् सर्वत्र परिपूर्ण हैं। सब कुछ उन्हींका है। फिर भी उन्होंने इस प्रकार माँगनेकी लीला की। परन्तु वह

मूर्ख राजा कंसका सेवक होनेके कारण मतवाला हो रहा था । भगवान्की वस्तु भगवान्को देना तो दूर रहा, उसने क्रोधमें भरकर आक्षेप करते हुए कहा—॥ ३४ ॥ 'तुमलोग रहते हो सदा पहाड़ और जंगलोंमें । क्या वहाँ ऐसे ही बख पहनते हो ? तुमलोग बहुत उदण्ड हो गये हो, तभी ऐसी बड़-बड़कर बातें करते हो । अब तुम्हें राजा-का धन खटनेकी इच्छा हुई है ॥ ३५ ॥ अरे, मूर्खों ! जाओ, भाग जाओ । यदि कुछ दिन जीनेकी इच्छा हो तो फिर इस तरह मत मोंगा । राजकर्मचारी तुम्हारे-जैसे लच्छूनोंको कैद कर लेते हैं, मार डालते हैं और जो कुछ उनके पास होता है, छीन लेते हैं' ॥ ३६ ॥ जब वह बोधी इस प्रकार बहुत कुछ बहक-बहककर बातें करने लगा, तब भगवान् श्रीकृष्णने तनिक कुपित होकर उसे एक तमाका जमाया और उसका सिर धक्कासे धक्का नीचे जा गिरा ॥ ३७ ॥ वह देखकर उस बोधीके अधीन काम करनेवाले सब के-सब कम्बोकि गहुर वहीं छोड़कर इवर-उवर भाग गये । भगवान्ने उन वकोंको ले लिया ॥ ३८ ॥ भगवान् श्रीकृष्ण और बलराम-जीने मनमाने बख पहन लिये तथा बचे हुए वकोंसे बहुत-से अपने साथी गालबालोंको भी दिये । बहुत-से कपड़े तो वहीं जमीनपर ही छोड़कर चल दिये ॥ ३९ ॥

भगवान् श्रीकृष्ण और बलराम जब कुछ आगे बढ़े, तब उन्हें एक दर्जा मिला । भगवान्का अनुपम सौन्दर्य देखकर उसे बड़ी प्रसन्नता हुई । उसने उन रंग-विरंगे सुन्दर वकोंको उनके शरीरपर ऐसे ढंगसे सजा दिया कि वे सब ठीक-ठीक फल गये ॥ ४० ॥ अनेक प्रकारके वकोंसे विभूषित होकर दोनों माई और भी अधिक शोभायमान हुए । ऐसे जान पड़ते, मानो उत्सवके समय स्वेत और श्याम गजरावक मलीमाँति सजा दिये गये हों ॥ ४१ ॥ भगवान् श्रीकृष्ण उस दर्जापर बहुत प्रसन्न हुए । उन्होंने उसे इस लोकमें भरपूर धन-सम्पत्ति, बल-ऐश्वर्य, अपनी स्मृति और दूरतक देखने-सुनने आदिकी इन्द्रियसम्बन्धी शक्तियाँ दीं और मृशुके बादके लिये अपना सारूप्य मोक्ष भी दे दिया ॥ ४२ ॥

इसके बाद भगवान् श्रीकृष्ण सुदामा माखीके घर गये । दोनों माइयोंको देखते ही सुदामा उठ खड़ा हुआ

और पृथ्वीपर सिर रखकर उन्हें प्रणाम किया ॥ ४३ ॥ फिर उनको आसनपर बैठाकर उनके पाँव पखारे, हाथ धुलये और तदनन्तर गालबालोंके सहित सबकी फूलोंके हार, पान, चन्दन आदि सामग्रियोंसे विविधपूर्वक पूजा की ॥ ४४ ॥ इसके पश्चात् उसने प्रार्थना की—'प्रभो ! आप दोनोंके शुभागमनसे हमारा जन्म सफल हो गया । हमारा कुल पवित्र हो गया । आज हम पितर, ऋषि और देवताओंके ऋणसे मुक्त हो गये । वे हमपर परमसन्तुष्ट हैं ॥ ४५ ॥ आप दोनों सम्पूर्ण जगत्के परम कारण हैं । आप संसारके अमृदय—उन्नति और निःश्रेयस—मोक्षके लिये ही इस पृथ्वीपर अपने ज्ञान, बल आदि अंशोंके साथ अवतीर्ण हुए हैं ॥ ४६ ॥ यद्यपि आप प्रेम करनेवालोंसे ही प्रेम करते हैं, मजन करनेवालोंको ही मजते हैं—फिर भी आपकी दृष्टिमें निवृत्ता नहीं है । क्योंकि आप सारे जगत्के परम सुहृद् और आत्मा हैं । आप समस्त प्राणियों और पदार्थोंमें समरूपसे स्थित हैं ॥ ४७ ॥ मैं आपका दास हूँ । आप दोनों मुझे आश्वास दीजिये कि मैं आपलोगोंकी क्या सेवा करूँ । भगवन् ! जीवपर आपका यह बहुत बड़ा अनुग्रह है, पूर्ण कृपा-प्रसाद है कि आप उसे आश्वास देकर किसी कार्यमें निपुण करते हैं ॥ ४८ ॥ राजेन्द्र ! सुदामा माखीने इस प्रकार प्रार्थना करनेके बाद भगवान्का अभिप्राय जानकर बड़े प्रेम और आनन्दसे भरकर अश्वन्त सुन्दर-सुन्दर तथा सुगन्धित पुष्पोंसे गूँथे हुए हार उन्हें पहनाये ॥ ४९ ॥ जब गालबाल और बलराम-जीके साथ भगवान् श्रीकृष्ण उन सुन्दर-सुन्दर माखीओंसे ढलकृत हो चुके, तब उन वरदायक प्रभुने प्रसन्न होकर विनीत और शरणागत सुदामाको श्रेष्ठ कर दिये । ५० ॥ सुदामा माखीने उनसे यही कर मोंगा कि 'प्रभो ! आप ही समस्त प्राणियोंके आत्मा हैं । सर्वस्वरूप । आपके चरणोंमें मेरी अविवक्षित भक्ति हो । आपके भक्तोंसे मेरा सौहार्द, मैत्रीका सम्बन्ध हो और समस्त प्राणियोंके प्रति अहैतुक दयाका साव बन रहा ॥ ५१ ॥ भगवान् श्रीकृष्णने सुदामाको उसके मोंगे हुए वर तो दिये ही—ऐसी लक्ष्मी भी दी, जो वंशपरम्पराके साथ-साथ बढ़ती जाय, और साथ ही बल, आयु, कीर्ति तथा कान्तिका भी वरदान दिया । इसके बाद भगवान् श्रीकृष्ण बलरामजीके साथ वहाँसे विदा हुए ॥ ५२ ॥

बयालीसवाँ अध्याय

कुन्जापर कृपा, धनुषमन्त्र और कंसकी घबड़ाहट

श्रीकृष्णके कहते हैं—परीक्षित । इसके बाद भगवान् श्रीकृष्ण जब अपनी मण्डलीके साथ राजमार्गसे आगे बढ़े, तब उन्होंने एक युवती कीको देखा । उसका मुँह तो सुन्दर था, परन्तु वह शरीरसे कुनड़ी थी । इसीसे उसका नाम पड़ गया था 'कुन्डा' । वह अपने हाथमें चन्दनका पात्र लिये हुए जा रही थी । भगवान् श्रीकृष्ण प्रेमरसका दान करनेवाले हैं, उन्होंने कुन्जापर कृपा करनेके लिये हँसते हुए उससे पूछा —॥ १॥ 'सुन्दरी ! तुम कौन हो ? यह चन्दन किसके लिये ले जा रही हो ? कल्याणी ! हमें सब बात सच-सच बतला दो । यह उत्तम चन्दन, यह अङ्गराग हमें भी दो । इस दानसे शीघ्र ही तुम्हारा परम कल्याण होगा' ॥ २ ॥

उपह्वन व्याधि लगानेवाली सैरम्भी कुन्जाने कहा—'परम सुन्दर ! मैं कंसकी प्रिय दासी हूँ । महाराज मुझे बहुत मानते हैं । मेरा नाम त्रिकला (कुन्डा) है । मैं उनके यहाँ चन्दन, अङ्गराग लगानेका काम करती हूँ । मेरे द्वारा तैयार किये हुए चन्दन और अङ्गराग भोजराज कंसको बहुत भाते हैं । परन्तु आप दोनोंसे बढ़कर उसका और कोई उत्तम पात्र नहीं है' ॥ ३ ॥ भगवान्‌के सौन्दर्य, सुकुमारता, रसिकता, मन्दहास्य, प्रेमाक्षय और चारु चितवनसे कुन्जाका मन हाथसे निकल गया । उसने भगवान्‌पर अपना हृदय न्योछावर कर दिया । उसने दोनों आँखोंको वह सुन्दर और गाढ़ा अङ्गराग दे दिया ॥ ४ ॥ तब भगवान् श्रीकृष्णने अपने सौवले शरीरपर पीले रंगका और बलरामजीने अपने गोरे शरीरपर लाल रंगका अङ्गराग लगाया तथा नामसे ऊपरके भागमें अलुरक्षित होकर वे अत्यन्त सुशोभित हुए ॥ ५ ॥ भगवान् श्रीकृष्ण उस कुन्जापर बहुत प्रसन्न हुए । उन्होंने अपने दर्शनका प्रत्यक्ष फल दिखानेके लिये तीन जगहसे टेढ़ी किन्तु सुन्दर मुखवाली कुन्जाको सीधी करनेका विचार-किया ॥ ६ ॥ भगवान्‌ने अपने चरणोंसे कुन्जाके पैरके दोनों पंजे दबा लिये और हाथ ऊँचा करके दो

अँगुलियों उसकी लेटीमें खींची तथा उसके शरीरको तनिक उचका दिया ॥ ७ ॥ उचकते ही उसके सारे अङ्ग सीधे और समान हो गये । प्रेम और मुक्तिके दाता भगवान्‌के स्पर्शसे वह तत्काल विशाल नितम्ब तथा पीन पयोधरोंसे युक्त एक उत्तम युवती बन गयी ॥ ८ ॥

उसी क्षण कुन्जा रूप, गुण और उदारतासे सम्पन्न हो गयी । उसके मनमें भगवान्‌के मिलनकी कामना जाग उठी । उसने उनके द्वुपट्टेका छोर पकड़कर मुसकराते हुए कहा—॥ ९ ॥ 'वीरशिरोमणे ! आहवे, वर चले । अब मैं आपको यहाँ नहीं छोड़ सकती । क्योंकि आपने मेरे चित्तको मग्न बाला है । पुरुषोत्तम ! मुझ दासीपर प्रसन्न होइये' ॥ १० ॥ जब बलरामजीके सामने ही कुन्जाने इस प्रकार प्रार्थना की, तब भगवान् श्रीकृष्णने अपने साथी ग्वालालोंके मुँहकी ओर देखकर हँसते हुए उससे कहा—॥ ११ ॥ 'सुन्दरी ! तुम्हारा वर संसारी लोगोंके लिये अपनी मानसिक व्याधि मिटानेका साधन है । मैं अपना कार्य पूरा करके अवश्य यहाँ आऊँगा । हमारे-जैसे बेघरके बटोहियोंको तुम्हारा ही तो आसरा है' ॥ १२ ॥ इस प्रकार मीठी-मीठी बातें करके भगवान् श्रीकृष्णने उसे विदा कर दिया । जब वे व्यापारियोंके बाजारमें पहुँचे, तब उन व्यापारियोंने उनका तथा बलरामजीका पान, फूलोंके हार, चन्दन और तरह-तरहकी मೆढ—उपहारोंसे पूजन किया ॥ १३ ॥ उनके दर्शनमात्रसे स्थियोंके हृदयमें प्रेमका आवेग, मिलनकी आकाङ्क्षा जग उठनी थी । यहाँतक कि उन्हें अपने शरीरकी भी सुध न रहती । उनके वस्त्र, जूते और कंगन ढीले पड़ जाते थे तथा वे चित्रलिखित मूर्तियोंके समान ज्यों-की-व्यों खड़ी रह जाती थीं ॥ १४ ॥

इसके बाद भगवान् श्रीकृष्ण पुरवासियोंसे धनुष-यज्ञका स्थान पृच्छते हुए रंगशाल्यमें पहुँचे और वहाँ उन्होंने इन्द्रधनुषके समान एक अद्भुत धनुष देखा ॥ १५ ॥ उस धनुषमें बहुत-सा धन लगाया गया था, अनेक बहुमूल्य जवहारोंसे उसे सजाया गया था ।

उसकी खूब पूजा की गयी थी और बहुत-से सैनिक उसकी रक्षा कर रहे थे । भगवान् श्रीकृष्णने रक्षकोंके रोकनेपर भी उस धनुषको बलकारसे उठा लिया ॥ १६ ॥ उन्होंने सबके देखते-देखते उस धनुषको बायें हाथसे उठया, उसपर होरी चढ़ायी और एक क्षणमें खींचकर बीचोंबीचसे उसी प्रकार उसके दो टुकड़े कर डाले, जैसे बहुत बलवान् मत्स्यज हाथी खेल-ही-खेलमें ईशको तोड़ डालता है ॥ १७ ॥ जब धनुष टूटा तब उसके शब्दसे आकाश, पृथ्वी और दिशाएँ भर गयीं; उसे सुनकर कंस भी मयभीत हो गया ॥ १८ ॥ अब धनुषके रक्षक आततायी अशुर अपने सहायकोंके साथ बहुत ही बिगड़े । वे भगवान् श्रीकृष्णको घेरकर खड़े हो गये और उन्हें पकड़ लेनेकी इच्छासे चिल्लाते लगे—‘पकड़ लो, बाँध लो, जाने न पावे’ ॥ १९ ॥ उनका दृढ़ अभिप्राय जानकर बलरामजी और श्रीकृष्ण भी तनिक क्रोधित हो गये और उस धनुषके टुकड़ोंको उठाकर उन्होंने उनका काम तमाम कर दिया ॥ २० ॥ उन्हीं धनुषखण्डोंसे उन्होंने उन असुरोंकी सहायताके लिये कंसकी भेजी हुई सेनाका भी संहार कर डाला । इसके बाद वे यक्षशाळके प्रधान द्वारसे होकर बाहर निकल आये और बड़े आनन्दसे मथुरापुरीकी शोभा देखते हुए निचरने लगे ॥ २१ ॥ जब नगरनिवासियोंने दोनों भाइयोंके इस अद्भुत पराक्रमकी बात सुनी और उनके तेज, साहस तथा अनुपम रूपको देखा तब उन्होंने यही निश्चय किया कि हो-न-हो ये दोनों कोई श्रेष्ठ देवता हैं ॥ २२ ॥ इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्ण और बलरामजी पूरी खतन्नतासे मथुरापुरीमें विचरण करने लगे । जब सूर्यास्त हो गया, तब दोनों माई गन्धर्वजोंसे घिरे हुए नगरसे बाहर अपने डेरेपर, जहाँ छकड़े थे, लौट आये ॥ २३ ॥ तीनों लोकोंके बड़े-बड़े देवता चाहते थे कि जल्दी हमें मिलें, परन्तु उन्होंने सबका परित्याग कर दिया और न चाहनेवाले भगवान्का वरण किया । उन्हींको सदाके लिये अपना निवासस्थान बना लिया । मथुरावासी उन्हीं पुरुषभूषण भगवान् श्रीकृष्णके अङ्ग-अङ्गका सौन्दर्य देख रहे हैं । उनका कितना सौभाग्य

है । वनमें भगवान्की यात्राके समय गोपियोंने विरहातुर होकर मथुरावासियोंके सम्बन्धमें जो-जो बातें कही थीं, वे सब वहाँ अक्षरशः सत्य हुईं । सचमुच वे परमानन्दमें मग्न हो गये ॥ २४ ॥ फिर हाथ-पैर धोकर श्रीकृष्ण और बलरामजीने दूधसे बने हुए खीर आदि पदार्थोंका भोजन किया और कंस आगे क्या करना चाहता है, इस बातका पता लगाकर उस रातको वहाँ आरामसे सो गये ॥ २५ ॥

जब कंसने सुना कि श्रीकृष्ण और बलरामने धनुष तोड़ डाला, रक्षकों तथा उनकी सहायताके लिये भेजी हुई सेनाका भी संहार कर डाला और यह सब उनके लिये केवल एक खिलवाड़ ही था—इसके लिये उन्हें कोई श्रम या कठिनाई नहीं उठानी पड़ी ॥ २६ ॥ तब वह बहुत ही डर गया; उस दुर्बुद्धिको बहुत देरतक नींद न आयी । उसे जाग्रद-अवस्थामें तथा स्वप्नमें भी बहुत-से ऐसे अपशकुन हुए, जो उसकी मृत्युके सूचक थे ॥ २७ ॥ जाग्रद-अवस्थामें उसने देखा कि जब या दर्पणमें शरीरकी परछाईं तो पकड़ी है, परन्तु सिर नहीं दिखायी देता; अँगुली आदिकी आङ न होनेपर भी चन्द्रमा, तारे और दीपक आदिकी अपोलियाँ उसे दो-दो दिखायी पकती हैं ॥ २८ ॥ छायामें छेद दिखायी पकता है और कननोंमें अँगुली बाळकर घुननेपर भी प्राणोंका वूँ-वूँ शब्द नहीं सुनायी पकता । कुछ सुनहले प्रतीत होते हैं और बाढ़ या कीचड़में अपने पैरोंके चिह्न नहीं दीख पकते ॥ २९ ॥ कंसने स्वप्नावस्थामें देखा कि वह प्रेतोंके गले जग रहा है, गवेषण चढ़कर चलता है और बिप खा रहा है । उसका सारा शरीर तेजसे तर है, गलेमें जपाकुसुम (अंबुदुल) की माला है और नम्र होकर कहीं जा रहा है ॥ ३० ॥ स्वप्न और जाग्रद-अवस्थामें उसने इसी प्रकारके और भी बहुत-से अपशकुन देखे । उनके कारण उसे बड़ी चिन्ता हो गयी, वह मृत्युसे डर गया और उसे नींद न आयी ॥ ३१ ॥

परीक्षित ! जब रात बीत गयी और सूर्यनारायण पूर्व समुद्रसे ऊपर उठे, तब राजा कंसने मङ्ग-श्रीढा (दंगल) का महोत्सव प्रारम्भ कराया ॥ ३२ ॥ राज-

कर्मचारियोंने रंगभूमिको भलीभाँति सजाया । तुरही, मेरी आदि बाजे बजने लगे । जेगोंके बैठनेके मध्य कूल्ये-के गजराँ, झंडियों, कल और बंदनबारोंसे सजा दिये गये ॥ ३३ ॥ उनपर ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि नागरिक तथा ग्रामवासी—सब यथास्थान बैठ गये । राजालोग भी अपने-अपने निश्चित स्थानपर जा बटे ॥ ३४ ॥ राजा कंस अपने मन्त्रियोंके साथ मण्डलेश्वरों (छोटे-छोटे राजाओं) के बीचमें सबसे श्रेष्ठ राजसिंहासनपर जा बैठा । इस समय भी अपशकुनोंके कारण उसका चित्त धनबाया हुआ था ॥ ३५ ॥ तब पहलवानोंके

ताल ठोंकनेके साथ ही बाजे बजने लगे और गरबीले पहलवान खूब सज-धजकर अपने-अपने उस्तादोंके साथ अखाड़ेमें आ सतरे ॥ ३६ ॥ चाणूर, मुधिक, कूट, शल और तोशल आदि प्रधान-प्रधान पहलवान बालोंकी सुमधुर ध्वनिसे उत्साहित होकर अखाड़ेमें आ-जाकर बैठ गये ॥ ३७ ॥ इसी समय भोजराज कंसने नन्द आदि गोपोंको बुलवाया । उन लोगोंने आकर उसे तरह-तरहकी भेंटें दीं और फिर जाकर वे एक मन्त्रपर बैठ गये ॥ ३८ ॥

तैतालीसवाँ अध्याय

कुवल्यापीडका डकार और अखाड़ेमें प्रवेश

श्रीकृष्णदेवजी कहते हैं—काम-क्रोधादि शत्रुओंको पराजित करनेवाले परीक्षित ! अब श्रीकृष्ण और बलराम भी स्थानादि नित्यकर्मसे निवृत्त हो दंगलके अनुरूप मगावेसी ध्वनि सुनकर रङ्गभूमि देखनेके लिये चल पड़े ॥ १ ॥ भगवान् श्रीकृष्णने रंगभूमिके दरवाजेपर पहुँचकर देखा कि वहाँ महावतकी प्रेरणासे कुवल्यापीड नामका हाथी खड़ा है ॥ २ ॥ तब भगवान् श्रीकृष्णने अपनी कमर कस ली और धुँधराली अलके समेट लीं तथा मेघके समान गम्भीर वाणीसे महावतको छलकारकर कहा ॥ ३ ॥ 'महावत, ओ महावत ! हम दोनोंको रास्ता दे दे । हमारे मार्गसे हट जा । अरे, सुनता नहीं ! देर मत कर । नहीं तो मैं हाथीके साथ अभी तुझे यमराजके घर पहुँचाता हूँ' ॥ ४ ॥ भगवान् श्रीकृष्णने महावतको जब इस प्रकार धमकाया, तब वह क्रोधसे तिलमिल उठा और उसने काल, मृत्यु तथा यमराजके समान अत्यन्त भयङ्कर कुवल्यापीडको अङ्गुशकी मारसे क्रुद्ध करके श्रीकृष्णकी ओर बढ़ाया ॥ ५ ॥ कुवल्यापीडने भगवान् की ओर झपटकर उन्हें बढ़ी तेजीसे सूँढ़मे लपेट लिया; परन्तु भगवान् सूँढ़से बाहर सरक आये और उसे एक घूँसा जमाकर उसके पैरोंके बीचमें जा छिपे ॥ ६ ॥ उन्हें अपने सामने न देखकर कुवल्यापीडको बढ़ा क्रोध हुआ । उसने सूँढ़कर भगवान् को अपनी सूँढ़से टटोल लिया और पकड़ा भी; परन्तु उन्होंने बलपूर्वक अपनेको

उससे छुड़ा लिया ॥ ७ ॥ इसके बाद भगवान् उस बलवान् हाथीकी पूँछ पकड़कर खेळ-खेळमें ही उसे सौ हाथतक पीछे धसीट लये; जैसे गरुड साँपको धसीट लते हैं ॥ ८ ॥ जिस प्रकार धूमते हुए बछड़ेके साथ बालक धूमता है अथवा खर्य भगवान् श्रीकृष्ण जिस प्रकार बछड़ोंसे खेलते थे, वैसे ही वे उसकी पूँछ पकड़कर उसे घुमाने और खेलने लगे । जब वह दायेंसे घूमकर उनकी पकड़ना चाहता, तब वे बायें आ जाते और जब वह बायेंकी ओर घूमता, तब वे दायें घूम जाते ॥ ९ ॥ इसके बाद हाथीके सामने आकर उन्होंने उसे एक घूँसा जमाया और वे उसे गिरानेके लिये इस प्रकार उसके सामनेसे भागने लगे, मानो वह अब छू लेता है, तब छू लेता है ॥ १० ॥ भगवान् श्रीकृष्णने दौड़ते-दौड़ते एक बार खेल-खेलमें ही पुष्पीपर गिरनेका अभिनय किया और झट बहाँसे उठकर भाग खड़े हुए । उस समय वह हाथी क्रोधसे जल-मुन रहा था । उसने समझा कि वे गिर पड़े और बड़े जोरसे अपने दोनों दाँत धरतीपर मारे ॥ ११ ॥ जब कुवल्यापीडका यह आत्मरक्षण व्यर्थ हो गया, तब वह और भी चिढ़ गया । महावतोंकी प्रेरणासे वह क्रुद्ध होकर भगवान् श्रीकृष्णपर दूट पड़ा ॥ १२ ॥ भगवान् मधुसूदनने जब उसे अपनी ओर झपटते देख, तब उसके पास चले गये और अपने एक ही हाथसे उसकी सूँढ़ पकड़कर उसे

धरतीपर पटक दिया ॥ १३ ॥ उसके गिर जानेपर भगवान् ने सिंहके समान सेह-ही-सेहमें उसे पैरोंसे दबाकर उसके दाँत उखाड़ लिये और उन्हींसे हाथी और महावर्तोंका काम तमाम कर दिया ॥ १४ ॥

परीक्षित । मरे हुए हाथीको छोड़कर भगवान् श्री-कृष्णने हाथमे उसके दाँत लिये-लिये ही रंगभूमिमें प्रवेश किया । उस समय उनकी शोभा देखने ही योग्य थी । उनके कंधेपर हाथीका दाँत रक्खा हुआ था, शरीर रक्त और मदकी बूँदोंसे सुशोभित था और मुखकमलपर पसीनेकी बूँदें शक्क रही थीं ॥ १५ ॥ परीक्षित । भगवान् श्रीकृष्ण और बछराम दोनोंकी ही हाथोंमे कुम्हल्यापीड़के बड़े-बड़े दाँत शक्कके रूपमे सुशोभित हो रहे थे और कुल ग्वाल्वाळ उनके साथ-साथ चर रहे थे । इस प्रकार उन्होंने रंगभूमिमें प्रवेश किया ॥ १६ ॥ जिस समय भगवान् श्रीकृष्ण बछरामजीके साथ रंगभूमिमें पधारे, उस समय वे पङ्कजानोंको वज्रकटोर-शरीर, साधारण मनुष्योंको तर रक्त, स्त्रियोंको मूर्तिमान् कामदेव, गोपोंको सज्जन, दुष्ट राजाओंको दण्ड देनेवाले शासक, माता-पिताके समान बड़े-बड़ोंको शिशु, कसको मृत्यु, अज्ञानियोंको विराट्, योगियोंको परम तत्त्व और भक्तशिरोमणि वृष्णि-वर्षियोंको अपने इष्टदेव जान पड़े (सनने अपने-अपने भाषानुरूप क्रमशः रौद्र, अद्भुत, शृङ्गार, हास्य, धीर, वात्सल्य, भयानक, बीभत्स, घान्त और प्रेमभक्ति-रसका अनुभव किया) ॥ १७ ॥ राजन् । कैसे तो कंस बड़ा धीर-वीर था; फिर भी अब उसने देखा कि इन दोनोंने कुम्हल्यापीड़को मार डाला, तब उसकी समझमें यह बात आयी कि इनको जीतना तो बहुत कठिन है । उस समय वह बहुत बड़का गया ॥ १८ ॥ श्रीकृष्ण और बछरामकी बोहों बड़ी छत्री-छत्री थीं । पुष्पोंके हार, वस्त्र और आभूषण आदिसे उनका वेष्ट विचित्र हो रहा था; ऐसा जान पड़ता था, मानो उत्तम वेष्ट धारण करके दो नट अभिनय करनेके लिये आये हों । जिनके नेत्र, एक बार उनपर पड़ जाते, बस, छा ही जाते । यही नहीं, वे अपनी कान्तिसे उसका मन भी चुरा लेते । इस प्रकार दोनों रंगभूमिमें शोभायमान हुए ॥ १९ ॥ परीक्षित । मञ्चोंपर चित्तने अंग बैठे थे—वे मधुराके

नागरिक और राष्ट्रके जन-समुदाय पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्ण और बछरामजीको देखकर इतने प्रसन्न हुए कि उनके नेत्र और मुखकमल खिन्न उठे, उलकण्ठासे भर गये । वे नेत्रोंके द्वारा उनकी सुखमाधुरीका पान करते-करते तृप्त ही नहीं होते थे ॥ २० ॥ मानो वे उन्हें नेत्रोंसे पी रहे हों, जिह्वासे चाट रहे हों, नासिकासे सूँघ रहे हों और भुजाओंसे पकड़कर हृदयसे स्रप्य रहे हों ॥ २१ ॥ उनके सौन्दर्य, गुण, माधुर्य और निर्मयतने मानो दर्शकोंको उनकी छाँटोंका स्मरण कदा दिया और वे अंग आपसमें उनके सम्बन्धकी देखी-सुनी बातें कहने-सुनने लगे ॥ २२ ॥ 'ये दोनों साक्षात् भगवान् नारायणके अंश हैं । इस पृथ्वीपर कसुवेवजीके घरमें अवतीर्ण हुए हैं ॥ २३ ॥ [अँगुलीसे दिग्भाकर] ये सौंके-सखेने कुमार देवकीके गर्भसे उत्पन्न हुए थे । जन्मते ही कसुवेवजीने इन्हें गोशुल पहुँचा दिया था । इतने दिनोंतक ये वहाँ छिपकर रहे और नन्दजीके घरमें ही पलकर इतने बड़े हुए ॥ २४ ॥ इन्होंने ही पूतना, तुणावर्त, शङ्खचूड़, कैशी और वेणुका आदिका तथा और भी कुछ दैत्योंका वध तथा यमजलुनका उद्धार किया है ॥ २५ ॥ इन्होंने ही गौ और ग्वालोंको दावानलकी आलससे बचाया था । काश्यप नागका दमन और इन्द्रका मान-मर्दन भी इन्होंने ही किया था ॥ २६ ॥ इन्होंने सात दिनोंतक एक ही हाथपर गिरिराज गोवर्धनको उठाये रक्खा और उसके द्वारा औंधी-पानी तथा वज्रपातसे गोशुलकी बचा लिया ॥ २७ ॥ गोपियों इनकी मन्द-मन्द मुसकान, मधुर चितवन और सर्वदा एकरस प्रसन्न रहनेवाले मुखारविन्दके दर्शनसे आनन्दित रहती थीं और अनायास ही सब प्रकारके तापोंसे मुक्त हो जाती थीं ॥ २८ ॥ कहते हैं कि ये यदुवंशकी रक्षा करेंगे । यह विख्यात वंश इनके द्वारा महान् समृद्धि, यश और गौरव प्राप्त करेगा ॥ २९ ॥ ये दूसरे इन्हीं श्यामसुन्दरके बड़े भाई कमलजयन श्रीबछरामजी हैं । हमने किसी-किसीके मुँहसे ऐसा सुना है कि इन्होंने ही प्रह्मनासुर, वत्सासुर और वत्सासुर आदिको मारा है' ॥ ३० ॥

जिस समय दर्शकोंमें यह चर्चा हो रही थी और जखड़ेमें तुरही आदि बाजे बज रहे थे, उस समय

चाणूरने भगवान् श्रीकृष्ण और बलरामको सम्बोधन करके यह बात कही—॥ ३१ ॥ ‘नन्दनन्दन श्रीकृष्ण और बलरामजी ! तुम दोनों वीरोंके आदरणीय हो । हमारे महाराजने यह सुनकर कि तुमलोग कुस्ती लड़नेमें बड़े निपुण हो, तुम्हारा कौशल देखनेके लिये तुम्हें यहाँ बुलवाया है ॥ ३२ ॥ देखो माई ! जो प्रजा मन, बचन और कर्मसे राजाका प्रिय कार्य करती है, उसका मखा होता है और जो राजाकी इच्छाके विपरीत काम करती है, उसे हानि उठानी पड़ती है ॥ ३३ ॥ यह सभी जानते हैं कि गाय और बछड़े चरनेवाले ग्वालिये प्रतिदिन आनन्दसे जंगलोंमें कुस्ती लड़-लड़कर खेलते रहते हैं और गायें चराते रहते हैं ॥ ३४ ॥ इसलिये आओ, हम और तुम मिलकर महाराजको प्रसन्न करनेके लिये कुस्ती लड़ें । ऐसा करनेसे हमपर सभी प्राणी प्रसन्न होंगे, क्योंकि राजा सारी प्रजाका प्रतीक है’ ॥ ३५ ॥

परीक्षित । भगवान् श्रीकृष्ण तो चाहते ही थे कि इनसे दो-दो हाथ करें । इसलिये उन्होंने चाणूरकी बात

सुनकर उसका अनुमोदन किया और देग-काळे अनुसार यह बात कही—॥ ३६ ॥ ‘चाणूर ! हम भी इन भोजराज कंसकी वनवासी प्रजा हैं । हमें इनका प्रसन्न करनेका प्रयत्न अवश्य करना चाहिये । इसीमें हमारा कल्याण है ॥ ३७ ॥ किन्तु चाणूर ! हमलोग अभी बालक हैं । इसलिये हम अपने समान बालके बालकोंके साथ ही कुस्ती लड़नेका खेल करेंगे । कुस्ती समान बालकोंके साथ ही होनी चाहिये, जिससे देखने-वाले सभासदोंको अन्यायके समर्थक होनेका पाप न लगे’ ॥ ३८ ॥

चाणूरने कहा—अजी ! तुम और बलराम न बालक हो और न तो किशोर । तुम दोनों बलवानोंमें श्रेष्ठ हो, तुमने अभी-अभी हजार हाथियोंका वल रखनेवाले कुम्भलयापीडको खेल-ही-खेलमें मार बाँधा ॥ ३९ ॥ इसलिये तुम दोनोंको हम-जैसे बलवानोंके साथ ही लड़ना चाहिये । इसमें अन्यायकी कोई बात नहीं है । इसलिये श्रीकृष्ण ! तुम मुझपर अपना जोर आजमाओ और बलरामके साथ मुष्टिक लड़ेगा ॥ ४० ॥

चौवालीसवाँ अध्याय

चाणूर, मुष्टिक आदि पहलवानोंका तथा कंसका उच्चार

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित ! भगवान् श्रीकृष्णने चाणूर आदिके वधका निश्चित संकल्प कर लिया । जोड़ बंद दिये जानेपर श्रीकृष्ण चाणूरसे और बलरामजी मुष्टिकसे जा भिड़े ॥ १ ॥ वे लोग एक-दूसरेको जीत लेनेकी इच्छासे हाथसे हाथ बाँधकर और पैरोंमें पैर अड़ाकर बलपूर्वक अपनी-अपनी ओर खींचने लगे ॥ २ ॥ वे पंजोंसे पंजे, घुटनोंसे घुटने, माथेसे माथा और छातीसे छाती मिलाकर एक-दूसरेपर चोट करने लगे ॥ ३ ॥ इस प्रकार दौध-पंच करते-करते अपने-अपने जोड़ीदारको पकड़कर इधर-उधर घुमाते, दूर ठकेल देते, जोरसे जकड़ लेते, छिपट जाते, उठाकर पटक देते, दृष्टकर निकल भागते और कभी खोड़कर पीछे हट जाते थे । इस प्रकार एक-दूसरेको रोकते, प्रहार करते और अपने जोड़ीदारको पकड़ देनेकी

चैष्टा करते । कभी कोई नीचे गिर जाता, तो दूसरा उसे घुटनों और पैरोंमें दबाकर उठा लेता । हाथसे पकड़कर ऊपर ले जाता । गलेमें छिपट जानेपर ठकेल देता और आवश्यकता होनेपर हाथ-पाँव इकट्ठे करके गौंठ बाँध देता ॥ ४-५ ॥

परीक्षित ! इस दंभलको देखनेके लिये नारकी बहुत-सी महिलारूप भी आयी हुई थी । उन्होंने जब देखा कि बड़े-बड़े पहलवानोंके साथ ये छोटे-छोटे बल-हीन बालक लड़ाये जा रहे हैं, तब वे अलग-अलग देखियों बनाकर करुणावश आपसमें बातचीत करने लगीं—॥ ६ ॥ ‘यहाँ राजा कंसके समासद् बड़ा अन्याय और अर्धम कर रहे हैं । कितने खेदकी बात है कि राजाके सामने ही ये बड़ी पहलवानों और निर्बल बालकोंके युद्धका अनुमोदन करते हैं ॥ ७ ॥ बहिन ! देखो, इन पहलवानोंका एक-एक अङ्ग बलके समान

कठोर है। ये देखनेमें बड़े भारी पर्वत-से मादूम होते हैं। परन्तु श्रीकृष्ण और बलराम अभी जवान भी नहीं हुए हैं। इनकी किशोर अवस्था है। इनका एक-एक अङ्ग अत्यन्त सुकुमार है। कहाँ ये और कहाँ वे ? ८॥ जितने लोग यहाँ इकट्ठे हुए हैं, देख रहे हैं, उन्हें अवश्य-अवश्य पर्मोच्छन्नका पाप लगेगा। सखी ! अब हमें भी यहाँसे चले देना चाहिये। जहाँ अन्धकी प्रधानता हो, वहाँ कमी न रहे; यही शास्त्रका नियम है ॥ ९॥ देखो, शास्त्र कहता है कि बुद्धिमान् पुरुषको समासदोषों को जानते हुए, समासे जाना ठीक नहीं है। क्योंकि वहाँ जाकर उन अवगुणोंको कहना, चुप रह जाना अथवा मैं नहीं जानता ऐसा कह देना—ये तीनों ही बातें मनुष्यको दोषभागी बनाती है ॥ १०॥ देखो, देखो, श्रीकृष्ण शत्रुको चारों ओर पैतरा बदल रहे हैं। उनके मुखपर पसीनेकी बूँदें ठीक वैसे ही शोभा दे रही हैं, जैसे कमलकोशपर जलकी बूँदें ॥ ११॥ सखियो ! क्या तुम नहीं देख रही हो कि बलरामजीका मुख मुष्टिकके प्रति क्रोधके कारण कुछ-कुछ लाल लोचनोंसे युक्त हो रहा है। फिर भी हास्यका अनिरुद्ध आवेग किन्ना सुन्दर लग रहा है ॥ १२॥ सखी ! सच पूछो तो ब्रजभूमि ही परम पवित्र और धन्य है। क्योंकि वहाँ ये पुरुषोत्तम मनुष्यके बेमैं छिपकर रहते हैं। स्वयं भगवान् शङ्कर और लक्ष्मीजी जिनके चरणोंकी पूजा करती हैं, वे ही प्रसू वहाँ रंग-विरंगे जंगली पुष्पोंकी माज धारण कर लेते हैं तथा बलरामजीके साथ बौंसुरी बजाते, गौएँ चराते और तरह-तरहके खेळ खेलते हुए आनन्दसे विचरते हैं ॥ १३॥ सखी ! पता नहीं, गोपियोंने कौन-सी तपस्या की थी, जो नेत्रोंके दोनोसे नित्य-निरन्तर इनकी रूप-माधुरीका पान करती रहती हैं। इनका रूप क्या है, अव्ययका स्मर ! ससारमें या उससे परे किसीका भी रूप इनके रूपके समान नहीं है, फिर बढ़कर होनेकी तो बात ही क्या है। सो भी किसीके सँवारने-संजानेसे नहीं, गहने-कपड़ेसे भी नहीं, बल्कि स्वयंसिद्ध है। इस रूपको देखते-देखते तृप्ति भी नहीं होती। क्योंकि यह प्रति-क्षण नया होता जाता है, नित्य नूतन है। समग्र यश,

सौन्दर्य और ऐश्वर्य इसीके आश्रित हैं। सखियो ! परन्तु इसका दर्शन तो औरोंके लिये बड़ा ही दुर्लभ है। वह तो गोपियोंके ही भाग्यमें बंदा है ॥ १४॥ सखी ! ब्रजकी गोपियाँ धन्य हैं। निरन्तर श्रीकृष्णमें ही चित्त लगा रहनेके कारण प्रेममते हृदयसे, बौंसुरीके कारण गद्गद कण्ठसे वे इन्हींकी लीलाओंका गान करती रहती हैं। वे दूध दुहते, दही मथते, धान कुटते, घर जीपते, बाळकोंको झुला झुलाते, रोते हुए बाळकोंको चुप कराते, उन्हें नहलाते-झुलाते, बरोंको झाड़ते-शुआरते—कहाँतक कहीं, सारे काम-काज करते समय श्रीकृष्णके गुणोंके गानमें ही मस्त रहती हैं ॥ १५॥ ये श्रीकृष्ण जब प्रातःकाल गौओंको चरानेके लिये ब्रजसे वनमें जाते हैं और सायंकाल उन्हें लेकर ब्रजमें औटते हैं, तब बड़े मधुर स्वरसे बौंसुरी बजाते हैं। उसकी ठेर सुनकर गोपियाँ घरका सारा काम-काज छोड़कर झपट रास्तेमें दौब आती हैं और श्रीकृष्णका मन्द-मन्द मुसकान एवं दयाभरी चितवनसे युक्त मुखकमल निहार-निहारकर निहाल होती हैं। सचमुच गोपियाँ ही परम पुण्यवती हैं ॥ १६॥

भरतवंशशिरोमणे ! जिस समय पुरवासिनी बियाँ इस प्रकार बातें कर रही थीं, उसी समय योगेश्वर भगवान् श्रीकृष्णने मन-ही-मन शत्रुको मार डालनेका निश्चय किया ॥ १७॥ बियोंकी ये अपूर्ण बातें माता-पिता देवकी-वसुदेव भी सुन रहे थे* ॥ वे पुत्रस्नेहवशा शोकसे विह्वल हो गये। उनके हृदयमें बड़ी जलन, बड़ी पीडा होने लगी। क्योंकि वे अपने पुत्रोंके बल-वीर्यको नहीं जानते थे ॥ १८॥ भगवान् श्रीकृष्ण और उनसे मिटनेवाला चाणूर दोनों ही मित्र-मित्र प्रकारके दौब-पेंचका प्रयोग करते हुए परस्पर जिस प्रकार लड़ रहे थे, वैसे ही बलरामजी और मुष्टिक भी मिट्टे हुए थे ॥ १९॥ भगवान्के अङ्ग-प्रत्यङ्ग वस्त्रसे भी कटरे हो रहे थे। उनकी रगड़से चाणूरकी रंग-रंग दीखी पड़ गयी। बार-बार उसे ऐसा मादूम हो रहा था मानो उसके शरीरके सारे बन्धन टूट रहे हैं। उसे बड़ी ग्लानि, बड़ी व्यथा हुई ॥ २०॥ अब वह अत्यन्त क्रोधित होकर बाजकी तरह झपट

* बियों जहाँ बातें कर रही थीं, वहाँसे निकट ही वसुदेव-देवकी कैद थे; अतः वे उनकी बातें सुन लगे।

और दोनों हाथोंके घुँसे बाँधकर उसने भगवान् श्रीकृष्ण-की छातीपर प्रहार किया ॥ २१ ॥ परन्तु उसके प्रहारसे भगवान् तनिक भी विचलित न हुए, जैसे फूलोंके गजरे-की मारसे गजराज । उन्होंने चाणूरकी दोनों भुजाएँ पकड़ ली और उसे अन्तरिक्षमें बड़े वेगसे कई बार घुमाकर भरतीपर दे मारा । परीक्षित । चाणूरके प्राण तो घुमानेके समय ही निकल गये थे । उसकी वेप-भूषा अस्त्र-व्यस्त हो गयी, केश और मालाएँ बिखर गयीं, वह इन्द्रध्वज (इन्द्रकी पूजाके लिये खड़े भित्ति गये बड़े बड़े) के समान गिर पड़ा ॥ २२-२३ ॥ इसी प्रकार मुष्टिकने भी पहले बलरामजीको एक घुँसा मारा । इसपर बली बलरामजीने उसे बड़े जोरसे एक तमाचा जड़ दिया ॥ २४ ॥ तमाचा छगनेसे वह कोंप उठा और ओधीसे उछड़े हुए वृक्षके समान अत्यन्त व्यथित और अन्तमें प्राणहीन होकर खून उगलता हुआ पृथ्वीपर गिर पड़ा ॥ २५ ॥ हे राजन् ! इसके बाद योद्धाओंने श्रेष्ठ भगवान् बलराम-जीने अपने सामने आते ही कूट नामक पहलवानको खेल-खेलमें ही बायें हाथके घुँसेसे उपेक्षापूर्वक मार डाला ॥ २६ ॥ उसी समय भगवान् श्रीकृष्णने पैरकी ठोकरसे शलका सिर धक्के अलग कर दिया और तोशक-को तिनकेकी तरह चीरकर दो टुकड़े कर दिया । इस प्रकार दोनों धराशायी हो गये ॥ २७ ॥ जब चाणूर, मुष्टिक, कूट, शल और तोशक—ये पाँचों पहलवान मर चुके, तब जो बच रहे थे, वे अपने प्राण बचानेके लिये खर्य वहाँसे भाग खड़े हुए ॥ २८ ॥ उनके भाग जानेपर भगवान् श्रीकृष्ण और बलरामजी अपने समवयस्क ग्वाल-बालोंको खींच-खींचकर उनके साथ मिश्रने और नाच-नाचकर भेरीध्वनिके साथ अपने नूपुरोंकी झनकारको मिलाकर मल्लकीड़ा—कुस्तीके खेल करने लगे ॥ २९ ॥

भगवान् श्रीकृष्ण और बलरामजी इस वहुत लीला-को देखकर सभी दर्शकोंको बड़ा आनन्द हुआ । श्रेष्ठ ब्राह्मण और साधु पुरुष 'धन्य है, धन्य है'—इस प्रकार कहकर प्रशंसा करने लगे । परन्तु कंसको इससे बड़ा दुःख हुआ । वह और भी चिढ़ गया ॥ ३० ॥ जब उसके प्रधान पहलवान मार डाले गये और बचे हुए सब-के-सब भाग गये, तब गोजराब करने अपने बाजे-

गावे बंद करा दिये और अपने सेवकोंको यह आज्ञा दी—॥ ३१ ॥ 'अरे, बहुदेवके इन दुश्चरित्र लड़कोंको नगरसे बाहर निकाल दो । गोपोंका सारा धन छीन ले और दुर्बुद्धि नन्दको कैद कर ले ॥ ३२ ॥ वसुदेव भी बड़ा कुबुद्धि और दुष्ट है । उसे शीघ्र मार डाले । और उग्रसेन मेरा पिता होनेपर भी अपने अनुपायियोंके साथ शत्रुओंसे मिला हुआ है । इसलिये उसे भी जीता मत छोड़ो' ॥ ३३ ॥ कंस इस प्रकार बड़-बड़कर बकवाद कर रहा था कि अविनाशी श्रीकृष्ण कुपित होकर फुर्तीसे वेगपूर्वक उछलकर लीलासे ही उसके ऊँचे मञ्चपर जा चढ़े ॥ ३४ ॥ जब मनस्वी कंसने देखा कि मेरे शत्रुरूप भगवान् श्रीकृष्ण सामने आ गये, तब वह सहसा अपने सिंहासनसे उठ खड़ा हुआ और हाथमें ढाल तथा तलवार उठा ली ॥ ३५ ॥ हाथमें तलवार लेकर वह चोट करनेका अवसर ढूँढ़ता हुआ पैतरा बदलने लगा । आकाशमें उड़ते हुए बानके समान वह कभी दायी और जाता तो कभी बायीं ओर । परन्तु भगवान्का प्रचण्ड तेज अत्यन्त दुस्सह है । जैसे गरुड़ सोंपको पकड़ लेते हैं, वैसे ही भगवान्ने बळपूर्वक उसे पकड़ लिया ॥ ३६ ॥ इसी समय कंसका मुकुट गिर गया और भगवान्ने उसके केश पकड़कर उसे भी उस ऊँचे मञ्चसे रंगभूमिमें गिरा दिया । फिर परम सतन्त्र और सारे विश्वके आश्रय भगवान् श्रीकृष्ण उसके ऊपर स्वयं कूद पड़े ॥ ३७ ॥ उनके कूदते ही कंसकी मृत्यु हो गयी । सबके देखते-देखते भगवान् श्रीकृष्ण कंसकी लाशको भरतीपर उठी । प्रकार वसीटने लगे, जैसे सिंह हाथीको वसीटे । नरेन्द्र ! उस समय सबके मुँहसे 'हाय ! हाय !' की बड़ी कैंची आवाज सुनायी पड़ी ॥ ३८ ॥ कंस नित्य-निरन्तर बड़ी धवड़ाहटके साथ श्रीकृष्णका ही चिन्तन करता रहता था । वह खाते-पीते, सोते-बलते, बोधते और सोँस लेते—सब समय अपने सामने चक्र हाथमें लिये भगवान् श्रीकृष्णको ही देखता रहता था । इस नित्य चिन्तनके फलस्वरूप—वह चाहे द्वेषभावसे ही क्यों न किया गया हो—उसे भगवान्के उसी रूपकी प्राप्ति हुई, सारूप्य-मुक्ति हुई, जिसकी प्राप्ति वड़े-बड़े तपस्वी योगियोंके लिये भी कठिन है ॥ ३९ ॥



कंस उद्धार

कंसके कङ्क और न्यग्रोध आदि बाठ छेदे माई थे । वे अपने बड़े माईका बदला लेनेके लिये क्रोधसे आग-बबूले होकर भगवान् श्रीकृष्ण और बळरामजी और दीड़े ॥ ४० ॥ जब भगवान् बळरामजीने देखा कि वे बड़े वेगसे युद्धके लिये तैयार होकर दीड़े आ रहे हैं, तब उन्होंने परिध उठाकर उन्हें दैसे ही मार डाला, जैसे सिंह पशुओंको मार डालता है ॥ ४१ ॥ उस समय आकाशमें दुन्दुभियों बजने लगीं । भगवान्के त्रिमूर्ति-स्वरूप शङ्खा, शङ्कर आदि देवता बड़े आनन्दसे पुण्योक्ती बर्षा करते हुए उनकी स्तुति करने लगे । अन्तराष्ट्र नाचने लगीं ॥ ४२ ॥ महाराज ! कंस और उसके साइयोंकी जितनी अपने आत्मीय खजनोंकी मृत्युसे अल्पत दुःखित हुई । वे अपने सिर पीटनी हुई आँखोंमें आँसू भरे वहाँ आयीं ॥ ४३ ॥ वीरशम्भुपर सोये हुए अपने पतिपोंमें छिपकर वे शोकमग्न हो गयीं और बार-बार आँसू बहाती हुई ऊँचे स्वरसे निराप करने लगीं ॥ ४४ ॥ 'हा नाथ ! हे प्यारे ! हे धर्मज ! हे कृष्णामय ! हे अनाथप्रसन्न ! आरम्भ मृत्युसे हम सबकी मृत्यु हो गयी । आज हमारे घर उजड़ गये । हमारी सन्तान अनाथ हो गयी ॥ ४५ ॥ पुरुषश्रेष्ठ ! इस पुरीके आप ही खामी थे । आपके फिरसे इसके उत्सव समाप्त हो

गये और मङ्गलचिह्न उतर गये । यह हमारी ही भौंति विधवा होकर शोमाहीन हो गयी ॥ ४६ ॥ खामी ! आपने निरपराध प्राणियोंके साथ घोर द्रोह किया था, अन्याय किया था, इसीसे आपकी यह गति हुई । सच है, जो जगत्के जीवोंसे द्रोह करता है, उनका अहित करता है, ऐसा कौन पुरुष शान्ति पा सकता है ? ॥ ४७ ॥ ये भगवान् श्रीकृष्ण जगत्के समस्त प्राणियोंकी उत्पत्ति और प्रलयके आधार हैं । यही रक्षक भी हैं । जो इनका दुष्ट चाहता है, इनका तिरस्कार करता है; वह कभी सुखी नहीं हो सकता ॥ ४८ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित ! भगवान् श्रीकृष्ण ही सारे संसारके जीवनदाता हैं । उन्होंने रानियोंको दास्य बंधाया, सान्त्वना दी; फिर लोकरीतिके अनुसार मरनेवालोंका बैसा क्रिया-कर्म होता है, वह सब कराया ॥ ४९ ॥ तदनन्तर भगवान् श्रीकृष्ण और बळरामजीने जेबमें चाकर अपने माता-पिताको बन्धनने सुझाया और सिरसे स्पर्श करके उनके चरणोंकी वन्दना की ॥ ५० ॥ किन्तु अपने पुत्रोंके प्रणाम करनेपर भी देवकी और वसुदेवने उन्हें जगदीश्वर समझकर अपने हृदयसे नहीं छगाया । उन्हें शङ्का हो गयी कि हम जगदीश्वरको पुत्र कैसे समझें ॥ ५१ ॥

पैतालीसवाँ अध्याय

श्रीकृष्ण-बळरामका बहोपजीत और गुरुकुलप्रवेश

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित ! भगवान् श्रीकृष्णने देखा कि माता-पिताको भेरे ऐश्वर्यका, भेरे भगवद्भावका ज्ञान हो गया है । परन्तु इन्हें ऐसा ज्ञान होना ठीक नहीं, (इसमें तो ये पुत्र-स्नेहका सुख नहीं पा सकेंगे—) ऐसा सोचकर उन्होंने उनपर अपनी वह योगमाया फैला दी, जो उनके खजनोंको मुग्न रखकर उनकी जीजामें सहायक होती है ॥ १ ॥ यदुवशशिरोमणि भगवान् श्रीकृष्ण बड़े माई बळरामजीके साथ अपने माँ-बापके पास जाकर आदरपूर्वक और विनयमें झुककर 'मेरी अम्मा ! मेरे पिताजी !' इन शब्दोंसे उन्हें प्रसन्न करते हुए कहने लगे— ॥ २ ॥

पिताजी ! माताजी ! हम आपके पुत्र हैं और आप हमारे लिये सर्वदा उत्कण्ठित रहे हैं, फिर भी आप हमारे बाल्य, पैगण्ड और किशोर अवस्थाका सुख हमसे नहीं पा सके ॥ ३ ॥ दुर्दैववश हमलोगोंको आपके पास रहनेका सौभाग्य ही नहीं मिला । इसीसे बाळकोंको माता-पिताके घरमें रहकर जो आङ्ग-प्यारका सुख मिलता है, वह हमें भी नहीं मिल सका ॥ ४ ॥ पिता और माता ही इस शरीरको जन्म देते हैं और इसका अलम्ब-पालन करते हैं । तब कहीं जाकर यह शरीर धर्म, अर्थ, काम अथवा मोक्षकी प्राप्तिका साधन बनता है । यदि कोई मनुष्य सौ वर्षतक जीकर माता

और पिताकी सेवा करता रहे, तब भी वह उनके उपकारसे उन्मत्त नहीं हो सकता ॥ ५ ॥ जो पुत्र सामर्थ्य रहते भी अपने माँ-बापकी शरीर और धनसे सेवा नहीं करता, उसके मनोपर यमदूत उसे उसके अपने शरीरका मांस खिञ्चते हैं ॥ ६ ॥ जो पुरुष सपर्य होकर भी बूढ़े माता-पिता, सती पत्नी, बालक, सन्तान, गुरु, ब्राह्मण और शरणागतका भरण-पोषण नहीं करता—वह जीता हुआ भी मुर्देके समान ही है ॥ ७ ॥ पिताजी ! हमारे इतने दिन स्वर्ण ही बीत गये । क्योंकि कंसके मयसे सदा उद्दिग्धचित्त रहनेके कारण हम आपकी सेवा करनेमें असमर्थ रहे ॥ ८ ॥ मेरी माँ और मेरे पिताजी ! आप दोनों हमें क्षमा करें । हाय ! कुछ कंसने आपको इतने-इतने कष्ट दिये, परन्तु हम परतन्त्र रहनेके कारण आपकी कोई सेवा-शुश्रूषा न कर सके ॥ ९ ॥

श्रीधृक्देवजी कहते हैं—परीक्षित ! अपनी छाँटसे मनुष्य बने हुए विद्यात्मा श्रीहरिकी इस बाणीसे मोहित हो देवकी-बधुदेवने उन्हें गोदमें उठा लिया और हृदयसे विपकाकर परमानन्द प्राप्त किया ॥ १० ॥ राजन् ! वे स्नेह-पाशसे बँधकर पूर्णतः मोहित हो गये और आँसुओंकी धारासे उनका अभिषेक करने लगे । यहाँतक कि आँसुओंके कारण गल्ल रूँध जानेसे वे कुछ बोल भी न सके ॥ ११ ॥

देवकीनन्दन भगवान् श्रीकृष्णने इस प्रकार अपने माता-पिताको सान्त्वना देकर अपने नाना उपसेनको यदुवंशियोंका राजा बना दिया ॥ १२ ॥ और उनसे कहा—महाराज ! हम आपकी प्रजा हैं । आप हमलोगोंपर शासन कीजिये । राजा यथासिद्ध शाप होनेके कारण यदुवंशी राजसिंहासनपर नहीं बैठ सकते; (परन्तु मेरी ऐसी ही इच्छा है, इसलिये आपको कोई दोष न होगा ।) ॥ १३ ॥ जब मैं सेवक बनकर आपकी सेवा करता रहूँगा, तब बड़े-बड़े देवता भी सिर झुकाकर आपको भेंट देंगे । दूसरे नरपतियोंके बारेमें तो कहना ही क्या है ॥ १४ ॥ परीक्षित ! भगवान् श्रीकृष्ण ही सारे त्रिशके विघाता हैं । उन्होंने, जो कंसके मयसे व्याकुल होकर इधर-उधर भाग गये थे, उन यदु,

वृष्णि, अन्धक, मधु, दाशार्हा और कुतुर आदि वंशोंमें उत्पन्न समस्त सजातीय सम्बन्धियोंको बँट-बँटकर बुलवाया । उन्हें घरसे बाहर रहनेमें बड़ा क्लेश उठाना पड़ा था । भगवान्ने उनका सत्कार किया, सान्त्वना दी और उन्हें खूब धन-सम्पत्ति देकर तृप्त किया तथा अपने-अपने घरोंमें बसा दिया ॥ १५-१६ ॥ अब सारे-के-सारे यदुवंशी भगवान् श्रीकृष्ण तथा बलरामजीके बाहुबलसे सुरक्षित थे । उनकी कृपासे उन्हें किसी प्रकारकी व्यथा नहीं थी, दुःख नहीं था । उनके सारे मनोरथ सफल हो गये थे । वे कृतार्थ हो गये थे । अब वे अपने-अपने घरोंमें आनन्दसे बिहार करने लगे ॥ १७ ॥ भगवान् श्रीकृष्णका वदन आनन्दका सदन है । वह निर्य प्रफुल्लित, कभी न कुम्हलानेवाला कमल है । उसका सौन्दर्य अपार है । सदैव हास और चितवन उसपर सदा नाचती रहती है । यदुवंशी दिन-प्रतिदिन उसका दर्शन करके आनन्दमग्न रहते ॥ १८ ॥ मयुरके बूढ़ पुरुष भी युवकोंके समान अत्यन्त बलवान् और उत्साही हो गये थे; क्योंकि वे अपने नेत्रोंके दोनोंसे बार-बार भगवान्के सुखरविन्दका अभूतमय मकरन्द-रस पान करते रहते थे ॥ १९ ॥

प्रिय परीक्षित ! अब देवकीनन्दन भगवान् श्रीकृष्ण और बलरामजी दोनों ही नन्दबाबाके पास आये और गले लगनेके बाद उनसे कहने लगे—॥ २० ॥ पिताजी ! आपने और माँ यशोदाने बड़े स्नेह और दुःखसे हमारा लालन-पालन किया है । इसमें कोई सन्देह नहीं कि माता-पिता सन्तानपर अपने शरीरसे भी अधिक स्नेह करते हैं ॥ २१ ॥ जिन्हें पालन-पोषण न कर सकनेके कारण स्वजन-सम्बन्धियोंने त्याग दिया है, उन बालकोंको जो जोग अपने पुत्रके समान लाट-प्यारसे पालते हैं, वे ही वास्तवमें उनके माँ-बाप हैं ॥ २२ ॥ पिताजी ! अब आपलोग ब्रजमें जाइये । इसमें सन्देह नहीं कि हमारे बिना वास्तव्य-स्नेहके कारण आप जोगोंको बहुत दुःख होगा । यहाँके सुहृद्-सम्बन्धियोंकी सुखी करके हम आपलोगोंसे मिलनेके लिये आयेगे ॥ २३ ॥ भगवान् श्रीकृष्णने नन्दबाबा और दूमरे ब्रजवासियोंको इस प्रकार समझा-बुझाकर बड़े आदरके

साथ बल, आभूषण और अनेक धातुओंके बने वरतन आदि देकर उनका सत्कार किया ॥ २४ ॥ भगवान्की बात सुनकर नन्दबाबा ने प्रेमसे अधीर होकर दोनों भाइयोंको गले लगा लिया और फिर नेत्रोंमें आँसू भरकर गोपोंके साथ ब्रजके छिपे प्रस्थान किया ॥ २५ ॥

हे राजन् ! इसके बाद वसुदेवजीने अपने पुरोहित गर्गाचार्य तथा दूसरे ब्राह्मणोंसे दोनों पुत्रोंका विधिपूर्वक द्विजाति-समुचित यज्ञोपवीत-संस्कार करवाया ॥ २६ ॥ उन्होंने विविध प्रकारके बल और आभूषणोंसे ब्राह्मणोंका सत्कार करके उन्हें बहुत-सी दक्षिणा तथा बड़ोंबाजी गौएँ दीं । सभी गौएँ गलेमें सोनेकी माळा पहने हुए थीं तथा और भी बहुत-से आभूषणों एवं रेशमी वस्त्रोंकी माळाओंसे विभूषित थीं ॥ २७ ॥ महामति वसुदेवजीने भगवान् श्रीकृष्ण और बलरामजीके जन्म-नक्षत्रमें जितनी गौएँ मन-ही मन सङ्कल्प करके दी थीं, उन्हें पहले कत्तने अन्यायसे छीन लिया था । अब उनका स्मरण करके उन्होंने ब्राह्मणोंको वे फिरसे दीं ॥ २८ ॥ इस प्रकार यदुवंशके आचार्य गर्गजीसे संस्कार कराकर बलरामजी और भगवान् श्रीकृष्ण द्विजत्वको प्राप्त हुए । उनका ब्रह्मचर्यव्रत अद्वय तो था ही, अब उन्होंने गायत्रीपूँर्वाक अध्ययन करनेके लिये उसे नियमतः सीकार किया ॥ २९ ॥ श्रीकृष्ण और बलराम जगत्के एकमात्र स्वामी हैं । सर्वज्ञ हैं । सभी निषाएँ उन्हींसे निकली हैं । उनका निर्मल ज्ञान स्वतः सिद्ध है । फिर भी उन्होंने मनुष्यकी-सी ठीका करके उसे छिपा रक्खा था ॥ ३० ॥

अब वे दोनों गुरुकुलोंमें निवास करनेकी इच्छासे काश्यपोत्री सान्दीपनि मुनिके पास गये, जो अकस्तीपुर (उज्जैन) में रहते थे ॥ ३१ ॥ वे दोनों माई विधिपूर्वक गुरुजीके पास रहने लगे । उस समय वे बड़े ही सुसज्जत, अपनी चेष्टाओंको सर्वथा नियमित रखे हुए थे । गुरुजी तो उनका आदर करते ही थे, भगवान् श्रीकृष्ण और बलरामजी भी गुरुकी उत्तम सेवा कैसे करनी चाहिये, इसका आदर्श जोगोंके सामने रखते हुए बड़ी भक्तिसे इष्टदेवके समान उनकी सेवा करने लगे ॥ ३२ ॥ गुरुवर सान्दीपनिजी उनकी बुद्धभावसे युक्त सेवासे बहुत प्रसन्न हुए । उन्होंने दोनों भाइयोंको छद्मों अङ्ग और उपनिषदोंके सहित सम्पूर्ण वेदोंकी शिक्षा दी ॥ ३३ ॥ इनके सिवा मन्त्र और देवताओंके ज्ञानके साथ धनुर्वेद, मनुस्मृति आदि धर्मशास्त्र, मीमांसा आदि, वेदोंका तार्क्य वतलनेवाले शास्त्र, तर्कविद्या (न्यायशास्त्र) आदिकी भी शिक्षा दी । साथ ही सन्धि, विग्रह, यान, आसन, द्रव्य और आश्रय—इन छः वेदोंसे युक्त राजनीतिक भी अध्ययन कराया ॥ ३४ ॥ परीक्षित ! भगवान् श्रीकृष्ण और बलराम सारी निषाओंके प्रवर्तक हैं । इस समय केवल श्रेष्ठ मनुष्यका-सा व्यवहार करते हुए ही वे अध्ययन कर रहे थे । उन्होंने गुरुजीके केवल एक बार कहनेमात्रसे सारी निषाएँ सीख लीं ॥ ३५ ॥ केवल चौसठ दिन-रातमें ही संप्रमीशरीरमणि दोनों भाइयोंने चौसठों कलशोंका ज्ञान प्राप्त कर लिया । इस प्रकार अध्ययन समाप्त होनेपर उन्होंने सान्दीपनि

॥ चौसठ कलाएँ ये हैं—

१ गानविद्या; २ वाद्य—भोंसि-गोंसिके बाजे बजाना; ३ मूल्य; ४ नाट्य; ५ चित्रकारी; ६ बेल-बूटे बनाना; ७ चावल और पुष्पादिसे पूजाके उपहारकी रचना करना; ८ फूलोंकी छेन बनाना; ९ द्रोत, वज्र और अल्लोंको रंगना; १० मणियोंकी कर्म बनाना; ११ शय्या-रचना; १२ जलको बौध देना; १३ विविध चिह्नों दिखाना; १४ हार-माला आदि बनाना; १५ कान और चोटीके फूलोंके गहने बनाना; १६ कमड़े और जूने बनाना; १७ फूलोंके आभूषणोंसे शृङ्गार करना; १८ कानोंके पत्तोंकी रचना करना; १९ सुगन्ध वस्तुएँ—इत्र, तैल आदि बनाना; २० इन्द्रजाल—जादूगरी; २१ चाहे जैसा वेष धारण कर देना; २२ हाथकी छुल्लिके काम; २३ तरह-तरहकी खानेकी वस्तुएँ बनाना; २४ तरह-तरहके पीनेके पदार्थ बनाना; २५ सूईका काम; २६ कठपुतली बनाना; नचाना; २७ पहेली; २८ प्रविद्या आदि बनाना; २९ कूटनीति; ३० ग्रन्थोंके पढ़ानेकी चातुरी; ३१ नाटक; आचम्यशिक्षा आदिकी रचना करना; ३२ समस्यापूर्ति करना; ३३ पट्टी, वेत, बाण आदि बनाना; ३४ गलीचे, दरी आदि बनाना; ३५ बद्धकी कारीगरी; ३६ थूह आदि बनानेकी कारीगरी; ३७ छेने; चौंटी आदि धातु तथा हीरे-पत्थने आदि रत्नोंकी परीक्षा; ३८ लोना-चौंटी आदि बना लेना; ३९ मणियोंके रंगको पहचानना; ४० खानोंकी पहचान; ४१ वृक्षोंकी चिकित्सा; ४२ मेढ़क; भुगा; बटेर आदिछे छड़ानेकी रीति; ४३ तोता-मैना आदिकी बोलियाँ बोलना; ४४ उच्चाटनकी विधि; ४५ केशोंकी लफाईका कौशल; ४६ मुट्टीकी खीच या मनकी बात बताना; ४७

मुनिसे प्रार्थना की कि 'आपकी जो इच्छा हो, गुरु-दक्षिणा मोंग लें' ॥ ३६ ॥ यद्वा राव ! साम्दीपनि मुनिने उनकी अद्भुत महिमा और अलौकिक बुद्धिका अनुभव कर लिया था । इसलिये उन्होंने अपनी पत्नीसे सल्लाह करके यह गुरुदक्षिणा मोंगी कि भ्रमासक्षेत्रमें हमारा बालक समुद्रमें डूबकर मर गया था, उसे तुमलोग ला दो' ॥ ३७ ॥ बलरामजी और श्रीकृष्णका पराक्रम अनन्त था । दोनों ही यद्वा रायी थे । उन्होंने 'बहुत अच्छा' कहकर गुरुजीकी आज्ञा स्वीकार की और रथपर सवार होकर भ्रमासक्षेत्रमें गये । वे समुद्रतटपर जाकर क्षणभर बैठे रहे । उस समय वह जानकर कि ये साक्षात् परमेश्वर हैं, अनेक प्रकारकी पूजा-सामग्री लेकर समुद्र उनके सामने उपस्थित हुआ ॥ ३८ ॥ भगवान् ने समुद्रसे कहा—'समुद्र ! तुम यहाँ अपनी बड़ी-बड़ी तरङ्गोंसे हमारे जिस गुरुपुत्रको बहा ले गये थे, उसे लाकर शीघ्र हमें दो' ॥ ३९ ॥

मनुष्यवेषधारी समुद्रने कहा—'देवाधिदेव श्रीकृष्ण ! मैंने उस बालकको नहीं लिया है । मेरे जलमें पञ्चजन नामका एक बड़ा भारी दैत्य जातिका असुर शङ्खके रूपमें रहता है । अवश्य ही उसीने वह बालक चुरा लिया होगा' ॥ ४० ॥ समुद्रकी बात सुनकर भगवान् तुरंत ही जलमें जा घुसे और शङ्खासुरको मार डाला । परन्तु वह बालक उसके पेटमें नहीं मिला ॥ ४१ ॥ तब उसके शरीरका शङ्ख लेकर भगवान् रथपर चले आये । वहाँसे बलरामजीके साथ श्रीकृष्णने यम-राजकी प्रियपुरी संयमनीमें जाकर अपना शङ्ख बजाया । शङ्खका शब्द सुनकर सारी भ्रजाका शासन करनेवाले यमराजने उनका सागत किया और यत्किमपसे भरकर विधिपूर्वक उनकी बहुत बड़ी पूजा की ।

उन्होंने नम्रतासे हृत्कतर समस्त प्राणियोंके हृदयमें विराजमान सच्चिदानन्द-स्वरूप भगवान् श्रीकृष्णसे कहा—'जीजसे ही मनुष्य बने हुए सर्वव्यापक परमेश्वर ! मैं आप दोनोंकी क्या सेवा करूँ ?' ॥ ४२-४४ ॥

श्रीभगवान् ने कहा—'यमराज ! यहाँ अपने कर्म-बन्धनके अनुसार मेरा गुरुपुत्र लाया गया है । तुम मेरी आज्ञा स्वीकार करो और उसके कर्मपर ध्यान न देकर उसे मेरे पास ले आओ ॥ ४५ ॥ यमराजने 'जो आज्ञा' कहकर भगवान् का आदेश स्वीकार किया और उनका गुरुपुत्र ला दिया । तब यदुवशशिरोमणि भगवान् श्रीकृष्ण और बलरामजी उस बालकको लेकर उज्जैन लौट आये और उसे अपने गुरुदेवकी सौपकर कहा कि 'आप और जो कुछ चाहें, मोंग लें' ॥ ४६ ॥

गुरुजीने कहा—'वेद्य ! तुम दोनोंने भलीभाँति गुरुदक्षिणा दी । अब और क्या चाहिये ? जो तुम्हारे-जैसे पुरुषोत्तमोंका गुरु है, उसका कौन-सा मनोरथ अपूर्ण रह सकता है ? ॥ ४७ ॥ वीरो ! अब तुम दोनों अपने घर जाओ । तुम्हें लोकोंको पवित्र करने-वाली कीर्ति प्राप्त हो । तुम्हारी पत्नी हुई विषा इस लोक और परलोकमें सदा नदीन बनी रहे, कभी विस्तृत न हो ॥ ४८ ॥ वेद्य परीक्षित ! फिर गुरुजीसे आज्ञा लेकर वायुके समान वेग और मेघके समान शब्दवाले रथपर सवार होकर दोनों माई मथुरामें लौट आये ॥ ४९ ॥ मथुराकी प्रजा बहुत दिनोंतक श्रीकृष्ण और बलरामको न देखनेसे अत्यन्त दुखी हो रही थी । अब उन्हें आया हुआ देख सब-के-सब परमानन्दमें मग्न हो गये, मानो खोया हुआ धन मिल गया हो ॥ ५० ॥

छियालीसवाँ अध्याय

उद्धवजीकी प्रशंसा

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित ! उद्धवजी दृष्टिगन्धियों एक प्रधान पुरुष थे । वे साक्षात्

४७ श्लेष्म-काव्योंका समग्र लेना; ४८ विभिन्न देशोंकी भाषाका ज्ञान; ४९ शङ्ख-अपशङ्ख जानना; प्रश्नोंके उत्तरमें क्षुभाशुभ वतलाना; ५० नाना प्रकारके मातृकायन्त्र बनाना; ५१ रत्नोंको नाना प्रकारके आकारोंमें काटना; ५२ साङ्केतिक भाषा बनाना; ५३ मनमें कटकरचना करना; ५४ नदी-नयी नालें निकालना; ५५ उल्लेख कम निकालना; ५६ समस्त कोशोंका ज्ञान; ५७ समस्त छन्दोंका ज्ञान; ५८ वर्षोंको छिपाने या बदलनेकी विद्या; ५९ वृत्तकीर्तन; ६० दूरके मनुष्य या वस्तुओंका आकर्षण करनेका; ६१ बालकोंके खेल; ६२ मन्त्रविद्या; ६३ विनय प्राप्त करनेवाली विद्या; ६४ वेताल आदिको बशमें रखनेकी विद्या ।

बृहस्पतिजीके शिष्य और परम बुद्धिमान् थे । उनकी महिमाके सम्बन्धमें इससे बढ़कर और कौन-सी बात कही जा सकती है कि वे भगवान् श्रीकृष्णके प्यारे सखा तथा मन्त्री भी थे ॥ १ ॥ एक दिन शरणागतके सारे दुःख हर लेनेवाले भगवान् श्रीकृष्णने अपने प्रिय भक्त और एकान्तप्रेमी उद्धवजीका हाथ अपने हाथमें लेकर कहा—॥ २ ॥ 'सौम्यस्वभाव उद्धव ! तुम ब्रजमें जाओ । वहाँ मेरे पिता-माता नन्दबाबा और यशोदा मैया हैं, उन्हें आनन्दित करो; और गोपियों मेरे विरहकी व्याधिसे बहुत ही दुःखी हो रही हैं, उन्हें मेरे सन्देश सुनाकर उस वेदनासे मुक्त करो ॥ ३ ॥ प्यारे उद्धव ! गोपियोंका मन नित्य-निरन्तर मुझमें ही लगा रहता है । उनके प्राण, उनका जीवन, उनका सर्वस्व मैं ही हूँ । मेरे लिये उन्होंने अपने पति-पुत्र आदि सभी सगे-सम्बन्धियोंको छोड़ दिया है । उन्होंने बुद्धिसे भी मुझको अपना प्यारा, अपना प्रियतम—नहीं, नहीं, अपना आत्मा मान रखना है । मेरा यह मत है कि जो लोग मेरे लिये लौकिक और पारलौकिक धर्मोंको छोड़ देते हैं, उनका भरण-पोषण मैं स्वयं करता हूँ ॥ ४ ॥ प्रिय उद्धव ! मैं उन गोपियोंका परम प्रियतम हूँ । मेरे यहाँ चले आनेसे वे मुझे दूरस्थ मानती हैं और मेरा स्मरण करके अत्यन्त मोहित हो रही हैं, बार-बार मूर्च्छित हो जाती हैं । वे मेरे विरहकी व्याधसे निवृद्ध हो रही हैं, प्रतिक्षण मेरे लिये उत्कण्ठित रहती हैं ॥ ५ ॥ मेरी गोपियाँ, मेरी प्रेयसियाँ इस समय बड़े ही कष्ट और यत्नसे अपने प्राणोंको किसी प्रकार रख रही हैं । मैंने उनसे कहा था कि 'मैं आऊँगा ।' वही उनके जीवनका आधार है । उद्धव ! और तो क्या कहूँ, मैं ही उनकी आत्मा हूँ । वे नित्य-निरन्तर मुझमें ही तन्मय रहती हैं ॥ ६ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित ! जब भगवान् श्रीकृष्णने यह बात कही, तब उद्धवजी बड़े आदरसे अपने स्वामीका सन्देश लेकर रथपर सवार हुए और नन्दगोवर्धके लिये चले गये ॥ ७ ॥ परम सुन्दर उद्धवजी सूर्यास्तके समय नन्दबाबाके ब्रजमें पहुँचे । उस समय जंगलसे गौएँ लौट रही थीं । उनके छुरोंके आघातसे इतनी धूल उड़ रही थी कि सन्का रथ ढक

गया था ॥ ८ ॥ ब्रजभूमिमें ऋतुमती गौओंके लिये मतवाले सौँव आपसमें ढक रहे थे । उनकी गर्जनासे सारा ब्रज गूँव रहा था । थोड़े दिनोंकी न्यायी हुई गौएँ अपने धनोंके भारी भारसे दबी होनेपर भी अपने-अपने बछड़ोंकी ओर दीव्य रही थी ॥ ९ ॥ सफेद रंगके बछड़े इधर-उधर उछल-कूद मचाते हुए बहुत ही मले मालूम होते थे । गाय दुहनेकी 'धर-धर' ध्वनिसे और बोलियोंकी मधुर ठेरसे अब भी ब्रजकी अपूर्व शोभा हो रही थी ॥ १० ॥ गोपी और गोप सुन्दर-सुन्दर बहल तथा गहनोंमें सज-धजकर श्रीकृष्ण तथा बलरामजीके मङ्गलमय चरित्रोंका गान कर रहे थे और इस प्रकार ब्रजकी शोभा और भी बढ़ गयी थी ॥ ११ ॥ गोपोंके करोंमें अग्नि, सूर्य, अतिथि, गौ, ब्राह्मण और देवता-पितरोंकी पूजा की हुई थी । धूपकी सुगन्ध चारों ओर फैल रही थी और दीपक जलमाग रहे थे । उन धरोंको पुष्पोंसे सजपा गया था । ऐसे मनोहर गृहोंसे सारा ब्रज और भी मनोरम हो रहा था ॥ १२ ॥ चारों ओर वन-पक्षियों कूँवसे छव रही थी । पक्षी चहक रहे थे और मीरे गुंवार कर रहे थे । वहाँ जल और स्थल दोनों ही कमलोंके बगसे शोभायमान थे और हाँस, बसस आदि पक्षी बगमें विहार कर रहे थे ॥ १३ ॥

जब भगवान् श्रीकृष्णके प्यारे अनुचर उद्धवजी ब्रजमें आये, तब उनसे मिलकर नन्दबाबा बहुत ही प्रसन्न हुए । उन्होंने उद्धवजीको गले लगाकर उनका बैस ही सम्मान किया, मालो स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण था गये हों ॥ १४ ॥ समयपर उत्तम अन्नका भोजन कराया और जब वे आरामसे पङ्कपर बैठ गये, सेवकोंने पौध दवाकर, पंखा झण्कार उनकी पकवट दूर कर दी ॥ १५ ॥ तब नन्दबाबाने उनसे पूछा—'परम मायवान् उद्धवजी ! अब हमारे सखा बभ्रुदेवजी जेलसे छूट गये । उनके आत्मीय सख्तन तथा पुत्र आदि उनके साथ हैं । इस समय वे सब कुशलसे तो हैं न ? ॥ १६ ॥ यह बड़े सौभाग्यकी बात है कि अपने पापोंके फलस्वरूप पापी कंस अपने अनुयायियोंके साथ मारा गया । क्योंकि स्वभावसे ही धार्मिक परम साधु बह्वर्षियोंसे वह सदा द्वेष करता था ॥ १७ ॥ अन्ध

तथा ब्रह्मण्य होकर परम मतिको प्राप्त होता है ॥ ३२ ॥
 वे भगवान् ही, जो सबके आत्मा और परम कारण हैं,
 भक्तोंकी अभिलाषा पूर्ण करने और पृथ्वीका मार
 उतारनेके लिये मनुष्यका-सा शरीर ग्रहण करके प्रकट
 हुए हैं । उनके प्रति आप दोनोंका ऐसा सुदृढ़ वात्सल्य-
 भाव है; फिर महात्माओ ! आप दोनोंके लिये अब
 कौन-सा शुभ कर्म करना श्रेय रह जाता है ॥ ३३ ॥
 भक्तवत्सल यदुर्ध्वगिरिमणि भगवान् श्रीकृष्ण योदे ही
 दिनेमिं ब्रजमें आवेंगे और आप दोनोंको—अपने गो-
 बापको आनन्दित करेंगे ॥ ३४ ॥ जिस समय उन्होंने
 समस्त यदुवर्षियोंके द्रोही कंसको रगभूमिमें मार बाधा
 और आपके पास आकर कहा कि 'मैं ब्रजमें आऊँगा',
 उस क्षणको वे सत्य करेंगे ॥ ३५ ॥ नन्दबाबा और
 माता यशोदाजी ! आप दोनों परम भाग्यशाली हैं ।
 खेद न करें । आप श्रीकृष्णको अपने पास ही
 देखेंगे, क्योंकि जैसे काष्ठमें अग्नि सदा ही
 व्यापक रूपसे रहती है, वैसे ही वे समस्त प्राणियोंके
 हृदयमें सर्वदा विराजमान रहते हैं ॥ ३६ ॥ एक शरीरके प्रति
 अभिमान न होनेके कारण न तो कोई उनका शिष्य है
 और न तो अप्रिय । वे सबमें और सबके प्रति समान
 हैं; इसलिये उनकी दृष्टिमें न तो कोई उत्तम है और
 न तो अधम । यदुक्त कि विषमताका भाव रखनेवाला
 भी उनके लिये विषम नहीं है ॥ ३७ ॥ न तो उनकी
 कोई माता है और न पिता । न पत्नी है और न तो
 पुत्र आवि । न अपना है और न तो परया । न देह है
 और न तो जन्म ही ॥ ३८ ॥ इस लोकमें उनका कोई
 कर्म नहीं है फिर भी वे साधुओंके परित्राणके लिये,
 छोटा करनेके लिये वेदादि सात्त्विक, अस्थायि तामस
 एवं मनुष्य आदि मिश्र योनियोंमें शरीर धारण करते
 हैं ॥ ३९ ॥ भगवान् अजन्मा हैं । उनमें प्राकृत सत्त्व,
 रज आदिसे एक भी गुण नहीं है । इस प्रकार इन
 गुणोंसे अतीत होनेपर भी लीलके लिये खेल-खेलमें
 वे सत्त्व, रज और तम—इन तीनों गुणोंको स्वीकार कर लेते
 हैं और उनके द्वारा जगत्की रचना, पावन और संहार
 करते हैं ॥ ४० ॥ जब कच्चे घुमरीपरेता खेलने लगते
 हैं या मनुष्य वेगसे चक्कर लगाने लगते हैं, तब उन्हें

सारी पृथ्वी घूर्तरी हुई जान पड़ती है । वैसे ही वास्तवमें
 सब कुछ करनेवाला चित्त ही है; परन्तु उस चित्तमें
 अहंबुद्धि हो जानेके कारण, भ्रमरना उसे आत्मा—
 अपना भी समझ लेनेके कारण, जीव अपनेको कर्ता
 समझने लगता है ॥ ४१ ॥ भगवान् श्रीकृष्ण केवल
 आप दोनोंके ही पुत्र नहीं हैं, वे समस्त प्राणियोंके
 आत्मा, पुत्र, पिता-माता और स्वामी भी हैं ॥ ४२ ॥
 नावा ! जो कुछ देखा या सुना जाता है—वह चाहे
 भूतसे सम्बन्ध रखता हो, वर्तमानसे अथवा भविष्यसे;
 स्वाक्ष हो या जन्म हो, महान् हो अथवा अल्प हो—
 ऐसी कोई वस्तु ही नहीं है, जो भगवान् श्रीकृष्णसे
 पृथक् हो । नावा ! श्रीकृष्णके अतिरिक्त ऐसी कोई
 वस्तु नहीं है, जिसे वस्तु कहा सके । वास्तवमें सब
 वे ही हैं, वे ही परमार्थ सत्य हैं ॥ ४३ ॥

परीक्षित ! भगवान् श्रीकृष्णके सखा उद्वह और
 नन्दबाबा इसी प्रकार आपसमें बात करते रहे और वह
 रात बीत गयी । कुछ रात श्रेय रहनेपर गोपियों उठीं,
 दीपक जलाकर उन्होंने घरकी देहलियोंपर वास्तुदेवका
 पूजन किया, अपने घरोंको शङ्ख-घुंकारकर साफ किया
 और फिर दही मयने लगी ॥ ४४ ॥ गोपियोंकी
 कलहियोंमें कंगन शोभायमान हो रहे थे, रस्सी बाँधते
 समय वे बहुत मछी मालूम हो रही थीं । उनके
 मितम्ब, स्तन और गलेके हार दिख रहे थे । कानोंके
 कुण्डल हिल-हिलकर उनके कुङ्कुममण्डित कपोलोंकी
 छात्रिमा बढ़ा रहे थे । उनके आभूषणोंकी मणियों
 दीपककी ज्योतिसे और भी जगमगा रही थी और इस प्रकार
 वे अत्यन्त शोभासे सम्पन्न होकर दही मय रही थीं ॥ ४५ ॥
 उस समय गोपियों—कमलनयन भगवान् श्रीकृष्णके
 मङ्गलमय चरित्रोंका गान कर रही थी । उनका वह
 सङ्गीत दही मयनेकी ध्वनिसे मिलकर और भी अद्भुत
 हो गया तथा स्वर्गलोकतक जा पहुँचा, जिसकी सर-
 ज्जही सब ओर फैलकर दिशाओंका अमङ्गल मिटा देती
 है ॥ ४६ ॥

जब भगवान् सुकन्यास्वरका उदय हुआ, तब
 ब्रजजनाओंने देखा कि नन्दबाबाके दरवाजेपर एक
 सोनेका रथ खड़ा है । वे एक-दूसरेसे पूछने लगे 'वह

किसका रथ है? ॥ ४७ ॥ किसी गोपीने कहा—‘कंसका प्रयोजन सिद्ध करनेवाला अक्षर ही तो कहीं फिर नहीं आ गया है ! जो कमलनयन प्यारे श्यामसुन्दरको यहाँसे मथुरा ले गया था ॥ ४८ ॥ किसी दूसरी गोपीने कहा—‘क्या अब वह हमें ले जाकर अपने

गरे हुए खामी कंसका पिण्डदान करेगा ? अब यहाँ उसके आनेका धौर क्या प्रयोजन हो सकता है ?’ ब्रजवासिनी स्त्रियाँ इसी प्रकार आपसमें बातचीत कर रही थीं कि उसी समय नित्यकर्मसे निवृत्त होकर उद्वजनी आ पहुँचे ॥ ४९ ॥

सैतालीसवाँ अध्याय

उद्वज तथा गोपियोंकी बातचीत और भ्रमरगीत

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित । गोपियोंने देखा कि श्रीकृष्णके सेवक उद्वजजीकी आकृति और वेषभूषा श्रीकृष्णसे मिलती-जुलती है । घुटनोंतक लम्बी-लम्बी मुट्टें हैं, नूतन कमलदलके समान कोमल नेत्र हैं, शरीरपर पीताम्बर धारण किये हुए हैं, गलेमें कमलपुष्पोंकी माळा है, कानोंमें मणिजटित कुण्डल झलक रहे हैं और मुग्धारविन्द अत्यन्त प्रफुल्लित हैं ॥ १ ॥ पवित्र मुसकानवाली गोपियोंने आपसमें कहा—‘यह पुरुष देखनेमें तो बहुत सुन्दर है । परन्तु यह है कौन ? कहाँसे आया है ? किसका दूत है ? इसने श्रीकृष्ण-जैसी वेषभूषा क्यों धारण कर रखी है ?’ सब-जनी-सब गोपियों उनका परिचय प्राप्त करनेके लिये अत्यन्त उत्सुक हो गयीं और उनमेसे बहुत-सी पवित्रकीर्ति भगवान् श्रीकृष्णके चरण-कमलोंके आश्रित तथा उनके सेवक-सख उद्वजजीको चारों ओरसे घेरकर खड़ी हो गयीं ॥ २ ॥ जब उन्हें साक्ष्य हुआ कि ये तो रमारमण भगवान् श्रीकृष्णका सन्देश लेकर आये हैं, तब उन्होंने जिनयसे छुटकर सलज्ज हास्य, चितवन और मधुर वाणी आदिस उद्वजजीका अत्यन्त सत्कार किया तथा एकान्तमें आसनपर बैठकर वे उनसे इस प्रकार कहने लगीं—॥ ३ ॥ ‘उद्वजजी ! हम जानती हैं कि आप यदुनायके पार्षद हैं । उन्हींका संदेश लेकर यहाँ पधारे हैं । आपके खामीने अपने माता-पिताको सुख देनेके लिये आपको यहाँ भेजा है । ४ । अन्यथा हमें तो अब इस नन्दगोत्रमें—गौजके रहनेकी जगहमें उनके स्मरण करने योग्य कोई भी वस्तु दिखायी नहीं पड़ती; माता-पिता आदि सगे-सम्बन्धियोंका स्नेह-बन्धन तो बड़े-बड़े ऋषि-मुनि भी बड़ी कठिनाईसे छोड़ पाते हैं ॥ ५ ॥ दूसरोंका साथ जो प्रेम सम्बन्धका खौन

किया जाता है, वह तो किसी-न-किसी स्वार्थके लिये ही होता है । मौरोंका पुष्पोंसे और पुरणोंका स्त्रियोंसे ऐसा ही स्वार्थका प्रेम-सम्बन्ध होता है ॥ ६ ॥ जब वेदया समझती है कि अब मेरे यहाँ आनेवालेके पास धन नहीं है, तब उसे वह धता बता देती है । जब प्रजा देखती है कि यह राजा हमारी रक्षा नहीं कर सकता, तब वह उसका साथ छोड़ देती है । अध्ययन समाप्त हो जानेपर कितने शिष्य अपने आचार्योंकी सेवा करते हैं ! यद्यकी दक्षिणा मिली कि ऋत्विज लोग खलते बने ॥ ७ ॥ जब वृक्षपर फल नहीं रहते, तब पक्षीगण वहाँसे बिना कुछ सोचे-विचारे उड़ जाते हैं । भोजन कर लेनेके बाद अतिथिबेग ही गृहस्वकी ओर कब देखते हैं ? जनमें आप लगी कि पशु भाग खड़े हुए । बाहे लीके हृदयमें कितना भी अनुराग हो, जार पुरुष अपना काम बना लेनेके बाद उलटकर भी तो नहीं देखता ? ॥ ८ ॥ परीक्षित । गोपियोंके मन, वाणी और शरीर श्रीकृष्णमें ही तल्लीन थे । जब भगवान् श्रीकृष्णके दूत बनकर उद्वजजी ब्रजमें आये, तब वे उनसे इस प्रकार कहते-कहते यह भूल ही गयीं कि कौन-सी बात किस तरह किसके सामने कहनी चाहिये । भगवान् श्रीकृष्णने वचनपनसे लेकर किशोर अवस्थातक जितनी भी लीजएँ की थीं, उन सबकी याद कर-करके गोपियों उनका गान करने लगीं । वे आत्मविरमृत होकर ली-मुल्लम लज्जाको भी भूल गयीं और झट-झटकर रोने लगीं ॥ ९-१० ॥ एक गोपीको उस समय स्मरण हो रहा था भगवान् श्रीकृष्णके मिलनकी लीलका । उसी समय उसने देखा कि पास ही एक और गुनगुना रहा है । उसने ऐसा समझा मानो मुझे रुठी हुई समझकर श्रीकृष्णने मनानेके लिये दूत भेजा हो । वह गोपी औरसे इस प्रकार कहने लगी—॥ ११ ॥

गोपीने कहा—रे मधुप ! तू कपटीका सख्त है ; इसलिये तू भी कपटी है । तू हमारे पैरोंको मत छू । झूठे प्रणाम करके हमसे अनुरोध-विनय मत कर । हम देख रही हैं कि श्रीकृष्णकी जो वनमाल्य हमारी सीतोंके वक्षःस्थलके स्पर्शसे मसली हुई है, उसका पीछ-पीछ कुङ्कुम तेरी मूँछोंपर भी लगा हुआ है । तू खरों भी तो किसी कुङ्कुमसे प्रेम नहीं करता, यहाँ-से-वहाँ उड़ा करता है । जैसे तेरे खासी, वैसा ही तू ! मधुपति श्रीकृष्ण मधुरास्ती मालिनी नायिकाओंको मनाया करें, उनका वह कुङ्कुमरूप हृष्य-प्रसाद, जो यदुवशियोंकी सभामें उपहास करनेयोग्य है, अपने ही पास रखे । उसे तेरे द्वारा यहाँ मेननेकी क्या आवश्यकता है ! ॥ १२ ॥ जैसा तू काळा है, वैसा ही वे भी हैं । तू भी पुष्पोंका रस लेकर उड़ जाता है, वैसा ही वे भी निकले । उन्होंने हमें केवल एक बार—हाँ, ऐसा ही लगता है—केवल एक बार अपनी तनिक-सी मोहिनी और परम मादक अवरसुधा पित्रायी थी और फिर हम मोछी-भाछी गोपियोंको छोड़कर वे यहाँसे चले गये । पता नहीं, सुकुमारी लक्ष्मी उनके चरणकमलोंकी सेवा कैसे करती रहती हैं । अवश्य ही वे छैल-छबीले श्रीकृष्णकी चिकनी-सुपडी बातोंमें आ गयी होंगी । पित्तचौरने उनका भी चिप चुरा लिया होगा ॥ ११ ॥ अरे अमर ! हम कनवासिनी हैं । हमारे तो घर-द्वार भी नहीं है । तू हमलोगोंके सामने यदुवशिशोमणि श्रीकृष्णका बहुत-सा गुणगान क्यों कर रहा है ? यह सब भला हमलोगोंको मनानेके लिये ही तो ? परन्तु नहीं-नहीं, वे हमारे लिये कोई मये नहीं हैं । हमारे लिये तो ज्ञाने-पहचाने, विस्फुल पुराने हैं । तेरी चापखसी हमारे पास नहीं चलेगी । ए जा, यहाँसे चला जा और जिनके साथ सदा विजय रहती है, उन श्रीकृष्णकी मधुपुरवासिनी सखियोंके सामने जाकर उनका गुणगान कर । वे नयी हैं, उनकी छाछाई कम जानती हैं और इस सम्म वे उनकी प्यारी हैं; उनके हृदयकी पीड़ा उन्होंने मिट्ट दी है । वे तेरी प्रार्थना स्वीकार करेंगी, तेरी चापखसीसे प्रसन्न होकर तुझे मुँहमौगी वस्तु देंगी ॥ १४ ॥ भौरे ! वे हमारे लिये छपटा रहे हैं, ऐसा तू क्यों कहता है ! उनकी कपटमरी मनोहर मुसकान और मौहोंके

इशारेसे जो वशमें न हो जायें, उनके पास दीवी न आवें—ऐसी कौन-सी खियाँ हैं ? अरे अनजान ! खगमें, पातालमें और पृथ्वीमें ऐसी एक भी ली नहीं है । औरोंकी तो बात ही क्या, खरों लक्ष्मीजी भी उनके चरणरत्नकी सेवा किया करती है । फिर हम श्रीकृष्णके लिये किस गिनतीमें हैं ? परन्तु तू उनके पास जाकर कहना कि 'तुम्हारा नाम तो 'उत्तमश्लोक' है, अच्छे-अच्छे लोग तुम्हारी कीर्तिका गान करते हैं; परन्तु इसकी सार्थकता तो इसीमें है कि तुम कीनोंपर दया करो । नहीं तो श्रीकृष्ण ! तुम्हारा 'उत्तमश्लोक' नाम झूठा पब जाता है ॥ १५ ॥ अरे मधुकर ! देख, तू मेरे पैरपर सिर मत टेक । मैं जानती हूँ कि तू अनुनय-विनय करनेमें, धमा धाचना करनेमें बड़ा निपुण है । मास्त्र होता है तू श्रीकृष्णसे ही यही सीखकर आया है कि रुठे हुएको मनानेके लिये दूतको—सन्देशवाहकको कितनी चाटुकारिता करनी चाहिये । परन्तु तू समझ ले कि यहाँ तेरी दाढ नहीं गलनेकी । देख, हमने श्रीकृष्णके लिये ही अपने पति, पुत्र और दूसरे ओगोंको छोड़ दिया । परन्तु उनमें तनिक भी कृतकता नहीं । वे ऐसे निर्गोही निकले कि हमें छोड़कर चलेते न । अब तू ही बता, ऐसे अकृतकके साथ हम क्या सन्धि करें ? क्या तू अब भी कहता है कि उनपर निवास करना चाहिये ? ॥ १६ ॥ ऐ रे मधुप ! जब वे राम बने थे, तब उन्होंने कपिराज बालिको व्याधके समान छिपकर बड़ी निर्दयतासे मारा था । बेचारी शूर्पणखा कामबहा उनके पास आयी थी, परन्तु उन्होंने अपनी लीके बहा होकर उस बेचारीके नाक-कान काट लिये और इस प्रकार उसे कुत्सुप कर दिया । ब्राह्मणके धर वामनके रूपमें जन्म लेकर उन्होंने क्या किया ? बल्लिने तो उन्मथी पूजा की, उनकी मुँहमौगी वस्तु दी और उन्होंने उसकी पूजा ग्रहण करके भी उसे कर्णपाशसे बाँधकर पातालमें डाक दिया । ठीक वैसा ही, जैसे कौआ बलि खाकर भी बलि देनेवालेको अपने अन्य साथियोंके साथ मिलाकर घेर लेता है और परेशान करता है । अच्छ, तो अब जाने दे; हमें कृष्णसे क्या, किसी भी काली वस्तुके साथ मित्रतासे कोई प्रयोजन नहीं

है । परन्तु यदि तू यह कहे कि श्वव ऐसः है तब तुम-
लोग उनकी चर्चा क्यों करती हो ? तो भ्रमर ! हम
सच कहती हैं, एक बार जिसे उसका चसका लग जाता
है, वह उसे छोड़ नहीं सकता । ऐसी दशा में हम
चाहनेपर भी उनकी चर्चा छोड़ नहीं सकतीं ॥ १७ ॥
श्रीकृष्णकी छीछरूप कर्णामृतके एक कणका भी जो रसा-
खादन कर लेता है, उसके राग-द्वेष, सुख-दुःख आदि
सारे द्वन्द्व छूट जाते हैं । यहाँतक कि बहुत-से लोग
तो अपनी दुःखमय—दुःखसे सभी दुर्घट भर-गृहस्थी
छोड़कर अकिञ्चन हो जाते हैं, अपने पास कुछ भी
संप्रदाय-परिग्रह नहीं रखते, और पक्षियोंकी तरह चुन-
चुनकर—मीछ मोंगकर अपना पेट भरते हैं, दीन-
दुनियासे जाते रहते हैं । फिर भी श्रीकृष्णकी छीछ-
कथा छोड़ नहीं पाते । शासनमें उसका रस, उसका
चसका ऐसा ही है । यही दशा हमारी हो रही है ॥ १८ ॥
जैसे कृष्णसार घृणकी पत्नी मोली-माछी हरिनिर्वाण व्याधके
सुमधुर गानका विश्वास कर लेती हैं और उसके जालमें
फँसकर मारी जाती हैं, वैसे ही हम मोली-माछी गोपियों भी
उस छलिया कृष्णकी कपटमयी मीठी-मीठी बातोंमें आकर
उन्हें सत्यके समान मान बैठे और उनके नखरपर्शसे होने-
वाली कामव्याधिका बार-बार अनुभव करती रहें ।
इसलिये श्रीकृष्णके दूत भौरे ! अब इस विषयमें तू और
कुछ मत कह । तुझे कहना ही हो तो कोई दूसरी बात
कह ॥ १९ ॥ हमारे प्रियतमके प्यारे सखा ! जान
पड़ता है तुम एक बार उधर जाकर फिर जैट आये
हो । अवश्य ही हमारे प्रियतमने मनानेके लिये तुम्हें
मेजा होगी । प्रिय भ्रमर ! तुम सब प्रकारसे हमारे
भाननीय हो । कहो तुम्हारी क्या इच्छा है ? हमसे जो
चाहो, सो मोंग लो । अच्छा तुम सच बताओ, क्या
हमें वहाँ ले चलना चाहते हो ? अबी, उनके पास
जाकर जैटना बड़ा कठिन है । इस तो उनके पास
जा चुकी है । परन्तु तुम हमें वहाँ ले जाकर करोगे
क्या ? प्यारे भ्रमर ! उनके साथ—उनके बन्धु-स्वल्प
तो उनकी प्यारी पत्नी लक्ष्मीजी सदा रहती हैं न ? तब
वहाँ हमारा निर्वाह कैसे होगा ॥ २० ॥ अच्छा, हमारे
प्रियतमके प्यारे दूत मधुकर ! हमें यह बतलाओ कि
आर्यपुत्र भगवान् श्रीकृष्ण गुरुकुलसे जैटकर मधुपुरीमें

अब सुखसे तो हैं न ? क्या वे कभी नन्दबाबा, यशोदा-
रानी, यहाँके घर, सगे-सम्बन्धी और ग्वालबालोंकी भी
याद करते हैं ? और क्या हम दासियोंकी भी कोई बात
कभी चलाते हैं ? प्यारे भ्रमर ! हमें यह भी बतलाओ
कि कभी वे अपनी अगरके समान दिव्य सुगन्धसे युक्त
मुन्ना हमारे सिरोंपर रखेंगे ? क्या हमारे जीवनमें
कभी ऐसा झुम अवसर भी आयेगा ? ॥ २१ ॥

श्रीकृष्णकेवजी कहते हैं—परीक्षित ! गोपियों भगवान्
श्रीकृष्णके दर्शनके लिये अत्यन्त उत्सुक—लालसित
हो रही थीं, उनके लिये तड़प रही थीं । उनकी बातें
सुनकर उद्वेगजीने उन्हें उनके प्रियतमका सन्देश सुनाकर
सान्त्वना देते हुए इस प्रकार कहा ॥ २२ ॥

उद्वेगजीने कहा—अहो गोपियो ! तुम कृतकृत्य
हो ! तुम्हारा जीवन सफल है । देखियो ! तुम सारे
संसारके लिये पूजनीय हो; क्योंकि तुमलोगोंने इस
प्रकार भगवान् श्रीकृष्णको अपना हृदय, अपना सर्वस्व
समर्पित कर दिया है ॥ २३ ॥ दान, व्रत, तप, होम,
जप, वेदाभ्ययन, ध्यान, वारणा, समाधि और कल्याणके
अन्य विविध साधनोंके द्वारा भगवान्की भक्ति प्राप्त हो,
यही प्रयत्न किया जाता है ॥ २४ ॥ यह बड़े सौभाग्यकी
बात है कि तुमलोगोंने पवित्रकीर्ति भगवान् श्रीकृष्णके प्रति
वही सर्वोत्तम प्रेमभक्ति प्राप्त की है और उसीका आदर्श
स्वाप्ति किया है, जो बड़े-बड़े ऋषि-मुनियोंके लिये भी
अत्यन्त दुर्लभ है ॥ २५ ॥ सचमुच यह कितने
सौभाग्यकी बात है कि तुमने अपने पुत्र, पति, पेर, पेर,
खजान और घरोंको छोड़कर पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्ण-
को, जो सबके परम पति हैं, पतिके रूपमें वरण किया
है ॥ २६ ॥ श्लाभाभ्यवती गोपियो ! भगवान् श्रीकृष्ण-
के विद्योत्प्रेषे तुमने उन इन्द्रियातीत परमात्माके प्रति वह
श्रद्धा प्राप्त कर लिया है, जो सभी वस्तुओंके रूपमें
उनका दर्शन कराता है । तुमलोगोंका वह भाव मेरे
सामने भी प्रकट हुआ, यह मेरे ऊपर तुम देवियोंकी
बड़ी ही दया है ॥ २७ ॥ मैं अपने सामीप्यका गुप्त काम
करनेवाला दूत हूँ । तुम्हारे प्रियतम भगवान् श्रीकृष्णने
तुमलोगोंको परम सुख देनेके लिये यह प्रिय सन्देश

मेजा है । कल्याणियो ! वही लेकर मैं तुमलोगोंके पास आया हूँ, अब उसे सुनो ॥ २८ ॥

भगवान् श्रीकृष्णने कहा है—मैं सबका उपादान कारण होनेसे सबका आत्मा हूँ, सबमें अनुत्पत्त हूँ; इसलिये मुझसे कभी भी तुम्हारा वियोग नहीं हो सकता । जैसे संसारके सभी भौतिक पदार्थोंमें आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी—ये पाँचों भूत व्याप्त हैं, वृहत्सि सब वस्तुएँ जनी हैं और यही उन वस्तुओंके रूपमें हैं ? वैसे ही मैं मन, प्राण, पञ्चभूत, इन्द्रिय और उनके विषयोंका आश्रय हूँ । वे मुझमें हैं, मैं उनमें हूँ और सब पूछो तो मैं ही उनके रूपमें प्रकट हो रहा हूँ ॥ २९ ॥ मैं ही अपनी मायाके द्वारा भूत, इन्द्रिय और उनके विषयोंके रूपमें होकर उनका आश्रय बन जाता हूँ तथा स्वयं निमित्त भी बनकर अपने-आपको ही रचता हूँ, पाछता हूँ और समेट लेता हूँ ॥ ३० ॥ आत्मा यथा और मायाके कार्योंसे पृथक् है । वह विशुद्ध ज्ञानस्वरूप, जब प्रकृति, अनेक जीव तथा अपने ही अवान्तर भेदोंसे रहित सर्वथा शुद्ध है । कोई भी गुण उसका स्पर्श नहीं कर पाते । मायाकी तीन वृत्तियाँ हैं—सृष्टि, स्वप्न और जाग्रत । इनके द्वारा वही अखण्ड, अनन्त बोधस्वरूप आत्मा कभी प्राज्ञ, तो कभी तैजस और कभी विश्वरूपसे प्रतीत होता है ॥ ३१ ॥ मनुष्यको चाहिये कि वह समझे कि स्वप्नमें दीखनेवाले पदार्थोंके समान ही जाग्रत अवस्थामें इन्द्रियोंके विषय भी प्रतीत हो रहे हैं, वे मिथ्या हैं । इसीलिये उन विषयोंका चिन्तन करनेवाले मन और इन्द्रियोंको रोक ले और मानो सोकर उठा हो, इस प्रकार जगत्के स्वात्मिक विषयोंको त्यागकर मेरा साक्षात्कार करे ॥ ३२ ॥ जिस प्रकार सभी नदियाँ धूम-फिरकर समुद्रमें ही पहुँचती हैं, उसी प्रकार मनकी पुरुषोंका वेदाभ्यास, योग-साधन, आत्मानात्मविवेक, त्याग, तपस्या, इन्द्रियसंयम और सत्य आदि समस्त कर्म, मेरी प्राप्तिमें ही समाप्त होते हैं । सबका सच्चा फल है मेरा साक्षात्कार; क्योंकि वे सब मनको निरुद्ध करके मेरे पास पहुँचाते हैं ॥ ३३ ॥

गोपियो ! इसमें सन्देह नहीं कि मैं तुम्हारे नयनोंका ध्रुवतारा हूँ । तुम्हारा जीवन-सर्वस्व हूँ । किन्तु मैं जो तुमसे इतना दूर रहता हूँ, उसका कारण है । वह

यही कि तुम निरन्तर मेरा ध्यान कर सको, शरीरसे दूर रहनेपर भी मनसे तुम मेरी सन्निधिका अनुभव करो, अपना मन मेरे पास रखो ॥ ३४ ॥ क्योंकि ब्रह्म और अन्यान्य प्रेमियोंका चित्त अपने परदेशी प्रियतममें जितना निश्चल भावसे लगा रहता है, उतना ओंखोंके सामने, पास रहनेवाले प्रियतममें नहीं लगता ॥ ३५ ॥ अशेष वृत्तियोंसे रहित सम्पूर्ण मन मुझमें लगाकर जब तुमलोग मेरा अनुसरण करोगी, तब शीघ्र ही सदाके लिये मुझे प्राप्त हो जाओगी ॥ ३६ ॥ कल्याणियो ! जिस समय मैंने बृन्दावनमें शारदीय पूर्णिमाकी रात्रिमें रास-क्रीडा की थी उस समय जो गोपियों खजनोंके रोक लेनेसे क्रोधमें ही रह गयीं—मेरे साथ रास-निवारणमें सम्मिलित न हो सकीं, वे मेरी लीलाओंका स्मरण करने-से ही मुझे प्राप्त हो गयी थीं । (तुम्हें भी मैं मिहिंगा अवश्य, निराश होनेकी कोई बात नहीं है) ॥ ३७ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित ! अपने प्रियतम श्रीकृष्णका यह सँदेश सुनकर गोपियोंकी बड़ा आनन्द हुआ । उनके सन्देशसे उन्हें श्रीकृष्णके स्वरूप और एक-एक लीलाकी याद आने लगी । प्रेमसे भरकर उन्होंने उद्वबजीसे कहा ॥ ३८ ॥

गोपियोंने कहा—उद्वबजी ! यह बड़े सौभाग्यकी और आनन्दकी बात है कि यहूवर्धियोंको सतनेबाळ पापी कंस अपने अनुयायियोंके साथ मारा गया । यह भी कम आनन्दकी बात नहीं है कि श्रीकृष्णके बन्धु-भान्धव और गुरुजनोंके सारे मनेरष पूर्ण हो गये तथा अब हमारे प्यारे श्यामसुन्दर उनके साथ सङ्ग्राह निवास कर रहे हैं ॥ ३९ ॥ किन्तु उद्वबजी ! एक बात आप हमें बतलाइये । जिस प्रकार हम अपनी प्रेममयी लजीली मुसकान और उन्मुक्त चितवनसे उनकी पूजा करती थीं और वे भी हमसे प्यार करते थे, उसी प्रकार मथुराकी ब्रह्मसे भी वे प्रेम करते हैं या नहीं ? ॥ ४० ॥ तबतक दूसरी गोपी जोब उठी—‘अरी सखी ! हमारे प्यारे श्यामसुन्दर तो प्रेमकी मोहिनी कण्ठके विशेषज्ञ हैं । सभी श्रेष्ठ ब्रह्मों उनसे प्यार करती हैं, फिर मख जब नगरकी ब्रह्मों उनसे मीठी-मीठी बातें करेंगी और हाव-भावसे उनकी

और देखेंगी तब वे उपर क्यों न रीझेंगे ? ॥ ४१ ॥
 दूसरी गोपियों बोली—‘साधो ! आप यह तो बतलाइये कि जब कभी नागरीनारियोंकी मण्डलीमें कोई बात चली है और हमारे प्यारे खलन्दरूपसे, बिना किसी सहोचके जब प्रेमकी बातें करने लगते हैं, तब क्या कभी प्रसंगवश हम गँवार ग्वाड़ियोंकी भी याद करते हैं ? ॥ ४२ ॥ कुछ गोपियोंने कहा—‘उद्धवजी ! क्या कभी श्रीकृष्ण उन रात्रियोंका स्मरण करते हैं, जब कुमुदिनी तथा कुन्दके पुष्प खिले हुए थे, चारों ओर चाँदनी छिटक रही थी और चन्द्रावन अत्यन्त रमणीय हो रहा था । उन रात्रियोंमें ही उन्होंने रास-मण्डल बनाकर हमलोगोंके साथ नृत्य किया था । कितनी सुन्दर थी वह रास-लीला ! उस समय हमलोगोंके पैरोंके नूपुर रुमछन-रुमछन बज रहे थे । हम सब सखियों उन्हींकी सुन्दर-सुन्दर लीलाओंका गान कर रही थीं और वे हमारे साथ नाना प्रकारके विहार कर रहे थे ॥ ४३ ॥ कुछ दूसरी गोपियों बोले ली—‘उद्धवजी ! हम सब तो उन्हींके निरहकी आगते जल रही हैं । देवराज इन्द्र जैसे जल बरसाकर वनको हरा-भरा कर देते हैं, उसी प्रकार क्या कभी श्रीकृष्ण भी अपने कर-स्पर्श आदिसे हमें जीवन-दान देनेके लिये यहाँ आवेंगे ? ॥ ४४ ॥ तबतक एक गोपीने कहा—‘अरी सखी ! अब तो उन्होंने शत्रुओंको मारकर राज्य पा लिया है; जिसे देखो, वही उनका सुहृद् बना फिरता है । अब वे बड़े-बड़े नरपतियोंकी कुमारियोंसे विवाह करेंगे, उनके साथ आनन्दपूर्वक रहेंगे; यहाँ हम गँवारियोंके पास क्यों आवेंगे ? ॥ ४५ ॥ दूसरी गोपीने कहा—‘नहीं सखी । महात्मा श्रीकृष्ण तो स्वयं लक्ष्मीपति हैं । उनकी सारी कामनाएँ पूर्ण ही हैं, वे कृतकृत्य हैं । हम वनवासिनी ग्वाड़ियों अथवा दूसरी राजकुमारियोंसे उनका कोई प्रयोजन नहीं है । हम-लोगोंके बिना उनका कौन-सा काम अटक रहा है ॥ ४६ ॥ देखो, वेष्टा होनेपर भी पित्रुछाने क्या ही ठीक कहा है—‘संसारमें किसीकी आशा न रखना ही सबसे बड़ा सुख है ।’ यह बात हम जानती हैं, फिर भी हम भगवान् श्रीकृष्णके छोटनेकी आशा छोड़नेमें असमर्थ हैं । उनके श्रुयामनकी आशा ही तो

हमारा जीवन है ॥ ४७ ॥ हमारे प्यारे श्यामसुन्दरने, जिनकी कीर्तिका गान बड़े-बड़े महात्मा करते रहते हैं, हमसे एकान्तमें जो मीठी-मीठी प्रेमकी बातें की हैं उन्हें छोड़नेका, मुल्लनेका उत्साह भी हम कैसे कर सकती हैं ? देखो तो, उनकी इच्छा न होनेपर भी स्वयं लक्ष्मीजी उनके चरणोंसे छिपटी रहती हैं, एक क्षणके लिये भी उनका अङ्ग-सङ्ग छोड़कर कहीं नहीं जाती ॥ ४८ ॥ उद्धवजी ! यह वही नदी है, जिसमें वे विहार करते थे । यह वही पर्वत है, जिसके शिखरपर चढ़कर वे वाँसुरी बजाते थे । ये वे ही वन हैं, जिनमें वे रात्रिके समय रासलीला करते थे, और ये वे ही गौएँ हैं, जिनको चरानेके लिये वे सुवह-श्याम हमलोगोंको देखते हुए जाते-आते थे । और यह ठीक वैसी ही वंशीकी तान हमारे कानोंमें गूँजती रहती है, जैसी वे अपने अग्रोंके सयोगसे छेड़ा करते थे । कलरामजीके साथ श्रीकृष्णने इन समीका सेवन किया है ॥ ४९ ॥ यहाँका एक-एक प्रदेश, एक-एक घुलिकण उनके परम सुन्दर चरणकमलोंसे विहित है । इन्हें जब-जब हम देखती हैं, सुनती हैं—दिनभर यही तो करती रहती हैं—तब-तब वे हमारे प्यारे श्यामसुन्दर नन्दनन्दनको हमारे नेत्रोंके सामने लाकर रख देते हैं । उद्धवजी ! हम किसी भी प्रकार—मरकर भी उन्हें भूल नहीं सकतीं ॥ ५० ॥ उनकी वह हंसकी-सी सुन्दर चाल, उन्मुक्त हास्य, निवासपूर्ण चितवन और मधुमयी वाणी ! ओह ! उन सबने हमारा विष चुरा लिया है, हमारा मन हमारे धर्ममें नहीं है; अब हम उन्हें भूलें तो किस्तरह ! ॥ ५१ ॥ हमारे प्यारे श्रीकृष्ण ! तुम्हीं हमारे जीवनके स्वामी हो । सर्वस्व हो । प्यारे ! तुम लक्ष्मीनाथ हो तो क्या हुआ ? हमारे लिये तो ब्रजनाथ ही हो । हम ब्रजगोपियोंके एकमात्र तुम्हीं सच्चे स्वामी हो । श्यामसुन्दर ! तुमने बार-बार हमारी व्यथा मिटायी है, हमारे सङ्कट काटे हैं । गोविन्द ! तुम गौओंसे बहुत प्रेम करते हो । क्या हम गौएँ नहीं हैं ? तुम्हारा यह सारा गोकुल—जिसमें ग्वाड़वाल, सिता-माता, गौएँ और हम गोपियों सब कोई हैं—दुःखके अपार सागरमें डूब रहा है । तुम इसे बचाओ, आओ, हमारी रक्षा करो ॥ ५२ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—प्रिय परीक्षित ! श्यामश्रीकृष्णका प्रिय सन्देश सुनकर गोपियोंके निरहकी

व्या शास्त्र हो गयी थी । वे इन्द्रियातीत भगवान् श्रीकृष्णको अपने आत्माके रूपमें सर्वत्र स्थित समझ चुकी थी । अब वे बड़े प्रेम और आदरसे उद्धवजीका सत्कार करने लगी ॥ ५३ ॥ उद्धवजी गोपियोंकी विरह-व्याधा मिटानेके लिये कई महीनोतक वहाँ रहे । वे भगवान् श्रीकृष्णकी अनेकों लीलाएँ और बातें सुना-सुनाकर ब्रजवासियोंको आनन्दित करते रहते ॥ ५४ ॥ मन्दबाबाके ब्रजमें जितने दिनोंतक उद्धवजी रहे, उतने दिनोंतक भगवान् श्रीकृष्णकी लीलाकी चर्चा होते रहनेके कारण ब्रजवासियोंको ऐसा जान पड़ा, मानो अभी एक ही क्षण हुआ हो ॥ ५५ ॥ भगवान् के परमप्रेमी भक्त उद्धवजी कभी नदीतटपर जाते, कभी बनोंमें विहरते और कभी गिरिराजकी बाड़ियोंमें बिचरते । कभी रंग-बिरंगे फूलोंसे लदे हुए वृक्षोंमें ही रम जाते और यहाँ भगवान् श्रीकृष्णने कौन-सी लीला की है, यह पृष्ठ-पृष्ठकर ब्रजवासियोंको भगवान् श्रीकृष्ण और उनकी लीलाके स्मरणमें तन्मग्न कर देते ॥ ५६ ॥

उद्धवजीने ब्रजमें रहकर गोपियोंकी इस प्रकारकी प्रेम-विकल्पा तथा और भी बहुत-सी प्रेम-वेष्टाएँ देखीं । उनकी इस प्रकार श्रीकृष्णमें तन्मयता देखकर वे प्रेम और आनन्दसे भर गये । अब वे गोपियोंको नमस्कार करते हुए इस प्रकार गान करने लगे—॥ ५७ ॥ 'इस पृथ्वीपर केवल इन गोपियोंका ही शरीर धारण करना श्रेष्ठ एवं सफल है; क्योंकि ये सर्वात्मा भगवान् श्रीकृष्णके परम प्रेममय दिव्य महामावर्गमें स्थित हो गयी हैं । प्रेमकी यह लैची-से-लैची स्थिति संसारके भयसे भीत मुमुक्षुजनोंके लिये ही नहीं, अपितु बड़े-बड़े मुनियों—मुक्त पुरुषों तथा हम मनुजनोंके लिये भी अभी वाञ्छनीय ही है । हमें इसकी प्राप्ति नहीं हो सकी । सत्य है, जिन्हें भगवान् श्रीकृष्णकी लीला-कथाके रसका चसका लग गया है, उन्हें कुलीनताकी, द्विजातिसमुचित संस्कारकी और बड़े-बड़े यज्ञ-यामोंमें दीक्षित होनेकी क्या आवश्यकता है ! अथवा यदि भगवान् की कथाका रस नहीं मिल, उसमें रुचि नहीं हुई, तो अनेक महाकर्मोंतक बार-बार ब्रह्मा होनेसे ही क्या लाभ ? ॥ ५८ ॥ कहाँ वे वनचरी आचार, ज्ञान

और जातिसे हीन गौवर्गी गंधार ग्वालिन और कहाँ सचिदानन्दजन भगवान् श्रीकृष्णमें यह अनन्य परम प्रेम ! अबो, धन्य है ! धन्य है ! इससे सिद्ध होता है कि यदि कोई भगवान् के स्वरूप और रहस्यको न जानकर भी उनसे प्रेम करे, उनका भजन करे, तो वे स्वयं अपनी शक्तिसे, अपनी कृपासे उसका परम कल्याण कर देते हैं; ठीक वैसे ही, जैसे कोई अनजानमें भी अमृत पी ले तो वह अपनी वस्तु-शक्तिसे ही पीनेवालेको अमर बना देता है ॥ ५९ ॥ भगवान् श्रीकृष्णने रासोत्सवके समय इन ब्रजजानाओंके गलेमें बाँह डाल-डालकर इनके मनोरथ पूर्ण किये । इन्हें भगवान् ने जिस कृपा-प्रसादका वितरण किया, इन्हें जैसा प्रेमदान किया; वैसा भगवान् की परमप्रेमवती मित्यसङ्गिनी वधःसखर विराजमान लक्ष्मीजीको भी नहीं प्राप्त हुआ । कमलकी-सी सुगन्ध और कान्तिसे युक्त देवाङ्गनाओंको भी नहीं मिला । फिर दूसरी स्त्रियोंकी तो बात ही क्या करें ? ॥ ६० ॥ मेरे लिये तो सबसे अच्छी बात यही होगी कि मैं इस बुन्दावन-धाममें कोई शादी, उता अथवा ओषधि—जब-नूटी ही बन जाऊँ । अहा ! यदि मैं ऐसा बन जाऊँगा, तो मुझे इन ब्रजजानाओंकी चरणधूँलि निरन्तर सेवन करनेके लिये मिलती रहेगी । इनकी चरण-रजमें आन करने मैं धन्य हो जाऊँगा । धन्य हूँ वे गोपियों । देखो तो सही, जिनको छोड़ना अत्यन्त कठिन है, उन सखन-सम्बन्धियों तथा लोक-वेदकी आर्य-मर्यादाका परित्याग करते इन्होंने भगवान् की पदवी, उनके साथ तन्मयता, उनका परम प्रेम प्राप्त कर लिया है—औरोंकी तो बात ही क्या—भगवद्वाणी, उनकी निःश्वासरूप समस्त श्रुतियों, उपनिषदों भी अवतक भगवान् के परम प्रेममय स्वरूपको छूँसती ही रहती हैं, प्राप्त नहीं कर पाती ॥ ६१ ॥ स्वयं भगवती लक्ष्मीजी जिनकी पूजा करती रहती हैं; ब्रह्मा, शङ्कर आदि परम समर्प देवता, पूर्णकाम आत्माराम और बड़े-बड़े योगेश्वर अपने हृदयमें जिनका चिन्तन करते रहते हैं, भगवान् श्रीकृष्णके उन्हीं चरणारविन्दों-को रास-लैलाके समय गोपियोंने अपने वधःसखर रमका और उनका आभिन्नन करके अपने हृदयकी जलन, विरह-व्याधा शास्त्र की ॥ ६२ ॥ मन्दबाबाके ब्रजमें रहने-

वाली गोपाङ्गनाओंकी चरणधूलिकी मैं बारंबार प्रणाम करता हूँ—उसे सिरपर चढ़ाता हूँ । अष्टा । इन गोपियोंने भगवान् श्रीकृष्णकी छीलाकवाके सम्बन्धमें जो कुछ गान किया है, वह तीनों लोकोंको पवित्र कर रहा है और सदा-सर्वदा पवित्र करता रहेगा ॥ ६३ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित । इस प्रकार कई महीनोंतक व्रजमें रहकर उद्धवजीने अब मथुरा जानेके लिये गोपियोंसे, नन्दबाबा और यशोदा मैयासे आज्ञा प्राप्त की । ग्वाछबालोंसे बिदा लेकर वहाँसे यात्रा करनेके लिये वे रथपर सवार हुए ॥ ६४ ॥ जब उनका रथ व्रजसे बाहर निकला, तब नन्दबाबा आदि गोपगण बहुत-सी भेंटकी सामग्री लेकर उनके पास आये और ओंखोंमें ऑँसु भरकर उन्होंने बड़े प्रेमसे कहा—॥ ६५ ॥ ‘उद्धवजी । अब हम यही चाहते हैं कि हमारे मनकी एक-एक वृत्ति, एक-एक सङ्कल्प श्रीकृष्णके चरणकमलोंके ही आश्रित रहे । उन्हींकी सेवाके लिये उठे और उन्हींमें लगी भी रहे । हमारी वाणी नित्य-निरन्तर उन्हींकी

नामोंका उच्चारण करती रहे और शरीर उन्हींको प्रणाम करने, उन्हींके आज्ञा-पाठन और सेवामें लगा रहे ॥ ६६ ॥ उद्धवजी । हम सच कहते हैं, हमें मोक्षकी इच्छा बिल्कुल नहीं है । हम भगवान्की इच्छासे अपने कर्मके अनुसार चाहे जिस योनिमें जन्म लें—वहाँ भुम आचरण करें, दान करें और उसका फल यही पावें कि हमारे अपने ईश्वर श्रीकृष्णमें हमारी प्रीति उत्तरोत्तर बढ़ती रहे ॥ ६७ ॥ प्रिय परीक्षित । नन्दबाबा आदि गोपोंने इस प्रकार श्रीकृष्ण-भक्तिके द्वारा उद्धवजीका सम्मान किया । अब वे भगवान् श्रीकृष्णके द्वारा सुरक्षित मथुरापुरीमें लौट आये ॥ ६८ ॥ वहाँ पहुँचकर उन्होंने भगवान् श्रीकृष्णको प्रणाम किया और उन्हें व्रजवासियोंकी प्रेममयी भक्तिका उप्रेक्ष, जैसा उन्होंने देखा था, कह सुनाया । इसके बाद नन्दबाबाने भेंटकी जो-जो सामग्री दी थी वह उनको, बलुदेवजी, बळारामजी और राजा उपसेनको दे दी ॥ ६९ ॥

अड़तालीसवाँ अध्याय

भगवान्का कुन्जा और अङ्कुरजीके घर जाना

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित । तदनन्तर सबके आत्मा तथा सब कुछ देखनेवाले भगवान् श्रीकृष्ण अपनेसे मिलनकी आकाङ्क्षा रखकर व्याकुल हुई कुन्जाका प्रिय करने—उसे सुख देनेकी इच्छासे उसके घर गये ॥ १ ॥ कुन्जाका घर बहुमूल्य स्रग्भण्डोंसे सम्पन्न था । उसमें शृङ्गार-रसका उदीपन करनेवाली बहुत-सी साधन-सामग्री भी भरी हुई थी । मोतीकी झालरें और स्थान-स्थानपर झंडियाँ भी लगी हुई थीं । चँदोवे तने हुए थे । सेजें लकड़ी हुई थीं और बैठनेके लिये बहुत सुन्दर-सुन्दर आसन लगाये हुए थे । घूपकी सुगन्ध फैल रही थी । दीपककी शिखाएँ जगमग रही थीं । स्थान-स्थानपर फलोंके हार और चन्दन रखे हुए थे ॥ २ ॥ भगवान्को अपने घर आते देख कुन्जा तुरंत हृदयवाक्य अपने आसनसे उठ खड़ी हुई और स्त्रियोंके साथ आगे बढ़कर उसने विधिपूर्वक भगवान्का

स्वागत-सत्कार किया । फिर श्रेष्ठ आसन आदि देकर विविध उपचारोंसे उनकी विधिपूर्वक पूजा की ॥ ३ ॥ कुन्जाने भगवान्के परमभक्त उद्धवजीकी भी समुचित रीतिसे पूजा की; परन्तु वे उसके सम्मानके लिये उसका दिया हुआ आसन छूकर धरतीपर ही बैठ गये । (अपने स्वामीके सामने उन्होंने आसनपर बैठना उचित न समझा ।) भगवान् श्रीकृष्ण सच्चिदानन्दस्वरूप होनेपर भी लोकप्रचारका अनुकरण करते हुए तुरंत उसकी बहुमूल्य सेजपर जा बैठे ॥ ४ ॥ तब कुन्जा आनन्द, अङ्गराग, वक्त्र, आभूषण, हार, मण्ड (झ्र आदि), ताम्बूल और सुधासक्त आदिले अपनेको खूब सजाकर छीछमयी लजीली मुसकान तथा हाव-भावके साथ भगवान्की ओर देखती हुई उनके पास आयी ॥ ५ ॥ कुन्जा नवीन मिलनके सङ्कोचसे कुछ शिष्टाक रही थी । तब श्यामसुन्दर श्रीकृष्णने उसे अपने पास बुला लिया

और उसकी कङ्कणसे सुशोभित कलाई पकड़कर अपने पास बैठा लिया और उसके साथ क्रीडा करने लगे । परीक्षित ! कुम्भजाने इस जन्ममें केवल भगवान्‌को अङ्गराग अर्पित किया था, उसी एक शुभकर्मके फलस्वरूप उसे ऐसा अनुपम अवसर मिला ॥ ६ ॥ कुम्भजा भगवान् श्रीकृष्णके चरणोंको अपने काम-संतप्त हृदय, वक्षःस्थल और नेत्रोंपर रखकर उनकी दिव्य सुगन्ध लेने लगी और इस प्रकार उसने अपने हृदयकी सारी आवि-र्याधि शान्त कर ली । वक्षःस्थलसे सटे हुए आनन्द-मूर्ति प्रियतम श्यामसुन्दरका अपनी दोनों मुजाबोंसे गाढ़ आच्छिन्न करके कुम्भजाने दीर्घकालसे बड़े हुए विरह-तापको शान्त किया ॥ ७ ॥ परीक्षित ! कुम्भजाने केवल अङ्गराग समर्पित किया था । उतनेसे ही उसे उन सर्वशक्तिमान् भगवान्‌की प्राप्ति हुई, जो कैवल्य-मोक्षके अभीष्ट हैं और जिनकी प्राप्ति अत्यन्त कठिन है । परन्तु उस दुर्भगाने उन्हें प्राप्त करके भी ब्रजगोपियोंकी नीति सेवा न मॉगकर यही मॉगा—॥ ८ ॥ 'प्रियतम ! आप कुछ दिन यहीं रहकर मेरे साथ क्रीडा कीजिये । क्योंकि हे कमलनयन ! मुझसे आपका साथ नहीं छोड़ा जाता' ॥ ९ ॥ परीक्षित ! भगवान् श्रीकृष्ण सबका स्नान रखनेवाले और सर्वेश्वर हैं । उन्होंने अभीष्ट नर देकर उसकी पूजा स्वीकार की और फिर अपने प्यारे भक्त उद्धवजीके साथ अपने सर्वसम्मानित घरपर लौट आये ॥ १० ॥ परीक्षित ! भगवान् मत्स्य आदि समस्त ईश्वरोंके भी ईश्वर हैं । उनको प्रसन्न कर लेना भी जीवके लिये बहुत ही कठिन है । जो कोई उन्हें प्रसन्न करके उनसे विषय-सुख मॉगता है, वह निश्चय ही दुर्बुद्धि है; क्योंकि वास्तवमें विषय-सुख अत्यन्त दुष्क—नहींके बराबर है ॥ ११ ॥

तदनन्तर एक दिन सर्वशक्तिमान् भगवान् श्रीकृष्ण बलरामजी और उद्धवजीके साथ अङ्गूरीकी अभिलाषा पूर्ण करने और उनसे कुछ काम लेनेके लिये उनके घर गये ॥ १२ ॥ अङ्गूरीने दूरसे ही देख लिया कि हमारे परम बन्धु मत्स्यलोकशिरोमणि भगवान् श्रीकृष्ण और बलरामजी आदि पधार रहे हैं । वे तुरंत उठकर आगे गये तथा आनन्दसे भरकर उनका अभिनन्दन और आच्छिन्न किया ॥ १३ ॥ अङ्गूरीने भगवान्

श्रीकृष्ण और बलरामजीके नमस्कार किया तथा उद्धवजीके साथ उन दोनों माइयोंने भी उन्हें नमस्कार किया । जब सब लोग आरामसे आसनोंपर बैठ गये, तब अङ्गूरी उन जेथोंकी विविध पूजा करने लगे ॥ १४ ॥ परीक्षित ! उन्होंने पहले भगवान्‌के चरण धोकर चरणोदक सिरपर चारण म्रित्य और फिर अनेकों प्रकारकी पूजा-सामग्री, दिव्य वस्त्र, गन्ध, माला और श्रेष्ठ आभूषणोंसे उनका पूजन किया, सिर झुकाकर उन्हें प्रणाम किया और उनके चरणोंको अपनी गोदमें लेकर दबाने लगे । उसी समय उन्होंने मिनयावनत होकर भगवान् श्रीकृष्ण और बलरामजीसे कहा—॥ १५-१६ ॥ 'भगवान् ! यह बड़े ही आनन्द और सौभाग्यकी बात है कि पापी कस अपने अनुयायियोंके साथ मारा गया । उसे मारकर आप दोनोंने यदुवंशको बहुत बड़े सङ्कटसे बचा लिया है तथा उन्नत और समृद्ध किया है ॥ १७ ॥ आप दोनों जगत्‌के कारण और जगत्‌रूप, आदिपुरुष हैं । आपके अतिरिक्त और कोई वस्तु नहीं है, न कारण और न तो कार्य ॥ १८ ॥ परमात्मन् ! आपने ही अपनी शक्तिसे इसकी रचना की है और आप ही अपनी काळ, माया आदि शक्तियोंसे इसमें प्रविष्ट होकर बितनी भी वस्तुएँ देखी और सुनी जाती हैं, उनके रूपमें प्रतीत हो रहे हैं ॥ १९ ॥ जैसे पृथ्वी आदि कारणतत्त्वोंसे ही उनके कार्य स्वावर-जन्म शरीर बनते हैं, वे उनमें अनुप्रविष्ट-से होकर अनेक रूपोंमें प्रतीत होते हैं, परन्तु वास्तवमें वे कारणरूप ही हैं । इसी प्रकार हैं तो केवल आप ही, परन्तु अपने कार्यरूप जगत्‌में स्वेच्छासे अनेक रूपोंमें प्रतीत होते हैं । यह भी आपकी एक लीला ही है ॥ २० ॥ प्रभो ! आप रत्नोगुण, सत्त्वगुण और तमोगुणरूप अपनी शक्तियोंसे क्रमशः जगत्‌की रचना, पाठन और संहार करते हैं; किन्तु आप उन गुणोंसे अथवा उनके द्वारा होनेवाले कर्मोंसे बन्धनमें नहीं पड़ते, क्योंकि आप शुद्ध ज्ञान-स्वरूप हैं । ऐसी स्थितिमें आपके लिये बन्धनका कारण ही क्या हो सकता है ? ॥ २१ ॥ प्रभो ! स्वयं आत्म-वस्तुमें स्थूलदेह, सूक्ष्मदेह आदि उपार्थियों न होनेके कारण न तो उसमें जन्म-मृत्यु है और न किसी प्रकारका भेदभाव । यही कारण है कि न आपमें बन्धन है और

न मोक्ष । आपमें अपने-अपने अधिप्रायके अनुसार बन्धन या मोक्षकी जो कुछ कल्पना होती है, उसका कारण केवल हमारा अविवेक ही है ॥ २२ ॥ आपने जगत्के कल्याणके लिये यह सनातन वेदमार्ग प्रकट किया है । जब-जब इसे पाखण्ड-पथसे चलनेवाले दुष्टों-के द्वारा क्षति पहुँचती है, तब-तब आप बुद्ध सत्त्वमय शरीर ग्रहण करते हैं ॥ २३ ॥ प्रभो ! वही आप इस समय अपने अंश श्रीवल्लभजीके साथ पृथ्वीका मार दूर करनेके लिये यहाँ मसुदेवजीके घर अवतीर्ण हुए हैं । आप असुरोंके अंशसे उत्पन्न नाममात्रके शासकोंकी सौ-सौ अक्षौहिणी सेनाका संहार करेंगे और यदुवंशके यशका विस्तार करेंगे ॥ २४ ॥ इन्द्रियातीत परमात्मन् ! सारे देवता, पितर, भूतगण और राजा आपकी मूर्ति हैं । आपके चरणोंकी धोवन गङ्गाजी तीनों लोकोंको पवित्र करती हैं । आप सारे जगत्के एकमात्र पिता और शिक्षक हैं । वही आज आप हमारे घर पचारे । इसमें सन्देह नहीं कि आज हमारे घर धन्य-धन्य हो गये । उनके सौभाग्यकी सीमा न रही ॥ २५ ॥ प्रभो ! आप प्रेमी भक्तोंके परम प्रियतम, सत्यवक्ता, अकारण हिंस्र और कृतज्ञ हैं—जरा-सी सेवाको भी मान लेते हैं । भला, ऐसा कौन बुद्धिमान् पुरुष है जो आपको छोड़कर किसी दूसरेकी शरणमें जायगा ? आप अपना भजन करनेवाले प्रेमी भक्तकी समस्या अमिलनाएँ पूर्ण कर देते हैं । यहाँतक कि जिसकी कमी क्षति और हृदि नहीं होती—जो एकरस है, अपने उस आत्माका भी आप दान कर देते हैं ॥ २६ ॥ भक्तोंके कष्ट मिटानेवाले और जन्म-मृत्युके बन्धनसे छुड़ानेवाले प्रभो ! बड़े-बड़े योगिराज और देवराज भी आपके स्वरूपको नहीं जान सकते । परन्तु हमें आपका साक्षात् दर्शन हो गया, यह कितने सौभाग्यकी बात है । प्रभो ! हम बी, पुत्र, धन, सज्जन, गेह और देह आदिके मोहकी रस्तीसे बँधे हुए हैं । अवश्य ही यह आपकी मायाका जाल है । आप कृपा करके इस गाँठे बन्धनको शीघ्र काट दीजिये ॥ २७ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित । इस प्रकार

भक्त अक्षरजीने भगवान् श्रीकृष्णकी पूजा और स्तुति की । इसके बाद भगवान् श्रीकृष्णने मुसकराकर अपनी मसुर बाणीसे उन्हें मानों मोहित करते हुए कहा ॥ २८ ॥

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—प्रातः । आप हमारे गुरु—हितोपदेशक और चाचा हैं । हमारे वंशमें अत्यन्त प्रशंसनीय तथा हमारे सदाके हितैषी हैं । हम तो आपके बालक हैं और सदा ही आपकी रक्षा, पालन और कृपाके पात्र हैं ॥ २९ ॥ अपना परम कल्याण चाहनेवाले मनुष्यों-को आप-जैसे परम पूजनीय और महामाग्यवान् संतोंकी सर्वदा सेवा करनी चाहिये । आप-जैसे संत देवताओंसे भी बढ़कर हैं ; क्योंकि देवताओंमें तो स्वार्थ रहता है, परन्तु संतोंमें नहीं ॥ ३० ॥ केवल जलके तीर्थ (नदी, सरोवर आदि) ही तीर्थ नहीं हैं, केवल मृत्तिका और शिला आदिकी बनी हुई मूर्तियाँ ही देवता नहीं हैं । चाचानी । उनकी तो बहुत दिनोत्तक अक्षय्य सेवा की जाय, तब वे पवित्र करते हैं । परन्तु संतपुरुष तो अपने दर्शनमात्रसे पवित्र कर देते हैं ॥ ३१ ॥ चाचाजी । आप हमारे हितैषी सुहृदोंमें सर्वश्रेष्ठ हैं । इसलिये आप पाण्डवोंका हित करनेके लिये तथा उनका कुशल-मङ्गल जाननेके लिये हस्तिनापुर जाइये ॥ ३२ ॥ हमने ऐसा सुना है कि राजा पाण्डुके मर जानेपर अपनी माता कुन्तीके साथ युधिष्ठिर आदि पाण्डव बड़े दुःखमें पड़ गये थे । अब राजा धृतराष्ट्र उन्हें अपनी राजधानी हस्तिनापुरमें ले आये है और वे वहाँ रहते हैं ॥ ३३ ॥ आप जानते ही हैं कि राजा धृतराष्ट्र एक तो अंधे हैं और दूसरे उनमें मनोबलकी भी कमी है । उनका पुत्र दुर्योधन बहुत दुष्ट है और उसके अधीन होनेके कारण वे पाण्डवोंके साथ अपने पुत्रो-जैसा—समान व्यवहार नहीं कर पाते ॥ ३४ ॥ इसलिये आप वहाँ जाइये और मात्स कीजिये कि उनकी स्थिति अच्छी है या बुरी । आपके द्वारा उनका समाचार जानकर मैं ऐसा उपाय करूँगा, जिससे उन सुहृदोंको सुख मिले ॥ ३५ ॥ सर्वशक्तिमान् भगवान् श्रीकृष्ण अक्षरजीको इस प्रकार आदेश देकर नल्लभजी और उल्लवजीके साथ वहाँसे अपने घर लौट आये ॥ ३६ ॥

उन्चासवाँ अध्याय

अमरजीका हस्तिनापुर जाना

भीष्मकुदेवजी कहते हैं—परीक्षित ! भगवान्‌के आह्वातुसार अमरजी हस्तिनापुर गये । वहाँकी एक-एक वस्तुपर पुरुवंशी नरपतियोंकी अमरकीर्तिकी छाप छा रही है । वे वहाँ पहले धृतराष्ट्र, भीष्म, विदुर, कुन्ती, बाहीक और उनके पुत्र सोमदत्त, द्रोणाचार्य, कृपाचार्य, कर्ण, दुर्योधन, द्रोणपुत्र अश्वत्थामा, युधिष्ठिर आदि पाँचों पाण्डव तथा अर्जुनाय इष्ट-मित्रोंसे मिले ॥ १-२ ॥ जब गान्दिनीनन्दन अमरजी सब इष्ट-मित्रों और सम्बन्धियोंसे महीर्षोति मिल चुके, तब उनसे उन लोगोंने अपने मथुरावासी सजन-सम्बन्धियोंकी कुशल-क्षेम पूछी । उनका उत्तर वेकर अमरजीने भी हस्तिनापुरवासियोंके कुशल-मङ्गलके सम्बन्धमें पूछताप की ॥ ३ ॥ परीक्षित ! अमरजी यह जाननेके लिये कि, धृतराष्ट्र पाण्डवोंके साथ कैसा व्यवहार करते हैं, कुछ महीनोत्तक वहाँ रहे । सच पूछे तो, धृतराष्ट्रमें अपने दृष्ट पुत्रोंकी इच्छाके विपरीत कुछ भी करनेका साहस न था । वे शकुनि आदि दुष्टोंकी सलाहके अनुसार ही काम करते थे ॥ ४ ॥ अमरजीको कुन्ती और विदुरने यह बतलाया कि धृतराष्ट्रके लड़के दुर्योधन आदि पाण्डवोंके प्रमान, शलकीशल, बल, शीरता तथा विनय आदि सदगुण देख-देखकर उनसे जलते रहते हैं । जब वे यह देखते हैं कि प्रजा पाण्डवोंसे ही विशेष प्रेम रखती है, तब तो वे और भी चिढ़ जाते हैं और पाण्डवोंका अनिष्ट करनेपर उतारु हो जाते हैं । अवतक दुर्योधन आदि धृतराष्ट्रके पुत्रोंने पाण्डवोंपर कई बार विषदाम आदि बहुत-से अत्याचार किये हैं और आगे भी बहुत कुछ करना चाहते हैं ॥ ५-६ ॥

जब अमरजी कुन्तीके घर आये, तब वह अपने माँके पास जा बैठी । अमरजीको देखकर कुन्तीके मनमें अपने माँकेकी स्मृति जग गयी और नेत्रोंमें आँसू भर आये । उन्होंने कहा—॥ ७ ॥ प्यारे माँ ! क्या कभी मेरे माँ-बाप, माँ-बहिन, भतीजे, कुलवी क्षियों और सखी-सहेलियों मेरी याद करती हैं ? ॥ ८ ॥ मैंने सुना है कि हमारे भतीजे भगवान्‌ श्रीकृष्ण और कमलनयन बलराम वड़े ही मकरसख और शरणागत-रक्षक हैं ।

क्या वे कभी अपने इन फुफेरे माँहोंको भी याद करते हैं ? ॥ ९ ॥ मैं शत्रुओंके बीच विरक्त शोकाकुल हो रही हूँ । मेरी वही दशा है, जैसे कोई हरिनी मेढियोंके बीचमें पड़ गयी हो । मेरे बच्चे बिना बापके हो गये हैं । क्या हमारे श्रीकृष्ण कभी यहाँ आकर मुझको और इन अनाथ बालकोंको सान्त्वना देंगे ? ॥ १० ॥ (श्रीकृष्णको अपने सामने समक्षकर कुन्ती कहने लगी—) ‘सच्चिदानन्दस्वरूप श्रीकृष्ण ! तुम महायोगी हो, विद्यात्मा हो और तुम सारे विश्वके जीवनदाता हो । गोविन्द ! अपने बच्चोंके साथ दुःख-पर-दुःख भोग रही हूँ । तुम्हारी शरणमें आयी हूँ । मेरी रक्षा करो । मेरे बच्चोंको बचाओ ॥ ११ ॥ मेरे श्रीकृष्ण ! यह संसार मृशुमय है और तुम्हारे वरण मोक्ष देनेवाले हैं । मैं देखती हूँ कि जो लोग इस संसार-से दूरे हुए हैं, उनके लिये तुम्हारे वरणकर्मणोंके अतिरिक्त और कोई शरण, और कोई सहारा नहीं है ॥ १२ ॥ श्रीकृष्ण ! तुम माँयाके लेशसे रहित परम शुद्ध हो । तुम स्वयं परब्रह्म परमात्मा हो । समस्त साधनों, योगों और उपायोंके सामी हो तथा स्वयं योग भी हो । श्रीकृष्ण ! मैं तुम्हारी शरणमें आयी हूँ । तुम मेरी रक्षा करो ॥ १३ ॥

भीष्मकुदेवजी कहते हैं—परीक्षित ! तुम्हारी पर-टादी कुन्ती इस प्रकार अपने सगे-सम्बन्धियों और अन्तमें जगदीश्वर भगवान्‌ श्रीकृष्णको स्मरण करके अत्यन्त दुःखित हो गयी और फफक-फफककर रोने लगी ॥ १४ ॥ अमरजी और विदुरजी दोनों ही सुख और दुःखको समान दृष्टिसे देखते थे । दोनों यशस्वी महात्माओंने कुन्तीको उसके पुत्रोंके जन्मदाता धर्म, चायु आदि देवताओंकी याद दिलायी और यह कहकर कि, तुम्हारे पुत्र अवर्मका नाश करनेके लिये ही पैदा हुए हैं, बहुत कुछ समझया-मुझाया और सान्त्वना दी ॥ १५ ॥ अमरजी जब मथुरा जाने लगे, तब राजा धृतराष्ट्रके पास आये । अवतक यह स्पष्ट हो गया था कि राजा अपने पुत्रोंका पक्षपात करते हैं और भतीजोंके साथ अपने पुत्रोंका-सा

वर्ताव नहीं करते । अब अक्रूरजीने कौरवोंकी मरी समामें श्रीकृष्ण और बलरामजी आदिको हितैषितासे भाग्यसन्देश कह सुनाया ॥ १६ ॥

अक्रूरजीने कहा—महाराज धृतराष्ट्रजी ! आप कुर्वंशियोंकी उज्ज्वल कीर्तिको वीर भी बढ़ाइये । आपको यह काम विशेषरूपसे इसलिये भी करना चाहिये कि अपने भाई पाण्डुके परलोक सिंघार जानेपर अब आप राज्यसिंहासनके अधिकारी हुए हैं ॥ १७ ॥ आप धर्मसे पृथ्वीका पालन कीजिये । अपने सक्षत्रवृद्धारसे प्रजाको प्रसन्न रखिये और अपने स्वजनोके साथ समान वर्ताव कीजिये । ऐसा करनेसे ही आपको लोकमें यश और परलोकमें सद्गति प्राप्त होगी ॥ १८ ॥ यदि आप इसके विपरीत आचरण करेंगे तो इस लोकमें आपकी निन्दा होगी और मरनेके बाद आपको नरकमें जाना पड़ेगा । इसलिये अपने पुत्रों और पाण्डवोंके साथ समानताका वर्ताव कीजिये ॥ १९ ॥ आप जानते ही हैं कि इस संसारमें कभी कहीं कोई किसीके साथ सदा नहीं रह सकता । जिससे छुड़े हुए हैं, उनसे एक दिन बिछड़ना पड़ेगा ही । राजन् ! यह बात अपने शरीरके लिये भी सोचों आने साथ है । फिर जी, पुत्र, धन आदि छोड़कर जाना पड़ेगा, इसके विषयमें तो कहना ही क्या है ॥ २० ॥ जीव अकेल ही पैदा होता है और अकेल ही मरकर जाता है । अपनी कानी-धरनीका, पाप-पुण्यका फल भी अकेल ही भुगतता है ॥ २१ ॥ जिन जी-पुत्रोंको हम अपना समझते हैं, वे तो हम तुम्हारे अपने हैं, हमारा भरण-पोषण करना तुम्हारा धर्म है—इस प्रकारकी बातें बनाकर मूर्ख प्राणीके अधर्मसे हकड़े किये हुए धनको छुट लेते हैं, जैसे जलमें रहने-वाले जन्तुओंके सर्वत्र जलको उन्होंने सम्बन्धी जट बाते हैं ॥ २२ ॥ यह मूर्ख जीव जिन्हें अपना समझकर अधर्म करके भी पाछता-पोसता है, वे ही प्राण, धन और पुत्र आदि इस जीवको अस्मत्तुष्ट छोड़कर ही चले जाते हैं ॥ २३ ॥ जो अपने धर्मसे विमुख है—सच पछिये, तो वह अपना लौकिक स्वार्थ भी नहीं जानता । जिनके लिये वह अधर्म करता है, वे तो उसे छोड़ ही देंगे; उसे कभी सन्तोषका अनुभव न होगा और वह

अपने पापोंकी गठरी सिरपर लदकर स्वयं घोर नरकमें जायगा ॥ २४ ॥ इसलिये महाराज ! यह बात समझ लीजिये कि यह दुनिया चार दिनकी चोंदनी है, सपनेका खिलवाड़ है, जादूका तमाशा है और है मनोरंज्य-मात्र । आप अपने प्रयत्नसे, अपनी शक्तिसे चित्तको रोकिये; ममताका पक्षपात न कीजिये । आप समर्थ हैं, समन्ने स्थित हो जाइये और इस संसारकी ओरसे उपराम—शान्त हो जाइये ॥ २५ ॥

राजा धृतराष्ट्रने कहा—दानपते अक्रूरजी ! आप मेरे कल्याणकी, भलेकी बात कह रहे हैं । जैसे मरने-वालेको अमृत मिष्ठ जाय तो वह उससे रूत नहीं हो सकता, वैसे ही मैं भी आपकी इन बातोंसे तृप्त नहीं हो रहा हूँ ॥ २६ ॥ फिर भी हमारे हितैषी अक्रूरजी ! मेरे चक्षत्र चित्तमें आपकी यह प्रिय शिक्षा तनिक भी नहीं ठहर रही है; क्योंकि मेरा हृदय पुत्रोंकी ममताके कारण अत्यन्त विषम हो गया है । जैसे स्वष्टिक पर्वतके शिखरपर एक बार बिजली कौंधती है और दूसरे ही क्षण अन्तर्धान हो जाती है, वही दशा आपके उपदेशोंकी है ॥ २७ ॥ अक्रूरजी ! सुना है कि सर्वशक्तिमान् भगवान् पृथ्वीका भार उतारनेके लिये यदुज्जलमें अवतीर्ण हुए हैं । ऐसा कौन पुरुष है, जो उनके विधानमें लच्छ-फेर कर सके ? उनकी जैसी इच्छा होगी, वही होगा ॥ २८ ॥ भगवान्की मायाका मार्ग अचिन्त्य है । उसी मायाके द्वारा इस संसारकी सृष्टि करके वे इसमें प्रवेश करते हैं और कर्म तथा कर्मफलोंका विभाजन कर देते हैं । इस संसार-चक्रकी बेरोक-टोक वालों में उनकी अचिन्त्य लीला-शक्तिके अतिरिक्त और कोई कारण नहीं है । मैं उन्होंने परमेश्वरशास्त्री प्रभुको नमस्कार करता हूँ ॥ २९ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—इस प्रकार अक्रूरजी महाराज धृतराष्ट्रका अविमोक्षजनक और कुर्वंशी स्वजन-सम्बन्धियोंसे प्रेमपूर्वक अनुमति लेकर मथुरा लौट आये ॥ ३० ॥ परिशिष्ट । उन्होंने वहाँ भगवान् श्रीकृष्ण और बलरामजीके सामने धृतराष्ट्रका वह सारा व्यवहार-वर्ताव, जो वे पाण्डवोंके साथ करते थे, कह सुनाया, क्योंकि उनको हस्तिनापुर मेंजनेका वास्तवमें उद्देश्य भी यही था ॥ ३१ ॥

इति दशम स्कन्ध पूर्वार्ध समाप्त

हरिः ॐ नमः

श्रीराधाकृष्णस्य नमः

श्रीमद्भागवतमहापुराण

दशम स्कन्ध

(उत्तरार्ध)



हन्धानोऽरिगतिं वार्षिद्धारा द्वारावतीं गतः ।
कृतदारोऽच्युतो दद्यात् सौमनस्यं मनसालम् ॥



नरसिरोमणि श्रीकृष्ण

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

श्रीमद्भागवतमहापुराण

दशम स्कन्ध

(उत्तरार्ध)

पचासवाँ अध्याय

जरासन्धसे युद्ध और द्वारकापुरीका निर्माण

श्रीयुक्तेजसी कहते हैं—भरतवंशशिरोमणि परीक्षित! कंसकी दो रानियाँ थीं—अस्ति और प्राप्ति । पति की मृत्युसे उन्हें बड़ा दुःख हुआ और वे अपने पिता की राजधानी में चली गयीं ॥ १ ॥ उन दोनोंका पिता था भगधराज जरासन्ध । उससे उन्होंने बड़े दुःखके साथ अपने विषवा होनेके कारणोंका वर्णन किया ॥ २ ॥ परीक्षित! यह अभिय समाचार सुनकर पहले तो जरासन्धको बड़ा शोक हुआ, परन्तु पीछे वह क्रोधसे तिलमिल उठ । उसने यह निश्चय करके कि, मैं पृथ्वीपर एक भी यदुवंशी नहीं रहने दूँगा, युद्धकी बहुत बड़ी तैयारी की ॥ ३ ॥ और तेईस अक्षौहिणी सेनाके साथ यदुवंशियोंकी राजधानी मथुराको चारों ओरसे घेर लिया ॥ ४ ॥

भगवान् श्रीकृष्णने देखा—जरासन्धकी सेना क्या है, उसकी ताकत क्या समुद्र है । उन्होंने यह भी देखा कि उसने चारों ओरसे हमारी राजधानी घेर ली है और हमारे खजाने तथा पुरवासी भयभीत हो रहे हैं ॥ ५ ॥ भगवान् श्रीकृष्ण पृथ्वीका मार उतारनेके लिये ही मनुष्य-का-सा वेप धारण किये हुए हैं । अब उन्होंने विचार किया कि मेरे अवतारका क्या प्रयोजन है और इस समय इस स्थानपर मुझे क्या करना चाहिये ॥ ६ ॥ उन्होंने सोचा यह बड़ा अञ्छा हुआ कि भगधराज जरासन्धने अपने अधीनस्थ नरपतियोंकी पैदल, घुड़सवार, रथी और हाथियोंसे युक्त कई अक्षौहिणी सेना जकड़ी कर ली है । यह सब तो पृथ्वीका मार ही छुट्कार मेरे पास आ पहुँचा है । मैं इसका नाश करूँगा । परन्तु अभी भगधराज जरासन्धको नहीं मारना चाहिये । क्योंकि

यह जीवित रहेगा तो फिरसे असुरोंकी बहुत-सी सेना इकट्ठी कर अयेगा ॥ ७-८ ॥ मेरे अवतारका यही प्रयोजन है कि मैं पृथ्वीका जोश हल्का कर दूँ, साधु-सज्जनोंकी रक्षा करूँ और दुष्ट-दुर्जनोका संहार ॥ ९ ॥ समय-समयपर धर्म-रक्षाके लिये और बढ़ते हुए अधर्मको रोकनेके लिये मैं और भी अनेकों शरीर ग्रहण करता हूँ ॥ १० ॥

परीक्षित ! भगवान् श्रीकृष्ण इस प्रकार विचार कर ही रहे थे कि आकाशसे सूर्यके समान चमकते हुए दो रथ आ पहुँचे । उनमें युद्धकी सारी सामग्रियाँ सुसज्जित थीं और दो सारथी उन्हें ढाँक रहे थे ॥ ११ ॥ इसी समय भगवान् के दिव्य और सनातन आयुध भी अपने-आप वहाँ आकर उपस्थित हो गये । उन्हें देखकर भगवान् श्रीकृष्णने अपने बड़े भाई बलरामजीसे कहा—॥ १२ ॥ 'भाईजी ! आप बड़े शक्तिशाली हैं । इस समय जो यदुवंशी आपको ही अपना खामी और रक्षक मानते हैं, जो आपसे ही सनाथ हैं, उनपर बहुत बड़ी विपत्ति आ पड़ी है । देखिये, यह आपका रथ है और आपके प्यारे आयुध हल्-मूसल भी आ पहुँचे हैं ॥ १३ ॥ अब आप इस रथपर सवार होकर शत्रु-सेनाका संहार कीजिये और अपने स्वजनोको इस विपत्तिसे बचाइये । भगवान् ! साधुओंका कल्याण करनेके लिये ही हम दोनोंने अवतार ग्रहण किया है ॥ १४ ॥ अतः अब आप यह तेईस अक्षौहिणी सेना, पृथ्वीका यह विपुल मार नष्ट कीजिये ।' भगवान् श्रीकृष्ण और बलरामजीने

यह सलाह करके कनक धारण किये और रखर सवार होकर वे मथुरासे निकले । उस समय दोनों माई अपने-अपने आयुध लिये हुए थे और छोटी-सी सेना उनके साथ-साथ चल रही थी । श्रीकृष्णका रथ ढाँक रहा था दारुक । पुरीसे बाहर निकलकर उन्होंने अपना पाश्र्वजन्घ शङ्ख बजाया ॥ १५-१६ ॥ उनके शङ्खकी मधुह्वर ध्वनि सुनकर शत्रुपक्षकी सेनाके वीरोंका हृदय बरके मारे थर्रा उठा । उन्हें देखकर मगधराज जरासन्ध-ने कहा—“पुरुषधम कृष्ण ! तू तो अभी मिरा बच्चा है । अकेले तेरे साथ लड़नेसे मुझे लज लग रही है । इतने दिनोंतक तू न जाने कहाँ-कहाँ छिपा फिरता था । और मन्द ! तू तो अपने मामाका हत्यारा है । इसलिये मैं तेरे साथ नहीं लड़ सकता । जा, मेरे सामनेसे भाग जा ॥ १७-१८ ॥ बलराम ! यदि तेरे चित्तमें यह श्रद्धा हो कि युद्धमें मरनेपर स्वर्ग मिलता है तो तू आ, हिम्मत बाँधकर मुझसे लड़ । मेरे बाणोंसे छिन्न-भिन्न हुए शरीरकी यहाँ छोटकर खर्गमें जा, जबकि यदि तुझमें शक्ति हो तो मुझे ही मार बाछ ॥ १९ ॥

मगधराज श्रीकृष्णने कहा—मगधराज ! जो शूरवीर होते हैं, वे तुम्हारी तरह डींग नहीं हाँकते, वे तो अपना बल-पौरुष ही दिखलाते हैं । देखो, अब तुम्हारी मृत्यु तुम्हारे सिरपर नाच रही है । तुम वैसे ही अकस्मक कर रहे हो, जैसे मरनेके समय कोई सन्निपातका रोषी करे । बक जो, मैं तुम्हारी बातपर ध्यान नहीं देता ॥ २० ॥

श्रीशुकनेबजी कहते हैं—परीक्षित ! जैसे बाघ बादलोंसे सूर्यको और घुएँसे आगकी ढक लेती है, मिन्यु वास्तवमें वे ढकते नहीं, उनका प्रकाश फिर फैलता ही है; वैसे ही मगधराज जरासन्धने मगवान् श्रीकृष्ण और बलरामके सामने आकर अपनी बहुत बड़ी बलवान् और अपार सेनाके द्वारा उन्हें चारों ओरसे घेर लिया—यहाँतक कि उनकी सेना, रथ, च्चना, घोड़ों और सारथियोंका दीखना भी बंद हो गया ॥ २१ ॥ मथुरापुरीकी जियाँ अपने महलोंकी अटारियों, छज्जों और फाटकोंपर चढ़कर युद्धका कौतुक देख रही थीं । जब उन्होंने देख कि युद्धभूमिमें मगवान् श्रीकृष्णकी गरुडचिह्नसे चिह्नित और बलरामजीकी तालचिह्नसे चिह्नित च्चनावाले रथ नहीं दीख

रहे हैं तब वे शोकके आवेगसे मूर्छित हो गयीं ॥ २२ ॥ जब मगवान् श्रीकृष्णने देखा कि शत्रु-सेनाके वीर हमारी सेनापर इस प्रकार बाणोंकी वर्षा कर रहे हैं, मानो बादल पानीकी अनगिनत बूँदे बरसा रहे हों और हमारी सेना उससे अल्पत पीड़ित, व्यथित हो रही है; तब उन्होंने अपने देवता और असुर-दोनोंसे सम्पन्नित शार्ङ्गधनुषका ट्य्कार किया ॥ २३ ॥ इसके बाद वे तरकसमेंसे बाण निकालने, उन्हें धनुषपर चढ़ाने और धनुषकी डोरी खींचकर छुंडके-छुंड बाण छोड़ने लगे । उस समय उनका वह धनुष इतनी फुर्तीसे घूम रहा था, मानो कोई बड़े वेगसे अलतचक्र (छकारी) घुमा रहा हो ! इस प्रकार मगवान् श्रीकृष्ण जरासन्धकी चतुरङ्गिणी—हाथी, घोड़े, रथ और पैदल सेनाका संहार करने लगे ॥ २४ ॥ इससे बहुत-से हाथियोंके सिर फट गये और वे मर-मरकर गिरने लगे । बाणोंकी बौछारसे अनेकों घोड़ोंके सिर धक्के अलग हो गये । घोड़े, च्चना, सारथि और रथियोंके नष्ट होजानेसे बहुत-से रथ बेकर्म हो गये । पैदल सेनाकी बाँझें, जाँघ और सिर आदि अङ्ग-प्रत्यङ्ग कट-कटकर गिर पड़े ॥ २५ ॥ उस युद्धमें अपार तेजस्वी मगवान् बलरामजीने अपने मूलकी चोटसे बहुत-से मतवाले शत्रुओंको मार-मारकर उनके अङ्ग-प्रत्यङ्गसे निकले हुए खूनकी सैकड़ों नदियाँ बहा दीं । कहाँ मनुष्य कट रहे हैं तो कहाँ हाथी और घोड़े छटपट रहे हैं । उन नदियोंमें मनुष्योंकी श्वायें साँपके समान जान पड़तीं और सिर इत प्रकार माखम पड़ते, मानो कल्लुओंकी भीड़ लग गयी हो । मेरे हुए हाथी हीप-जैसे और घोड़े प्राहोंके समान जान पड़ते । हाथ और जाँघें मल्लियोंकी तरह, मनुष्योंके कैश सेनारके समान, धनुष तरङ्गोंकी भाँति और अल-शाख जता एवं तिनकोंके समान जान पड़ते । ढालें ऐसी माखम पड़तीं, मानो मयानक रैकर हों । बहुमूल्य मणियाँ और आभूषण पत्थरके रोड़ों तथा कंकड़ोंके समान बहे जा रहे थे । उन नदियोंको देखकर कायर पुरुष डर रहे थे और वीरोंका आपसमें खूब खस्ताइ बढ़ रहा था ॥ २६-२८ ॥ परीक्षित ! जरासन्धकी वह सेना समुद्रके समान दुर्गम, मयावह और बड़ी कठिनाईसे जीतने योग्य थी । परन्तु मगवान् श्रीकृष्ण

और बलरामजीने थोड़े ही समयमें उसे नष्ट कर डाला । वे सारे जगत्के स्वामी हैं । उनके लिये एक सेनाका नाश कर देना केवल खिलवाड़ ही तो है ॥ २९ ॥ परीक्षित ! भगवान्के गुण अनन्त हैं । वे खेल-खेलमें ही तीनों लोकोंकी उत्पत्ति, स्थिति और संहार करते हैं । उनके लिये यह कोई बड़ी बात नहीं है कि वे शत्रुओंकी सेनाका इस प्रकार बात-की-बातमें सत्यानाश कर दें । तथापि जब वे मनुष्यका-सा रूप धारण करके मनुष्यकी-सी छीला करते हैं, तब उसका भी वर्णन किया ही जाता है ॥ ३० ॥

इस प्रकार जरासन्धकी सारी सेना मारी गयी । रथ भी टूट गया । शरीरमें केवल प्राण बाकी रहे । तब भगवान् श्रीबलरामजीने जैसे एक सिंह दूसरे सिंहको पकड़ लेता है, वैसे ही बलपूर्वक महाबली जरासन्धको पकड़ लिया ॥ ३१ ॥ जरासन्धने पहले बहुतसे विपक्षी नरपतियोंका वध किया था, परन्तु आज उसे बलरामजी ऋषणकी पोंसी और मनुष्योंके फंदेसे बंध रहे थे । भगवान् श्रीकृष्णने यह सोचकर कि यह छोड़ दिया जायगा तो और भी सेना इकट्ठी करके कायेगा तथा हम सहज ही पुष्पको मार उतार सकेंगे, बलरामजीको रोक दिया ॥ ३२ ॥ बड़े-बड़े धुरवीर जरासन्धका सम्मान करते थे । इसलिये उसे इस बातपर बड़ी लज्जा मालूम हुई कि मुझे श्रीकृष्ण और बलरामने दया करके दीनकी भाँति छोड़ दिया है । अब उसने तपस्या करनेका निश्चय किया । परन्तु रास्तेमें उसके साथी नरपतियोंने बहुत समझाया कि 'राजन् ! यदुवंशियोंमें क्या रक्खा है ? वे आपको त्रिकुल ही पराजित नहीं कर सकते थे । आपको प्रारब्धवश ही नीचा देखना पड़ा है ।' उन लोगोंने भगवान्की इच्छा, फिर विजय प्राप्त करनेकी आशा आदि बतलाकर तथा कौकिक दृष्टान्त एवं युक्तियों दे-देकर यह बात समझा दी कि आपको तपस्या नहीं करनी चाहिये ॥ ३३-३४ ॥ परीक्षित ! उस समय माधवान् जरासन्धकी सारी सेना मर चुकी थी । भगवान् बलरामजीने उपैक्षापूर्वक उसे छोड़ दिया था । इससे वह बहुत उदास होकर अपने देश मगधको चला गया ॥ ३५ ॥

परीक्षित ! भगवान् श्रीकृष्णकी सेनामें किसीका बाध भी बाँका न हुआ और उन्होंने जरासन्धकी तेईस अश्वौहिणी सेनापर, जो समुद्रके समान थी, सहज ही विजय प्राप्त कर ली । उस समय बड़े-बड़े देवता उनपर नन्दनवनके पुष्पोंकी वर्षा और उनके इस महान् कार्यका अनुमोदन—प्रशंसा कर रहे थे ॥ ३६ ॥ जरासन्धकी सेनाके पराजयसे मथुरावासी भयहित हो गये थे और भगवान् श्रीकृष्णकी विजयसे उनका हृदय आनन्दसे भर रहा था । भगवान् श्रीकृष्ण आकर उनमें मिल गये । सूत, मागध और नन्दीजन उनकी विजयके गीत गा रहे थे ॥ ३७ ॥ जिस समय भगवान् श्रीकृष्णने नगरमें प्रवेश किया, उस समय वहाँ शङ्ख, नगादे, मेरी, तुरही, बीणा, बाँसुरी और मुद्रङ्ग आदि बाजे बजने लगे थे ॥ ३८ ॥ मथुराकी एक-एक सड़क और गलीमें छिन्नकत्तन कर दिया गया था । चारों ओर हँसते-खेलते नागरिकोंकी गहल-गहल थी । सारा नगर छोटी-छोटी झड़ियों और बड़ी बड़ी विजय-पताकाओंसे सजा दिया गया था । ब्राह्मणोंकी वेदध्वनि गूँज रही थी और सब ओर आनन्दोत्सवके सूचक बंदनवार बाँध दिये गये थे ॥ ३९ ॥ जिस समय श्रीकृष्ण नगरमें प्रवेश कर रहे थे, उस समय नगरकी नारियाँ प्रेम और लक्ष्म्यासे भरे हुए नेत्रोंसे उन्हें स्नेहपूर्वक निहार रही थीं और झुकके हार, दही, अक्षत और जौ आदिके अङ्गुरोंकी उनके ऊपर वर्षा कर रही थीं ॥ ४० ॥ भगवान् श्रीकृष्ण रणभूमिसे अपार धन और नीरोंके आभूषण के आये थे । वह सब उन्होंने यदुवंशियोंके राजा उपसेनके पास भेंट दिया ॥ ४१ ॥

परीक्षित ! इस प्रकार सग्रह कर तेईस-तेईस अश्वौहिणी सेना इकट्ठी करके भगवान् जरासन्धने भगवान् श्रीकृष्णके द्वारा सुरक्षित यदुवंशियोंसे युद्ध किया ॥ ४२ ॥ किन्तु यादवोंने भगवान् श्रीकृष्णकी शक्तिसे डर कर उसकी सारी सेना नष्ट कर दी । जब सारी सेना नष्ट हो जाती, तब यदुवंशियोंके उपैक्षापूर्वक छोड़ देनेपर जरासन्ध अपनी राजधानीमें लौट जाता ॥ ४३ ॥ जिस समय अठारहवाँ संस्राम छिन्नोद्दीवाद्य था, उसी समय नारदजीका भेजा हुआ वीर फाल्गुवन दिखायी पड़ा ॥ ४४ ॥

युद्धमें काल्यवनके सामने खड़ा होनेवाला वीर संसारमें दूसरा कोई न था । उसने जब यह सुना कि यदुवंशी हमारे ही-जैसे बलवान् हैं और हमारा सामना कर सकते हैं, तब तीन करोड़ स्नेहियोंकी सेना लेकर उसने मथुराको घेर लिया ॥ ४५ ॥

काल्यवनकी यह असमय चढ़ाई देखकर भगवान् श्रीकृष्णने बलरामजीके साथ मिलकर विचार किया— 'अहो ! इस समय तो यदुवंशियोंपर जरासन्ध और काल्यवन—ये दो-दो विपत्तियों एक साथ ही भँडरा रही हैं ॥ ४६ ॥ आज इस परम बलशाली यवनने हमें आकर घेर लिया है और जरासन्ध भी आज, कल या परसोंमें आ ही जायगा ॥ ४७ ॥ यदि हम दोनों भाई इसके साथ लड़नेमें लग गये और उसी समय जरासन्ध आ पहुँचा, तो वह हमारे बन्धुओंको मार डालेगा या तो कैद करके अपने नगरमें ले जायगा । क्योंकि वह बहुत बलवान् है ॥ ४८ ॥ इसलिये आज हमलोग एक ऐसा दुर्ग—ऐसा किला बनायेंगे; जिसमें किसी भी मनुष्यका प्रवेश करना अशक्त कठिन होगा । अपने खजन-सम्पत्तियोंको उसी किलेमें पहुँचाकर फिर इस यवनका बंध करायेगे ॥ ४९ ॥ बलरामजीसे इस प्रकार सलाह करके भगवान् श्रीकृष्णने समुद्रके भीतर एक ऐसा दुर्गम नगर बनवाया, जिसमें सभी वस्तुएँ अद्भुत थीं और उस नगरकी ऊँचाई-चौड़ाई अद्भुतालीस कोसकी थी ॥ ५० ॥ उस नगरकी एक-एक वस्तुमें विश्वकर्माका विज्ञान (वास्तुविज्ञान) और शिल्पकलाकी निपुणता प्रकट होती थी । उसमें वास्तुशास्त्रके अनुसार बड़ी-बड़ी सड़कों, चौराहों और गलियोंका यथास्थान ठीक-ठीक विभाजन किया गया था ॥ ५१ ॥ वह नगर ऐसे सुन्दर-सुन्दर उद्यानों और विचित्र-विचित्र उपवनोत्तरे युक्त था, जिनमें देवताओंके वृक्ष और वृक्षाएँ लहलहाती रहती थीं । सोनेके इतने ऊँचे-ऊँचे शिखर थे, जो आकाशसे बातें करते थे । स्फटिकमणिनी अटारियों

और ऊँचे-ऊँचे दरवाजे बड़े ही सुन्दर लाते थे ॥ ५२ ॥ अब रखनेके लिये चौंदी और पीतलके बहुत-से कोठे बने हुए थे । वहाँके महल सोनेके बने हुए थे और उनपर कामदार सोनेके कलश सजे हुए थे । उनके शिखर रत्नोंके थे तथा गव पत्थरकी बनी हुई बहुत मली मालूम होती थी ॥ ५३ ॥ इसके अतिरिक्त उस नगरमें वास्तुदेवताके मन्दिर और छज्जे भी बहुत सुन्दर-सुन्दर बने हुए थे । उसमें चारों वर्णके लोग निवास करते थे और सबके बीचमें यदुवंशियोंके प्रधान उपमनेनी, वसुदेवजी, बलरामजी तथा भगवान् श्रीकृष्णके महल जगमगा रहे थे ॥ ५४ ॥ परीक्षित ! उस समय देवराज इन्द्रने भगवान् श्रीकृष्णके लिये पारिजात वृक्ष और सुधर्मा-सभाको भेंट दिया । वह सभा ऐसी दिव्य थी कि उसमें बैठे हुए मनुष्यको मूख-प्यास आदि मर्त्यलोकके धर्म नहीं झू पाते थे ॥ ५५ ॥ वरुणजीने ऐसे बहुत-से स्वेत घोड़े भेंट दिये, जिनका एक-एक कान क्षाम-वर्णका था, और जिनकी चाल मनके समान तेज थी । धनपति कुवेरजीने अपनी आठों निधियों भेंट दीं और दूसरे लोकपालोंने भी अपनी-अपनी विभूतियों भगवान् के पास भेंट दीं ॥ ५६ ॥ परीक्षित ! सभी लोकपालोंको भगवान् श्रीकृष्णने ही उनके अधिकारके निर्वाहके लिये शक्तियों और सिद्धियों दी हैं । जब भगवान् श्रीकृष्ण पृथ्वीपर अवतीर्ण होकर लीला करने लगे, तब सभी सिद्धियों उन्होंने भगवान् के चरणोंमें समर्पित कर दीं ॥ ५७ ॥ भगवान् श्रीकृष्णने अपने समस्त खजन-सम्पत्तियोंको अपनी अधिन्य महाशक्ति योग-मायाके द्वारा द्वारकामें पहुँचा दिया । शेष प्रजाकी रक्षाके लिये बलरामजीको मथुरापुरीमें रख दिया और उनसे सलाह लेकर गलेमें कमलोंकी माला पहने, बिना कोई अस्त्र-शस्त्र लिये स्वयं नगरके बड़े दरवाजेसे बाहर निकल आये ॥ ५८ ॥

इक्यावनवाँ अध्याय

काल्यवनका भस्म होना, सुसुक्रन्दकी कथा

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—प्रिय परीक्षित ! जिस समय भगवान् श्रीकृष्ण मथुरा नगरके मुख्य द्वारसे

निकले, उस समय ऐसा मालूम पड़ा, मानो पूर्व दिशासे कन्दोदय हो रहा हो । उनका श्यामल शरीर अल्प

ही दर्शनीय था, उसपर रेशमी पीताम्बरकी छटा निराली ही थी; वक्षःस्थलपर खणेरलाके रूपमें श्रीकृष्णचिह्न सोमा पा रहा था और गलेमें कौस्तुभमणि जगमगा रही थी। चार मुजाएँ थी, जो लजी-लजी और कुछ मोटी-मोटी थीं। हालके खिले हुए कमलके समान कोमल और रतनारे नेत्र थे। मुखकमलपर रास्ति-रास्ति आनन्द खेळ रहा था। कपोलोंकी छटा निराली ही थी। मन्द-मन्द मृसकान देखनेवालोंका मन चुराये लेती थी। कानोंमें मकराक्षत कुण्डल झिलमिल-झिलमिल झलक रहे थे। उन्हें देखकर काल्यवनने निश्चय किया कि 'यही पुरुष वासुदेव है। क्योंकि नारदजीने जो-जो लक्षण बताये थे—वक्षःस्थलपर श्रीकृष्णचिह्न, चार मुजाएँ, कमलके-से नेत्र, गलेमें वनमाळ और सुन्दरताकी सीमा; वे सब इसमें मिल रहे हैं। इसलिये यह कोई दूसरा नहीं हो सकता। इस समय यह बिना किसी अल-शकके पैदल ही इस ओर चला आ रहा है, इसलिये मैं भी इसके साथ बिना अल-शकके ही छूँगा' ॥ १-५ ॥

ऐसा निश्चय करके जब काल्यवन भगवान् श्रीकृष्णकी ओर दौड़ा, तब वे दूसरी ओर मुँह करके रणभूमिसे भाग चले और उन योगिदुर्लभ प्रशुको पकड़नेके लिये काल्यवन उनके पीछे-पीछे दौड़ने लगा ॥ ६ ॥ रणछेत्र भगवान् जीला करते हुए आ रहे थे; काल्यवन पग-पगपर यही समझता था कि अब पकड़ा, तब पकड़ा। इस प्रकार भगवान् उसे बहुत दूर एक पहाड़की गुफामें ले गये ॥ ७ ॥ काल्यवन पीछेमें बार-बार आक्षेप करता कि 'अरे भाई ! तुम परम यशस्वी यदुवंशमें पैदा हुए हो, हुन्दारा इस प्रकार शुद्ध छोड़कर भागना उचित नहीं है।' परन्तु अभी उसके अग्रिम निःशेष नहीं हुए थे, इसलिये वह भगवान्को पानेमें समर्थ न हो सका ॥ ८ ॥ उसके आक्षेप करते रहनेपर भी भगवान् उस पर्वतकी गुफामें घुस गये। उनके पीछे काल्यवन भी घुसा। वहाँ उसने एक दूसरे ही मनुष्यको सोते हुए देखा ॥ ९ ॥ उसे देखकर काल्यवनने सोचा 'देखो तो सही, यह मुझे इस प्रकार इतनी दूर ले आया और अब इस तरह—मानो इसे कुछ पता ही न हो—साधुबाना बनकर सो रहा है।' यह सोचकर उस मूढ़ने उसे कसकर एक छत मारी ॥ १० ॥ वह पुरुष वहाँ बहुत दिनोंसे

सोया हुआ था। पैरकी टोकर लगनेसे वह उठ पड़ा और धीरे-धीरे उसने अपनी आँखें खोलीं। इधर-उधर देखनेपर पास ही काल्यवन खड़ा हुआ दिखायी दिया ॥ ११ ॥ परीक्षित ! वह पुरुष इस प्रकार टोकर मारकर जगाये जानेसे कुछ रुष्ट हो गया था। उसकी दृष्टि पड़ते ही काल्यवनके शरीरमें आग पैदा हो गयी और वह क्षणभरमें जलकर राखका ढेर हो गया ॥ १२ ॥

राजा परीक्षितसे पूछा—भगवन् ! जिसके दृष्टि-पातमात्रसे काल्यवन जलकर भस्म हो गया, वह पुरुष कौन था ? किस वंशका था ? उसमें कैसी शक्ति थी और वह किसका पुत्र था ? आप कृपा करके यह भी बताइये कि वह पर्वतकी गुफामें जाकर क्यों सो रहा था ? ॥ १३ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित ! वे इन्द्राकु-वंशी महाराजा मान्धाताके पुत्र राजा मुचुकुन्द थे। वे ब्राह्मणोंके परम मन्त्र, सत्यप्रतिज्ञ, सप्रानरिजयी और महापुरुष थे ॥ १४ ॥ एक बार इन्द्रादि देवता असुरोंसे क्षयन्त भयभीत हो गये थे। उन्होंने अपनी रक्षाके लिये राजा मुचुकुन्दसे प्रार्थना की और उन्होंने बहुत दिनोंतक उनकी रक्षा की ॥ १५ ॥ जब बहुत दिनोंके बाद देवताओंको सेनापतिके रूपमें खामिकासिकेय मिल गये, तब उन लोगोंने राजा मुचुकुन्दसे कहा—'राजन् ! आपने हमलोगोंकी रक्षाके लिये बहुत श्रम और कष्ट उठया है। अब आप विश्राम कीजिये ॥ १६ ॥ वीर-शिरोमणे ! आपने हमारी रक्षाके लिये मनुष्यलोकका अपना अकाम्यक राज्य छोड़ दिया और जीवनकी अमिच्छापूर्वक तथा योग्येक्ष भी परित्याग कर दिया ॥ १७ ॥ अब आपके पुत्र, रतियों, बन्धु-बान्धव और अमात्य-मन्त्री तथा आपके समयकी प्रजामेंसे कोई नहीं रहा है। सब-कुछ आपके गळमें चले गये ॥ १८ ॥ काळ समस्त बलवानोंसे भी बलवान् है। वह स्वयं परम समर्थ अविनाशी और मन्त्रस्वरूप है। जैसे ग्वाल पशुओंको अपने वशमें रखते हैं, वैसे ही वह खेल-खेलमें सारी प्रजाको अपने अधीन रखता है ॥ १९ ॥ राजन् ! आपका कल्याण हो। आपकी जो इच्छा हो हमसे माँग लीजिये। हम वैतल्य-मोक्षके अतिरिक्त आपको सब

कुछ दे सकते हैं। क्योंकि कैवल्य-मोक्ष देनेकी सामर्थ्य तो केवल अविनाशी भगवान् विष्णुमें ही है ॥ २० ॥ परम यशस्वी राजा मुचुकुन्दने देवताओंके इस प्रकार कहनेपर उनकी वन्दना की और बहुत यत्न होनेके कारण निद्राका ही वर माँगा, तथा उनसे वर पाकर वे नींदसे भरकर पर्वतकी गुफामें जा सोये ॥ २१ ॥ उस समय देवताओंने कह दिया था कि 'याजन्'। सोते समय यदि आपको कोई मूर्ख बीबमें ही जगा देगा, तो वह आपको दण्ड पकटे ही उसी क्षण मर जायगा' ॥ २२ ॥

परीक्षित ! जब काल्यवन मर गया, तब यदुवंशशिरोमणि भगवान् श्रीकृष्णने परम बुद्धिमान् राजा मुचुकुन्दको अपना दर्शन दिया। भगवान् श्रीकृष्णका श्रीविप्राह वर्षाकाळीन मेवके समान सौंका था। रेशमी पीताम्बर धारण किये हुए थे। बद्धःस्थलपर श्रीकृष्ण और गलेमें कौस्तुभमणि अपनी दिव्य व्योमिति बिखेर रहे थे। चार मुज्राएँ थी। वैजयन्ती माला अलग ही घुटनोंतक लटक रही थी। मुखकमल अत्यन्त सुन्दर और प्रसन्नतासे खिड़ा हुआ था। कानोंमें मकराहुत कुण्डल जगमगा रहे थे। होठोंपर प्रेममयी मुसकराहट थी और नेत्रोंकी चितवन अनुगमकी वर्षा कर रही थी। अत्यन्त दर्शनीय तरुण अवस्था और मत्तकाले सिंहके समान निर्भीक चाल। राजा मुचुकुन्द यद्यपि बड़े बुद्धिमान् और धीर पुरुष थे, फिर भी भगवान्की यह दिव्य व्योमिर्तमयी मूर्ति देखकर कुछ चकित हो गये—उनके तेजसे हतप्रतिम हो सकपका गये। भगवान् अपने तेजसे दुर्द्वर्ष जान पड़ते थे। राजाने तनिक शङ्कित होकर पूछा ॥ २३—२७ ॥

पूजा मुचुकुन्दने कहा—'आप कौन हैं ? इस कौंटोसे भरे हुए घोर जंगलमें आप कामलके समान कोमल चरणोंसे क्यों विचर रहे हैं ? और इस पर्वतकी गुफामें ही पधारनेका क्या प्रयोजन था ?' ॥ २८ ॥ क्या आप समस्त तेजस्वियोंके मूर्तिमान् तेज अपवा भगवान् अग्निदेव तो नहीं हैं ? क्या आप सूर्य, चन्द्रमा, देवराज इन्द्र या कोई दूसरे लोकपाल हैं ? ॥ २९ ॥ मैं तो ऐसा समझता हूँ कि आप देवताओंके आराध्यदेव ब्रह्मा, विष्णु तथा शङ्कर—इन तीनोंमेंसे पुरुषोत्तम भगवान् नारायण ही हैं। क्योंकि जैसे श्रेष्ठ दीपक अँधेरेको दूर कर देता है, वैसे ही आप अपनी अद्भुतान्तिसे इस गुफाका अँधिरा भग्न रहे

हैं ॥ ३० ॥ पुरुषश्रेष्ठ ! यदि आपको रुचे तो हमें अपना जन्म, कर्म और गोत्र बतलाइये; क्योंकि हम सन्ने हृदयसे उसे सुननेके इच्छुक हैं ॥ ३१ ॥ और पुरुषोत्तम ! यदि आप हमारे वारोंमें पहुँचें तो हम इन्द्राकुलंशी क्षत्रिय हैं, मेरा नाम है मुचुकुन्द । और प्रभु ! मैं युवनाश्वनन्दन महाराज मान्धाताका पुत्र हूँ ॥ ३२ ॥ बहुत दिनोंतक जागते रहनेके कारण मैं थक गया था। निद्राने मेरी समस्त इन्द्रियोंकी शक्ति छीन ली थी, उन्हें बेकाम कर दिया था, इसीसे मैं इस निर्जन स्थानमें निर्द्वन्द्व सो रहा था। अभी-अभी किसीने मुझे जगा दिया ॥ ३३ ॥ अक्षय उसके पायोंने ही उसे जगाकर मर कर दिया है। इसके बाद शत्रुओंके नाश करनेवाले परम सुन्दर आपने मुझे दर्शन दिया ॥ ३४ ॥ महामाग ! आप समस्त प्राणियोंके माननीय हैं। आपके परम दिव्य और असंख्य तेजसे मेरी शक्ति खो गयी है। मैं आपको बहुत देरतक देख भी नहीं सकता ॥ ३५ ॥ जब राजा मुचुकुन्दने इस प्रकार कहा, तब समस्त प्राणियोंके जीवनदाता भगवान् श्रीकृष्णने हँसते हुए येवष्णविके समान गम्भीर वाणीसे कहा—॥ ३६ ॥

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—प्रिय मुचुकुन्द ! मेरे हजारों जन्म, कर्म और नाम हैं। वे अनन्त हैं, इसलिये मैं भी उनकी गिनती करके नहीं बतला सकता ॥ ३७ ॥ यह सम्भव है कि कोई पुरुष अपने अनेक जन्मोंमें पृथ्वीके छोटे-छोटे धूल-कणोंकी गिनती कर जाले परन्तु मेरे जन्म, गुण, कर्म और नामोंको कोई कभी किसी प्रकार नहीं गिन सकता ॥ ३८ ॥ राजन् ! सनक-सनन्दन आदि परमविंश्या मेरे त्रिकाक्षसिद्ध जन्म और कर्मोंका वर्णन करते रहते हैं, परन्तु कभी उनका पार नहीं पाते ॥ ३९ ॥ प्रिय मुचुकुन्द ! ऐसा होनेपर मैं मैं अपने कर्तमान जन्म, कर्म और नामोंका वर्णन करता हूँ, सुनो ! पहले ब्रह्मजीने मुझसे धर्मकी रक्षा और पृथ्वीके मार बने हुए असुरोंका संहार करनेके लिये प्रार्थना की थी ॥ ४० ॥ उन्होंनेकी प्रार्थनासे मैंने यदुवंशमें वसुदेवजीके यहाँ अवतार ग्रहण किया है। अब मैं वसुदेवजीका पुत्र हूँ, इसलिये जग मुझे 'बाहुदेव' कहते हैं ॥ ४१ ॥ अबतक मैं कालजनेमि असुरराज, जो कंसके रूपमें पैदा हुआ था, तथा प्रलम्ब आदि अनेकों सप्त-

श्रीही असुरोंका संहार कर चुका हूँ । राजन् । यह काल्यवन था, जो मेरी ही प्रेरणासे तुम्हारी तीक्ष्ण दृष्टि पड़ते ही मरम हो गया ॥ ४२ ॥ वही मैं तुमपर कृपा करनेके लिये ही इस गुरुमें आया हूँ । तुमने पहले मेरी बहुत आराधना की है और मैं हूँ मन्त्रकसल ॥ ४३ ॥ इसलिये राजर्षे ! तुम्हारी जो अभिलाषा हो, मुझसे माँग लो । मैं तुम्हारी सारी लालसा, अभिलाषाएँ पूर्ण कर दूँगा । जो पुरुष मेरी शरणमें आ जाता है उसने लिये फिर ऐसी कोई वस्तु नहीं रह जाती, जिसके लिये वह शोक करे ॥ ४४ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—जब भगवान् श्रीकृष्णने इस प्रकार कहा, तब राजा सुजुहुन्दको वृद्ध गर्वका यह कथन याद आ गया कि यदुवशमे भगवान् अवतीर्ण होनेवाले हैं । वे जान गये कि ये स्वयं भगवान् नारायण हैं । आनन्दसे भरकर उन्होंने भगवान्के चरणोंमें प्रणाम किया और इस प्रकार स्तुति की ॥ ४५ ॥

सुजुहुन्दने कहा—प्रभो ! जगत्के सभी प्राणी आपकी मायासे अत्यन्त मोहित हो रहे हैं । वे आरसे विभूष होकर अनर्थमें ही फँसे रहते हैं और आपका भजन नहीं करते । वे सुखके लिये घर-गृहस्थीके उन हास्योंमें फँस जाते हैं, जो सारे दुःखोंके मूल स्रोत हैं । इस तरह श्री और पुरुष सभी ठगे जा रहे हैं ॥ ४६ ॥ इस पापकृत संसारसे सर्वथा रहित प्रभो ! यह भूमि अत्यन्त पवित्र कर्मभूमि है, इसमें मनुष्यका जन्म होना अत्यन्त दुर्लभ है । मनुष्य-जीवन इतना पूर्ण है कि उसमें भजनके लिये कोई भी अवधिवा नहीं है । अपने परम सीमाय और भगवान्की अहैतुक कृपासे उसे अनायास ही प्राप्त करके भी जो अपनी मति, गति असत् संसारमें ही लगा देते हैं और तुच्छ विषयसुखके लिये ही सारा प्रयत्न करते हुए घर-गृहस्थीके बँधेरे कूर्पमें पड़े रहते हैं—भगवान्के चरणकमलोंकी उपासना नहीं करते, भजन नहीं करते, वे तो ठीक उस पशुके समान हैं, जो तुच्छ तृणके लोभसे बँधेरे कूर्पमें गिर जाता है ॥ ४७ ॥ भगन् । मैं राजा था, राज्यश्रीके मदसे मैं मतवाल हो रहा था । इस मरनेवाले शरीरको

ही तो मैं आत्मा—अपना स्वरूप समझ रहा था और राजकुमार, रानी, खजाना तथा पृथ्वीके लोभ-मोहमें ही फँसा हुआ था । उन वस्तुओंकी चिन्ता दिन रात मेरे गले लगी रहती थी । इस प्रकार मेरे जीवनका यह अमूल्य समय बिन्दुकुल निष्फल-व्यर्थ चला गया ॥ ४८ ॥ जो शरीर प्रत्यक्ष ही बड़े और भीतके समान मिट्टीका है और टप टप होनेके कारण उन्हींके समान अपनेसे अलग भी है, उसीको मैंने अपना स्वरूप मान लिया था और फिर अपनेको मान बैठ था । 'नरेव ।' इस प्रकार मैंने मदाश्व होकर आपको तो कुछ समझा ही नहीं । रथ, हाथी, घोड़े और पैदलकी चतुरङ्गिणी सेना तथा सेनापतियोंसे विरक्त मैं पृथ्वीमें इधर-उधर घूमता रहता ॥ ४९ ॥ मुझे यह करना चाहिये और यह नहीं करना चाहिये, इस प्रकार विविध कर्तव्य और अकर्तव्योंकी चिन्तामें पड़कर मनुष्य अपने एकमात्र कर्तव्य भगवत्प्राप्तिसे विमुख होकर प्रमत्त हो जाता है, असाधन हो जाता है । संसारमें बाँध रखनेवाले शिष्योंके लिये उसकी लालसा दिन-दूनी रात-चौगुनी बढ़ती ही जाती है । परन्तु जैसे भूखके कारण जीभ लज्जता हुआ सोंप असाधन चूहेको दबोच लेता है, वैसे ही कालरूपसे सदा-सर्वदा साधन रहनेवाले आप एकएक उस प्रमादप्रस्ता प्राणीपर दृढ़ पड़ते हैं और उसे लै बीतते हैं ॥ ५० ॥ जो पहले सोनेके रथोंपर अथवा बड़े-बड़े गजराजोंपर चढ़कर चल्ता था और नरदेव कहलता था, वही शरीर आपके अभाव कालका प्राप्त बनकर बाहर फेंक देनेपर पक्षियोंकी विद्या, भरतीमें गड़ देनेपर सब्दकर कीड़ा और आगमें जला देनेपर राखका ढेर बन जाता है ॥ ५१ ॥ प्रभो ! जिसने सारी दिशाओंपर निजय प्राप्त कर ली है और जिससे लड़ने-वाला संसारमें कोई रह नहीं गया है, जो श्रेष्ठ सिंहासनपर बैठा है और बड़े-बड़े नरपति, जो पहले उसके समान थे, अब जिसके चरणोंमें सिर झुकते हैं, वही पुरुष जब विषयसुख भोगनेके लिये, जो घर-गृहस्थीकी एक विशेष वस्तु है, शिष्योंके पास जाता है, तब उनके हाथका खिलौना, उनका पाखंड पशु बन जाता है ॥ ५२ ॥ बहुत-से लोभ विषय-भोग छोड़कर पुनः राज्यादि भोग भिल्लेनी-इन्धसे ही दान-पुण्य करते हैं और भी फिर

जन्म लेकर सबसे बड़ा परम खतन्त्र सच्चा होऊँ ।' ऐसी कामना रखकर तपस्यामें भलीभाँति स्थित हो शुभकर्म करते हैं । इस प्रकार जिसकी तुच्छता बड़ी हुई है, वह कदापि सुखी नहीं हो सकता ॥ ५३ ॥ अपने स्वरूपमें एकरस स्थित रहनेवाले भगवन् । जीव अनादिकाळसे जन्म-मृत्युरूप संसारके चक्करमें भटक रहा है । जब उस चक्करमें छूटनेका समय आता है, तब उसे सख्यं प्राप्त होता है । यह निश्चय है कि जिस क्षण सख्यं प्राप्त होता है, उसी क्षण सत्तेके आश्रय, कार्य-कारणरूप जगत्के एकमात्र स्वामी आपमें जीवकी बुद्धि अल्पत दृढ़तासे ब्या जाती है ॥ ५४ ॥ भगवन् । मैं तो ऐसा समझना हूँ कि आपने मेरे ऊपर परम अनुग्रहकी वर्षा की, क्योंकि बिना किसी परिश्रमके—अनायास ही मेरे राज्यका बन्धन टूट गया । साधु स्वभावके चक्रवर्ती राजा भी जब अपना राज्य छोड़कर एकान्तमें भजन-साधन करनेके उद्देश्यसे वनमें जाना चाहते हैं, तब उसके समता-बन्धनसे मुक्त होनेके लिये बड़े प्रेमसे आपसे प्रार्थना किया करते हैं ॥ ५५ ॥ अन्तर्यामी प्रभो । आपसे क्या छिपा है ? मैं आपके चरणोंकी सेवाके अतिरिक्त और कोई भी वर नहीं चाहता; क्योंकि जिनके पास किसी प्रकारका संग्रह परिग्रह नहीं है अथवा जो उसके अभिमानसे रहित हैं, वे लोग भी केवल उसीके लिये प्रार्थना करते रहते हैं । भगवन् । मछा, बतलाइये तो सही—मोक्ष देनेवाले आगकी आराधना करके ऐसा कौन श्रेष्ठ पुरुष होगा, जो अपनेको बँधनेवाले सांसारिक विषयोंका वर माँगे ॥ ५६ ॥ इसलिये प्रभो ! मैं सत्त्वगुण, रजोगुण और तमोगुणसे सम्बन्ध रखनेवाली समस्त कामनाओंको छोड़कर केवल मायाके लेशमात्र सम्बन्धसे रहित, गुणातीत, एक—अद्वितीय, चित्स्वरूप परमपुरुष आपकी शरण ग्रहण करता हूँ ॥ ५७ ॥ भगवन् । मैं अनादिकाळसे अपने कर्मफलोंको भोगते-भोगते अत्यन्त आर्त हो रहा था, उनकी दृ. खद

आव्य रात-दिन मुझे जलाती रहती थी । मेरे छः शत्रु (पाँच इन्द्रिय और एक मन) कभी शान्त न होते थे, उनकी विषयोंकी प्यास बढ़ती ही जा रही थी । कभी किसी प्रकार एक क्षणके लिये भी मुझे शान्ति न मिली । शरणदाता ! अब मैं आपके भय, मृत्यु और शोकसे रहित चरणकमलोंकी शरणमें आया हूँ । सारे जगत्के एकमात्र स्वामी ! परमात्मन् । आप मुझ शरणागतकी रक्षा कीजिये ॥ ५८ ॥

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—सर्वमीम महाराज । तुम्हारी मति, तुम्हारा निश्चय बड़ा ही पवित्र और ऊँची कोटिका है । यद्यपि मैंने तुम्हें बार-बार वर देनेका प्रलोभन दिया, फिर भी तुम्हारी बुद्धि कामनाओंके अधीन न हुई ॥ ५९ ॥ मैंने तुम्हें जो वर देनेका प्रलोभन दिया, वह केवल तुम्हारी सावधानीकी परीक्षाके लिये । मेरे जो अनन्य भक्त होते हैं, उनकी बुद्धि कभी कामनाओंसे दूर-उधर नहीं भटकती ॥ ६० ॥ जो लोग मेरे भक्त नहीं होते, वे चाहे प्राणायाम आदिके द्वारा अपने मनको वशमें करनेका कितना ही प्रयत्न क्यों न करें उनकी वासनाएँ क्षीण नहीं होतीं, और राजन् । उनका मन फिरसे विषयोंके लिये मचल पड़ता है ॥ ६१ ॥ तुम अपने मन और सारे मनोभावोंको मुझे समर्पित कर दो, मुझमें ब्या दो, और फिर स्वच्छन्दरूपसे पृथ्वीपर विचरण करो । मुझमें तुम्हारी विषयवासनाशून्य निर्मल भक्ति सदा बनी रहेगी ॥ ६२ ॥ तुमने क्षत्रियधर्मका आचरण करते समय शिकार आदिके अवसरोंपर बहुतसे पशुओंका वध किया है । अब एकप्रवृत्तिसे मेरी उपासना करते हुए तपस्याके द्वारा उस पापको धो डालो ॥ ६३ ॥ राजन् ! अगले जन्ममें तुम ब्राह्मण बनोगे और समस्त प्राणियोंके सच्चे हितैषी, परम सुखद होओगे तथा फिर मुझ विशुद्ध विज्ञानधन परमात्माको प्राप्त करोगे ॥ ६४ ॥

बावनवाँ अध्याय

श्वरकागमन, श्रीरघुरामजीका विवाह तथा श्रीकृष्णके पास दक्षिणयुद्धीका सन्देश लेकर ब्राह्मणका आना श्रीशुकदेवजी कहते हैं—प्यारे परीक्षित । भगवान् श्रीकृष्णने इस प्रकार इक्ष्वाकुनन्दन राजा मुचुकुन्दपर

अनुग्रह किया । अब उन्होंने भगवान् की परीक्षा की, उन्हें नमस्कार किया और गुफासे बाहर निकले ॥ १ ॥

उन्होंने बाहर आकर देखा कि सब के सब मनुष्य, पशु, उता और वृक्ष-वनस्पति पहलेकी अपेक्षा बहुत छोटे-छोटे आकारके हो गये हैं। इससे यह जानकर कि कछिपुग आ गया, वे उत्तर दिशाकी ओर चढ़ दिये ॥ २ ॥ महाराज मुमुकुन्द तपस्या, ब्रह्म, धर्म तथा अनासक्तिये युक्त एवं संसय-सन्देहसे मुक्त थे। वे अपना चित्त भगवान् श्रीकृष्णमें लगाकर गन्धमादन पर्वतपर आ पहुँचे ॥ ३ ॥ भगवान् नर-नारायणके नित्य निवासस्थान बदरिकाश्रममें जाकर बड़े शान्तभावसे गर्मी-सर्दी आदि ब्रह्म सहते हुए वे तपस्याके द्वारा भगवान्की आराधना करने लगे ॥ ४ ॥

इधर भगवान् श्रीकृष्ण मथुरापुरीमें लौट आये। अवतक काक्यवनकी सेनाने उसे घेर रक्खा था। अब उन्होंने स्क्वैलोंकी सेनाका संहार किया और उसका सारा धन छीनकर द्वारकाको ले चले ॥ ५ ॥ जिस समय भगवान् श्रीकृष्णके आह्वानुसार मनुष्यों और बैलोंपर वह धन ले जाया जाने लगा, उसी समय मगधराज जरासन्ध फिर (अठारहवीं बार) तेरह अक्षौहिणी सेना लेकर आ घमका ॥ ६ ॥ परीक्षित! शत्रु-सेनाका प्रबल वेग देखकर भगवान् श्रीकृष्ण और बछराम मनुष्योंकी-सी लीज करते हुए उसके सामनेसे बड़ी फुर्तीके साथ भाग निकले ॥ ७ ॥ उनके मनमें तनिक भी शय न था। फिर भी मानो अत्यन्त मयभीत हो गये हों—इस प्रकार-का नाट्य करते हुए, वह सब-का-सब धन वहीं छोड़कर अनेक योजनोत्तक वे अपने कमलदलके समान सुकोमल चरणोंमें ही—पैदल भागते चले गये ॥ ८ ॥ जब महाबली मगधराज जरासन्धने देखा कि श्रीकृष्ण और बछराम तो भाग रहे हैं, तब वह हँसने लगा और अपनी रथ सेनाके साथ उनका पीछा करने लगा। उसे भगवान् श्रीकृष्ण और बछरामजीके ऐश्वर्य, प्रभाव आदिका ज्ञान न था ॥ ९ ॥ बहुत दूरतक दौड़नेके कारण दोनों भाई कुछ थका से गये। अब वे बहुत ऊँचे प्रवर्षण पर्वतपर चढ़ गये। उस पर्वतका 'प्रवर्षण' नाम इसलिये पड़ा था कि वहाँ सदा झी—मेघ वर्षा किया करते थे ॥ १० ॥ परीक्षित! जब जरासन्धने देखा कि वे दोनों पहाड़में छिप गये और बहुत हँडनेपर

भी पता न चला, तब उसने ईधनसे भरे हुए प्रवर्षण पर्वतके चारों ओर आग लगाकर उसे जला दिया ॥ ११ ॥ जब भगवान्ने देखा कि पर्वतके छोर जलने लगे हैं, तब दोनों भाई जरासन्धकी सेनाके घेरेको लौघते हुए बड़े वेगसे उस ग्यारह योजन (चौबालीस कोस) ऊँचे पर्वतसे एकदम नीचे धरतीपर कूद आये ॥ १२ ॥ राजन्! उन्हें जरासन्धने अपना उसके किसी सैनिकने देखा नहीं और वे दोनों भाई वहाँसे चकराकर फिर अपनी समुद्रसे चिरी हुई द्वारकापुरीमें चले आये ॥ १३ ॥ जरासन्धने झुलमूठ ऐसा मान लिया कि श्रीकृष्ण और बछराम तो जल गये, और फिर वह अपनी बहुत बड़ी सेना छोड़कर मगधदेशको चला गया ॥ १४ ॥

यह बात मैं तुमसे पहले ही (नवम स्कन्धमें) कह चुका हूँ कि आनर्देशके राजा श्रीमान् रैवतजीने अपनी रैवती नामकी कन्या ब्रह्माजीकी प्रेरणासे बछराम-जीके साथ ब्याह दी ॥ १५ ॥ परीक्षित! भगवान् श्रीकृष्ण भी स्वयंवरमें आये हुए शिशुपाल और उसके पक्षपाती शात्त्व आदि नरपतियोंको बलपूर्वक हराकर सबके देखने-देखते, जैसे गरुडने सुबाका हरण किया था, वैसे ही हिन्ददेशकी राजकुमारी रुक्मिणीको हर लये और उनसे विवाह कर लिया। रुक्मिणीजी राजा भीष्मकी कन्या और स्वयं भगवती कृष्णीजीका अवतार थी ॥ १६-१७ ॥

राजा परीक्षितने पूछा—भगवन्! हमने सुना है कि भगवान् श्रीकृष्णने भीष्मका-जिनी परमसुन्दरी रुक्मिणीदेवीको बलपूर्वक हरण करके राक्षसविधिये उनके साथ विवाह किया था ॥ १८ ॥ महाराज! अब मैं यह सुनना चाहता हूँ कि परम तेजस्वी भगवान् श्रीकृष्णने जरासन्ध, शाल्व आदि नरपतियोंको जीतकर किस प्रकार रुक्मिणीका हरण किया? ॥ १९ ॥ ब्रह्मर्षे! भगवान् श्रीकृष्णकी लीजोंके सम्बन्धमें क्या कहना है? वे स्वयं तो पत्नि हैं ही, सारे जगत्का मठ पो-बहाकर उसे भी पत्नि कर देनेवाली हैं। उनमें ऐसी कोनेतर माधुरी है, जिसे दिन-रात सेवन करते रहनेपर भी नित्य नया-नया रस मिलता रहता है। अब ऐसा कौन रसिक,

कौन मर्मज्ञ है, जो उन्हें सुनकर तप्त न हो जाय ॥ २० ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित । महाराज श्रीभक्त विदर्भदेशके अभिरति थे । उनके पाँच पुत्र और एक सुन्दरी कन्या थी ॥ २१ ॥ सबसे बड़े पुत्रका नाम था रुक्मी और चार छोटे थे—जिनके नाम थे क्रमशः रुक्मरथ, रुक्मबाहु, रुक्मकेतु और रुक्ममाली । इनकी बहिन थी सुनी रुक्मिणी ॥ २२ ॥ जब उसने भगवान् श्रीकृष्णके सौन्दर्य, पराक्रम, गुण और वैभक्तकी प्रशंसा सुनी—जो उसके महलमें आनेवाले अतिथि प्रायः गाथा ही करते थे—तब उसने यही निश्चय किया कि भगवान् श्रीकृष्ण ही मेरे अनुरूप पति हैं ॥ २३ ॥ भगवान् श्रीकृष्ण भी समझते थे कि 'रुक्मिणीमें बड़े सुन्दर-सुन्दर लक्षण हैं, वह परम बुद्धिमती है; उदारता, सौन्दर्य, शीलसम्भाव और गुणोंमें भी अद्वितीय है । इसलिये रुक्मिणी ही मेरे अनुरूप पत्नी है ।' अतः भगवान् रुक्मिणीजीसे विवाह करनेका निश्चय किया ॥ २४ ॥ रुक्मिणीजीके भाई-बन्धु भी चाहते थे कि हमारी बहिनका विवाह श्रीकृष्णसे ही हो । परन्तु रुक्मी श्रीकृष्णसे बड़ा द्वेष रखता था, उसने उन्हें विवाह करनेसे रोक दिया और शिशुपालको ही अपनी बहिनके योग्य कर समझा ॥ २५ ॥

जब परमसुन्दरी रुक्मिणीको यह मालूम हुआ कि मेरा बड़ा भाई रुक्मी शिशुपालके साथ मेरा विवाह करना चाहता है, तब वे बहुत उदास हो गयीं । उन्होंने बहुत कुछ सोच-विचारकर एक विषासपात्र ब्राह्मणको तुरन्त श्रीकृष्णके पास भेजा ॥ २६ ॥ जब वे ब्राह्मण-देवता द्वारिकापुरीमें पहुँचे, तब द्वारपाठ उन्हें राजमहलके भीतर ले गये । वहाँ जाकर ब्राह्मणदेवताने देखा कि आदि-पुरुष भगवान् श्रीकृष्ण सोनेके सिंहासनपर विराजमान हैं ॥ २७ ॥ ब्राह्मणोंके परमभक्त भगवान् श्रीकृष्ण उन ब्राह्मणदेवताको देखते ही अपने आसनसे नीचे उतर गये और उन्हें अपने आसनपर बैठाकर बैठी ही पूजा की; जैसे देवतायोग उनकी (भगवान्की) निम्ना करते हैं ॥ २८ ॥ आदर-सत्कार, कुशल-प्रश्नके अनन्तर जब ब्राह्मणदेवता खम्भी चुके, आराम-विश्राम कर चुके तब

सतोंके परम आश्रय भगवान् श्रीकृष्ण उनके पास गये और अपने कोयल हार्योंसे उनके पैर सहलाते हुए बड़े शान्त-भावसे पूछने लगे— ॥ २९ ॥ 'ब्राह्मणशिरोमणे ! आपका चित्त तो सदा-सर्वदा सन्तुष्ट रहता है न ? आपको अपने पूर्वपुरुषोंद्वारा खींचित धर्मका पाळन करनेमें कोई कठिनाई तो नहीं होती ॥ ३० ॥ ब्राह्मण यदि जो कुछ मित्र जाय, उसीमें सन्तुष्ट रहे और अपने धर्मका पाळन करे, उससे श्रुत न हो, तो वह सन्तोष ही उसको सारी कामनाएँ पूर्ण कर देता है ॥ ३१ ॥ यदि इच्छा पद पाकर भी किसीको सन्तोष न हो तो उसे सुखके लिये एक लोकसे दूसरे लोकमें बार-बार भटकना पड़ेगा, वह कहीं भी शान्तिसे बैठ नहीं सकेगा । परन्तु जिसके पास तनिक भी संप्रभ-परिग्रह नहीं है, और जो उसी अवस्थामें सन्तुष्ट है, वह सब प्रकारसे सन्तापहित होकर सुखकी नींद सोता है ॥ ३२ ॥ जो स्वयं प्राप्त हुई वस्तुसे सन्तोष कर लेते हैं, जिनका लामब बचा ही मयूर है और जो समस्त प्राणियोंके परम हितैषी, अशङ्कराहित और शान्त हैं—उन ब्राह्मणोंको मैं सदा सिर झुकाकर नमस्कार करता हूँ ॥ ३३ ॥ ब्राह्मणदेवता । राजाकी ओरसे तो आपलोगोंको सब प्रकारकी सुविधा है न ? जिसके राज्यमें प्रजाका अच्छी तरह पाळन होता है और वह आनन्दसे रहती है, वह राजा मुझे बहुत ही प्रिय है ॥ ३४ ॥ ब्राह्मणदेवता ! आप कहसि, किस हेतुसे और किस अभिलाषासे इतना कठिन मार्ग तप करके यहाँ पवारे हैं ? यदि कोई बात विशेष गोपनीय न हो तो हमसे कहिये । हम आपकी क्या सेवा करें ?' ॥ ३५ ॥ परीक्षित । छीछसे ही मनुष्यरूप धारण करनेवाले भगवान् श्रीकृष्णने जब इस प्रकार ब्राह्मण-देवतासे पूछा, तब उन्होंने सारी बात कह सुनायी । इसके बाद वे भगवान् रुक्मिणीजीका सन्देश कहने लगे ॥ ३६ ॥

रुक्मिणीजीने कहा है—त्रिभुवनसुन्दर । आपको गुणोंको जो सुननेवालोंके कानोंके रास्ते हृदयमें प्रवेश करके एक-एक आङ्गके ताप, जन्म-जन्मकी जलन बुझा देते हैं तथा अपने रूप-सौन्दर्यको जो नेत्रवाले जीवोंके नेत्रोंके लिये धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष—चारों पुरुषार्थोंके

फल एवं स्वार्थ-परमार्थ, सब कुछ हैं, श्रवण करके प्यारे अमृत । मेरा चित्त लज्जा, शर्म सब कुछ छोड़कर आपमें ही प्रवेश कर रहा है ॥ ३७ ॥ प्रेमस्वरूप स्यामसुन्दर ! चाहे जिस दृष्टिसे देखें; कुल, शील, स्वभाव, सौन्दर्य, विद्या, अवस्था, धन-धाम—सभीमें आप अद्वितीय हैं, अपने ही समान हैं । मनुष्य-लोकमें जितने भी प्राणी हैं, सबका मन आपको देखकर शान्तिका अनुभव करता है, आनन्दित होता है । अब पुरुषभूषण ! आप ही बतलाइये—ऐसी कौन-सी कुल-वती, महागुणवती और धैर्यवती कन्या होगी, जो विवाहके योग्य समय आनेपर आपको ही पतिके रूपमें वरण न करेगी ॥ ३८ ॥ इसीलिये त्रितयम ! मैंने आपको पतिरूपसे वरण किया है । मैं आपको आत्मसमर्पण कर चुकी हूँ । आप अन्तर्यामी हैं । मेरे हृदयकी बात आपसे छिपी नहीं है । आप यहाँ पधारकर मुझे अपनी पत्नीके रूपमें स्वीकार कीजिये । कमलनयन ! प्राणकुम्भ ! मैं आप-सरीखे वीरको समर्पित हो चुकी हूँ, आपकी हूँ । अब जैसे सिंहका भाग सियार छू जाय, वैसे कहीं शिशुपाळ निकटसे आकर मेरा स्पर्श न कर जाय ॥ ३९ ॥ मैंने यदि जन्म-जन्ममें पूर्त (कूओं, बावली आदि खुद-बाना), इष्ट (यज्ञादि करना), दान, नियम, व्रत तथा देवता, ब्राह्मण और गुरु आदिकी पूजाके द्वारा भगवान् परमेश्वरकी ही आराधना की हो और वे मुझपर प्रसन्न हों, तो भगवान् श्रीकृष्ण आकर मेरा पाणिग्रहण करें; शिशुपाळ-अथवा दूसरा कोई भी पुरुष मेरा स्पर्श न कर सके ॥ ४० ॥ प्रभो ! आप अजित हैं । जिस

दिन मेरा विवाह होनेवाला हो उसके एक दिन पहले आप हमारी राजधानीमें गुप्तरूपसे आ जाइये और फिर बड़े-बड़े सेनापतियोंके साथ शिशुपाळ तथा जरासन्धकी सेनाओंको मथ डालिये, तबस-नहस कर दीजिये और बलपूर्वक राक्षस-विधिसे वीरताका मूल्य देकर मेरा पाणि-ग्रहण कीजिये ॥ ४१ ॥ यदि आप यह सोचते हों कि 'तुम तो अन्तःपुरमें—भीतरके जनाने महलोंमें पहरके अंदर रहती हो, तुम्हारे भाई-बन्धुओंको मारे बिना मैं तुम्हें कैसे ले आ सकता हूँ ?' तो इसका उपाय मैं आपको बतलाये देती हूँ । हमारे कुलका ऐसा नियम है कि विवाहके पहले दिन कुलदेवीका दर्शन करनेके लिये एक बहुत बड़ी यात्रा होती है, शुद्धस निफळता है—जिसमें विशाही जानेवाली कन्याको—दुलहिनको नगरके बाहर गिरिजादेवीके मन्दिरमें जाना पड़ता है ॥ ४२ ॥ कमलनयन ! उमापति भगवान् शङ्करके सयान बड़े-बड़े महापुरुष भी आरमभुजिके लिये आपके चरणकमलोंकी धूलसे स्नान करना चाहते हैं । यदि मैं आपका वह प्रसाद, आपकी वह चरणधूल नहीं प्राप्त कर सकी तो व्रतद्वारा शरीरको सुखाकर प्राण छोड़ दूंगी । चाहे उसके लिये सैकड़ों जन्म क्यों न लेने पड़ें, कभी-न-कभी तो आपका वह प्रसाद अवश्य ही मिलेगा ॥ ४३ ॥

ब्राह्मणदेवत्वाने कहा—यदुवंशशिरोमणे ! यही रुक्मिणी-के अत्यन्त गोपनीय सन्देश हैं, जिन्हें लेकर मैं आपके पास आया हूँ । इसके सम्बन्धमें जो कुछ करना हो, विचार कर लीजिये और तुरंत ही उसके अनुसार कार्य कीजिये ॥ ४४ ॥

तिरपनवाँ अध्याय

रुक्मिणीहरण

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित ! भगवान् श्रीकृष्णने विदर्भराजकुमारी रुक्मिणीजीका यह सन्देश सुनकर अपने हाथसे ब्राह्मणदेवताका हाथ पकड़ लिया और हँसते हुए यों बोले ॥ १ ॥

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—ब्राह्मणदेवता ! जैसे विदर्भराजकुमारी मुझे चाहती हैं, वैसे ही मैं भी उन्हें

चाहता हूँ । मेरा चित्त उन्हींमें लगा रहता है । कहाँ-तक कहूँ, मुझे रातके समय नींदतक नहीं आती । मैं जानता हूँ कि रुक्मिणी देववश मेरा विवाह रोक दिया है ॥ २ ॥ परन्तु ब्राह्मणदेवता ! आप देखियेगा, जैसे छकड़ियोंको मयकर—एक-दूसरेसे रगड़कर मनुष्य उममेंसे आग निकाल लेता है, वैसे ही युद्धमें उन नाम-

घारी क्षत्रियकुलकलङ्को तहसनहस करके अपनेसे प्रेम करनेवाली परमसुन्दरी राजकुमारीको मैं निकाह करूँगा ॥ ३ ॥

श्रीशुकवेधजी कहते हैं—परीक्षित ! मधुसूदन श्री-कृष्णने यह जानकर कि रुक्मिणीके विवाहकी छत्र परसों रात्रिमें ही है, सारथीको आह्वा दी कि 'दारुक ! तनिक भी विलम्ब न करके रथ जोत लओ' ॥ ४ ॥ दारुक भगवान्‌के रथमें शैब्य, सुग्रीव, मेघपुत्र और बल्लहक नामके चार घोड़े जोतकर उसे ले आया और हाथ जोड़कर भगवान्‌के सामने खड़ा हो गया ॥ ५ ॥ धूरनन्दन श्रीकृष्ण ब्राह्मणदेवताको पहले रथपर चढ़ाकर फिर आप भी सवार हुए और उन शीघ्रगामी घोड़ोंके द्वारा एक ही रातमें आनतदेशसे विदर्भदेशमें आ पहुँचे ॥ ६ ॥

कुण्डिनदेश महाराज भीष्मक अपने बड़े लड़के रुक्मीके स्नेहवश अपनी कन्या शिशुपालको देनेके लिये विवाहोत्सवकी तैयारी करा रहे थे ॥ ७ ॥ नगरके राजपथ, चौराहे तथा गली-कूचे झाल-बुहार दिये गये थे, उनपर छिन्नकाप किया जा चुका था । चित्र-विचित्र, रंग-विरंगी, छोटी-बड़ी झंडियाँ और पताकाएँ लगा दी गयी थीं । तोरन बाँध दिये गये थे ॥ ८ ॥ वहाँके श्री-गुरुष पुष्प-माळा, हार, झम-फुल्ले, कन्दन, गहने और निर्मल कल्लोंसे सजे हुए थे । वहाँके सुन्दर-सुन्दर वरोंमेसे अगरके रूपकी सुगन्ध फैल रही थी ॥ ९ ॥ परीक्षित ! राजा भीष्मकने पितर और देवताओंका विधिपूर्वक पूजन करके ब्राह्मणोंको भोजन कराया और नियमानुसार सस्तिवाचन भी ॥ १० ॥ सुशोभित दौतोंवाली परमसुन्दरी राजकुमारी रुक्मिणीजीको ज्ञान कराया गया, उनके हाथोंमें मङ्गल-सूत्र कढ़ाया पहनाये गये, कोइर बनाया गया, दो नये-नये वस्त्र उन्हें पहनाये गये और वे उत्तम-उत्तम आभूषणोंसे विभूषित की गयीं ॥ ११ ॥ श्रेष्ठ ब्राह्मणोंने साम, ऋक और यजुर्वेदके मन्त्रोंसे उनकी रक्षा की और अर्घ्य-वेदके विद्वान्‌पुण्डितने अष्टशान्तिकेलिये हवन किया ॥ १२ ॥ राजा भीष्मक कुलपरम्परा और शास्त्रीय विधियोंके बड़े जानकार थे । उन्होंने सोना, चाँदी, वस्त्र, गुड़ मिले हुए तिल और गौएँ ब्राह्मणोंको दीं ॥ १३ ॥

इसी प्रकार चेदिदेश राजा दमघोषने भी अपने पुत्र

शिशुपालके लिये मन्त्र ब्राह्मणोंसे अपने पुत्रके विवाह-सम्बन्धी मङ्गलकृत्य कराये ॥ १४ ॥ इसके बाद वे मद्र-चुआते हुए हाथियों, सोनेकी माळाओंसे सजाये हुए रथों, पैदलों तथा घुड़सवारोंकी चतुरङ्गिणी सेना साथ लेकर कुण्डिनपुर जा पहुँचे ॥ १५ ॥ विदर्भराज भीष्मकने धागे आकर उनका स्वागत-सत्कार और प्रयागके अनुसार अर्चन-पूजन किया । इसके बाद उन लोगोंको पहलेसे ही निश्चित किये हुए जनवासोंमें आनन्दपूर्वक खड़ा दिया ॥ १६ ॥ उस रातमें शाल्व, जरासन्ध, दन्तवन्ध, विदूरथ और पौण्ड्रक आदि शिशुपालके सहयोगी मित्र नरपति आये थे ॥ १७ ॥ वे सब राजा श्रीकृष्ण और बलरामजीके विरोधी थे और राजकुमारी रुक्मिणी शिशुपालको ही मिले, इस विचारसे आये थे । उन्होंने अपने-अपने मनमें यह पहलेसे ही निश्चय कर रक्खा था कि यदि श्रीकृष्ण, बलराम आदि यदुवशियोंके साथ आकर कन्याको हरनेकी चेष्टा करेगा तो हम सब मिलकर उससे लड़ेंगे । यही कारण था कि उन रात्राओंमें अपनी-अपनी पूरी सेना और रथ, घोड़े, हाथी आदि भी अपने साथ ले लिये थे ॥ १८-१९ ॥

विश्वी राजाओंकी इस तैयारीका पता भगवान् बलरामजीको लगा गया और जब उन्होंने यह सुना कि मैया श्रीकृष्ण अकेले ही राजकुमारीका हरण करनेके लिये चले गये हैं, तब उन्हें वहाँ लड़ार्थ-झगड़ेकी बड़ी आसझा हुई ॥ २० ॥ यद्यपि वे श्रीकृष्णका बल-विक्रम जानते थे, फिर भी आत्मेहसे उनका हृदय भर आया; वे दुरत ही हाथी, घोड़े, रथ और पैदलोंकी बड़ी मारी चतुरङ्गिणी सेना साथ लेकर कुण्डिनपुरके लिये चल पड़े ॥ २१ ॥

इस, परमसुन्दरी रुक्मिणीजी भगवान् श्रीकृष्णके झुमागमनकी प्रतीक्षा कर रही थीं । उन्होंने देखा श्री-कृष्णकी तो कौन कहे, अभी ब्राह्मणदेवता भी नहीं लौटे । वे बड़ी चिन्तामें पड़ गयीं; सोचने लगीं ॥ २२ ॥ 'अहो ! अब मुझ अयागिनीके विवाहमें केवल एक रातकी देरी है । परन्तु मेरे जीवनसर्वस्व कमलनयन भगवान्‌ अब भी नहीं पधारे । इसका क्या कारण हो सकता है, कुछ निश्चय नहीं पाऊँ पड़ता । यही नहीं, मेरे सन्देश ले

जानेवाले ब्राह्मणदेवता भी तो अभी तक नहीं छौटे ॥ २३ ॥
 इसमें सन्देह नहीं कि भगवान् श्रीकृष्णका स्वरूप परम
 शुद्ध है और विबुद्ध पुरुष ही उनसे प्रेम कर सकते
 हैं । उन्होंने मुझमें कुछ-कुछ बुराई देखी होगी, तभी
 तो मेरा हाथ पकड़नेके लिये—मुझे खीकार करनेके
 लिये उषत होकर वे यहाँ नहीं पधार रहे हैं ? ॥ २४ ॥
 ठीक है, मेरे भाग्य ही मन्द हैं । विधाता और भगवान्
 शङ्कर भी मेरे अनुकूल नहीं जान पड़ते । यह भी सम्भव
 है कि रुद्रपत्नी गिरिराजकुमारी सती पार्वतीजी मुझसे
 अप्रसन्न हों ॥ २५ ॥ परीक्षित ! रुक्मिणीजी इसी
 उबेड़-झुनमें पड़ी हुई थी । उनका सम्पूर्ण मन और
 उनके सारे मनोभाव भक्तमनचोर भगवान्‌ने चुरा लिये
 थे । उन्होंने उन्हींको सोचते-सोचते 'अभी समय है'
 ऐसा समझकर अपने आँसूभरे नेत्र बन्द कर लिये । २६ ।
 परीक्षित ! इस प्रकार रुक्मिणीजी भगवान् श्रीकृष्णके
 शुभागमनकी प्रतीक्षा कर रही थीं । उसी समय उनकी
 बायीं जाँघ, भुजा और नेत्र पकड़ने लगे, जो
 प्रियतमके आगमनका प्रिय संवाद सूचित कर रहे
 थे ॥ २७ ॥ इतनेमें ही भगवान् श्रीकृष्णके भेजे हुए
 वे ब्राह्मणदेवता आ गये और उन्होंने अन्तःपुरमें राज-
 कुमारी रुक्मिणीको इस प्रकार देखा, मानो कोई प्यान्-
 मस देवी हो ॥ २८ ॥ सती रुक्मिणीजीने देखा ब्राह्मण-
 देवताका मुख प्रफुल्लित है । उनके मन और चेहरेपर
 किसी प्रकारकी वषबाहट नहीं है । वे उन्हें देखकर
 छक्षणांसे ही समझ गयीं कि भगवान् श्रीकृष्ण आ गये ।
 फिर प्रसन्नतासे खिलकर उन्होंने ब्राह्मणदेवतासे
 पूछा ॥ २९ ॥ तब ब्राह्मणदेवताने निवेदन किया कि
 'भगवान् श्रीकृष्ण यहाँ पधार गये हैं ।' और उनकी भूरि-
 भूरि प्रशंसा की । यह भी बतलाया कि 'राजकुमारीजी !
 आपको ले जानेकी उन्होंने सत्य प्रतिज्ञा की है' ॥ ३० ॥
 भगवान्‌के शुभागमनका समाचार सुनकर रुक्मिणीजीका
 हृदय आनन्दान्तरिकसे भर गया । उन्होंने इसके बदलेमें
 ब्राह्मणके लिये भगवान्‌के अतिरिक्त और कुछ प्रिय न
 देखकर उन्होंने केवल नमस्कार कर लिया । अर्थात्
 जागतकी सभर उषी ब्राह्मणदेवताको सौंप दी ॥ ३१ ॥

राजा भीष्मकने सुना कि भगवान् श्रीकृष्ण और

वल्लभजी मेरी कन्याका विवाह देखनेके लिये उत्सुकता-
 वश यहाँ पधार है । तब दुरही, मेरी आदि बाजे बजवाते
 हुए पूजाकी सामग्री लेकर उन्होंने उनकी अगवानी
 की ॥ ३२ ॥ और मधुपर्क, निर्मल वस्त्र तथा उत्तम-
 उत्तम मेंट देकर निधिपूर्वक उनकी पूजा की ॥ ३३ ॥
 भीष्मकजी बड़े बुद्धिमान थे । भगवान्‌के प्रति उनकी
 बड़ी भक्ति थी । उन्होंने भगवान्‌को सेना और साधियोंके
 सहित समस्त सामग्रियोंसे युक्त निवासस्थानमें ठहराया
 और उनका वषावत् आतिथ्य-सत्कार किया ॥ ३४ ॥
 विदर्भराज भीष्मकजीके यहाँ निमन्त्रणमें जितने राजा आये
 थे, उन्होंने उनके पराक्रम, अवस्था, बल और धनके
 अनुसार सारी इच्छित वस्तुएँ देकर सबका खूब सत्कार
 किया ॥ ३५ ॥ विदर्भदेशके नागरिकोंने जब सुना कि
 भगवान् श्रीकृष्ण यहाँ पधार हैं, तब वे लोग भगवान्‌के
 निवासस्थानपर आये और अपने नयनोंकी अंजलिमें मर-
 भरकर उनके वदनारविन्दका मधुर मकरन्द-रस पान
 करने लगे ॥ ३६ ॥ वे आपसमें इस प्रकार बातचीत
 करते थे—रुक्मिणी इन्हींकी अर्धाङ्गिनी होनेके योग्य
 है, और ये परम पवित्रमूर्ति श्यामसुन्दर रुक्मिणीके ही
 योग्य पति हैं । दूसरी कोई इनकी पत्नी होनेके योग्य
 नहीं है ॥ ३७ ॥ यदि हमने अपने पूर्वजन्म या इस
 जन्ममें कुछ भी स्वर्ग किया हो, तो त्रिलोक-विधाता
 भगवान् हमपर प्रसन्न हों और ऐसी कृपा करें कि श्याम-
 सुन्दर श्रीकृष्ण ही विदर्भराजकुमारी रुक्मिणीजीका
 पाणिग्रहण करें' ॥ ३८ ॥

परीक्षित ! जिस समय प्रेम-परवश होकर पुरवासी-
 लोग परस्पर इस प्रकार बातचीत कर रहे थे, उसी
 समय रुक्मिणीजी अन्तःपुरसे निकलकर देवीजीके
 मन्दिरके लिये चलीं । बहूत-से सैनिक उनकी रक्षामें
 नियुक्त थे ॥ ३९ ॥ वे प्रेममूर्ति श्रीकृष्णचन्द्रके चरण-
 कमलोंका चिन्तन करती हुई भगवती भवानीके पाद-
 पङ्क्तियोंका दर्शन करनेके लिये पैदल ही चलीं ॥ ४० ॥
 वे स्वयं मौन थीं और माताएँ तथा सखी-सहेलियाँ सब
 ओरसे उन्हें घेरे हुए थीं । शूरीर राजसैनिक हाथोंमें
 अक्ष-शस्त्र उठाये, कमच पहने उनकी रक्षा कर रहे थे ।
 उस समय चन्द्र, शङ्ख, डोल, दुरही और मेरी आदि

बाजे बज रहे थे ॥ ४१ ॥ बहुत-सी ब्राह्मणपत्नियों पुष्पमाला, चन्दन आदि सुगन्ध-द्रव्य और गहने-कमलोंसे सज-धजकर साध-साध चल रही थीं और अनेकों प्रकारके उपहार तथा पूजन आदिकी सामग्री लेकर सहस्रों श्रेष्ठ वाराङ्गनाएँ भी साथ थीं ॥ ४२ ॥ गवैये गाते जाते थे, बाजेबाले बाजे बजाते चल्ते थे और सूत, मागध तथा बंदीजन दुर्गाइनके चारों ओर जय-जयकार करते-विरद बखानते जा रहे थे ॥ ४३ ॥ देवीजीके मन्दिर-में गङ्गचक्र रुक्मिणीजीने अपने कमलके सदृश सुकोमल हाथ-पैर धोये, आचमन किया; इसके बाद बाहर-भीतरसे पवित्र एवं शान्तभावसे युक्त होकर अम्बिकादेवीके मन्दिरमें प्रवेश किया ॥ ४४ ॥ बहुत-सी विवि-विधान जाननेवाली बड़ी-बूढ़ी ब्राह्मणियाँ उनके साथ थीं। उन्होंने भगवान् शङ्करकी अर्धाङ्गिनी भवानीको और भगवान् शङ्करजीको भी रुक्मिणीजीसे प्रणाम करवाया ॥ ४५ ॥ रुक्मिणीजीने भगवतीसे प्रार्थना की— 'अम्बिका माता ! आपकी गोदमें बैठे हुए आपके प्रिय पुत्र गणेशजीको तथा आपको मैं बार-बार नमस्कार करती हूँ । आप ऐसा आशीर्वाद दीजिये कि मेरी अमिच्छा पूर्ण हो । भगवान् श्रीकृष्ण ही मेरे पति हों' ॥ ४६ ॥ इसके बाद रुक्मिणीजीने जल, गन्ध, अक्षत, धूप, वस्त्र, पुष्पमाला, हार, आम्रपत्र, अनेकों प्रकारके नैवेद्य, भेंट और भारती आदि सामग्रियोंसे अम्बिकादेवीकी पूजा की ॥ ४७ ॥ तदनन्तर उक्त सामग्रियोंसे तथा नमक, पूजा, पान, कण्ठसूत्र, फल और ईखसे सुहागिन ब्राह्मणियोंकी भी पूजा की ॥ ४८ ॥ तब ब्राह्मणियोंने उन्हें प्रसाद देकर आशीर्वाद दिये और दुर्गाइनने ब्राह्मणियों और माता अम्बिकाको नमस्कार करके प्रसाद ग्रहण किया ॥ ४९ ॥ पूजा-अर्चाकी विधि समाप्त हो जानेपर उन्होंने मौनव्रत तोड़ दिया और रत्नजटित अँगूठोंसे जगन्माते हुए करकमलके द्वारा एक सहेलीका हाथ पकड़कर वे गिरिजाबन्दिरसे बाहर निकलीं ॥ ५० ॥

परीक्षित् । रुक्मिणीजी भगवान्की मायाके समान ही बड़े-बड़े धीर-वीरोंको भी मोहित कर लेनेवाली थीं । उनका कठिभाग बहुत ही सुन्दर और पतल था ।

मुखमण्डलपर कुण्डलोंकी शोभा जगमगा रही थी । वे किशोर और तरुण अवस्थाकी सन्निभें स्थित थीं । नितम्बर जब्बाज करघनी शोभायमान हो रही थी, वक्षःस्थल कुछ उभरे हुए थे और उनकी दृष्टि छटकती हुई अलकोंके कारण कुछ चञ्चल हो रही थी ॥ ५१ ॥ उनके होठोंपर मनोहर मुसकान थी । उनके दाँतोंकी पोंत थी तो कुन्दकलीके समान परम उज्ज्वल, परन्तु पके हुए कुँदरुके समान जल-जल होठोंकी चमकसे उसपर भी अछिया आ गयी थी । उनके पोंबोंके पायजेब चमक रहे थे और उनमें लगे हुए छोटे-छोटे हुँवर रुन्धन-रुन्धन कर रहे थे । वे अपने सुकुमार चरण-कमलोंसे पैदल ही राजहंसकी गतिसे चल रही थीं । उनकी वह अपूर्व छवि देखकर वहाँ आये हुए बड़े बड़े यशसी वीर सब मोहित हो गये । कामदेवने ही भगवान्का कार्य सिद्ध करनेके लिये अपने बाणोंसे उनका हृदय चर्चर कर दिया ॥ ५२ ॥ रुक्मिणीजी इस प्रकार इस उत्सव-यात्राके बहाने मन्द-मन्द गतिसे चलकर भगवान् श्रीकृष्णपर अपना राशि-राशि सौन्दर्य निछावर कर रही थीं । उन्हें देखकर और उनकी खुली मुसकान तथा लजीली चितवनपर अपना चित छुटाकर वे बड़े-बड़े नरपति एवं वीर इतने मोहित और बेहोश हो गये कि उनके हाथोंसे अस्त्र-शस्त्र छूटकर गिर पड़े और वे स्वयं भी रथ, हाथी तथा घोड़ोंसे धरतीपर आ गिरे ॥ ५३ ॥ इस प्रकार रुक्मिणीजी भगवान् श्रीकृष्णके शुभागमनकी प्रतीक्षा करती हुई अपने कमलकी कलीके समान सुकुमार चरणोंको बहुत ही धीरे-धीरे आगे बढ़ा रही थीं । उन्होंने अपने बायें हाथकी अंगुलियोंसे मुखकी ओर छटकती हुई अलकों हटायीं और वहाँ आये हुए नरपतियोंकी ओर लजीली चितवनसे देखा । उसी समय उन्हें श्यामसुन्दर भगवान् श्रीकृष्णके दर्शन हुए ॥ ५४ ॥ राजकुमारी रुक्मिणीजी रथपर चढ़ना ही चाहती थीं कि भगवान् श्रीकृष्णने समस्त शत्रुओंके देखते-देखते उनकी भीड़मेंसे रुक्मिणीजीको उठा लिया और उन सैकड़ों राजाओंके सिरपर पोंव रखकर उन्हें अपने उस रथपर बैठा लिया, जिसकी ध्वजापर गरुडका चिह्न लगा हुआ था ॥ ५५ ॥ इसके बाद जैसे सिंह सियारोंके बीचमेंसे अपना मार्ग ले जाय, वैसे ही

रुक्मिणीजीको लेकर भगवान् श्रीकृष्ण बलरामजी आदि यदुवंशियोंके साथ वहाँसे चले गये ॥ ५६ ॥ उस समय जरासन्धके वशवर्ती अभिमानी राजाओंको अपना यह बड़ा भारी तिरस्कार और यश-कीर्तिका नाश सहन न

हुआ । वे सबके-सब विक्रम कहने लगे—‘अहो, हमें विकार है । आज हमलोग धनुष धारण करके खड़े ही रहे और ये म्वाले, जैसे सिंहके भागीको हरिन के जायें उसी प्रकार हमारा सारा यश छीन ले गये’ ॥ ५७ ॥

चौवनवाँ अध्याय

शिष्टपाण्डके साथी राजाओंकी और रुक्मीकी हार तथा श्रीकृष्ण-रुक्मिणी-विवाह

श्रीकृष्णदेवजी कहते हैं—परीक्षित । इस प्रकार कह-सुनकर सबके-सब राजा क्रोधसे आगबबूल हो उठे और कवच पहनकर अपने-अपने चाहनोंपर सवार हो गये । अपनी-अपनी सेनाके साथ सब धनुष ले-लेकर भगवान् श्रीकृष्णके पीछे दौड़े ॥ १ ॥ राजन् ! जब यदुवंशियोंके सेनापतियोंने देखा कि शत्रुदल हमपर चढ़ा आ रहा है, तब उन्होंने भी अपने-अपने धनुषका टङ्कार किया और घूमकर उनके सामने डट गये ॥ २ ॥ जरासन्धकी सेनाके लोग कोई बोझपर, कोई हाथीपर तो कोई रथपर चढ़े हुए थे । वे सभी धनुर्वेदके बड़े मर्मज्ञ थे । वे यदुवंशियोंपर इस प्रकार बाणोंकी वर्षा करने लगे, मानो दल-के-दल बादल पहाड़ोंपर मूसलधार पानी बरसा रहे हों ॥ ३ ॥ परमसुन्दरी रुक्मिणीजीने देखा कि उनके पति श्रीकृष्णकी सेना बाण-वर्षासे ढक गयी है । तब उन्होंने लज्जाके साथ भयभीत नेत्रोंसे भगवान् श्रीकृष्णके मुखकी ओर देखा ॥ ४ ॥ भगवान्ने हैंसकर कहा—‘सुन्दरी ! डरो मत । तुम्हारी सेना अभी तुम्हारे शत्रुओंकी सेनाको नष्ट किये बालती है’ ॥ ५ ॥ इधर गद और सङ्कर्षण आदि यदुवंशी वीर अपने शत्रुओंका पराक्रम और अधिक न सह सके । वे अपने बाणोंसे शत्रुओंके हाथी, घोड़े तथा रथोंको छिन्न-भिन्न करने लगे । ६ । उनके बाणोंसे रथ, घोड़े और हाथियोंपर बैठे विपक्षी वीरोंके कुण्डल, किरिट और पगड़ियोंसे सुशोभित करोड़ों सिर, खड्ग, गदा और धनुष्युक हाथ, पहुँचे, जोंध और पैर कट-कटकर पृथ्वीपर गिरने लगे । इसी प्रकार घोड़े, खच्चर, हाथी, ऊँट, गधे और मनुष्योंके सिर भी कट-कटकर रणभूमिमें छोटने लगे ॥ ७-८ ॥ अन्तमें विजयकी सच्ची आकाङ्क्षावाले यदुवंशियोंने शत्रुओंकी सेना तहस-

नहस कर बाकी । जरासन्ध आदि सभी राजा युद्धसे पीठ दिखाकर भाग खड़े हुए ॥ ९ ॥

उत्तर शिष्टपाण्ड अपनी भावी पत्नीके छिन्न जानेके कारण मरणासन-स्त हो रहा था । न तो उसके हृदयमें उत्साह रह गया था और न तो शरीरपर कान्ति । उसका मुँह सूख रहा था । उसके पास जाकर जरासन्ध कहने लगा—॥ १० ॥ शिष्टपाण्डजी ! आप तो एक श्रेष्ठ पुरुष हैं । यह उदासी छोड़ दीजिये । क्योंकि राजन् ! कोई भी बात सर्वदा अपने मनके अनुसार ही हो या प्रतिकूल ही हो, इस सम्बन्धमें कुछ स्थिरता किसी भी प्राणीके जीवनमें नहीं देखी जाती ॥ ११ ॥ जैसे कठपुतली बाजीगरकी इच्छाके अनुसार नाचती है, वैसे ही यह जीव भी भगवदिच्छाके अधीन रहकर सुख और दुःखके सम्बन्धमें यथाशक्ति चेष्टा करता रहता है ॥ १२ ॥ देखिये, श्रीकृष्णने मुझे तेईस-तेईस अश्वौहिणी सेनाओंके साथ सत्रह बार हरा दिया, मैंने केवल एक बार—अठारहवीं बार उनपर विजय प्राप्त की ॥ १३ ॥ फिर भी इस बातको लेकर मैं न तो कभी शोक करता हूँ और न तो कभी हर्ष; क्योंकि मैं जानता हूँ कि प्रारम्भके अनुसार कालभगवान् ही इस चराचर जगत्को सकलोरते रहते हैं ॥ १४ ॥ इसमें सन्देह नहीं कि हमलोग बड़े-बड़े वीर सेनापतियोंके भी नायक हैं । फिर भी, इस समय श्रीकृष्णके द्वारा सुरक्षित यदुवंशियोंकी थोड़ी-सी सेनाने हमें हरा दिया है ॥ १५ ॥ इस बार हमारे शत्रुओंकी ही जीत हुई, क्योंकि काल उन्हें अनुकूल था । जब काल हमारे दाहिने होगा, तब हम भी उन्हें जीत लेंगे’ ॥ १६ ॥ परीक्षित । जब भित्रोंने इस प्रकार सम्झाया, तब चेदिराज शिष्टपाण्ड अपने अनुयायियोंके

साथ अपनी राजधानीको छोड़ गया और उसके मित्र राजा भी, जो मरनेसे बचे थे, अपने-अपने नगरोंको चले गये ॥ १७ ॥

रुक्मिणीजीका बड़ा भाई रुक्मी भगवान् श्रीकृष्णसे बहुत द्वेष रखता था । उसको यह बात बिल्कुल सहन न हुई कि मेरी बहिनको श्रीकृष्ण हर ले जायँ और राक्षसीतिसे बलपूर्वक उसके साथ विवाह करें । रुक्मी बली तो था ही, उसने एक अश्वोहिणी सेना साथ ले ली और श्रीकृष्णका पीछा किया ॥ १८ ॥ महाबाहु रुक्मी क्रोधके मारे अछ रहा था । उसने कवच पहनकर और धनुष धारण करके समस्त नरपतियोंके सामने यह प्रतिज्ञा की—॥ १९ ॥ 'मैं आपलोगोंके बीचमें यह शपथ करता हूँ कि यदि मैं युद्धमें श्रीकृष्णको न मार सका और अपनी बहिन रुक्मिणीको न छोड़ा सका तो अपनी राजधानी कुण्डिनपुरमें प्रवेश नहीं करूँगा ॥ २० ॥ परीक्षित ! यह कहकर वह रथपर सवार हो गया और सारथीसे बोला—'जहाँ कृष्ण हो वहाँ शीघ्र-से-शीघ्र मेरा रथ ले चले । आज मेरा उसीके साथ युद्ध होगा ॥ २१ ॥ आज मैं अपने तीखे बाणोंसे उस छोटी बुद्धिवाले ग्वालिके बल-वीर्यका धर्म बूट-चूर कर दूँगा । देखो तो उसका साहस, वह हमारी बहिनको बलपूर्वक हर ले गया है' ॥ २२ ॥ परीक्षित ! रुक्मीकी बुद्धि बिगड़ गयी थी । वह भगवान्‌के तेज-प्रभावको बिल्कुल नहीं जानता था । इसीसे इस प्रकार बहक-बहककर बातें करता हुआ वह एक ही रयसे श्रीकृष्णके पास पहुँचकर लड़कारने लगा—'खड़ा रह ! खड़ा रह !' ॥ २३ ॥ उसने अपने धनुषको बलपूर्वक खींचकर भगवान् श्रीकृष्णको तीन बाण मारे और कहा—'एक क्षण मेरे सामने ठहर । यदुवंशियोंके कुत्तकलह ! जैसे कौआ होमकी सामग्री चुराकर उड़ जाय, वैसा ही तू मेरी बहिनको चुराकर फहाँ भागा जा रहा है ! अरे मन्द ! तू बड़ा मायावी और कापट-युद्धमें कुशल है । आज मैं तेरा सारा गर्व खर्व किये ढाखता हूँ ॥ २४-२५ ॥ देख ! जबतक मेरे बाण तुझे धरतीपर सुड़ा नहीं देते, उसके पहले ही इस बचीको छोड़कर भाग जा ।' रुक्मीकी बात सुनकर भगवान् श्रीकृष्ण मुसकराने लगे ।

उन्होंने उसका धनुष काट डाला और उसपर छः बाण छोड़े ॥ २६ ॥ साथ ही भगवान् श्रीकृष्णने आठ बाण उसके चार बोंड़ोंपर और दो सारथीपर छोड़े और तीन बाणोंसे उसके रथकी चबूको काट डाला । तब रुक्मीने दूसरा धनुष उठाया और भगवान् श्रीकृष्णको पाँच बाण मारे ॥ २७ ॥ उन बाणोंके छानेपर उन्होंने उसका वह धनुष भी काट डाला । रुक्मीने इसके बाद एक और धनुष छिया, परन्तु हाथमें लेते-ही-लेते अग्निनाशी अश्रुतले उसे भी काट डाला ॥ २८ ॥ इस प्रकार रुक्मीने परिश्र, पशिश्र, शूळ, दाक्ष, तक्षार, शक्ति और तोमर—जितने अस्त्र-शस्त्र उठाये, उन सभीको भगवान्‌ने प्रहार करनेके पहले ही काट डाला ॥ २९ ॥ अब रुक्मी क्रोधवश हाथमें तक्षार लेकर भगवान् श्रीकृष्णको मार डालनेकी इच्छासे रयसे कूद पड़ा और इस प्रकार उनकी ओर छपटा, जैसे पतिगा आगकी ओर लपकता है ॥ ३० ॥ जब भगवान्‌ने देखा कि रुक्मी मुझपर चोट करना चाहता है, तब उन्होंने अपने बाणोंसे उसकी दाढ़-तक्षारको तिख-तिख करके काट दिया और उसको मार डालनेके छिये हाथमें तीखी तक्षार निकाल ली ॥ ३१ ॥ जब रुक्मिणीजीने देखा कि ये तो हमारे भाईको अब मार ही डालना चाहते हैं, तब वे भयसे विह्वल हो गयीं और अपने प्रियतम पति भगवान् श्रीकृष्णके चरणोंपर गिरकर करुण-स्वरोसे बोलीं—॥ ३२ ॥ 'देवताओंकी भी आराध्यदेव ! जगपते ! आप योगेश्वर हैं । आपके स्वरूप और इच्छाओंको कोई जान नहीं सकता । आप परम बलवान् हैं । परन्तु कल्याणस्वरूप भी तो हैं । प्रभो ! मेरे सौयाको मारना आपके योग्य काम नहीं है' ॥ ३३ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—रुक्मिणीजीका एक-एक अस्त्र मक्के मारे धर-धर बौंप रहा था । शोककी प्रबलतासे मुँह सूख गया था, गला सूँघ गया था । आतुरता-वश सोनेका हार गलेसे गिर पड़ा था । इसी अवस्थामें वे भगवान्‌के चरणकमल पकटे हुए थीं । परमदयालु भगवान् उन्हें भयभीत देखकर करुणासे द्रवित हो गये । उन्होंने रुक्मीको यार डालनेका विचार छोड़ दिया ॥ ३४ ॥ फिर भी रुक्मी उनके अनिष्टकी चेष्टासे

विमुख न हुआ । तब भगवान् श्रीकृष्णने उसको उसीके दुपट्टेसे बाँध दिया और उसकी दाढ़ी-मूँछ तथा केश कई जगहसे मूँचकर उसे कुरूप बना दिया । तबतक यदुवशी धीरोंने शत्रुकी अद्भुत सेनाको तहस-नहस कर ढाखा—ठीक वैसे ही, जैसे हाथी कमलवनको रौंढ ढाखता है ॥ ३५ ॥ फिर वे लोग उधरसे लौटकर श्रीकृष्णके पास आये, तो देखा कि रुक्मी दुपट्टेसे बँधा हुआ अश्वमरी अवस्थामें पड़ा हुआ है । उसे देखकर सर्वशक्तिमान् भगवान् बलरामजीको बड़ी दया आयी और उन्होंने उसके बन्धन खोलकर उसे छोड़ दिया तथा श्रीकृष्णसे कहा—॥ ३६ ॥ ‘कृष्ण ! तुमने यह अच्छा नहीं किया । यह निर्दिष्ट कार्य हमलोगोंके योग्य नहीं है । अपने सम्बन्धीकी दाढ़ी-मूँछ मूँचकर उसे कुरूप कर देना, यह तो एक प्रकटरका बंध ही है’ ॥ ३७ ॥ इसके बाद बलरामजीने रुक्मिणीको सम्बोधन करके कहा—‘साध्वी ! तुम्हारे भाईका रूप विकृत कर दिया गया है, यह सोचकर हमलोगोंसे घुरा न मानना, क्योंकि जीवनको सुख-दुःख देनेवाला कोई दूसरा नहीं है । उसे तो अपने ही कर्मका फल भोगना पड़ता है ॥ ३८ ॥ अब श्रीकृष्णसे बोले—‘कृष्ण ! यदि अपना सगा-सम्बन्धी बंध फटने योग्य अपराध करे, तो भी अपने ही सम्बन्धियोंके द्वारा उसका मारा जाना उचित नहीं है । उसे छोड़ देना चाहिये । वह तो अपने अपरावसे ही भर चुका है, मरे हुएको फिर क्या मारना ?’ ॥ ३९ ॥ फिर रुक्मिणीजीसे बोले—‘साध्वी ! प्रह्लादजीने क्षत्रियोंका धर्म ही ऐसा बना दिया है कि सगा भाई भी अपने भाईको मार डालता है । इसलिये यह क्षात्रधर्म अत्यन्त घोर है’ ॥ ४० ॥ इसके बाद श्रीकृष्णसे बोले—‘भाई कृष्ण ! यह ठीक है कि जो लोग धनके नशेमें अचे हो रहे हैं और अभिमानी हैं, वे राज्य, पृथ्वी, पैसा, ली, मान, तेज अथवा किसी और कारणसे अपने बन्धुजोंका भी तिरस्कार कर दिया करते हैं’ ॥ ४१ ॥ अब वे रुक्मिणीजीसे बोले—‘साध्वी ! तुम्हारे भाई-बन्धु समस्त प्राणियोंके प्रति दुर्भाव रखते हैं । हमने उनके मङ्गलके लिये ही उनके प्रति दण्डविधान किया है । उसे तुम अज्ञानियोंकी भाँति अमङ्गल मान रही हो, यह तुम्हारी

बुद्धिकी विषमता है ॥ ४२ ॥ देख ! जो लोग भगवान्की मायासे मोहित होकर देहको ही आत्मा मान बैठते हैं, उन्हींको ऐसा आत्ममोह होता है कि यह मित्र है, यह शत्रु है और यह उदासीन है ॥ ४३ ॥ समस्त देह-चारियोंकी आत्मा एक ही है और कार्य-कारणसे, मायासे उसका कोई सम्बन्ध नहीं है । जल और घड़ा आदि उपाधियोंके भेदसे जैसे सूर्य, चन्द्रमा आदि प्रकाशयुक्त पदार्थ और आकाश भिन्न-भिन्न भावमें पड़ते हैं; परन्तु हैं एक ही, वैसे ही मूर्ख लोग शरीरके भेदसे आत्माका भेद मानते हैं ॥ ४४ ॥ यह शरीर आदि और अन्तवाला है । पञ्चभूत, पञ्चप्राण, तन्मात्रा और त्रिगुण ही इसका स्वरूप है । आत्माने उसके अज्ञानसे ही इसकी कल्पना डुई है और वह कल्पित शरीर ही, जो उसे ‘मैं’ समझता है, उसको जन्म-मृत्युके चक्रमें ले जाता है ॥ ४५ ॥ साध्वी ! नेत्र और रूप दोनों ही सूर्यके द्वारा प्रकाशित होते हैं । सूर्य ही उनका कारण है । इसलिये सूर्यके साथ नेत्र और रूपका न तो कमी बियोग होता है और न संयोग । इसी प्रकार समस्त संसारकी सच्चा आत्मसत्ताके कारण जान पड़ती है, समस्त संसारका प्रकाशक आत्मा ही है । फिर आत्माके साथ दूसरे असत् पदार्थोंका संयोग या बियोग हो ही कैसे सकता है ? ॥ ४६ ॥ जन्म लेना, रहना, बढ़ना, बदलना, घटना और मरना—ये सारे विकार शरीरके ही होते हैं, आत्माके नहीं । जैसे कृष्णपक्षमें कलशोंका ही क्षय होता है, चन्द्रमाका नहीं, परन्तु अमावस्याके दिन भ्रमहारमें लोग चन्द्रमाका ही क्षय हुआ कहते-सुनते हैं, वैसे ही जन्म-मृत्यु आदि सारे विकार शरीरके ही होते हैं, परन्तु लोग उसे अम-बश अपना—अपने आत्माका मान लेते हैं ॥ ४७ ॥ जैसे सोया हुआ पुरुष किसी पदार्थके न होनेपर भी खपमें मोका, योग्य और भोगरूप फलोंका अनुभव करता है, उसी प्रकार अज्ञानीलोग झूठमूढ़ संसार-चक्रका अनुभव करते हैं ॥ ४८ ॥ इसलिये साध्वी ! अज्ञानके कारण होनेवाले इस शोकको त्याग दो । यह शोक अन्तःकरणको मुरझा देता है, मोहित कर देता है । इसलिये इसे छोड़कर तुम अपने स्वरूपमें स्थित हो जाओ’ ॥ ४९ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित ! जब बलराम-जीने इस प्रकार समझाया, तब परमसुन्दरी रुक्मिणीजीने अपने मनका मैल मिटाकर विवेक-बुद्धिसे उसका समाधान किया ॥५०॥ रुक्मिणी सेना और उसके तेजका नाश हो चुका था । केवल प्राण बच रहे थे । उसके चित्तकी सारी आशा-अभिलाषाएँ व्यर्थ हो चुकी थीं और शत्रुओंने अपमानित करके उसे छोड़ दिया था । उसे अपने विरूप किये जानेकी काष्ठदायक स्मृति मूल नहीं पाती थी ॥५१॥ अतः उसने अपने रहनेके लिये भोजफट नामकी एक बहुत बड़ी नगरी बसायी । उसने पहले ही यह प्रतिज्ञा कर ली थी कि 'दुर्बुद्धि कृष्णको मारे बिना और अपनी छोटी बहिनको जौटाये बिना मैं कुण्डिनपुरमें प्रवेश नहीं करूँगा ।' इसलिये क्रोध करके वह वहीं रहने लगा ॥५२॥

परीक्षित । भगवान् श्रीकृष्णने इस प्रकार सब राजाओंको जीत लिया और विदर्भराजकुमारी रुक्मिणी-जीकी हारकामें लाकर उनका विधिपूर्वक पाणिग्रहण किया ॥ ५३ ॥ हे राजन् । उस समय हारकापुरीमें घर-घर बड़ा ही उत्सव मनाया जाने लगा । क्यों न हो, वहाँके सभी लोगोंका यदुपनि श्रीकृष्णके प्रति अनन्य प्रेम जो था ॥५४॥ वहाँके सभी नर-नारी मणियोंके चमकीले

कुण्डल धारण किये हुए थे । उन्होंने आनन्दमें भरकर चित्र-विचित्र वस्त्र पहने दूल्हा और दुल्हनिको अनेकों भेटकी सामग्रियों उपहारमें दीं ॥५५॥ उस समय हारकाकी अपूर्व शोभा हो रही थी । कहीं बड़ी-बड़ी पताकाएँ बहुत ऊँचितक फहरा रही थीं । चित्र-विचित्र मालाएँ, कन और रत्नोंके तोरन बँधे हुए थे । द्वार-द्वारपर दूब, खील आदि मङ्गलकी वस्तुएँ सजायी हुई थीं । जलमरे कलश, अरगजा और धूपकी सुगन्ध तथा दीपावलीसे बड़ी ही मिलकण शोभा हो रही थी ॥५६॥ मित्र नरपति आमन्त्रित किये गये थे । उनके मतवाले हाथियों-के मदमें हारकाकी सबक और गलियौका छिबकाव हो गया था । प्रत्येक दरवाजेपर केलोंके खंभे और सुपारीके पेड़ रोपे हुए बहुत ही मले मादूम होते थे ॥ ५७ ॥ उस अखण्ड कुतूहलका श्वर-उपर दौड़-धूप करते हुए बन्धुबन्धोंमें कुल, सख्य, कैकय, विदर्भ, यदु और कुन्ति आदि वंशोंके लोग परस्पर आनन्द मना रहे थे ॥५८॥ जहाँ-तहाँ रुक्मिणी-हरणकी ही गाथा गायी जाने लगी । उसे सुनकर राजा और राजकन्याएँ आप्तनत त्रिस्मित हो गयी ॥५९॥ महाराज ! भगवती लक्ष्मीजीकी रुक्मिणीके रूपमें साक्षात् लक्ष्मीपति भगवान् श्रीकृष्णके साथ देखकर हारकावासी नर-नारियोंको परम आनन्द हुआ ॥६०॥

पचपनवाँ अध्याय

प्रद्युम्नका जन्म और शम्भरासुरका वध

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित ! कामदेव भगवान् वासुदेवके ही अंश हैं । वे पहले रुद्रभगवान्की ओचासि-से भस्म हो गये थे । अब फिर शरीर-प्राप्तिके लिये उन्होंने अपने अंशी भगवान् वासुदेवका ही आश्रय लिया ॥१॥ वे ही काम अवकी वार भगवान् श्रीकृष्णके द्वारा रुक्मिणीजीके गर्भसे उत्पन्न हुए और प्रद्युम्ननामसे जगत्में प्रसिद्ध हुए । सौन्दर्य, वीर्य, सौशील्य आदि सद्गुणोंमें भगवान् श्रीकृष्णसे वे किसी प्रकार कम न थे ॥ २ ॥ बालक प्रद्युम्न अभी दस दिनोंके भी न हुए थे कि काम-रूपी शम्भरासुर वेप बदलकर स्निग्धगृहसे उन्हें हर ले गया और समुद्रमें फेंककर अपने घर लौट गया ।

उसे मादूम हो गया था कि यह मेरा भावी शत्रु है ॥ ३ ॥ समुद्रमें बालक प्रद्युम्नको एक बड़ा मारी मच्छ निगल गया । तदनन्तर मछुओंने अपने बहुत बड़े जालमें फँसाकर दूसरी मछलियोंके साथ उस मच्छको भी पकड़ लिया ॥४॥ और उन्होंने उसे ले जाकर शम्भरासुर-को भेंटके रूपमें दे दिया । शम्भरासुरके रसोहये उस अद्भुत मच्छको उठाकर रसोईघरमें ले आये और कुल्हाड़ियोंसे उसे काटने लगे ॥ ५ ॥ रसोइयोंने मत्स्यके पेटमें बालक देखकर उसे शम्भरासुरकी दासी मायावती-को संपर्पित किया । उसके मनमें बड़ी शका हुई । तब नारदने आकर बालकका कामदेव होना, श्रीकृष्णकी पत्नी

रुक्मिणीके गर्भसे जन्म लेना, मच्छके पेटमें जाना सब कुछ कह सुनाया ॥ ६ ॥ परिक्षित् । वह मायावती कामदेवकी यशस्विनी पत्नी रति ही थी । जिस दिन शङ्करजीके क्रोधसे कामदेवका शरीर मलम हो गया था, उसी दिनसे वह उसकी देखके पुनः उत्पन्न होनेकी प्रतीक्षा कर रही थी ॥ ७ ॥ उसी रतिके शम्भरासुरने अपने यहाँ दाढ-भात बनानेके काममें नियुक्त कर रक्खा था । जब उसे माछम हुआ कि इस शिशुके रूपमें मेरे पति कामदेव ही हैं, तब वह उसके प्रति बहुत प्रेम करने लगी ॥ ८ ॥ श्रीकृष्णकुमार भगवान् प्रयुञ्ज बहुत थोड़े दिनोंमें जवान हो गये । उनका रूप-लक्षण इतना अद्भुत था कि जो स्त्रियाँ उनकी ओर देखतीं, उनके मनमें शृङ्गार-रसका उदीपन हो जाता ॥ ९ ॥ कमलदलके समान कोमल एवं विशाल नेत्र घुटनोंतक लबी-लबी बौँहें और मनुष्यलोकमें सबसे सुन्दर शरीर । रति सखज हाथके साथ मौंह मटकाकर उनकी ओर देखती और प्रेमसे भरकर ली-पुरुषसम्बन्धी भाव व्यक्त करती हुई उनकी सेवा-शुश्रूषामें लगी रहती ॥ १० ॥ श्रीकृष्णनन्दन भगवान् प्रयुञ्जने उसके भावोंमें परिवर्तन देखकर कहा— 'देखि । तुम तो मेरी मौँके समान हो । तुम्हारी चुम्बि उठती कैसे हो गयी ? मैं देखता हूँ कि तुम माताका भाव छोड़कर कामिनीके समान हाव-भाव दिखा रही हो' ॥ ११ ॥

रतिने कहा—'प्रभो ! आप स्वयं भगवान् नारायणके पुत्र हैं । शम्भरासुर आपको सुतिकाग्रहसे चुरा लिया था । आप मेरे पति स्वयं कामदेव है और मैं आपकी सदाकी धर्म-पत्नी रति हूँ ॥ १२ ॥ मेरे स्वामी ! जब आप दस दिनके भी न थे, तब इस शम्भरासुरने आपको हरकर समुद्रमें डाल दिया था । वहाँ एक भच्छ आपको निगल गया और उसीके पेटसे आप यहाँ मुझे प्राप्त हुए हैं ॥ १३ ॥ यह शम्भरासुर सैकड़ों प्रकारकी माया जानता है । इसको अपने वशमें कर लेना या जीत लेना बहुत ही कठिन है । आप अपने इस शत्रुको मोहन आदि मायाओंके द्वारा नष्ट कर ढालिये ॥ १४ ॥ स्वामिन्' अपनी सन्तान आपके खो जानेसे आपकी माता पुत्रलेहसे व्याकुल हो रही हैं, वे आतुर होकर अत्यन्त दीनतासे रात-दिन

विन्ता करती रहती हैं । उनकी ठीक वैसी ही दशा हो रही है, जैसी बच्चा खो जानेपर कुन्नी पक्षीकी अथवा बछड़ा खो जानेपर बेचारी गायकी होती है ॥ १५ ॥ मायावती रतिने इस प्रकार कहकर परमशक्तिशाली प्रयुञ्जको भ्रामाया नामकी विद्या सिखायी । यह विद्या ऐसी है, जो सब प्रकारकी मायाओंका नाश कर देती है ॥ १६ ॥ अब प्रयुञ्जजी शम्भरासुरके पास जाकर उसपर बड़े कटु-कटु आक्षेप करने लगे । वे चाहते थे कि यह किसी प्रकार शगड़ा बन बैठे । इतना ही नहीं, उन्होंने पुत्रके छिपे उसे स्पष्टरूपसे छलकारा ॥ १७ ॥

प्रयुञ्जजीके कटुवचनोंकी चोटसे शम्भरासुर तिल-मिल उठा । मानो किसीने विषैले सोंपको पैरसे ठोकर मार दी हो । उसकी आँखें क्रांशसे लाल हो गयीं । वह हाथमें गदा लेकर बाहर निकल आया ॥ १८ ॥ उसने अपनी गदा बड़े जोरसे आकाशमें झुमायी और इसके बाद प्रयुञ्जजीपर चला दी । गदा चलते समय उसने इतना कर्कश सिंहनाद किया, मानो बिजली कड़क रही हो ॥ १९ ॥ परिक्षित् । भगवान् प्रयुञ्जने देखा कि उसकी गदा बड़े वेगसे मेरी ओर आ रही है । तब उन्होंने अपनी गदाके प्रहारसे उसकी गदा गिरा दी और क्रोधमें भरकर अपनी गदा उसपर चलायी ॥ २० ॥ तब वह दैत्य मयासुरकी बतलायी हुई आसुरी मायाका आश्रय लेकर आकाशमें चला गया और वहाँसे प्रयुञ्जजी-पर अक्ष-शलोंकी वर्षा करने लगा ॥ २१ ॥ महारथी प्रयुञ्जजीपर बहुत-सी अक्ष-वर्षा करके जब वह उन्हें पीड़ित करने लगा, तब उन्होंने समस्त मायाओंको शान्त करनेवाली सत्त्वमयी महाविद्याका प्रयोग किया ॥ २२ ॥ तदनन्तर शम्भरासुरने यक्ष, गन्धर्व, पिशाच, नाग और राक्षसोंकी सैकड़ों मायाओंका प्रयोग किया, परन्तु श्री-कृष्णकुमार प्रयुञ्जजीने अपनी महाविद्यासे उन सबका नाश कर दिया ॥ २३ ॥ इसके बाद उन्होंने एक तीक्ष्ण तलवार उठायी और शम्भरासुरका किरिटी एवं कुण्डलसे सुशोभित सिर, जो लाल-लाल दाढ़ी-मूँओंसे बड़ा भयङ्कर लग रहा था, काटकर चढ़से अलग कर दिया ॥ २४ ॥ देवता लोग पुण्योंकी वर्षा करते हुए स्तुति करने लगे और इसके बाद मायावती रति, जो

आकाशमें चलना जानती थी, अपने पति प्रद्युम्नजीको आकाशमार्गसे द्वारकापुरीमें ले गयी ॥२५॥

परीक्षित ! आकाशमें अपनी गोरी पत्नीके साथ सौंके प्रद्युम्नजीकी ऐसी शोभा हो रही थी, मानो बिजली और मेघका जोड़ा हो । इस प्रकार उन्होंने भगवान्‌के उस उत्तम अन्तःपुरमें प्रवेश किया, जिसमें सैकड़ों श्रेष्ठ दमनियों निवास करती थी ॥२६॥ अन्तःपुरकी नारियोंने देखा प्रद्युम्नजीका शरीर वर्षाकालीन मेघके समान श्यामवर्ण है । रेशमी पीताम्बर धारण किये हुए हैं । घुटनोंतक लम्बी मुजाएँ हैं, रत्नारे नेत्र हैं । और सुन्दर मुखपर मन्द-मन्द मुसकानकी अनूठी ही छटा है । उनके मुखारविन्दपर घुँघराही और मीठी अलकों इस प्रकार शोभायमान हो रही हैं, मानो भीरे खेल रहे हों । वे सब उन्हें श्रीकृष्ण समक्षकर सकुचा गयीं और घरमें इधर-उधर छुक-छिप गयीं ॥२७-२८॥ फिर धीरे-धीरे जियोंको यह मादम हो गया कि ये श्रीकृष्ण नहीं हैं । क्योंकि उनकी अपेक्षा इनमें कुछ विलक्षणता अवश्य है । अब वे अत्यन्त आनन्द और विस्मयसे भरकर इस श्रेष्ठ दम्पतिके पास आ गयीं ॥ २९ ॥ इसी समय वहाँ रुक्मिणीजी आ पहुँचीं । परीक्षित ! उनके नेत्र कजरारे और बाणी अत्यन्त मधुर थी । इस नवीन दम्पतिको देखते ही उन्हें अपने खोये हुए पुत्रकी याद हो आयी । वात्सल्यस्नेहकी अधिकतासे उनके स्तनोंसे दूध झरने लगा ॥ ३० ॥ रुक्मिणीजी सोचने लगीं—'यह नररत्न कौन है ! यह कमलनयन किसका पुत्र है ! किस कब-भागिनीने इसे अपने गर्भमें धारण किया होगा ! इसे यह कौन सौभाग्यवती पत्नीरूपमें प्राप्त हुई है ? ॥ ३१ ॥ मेरा भी एक नन्हा-सा मित्रु खो गया था । न जाने कौन उसे सूतिकाग्रहसे उठा ले गया । यदि वह कहीं जीता-जागता होगा तो उसकी अवस्था तथा रूप भी इसीके समान हुआ होगा ॥ ३२ ॥ मैं तो इस बातसे हैरान हूँ कि इसे भगवान् श्यामसुन्दरकी-सी रूप-रेखा, अङ्गोंकी गठन, चाल-ढाँच, मुसकान-चितवन और बोल-

चाल कहाँसे प्राप्त हुई ! ॥ ३३ ॥ हो न हो यह वही बाळक है, जिसे मैंने अपने गर्भमें धारण किया था । क्योंकि सम्भवसे ही मेरा स्नेह इसके प्रति उमड़ रहा है और मेरी बर्षा बौह भी फटक रही है' ॥ ३४ ॥

जिस समय रुक्मिणीजी इस प्रकार सोच-विचार कर रही थीं—निश्चय और सन्देहके झुल्लेमें झूल रही थीं, उसी समय पवित्रकीर्ति भगवान् श्रीकृष्ण अपने माता-पिता देवकी-बसुदेवजीके साथ वहाँ पधारे ॥ ३५ ॥ भगवान् श्रीकृष्ण सब कुछ जानते थे । परन्तु वे कुछ न बोले, चुपचाप खड़े रहे । इतनेमें ही नारदजी वहाँ आ पहुँचे और उन्होंने प्रद्युम्नजीको शम्भरासुरका हार ले जाना, समुद्रमें फेंक देना आदि जितनी भी घटनाएँ घटित हुई थीं, वे सब कह सुनायीं ॥ ३६ ॥ नारदजी-के द्वारा यह महान् आश्चर्यमयी घटना सुनकर भगवान् श्रीकृष्णके अन्तःपुरकी बियाँ चकित हो गयीं और बहुत वर्षोंतक खोये रहनेके बाद लौटे हुए प्रद्युम्नजीका इस प्रकार अभिमान करने लगीं, मानो कोई मरकर जी उठा हो ॥ ३७ ॥ देवकीजी, बसुदेवजी, भगवान् श्रीकृष्ण, बळरामजी, रुक्मिणीजी और बियाँ—सब उस नव-दम्पतिको हृदयसे लगाकर बहुत ही आनन्दित हुए ॥ ३८ ॥ जब द्वारकावासी नर-नारियोंको यह मादम हुआ कि खोये हुए प्रद्युम्नजी लौट आये हैं, तब वे परस्पर कहने लगे—'अबो, कैसे सौभाग्यकी बात है कि यह बाळक मानो मरकर फिर लौट आया' ॥ ३९ ॥ परीक्षित ! प्रद्युम्नजीका रूप-रंग भगवान् श्रीकृष्णसे इतना मिश्रता-शुद्धता था कि उन्हें देखकर उनकी माताएँ भी उन्हें अपना पतिदेव श्रीकृष्ण समझकर मधुरभावमें मग्न हो जाती थीं और उनके सामनेसे हटकर एकान्तमें चली जाती थीं । श्रीनिक्तन भगवान्‌के प्रतिस्मिक्सरूप कामाक्षतर भगवान् प्रद्युम्नके दीख जानेपर ऐसा होना कोई आश्चर्यकी बात नहीं है । फिर उन्हें देखकर दूसरी बियाँकी विचित्र दशा हो जाती थी, इसमें तो कहना ही क्या है ॥ ४० ॥

छपनवाँ अध्याय

स्यमन्तकमणिकी कथा, जाम्बवती और सत्यभामाके साथ श्रीकृष्णका विवाह

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित् । सत्राजित्ने श्रीकृष्णको झूठा फलङ्क लगाया था । फिर उस अपराधका मार्जन करनेके लिये उसने स्वयमन्तकमणिसहित अपनी कन्या सत्यभामा भगवान् श्रीकृष्णको सौंप दी ॥ १ ॥

राजा परीक्षित्ने पूछा—भगवन् । सत्राजित्ने भगवान् श्रीकृष्णका क्या अपराध किया था ? उसे स्वयमन्तकमणि कहते सिद्धि ? और उसने अपनी कन्या उन्हें क्यों दी ? ॥ २ ॥

श्रीशुकदेवजीने कहा—परीक्षित् । सत्राजित् भगवान् सूर्यका बहुत बड़ा भक्त था । वे उसकी भक्तिसे प्रसन्न होकर उसके बहुत बड़े मित्र बन गये थे । सूर्य भगवान्ने ही प्रसन्न होकर बड़े प्रेमसे उसे स्वयमन्तकमणि दी थी ॥ ३ ॥ सत्राजित् उस मणिको गलेमें धारणकर ऐसा चमकने लगा, मानो स्वयं सूर्य ही हो । परीक्षित् । जब सत्राजित् द्वारकामें आया, तब अर्जुन तेजस्वित्ताके कारण लोग उसे पहचान न सके ॥ ४ ॥ दूरसे ही उसे देखकर लोगोंकी ओंखें उसके तेजसे चौंधिया गयीं । लोगोंने समझा कि कदाचित् स्वयं भगवान् सूर्य आ रहे हैं । उन लोगोंने भगवान्के पास आकर उन्हें इस बातकी सूचना दी । उस समय भगवान् श्रीकृष्ण बीस लेख रहे थे ॥ ५ ॥ लोगोंने कहा—‘शङ्ख-चक्र-गदाधारी मारायण । कमलनयन दामोदर । यदुवंशशिरोमणि गोविन्द । आपको नमस्कार है ॥ ६ ॥ जगद्बीर । देखिये ! अपनी चमकीली किरणोंसे लोगोंके नेत्रोंकी चौंधियाते हुए प्रचण्डरश्मि भगवान् सूर्य आपका दर्शन करने आ रहे हैं ॥ ७ ॥ प्रभो ! सभी श्रेष्ठ देवता त्रिलोकीमें आपकी प्राप्तिका मार्ग ढूँढ़ते रहते हैं; किन्तु उसे पाते

वहीं । आज आपको यदुवंशमें छिपा हुआ जानकर स्वयं सूर्यनारायण आपका दर्शन करने आ रहे हैं’ ॥ ८ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित् । अनजान पुरुषोंकी यह बात सुनकर कमलनयन भगवान् श्रीकृष्ण हँसने लगे । उन्होंने कहा—‘अरे ये सूर्यदेव नहीं हैं । यह तो सत्राजित् है, जो मणिके कारण इतना चमक रहा है ॥ ९ ॥ इसके बाद सत्राजित् अपने समुद्र वरमें चला आया । वरपर उसके शुभागमनके उपलक्ष्यमें मङ्गल-उत्सव मनाया जा रहा था । उसने मङ्गलोंके द्वारा स्वयमन्तकमणिको एक देवमन्दिरमें स्थापित करा दिया ॥ १० ॥ परीक्षित् । वह मणि प्रतिदिन आठ बार* सोना दिया करती थी । और जहाँ वह पूजित होकर रहती थी, वहाँ द्रुमिष्ठ, महागरी, ग्रहपीडा, सर्पमय, मानसिक और शारीरिक व्यथा तथा मायाविषोंका उपश्रव आदि कोई भी अशुभ नहीं होता था ॥ ११ ॥ एक बार भगवान् श्रीकृष्णने प्रसन्नवश कहा—‘सत्राजित् ! तुम अपनी मणि राजा उग्रसेनको दे दो ।’ परन्तु वह इतना अर्थ-लोलुप—लेशी था कि भगवान्की आज्ञाका उल्लङ्घन होगा, इसका कुछ भी विचार न करके उसे अस्वीकार कर दिया ॥ १२ ॥

एक दिन सत्राजित्के भाई प्रसेनने उस परम प्रकाश-मयी मणिको अपने गलेमें धारण कर लिया और फिर वह घोड़ेपर सवार होकर शिकार खेलने वनमें चला गया ॥ १३ ॥ वहाँ एक सिंहने बोहेसहित प्रसेनको मार डाला और उस मणिको छीन लिया । वह अमी पर्वतकी गुफामें प्रवेश कर ही रहा था कि मणिके लिये ऋक्षराज जाम्बवान्ने उसे मार डाला ॥ १४ ॥ उन्होंने वह मणि अपनी गुप्तमें

* बारका परिमाण इस प्रकार है—

चतुर्भिर्ग्रीहभिर्युजं शुक्लान्पद्मं धर्मं पयान् ।
अष्टौ चरणयष्टी च कर्षं सोम्यतुरः पण्य ।
तुल्यं पण्यतं प्रादुर्भारं स्वर्गिस्तिसुखः ॥

अर्थात् ‘चार ग्रीह (घन) की एक शुद्धा, पाँच शुद्धाका एक पण्य; आठ पण्यका एक चरण, आठ चरणका एक कर्ष, चार कर्षका एक पण्य, चौ पण्यका एक तुल्य और बीस तुल्यका एक मार कदलता है ।

ले जाकर बन्धेको खेलेके लिये दे दी । अपने भाई प्रसेनके न बैठनेसे उसके भाई सत्राजितको बड़ा दुःख हुआ ॥ १५ ॥ वह कहने लगा, 'बहुत सम्भव है श्री-कृष्णने ही मेरे भाईको मार डाला हो । क्योंकि वह मणि गलेमें ढाळकर वनमें गया था ।' सत्राजितकी यह बात सुनकर लोग आपसमें काना-भूँसी करने लगे ॥ १६ ॥ जब भगवान् श्रीकृष्णने सुना कि यह कलङ्कका टीका मेरे ही सिर लगाया गया है, तब वे उसे घोबहानेके उद्देश्यसे नगरके कुछ सभ्य पुरुषोंको साथ लेकर प्रसेनको ढूँढ़नेके लिये वनमें गये ॥ १७ ॥ वहाँ खोजते-खोजते जोगोंने देखा कि घोर जंगलमें सिंहने प्रसेन और उसके घोबेको मार डाला है । जब वे जंगल सिंहके पैरोंका चिह्न देखते हुए आगे बढ़े, तब उन जोगोंने यह भी देखा कि पर्वतपर एक रिछने सिंहको भी मार डाला है ॥ १८ ॥

भगवान् श्रीकृष्णने सब जोगोंको बाहर ही बिठा दिया और अकेले ही घोर जङ्गलमें भरी हुई शूरा-राजकी भयङ्कर गुफामें प्रवेश किया ॥ १९ ॥ भगवान्ने वहाँ जाकर देखा कि श्रेष्ठ मणि लम्बन्तकको बन्धोंका खिलौना बना दिया गया है । वे उसे हर लेनेकी इच्छासे बन्धेके पास जा खड़े हुए ॥ २० ॥ उस गुफामें एक अपरिचित मनुष्यको देखकर बन्धेकी प्राय भयभीतकी भाँति चिल्ला उठी । उसकी चिल्लाहट सुनकर परम बली शूराज जाम्बवान् क्रोधित होकर वहाँ दौड़ आये ॥ २१ ॥ परीक्षित । जाम्बवान् उस समय क्रुपित हो रहे थे । उन्हें भगवान्की महिमा, उनके प्रभावका पता न चला । उन्होंने उन्हें एक साधारण मनुष्य समझ लिया और वे अपने स्वामी भगवान् श्रीकृष्णसे युद्ध करने लगे ॥ २२ ॥ जिस प्रकार मासके लिये दो बाज आपसमें लड़ते हैं, वैसे ही विजयाभिलाषी भगवान् श्रीकृष्ण और जाम्बवान् आपसमें घमासान युद्ध करने लगे । पहले तो उन्होंने अक्ष-शङ्खोंका प्रहार किया, फिर शिलाओंका । तत्पश्चात् वे वृक्ष उखाड़कर एक दूसरेपर फेंकने लगे । अन्तमें उनमें बाहुयुद्ध होने लगा ॥ २३ ॥ परीक्षित । वज्र-प्रहारके समान कठोर घूँसोंसे आपसमें वे अट्टहास दिनतक बिना विश्राम किये रात-दिन लड़ते रहे ॥ २४ ॥ अन्तमें भगवान् श्रीकृष्णके घूँसोंकी चोटसे

जाम्बवान्के शरीरकी एक-एक गूँठ टूट-फूट गयी । उल्टा जाता रहा । शरीर पसीनेसे लथपथ हो गया । तब उन्होंने क्षण्यन्त विस्मित—चकित होकर भगवान् श्रीकृष्णसे कहा—॥ २५ ॥ प्रभो ! मैं जान गया । आप ही समस्त प्राणियोंके स्वामी, रक्षक, पुराणपुरुष भगवान् विष्णु हैं । आप ही सबके प्राण, इन्द्रियबल, मनोबल और शरीरबल हैं ॥ २६ ॥ आप विश्वके रचयिता ब्रह्मा आदिको भी बनानेवाले हैं । बनाये हुए पदार्थोंमें भी सत्त्वरूपसे आप ही विराजमान हैं । काळके जितने भी अवयव हैं, उनके नियामक परम काळ आप ही हैं और शरीर-भेदसे भिन्न-भिन्न प्रतीयमान अन्तरात्माओंके परम आत्मा भी आप ही हैं ॥ २७ ॥ प्रभो ! मुझे स्मरण है, आपने अपने नेत्रोंमें तनिक-सा क्रोधका माघ लेकर तिरछी दृष्टिसे समुद्रकी ओर देखा था । उस समय समुद्रके अंदर रहनेवाले बड़े-बड़े नाक (वधिषाक) और मगरमच्छ क्षुब्ध हो गये थे और समुद्रने आपको मार्ग दे दिया था । तब आपने उसपर सेतु बाँधकर सुन्दर यस्त्री स्थापना की तथा लङ्काका विध्वंस किया । आपके बाणोंसे कट-कटकर राक्षसोंके सिर पृथ्वीपर छोट रहे थे । (अवश्य ही आप मेरे थे ही 'रामजी' श्रीकृष्णके रूपमें आये हैं) ॥ २८ ॥ परीक्षित । जब शूराज जाम्बवान्ने भगवान्को पहचान लिया, तब कमलनयन श्रीकृष्णने अपने परमकल्याणकारी शीतल चरकमलको उनके शरीरपर फेर दिया और फिर अष्टैतुकी कृपासे भरकर प्रेमगम्भीरबाणीसे अपने भक्त जाम्बवान्-जीसे कहा—॥ २९-३० ॥ 'शूराज ! हम मणिके लिये ही तुम्हारी इस गुफामें आये हैं । इस मणिके द्वारा मैं अपनेपर लगे झूठे कलङ्कको मिटाना चाहता हूँ ॥ ३१ ॥ भगवान्के ऐसा कहनेपर जाम्बवान्ने बड़े आनन्दसे उनकी पूजा करनेके लिये अपनी कन्या कुमारी जाम्बवती-को मणिके साथ उनके चरणोंमें समर्पित कर दिया । ३२ ।

भगवान् श्रीकृष्ण जिन जोगोंको गुफाके बाहर छोड़ गये थे, उन्होंने बारह दिनतक उनकी प्रतीक्षा की । परन्तु जब उन्होंने देखा कि अबतक वे गुफामेंसे नहीं निकले, तब वे अश्रुयुक्त दुखी होकर द्वारकाको लौट गये ॥ ३३ ॥ वहाँ जब माता देवकी, रुक्मिणी, बहुदेवकी तथा अन्य सम्बन्धियों और कुटुम्बियोंको यह

मादम हुआ कि श्रीकृष्ण गुफामेंसे नहीं निकले, तब उन्हें बड़ा शोक हुआ ॥ ३४ ॥ सभी द्वारकावासी अत्यन्त दुःखित होकर सत्राजित्को मल्ल-मुरा कहने लगे और भगवान् श्रीकृष्णकी प्राप्तिके लिये महामाया दुर्गादेवीकी शरणमें गये, उनकी उपासना करने लगे ॥ ३५ ॥ उनकी उपासनासे दुर्गादेवी प्रसन्न हुई और उन्होंने आशीर्वाद दिया । उसी समय उनके बीचमें मणि और अपनी नववधू जाम्बवतीके साथ सफलमनोरथ होकर श्रीकृष्ण सबको प्रसन्न करते हुए प्रकट हो गये ॥ ३६ ॥ सभी द्वारकावासी भगवान् श्रीकृष्णको पत्नीके साथ और गलेमें मणि धारण किये हुए देखकर परमानन्दमें मग्न हो गये, मानो कोई भरकर छौट आया हो ॥ ३७ ॥

तदनन्तर भगवान्ने सत्राजित्को राजसभामें महाराज उग्रसेनके पास बुलवाया और जिस प्रकार मणि प्राप्त हुई थी, वह सब कथा सुनाकर उन्होंने वह मणि सत्राजित्को सौंप दी ॥ ३८ ॥ सत्राजित् अत्यन्त छजित हो गया । मणि तो उसने ले ली, परन्तु उसका मुँह नीचेकी ओर छटक गया । अपने अपराधपर उसे बड़ा पश्चात्ताप हो रहा था, किसी प्रकार वह अपने घर पहुँचा ॥ ३९ ॥ उसके मनकी ओँखोंके सामने निरन्तर अपना अपराध नाचता रहता । वलवान्के साथ विरोध करनेके कारण वह भयभीत भी हो गया था ।

अब वह यही सोचता रहता कि मैं अपने अपराधका मार्जन कैसे करूँ ? मुझपर भगवान् श्रीकृष्ण कैसे प्रसन्न हों ॥ ४० ॥ मैं ऐसा कौन-सा काम करूँ, जिससे मेरा कल्याण हो और लोग मुझे कोसें नहीं । सचमुच मैं अद्भुतदर्शी, मुद्र हूँ । धनके खेयसे मैं बड़ी मूढताका कर्म कर बैठा ॥ ४१ ॥ अब मैं रमणियोंमें रहके सुमान अपनी कन्या सत्यभामा और वह स्वमन्तकमणि दोनों ही श्रीकृष्णको दे दूँ । यह उपाय बहुत अच्छा है । इसीसे मेरे अपराधका मार्जन हो सकता है, और कोई उपाय नहीं है ॥ ४२ ॥ सत्राजित्ने अपनी निवेक-बुद्धिसे ऐसा निश्चय करके अर्घ्य ही इसके लिये उद्योग किया और अपनी कन्या तथा स्वमन्तकमणि दोनों ही ले जाकर श्रीकृष्णको अर्पण कर दीं ॥ ४३ ॥ सत्यभामा शील-स्वभाव, सुन्दरता, उदारता आदि, सहगुणोंसे सम्पन्न थीं । बहुत-से लोग चाहते थे कि सत्यभामा हमें मिले और उन लोगोंने उन्हें मँगा भी था । परन्तु अब भगवान् श्रीकृष्णने विधिपूर्वक उनका पाणिग्रहण किया ॥ ४४ ॥ परीक्षित् । भगवान् श्रीकृष्णने सत्राजित्-से कहा—‘हम स्वमन्तकमणि न लेंगे । आप सूर्य-भगवान्के यत्न हैं, इसलिये वह आपके ही पास रहे । हम तो केवल उसके फलके, अर्थात् उससे निकले हुए सोनेके अधिकारी हैं । बड़ी आप हमें दे दिया करें’ ॥ ४५ ॥

सत्तावनवाँ अध्याय

स्वमन्तक-हरण, शतधन्वाका उद्धार और अकूरजीको फिरसे द्वारका बुलाना

श्रीधृक्देवजी कहते हैं—परीक्षित् । यद्यपि भगवान् श्रीकृष्णको इस बातका पता था कि अश्वत्थामाकी आगसे पाण्डवोंका बाढ़ भी बौका नहीं हुआ है, तथापि जब उन्होंने सुना कि कुन्ती और पाण्डव जब मरे, तब उस समयका कुल-परम्परोचित व्यवहार करनेके लिये वे बजराम-जीके साथ हस्तिनापुर गये ॥ १ ॥ वहाँ जाकर भीष्म-पितामह, कृपाचार्य, विदुर, गान्धारी और द्रोणाचार्यसे मिलकर उनके साथ समवेदना—सहानुभूति प्रकट की और उन लोगोंसे कहने लगे—‘हाय-हाय । यह तो बड़े ही दुःखकी बात हुई’ ॥ २ ॥

भगवान् श्रीकृष्णके हस्तिनापुर चले जानेसे द्वारकामें अकूर और हस्तधर्मको अक्सर मिल गया । उन लोगोंने शतधन्वासे आकर कहा—‘धूम सत्राजित्से मणि क्यों नहीं छीन लेते ? ॥ ३ ॥ सत्राजित्ने अपनी श्रेष्ठ कन्या सत्यभामाका निवाह हमसे करनेका वचन दिया था और अब उसने हमलोगोंका तिरस्कार करके उसे श्रीकृष्णके साथ न्याह दिया है । अब सत्राजित् भी अपने भाई प्रसेनकी तरह क्यों न यमपुरीमें जाय ?’ ॥ ४ ॥ शतधन्वा पापी था और अब तो उसकी मृत्यु भी

उसके सिरपर नाच रही थी। अकूर और कृतवर्मके इस प्रकार बहकानेपर शतधन्वा उनकी बातोंमें आ गया और उस महादुष्टने जेमकश सोये हुए सत्राजित्‌को मार डाला ॥ ५ ॥ इस समय शिर्याँ अनायके समान रोने-चिल्लाने लगीं; परन्तु शतधन्वाने उनकी और तनिक भी ध्यान न दिया, जैसे कसई पशुओंकी हत्या कर डालता है वैसे ही वह सत्राजित्‌को मारकर और मणि लेकर वहाँसे चंपत हो गया ॥ ६ ॥

सत्यमामाजीको यह देखकर कि मेरे पिता मार डाले गये हैं, बड़ा शोक हुआ और वे 'हाय पिताजी ! हाय पिताजी ! मैं मारी गयी'—इस प्रकार पुकार-पुकारकर विलाप करने लगीं। बीच-बीचमें वे वेहोश हो जातीं और होशमें आनेपर फिर विलाप करने लगतीं ॥ ७ ॥ इसके बाद उन्होंने अपने पिताके शक्को तेल्के कबाहेमें रखवा दिया और आप हस्तिनापुरको गयीं। उन्होंने बड़े दुःखसे भगवान् श्रीकृष्णको अपने पिताकी हत्याका वृत्तान्त सुनाया—यद्यपि इन बातोंको भगवान् श्रीकृष्ण पहलेसे ही जानते थे ॥ ८ ॥ परीक्षित ! सर्वशक्तिमान् भगवान् श्रीकृष्ण और बलरामजीने सब सुनकर मनुष्योंकी-सी लीला करते हुए अपनी आँखोंमें आँसू भर लिये और विलाप करने लगे कि 'अहो ! हम-जोगोंपर तो यह बहुत बड़ी विपत्ति आ पड़ी।' ॥ ९ ॥ इसके बाद भगवान् श्रीकृष्ण सत्यमामाजी और बलरामजीके साथ हस्तिनापुरसे द्वारका लौट आये और शतधन्वाको मारने तथा उससे मणि छीननेका उद्योग करने लगे ॥ १० ॥

जब शतधन्वाको यह आह्वान हुआ कि भगवान् श्रीकृष्ण मुझे मारनेका उद्योग कर रहे हैं, तब वह बहुत डर गया और अपने प्राण बचानेके लिये उसने कृतवर्मसे सहायता माँगी। तब कृतवर्मने कहा—॥ ११ ॥ 'भगवान् श्रीकृष्ण और बलरामजी सर्वशक्तिमान् ईश्वर हैं; मैं उनका सामना नहीं कर सकता। मज्जा, ऐसा कौन है, जो उनके साथ वैर बाँधकर इस लोक और परलोकमें सकुशल रह सके ? ॥ १२ ॥ तुम जानते हो कि कंस उन्हींसे द्वेष करनेके कारण राज्य-

छद्मीको खो बैठा और अपने अनुयायियोंके साथ मारा गया। जरसन्ध-जैसे शूरवीरको भी उनके सामने सत्रह बार मैदानमें हारकर बिना रथके ही अपनी राजधानीमें लौट जाना पड़ा था' ॥ १३ ॥ जब कृतवर्मने उसे इस प्रकार टका-सा जवाब दे दिया, तब शतधन्वाने सहायताके लिये अकूरजीसे प्रार्थना की। उन्होंने कहा—'भाई ! ऐसा कौन है, जो सर्वशक्तिमान् भगवान्‌का बल-पौरुष जानकर भी उनसे वैर-विरोध ठाने। जो भगवान् खेळ-खेळमें ही इस विश्वकी रचना, रक्षा और संहार करते हैं तथा जो कब क्या करना चाहते हैं—इस बातको मायासे मोहित मत्वा आदि विश्व-विजाता भी नहीं समझ पाते; जिन्होंने सात वर्षकी अवस्थामें—जब वे निरे बालक थे, एक हाथसे ही गिरिराज गोवर्द्धनको उखाड़ लिया और जैसे नन्दे-नन्दे बच्चे बरसाती छत्तेको उखाड़कर हाथमें रख लेते हैं, वैसे ही खेळ-खेळमें सात दिनोंतक उसे उठाने रक्खा; मैं तो उन भगवान् श्रीकृष्णको नमस्कार करता हूँ। उनके कर्म अद्भुत हैं। वे अमन्त, अनादि, एकत्स और आत्मस्वरूप हैं। मैं उन्हें नमस्कार करता हूँ' ॥ १४-१७ ॥ अब इस प्रकार अकूरजीने भी उसे कोरा जवाब दे दिया, तब शतधन्वाने स्वमन्तक-मणि उन्हींके पास रख दी और आप चार सौ कोस लगातार चलनेवाले घोड़ेपर सवार होकर वहाँसे बड़ी कुर्तसी भागा ॥ १८ ॥

परीक्षित ! भगवान् श्रीकृष्ण और बलराम दोनों माई अपने उस रथपर सवार हुए, जिसपर गरुडचिह्नसे चिह्नित ध्वजा फहरा रही थी और बड़े वेगवाले घोड़े श्रुते हुए थे। अब उन्होंने अपने शत्रु सत्राजित्‌को मारनेवाले शतधन्वाका पीछा किया ॥ १९ ॥ मिथिला-पुरीके निकट एक उपवनमें शतधन्वाका घोड़ा गिर पड़ा, अब वह उसे छोड़कर पैदल ही भागा। वह अत्यन्त मयभीत हो गया था। भगवान् श्रीकृष्ण भी क्रोध करके उसके पीछे दौड़े ॥ २० ॥ शतधन्वा पैदल ही भाग रहा था, इसलिये भगवान्‌ने भी पैदल ही दौड़कर अपने तीक्ष्ण धारवाले चक्रसे उसका सिर उतार लिया और उसके कर्म्मोंमें स्वमन्तकमणिको डूँढ़ा ॥ २१ ॥ परन्तु जब मणि मिली नहीं, तब भगवान् श्रीकृष्णने

बड़े भाई बलरामजीके पास आकर कहा—‘हमने शत-धन्वाको व्यर्थ ही मारा । क्योंकि उसके पास स्वमन्तक-मणि तो है ही नहीं’ ॥ २२ ॥ बलरामजीने कहा—‘इसमें सन्देह नहीं कि शतधन्वाने स्वमन्तकमणिको किसी-न-किसीके पास रख दिया है । अब तुम द्वारका जाओ और उसका पता लगाओ ॥ २३ ॥ मैं विदेह-राजसे मिठना चाहता हूँ; क्योंकि वे मेरे बहुत ही प्रिय मित्र हैं ।’ परीक्षित् । यह कहकर यदुवंशशिरोमणि बलरामजी मिथिला नगरीमें चले गये ॥ २४ ॥ जब मिथिलानरेशने देखा कि पूजनीय बलरामजी महाराज पधारहे हैं, तब उनका हृदय आनन्दसे भर गया । उन्होंने झटपट अपने आसनसे उठकर अनेक सागप्रियोंसे उनकी पूजा की ॥ २५ ॥ इसके बाद भगवान् बलरामजी कई वर्षोंतक मिथिलापुरीमें ही रहे । महात्मा जनकने बड़े प्रेम और सम्मानसे उन्हें रक्खा । इसके बाद समयपर धृतराष्ट्रके पुत्र दुर्योधनने बलरामजीसे गदायुद्धकी शिक्षा ग्रहण की ॥ २६ ॥ अपनी प्रिया सत्यभामाका प्रिय कार्य करके भगवान् श्रीकृष्ण द्वारका लौट आये और उनको यह समाचार सुना दिया कि शतधन्वाको मार डाला गया, परन्तु स्वमन्तकमणि उसके पास न मिली ॥ २७ ॥ इसके बाद उन्होंने भाई-बन्धुओंके साथ अपने श्वशुर सत्राजित्की वे सब और्थ्यदैहिक क्रियाएँ करवायीं, जिनसे घृतक प्राणीका परलोक सुधरता है ॥ २८ ॥

अक्रूर और कृतवर्माने शतधन्वाको सत्राजित्के वक्के लिये उत्तेजित किया था । इसलिये अब उन्होंने सुना कि भगवान् श्रीकृष्णने शतधन्वाको मार डाला है, तब वे अत्यन्त भयभीत होकर द्वारकासे भाग खड़े हुए ॥ २९ ॥ परीक्षित् । कुछ लोग ऐसा मानते हैं कि अक्रूरके द्वारकासे चले जानेपर द्वारका-वासियोंको बहुत प्रकारके अनिष्टों और अरिष्टोंका सामना करना पड़ा । दैविक और भौतिक निमित्तोंसे बार-बार वहाँके नागरिकोंको शारीरिक और मानसिक कष्ट सहना पड़ा । परन्तु जो लोग ऐसा कहते हैं, वे पहले कहीं हुई बातोंको भूल जाते हैं । मन्त्र, यह भी कभी सम्भव है कि जिन भगवान् श्रीकृष्णमें समस्त ऋषि-मुनि निवास करते हैं, उनके निवासस्थान द्वारका-

में उनके रहते कोई उपद्रव खड़ा हो जाय ॥ ३०-३१ ॥ उस समय नगरके बड़े-बड़े लोगोंने कहा—‘एक बार काशी-नरेशके राज्यमें वर्षा नहीं हो रही थी, सूखा पड़ गया था । तब उन्होंने अपने राज्यमें आये हुए अक्रूरके पिता शफल्कको अपनी पुत्री गान्दिनी न्याह दी । तब उस प्रदेशमें वर्षा हुई । अक्रूर भी शफल्कके ही पुत्र हैं और इनका प्रभाव भी वैसा ही है । इसलिये जहाँ-जहाँ अक्रूर रहते हैं, वहाँ-वहाँ खूब वर्षा होती है तथा निस्ती प्रकारका कष्ट और महामारी आदि उपद्रव नहीं होते ।’ परीक्षित् । उन लोगोंकी बात सुनकर भगवान् ने सोचा कि ‘इस उपद्रवका यही कारण नहीं है’ यह जानकर भी भगवान्ने दूत मेजकर अक्रूरजीको बुँदवाया और आनेपर उनसे बातचीत की ॥ ३२-३४ ॥ भगवान्ने उनका खूब सागत-स्कार किया और मीठी-मीठी प्रेमकी बातें कहकर उनसे सम्भाषण किया । परीक्षित् । भगवान् उनके चित्तका एक-एक सङ्कल्प देखते रहते हैं । इसलिये उन्होंने सुसकारते हुए अक्रूरसे कहा—॥ ३५ ॥ ‘वाचाजी ! आप दान-धर्मके पाठक हैं । हमें यह बात पहलेसे ही मादूम है कि शतधन्वा आपके पास वह स्वमन्तकमणि छेड़ गया है, जो बड़ी ही प्रकाशमान और वन देनेवाली है ॥ ३६ ॥ आप जानते ही हैं कि सत्राजित्के कोई पुत्र नहीं है । इसलिये उनकी लड़कीके लक्के—उनके नाती ही उन्हें तिलज्वालि और पिण्डदान करेंगे, उनका ऋण चुकायेंगे और जो कुछ बच रहेगा, उसके उत्तराधिकारी होंगे ॥ ३७ ॥ इस प्रकार शासीय दृष्टिसे यद्यपि स्वमन्तकमणि हमारे पुत्रोंको ही मिलनी चाहिये, तथापि वह मणि आपके ही पास रहे । क्योंकि आप बड़े मतिनिष्ठ और पवित्रात्मा हैं तथा दूसरोंके लिये उस मणिको रखना अत्यन्त कठिन भी है । परन्तु हमारे सामने एक बहुत बड़ी कठिनाई यह आ गयी है कि हमारे बड़े भाई बलरामजी मणिके सम्बन्धमें मेरी बातका पूरा विश्वास नहीं करते ॥ ३८ ॥ इसलिये महाभाग्यवान् अक्रूरजी ! आप वह मणि दिखाकर हमारे इष्ट-मित्र—बलरामजी, सत्यभामा और जानकतीका सन्देश दूर कर दीजिये और उनके हृदयमें शान्तिकर सञ्चार कीजिये । हमें पता है कि उसी

मणिके प्रतापसे आजकल आप ऊगतार ही ऐसे यज्ञ करते रहते हैं, जिनमें सोनेकी वेदियाँ बनती हैं ॥ ३९ ॥ परीक्षित ! जब भगवान् श्रीकृष्णने इस प्रकार सान्त्वना देकर उन्हें समझाया-शुझाया, तब अकूरजीने वक्षमें छपेटी हुई सूर्यके समान प्रकाशमान वह मणि निकाली और भगवान् श्रीकृष्णको दे दी ॥ ४० ॥ भगवान् श्रीकृष्णने वह स्वयन्तकमणि अपने जाति-माइयोंको दिखाकर अपना कलङ्क दूर किया और उसे अपने

पास रखनेमें समर्थ होनेपर भी पुनः अकूरजीको लौटा दिया ॥ ४१ ॥

सर्वशक्तिमान् सर्वव्यापक भगवान् श्रीकृष्णके पराक्रमोंसे परिपूर्ण यह आद्वयान् समस्त पापों, अपराधों और कलङ्कोंका मार्जन करनेवाला तथा परम मङ्गलमय है । जो इसे पढ़ता, सुनता अथवा स्मरण करता है, वह सब प्रकारकी अपकीर्ति और पापोंसे छूटकर शान्तिका, अनुभव करता है ॥ ४२ ॥

अट्ठावनवाँ अध्याय

भगवान् श्रीकृष्णके अन्यान्य विवाहोंकी कथा

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित ! अब पाण्डवोंका पता चला गया था कि वे लक्ष्मणवनमें जले नहीं हैं । एक बार भगवान् श्रीकृष्ण उनसे मिलनेके लिये इन्द्रप्रस्थ पधारे । उनके साथ सात्यकि आदि बहुत-से यदुवंशी भी थे ॥ १ ॥ जब वीर पाण्डवोंने देखा कि सर्वेश्वर भगवान् श्रीकृष्ण पधारे हैं तो जैसे प्राणका सञ्चार होनेपर सभी इन्द्रियों सचेत हो जाती हैं, वैसे ही वे सब-के-सब एक साथ उठ खड़े हुए ॥ २ ॥ वीर पाण्डवोंने भगवान् श्रीकृष्णका आलङ्गन किया, उनके अङ्ग-सङ्गसे इनके सारे पाप-ताप धुल गये । भगवान् की प्रेमभरी मुसकराहटसे सुसोमित मुख-मुष्मा देखकर वे आनन्दमें मग्न हो गये ॥ ३ ॥ भगवान् श्रीकृष्णने युधिष्ठिर और भीमसेनके चरणोंमें प्रणाम किया और अर्जुनको हृदयसे लगाया । नकुल और सहदेवने भगवान् के चरणोंकी कन्दना की ॥ ४ ॥ जब भगवान् श्रीकृष्ण श्रेष्ठ सिंहासनपर विराजमान हो गये; तब परमसुन्दरी श्यामवर्णा द्रौपदी, जो नवविवाहिता होनेके कारण तनिका लजा रही थी, धीरे-धीरे भगवान् श्रीकृष्णके पास आयी और उन्हें प्रणाम किया ॥ ५ ॥ पाण्डवोंने भगवान् श्रीकृष्णके समान ही वीर सात्यकिता भी खागत-सत्कार और अभिनन्दन-वन्दन किया । वे एक आसनपर बैठ गये । दूसरे यदुवंशियोंका भी यथा-योग्य सत्कार किया गया तथा वे भी श्रीकृष्णके चारों ओर आसनोंपर बैठ गये ॥ ६ ॥ इसके बाद भगवान् श्रीकृष्ण अपनी कृपा कुन्तीके पास गये और उनके चरणोंमें प्रणाम किया । कुन्तीजीने अल्पत स्नेहवश

उन्हें अपने हृदयसे लगा लिया । उस समय उनके नेत्रोंमें प्रेमके आँसू छलक आये । कुन्तीजीने श्रीकृष्णसे अपने माई-बन्धुओंकी कुशल-श्रेय पूछी और भगवान् ने भी उनका यथोचित उत्तर देकर उनसे उनकी पुत्रवधू द्रौपदी और स्वयं उनका कुशल-मङ्गल पूछा ॥ ७ ॥ उस समय प्रेमकी विह्वलतासे कुन्तीजीका गला ढँब गया था, नेत्रोंसे आँसू बह रहे थे । भगवान् के पूछनेपर उन्हें अपने पहलेके क्लेश-पर-क्लेश याद आने लगे और वे अपनेको बहुत सम्हालकर, जिनका दर्शन समस्त क्लेशोंका भक्त करनेके लिये ही हुआ करता है, उन भगवान् श्रीकृष्णसे कहने लगीं— ॥ ८ ॥ ‘श्रीकृष्ण ! विस समय तुमने हमलोगोंको अपना कुटुम्बी, सम्बन्धी समझकर स्मरण किया और हमारा कुशल-मङ्गल जाननेके लिये माई अकूरको भेजा, उसी समय हमारा कल्याण हो गया, हम अनाथोंको तुमने सनाप कर दिया ॥ ९ ॥ मैं जानती हूँ कि तुम सम्पूर्ण जगत् के परम हितैषी सुहृद् और आत्मा हो । यह अपना है और यह पराया, इस प्रकारकी भ्रान्ति तुम्हारे अंदर नहीं है । ऐसा होनेपर भी, श्रीकृष्ण ! जो सदा तुम्हें स्मरण करते हैं, उनके हृदयमें आकर तुम बैठ जाते हो और उनकी क्लेश-परम्पराको सदाके लिये मिटा देते हो ॥ १० ॥

युधिष्ठिरजीने कहा—‘सर्वेश्वर श्रीकृष्ण ! हमें इस बातका पता नहीं है कि हमने अपने पूर्वजन्ममें या इस जन्ममें कौन-सा कल्याण-साधन किया है ! आपका दर्शन बड़े-बड़े योगेश्वर भी बड़ी कठिनतासे प्राप्त कर पाते हैं

और हम कुबुद्धियोंको घर बैठे ही आपके दर्शन हो रहे हैं ॥ ११ ॥ राजा युधिष्ठिरने इस प्रकार भगवान्‌का खूब सम्मान किया और कुछ दिन वहीं रहनेकी प्रार्थना की । इसपर भगवान् श्रीकृष्ण इन्द्रप्रस्थके नर-नारियोंको अपनी रूपमाधुरीसे नयनानन्दका दान करते हुए बरसात-के चार महीनोंतक सुखपूर्वक वहीं रहे ॥ १२ ॥

परीक्षित । एक बार वीरशिरोमणि अर्जुनने गाण्डीव धनुष और अक्षय बाणशाले दो तरकस लिये तथा भगवान् श्रीकृष्णके साथ कनक पहनकर अपने उस रथपर सवार हुए, जिसपर वानर-चिह्नसे चिह्नित ध्वजा लगी हुई थी । इसके बाद विपक्षी वीरोंका नाश करनेवाले अर्जुन उस गहन वनमें शिकार खेलने गये, जो बहुत-से सिंह, बाघ आदि भयङ्कर जानवरोंसे भरा हुआ था ॥ १३-१४ ॥ वहाँ उन्होंने बहुत-से बाघ, सुअर, भैंसे, काले हरिन, शरभ, गवय (नीलापन लिये हुए भूरे रंगका एक बड़ा हरिन), गैंडे, हरिन, खरगोश और शल्लक (साही) आदि पशुओंपर अपने बाणोंका निशाना लगाया ॥ १५ ॥ वनमेंसे जो गवयके योग्य थे, उन्हें सेवकगण पर्वका समय जानकर राजा युधिष्ठिरके पास ले गये । अर्जुन शिकार खेलते-खेलते थक गये थे । अब वे प्यास लगनेपर यमुनाजीके किनारे गये ॥ १६ ॥ भगवान् श्रीकृष्ण और अर्जुन दोनों महारथियोंने यमुनाजीमें हाथ-पैर धोकर उनका निर्मल जल पीया और देखा कि एक परमसुन्दरी कन्या वहाँ तपस्या कर रही है ॥ १७ ॥ उस श्रेष्ठ सुन्दरीकी जंचा, दाँत और मुख अत्यन्त सुन्दर थे । अपने प्रिय मित्र श्रीकृष्णके भेजनेपर अर्जुनने उसके पास जाकर पूछा—॥ १८ ॥ ‘सुन्दरी ! तुम कौन हो ? किसकी पुत्री हो ? कहाँसे आयी हो ? और क्या करना चाहती हो ? मैं ऐसा समझता हूँ कि तुम अपने योग्य पति चाह रही हो । हे कल्याणि ! तुम अपनी सखी गत बतलाओ’ ॥ १९ ॥

कालिन्दीने कहा—मैं भगवान् सूर्यदेवकी पुत्री हूँ । मैं सर्वश्रेष्ठ वरदानी भगवान् विष्णुको पतिके रूपमें प्राप्त करना चाहती हूँ और इसीलिये यह कठोर तपस्या कर रही हूँ ॥ २० ॥ वीर अर्जुन ! मैं स्वमीके परम आश्रय भगवान्‌को छोड़कर और किसीको अपना पति

नहीं बना सकती । वनान्तोंके एकमात्र सहारे, प्रेम किरण करनेवाले भगवान् श्रीकृष्ण सुखपर प्रसन्न हों ॥ २१ ॥ मेरा नाम है कालिन्दी । यमुनाजलमें मेरे पिता सूर्यने मेरे लिये एक भवन भी बनवा दिया है । उसीमें मैं रहती हूँ । जबतक भगवान्‌का दर्शन न होगा, मैं यहीं रहूँगी ॥ २२ ॥ अर्जुनने जाकर भगवान् श्रीकृष्णसे सारी बातें कहीं । वे तो पहलेसे ही यह सब कुछ जानते थे, अब उन्होंने कालिन्दीको अपने रथपर बैठा लिया और धर्मराज युधिष्ठिरके पास ले आये ॥ २३ ॥

इसके बाद पाण्डवोंकी प्रार्थनासे भगवान् श्रीकृष्णने पाण्डवोंके रहनेके लिये एक अत्यन्त अद्भुत और विचित्र नगर विष्कम्भके द्वारा बनवा दिया ॥ २४ ॥ भगवान् इस बार पाण्डवोंको आनन्द देने और उनका हित करनेके लिये वहाँ बहुत दिनोंतक रहे । इसी बीच अग्निदेवकी खाण्डव-वन दिखनेके लिये वे अर्जुनके सारथी भी बने ॥ २५ ॥ खाण्डव-वनका भोजन मिळ जानेसे अग्निदेव बहुत प्रसन्न हुए । उन्होंने अर्जुनको गाण्डीव धनुष, चार श्वेत घोड़े, एक रथ, दो अद्भुत बाणोंवाले तरकस और एक ऐसा कनक दिया, जिसे कोई अक्ष-शस्त्रधारी भेद न सके ॥ २६ ॥ खाण्डवदाहके समय अर्जुनने मय दानवको जलनेसे बचा लिया था । इसलिये उसने अर्जुनसे मित्रता करके वनके लिये एक परम अद्भुत सभा बना दी । उसी समयमें दुर्योधनको जलमें खल और खलमें जलका भ्रम हो गया था ॥ २७ ॥

कुछ दिनोंके बाद भगवान् श्रीकृष्ण अर्जुनकी अनुमति एवं अन्य सम्बन्धियोंका अनुमोदन प्राप्त करके सात्यकि आदिके साथ द्वारका लौट आये ॥ २८ ॥ वहाँ आकर उन्होंने निवाहके योग्य ऋतु और ज्योतिषशास्त्रके अनुसार प्रशंसित पवित्र स्थानोंमें कालिन्दीजीका पाणिग्रहण किया । इससे उनके लज्जन-सम्बन्धियोंको परम मङ्गल और परमानन्दकी प्राप्ति हुई ॥ २९ ॥

अवन्ती (उज्जैन) देशके राजा थे विन्द और अनुविन्द । वे दुर्योधनके बराबरी तथा अनुयायी थे । उनकी बहिन मित्रविन्दाने स्वयंवरमें भगवान् श्रीकृष्णको ही अपना पति बनाना चाहा । परन्तु विन्द और अनुविन्दने अपनी बहिनको रोक दिया ॥ ३० ॥ परीक्षित ! मित्रविन्द

श्रीकृष्णकी पूजा राजाधिवेदीकी कन्या थी। भगवान् श्रीकृष्ण राजाओंकी भरी समामें उसे बळपूर्वक हर ले गये, सब लोग अपना-सा मुँह लिये देखते ही रह गये ॥ ३१ ॥

परीक्षित ! कोसलदेशके राजा थे नम्रजित् । वे अत्यन्त धार्मिक थे । उनकी परमसुन्दरी कन्याका नाम था सत्या; नम्रजित्की पुत्री होनेसे वह नामजित्ती भी कहलाती थी । परीक्षित ! राजाकी प्रतिष्ठाके अनुसार सात दुर्दान्त बैलेंपर विजय प्राप्त न कर सकनेके कारण कोई राजा उस कन्यासे विवाह न कर सके । क्योंकि उनके सींग बड़े तीखे थे और वे बैल किसी भीरुपुरुषकी गन्ध भी नहीं सह सकते थे ॥ ३२-३३ ॥

जब यदुवंशशिरोमणि भगवान् श्रीकृष्णने यह समाचार सुना कि जो पुरुष उन बैलोंको जीत लेगा, उसे ही सत्या प्राप्त होगी; तब वे बहुत बड़ी सेना लेकर कोसलपुरी (अयोध्या) पहुँचे ॥ ३४ ॥ कोसलनरेश महाराज नम्रजित्ने बड़ी प्रसन्नतासे उनकी आगमानी की और आसन आदि देकर बहुत बड़ी पूजा-सामग्रीसे उनका सत्कार किया । भगवान् श्रीकृष्णने भी उनका बहुत-बहुत अभिनन्दन किया ॥ ३५ ॥ राजा नम्रजित्की कन्या सत्याने देखा कि मेरे चिर-अभिषिक्त रामारमण भगवान् श्रीकृष्ण यहाँ पधारे हैं; तब उसने मन-ही-मन यह अभिलाषा की कि 'यदि मैंने व्रत-नियम आदिका पाळन करके इन्हींका चिन्तन किया है तो वे ही मेरे पति हों और मेरी विशुद्ध काँछसाको पूर्ण करें' ॥ ३६ ॥ नाम-जित्ती सत्या मन-ही-मन सोचने लगी—'भगवती लक्ष्मी, ब्रह्मा, शङ्कर और बड़े-बड़े लोकपाल जिनके पद-मङ्गलका पराग अपने सिरपर धारण करते हैं और जिन प्रभुने अपनी बनायी हुई मर्यादाका पाळन करनेके लिये ही समय-समयपर अनेकों लीलाकतार ग्रहण किये हैं, वे प्रभु मेरे किस्त धर्म, व्रत अथवा नियमसे प्रसन्न होंगे ? वे तो केवल अपनी कृपासे ही प्रसन्न हो सकते हैं' ॥ ३७ ॥ परीक्षित ! राजा नम्रजित्ने भगवान् श्रीकृष्णकी विधिपूर्वक अर्चा-पूजा करके यह प्रार्थना की—'जगत्के एकमात्र स्वामी नारायण ! आप अपने स्वरूपमय आनन्दसे ही परिपूर्ण हैं और मैं हूँ एक दुष्क मनुष्य ! मैं आपकी क्या सेवा करूँ ?' ॥ ३८ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित ! राजा नम्रजित्का दिया हुआ आसन, पूजा आदि स्वीकार करके भगवान् श्रीकृष्ण बहुत सन्तुष्ट हुए । उन्होंने भुसकराते हुए मेघके समान गभीर वाणीसे कहा ॥ ३९ ॥

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—राजन् ! जो क्षत्रिय अपने धर्ममें स्थित है, उसका कुछ भी भोगना उचित नहीं । धर्मज्ञ विद्वानोंने उसके इस कर्मकी निन्दा की है । फिर भी मैं आपसे सौहार्दका—प्रेमका सम्बन्ध स्थापित करनेके लिये आपकी कन्या चाहता हूँ । हमारे यहाँ इसके बदलेमें कुछ शुल्क देनेकी प्रथा नहीं है ॥ ४० ॥

राजा नम्रजित्ने कहा—'प्रभो ! आप समस्त गुणोंके धाम हैं, एकमात्र आश्रय हैं । आपके वक्षःस्थलपर भगवती लक्ष्मी नित्य-निरन्तर निवास करती हैं । आपसे बढ़कर कन्याके लिये अभीष्ट वर मल और कौन हो सकता है ? ॥ ४१ ॥ परन्तु यदुवंशशिरोमणे ! इनमे पहले ही इस विषयमें एक प्रण कर लिया है । कन्याके लिये कौन-सा वर उपयुक्त है, उसका बल-पौरुष कैसा है—इत्यादि बातें जाननेके लिये ही ऐसा किया गया है ॥ ४२ ॥ वीरश्रेष्ठ श्रीकृष्ण ! हमारे ये सातों बैल किसीके वशमें न आनेवाले और बिना सवाये हुए हैं । इन्होंने बहुत-से राजकुमारोंके अङ्गोंको खण्डित करके उनका छप्साह तोड़ दिया है ॥ ४३ ॥ श्रीकृष्ण ! यदि इन्हें आप ही नाथ ले, अपने वशमें कर लें तो लक्ष्मीपते ! आप ही हमारी कन्याके लिये अभीष्ट वर होंगे' ॥ ४४ ॥ भगवान् श्रीकृष्णने राजा नम्रजित्का ऐसा प्रण सुनकर कमरमें फेंट कास ली और अपने सात रूप बनाकर खेल-खेलमें ही उन बैलोंको नाथ लिया ॥ ४५ ॥ इससे बैलोंका वमड चूर हो गया और उनका बल-पौरुष भी जाता रहा । अब भगवान् श्रीकृष्ण उन्हें रस्सीसे बाँधकर इस प्रकार खींचने लगे, जैसे खेलेते समय गन्हा-सा बाळक काठके बैलोंको कसीरता है ॥ ४६ ॥ राजा नम्रजित्को बड़ा विस्मय हुआ । उन्होंने प्रसन्न होकर भगवान् श्रीकृष्णको अपनी कन्याका दान कर दिया और सर्वशक्तिमान् भगवान् श्रीकृष्णने भी अपने अनुरूप पत्नी सत्याका विधिपूर्वक पाणिग्रहण

किया ॥ ४७ ॥ रानियोंने देखा कि हमारी कन्याको उसके अत्यन्त प्यारे भगवान् श्रीकृष्ण ही पतिके रूपमें प्राप्त हो गये हैं । उन्हें बड़ा आनन्द हुआ और चारों ओर बड़ा भारी उत्सव मनाया जाने लगा ॥ ४८ ॥ शङ्ख, ढोल, नगारे बजने लगे । सब ओर गाना-बजाना होने लगा । ब्राह्मण आशीर्वाद देने लगे । सुन्दर वस्त्र, पुष्पोंके हार और गहनोंसे सज-धजकर नगरके नर-नारी आनन्द मनाने लगे ॥ ४९ ॥ राजा नम्रजित्ने दस हजार गौएँ और तीन हजार ऐसी नखुवती दासियाँ, जो सुन्दर वस्त्र तथा गलेमें खर्णहार पहने हुए थीं, दहेजमें दीं । इनके साथ ही नौ हजार हाथी, नौ लाख रथ, नौ करोड़ घोड़े और नौ अरब सेवक भी दहेजमें दिये ॥ ५०-५१ ॥ कोसलनरेश राजा नम्रजित्ने कन्या और दामादको रथपर चढ़ाकर एक बड़ी सेनाके साथ बिदा किया । उस समय उनका हृदय वास्तव्य-स्नेहके उद्रेकसे प्रवित हो रहा था ॥ ५२ ॥

परीक्षित । यदुवशियोंने और राजा नम्रजित्के वैज्योंने पहले बहुत-से राजाओंका बल-पौरुष धूलमें मिला दिया था । जब उन राजाओंने यह समाचार सुना, तब उनसे भगवान् श्रीकृष्णकी यह विजय सहन न हुई । उन लोगोंने नाम्रजिती सत्याको लेकर जाते समय मार्गमें

भगवान् श्रीकृष्णको घेर लिया ॥ ५३ ॥ और वे बड़े वेगसे उनपर बाणोंकी वर्षा करने लगे । उस समय पाण्डववीर अर्जुनने अपने मित्र भगवान् श्रीकृष्णका प्रिय करनेके लिये गाण्डीव धनुस्त्र धारण करके—जैसे सिंह छोटे-मोटे पशुओंको खदेड़ दे, वैसे ही उन नरपतियोंको मार-पीटकर मगा दिया ॥ ५४ ॥ तदनन्तर यदुवंशशिरोमणि देवकीनन्दन भगवान् श्रीकृष्ण उस दहेज और सत्याके साथ द्वारकामें आये और वहाँ रहकर गृहस्थोचित विहार करने लगे ॥ ५५ ॥

परीक्षित । भगवान् श्रीकृष्णका हुआ श्रुतकीर्ति केवल-देशमें व्याही गयी थी । उनकी कन्याका नाम था मद्रा । उसके माई स्मर्तर्दन आदिने उसे स्वयं ही भगवान् श्रीकृष्णको दे दिया और उन्होंने उसका पाणि-ग्रहण किया ॥ ५६ ॥ मद्रप्रदेशके राजाकी एक कन्या थी लक्ष्मणा । वह अत्यन्त सुलक्षणा थी । जैसे गरुडने खर्गसे अमृतका हरण किया था, वैसे ही भगवान् श्रीकृष्णने लक्ष्मणमें अकेले ही उसे हर लिया ॥ ५७ ॥

परीक्षित । इसी प्रकार भगवान् श्रीकृष्णकी और भी सहस्रों स्त्रियों थीं । उन परम सुन्दरियोंको वे भीमासुरको मारकर उसके बंदिगृहसे छुड़ा आये थे ॥ ५८ ॥

उनसठवाँ अध्याय

भीमासुरका छद्मा और सोलह हजार एक सौ राजकन्याओंके साथ भयवायका विवाह

राजा परीक्षितने पूछा—भगवान् श्रीकृष्णने भीमासुरको, जिसने उन स्त्रियोंको बंदिगृहमें डाक रक्खा था, क्यों और कैसे मारा ? आप कृपा करके शार्ङ्ग-धनुषधारी भगवान् श्रीकृष्णका वह विचित्र चरित्र सुनाइये ॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजीने कहा—परीक्षित ! भीमासुरने वरुण-का पुत्र, माता अदितिके कुण्डल और मेरु पर्वतपर स्थित देवताओंका मणिपर्वत नामक स्थान छीन लिया था । इसपर सबके राजा इन्द्र द्वारकामें आये और उसकी एक-एक करतूत उन्होंने भगवान् श्रीकृष्णको सुनायी । अब भगवान् श्रीकृष्ण अपनी प्रिय पत्नी सत्य-मामाके साथ गरुडपर सवार हुए और भीमासुरकी राज-

धानी प्रागज्योतिषपुरमें गये ॥ २ ॥ प्रागज्योतिषपुरमें प्रवेश करना बहुत कठिन था । पहले तो उसके चारों ओर पहाड़ोंकी किल्लेबंदी थी, उसके बाद शर्योंका घेरा लगाया हुआ था । फिर जलसे भरी खाई थी, उसके बाद आग या मिजलीकी चहारदीवारी थी और उसके भीतर वायु (गैस) बंद करके रक्खा गया था । इससे भी भीतर मुर दैत्यने नगरके चारों ओर अपने दस हजार घोर एवं सुदृढ़ फदे (जाळ) बिछा रखे थे ॥ ३ ॥ भगवान् श्रीकृष्णने अपनी गदाकी चोटसे पहाड़ोंको तोड़-फोड़ डाल और शर्योंकी मोरचेबंदीको बाणोंसे छिन्न-मिन्न कर दिया । चक्रके द्वारा अग्नि, जल और वायुकी चहारदीवारियोंको तहस-नहस कर दिया और

सुर दैत्यके फंदोंको तलवारसे काट-कूटकर अलग रख दिया ॥ ४ ॥ जो बड़े-बड़े यन्त्र—मशीनें वहाँ लगी हुई थीं, उनको, तथा वीरपुरुषोंके हृदयको शङ्खनादसे विदीर्ण कर दिया और नगरके परकोटेका गदाघर भगवान्ने अपनी मशी गदासे ध्वंस कर ढाँख ॥ ५ ॥

भगवान्ने पाञ्चजन्य शङ्खकी ध्वनि प्रलयकालीन बिजलीकी कड़कके समान महाभयङ्कर थी । उसे सुनकर सुर दैत्यकी नींद टूटी और वह बाहर निकल आया । उसके पोंच सिर थे और अबतक वह जलके भीतर सो रहा था ॥ ६ ॥ वह दैत्य प्रलयकालीन सूर्य और अग्निके समान प्रचण्ड तेजस्वी था । वह इतना भयङ्कर था कि उसकी ओर आँख उठाकर देखना भी आसान काम नहीं था । उसने त्रिशूल उठाया और इस प्रकार भगवान्की ओर दौड़ा, जैसे सौंप गरुडजीपर टूट पड़े । उस समय ऐसा माहूम होता था मानो वह अपने पोंचों मुखोंसे त्रिलोकीको निगल जायगा ॥ ७ ॥ उसने अपने त्रिशूलको बड़े बेगसे घुमाकर गरुडजीपर चलाया और फिर अपने पोंचों मुखोंसे घोर सिंहनाद करने लगा । उसके सिंहनादका महान् शब्द धुंधी, आकाश, पाताल और दसों दिशाओंमें फैलकर सारे ब्रह्माण्डमें भर गया ॥ ८ ॥ भगवान् श्रीकृष्णने देखा कि सुर दैत्यका त्रिशूल गरुडकी ओर बड़े बेगसे आ रहा है । तब अपना हस्तकौशल दिखाकर फुर्तीसे उन्होंने दो बाण मारे, जिनसे वह त्रिशूल कटकर तीन टुक हो गया । इसके साथ ही सुर दैत्यके मुखोंमें भी भगवान्ने बहुत-से बाण मारे । इससे वह दैत्य अत्यन्त क्रुद्ध हो उठा और उसने भगवान्पर अपनी गदा चलायी ॥ ९ ॥ परन्तु भगवान् श्रीकृष्णने अपनी गदाके प्रहारसे सुर दैत्यकी गदाको अपने पास पहुँचनेके पहले ही चूर-चूर कर दिया । अब वह अक्ल-हीन हो जानेके कारण अपनी मुजाएँ फैलकर श्रीकृष्णकी ओर दौड़ा और उन्होंने खेल-खेलमे ही चक्रसे उसके पोंचों सिर उतार लिये ॥ १० ॥ सिर कटते ही सुर दैत्यके प्राण-पल्लेख उड़ गये और वह ठीक वैसे ही जलमें गिर पड़ा, जैसे हृदके वज्रसे सिंखर कट जानेपर कोई पर्वत समुद्रमे गिर पड़ा हो । सुर दैत्यके सात पुत्र थे—ताम्र, अन्तरिक्ष, श्रवण, विभावसु,

वसु, नमस्वान् और अरुण—ये अपने पिताकी श्रुत्युसे, अत्यन्त शोकाकुल हो उठे और फिर बदल लेनेके लिये क्रोधसे भरकर शस्त्रास्त्रसे घुसजित हो गये तथा पीठ नामक दैत्यको अपना सेनापति बनाकर भौमासुरके आदेशसे श्रीकृष्णपर चढ़ आये ॥ ११-१२ ॥ वे वहाँ आकर बड़े क्रोधसे भगवान् श्रीकृष्णपर बाण, खड्ग, गदा, शक्ति, ऋषि और त्रिशूल आदि प्रचण्ड शस्त्रोंकी वर्षा करने लगे । परीक्षित ! भगवान्की शक्ति अमोघ और अनन्त है । उन्होंने अपने बाणोंसे उनके कोटि-कोटि शस्त्रास्त्र तिल-तिल करके काट गिराये ॥ १३ ॥ भगवान्ने शस्त्रप्रहारसे सेनापति पीठ और उसके साथी दैत्योंके सिर, जंघें, मुँजा, पैर और कवच कट गये और उन सभीको भगवान्ने यमराजके घर पहुँचा दिया । जब धृष्टके के पुत्र नरकासुर (भौमासुर) ने देखा कि भगवान् श्रीकृष्णके चक्र और बाणोंसे हमारी सेना और सेनापतियोंका संहार हो गया, तब उसे असह्य क्रोध हुआ । वह समुद्रतटपर पैदा हुए बहुत-से मदबाले हाथियोंकी सेना लेकर नगरसे बाहर निकला । उसने देखा भगवान् श्रीकृष्ण अपनी पत्नीके साथ आकाशमें गरुडपर स्थित हैं, जैसे सूर्यके ऊपर बिजलीके साथ वर्षाकालीन श्याममेघ शोभायमान हो । भौमासुरने खप भगवान्के ऊपर शतम्बी नामकी शक्ति चलायी और उसके सब सैनिकोंने भी एक ही साथ उनपर अपने-अपने अस्त्र-शस्त्र छोड़े ॥ १४-१५ ॥ अब भगवान् श्रीकृष्ण भी चित्र-विचित्र पंखवाले तीखे-तीखे बाण चलाते लगे । इससे उसी समय भौमासुरके सैनिकोंकी मुजाएँ, जंघें, गर्दन और घड़ कट-कटकर गिरने लगे, हाथी और घोड़े भी मरने लगे ॥ १६ ॥

परीक्षित ! भौमासुरके सैनिकोंने भगवान्पर जो-जो अस्त्र-शस्त्र चलाये थे, उनमेंसे प्रत्येकको भगवान्ने तीन-तीन तीखे बाणोंसे काट गिराया ॥ १७ ॥ उस समय भगवान् श्रीकृष्ण गरुडजीपर सवार थे और गरुडजी अपने पंखोंसे हाथियोंको मार रहे थे । उनकी चोंच, पंख और पंजोंकी मारसे हाथियोंको बड़ी पीडा हुई और वे सबके-सब आर्त होकर युद्धभूमिसे भागकर नगरमें घुस गये । अब वहाँ अनेकज भौमासुर ही लड़ता रहा । जब

उसने देखा कि गरुडजीकी मारसे पीड़ित होकर मेरी सेना भाग रही है, तब उसने तूनपर वह शक्ति चलायी, जिसने वज्रको भी विफल कर दिया था। परन्तु उसकी चोटसे पक्षिराज गरुड तनिक भी विचलित न हुए, गानो किस्तीने मतवाले गुजराजपर क्लृप्तकी माखसे प्रहार किया हो ॥ १८-२० ॥ अब भीमासुरने देखा कि मेरी एक भी चाल नहीं चलती, सारे उद्योग निफल होते जा रहे हैं, तब उसने श्रीकृष्णको मार डालनेके लिये एक विशूल उठाया। परन्तु उसे अभी वह छोड़ भी न पाया था कि भगवान् श्रीकृष्णने छुरेके समान तीखी धारवाले चक्रसे हाथीपर बैठे हुए भीमासुरका सिर काट डाला ॥ २१ ॥ उसका जगमगाता हुआ सिर कुण्डल और सुन्दर किरिटके सहित पृथ्वीपर गिर पड़ा। उसे देखकर भीमासुरके सगे सम्बन्धी हाय-हाय पुकार उठे; अश्लेषा, अशु-साधु' कहने लगे और देवतालेग भगवान्पर पुष्पोंकी वर्षा करते हुए स्तुति करने लगे ॥ २२ ॥

अब पृथ्वी भगवान्के पास आयी। उसने भगवान् श्रीकृष्णके गलेमें वैजयन्तीके साथ वनमाळा पहना दी और अदिति माताके जगमगाते हुए कुण्डल, जो तपाये हुए सोनेके एवं तनवर्तित थे, भगवान्को दे दिये तथा वरुणका छत्र और साथ ही एक महामणि भी उनको दी ॥ २३ ॥ राजन् ! इसके बाद पृथ्वीदेवी बड़े-बड़े देवताओंके द्वारा पूजित विश्वेश्वर भगवान् श्रीकृष्णको प्रणाम करके हाथ जोड़कर भक्तिभावभरे हृदयसे उनकी स्तुति करने लगी ॥ २४ ॥

पृथ्वीदेवीने कहा—राष्ट्रचक्रवर्ती देवदेवेश्वर ! मैं आपको नमस्कार करती हूँ। परमात्मन् ! आप अपने भक्तोंकी इच्छा पूर्ण करनेके लिये उसीके अनुसार रूप प्रकट किया करते हैं। आपको मैं नमस्कार करती हूँ ॥ २५ ॥ प्रभो ! आपकी नाभिसे कमल प्रकट हुआ है। आप कमलकी माला पहनते हैं। आपके नेत्र कमलसे खिले हुए और शान्तिदायक हैं। आपके चरण कमलके समान सुकुमार और भक्तोंके हृदयको शीतल करनेवाले हैं। आपको मैं बार-बार नमस्कार करती हूँ ॥ २६ ॥ आप समग्र ऐश्वर्य, धर्म, वश, सम्पत्ति, ज्ञान और वैराग्यके आश्रय हैं। आप सर्वव्यापक होनेपर भी

स्वयं वसुदेवनन्दनके रूपमें प्रकट हैं। मैं आपको नमस्कार करती हूँ। आप ही पुरुष हैं और समस्त कारणोंके भी परम कारण हैं। आप स्वयं पूर्ण ज्ञानस्वरूप हैं। मैं आपको नमस्कार करती हूँ ॥ २७ ॥ आप स्वयं तो हैं जन्मरहित, परन्तु इस जगत्के जन्मदाता आप ही हैं। आप ही अनन्त शक्तियोंके आश्रय ब्रह्म हैं। जगत्का जो कुछ भी कार्य-कारणमय रूप है, जितने भी प्राणी या अप्राणी हैं—सब आपके ही स्वरूप हैं। परमात्मन् ! आपके चरणोंमें मेरे बार-बार नमस्कार ॥ २८ ॥ प्रभो ! अब आप जगत्की रचना करना चाहते हैं, तब उक्त रजोगुणकी, और अब इसका प्रलय करना चाहते हैं तब तमोगुणकी, तथा जब इसका पाठन करना चाहते हैं तब सत्त्वगुणकी स्वीकार करते हैं। परन्तु यह सब करनेपर भी आप इन गुणोंसे ढकते नहीं, छिन्न नहीं होते। जगत्पते ! आप स्वयं ही प्रकृति, पुरुष और दोनोंके संयोग-वियोगके हेतु काळ हैं, तथा उन तीनोंसे परे भी हैं ॥ २९ ॥ भगवन् ! मैं (पृथ्वी), जल, अग्नि, वायु, आकाश, पञ्चतन्मात्राएँ, मन, इन्द्रिय और इनके अधिष्ठातृ-देवता, अष्टङ्गार और महत्तम—कहाँतक कहूँ, यह सम्पूर्ण चराचर जगत् आपके अद्वितीय स्वरूपमें अम्बके कारण ही धृष्ण प्रवीत हो रहा है ॥ ३० ॥ शरणागत-मय-महान् प्रभो ! मेरे पुत्र भीमासुरका यह पुत्र भगदत्त अत्यन्त भयभीत हो रहा है। मैं इसे आपके चरणकमलोंकी शरणमें ले आयी हूँ। प्रभो ! आप इसकी रक्षा कीजिये और इसके सिरपर अपना वह करकमल रखिये जो सारे जगत्के समस्त पाप-तापोंकी नष्ट करने-वाला है ॥ ३१ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित ! जब पृथ्वीने भक्तिभावसे विनम्र होकर इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्णकी स्तुति-आर्चना की, तब उन्होंने भगदत्तको अमयदान दिया और भीमासुरके समस्त सम्पत्तियोंसे सम्पन्न महत्तम प्रवेश किया ॥ ३२ ॥ वहाँ जाकर भगवान्ने देखा कि भीमासुरने बलपूर्वक राजाओंसे सोलह हजार राजकुमारियों छीनकर अपने यहाँ रख छोटी थीं ॥ ३३ ॥ जब उन राजकुमारियोंने अन्त-पुरमें पधारे हुए नरश्रेष्ठ भगवान् श्रीकृष्णको देखा, तब वे मोहित हो गयीं और उन्होंने उनकी

अहैतुकी कृपा तथा अपना सौम्य समक्षतर मन-ही-मन भगवान्‌को अपने परम प्रियतम पतिके रूपमें वरण कर लिया ॥ ३४ ॥ उन राजकुमारियोंमेंसे प्रत्येकने अलग-अलग अपने मनमें यही निश्चय किया कि 'ये श्रीकृष्ण ही मेरे पति हों और विधाता मेरी इस अभिलाषाको पूर्ण करें।' इस प्रकार उन्होंने प्रेम-भावसे अपना हृदय भगवान्‌के प्रति निछावर कर दिया ॥ ३५ ॥ तब भगवान् श्रीकृष्णने उन राजकुमारियोंको सुन्दर-सुन्दर निर्मल वस्त्राभूषण पहनाकर पालकियोंसे द्वारका भेज दिया और उनके साथ ही बहुत-से खजाने, रथ, घोड़े तथा बहुत सम्पत्ति भी भेजी ॥ ३६ ॥ ऐरावतके वंशमें उत्पन्न हुए अत्यन्त वेगवान् चार-चार दौतोंवाले सफेद रंगके चौंसठ हाथी भी भगवान्‌ने वहाँसे द्वारका भेजे ॥ ३७ ॥

इसके बाद भगवान् श्रीकृष्ण अमरावतीमें स्थित देवराज इन्द्रके महलोंमें गये। वहाँ देवराज इन्द्रने अपनी पत्नी इन्द्राणीके साथ सत्यभामाजी और भगवान् श्रीकृष्णकी पूजा की, तब भगवान्‌ने अदितिके कुण्डल उन्हें दे दिये ॥ ३८ ॥ वहाँसे छोटते समय सत्यभामाजीकी प्रेरणासे भगवान् श्रीकृष्णने कल्पवृक्ष उखाड़कर गरुडपर रख लिया और देवराज इन्द्र तथा समस्त देवताओंको जीतकर उसे द्वारकामें ले आये ॥ ३९ ॥ भगवान्‌ने उसे सत्यभामाके महलके बगीचेमें लगा दिया। इससे उस बगीचेकी शोभा अत्यन्त बढ़ गयी। कल्पवृक्षके साथ उसके गन्ध और मकरन्दके लोभी मीरे स्वर्गसे द्वारकामें चले आये थे ॥ ४० ॥ परीक्षित! देखो तो सही, जब इन्द्रको अपना काम बनाना था, तब तो उन्होंने अपना सिर छुकाकर मुकुटकी नोकसे भगवान् श्रीकृष्णके चरणोंका स्पर्श करके उनसे सहायताकी मिश्रा माँगी थी, परन्तु जब काम बन गया, तब उन्होंने उन्हीं भगवान् श्रीकृष्णसे लड़ाई ठान ली। सचमुच ये देवता भी बड़े तमोगुणी हैं और सबसे बड़ा दोष तो उनमें घनाढ्यता-का है। विचार है ऐसी घनाढ्यताको ॥ ४१ ॥

तदनन्तर भगवान् श्रीकृष्णने एक ही मुहूर्तमें अलग-अलग भवनोंमें अलग-अलग रूप धारण करके एक ही साथ सब राजकुमारियोंका शालोक्त विधिसे पाणिग्रहण किया। सर्वशक्तिमान् अविनाशी भगवान्‌के लिये इसमें आश्चर्यकी कौन-सी बात है ॥ ४२ ॥ परीक्षित! भगवान्‌की पत्नियोंके अलग-अलग महलोंमें ऐसी दिव्य सामग्रियाँ भरी हुई थीं, जिनके बराबर जगत्‌में कहीं भी और कोई भी मामूली नहीं है; फिर अधिककी तो बात ही क्या है। उन महलोंमें रहकर मत्ति-गतिके परेकी लीला करनेवाले अविनाशी भगवान् श्रीकृष्ण अपने आत्मानन्दमें मग्न रहते हुए लम्बीजीकी अंशलरूपा उन पत्नियोंके साथ ठीक वैसे ही विहार करते थे, जैसे कोई साधारण मनुष्य घर-गृहस्त्रीमें रहकर गृहस्थ-धर्मके अनुसार आचरण करता हो ॥ ४३ ॥ परीक्षित! ब्रह्मा आदि बड़े-बड़े देवता भी भगवान्‌के वास्तविक स्वरूपको और उनकी प्राप्तिके मार्गको नहीं जानते। उन्हीं रमरमण भगवान् श्रीकृष्णको उन स्त्रियोंने पतिके रूपमें प्राप्त किया था। अब नित्य-निरन्तर उनके प्रेम और आनन्दकी अभिवृद्धि होती रहती थी और वे प्रेममयी मुसकराहट, मधुर चितवन, नवसमागम, प्रेमाक्षय तथा माध बड़ानेवाली छत्तासे युक्त होकर सब प्रकारसे भगवान्‌की सेवा करती रहती थीं ॥ ४४ ॥ उनमेंसे सभी पत्नियोंके साथ सेवा करनेके लिये सैकड़ों दासियाँ रहतीं, फिर भी जब उनके महलोंमें भगवान् पधारते तब वे स्वयं जागे जाकर आदरपूर्वक उन्हें लिखा काती, श्रेष्ठ आसनपर बैठातीं, उच्च सामग्रियोंसे पूजा करतीं, चरणकमल पखारतीं, पान लगाकर खिलातीं, पौष दबाकर पकापट दूर करतीं, पंखा झलतीं, झन्झुलेख, चन्दन आदि लगातीं, फूलोंके हार पहनातीं, केस सँवारतीं, सुलातीं, स्नान करातीं और अनेक प्रकारके योजन करारकर अपने ही हाथों भगवान्‌की सेवा करतीं ॥ ४५ ॥

साठवाँ अध्याय

श्रीकृष्ण-रुक्मिणी-संवाद

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित! एक दिन समस्त जगत्‌के परमपिता और ज्ञानदाता भगवान् श्रीकृष्ण

रुक्मिणीजीके पल्लवर आरामसे बैठे हुए थे। शीघ्रक-नन्दिनी श्रीरुक्मिणीजी सखियोंके साथ अपने पतिदेवकी

सेवा कर रही थीं, उन्हें पंखा झूल रही थीं ॥ १ ॥
 परीक्षित । जो सर्वशक्तिमान् भगवान् खेल-खेलमें ही इस
 जगत्की रचना, रक्षा और प्रलय करते हैं—वही वज्रमा
 प्रसु अपनी बनायी हुई धर्म-धर्मदाओंकी रक्षा करनेके
 लिये यद्विशियोंमें अवतीर्ण हुए हैं ॥ २ ॥ रुक्मिणीजीका
 महल बड़ा ही सुन्दर था । उसमें ऐसे-ऐसे चंदोवे तने हुए
 थे, जिनमें मोतियोंकी छड़ियोंकी झालें लटक रही थीं ।
 मणियोंके दीपक जगमगा रहे थे ॥ ३ ॥ बेल-चमेलीके
 फूल और हार महँ-महँ महक रहे थे । फलोंपर झुंड़-
 के-झुंड़ मीरे गुजार कर रहे थे । सुन्दर-सुन्दर झरोखों-
 की जालियोंमेंसे चन्द्रमाकी शुभ किरणें महलके भीतर
 छिटक रही थीं ॥ ४ ॥ उद्यानमें पारिजातके उपवनकी
 सुगन्ध लेकर मन्द-मन्द शीतल वायु चल रही थी ।
 झरोखोंकी जालियोंमेंसे अगरके चूफका धूलों बाहर निकल
 रहा था ॥ ५ ॥ ऐसे महलमें दूधके फैले समान कोमल
 और उज्ज्वल बिछीनोंसे युक्त सुन्दर पल्लव भगवान्
 श्रीकृष्ण बड़े आनन्दसे विराजमान थे और रुक्मिणीजी
 त्रिलोकीके स्वामीको पतिरूपमें प्राप्त करके उनकी सेवा
 कर रही थीं ॥ ६ ॥ रुक्मिणीजीने अपनी सखीके
 हाथसे वह चँवर ले लिया, जिसमें रत्नोंकी जोड़ी लगी
 थी और परमरूपवती लक्ष्मीरूपिणी देवी रुक्मिणीजी
 उसे डुला-डुलाकर भगवान्की सेवा करने लगीं ॥ ७ ॥
 उनके करकमलोंमें जबाल अँगूठियाँ, कंगन और चँवर
 सोभा पा रहे थे । चरणोंमें मणिजटित पायजोड़ रुनछुन-
 रुनछुन कर रहे थे । अन्नलके नीचे छिपे हुए स्तनोंकी
 केशरकी छालिमासे हार लाल-लाल जान पड़ता था और
 चमक रहा था । मितम्बरभागमें बहुमूल्य कपडोंकी
 छबियाँ लटक रही थीं । इस प्रकार वे भगवान्के
 पास ही रहकर उनकी सेवामें संलग्न थीं ॥ ८ ॥
 रुक्मिणीजीकी घुँघराकी अलकें, कानोंके कुण्डल और गलेके
 सर्पहार अत्यन्त त्रिलसण थे । उनके मुखकमलसे
 मुसकराहटकी अवतर्पणा हो रही थी । ये रुक्मिणीजी
 अलौकिक रूपजगन्मयवती लक्ष्मीजी ही तो हैं । उन्होंने
 जब देखा कि भगवान्ने कीलके लिये मनुष्यत्व-सा शरीर
 ग्रहण किया है, तब उन्होंने भी उनके अनुरूप रूप प्रकट
 कर दिया । भगवान् श्रीकृष्ण यह देखकर बहुत प्रसन्न
 हुए कि रुक्मिणीजी मेरे पराण हैं, मेरी अनन्य प्रेयसी

हैं । तब उन्होंने बड़े प्रेमसे मुसकराते हुए उनसे
 कहा ॥ ९ ॥

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—राजकुमारी ! बड़े-बड़े
 नरपति, जिनके पास लोकपालोंके समान ऐश्वर्य और
 सम्पत्ति है, जो बड़े महासुखी और श्रीमान् हैं तथा
 सुन्दरता, उदारता और बलमें भी बहुत आगे बड़े हुए
 हैं, तुमसे विवाह करना चाहते थे ॥ १० ॥ तुम्हारे
 पिता और माई भी उन्होंने साथ तुम्हारा विवाह करना
 चाहते थे, यहाँतक कि उन्होंने बादान भी कर दिया
 था । शिशुपाल आदि बड़े-बड़े धीरोंको, जो कामेष्मत्त
 होकर तुम्हारे याचक बन रहे थे, तुमने जोड़ दिया
 और मेरे-जैसे व्यक्तिको, जो किसी प्रकार तुम्हारे समान
 नहीं है, अपना पति स्वीकार किया । ऐसा तुमने क्यों
 किया ? ॥ ११ ॥ सुन्दरी ! देखो, हम जरासन्ध आदि
 राजाओंसे दरकर समुद्रकी धारणमें आ बसे हैं । बड़े-बड़े
 बलवानोंसे हमने दैर बौध रक्खा है और प्रायः राज-
 सिंहासनके अधिकारसे भी हम वञ्चित ही हैं ॥ १२ ॥
 सुन्दरी ! इस किस मार्गके अनुयायी हैं, हमारा कौन-
 सा मार्ग है, यह भी लोगोंके अच्छी तरह माखन नहीं
 है । हमलोग कौकिक व्यक्ताकार की ठीक-ठीक पाठन
 नहीं करते, अनुनय-विनयके द्वारा जियोंको रिक्ताते भी
 नहीं । जो बिना हमारे-जैसे पुरुषोंका अनुसरण करती
 हैं, उन्हें प्रायः झेरा-ही-झेरा मोगना पड़ता है ॥ १३ ॥
 सुन्दरी ! हम तो सदाके अकिञ्चन हैं । न तो हमारे
 पास कभी कुछ था और न रहेगा । ऐसे ही अकिञ्चन
 लोगोंसे हम प्रेम भी करते हैं, और वे लोग भी हमसे प्रेम
 करते हैं । यही कारण है कि अपनेको धनी समझनेवाले
 लोग प्रायः हमसे प्रेम नहीं करते, हमारी सेवा नहीं
 करते ॥ १४ ॥ जिनका धन, कुछ, ऐश्वर्य, सौन्दर्य
 और आय अपने समान होती है—उन्हींसे विवाह और
 मित्रताका सम्बन्ध करना चाहिये । जो अपनेसे श्रेष्ठ था
 अवम हों, उनसे नहीं करना चाहिये ॥ १५ ॥ विदर्भराज-
 कुमारी ! तुमने अपनी अदूरदर्शिताके कारण इन बातोंका
 विचार नहीं किया और बिना जाने-बूझे भिक्षुओंसे मेरी
 झूठी प्रशंसा सुनकर मुझ शुण्डीनको वरण कर
 लिया ॥ १६ ॥ अब भी कुछ बिगड़ा नहीं है । तुम

अपने अनुरूप किसी श्रेष्ठ क्षत्रिको वर्ण कर लो । जिसके द्वारा तुम्हारी इहलोक और परलोककी सारी आशा-अभिलाषाएँ पूरी हो सकें ॥ १७ ॥ सुन्दरी ! तुम जानती ही हो कि शिशुपाल, शात्व, जगसन्ध, दन्तवक्त्र आदि नरपति और तुम्हारा बड़ा भाई रुक्मी—सभी मुझसे द्वेष करते थे ॥ १८ ॥ कल्याणी ! वे सब बल-पीरुपके मदसे अंधे हो रहे थे, अपने सामने किसीको कुछ नहीं गिनते थे । उन दुष्टोंका मान मर्दन करनेके लिये ही मैंने तुम्हारा हरण किया था । और कोई कारण नहीं था ॥ १९ ॥ निश्चय ही हम उदासीन हैं । हम श्री, सन्तान और धनके लोलुप नहीं हैं । निष्क्रिय और देह-नोहेने सम्बन्धरहित दीपशिखाके समान साक्षीमात्र हैं । हम अपने आत्माके साक्षात्कारसे ही पूर्णकाम हैं । कृतकृत्य हैं ॥ २० ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित । भगवान् श्रीकृष्णके क्षणभरके लिये भी अलग न होनेके कारण रुक्मिणीजीको यह अस्मिमान हो गया था कि मैं इनकी सबसे अधिक प्यारी हूँ । इसी गर्वकी शान्तिके लिये इतना कहकर भगवान् चुप हो गये ॥ २१ ॥ परीक्षित ! जब रुक्मिणीजीने अपने परम प्रियतम पति त्रिलोकेश्वर भगवान्की यह अप्रिय वाणी सुनी—जो पहले कभी नहीं सुनी थी, तब वे अत्यन्त भयभीत हो गयीं; उनका हृदय धक्कने लगा, वे रोते-रोते चिन्ताके अगाध समुद्रमें डूबने-उतराने लगी ॥ २२ ॥ वे अपने कमलके समान कोमल और नखोंकी छालिमासे कुछ-कुछ लाल प्रतीत होनेवाले चरणोंसे धरती कुरेदने लगीं । अञ्जनसे मिले हुए काले-काले आँसू केशरसे रंगे हुए बक्षःस्थलके घोने लगे । मुँह नीचेको लटक गया । अत्यन्त दुःखके कारण उनकी वाणी रुक गयी और वे ठिठकी-सी रह गयीं ॥ २३ ॥ अत्यन्त व्यथा, मय और शोकके कारण विचारव्यक्ति लुप्त हो गयी, त्रियोगकी सम्भावनासे वे तत्क्षण इतनी दुबली हो गयी कि उनकी कर्जईका कंगनतक खिसक गया । हाथका चैत्र गिर पड़ा, बुद्धिकी विकलताके कारण वे एकाएक अचेत हो गयीं, कंठ विखर गये और वे वायु-वेगसे उड़ते हुए केल्लेकें गंधेकी तरह धरतीपर गिर पड़ी ॥ २४ ॥ भगवान् श्रीकृष्णने देखा कि मेरी प्रेयसी

रुक्मिणीजी हास्य-विनोदकी गम्भीरता नहीं समझ रही हैं और प्रेम-पाशकी दृढ़ताके कारण उनकी यह दशा हो रही है । स्वभावसे ही परम कारुणिक भगवान् श्रीकृष्णका हृदय उनके प्रति करुणासे भर गया ॥ २५ ॥ चार मुजाओंवाले वे भगवान् उसी समय पैरंगसे उतर पड़े और रुक्मिणीजीको उठा लिया तथा उनके झुले हुए केशपाशोंको बाँधकर अपने शीतल ककमलोंसे उनका मुँह पोंछ दिया ॥ २६ ॥ भगवान्ने उनके नेत्रोंके आँसू और शोकके आँसुओंसे भगी हुए स्नानोंके पोंछकर अपने प्रति अनन्य प्रेमभाव रखनेवाली उन सती रुक्मिणीजीको बाँहोंमें भरकर छातीसे लगा लिया ॥ २७ ॥ भगवान् श्रीकृष्ण समझाने-बुझानेमें बड़े कुशल और अपने प्रेमी मत्तोंके एकमात्र आश्रय हैं । जब उन्होंने देखा कि हास्यकी गम्भीरताके कारण रुक्मिणीजीकी बुद्धि चक्करमें पड़ गयी है और वे अत्यन्त दीन हो रही हैं; तब उन्होंने इस अवस्थाके अयोग्य अपनी प्रेयसी रुक्मिणीजीको समझाया ॥ २८ ॥

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—विदर्भनन्दिनी ! तुम मुझसे बुरा मत मानना । मुझसे कठना नहीं । मैं जानता हूँ कि तुम एकमात्र मेरे ही परायण हो । मेरी प्रिय सहचरी । तुम्हारी प्रेमयरी बात सुननेके लिये ही मैंने हँसी-हँसीमें यह छलना की थी ॥ २९ ॥ मैं देखना चाहता था कि मेरे यों कहनेपर तुम्हारे लाल-लाल होठ प्रणय-कोपसे किस प्रकार फट्कने लगते हैं । तुम्हारे कट्यक्षपूर्वक देखनेसे नेत्रोंमें कैसी लाली छा जाती है और भीँ चढ़ जानेके कारण तुम्हारा मुँह कैसा सुन्दर लगता है ॥ ३० ॥ मेरी परमप्रिये ! सुन्दरी ! धरके काम-धर्मोंमें रात-दिन लगे रहनेवाले गृहस्थोंके लिये घर-गृहस्थीमें इतना ही तो परम लाभ है कि अपनी प्रिय अर्द्धाङ्गिणीके साथ हास-परिहास करते हुए कुछ वधिषों सुखसे विता ली जाती हैं ॥ ३१ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—राजन् ! जब भगवान् श्रीकृष्णने अपनी प्राणप्रियाको इस प्रकार समझाया-बुझाया, तब उन्हें इस बातका विश्वास हो गया कि मेरे प्रियतमने केवल परिहासमें ही ऐसा कहा था । अब उनके हृदयसे यह मय जाना रहा कि प्यारे हमें छोड़

देगे ॥ ३२ ॥ परीक्षित् ! अब वे सख्य ह्रास्य और प्रेमपूर्ण मधुर चितवनसे पुरुषभूषण भगवान् श्रीकृष्णका मुखारविन्द निरखती हुई उनसे कहने लगीं— ॥ ३३ ॥

रक्षिमणीजीने कहा—कमलनयन ! आपका यह कहना ठीक है कि ऐश्वर्य आदि समस्त गुणोंसे युक्त, अनन्त भगवान्‌के अनुरूप मैं नहीं हूँ । आपकी समानता मैं किसी प्रकार नहीं कर सकती । कहाँ तो अपनी अखण्ड महिमामें स्थित, तीनों गुणोंके स्वामी तथा ब्रह्मा आदि देवताओंसे सेवित आप भगवान् ; और कहाँ तीनों गुणोंके अनुसार स्वभाव रखनेवाली गुणमयी प्रकृति मैं, जिसकी सेवा कामनाओंके पीछे मटकनेवाले अज्ञानी लोग ही करते हैं ॥ ३४ ॥ मन्त्र, मैं आपके समान कब हो सकती हूँ । स्वामिन् ! आपका यह कहना भी ठीक ही है कि आप राजाओंके भयसे समुद्रमें आ छिपे हैं । परन्तु राजा ब्रह्मका अर्थ पृथ्वीके राजा नहीं, तीनों गुणरूप राजा हैं । मानो आप उन्हींके भयसे अन्तःकरणरूप समुद्रमें चैतन्यधन अनुभूतिस्वरूप आभाके रूपमें विराजमान रहते हैं । इसमें सन्देह नहीं कि आप राजाओंसे बैर रखते हैं, परन्तु वे राजा कौन हैं ? यही अपनी दुष्ट इन्द्रियों । इनसे तो आपका बैर है ही । और प्रभो ! आप राजसिंहासनसे रहित हैं, यह भी ठीक ही है । क्योंकि आपके चरणोंकी सेवा करनेवालोंने भी राजाके पदको घोर अज्ञानान्धकार समझकर दूरसे ही दुष्कार रक्खा है । फिर आपके छिये तो कहना ही क्या है ॥ ३५ ॥ आप कहते हैं कि हमारा मार्ग स्पष्ट नहीं है और हम लौकिक पुरुषों जैसा आचरण भी नहीं करते, यह बात भी निस्सन्देह सत्य है । क्योंकि जो ऋषि-मुनि आपके पादपद्मोंका मकरन्द-रस सेवन करते हैं, उनका मार्ग भी अस्पष्ट रहता है और नियोगमें उलझे हुए नरपशु उसका अनुमान भी नहीं लगा सकते । और हे अनन्त ! आपके मार्गपर चलनेवाले आपके मर्कोंकी भी चेष्टाएँ जब प्रायः अलौकिक ही होती हैं, तब समस्त शक्तियों और ऐश्वर्योंके आश्रय आपकी चेष्टाएँ अलौकिक हों इसमें तो कहना ही क्या है ? ॥ ३६ ॥ आपने अपनेको अकिञ्चन बतलाया है, परन्तु आपकी अकिञ्चनता दरिद्रता नहीं है । उसका अर्थ यह है कि आपके अतिरिक्त और कोई वस्तु न होनेके कारण आप ही

सब कुछ हैं । आपके पास रखनेके छिये कुछ नहीं है । परन्तु जिन ब्रह्मा आदि देवताओंकी पूजा सब लोग करते हैं, मेंट देते हैं, वे ही लोग आपकी पूजा करते रहते हैं । आप उनके प्यारे हैं और वे आपके प्यारे हैं । (आपका यह कहना भी सर्वथा उचित है कि घनाढ्य लोग मेरा भजन नहीं करते;) जो लोग अपनी घनाढ्यताके अस्मिमानसे अंधे हो रहे हैं और इन्द्रियोंको तुल्य करनेमें ही लगे हैं, वे न तो आपका भजन-सेवन ही करते और न तो यह जानते हैं कि आप मृत्युके रूपमें उनके सिरपर सवार हैं ॥ ३७ ॥ जगत्‌में जीवके छिये चितने भी वाञ्छनीय पदार्थ हैं—धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष—उन सबके रूपमें आप ही प्रकट हैं । आप समस्त वृत्तियों—प्रवृत्तियों, साधनों, सिद्धियों और साध्योंके फलस्वरूप हैं । विचारशील पुरुष आपको प्राप्त करनेके छिये सब कुछ छोड़ देते हैं । भगवन् ! उन्हीं विनेकी पुरुषोंका आपके साथ सम्बन्ध होना चाहिये । जो लोग श्री-पुरुषके सहवाससे प्राप्त होनेवाले सुख या दुःखके बशीमृत हैं, वे कदापि आपका सम्बन्ध प्राप्त करने योग्य नहीं हैं ॥ ३८ ॥ यह ठीक है कि भिक्षुकोंने आपकी प्रशंसा की है । परन्तु किन भिक्षुकोंने ? उन परमशान्त संन्यासी महात्माओंने आपकी महिमा और प्रभावका वर्णन किया है, जिन्होंने अपराधी-से-अपराधी व्यक्तिको भी दण्ड न देनेका निश्चय कर लिया है । मैंने अश्रुदंशितासे नहीं, इस बातको समझते हुए आपको वरण किया है कि आप सारे जगत्‌के आत्मा हैं और अपने प्रेमियोंको आत्मदान करते हैं । मैंने जान-बूझकर उन ब्रह्मा और देवराज इन्द्र आदिका भी हस्तछिये परित्याग कर दिया है कि आपकी मौहोंके हशारेसे पैदा होनेवाला काष्ठ अपने वेगसे उनकी आशा-अभिजायाओं-पर पानी फेर देता है । फिर दूसरोंकी—शिष्टप्राण, दन्तकवच या जरासन्धकी तो बात ही क्या है ? ॥ ३९ ॥

सर्वेश्वर आर्यपुत्र ! आपकी यह बात किसी प्रकार युक्तिसङ्गत नहीं माध्यम होती कि आप राजाओंसे मय-भीत होकर स्मृद्रमें आ बसे हैं । क्योंकि आपने केवल अपने शार्ङ्गधनुषके टङ्क़ारसे मेरे विनाहक समय आये हुए समस्त राजाओंको मगाकर अपने चरणोंमें समर्पित मुष्ठा दासीको उसी प्रकार हरण कर लिया, जैसे सिंह अपनी कर्कश ध्वनिसे वन-पशुओंको मगाकर अपना भाग ले

आने ॥ ४० ॥ कमलनयन । आप कैसे कहते हैं कि जो मेरा अनुसरण करता है, उसे प्रायः कष्ट ही उठाना पड़ता है । प्राचीन कालके अङ्ग, पृथु, भरत, ययाति और गय आदि जो बड़े-बड़े राजराजेश्वर अपना-अपना एकछत्र साम्राज्य छोड़कर आपको पानेकी अभिलाषासे तपस्या करने वनमें चले गये थे, वे आपके मार्गका अनुसरण करनेके कारण क्या किसी प्रकारका कष्ट उठा रहे हैं ॥ ४१ ॥ आप कहते हैं कि तुम और किसी राजकुमारका वरण कर लो । भगवन् । आप समस्त गुणोंके एकमात्र आश्रय हैं । बड़े-बड़े सत् आपके चरणकमलोंकी सुगन्धका बखान करते रहते हैं । उसका आश्रय लेने-मात्रसे लोग ससारके पाप-तापसे मुक्त हो जाते हैं । लक्ष्मी सर्वदा उन्हींमें निवास करती है । फिर आप बतलाइये कि अपने स्वार्थ और परमार्थको मलीमौलि समझनेवाली ऐसी कौन-सी भी है, जिसे एक बार उन चरणकमलोंकी सुगन्ध सूँघनेको मिल जाय और फिर वह उनका तिरस्कार करके ऐसे लोगोंको वरण करे जो सदा मृत्यु, रोग, जन्म, जरा आदि भयोंसे युक्त हैं । कोई भी बुद्धिमती भी ऐसा नहीं कर सकती ॥ ४२ ॥ प्रभो । आप सारे जगत्के एकमात्र स्वामी हैं । आप ही इस लोक और परलोकमें समस्त आशाओंको पूर्ण करनेवाले एव आत्मा हैं । मैंने आपको अपने अनुरूप समझकर ही वरण किया है । मुझे अपने कर्मोंके अनुसार विभिन्न योनियोंमें भटकना पड़े, इसकी मुझको परवा नहीं है । मेरी एकमात्र अभिलाषा यही है कि मैं सदा अपना भजन करनेवालोंका मिथ्या ससारभ्रम निवृत्त करनेवाले तथा उन्हें अपना स्वरूपतक वे डालनेवाले आप परमेश्वरके चरणोंकी शरणमें रहूँ ॥ ४३ ॥ अभ्युत ! शत्रुसूदन । गंधोंके समान घरका बोझा देने-वाले, बैलोंके समान गृहस्थोंके व्यापारोंमें बुते रहकर कष्ट उठानेवाले, कुत्तोंके समान तिरस्कार सहनेवाले, बिलवके समान कृपण और हिंसक तथा क्रीत दासोंके समान श्वीकी सेवा करनेवाले शिशुपाल आदि राजालोग, जिन्हें वरण करनेके लिये आपने मुझे उभेष्ट किया है—उसी अभागिनी श्वीके पति हों, जिनके कानोंमें मग्नान् शङ्कर, ब्रह्मा आदि देवेश्वरोंकी सभामें गायी जानेवाली

आपकी जीलकयाने प्रवेश नहीं किया है ॥ ४४ ॥ यह मनुष्यका शरीर जीवित होनेपर भी मुर्दा ही है । ऊपर चमड़ी, दाढ़ी-मूँछ, रोएँ, नख और केशोंसे ढका हुआ है; परन्तु इसके भीतर मांस, हड्डी, खून, कीड़े, मछ-मूत्र, कफ, पित्त और वायु भरे पड़े हैं । इसे वही मूढ़ भी अपना प्रियतम पति समझकर सेवन करती है, जिसे कभी आपके चरणारविन्दके भक्तानन्दकी सुगन्ध सूँघनेको नहीं मिली है ॥ ४५ ॥ कमलनयन । आप अन्धाराम हैं । मैं सुन्दरी अथवा गुणवती हूँ, इन बातों-पर आपकी दृष्टि नहीं जाती । अतः आपका उदासीन रहना सामाजिक है, फिर भी आपके चरणकमलोंमें मेरा सुदृढ़ अनुराग हो, यही मेरी अभिलाषा है । जब आप इस संसारकी अभिवृद्धिके लिये उत्कट रजोगुण स्वीकार करके मेरी ओर देखते हैं, तब वह भी आपका परम अनुग्रह ही है ॥ ४६ ॥ मधुसूदन । आपने कहा कि किसी अनुरूप वरको वरण कर लो । मैं आपकी इस बातको भी झूठ नहीं मानती । क्योंकि कभी-कभी एक पुरुषके द्वारा जीती जानेपर भी काशीनरेशकी कन्या अम्बाके समान किसी-किसीकी दूसरे पुरुषमें भी प्रीति रहती है ॥ ४७ ॥ कुल्लय श्वीका मन तो विवाह हो जानेपर भी नये-नये पुरुषोंकी ओर खिंचता रहता है । बुद्धिमान् पुरुषको चाहिये कि वह ऐसी कुल्लय श्वीको अपने पास न रखे । उसे अपनावेवाला पुरुष लोक और परलोक दोनों खो बैठता है, उभयभद्र हो जाता है ॥ ४८ ॥

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—साध्वी । राजकुमारी । यही बातें सुननेके लिये तो मैंने तुमसे हँसी-हँसीमें तुम्हारी वस्त्रा की थी, तुम्हें छकाया था । तुमने मेरे कर्चनोंकी जैसी व्याख्या की है, वह अक्षरशः सत्य है ॥ ४९ ॥ सुन्दरी । तुम मेरी अनन्य प्रेयसी हो । मेरे प्रति तुम्हारा अनन्य प्रेम है । तुम मुझसे जो-जो अभिलाषाएँ करती हो, वे तो तुम्हें सदा-सर्वदा प्राप्त ही हैं । और यह बात भी है कि मुझसे की हुई अभिलाषाएँ सांसारिक कामनाओंके समान बन्धनमें डालनेवाली नहीं होतीं, बल्कि वे समस्त कामनाओंसे मुक्त कर देती हैं ॥ ५० ॥ पुण्यमयी प्रिये । मैंने तुम्हारा पतिप्रेम और पातिव्रत्य भी मलीमौलि देख लिया । मैंने उलटी-सीधी

बात कह-कहकर तुम्हें विचलित करना चाहा था; परन्तु तुम्हारी बुद्धि मुझसे तनिक भी झर-उधर न हुई ॥ ५१ ॥ प्रिये । मैं मोक्षका स्वामी हूँ । जोगोंको संसार-सागरसे पार करता हूँ । जो सक्रम पुरुष अनेक प्रकारके व्रत और तपस्या करके दाम्पत्य-जीवनके विषय-सुखकी अमिलावासे मेरा भजन करते हैं, वे मेरी मायासे मोहित हैं ॥ ५२ ॥ मानिनी प्रिये । मैं मोक्ष तथा सम्पूर्ण सत्यदाओंका आश्रय हूँ, जधीश्वर हूँ । मुझ परमात्माको प्राप्त करके भी जो जोग केवल विषय-सुखके साधन-सम्पत्तिकी ही अमिलावा करते हैं, मेरी परामर्श नहीं चाहते, वे बड़े मन्दभागी हैं, क्योंकि विषयसुख तो नरकमें और नरकके ही समान सूकर-कूकर आदि बोलियोंमें भी प्राप्त हो सकते हैं । परन्तु उन जोगोंका मन तो विषयोंमें ही जगा रहता है, इसलिये उन्हें नरकमें जाना भी अच्छा जान पड़ता है ॥ ५३ ॥ गृहस्थरी प्राणप्रिये । यह बड़े आनन्दकी बात है कि तुमने अवतक निरन्तर संसार-बन्धनसे मुक्त करनेवाली मेरी सेवा की है । कुछ पुरुष ऐसा कभी नहीं कर सकते । जिन क्षियोंका चित्त दूषित कामनाओंसे भरा हुआ है और जो अपनी इन्द्रियोंकी सुतिमें ही जमी रहनेके कारण अनेकों प्रकारके छल-छन्द रचती रहती हैं, उनके लिये तो ऐसा करना और भी कठिन है ॥ ५४ ॥ मानिनि । मुझे अपने घरभरने तुम्हारे समान प्रेम करनेवाली भार्या और कोई दिखायी नहीं देती । क्योंकि जिस समय तुमने मुझे देखा न था, केवल मेरी प्रससा सुनी थी, उस समय भी अपने विवाहमें आये हुए

राजाओंकी उपेक्षा करके ब्राह्मणके द्वारा मेरे पास गुप्त सन्देश मेजा था ॥ ५५ ॥ तुम्हारा हरण करते समय मैंने तुम्हारे भार्गवों युद्धमें जीतकर उसे विरूप कर दिया था और अनिरुद्धके विवाहोत्सवमें चौसर खेलते समय बलरामजीने तो उसे मार ही डाला । किन्तु हमसे वियोग हो जानेकी आशङ्कासे तुमने जुपचाप बह सारा दुःख सह लिया । मुझसे एक बात भी नहीं कही । तुम्हारे इस गुणसे मैं तुम्हारे वश हो गया हूँ ॥ ५६ ॥ तुमने मेरी प्राप्तिके लिये दूतके द्वारा अपना गुप्त सन्देश मेजा था; परन्तु जब तुमने मेरे पहुँचनेमें कुछ विलम्ब होता देखा; तब तुम्हें यह सारा संसार सूना दीखने लगा । उस समय तुमने अपना यह सर्वाङ्गसुन्दर शरीर किसी दूसरेके योग्य न समझकर इसे छोड़नेका सङ्कल्प कर लिया था । तुम्हारा यह प्रेमभाव तुम्हारे ही अंदर रहे । हम इसका बदल नहीं चुका सकते । तुम्हारे इस सर्वाङ्ग प्रेम-भावका केवल अभिनन्दन करते हैं ॥ ५७ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित । जगदीश्वर भगवान् श्रीकृष्ण आत्माराम हैं । वे जब मनुष्योंकी-सी लीज कर रहे हैं, तब उसमें दाम्पत्य-प्रेमको बढ़ानेवाले विनोदभरे वार्ताछाप भी करते हैं और इस प्रकार क्वची-रूपिणी रुक्मिणीजीके साथ विहार करते हैं ॥ ५८ ॥ भगवान् श्रीकृष्ण सप्त जगत्को शिक्षा देनेवाले और सर्वव्यापक हैं । वे इसी प्रकार दूसरी पत्नियोंके महजमें भी गृहस्थोंके समान रहते और गृहस्थोचित धर्मका पाठन करते थे ॥ ५९ ॥

इकसठवाँ अध्याय

भगवान्की सन्ततिका वर्णन तथा अनिरुद्धके विवाहमें रुक्मकोष मार्य जाना

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित । भगवान् श्रीकृष्णकी प्रत्येक पत्नीके गर्भसे दस-दस पुत्र उत्पन्न हुए । वे रूप, बल आदि गुणोंमें अपने पिता भगवान् श्रीकृष्णसे किसी बातमें कम न थे ॥ १ ॥ राजकुमारियों देखतीं कि भगवान् श्रीकृष्ण हमारे मङ्गलसे कभी बाहर नहीं जाते । सदा हमारे ही पास बने रहते हैं । इससे वे यही समझतीं कि श्रीकृष्णको मैं ही सबसे प्यारी हूँ । परीक्षित । सच पूछो तो वे अपने पति भगवान् श्रीकृष्ण-

का तत्त्व—उनकी महिमा नहीं समझती थीं ॥ २ ॥ वे सुन्दरियों अपने आत्मानन्दमें एकरस स्थित भगवान् श्रीकृष्णके कमल-कलीके समान सुन्दर मुख, विशाल बाहु, कर्णस्पर्शी नेत्र, प्रेममयी सुसकान, रसमयी चितवन और मधुर वाणीसे स्वयं ही मोहित रहती थीं । वे अपने शृङ्गारसम्बन्धी हाथपावोंसे उनके मनको अपनी ओर खींचनेमें समर्थ न हो सकीं ॥ ३ ॥ वे सोचते हजारासे अधिक थीं । अपनी मन्द-मन्द मुसकान और तिरछी

चितवनसे युक्त मनोहर मौहोंके इशारेसे ऐसे प्रेयके बाण चलाती थीं, जो काम-कलाके भावोंसे परिपूर्ण होते थे । परन्तु किसी भी प्रकारसे, किन्हीं साधनोंके द्वारा वे भगवान्‌के मन एवं इन्द्रियोंमें चञ्चलता नहीं उत्पन्न कर सकी ॥ ४ ॥ परीक्षित् । ब्रह्मा आदि बड़े-बड़े देवता भी भगवान्‌के वास्तविक स्वरूपको या उनकी प्राप्तिके मार्गको नहीं जानते । उन्होंने रामारमण भगवान्‌ श्रीकृष्णको उन स्त्रियोंने पतिके रूपमें प्राप्त किया था । अब निम्न-निरन्तर उनके प्रेम और आनन्दकी अभिवृद्धि होती रहती थी और वे प्रेममयी मुसकराहट, मधुर चितवन, नवसमागमकी लजसा आदिसे भगवान्‌की सेवा करती रहती थीं ॥ ५ ॥ उनमेंसे सभी स्त्रियोंके साथ सेवा करनेके लिये सैकड़ों दासियों रहतीं । फिर भी जब उनके महलमें भगवान्‌ पधारते तब वे खय्य आगे जाकर आदरपूर्वक उन्हें लिखा छाती, श्रेष्ठ आसनपर बैठातीं, उत्तम सामग्रियोंसे उनकी पूजा करतीं, चरणकमल पखारती, पान लगाकर खिलाती, पौष दवाकर पकावट दूर करतीं, पंखा छलतीं, इन्-फुलेख, चन्दन आदि लगातीं, कपड़ोंके हार पहनातीं, केश सँवारतीं, सुलातीं, खान कराती और अनेक प्रकारके भोजन कराकर अपने हाथों भगवान्‌की सेवा करतीं ॥ ६ ॥

परीक्षित् । मैं कह चुका हूँ कि भगवान्‌ श्रीकृष्णकी प्रत्येक पत्नीके दस-दस पुत्र थे । उन स्त्रियोंमें आठ पटरानियाँ थीं, जिनके विवाहका वर्णन मैं पहले कर चुका हूँ । अब उनके प्रद्युम्न आदि पुत्रोंका वर्णन करता हूँ ॥ ७ ॥ रुक्मिणीके गर्भसे दस पुत्र हुए—प्रद्युम्न, चारुवेणु, सुवेणु, पराक्रमी चारुवेह, सुचारु, चारुगुप्त, मद्रचारु, चारुचन्द्र, विचारु और दसवौं चारु । ये अपने पिता भगवान्‌ श्रीकृष्णसे किसी बातमें कम न थे ॥ ८-९ ॥ सत्यभामाके भी दस पुत्र थे—मानु, सुमानु, स्वर्मानु, प्रमानु, मानुमान्, चन्द्रमानु, बृहद्मानु, अतिमानु, श्रीमानु और प्रतिमानु । जाम्बवतीके भी सम्ब आदि दस पुत्र थे—साम्ब, सुमित्र, पुरुजित्, शतजित्, सहस्रजित्, विजय, चित्रकेतु वसुमान्, द्विविह और क्रतु । ये सब श्रीकृष्णको बहुत प्यारे थे ॥ १०-१२ ॥ नाम्बिकी सत्याके भी दस पुत्र हुए—वीर, चन्द्र, अशसेन, चित्रशु,

वेगवान्, वृष, वाम, शङ्खु, वसु और परम तेजस्वी कुन्ति ॥ १३ ॥ कालिन्दीके दस पुत्र थे थे—श्रुत, कनि, वृष, वीर, सुबाहु, मद्र, शान्ति, दर्श, पूर्णमास और सबसे खेद्य सोमक ॥ १४ ॥ मद्रदेशकी राज-कुमारी लक्ष्मणाके गर्भसे प्रघोष, गात्रवान्, सिंह, बल, प्रबल, ऊर्ध्वग, महाशक्ति, सह, भोज और अपराजित-का जन्म हुआ ॥ १५ ॥ मित्रविन्दाके पुत्र थे—वृक, हर्ष, अनिल, गुह्य, वर्धन, अन्नाद, महाश, पावन, वहि और क्षुधि ॥ १६ ॥ मद्रके पुत्र थे—संभ्रामजित्, बृहत्सेन, शूर, प्रहरण, अरिजित्, जय, सुमद्र, वाम, आयु और सत्यक ॥ १७ ॥ इन पटरानियोंके अतिरिक्त भगवान्‌की रोहिणी आदि सोलह हजार एक सौ और भी पत्नियाँ थीं । उनके दीप्तिमान् और तात्प्रत आदि दस-दस पुत्र हुए । रुक्मिणीनन्दन प्रद्युम्नका मायावती रतिके अतिरिक्त भोजकट-नगरनिवासी रुक्मीकी पुत्री रुक्मवतीसे भी विवाह हुआ था । उसीके गर्भसे परम बलशाली अनिरुद्धका जन्म हुआ । परीक्षित् । श्रीकृष्णके पुत्रोंकी माताएँ ही सोलह हजारसे अधिक थीं । इसलिये उनके पुत्र-पौत्रोंकी संख्या करोड़ोंतक पहुँच गयी ॥ १८-१९ ॥

राजा परीक्षित्‌ने पूजा-परम ज्ञानी मुनीश्वर । भगवान्‌ श्रीकृष्णने रणभूमिमें रुक्मीका बड़ा तिरस्कार किया था । इसलिये वह सदा इस बातकी बातमें रहता था कि अवसर मिलते ही श्रीकृष्णसे उसका बदला लें और उनका काम तमाम कर डालें । ऐसी स्थितिमें उसने अपनी कन्या रुक्मवती अपने शत्रुके पुत्र प्रद्युम्नजीको कैसे न्याह दी ? कृपा करके बतलाइये । दो शत्रुओंमें—श्रीकृष्ण और रुक्मीमें फिरसे परस्पर वैवाहिक सम्बन्ध कैसे हुआ ? ॥ २० ॥ आपसे कोई बात छिपी नहीं है । क्योंकि योगीजन मृत, मयिष्य और वर्तमानकी सभी बातें मलीभौति जानते हैं । उनसे ऐसी बातें भी छिपी नहीं रहतीं; जो इन्द्रियोंसे परे हैं, बहुत दूर हैं अथवा बीचमें किसी वस्तुकी आद होनेके कारण नहीं दीखतीं ॥ २१ ॥

अशुभकदेवजी कहते हैं—परीक्षित् । प्रद्युम्नजी मूर्ति-भान् कामदेव थे । उनके सौन्दर्य और गुणोंपर रीसकर

रुक्मतीने स्वयंवरमें उन्होंनेको करमाया पहना दी । प्रद्युम्नजीने युद्धमें अकेले ही वहाँ इकट्ठे हुए नरपतियोंको जीत लिया और रुक्मतीको हर लिये ॥२२॥ यद्यपि भगवान् श्रीकृष्णसे अपमानित होनेके कारण रुक्मीके हृदयकी क्रोधाग्नि शान्त नहीं हुई थी, वह अब भी उससे बैर गंठे हुए था, फिर भी अपनी बहिन रुक्मिणीको प्रसन्न करनेके लिये उसने अपने भानजे प्रद्युम्नको अपनी वेदी ब्याह दी ॥ २३ ॥ परीक्षित् ! दस पुत्रोंके अतिरिक्त रुक्मिणीजीके एक परम सुन्दरी बड़े-बड़े नेत्रोंवाली कन्या थी । उसका नाम था चारुमती । कृतवर्माके पुत्र बलीने उसके साथ विवाह किया ॥ २४ ॥

परीक्षित् ! रुक्मीका भगवान् श्रीकृष्णके साथ पुराना बैर था । फिर भी अपनी बहिन रुक्मिणीको प्रसन्न करनेके लिये उसने अपनी पौत्री रोचनाका विवाह रुक्मिणीके पौत्र, अपने नाती (दौहित्र) अनिरुद्धके साथ कर दिया । यद्यपि रुक्मीको इस बातका पता था कि इस प्रकारका विवाह-सम्बन्ध धर्मके अनुकूल नहीं है, फिर भी स्नेह-वन्धनसे बँधकर उसने ऐसा कर दिया ॥ २५ ॥ परीक्षित् ! अनिरुद्धके विवाहोत्सवमें सम्मिलित होनेके लिये भगवान् श्रीकृष्ण, बलरामजी, रुक्मिणीजी, प्रद्युम्न, साम्ब आदि द्वारकावासी भोजकट नगरमें पधारे ॥ २६ ॥ जब विवाहोत्सव निर्दिष्ट समाप्त हो गया, तब काश्रिङ्गनरेश आदि ब्रम्हो नरपतियोंने रुक्मीसे कहा कि 'तुम बलरामजीको पासोंके खेलमें जीत लो ॥ २७ ॥ राजन् ! बलरामजीको फसे डालने तो आते नहीं, परन्तु उन्हें खेलनेका बहुत बड़ा ब्यसन है ।' उन लोगोंके बहकानेसे रुक्मीने बलरामजीको बुलवाया और वह उनके साथ चौसर खेलने लगा ॥ २८ ॥ बलरामजीने पहले सौ, फिर हजार और इसके बाद दसहजार मुहरोंका दौंव लगाया । उन्हें रुक्मीने जीत लिया । रुक्मीकी जीत होनेपर कलिङ्गनरेश दौंत दिखा-दिखाकर, ठाका गार-कार बलरामजीकी हँसी उड़ाने लगा । बलरामजीसे वह हँसी सहन न हुई । वे कुछ चिढ़ गये ॥ २९ ॥ इसके बाद रुक्मीने एक लाख मुहरोंका दौंव लगाया । उसे बलरामजीने जीत लिया । परन्तु रुक्मी धूर्ततासे यह कहने लगा कि 'मैंने जीता है' ॥ ३० ॥ इसपर श्रीमान् बलरामजी क्रोधसे तिलमिल उठे । उनके हृदयमें इतना क्षोभ हुआ,

मानो पूर्णिमाके दिन समुद्रमें ज्वार आ गया हो । उनके नेत्र एक तो खमकसे ही लाल लाल थे, दूसरे अत्यन्त क्रोधके मारे वे और भी दहक उठे । अब उन्होंने दस करोड़ मुहरोंका दौंव रक्खा ॥ ३१ ॥ इस बार भी द्युतनियमके अनुसार बलरामजीकी ही जीत हुई । परन्तु रुक्मीने छल करके कहा—'मेरी जीत है । इस विषयके विशेषज्ञ कलिङ्गनरेश आदि समासद् इसका निर्णय कर दें' ॥ ३२ ॥ उस समय आकाशवाणीने कहा—'यदि धर्मपूर्वक कहा जाय, तो बलरामजीने ही यह दौंव जीता है । रुक्मीका यह कहना सरासर झूठ है कि उसने जीता है' ॥ ३३ ॥ एक तो रुक्मीके सिरपर मौत सवार थी और दूसरे उसके साथी कुछ राजाओंने भी उसे उगार रक्खा था । इससे उसने आकाशवाणीपर कोई ध्यान न दिया और बलरामजीकी हँसी उड़ाने हुए कहा—॥ ३४ ॥ 'बलरामजी ! आखिर आपलोग बन-बन भटकनेवाले म्वाले ही तो ठहरे ! आप फासा लेखना क्या जानें ?' पासों और वाणोंसे तो केवल रामालोग ही लेखा करते हैं, आप-जैसे नहीं' ॥ ३५ ॥ रुक्मीके इस प्रकार आक्षेप और राजाओंके उपहास करनेपर बलरामजी क्रोधसे आगबबूला हो उठे । उन्होंने एक मुद्गर उठाया और उस माज्जुलिक समामें ही रुक्मीकी मार डाला ॥ ३६ ॥ पहले कलिङ्गनरेश दौंत दिखा-दिखाकर हँसता था, अब रगमें रंग देखकर वहाँसे भागा; परन्तु बलरामजीने दस ही कदमपर उसे पकड़ लिया और क्रोधसे उसके दौंत तोड़ डाले ॥ ३७ ॥ बलरामजीने अपने मुद्गरकी चोटसे दूसरे राजाओंकी भी बाँह, जाँघ और सिर आदि तोड़-फोड़ डाले । वे खूनसे छपपय और मयभीत होकर वहाँसे भागते बने ॥ ३८ ॥ परीक्षित् ! भगवान् श्रीकृष्णने यह सोचकर कि बलरामजीका समर्थन करनेसे रुक्मिणीजी अप्रसन्न होंगी और रुक्मीके बचको बुरा बतलानेसे बलरामजी रुठ होंगे, अपने सारे रुक्मीकी श्रुत्युपर भञ्ज-बुरा कुछ भी न कहा ॥ ३९ ॥ इसके बाद अनिरुद्धजीका विवाह और रात्रुका वध दोनों प्रयोजन सिद्ध हो जानेपर भगवान्के आश्रित बलरामजी आदि यदुवंशी नवनिवाहिता दुखहिन रोचनाके साथ अनिरुद्धजीको श्रेष्ठ रथपर चढ़ाकर भोजकट नगरसे द्वारकापुरीको चले आये ॥ ४० ॥

बासठवाँ अध्याय

ऊषा-अनिरुद्ध-मिथुन

राजा परीक्षितने पूछा—महायोगसम्पन्न मुनीश्वर ! मैंने सुना है कि यदुवंशविरोधि अनिरुद्धजीने बाणासुर-की पुत्री ऊषासे विवाह किया था और इस प्रसङ्गमें भगवान् श्रीकृष्ण और शङ्करजीका बहुत बड़ा घमासान युद्ध हुआ था । आप कृपा करके यह वृत्तान्त विस्तारसे सुनाइये ॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजीने कहा—परीक्षित ! महात्मा बलिकी कथा तो तुम सुन ही चुके हो । उन्होंने वामनरूपवारी भगवान्‌को सारी पृथ्वीका दान कर दिया था । उनके सौ लड़के थे । उनमें सबसे बड़ा था बाणासुर ॥२॥ दैत्यराज बलिका औरस पुत्र बाणासुर भगवान् शिवकी भक्तिमें सदा रत रहता था । समाजमें उसका बड़ा आदर था । उसकी उदारता और बुद्धिमत्ता प्रशंसनीय थी । उसकी प्रतिष्ठा अटल होती थी और सचमुच वह बातका धनी था ॥ ३ ॥ उन दिनों वह परम रमणीय शोणितपुरमें राज्य करता था । भगवान् शङ्करकी कृपासे इन्द्रादि देवता नौकर-वाकरकी तरह उसकी सेवा करते थे । उसके हजार मुजाएँ थी । एक दिन जब भगवान् शङ्कर तापवन्तुय कर रहे थे, तब उसने अपने हजार हाथोंसे अनेकों प्रकारके बाजे बजाकर उन्हें प्रसन्न कर लिया ॥४॥ सचमुच भगवान् शङ्कर बड़े ही मत्तवत्सल और शरणा-गतरक्षक हैं । समस्त भूतोंके एकमात्र स्वामी प्रसुने बाणासुरसे कहा—‘तुम्हारी जो इच्छा हो, मुझसे माँग लो ।’ बाणासुरने कहा—‘भगवन् ! आप मेरे नगरकी रक्षा करते हुए यहीं रहा करें’ ॥ ५ ॥

एक दिन बल्यौरुषके घमड़मे चूर बाणासुरने अपने समीप ही स्थित भगवान् शङ्करके चरणकमलोंको सूर्यके समान चमकीले मुकुटसे झूकर प्रणाम किया और कहा—॥ ६ ॥ ‘देवाधिदेव ! आप समस्त चराचर जगत्‌के गुरु और ईश्वर हैं । मैं आपको नमस्कार करता हूँ । जिन लोगोंके मनोरथ अबतक पूरे नहीं हुए हैं, उनको पूर्ण करनेके लिये आप कल्पवृक्ष हैं ॥७॥ भगवन् ! आपने मुझे एक हजार मुजाएँ दी हैं, परन्तु वे मेरे लिये केवल

भररूप हो रही हैं । क्योंकि त्रिलोकीमें आपको छोड़कर मुझे अपनी वराजरीका कोई भीर-योद्धा ही नहीं मिला, जो मुझसे लड़ सके ॥ ८ ॥ आदिदेव ! एक बार मेरी बाँहोंमें लड़नेके लिये इतनी खुजलाहट हुई कि मैं दिगन्तोंकी ओर चला । परन्तु वे भी लड़के मेरे भाग लड़े हुए । उस समय मार्गमें अपनी बाँहोंकी चोटसे मैंने बहुत-से पहाड़ोंको तोड़-फोड़ डाला था’ ॥ ९ ॥ बाणासुरकी यह प्रार्थना सुनकर भगवान् शङ्करने तनिक मोचसे कहा—‘रे मूढ़ ! जिस समय तेरी च्चवा टूटकर गिर जायगी, उस समय मेरे ही समान योद्धासे तेरा युद्ध होगा और वह युद्ध तेरा वर्सड चूर-चूर कर देगा’ ॥१०॥ परीक्षित ! बाणासुरकी बुद्धि इतनी विगड़ गयी थी कि भगवान् शङ्करकी बात सुनकर उसे बड़ा हर्ष हुआ और वह अपने कर लौट गया । अब वह मूर्ख भगवान् शङ्करके आदेशानुसार उस युद्धकी प्रतीक्षा करने लगा, जिसमें उसके बल-वीर्यका नाश होनेवाला था ॥ ११ ॥

परीक्षित ! बाणासुरकी एक कन्या थी, उसका नाम था ऊषा । अभी वह कुमारी ही थी कि एक दिन खप्तने उसने देखा कि ‘परम सुन्दर अनिरुद्धजीके साथ मेरा समागम हो रहा है ।’ आश्चर्यकी बात तो यह थी कि उसने अनिरुद्धजीको न तो कभी देखा था और न सुना ही था ॥ १२ ॥ खप्तने ही उन्हें न देखकर वह बोल उठी—‘भाग्यवारे ! तुम कहाँ हो ?’ और उसकी नाँद टूट गयी । वह अत्यन्त विह्वलताके साथ उठ बैठी और यह देखकर कि मैं सखियोंके बीचमें हूँ, बहुत ही ऊँजित हुई ॥ १३ ॥ परीक्षित ! बाणासुरके मन्त्रीका नाम था कुम्माण्ड । उसकी एक कन्या थी, जिसका नाम था चित्रलेखा । ऊषा और चित्रलेखा एक-दूसरेकी सहेलियाँ थीं । चित्रलेखाने ऊषासे कौतूहलवश पूछा—॥ १४ ॥ ‘सुन्दरी ! राजकुमारी ! मैं देखती हूँ कि अनीतक किसीने तुम्हारा पाणिग्रहण भी नहीं किया है । फिर तुम किसे हूँड रही हो और तुम्हारे मनोरथका क्या स्वरूप है ?’ ॥ १५ ॥

ऊषाने कहा—सखी ! मैंने खप्तने एक बहुत ही

सुन्दर नवयुवकको देखा है । उसके शरीरका रंग सौवज-सौवज-सा है । नेत्र कमलदलके समान हैं । शरीरपर पीला-पीला पीताम्बर पहरा रहा है । मुझाएँ झंभी-झंभी हैं और वह झिंझोका चित्त चुरानेवाला है ॥ १६ ॥ उसने पहले तो अपने अधरोंका मधुर मधु मुखे पिछाया, परन्तु मैं उसे अधाकर पी ही न पायी थी कि वह मुझे दुःखके सागरमें डालकर न जाने कहाँ चला गया । मैं तरसती ही रह गयी । सखी ! मैं अपने इसी प्राणवल्गमको ढूँढ़ रही हूँ ॥ १७ ॥

चित्रलेखाने कहा—‘सखी ! यदि तुम्हारा चित्रचोर त्रिलोकीमें कहीं भी होगा और उसे तुम पहचान सकोगी, तो मैं तुम्हारी विरह व्याप्य अवश्य शाप्य कर दूँगी । मैं चित्र बनाती हूँ, तुम अपने चित्रचोर प्राणवल्गमको पहचानकर बतला दो । फिर वह चाहे कहीं भी होगा, मैं उसे तुम्हारे पास ले आऊँगी’ ॥ १८ ॥ यों कहकर चित्रलेखाने बात-शी-बातमें बहुत-से देवता, गन्धर्व, सिद्ध, चारण, पन्नग, दैत्य, विषाधर, यक्ष और मनुष्योंके चित्र बना दिये ॥ १९ ॥ मनुष्योंमें उसने वृष्णिर्वंशी बहुदेवजीके पिता शूर, सूर्य बहुदेवजी, बलरामजी और भगवान् श्रीकृष्ण आदिके चित्र बनाये । प्रयुक्तक चित्र देखते ही क्या लजित हो गयी ॥ २० ॥ परीक्षित ! जब उसने अनिरुद्धका चित्र देखा, तब तो लज्जाके गारे उसका सिर नीचा हो गया । फिर मन्द-मन्द मुसकराते हुए उसने कहा—‘मेरा वह प्राणवल्गम यही है, यही है’ ॥ २१ ॥

परीक्षित ! चित्रलेखा योगिनी थी । वह जान गयी कि ये भगवान् श्रीकृष्णके पौत्र हैं । अब वह आकाश-मार्गसे रात्रिमें ही भगवान् श्रीकृष्णके द्वारा सुरक्षित द्वारकापुरीमें पहुँची ॥ २२ ॥ वहाँ अनिरुद्धजी बहुत ही सुन्दर पलंगपर सो रहे थे । चित्रलेखा योगसिद्धिके प्रभावसे उन्हें उठाकर शोणितपुर ले आयी और अपनी सखी लजाको उसके प्रियतमका दर्शन करा दिया ॥ २३ ॥ अपने परम सुन्दर प्राणवल्गमको पाकर आनन्दकी अधिकतासे उसका मुखकमल प्रफुल्लित हो उठा और वह अनिरुद्धजीके साथ अपने महलमें विहार करने लगी ।

परीक्षित ! उसका अन्तःपुर इतना सुरक्षित था कि उसकी ओर कोई पुरुष अक्षतक नहीं सकता था ॥ २४ ॥ उमाका प्रेम दिन दूना रात चौगुना बढ़ता जा रहा था । वह बहुभूत्य वन, पुष्पोंके हार, इन्-फुल्लेख, धूप-दीप, आसन आदि सामग्रियोंसे, सुमधुर पेय (पीने-योग्य पदार्थ—दूध, शरबत आदि), भोज्य (खाकर खानेयोग्य) और भक्ष्य (निगल जानेयोग्य) पदार्थोंसे तथा मनोहर वाणी एवं सेवा-शुभ्रवासे अनिरुद्धजीका बका सम्भार करती । उमाने अपने प्रेमसे उनके मनको अपने वशमें कर लिया । अनिरुद्धजी उस कन्याके अन्तःपुरमें छिपे रहकर अपने-आपको मूढ़ गये । उन्हें इस बातका भी पता न चला कि मुझे यहाँ आये कितने दिन बीत गये ॥ २५-२६ ॥

परीक्षित ! यह कुमार अनिरुद्धजीके सहवाससे उमाका कुर्जोरपन नष्ट हो चुका था । उसके शरीरपर ऐसे चिह्न प्रकट हो गये, जो स्पष्ट इस बातकी सूचना दे रहे थे और जिन्हें किसी प्रकार छिपाया नहीं जा सकता था । उमा बहुत प्रसन्न भी रहने लगी । पहरेदारोंने समझ लिया कि इसका किसी-न-किसी पुरुषसे सम्बन्ध अवश्य हो गया है । उन्होंने जाकर बाणासुरसे निवेदन किया—‘प्राज्ञन् ! हमलोग आपकी अविवाहिता राजकुमारीका जैसा रंग-रंग देख रहे हैं, वह आपके कुंजर बहा लगानेवाला है ॥ २७-२८ ॥ प्रभो ! इसमें सन्देह नहीं कि हमलोग बिना काम टूटे, रात-दिन महलका पहरा देते रहते हैं । आपकी कन्याको बाहरके मनुष्य देख भी नहीं सकते । फिर भी वह कलङ्कित कैसे हो गयी ! इसका कारण हमारी समझमें नहीं आ रहा है’ ॥ २९ ॥

परीक्षित ! पहरेदारोंने यह समाचार जानकर कि कन्याका चरित्र दूषित हो गया है, बाणासुरके हृदयमें बड़ी पीडा हुई । वह झटपट उमाके महलमें जा घबका और देखा कि अनिरुद्धजी वहाँ बैठे हुए हैं ॥ ३० ॥ प्रिय परीक्षित ! अनिरुद्धजी स्वयं कामावतार प्रयुक्तजीके पुत्र थे । त्रिशुक्तनमें उनके-जैसा सुन्दर और कोई न था । सौवज-सखीका शरीर और उसपर पीताम्बर पहराता हुआ, कमलदलके समान बड़ी-बड़ी कोमल आँखें, झंभी-झंभी मुझाएँ, कमलोंपर कुँवराजी अलकों और

कुण्डलोंकी झिलमिलाती हुई ज्योति, होठोंपर मन्द-मन्द मुसकान और प्रेमभरी चितवनसे मुखकी शोभा अनूठी हो रही थी ॥ ३१ ॥ अनिरुद्धजी उस समय अपनी सब ओरसे सज-धजकर बैठी हुई प्रियतमा ऊषाके साथ पासे खेल रहे थे । उनके गलेमें बरती वेलके बहुत सुन्दर पुष्पोंका हार सुशोभित हो रहा था और उस हारमें ऊषाके अङ्गका सम्पर्क होनेसे उसके वक्ष स्थलकी केशर लगी हुई थी । उन्हें ऊषाके सामने ही बैठा देखकर बाणासुर विस्मित-चकित हो गया ॥ ३२ ॥ जब अनिरुद्धजीने देखा कि बाणासुर बहुत-से आक्रमणकारी शत्रुओंसे सुसज्जित थीर सैनिकोंके साथ महलमें घुस आया है, तब वे उन्हें बरादासी कर देनेके लिये जोहैका एक मयङ्कर परिध लेकर बट गये, मानो स्वयं

काळदण्ड लेकर मृत्यु (यम) खड़ा हो ॥ ३३ ॥ बाणासुरके साथ आये हुए सैनिक उनको पकड़नेके लिये ज्यों-ज्यों उनकी ओर झपटते त्यों-त्यों वे उन्हें मार-मारकर गिराते जाते—ठीक वैसे ही, जैसे सूअरोंके दलका नायक कुत्तोंको मार डाले । अनिरुद्धजीकी चोटसे उन सैनिकोंके सिर, मुखा, जंघा आदि अङ्ग टूट-झट गये और वे महलसे निकल भागे ॥ ३४ ॥ जब वही बाणासुरने देखा कि यह तो मेरी सारी सेनाका संहार कर रहा है, तब वह क्रोधसे तिलमिल उठा और उसने नागपाशसे उन्हें बाँध लिया । ऊषाने जब सुना कि उसके प्रियतमको बाँध लिया गया है, तब वह अत्यन्त शोक और निरादरसे बिह्वल हो गयी; उसके नेत्रोंसे जाँसूकी धारा बहने लगी, वह रोने लगी ॥ ३५ ॥

तिरसठवाँ अध्याय

भगवान् श्रीकृष्णके साथ बाणासुरका युद्ध

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित ! बरसातके चार महीने बीत गये । परन्तु अनिरुद्धजीका कहीं पता न चला । उनके घरके लोग, इस घटनासे बहुत ही शोककुल हो रहे थे ॥ १ ॥ एक दिन नारदजीने आकर अनिरुद्धका शोणितपुर जमा, वहाँ बाणासुरके सैनिकोंको हराना और फिर नागपाशमें बाँधा जाना—यह सारा समाचार सुनाया । तब श्रीकृष्णको ही अपना आराध्यदेव माननेवाले यदुवंशियोंने शोणितपुरपर चढ़ाई कर दी ॥ २ ॥ अब श्रीकृष्ण और बलरामजीके साथ उनके अनुयायी सभी यदुवंशी—प्रभुज, सात्यकि, गद, सान्ध, सारण, नन्द, उपनन्द और मद्र आदिने बारह अक्षौहिणी सेनाके साथ झुह बनाकर चारों ओरसे बाणासुरकी राजधानीको घेर लिया ॥ ३-४ ॥ जब बाणासुरने देखा कि यदुवंशियोंकी सेना नगरके उधान, परकटैयें, बुजों और सिंहद्वारोंको तोड़-फोड़ रही है, तब उसे बड़ा क्रोध आया और वह भी बारह अक्षौहिणी सेना लेकर नगरसे निकल पड़ा ॥ ५ ॥ बाणासुरकी ओरसे साक्षात् भगवान् शङ्कर वृषभराज नन्दीप सवार होकर अपने पुत्र कार्तिकेय और गणोंके साथ रणभूमिमें पधारे और उन्होंने भगवान् श्रीकृष्ण तथा बलरामजीसे युद्ध किया ॥ ६ ॥ परीक्षित ! वह युद्ध इतना अद्भुत और घमासान हुआ कि उसे देखकर रोंगटे खड़े हो जाते

थे । भगवान् श्रीकृष्णसे शङ्करजीका और प्रभुसे स्वामिकर्तिकका युद्ध हुआ ॥ ७ ॥ बलरामजीने कुम्भाज और कूपकर्णका युद्ध हुआ । बाणासुरके पुत्रके साथ सान्ध और स्वयं बाणासुरके साथ सात्यकि मित्र गये ॥ ८ ॥ ब्रह्मा आदि बड़े-बड़े देवता, ऋषि-मुनि, सिद्ध-चारण, गन्धर्व-असुराएँ और यक्ष विमानोंपर चढ़-चढ़कर युद्ध देखनेके लिये आ पहुँचे ॥ ९ ॥ भगवान् श्रीकृष्णने अपने शार्ङ्गधनुषके तीखी नोकवाले बाणोंसे शङ्करजीके अनुचरों—भूत, प्रेत, प्रमथ, गुह्यक, बकिनी, घातुवान, वेताळ, विनायक, प्रेतगण, मातृगण, पिशाच, कूष्माण्ड और ब्रह्माश्वसोंको मार-मारकर खदेड़ दिया ॥ १०-११ ॥ पिनाकपाणि शङ्करजीने भगवान् श्रीकृष्णपर भौतिक-भौतिके अगणित अक्ष-शत्रुओंका प्रयोग किया, परन्तु भगवान् श्रीकृष्णने बिना किसी प्रकारके विस्मयके उन्हें विरोधी शस्त्राक्षोंसे शान्त कर दिया ॥ १२ ॥ भगवान् श्रीकृष्णने ब्रह्माक्षकी शान्तिके लिये ब्रह्माक्षका, वायव्याक्षके लिये पार्वनाक्षका, आग्नेयाक्षके लिये पर्जन्याक्षका और पाशुपताक्षके लिये नारायणाक्षका प्रयोग किया ॥ १३ ॥ इसके बाद भगवान् श्रीकृष्णने जम्भणाक्षसे (जिससे मनुष्यको जैमाई-पर-जैमाई आने लगती है) महादेवजीको मोहित कर दिया ।

वे युद्धसे विरत होकर जैमाई लेने लगे, तब भगवान् श्रीकृष्ण शङ्करजीसे छुट्टी पाकर तलवार, गदा और बाणोंसे बाणासुरकी सेनाका संहार करने लगे ॥ १४ ॥ इधर प्रयुध्नने बाणोंकी बीछारसे स्वामिकार्तिकको बाणक कर दिया, उनके अङ्ग-अङ्गसे रक्तकी धारा बह चली, वे रणभूमि छोड़कर अपने बाहन मयूरद्वारा भाग निकले ॥ १५ ॥ बलरामजीने अपने मूसलकी चोटसे कुम्भमाण्ड और कूपकर्णको धाकल कर दिया, वे रणभूमिमें गिर पड़े । इस प्रकार अपने सेनापतियोंको हताहत देखकर बाणासुरकी सारी सेना तितर-बितर हो गयी ॥ १६ ॥

जब रथपर सवार बाणासुरने देखा कि श्रीकृष्ण आदिके प्रहारसे हमारी सेना तितर-बितर और तहस-नहस हो रही है, तब उसे बड़ा क्रोध आया । उसने चिड़कर सात्वतिको छोड़ दिया और वह भगवान् श्रीकृष्णपर आक्रमण करनेके लिये दौड़ पड़ा ॥ १७ ॥ परीक्षित । रणोन्मत्त बाणासुरने अपने एक हजार हाथोंसे एक साथ ही पाँच सौ धनुष खींचकर एक-एकपर दो-दो बाण चढ़ाये ॥ १८ ॥ परन्तु भगवान् श्रीकृष्णने एक साथ ही उसके सारे धनुष काट डाले और सारथी, रथ तथा घोड़ोंको भी धराशायी कर दिया एवं शङ्ख-ध्वनि की ॥ १९ ॥ कीदटा नामकी एक देवी बाणासुरकी धर्ममाता थी । वह अपने तपासक पुत्रके प्राणोंकी रक्षाके लिये बाध बिखेरकर नग-बधग भगवान् श्रीकृष्णके सामने आकर खड़ी हो गयी ॥ २० ॥ भगवान् श्रीकृष्णने, इसलिये कि कहीं उसपर दृष्टि न पड़ जाय, अपना मुँह फेर लिया और वे दूसरी ओर देखने लगे । तबतक बाणासुर धनुष कट जाने और रथहीन हो जानेके कारण अपने नगरमें चला गया ॥ २१ ॥

इधर जब भगवान् शङ्करके सूतगण इधर-उधर भाग गये, तब उनका छोड़ा हुआ तीन सिर और तीन पैरवाला ज्वर दसों दिशाओंको जलता हुआ सा भगवान् श्रीकृष्णकी ओर दौड़ा ॥ २२ ॥ भगवान् श्रीकृष्णने उसे अपनी ओर आते देखकर उसका मुकाबला करनेके लिये अपना ध्वज छोड़ा । जब वैष्णव और माहेश्वर दोनों ध्वज आपसमें लड़ने लगे ॥ २३ ॥ अन्तमें वैष्णव ध्वजके तेजसे माहेश्वर ध्वज पीछित होकर चिल्लने लगा और

अत्यन्त मयमीत हो गया । जब उसे अन्त्यत्र कहीं जाण न मिला, तब वह अत्यन्त नम्रतासे हाथ जोड़कर शरणमें लेनेके लिये भगवान् श्रीकृष्णसे प्रार्थना करने लगा ॥ २४ ॥

ज्वरने कहा—प्रभो । आपकी शक्ति अनन्त है । आप ब्रह्मादि ईश्वरोंके भी परम माहेश्वर हैं । आप सबके आत्मा और सर्वस्वरूप हैं । आप अद्वितीय और केवल ज्ञानस्वरूप हैं । ससारकी उत्पत्ति, स्थिति और संहारके कारण आप ही हैं । श्रुतियोंके द्वारा आपका ही वर्णन और अनुमान किया जाता है । आप समस्त विकारोंसे रहित स्वयं ब्रह्म हैं । मैं आपको प्रणाम करता हूँ ॥ २५ ॥ काल, दैव (अदृष्ट), कर्म, जीव, लभाव, सूक्ष्मभूत, शरीर, सूत्रात्मा प्राण, अव्यक्कार, एकादश हिम्र्याँ और पञ्चभूत—इन सबका संघात छिन्नशरीर और बीजाङ्गुरन्यायके अनुसार उससे कर्म और कर्मसे फिर छिन्नशरीरकी उत्पत्ति—यह सब आपकी माया है । आप मायाके नियंत्रणकी परम अवधि हैं । मैं आपकी शरण ग्रहण करता हूँ ॥ २६ ॥ प्रभो । आप अपनी लीलासे ही अनेकों रूप धारण कर लेते हैं और वेष्टता, साधु तथा लोक-मर्यादाओंका पालन-पोषण करते हैं । साथ ही उन्मार्ग-गामी और हिसक असुरोंका संहार भी करते हैं । आपका यह अवतार पृथ्वीका मार उतारनेके लिये ही हुआ है ॥ २७ ॥ प्रभो । आपके शान्त, उग्र और अत्यन्त भयानक दुस्सह तेज ज्वरसे मैं अत्यन्त सन्तप्त हो रहा हूँ । भगवान् । देहधारी जीवोंको तभीतक ताप-सन्ताप रहता है, जबतक वे आशाके फंदोंमें फँसे रहनेके कारण आपके ध्वजकमलोंकी शरण नहीं ग्रहण करते ॥ २८ ॥

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—गतिशिरा । मैं तुमपर प्रसन्न हूँ । अब तुम मेरे ज्वरसे निर्मय हो जाओ । संसारमें जो कोई हम दोनोंके संवादका स्मरण करेगा, उसे तुमसे कोई भय न रहेगा ॥ २९ ॥ भगवान् श्रीकृष्णके इस प्रकार कहनेपर माहेश्वर ध्वज उन्हें प्रणाम करने चला गया । तबतक बाणासुर रथपर सवार होकर भगवान् श्रीकृष्णसे युद्ध करनेके लिये फिर आ पहुँचा ॥ ३० ॥ परीक्षित । बाणासुरने अपने हजार हाथोंमें तरह-तरहके हथियार छे रक्खे थे । अब वह अत्यन्त क्रोधमें भरकर चक्रपाणि भगवान् पर बाणोंकी वर्षा करने लगा ॥ ३१ ॥

जब भगवान् श्रीकृष्णने देखा कि बाणासुरने तो बाणोंकी झड़ी लगा दी है, तब वे छुरेकी सैनाम तीखी धारवाले चक्रसे उसकी भुजाएँ काटने लगे, मानो कोई किसी वृक्षकी छेदी-छेदी ढाखियों काट रहा हो ॥ ३२ ॥ जब भक्तवत्सल भगवान् शङ्करने देखा कि बाणासुरकी भुजाएँ काट रही हैं, तब वे चक्रधारी भगवान् श्रीकृष्णके पास आये और स्तुति करने लगे ॥ ३३ ॥

भगवान् शङ्करने कहा—प्रभो ! आप वैदमन्त्रोंमें तात्पर्यरूपसे छिपे हुए परमज्योतिःस्वरूप परब्रह्म हैं । शुद्धद्वय महात्मागण आपके आकाशके समान सर्वव्यापक और निर्बिकार (निर्लेप) स्वरूपका साक्षात्कार करते हैं ॥ ३४ ॥ आकाश आपकी नामि है, अग्नि मुख है और जल वीर्य । सर्ग सिर, दिशाएँ कान और पृथ्वी चरण है । चन्द्रमा मन, सूर्य नेत्र और मैं शिव आपका अहङ्कार हूँ । समुद्र आपका पेट है और इन्द्र मुजा ॥ ३५ ॥ धान्यादि ओषधियाँ रोम हैं, मेघ केस हैं और ब्रह्मा बुद्धि । प्रजापति छिन्न हैं और धर्म हृदय । इस प्रकार समस्त लोक और लोकान्तरोंके साथ जिसके शरीरकी तुलना की जाती है, वे परमपुरुष आप ही हैं ॥ ३६ ॥ अलण्ड ज्योतिःस्वरूप परमात्मन् ! आपका यह अवतार धर्मकी रक्षा और संसारके अन्त्यदय—अभिघ्नदिके लिये हुआ है । हम सब भी आपके प्रभावसे ही प्रभावान्वित होकर सातों सुक्तोंका पाठन करते हैं ॥ ३७ ॥ आप सजातीय, विजातीय और खगलभेदसे रहित हैं—एक और अद्वितीय आदिपुरुष हैं । मायाकृत जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति—इन तीन अवस्थाओंमें अनुगत और उनसे अतीत तुरीयस्व भी आप ही हैं । आप किसी दूसरी वस्तुके द्वारा प्रकाशित नहीं होते, स्वयंप्रकाश हैं । आप सबके कारण हैं, परन्तु आपका न-तो कोई कारण है और न तो आपमें कारणपना ही है । भगवन् ! ऐसा होनेपर भी आप तीनों गुणोंकी विभिन्न विषमताओंको प्रकाशित करनेके लिये अपनी मायासे देवता, पशु-पक्षी, मनुष्य आदि शरीरोंके अनुसार भिन्न-भिन्न रूपोंमें प्रतीत होते हैं ॥ ३८ ॥ प्रभो ! जैसे सूर्य अपनी छाया बादलोंसे ही ढक जाता है और उन बादलों तथा विभिन्न रूपोंको प्रकाशित करता है

उसी प्रकार आप तो स्वयंप्रकाश हैं, परन्तु गुणोंके द्वारा मानो ढक-से जाते हैं और समस्त गुणों तथा गुण-मिमांसी जीवोंको प्रकाशित करते हैं । वास्तवमें आप अनन्त हैं ॥ ३९ ॥

भगवन् ! आपकी मायासे मोहित होकर लोग स्त्री-पुत्र, वेद-गोष्ठ आदिमें आसक्त हो जाते हैं और फिर दुःखके अपार सागरमें डूबने-उतरने लयते हैं ॥ ४० ॥ संसारके मानवोंको यह मनुष्य-शरीर आपने अत्यन्त कृपा करके दिया है । जो पुरुष इसे पाकर भी अपनी इन्द्रियोंको बशमें नहीं करता और आपके चरणकमलोंका आश्रय नहीं लेता—उनका सेवन नहीं करता, उसका जीवन अत्यन्त शीघ्रनीय है और वह स्वयं अपने-आपको धोखा दे रहा है ॥ ४१ ॥ प्रभो ! आप समस्त प्राणियोंके आत्मा, प्रियतम और ईश्वर हैं । जो मृत्पुका मांस मनुष्य आपको छेब देता है और अनात्म, दुःस्वरूप एवं तुच्छ विषयोंमें सुख-शुद्धि करके उनके पीछे भटकता है, वह इतना मूर्ख है कि अमृतको छेबकर विष पी रहा है ॥ ४२ ॥ मैं, ब्रह्म, सारे देवता और विशुद्ध हृदयवाले ऋषि-मुनि सब प्रकारसे और सर्वात्मभावसे आपके शरणगत हैं; क्योंकि आप ही हमलोगोंके आत्मा, प्रियतम और ईश्वर हैं ॥ ४३ ॥ आप जगत्की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलयके कारण हैं । आप सबमें सम, परम शान्त, सबके सुहृद् आत्मा और इष्टदेव हैं । आप एक, अद्वितीय और जगत्के आधार तथा अधिष्ठान हैं । हे प्रभो ! हम सब संसारसे मुक्त होनेके लिये आपका भजन करते हैं ॥ ४४ ॥ देव ! यह बाणासुर मेरा परमप्रिय, कृपाप्राप्त और सेवक है । मैंने इसे अमरब्रह्म दिया है । प्रभो ! जिस प्रकार इसके परदादा दैत्यराज प्रह्लादपर आपका कृपाप्रसाद है, वैसा ही कृपाप्रसाद आप इसपर भी करें ॥ ४५ ॥

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—भगवन् ! आपकी बात मानकर—जैसा आप चाहते हैं, मैं इसे निर्भय किये देता हूँ । आपने पहले इसके सम्बन्धमें जैसा निश्चय किया था—मैंने इसकी भुजाएँ काटकर उसीका अनुमोदन किया है ॥ ४६ ॥ मैं जानता हूँ कि बाणासुर दैत्यराज बलिका पुत्र है । इसलिये मैं भी इसका वध नहीं कर सकता; क्योंकि मैंने प्रह्लादको वर दे दिया है कि मैं तुम्हारे बंधनमें पैदा होनेवाले किसी भी दैत्यका

वध नहीं कहेंगा ॥ ४७ ॥ इसका धर्मद चूर करनेके लिये ही मैंने इसकी भुजाएँ काट दी हैं । इसकी बहुत बड़ी सेना पृथ्वीके लिये मार हो रही थी, इसीलिये मैंने उसका सहार कर दिया है ॥ ४८ ॥ अब इसकी चार भुजाएँ बच रही हैं । ये अजर, अमर बनी रहेंगी । यह बाणासुर आपके पार्षदोंमें मुख्य होगा । अब इसको किसीसे किसी प्रकारका भय नहीं है ॥ ४९ ॥

श्रीकृष्णसे इस प्रकार अभयदान प्राप्त करके बाणासुरने उनके पास आकर धरतीमें माथा टेका, प्रणाम किया और अनिरुद्धजीको अपनी पुत्री ऊषाके साथ रखपर बैठाकर भगवान्‌के पास ले आया ॥ ५० ॥ इसके बाद भगवान्‌ श्रीकृष्णने महादेवजीकी सम्मतिसे बलाहकविभूषित ऊषा और अनिरुद्धजीको एक अश्वी-

हिणी सेनाके साथ आगे करके द्वारकाके लिये प्रस्थान किया ॥ ५१ ॥ इतर द्वारकामें भगवान्‌ श्रीकृष्ण आदिके अनुगमनका समाचार सुनकर शत्रुओं और तोरणोंसे नगरका कोना कोना सजा दिया गया । बड़ी-बड़ी सड़कों और चौराहोंको चन्दन-मिश्रित जलसे सींच दिया गया । नगरके नागरिकों, वन्धु-बान्धवों और ब्राह्मणोंने आगे आकर खूब धूमधामसे भगवान्‌का स्वागत किया । उस समय शङ्ख, नगारों और ढोलोंकी तुमुल ध्वनि हो रही थी । इस प्रकार भगवान्‌ श्रीकृष्णने अपनी राजधानीमें प्रवेश किया ॥ ५२ ॥

परीक्षित ! जो पुरुष श्रीशङ्करजीके साथ भगवान्‌ श्रीकृष्णका युद्ध और उनकी विजयकी कथाका प्रातः-काल उठकर स्मरण करता है, उसकी पराजय नहीं होती ॥ ५३ ॥

चौसठवाँ अध्याय

नृप राजाकी कथा

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—प्रिय परीक्षित ! एक दिन साम्ब, प्रपुत्र, चारुमानु और गद आदि यदुवंशी राजकुमार धूमनेके लिये उपवनमें गये ॥ १ ॥ वहाँ बहुत देरतक खेल खेलते हुए उन्हें प्यास लग आयी । अब वे इधर-उधर जलकी खोज करने लगे । वे एक झरूँके पास गये; उसमें जल तो था नहीं, एक बड़ा विचित्र जीव दीख पड़ा ॥ २ ॥ वह जीव पर्वतके समान आकारका एक गिरगिट था । उसे देखकर उनके आश्चर्यकी सीमा न रही । उनका हृदय कठणासे भर आया और वे उसे बाहर निकालनेका प्रयत्न करने लगे ॥ ३ ॥ परन्तु जब वे राजकुमार उस गिरे हुए गिरगिटको चमड़े और सूती रस्सियोंसे बाँधकर बाहर न निकाल सके, तब क्रुतहृत्‌वश उन्होंने यह आश्चर्य-मय वृक्षान्त भगवान्‌ श्रीकृष्णके पास जाकर निवेदन किया ॥ ४ ॥ जगत्‌के जीवनदाता कमलनयन भगवान्‌ श्रीकृष्ण उस कुँएपर आये । उसे देखकर उन्होंने बायें हाथसे खेल-खेलमें—अनायास ही उसको बाहर निकाल लिया ॥ ५ ॥ भगवान्‌ श्रीकृष्णके करकमलोंका स्पर्श होते ही उसका गिरगिट-रूप जाता रहा और वह एक

सर्गाय देवताके रूपमें परिणत हो गया । अब उसके शरीरका रंग तपाये हुए सोनेके समान चमक रहा था । और उसके शरीरपर अद्भुत बल, आभूषण और पुष्पोंके द्वार शोभा पा रहे थे ॥ ६ ॥ यद्यपि भगवान्‌ श्रीकृष्ण जानते थे कि इस दिव्य पुरुषको गिरगिट-योनि क्यों मिली थी, फिर भी वह कारण सर्वसाधारणको माखम हो जाय, इसलिये उन्होंने उस दिव्य पुरुषसे पूछा—
‘महाभाग ! तुम्हारा रूप तो बहुत ही सुन्दर है । तुम हो कौन ? मैं तो ऐसा समझता हूँ कि तुम अवश्य ही कोई श्रेष्ठ देवता हो ॥ ७ ॥ कल्याणमूर्ते ! किस कर्मके फलसे तुम्हें इस योनिमें आना पड़ा था ? वास्तवमें तुम इसके योग्य नहीं हो । हमलोग तुम्हारा वृक्षान्त जानना चाहते हैं । यदि तुम हमलोगोंको वह बातजाना उचित समझो तो अपना परिचय अवश्य दो ॥ ८ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित ! जब अनन्त-मूर्ति भगवान्‌ श्रीकृष्णने राजा नृपसे [क्योंकि वे ही इस रूपमें प्रकट हुए थे] इस प्रकार पूछा, तब उन्होंने अपना सूर्यके समान जाज्वल्यमान मुकुट हृत्‌काकर भगवान्‌को प्रणाम किया और वे इस प्रकार कहने लगे ॥ ९ ॥

राजा नृगने कहा—प्रभो ! मैं महाराज इक्काकुका पुत्र राजा नृग हूँ । जब कभी किसीने आपके सामने दानियोंकी गिनती की होगी, तब उसमें मेरा नाम भी अवश्य ही आपके कानोंमें पड़ा होगा ॥ १० ॥ प्रभो ! आप समस्त प्राणियोंकी एक-एक वृत्तिके साक्षी हैं । मृत और भविष्यका व्यवधान भी आपके अखण्ड ज्ञानमें किसी प्रकारकी बाधा नहीं डाल सकता । अतः आपसे छिपा ही क्या है ? फिर भी मैं आपकी आज्ञाका पाठन करनेके लिये कहता हूँ ॥ ११ ॥ भगवन् ! पृथ्वीमें जितने वृक्षिकाण हैं, आकाशमें जितने तारे हैं और वर्षामें जितनी जलकी धाराएँ गिरती हैं, मैंने उतनी ही गौएँ दान की थी ॥ १२ ॥ वे सभी गौएँ दुधार, मौजवान, सीधी, सुन्दर, सुलक्षणा और कपिल थीं । उन्हें मैंने न्यायके धनसे प्राप्त किया था । सबके साथ बछड़े थे । उनके सींगोंमें सोना मड़ दिया गया था और खुरोंमें चाँदी । उन्हें बक, हार और गहनोंसे सजा दिया जाता था । ऐसी गौएँ मैंने दी थी ॥ १३ ॥ भगवन् ! मैं युवावस्थासे सम्पन्न श्रेष्ठ ब्राह्मणकुमारोंको—जो सद्गुणी, शीलसम्पन्न, कष्टमें पड़े हुए कुटुम्बवाले, दम्भरहित तपस्वी, वेदपाठी, शिष्योंको विद्यादान करनेवाले तथा सचरित्र होते—ब्रह्माम्बुषणसे अङ्ककृत करता और उन गौधोंका दान करता ॥ १४ ॥ इस प्रकार मैंने बहुवत्सी गौएँ, पृथ्वी, सोना, धर, बोदे, हाथी, दासियोंके सहित कन्याएँ, तिर्थोंके पर्वत, चाँदी, शय्या, कब, रत्न, गृह-सामग्री और रथ आदि दान किये । अनेकों यह किये और बहुवत्सी कूएँ, बावली आदि बनवाये ॥ १५ ॥

एक दिन किसी अप्रतिग्रही (दान न लेनेवाले), तपस्वी ब्राह्मणकी एक गाय बिन्दुबकर मेरी गौधोंमें आ मिली । मुझे इस बातका बिन्दुबकर पता न चला । इसलिये मैंने अनजानमें उसे किसी दूसरे ब्राह्मणको दान कर दिया ॥ १६ ॥ जब उस गायको वे ब्राह्मण ले चले, तब उस गायके असखी स्वामीने कहा—‘यह गौ मेरी है । दान ले जानेवाले ब्राह्मणने कहा—‘यह तो मेरी है, क्योंकि राजा नृगने मुझे इसका दान किया है ॥ १७ ॥ वे दोनों ब्राह्मण आपसमें झगड़ते हुए अपनी-अपनी बात कायम करनेके लिये मेरे पास आये । एकने कहा—‘यह गाय अभी-अभी आपने मुझे दी है’ और

दूसरेने कहा कि यदि ऐसी बात है तो तुमने मेरी गाय चुरा ली है ।’ भगवन् ! उन दोनों ब्राह्मणोंकी बात सुनकर मेरा चित्त भ्रमित हो गया ॥ १८ ॥ मैंने धर्म-संकटमें पड़कर उन दोनोंसे बढ़ी अनुनय-विनय की और कहा कि मैं बदलेमें एक लाख उत्तम गौएँ दूँगा । आपलोग मुझे यह गाय दे दीजिये ॥ १९ ॥ मैं आप-लोगोंका सेवक हूँ । मुझसे अनजानमें यह अपराध बन गया है । मुझपर आपलोग क्रुपा कीजिये और मुझे इस घोर कष्टसे तथा घोर नरकमें गिरनेसे बचा लीजिये ॥ २० ॥ राजन् ! मैं इसके बदलेमें कुछ नहीं दूँगा । यह कहकर गायका स्वामी चला गया । ध्रुम इसके बदलेमें एक अख ही नहीं, दस हजार गौएँ और दो तो भी मैं लेनेका नहीं ।’ इस प्रकार कहकर दूसरा ब्राह्मण भी चला गया ॥ २१ ॥ देवाधिदेव जगदीश्वर ! इसके बाद आयु समाप्त होनेपर यमराजके दूत आये और मुझे यमपुरी ले गये । वहाँ यमराजने मुझसे पूछा—॥ २२ ॥ राजन् ! तुम पहले अपने पापका फल भोगना चाहते हो या पुण्यका ! तुम्हारे दान और धर्मके फलस्वरूप तुम्हें ऐसा तेजस्वी लोक प्राप्त होनेवाला है, जिसकी कोई सीमा ही नहीं है ॥ २३ ॥ भगवन् ! तब मैंने यमराजसे कहा—‘देव ! पहले मैं अपने पापका फल भोगना चाहता हूँ ।’ और उसी क्षण यमराजने कहा—‘तुम गिर जाओ ।’ उनके ऐसा कहते ही मैं वहाँसे गिरा और गिरते ही समय मैंने देखा कि मैं गिर-गिर हो गया हूँ ॥ २४ ॥ प्रभो ! मैं ब्राह्मणोंका सेवक उदार दामी और आपका भक्त था । मुझे इस बातकी उत्कट अमिषणा थी कि किसी प्रकार आपके दर्शन हो जायँ । इस प्रकार आपकी कृपासे मेरे पूर्वजन्मकी सृष्टि नष्ट न हुई ॥ २५ ॥ भगवन् ! आप परमात्मा हैं । बड़े-बड़े बुद्ध-बुद्ध योगीश्वर उपनिषद्की दृष्टिसे (ब्रह्मे-दृष्टिसे) अपने हृदयमें आपका ध्यान करते रहते हैं । इन्द्रिया-तीत परमात्मन् ! साक्षात् आप मेरे नेत्रोंके सामने कैसे आ गये । क्योंकि मैं तो अनेक प्रकारके व्यसनो, दुःखद कर्मोंमें फँसकर अंधा हो रहा था । आपका दर्शन तो तब होता है, जब संसारके चक्रसे छुटकारा मिलनेका समय आता है ॥ २६ ॥ देवताओंके भी आराध्यदेव ।

पुरुषोत्तम गोविन्द । आप ही व्यक्त और अन्यक्त जगत् तथा जीवोंके स्वामी हैं । अम्बिनारी अच्युत । आपकी कीर्ति पवित्र है । अन्तर्यामी नारायण । आप ही समस्त वृत्तियों और इन्द्रियोंके स्वामी हैं ॥ २७ ॥ प्रभो । श्रीकृष्ण । मैं अब देवताओंके लोकमें जा रहा हूँ । आप मुझे आज्ञा दीजिये । आप ऐसी कृपा कीजिये कि मैं चाहे कहीं भी क्यों न रहूँ, मेरा चित सदा आपके चरणकमलोंमें ही लगा रहे ॥ २८ ॥ आप समस्त कार्यों और कारणोंके रूपमें विद्यमान हैं । आपकी शक्ति अनन्त है और आप स्वयं ब्रह्म है । आपको मैं नमस्कार करता हूँ । सच्चिदानन्दस्वरूप सर्वान्तर्यामी वासुदेव श्रीकृष्ण । आप समस्त योगोंके स्वामी योगेश्वर हैं । मैं आपको बार-बार नमस्कार करता हूँ ॥ २९ ॥

राजा दृगने इस प्रकार कहकर भगवान्की परिक्रम की और अपने मुकुटसे उनके चरणोंका स्पर्श करके प्रणाम किया । फिर उनसे आज्ञा लेकर सबके देखते-देखते ही वे श्रेष्ठ विमानपर सवार हो गये ॥ ३० ॥

राजा दृगने चले जानेपर ब्राह्मणोंके परम प्रेमी, धर्मके आधार देवकीनन्दन भगवान् श्रीकृष्णने क्षत्रियोंको शिक्षा देनेके लिये वहाँ उपस्थित अपने कुटुम्बके लोगोंसे कहा— ॥ ३१ ॥ ‘जो जोग अग्निके समान तेजस्वी हैं वे भी ब्राह्मणोंका धोखे-से धोका घन हृदयकर नहीं पचा सकते । फिर जो अभिमानवश झूठम्ह अपनेको जोगोंका स्वामी समझते हैं, वे राजा तो क्या पचा सकते हैं ? ॥ ३२ ॥ मैं हलाहल विषको विष नहीं मानता, क्योंकि उसकी चिकित्सा होती है । वस्तुतः ब्राह्मणोंका घन ही परम विष है; उसको पचा लेनेके लिये पृथ्वीमें कोई औषध, कोई उपाय नहीं है ॥ ३३ ॥ हलाहल विष केवल खानेवालेका ही प्राण लेता है, और आग भी जलके द्वारा बुझायी जा सकती है; परन्तु ब्राह्मणके घनरूप वरणिसे जो आग पैदा होती है, वह सारे कुलको समूल जला डालती है ॥ ३४ ॥ ब्राह्मणका घन यदि उसकी पूरी-भूरी सम्पत्ति लिये बिना भोगा जाय तब तो वह भोगनेवाले, उसके छद्मके और पौत्र—इन तीन पीढ़ियोंको ही चौपट करता है । परन्तु यदि बल-पूर्वक हठ करके उसका उपयोग किया जाय, तब तो

पूर्वपुरुषोंकी दस पीढ़ियों और आगेकी भी दस पीढ़ियों नष्ट हो जाती हैं ॥ ३५ ॥ जो मूर्ख राजा अपनी राजलक्ष्मीके घमंडसे अचे होकर ब्राह्मणोंका घन हृदयपना चाहते हैं, सम्झना चाहिये कि वे जान-बूझकर नरकमें जानेका रास्ता साफ कर रहे हैं । वे देखते नहीं कि उन्हें अधःपतनके कैसे गहरे गहरेमें गिरना पड़ेगा ॥ ३६ ॥ जिन उदार-हृदय और बहुकुटुम्बी ब्राह्मणोंकी वृत्ति छीन ली जाती है, उनके रोनेपर उनके आँसूकी बूँदोंसे चरतीके जितने वृक्षका भीगते हैं, उतने वर्षोंतक ब्राह्मणके खलको छीननेवाले उस उच्छृङ्खल राजा और उसके वंशजोंको कुम्भीपाक नरकमें दुःख भोगना पड़ता है ॥ ३७-३८ ॥ जो मनुष्य अपनी पा दूसरोंकी दी हुई ब्राह्मणोंकी वृत्ति, उनकी जीविकाके साधन छीन लेते हैं, वे साठ हजार वर्षतक विष्णुके कीड़े होते हैं ॥ ३९ ॥ इसलिये मैं तो यही चाहता हूँ कि ब्राह्मणोंका घन कभी मूलसे भी मेरे कोषमें न आये, क्योंकि जो जोग ब्राह्मणोंके घनकी इच्छा भी करते हैं—उसे छीननेकी बात तो अच्छा रही—वे इस जन्ममें अस्पायु, शत्रुओंसे पराजित और राज्यभ्रष्ट हो जाते हैं और धृष्टके बाद भी वे दूसरोंको कष्ट देनेवाले साँप ही होते हैं ॥ ४० ॥ इसलिये मेरे आत्मीयो ! यदि ब्राह्मण अपराध करे, तो भी उससे द्वेष मत करो । वह मार ही क्यों न बैठे या बहुत-सी गालियाँ या शाप ही क्यों न दे, उसे तुमजोग सदा नमस्कार ही करो ॥ ४१ ॥ जिस प्रकार मैं बड़ी सावधानीसे तीनों समय ब्राह्मणोंको प्रणाम करता हूँ, वैसे ही तुमजोग भी किया करो । जो मेरी इस आज्ञाका उल्लङ्घन करेगा, उसे मैं क्षमा नहीं करूँगा । दण्ड दूँगा ॥ ४२ ॥ यदि ब्राह्मणके घनका अपहरण हो जाय तो वह अपहृत घन उस अपहरण करनेवालेको—अनजानमें उसके द्वारा यह अपराध हुआ हो तो भी—अधःपतनके गहरेमें डाल देता है । जैसे ब्राह्मणकी गायने अनजानमें उसे लेनेवाले राजा दृगको नरकमें डाल दिया था ॥ ४३ ॥ परीक्षित ! समस्त जनोंको पवित्र करनेवाले भगवान् श्रीकृष्ण द्वारकावासियोंको इस प्रकार उपदेश देकर अपने गहलमें चले गये ॥ ४४ ॥

पैसठवाँ अध्याय

श्रीवल्लभरामजीका व्रजगमन

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित ! भगवान् बल-
रामजीके मनमें व्रजके नन्दबाबा आदि खजन-सम्बन्धियों-
से मिलनेकी बड़ी इच्छा और उत्कण्ठ थी । अब वे
रथपर सवार होकर द्वारकासे नन्दबाबाके व्रजमें आये ॥ १ ॥
इधर उनके लिये व्रजवासी गोप और गोपियों भी बहुत
दिनोंसे उत्कण्ठित थीं । उन्हें अपने बीचमें पाकर सबने
बड़े प्रेमसे गले लगाया । बलरामजीने माता यशोदा और
नन्दबाबाको प्रणाम किया । उन छोगोंने भी आशीर्वाद
देकर उनका अभिनन्दन किया ॥ २ ॥ यह कहकर
कि 'बलरामजी ! तुम जगदीश्वर हो, अपने छोटे भाई
श्रीकृष्णके साथ सर्वदा हमारी रक्षा करते रहो', उनको
गोदमें ले लिया और अपने प्रेमाश्रुजलसे उन्हें मिश्र
दिया ॥ ३ ॥ इसके बाद बड़े-बड़े गोपोंको बलरामजीने
और छोटे-छोटे गोपोंने बलरामजीको नमस्कार किया । वे
अपनी आबु, मेक-जोळ और सम्बन्धके अनुसार सबसे
मिले-जुले ॥ ४ ॥ ग्वालबालोंके पास जाकर किसीसे
हाथ मिलाया, किसीसे मीठी-मीठी बातें कीं, किसीको
खूब हँस-हँसकर गले लगाया । इसके बाद जब बलराम-
जीकी वक्रावृत्त दूर हो गयी, वे आरामसे बैठ गये, तब
सब ग्वाल उनके पास आये, इन ग्वालोंने कमलनयन
भगवान् श्रीकृष्णके लिये समस्त भोग, खर्ग और मोक्ष-
तक त्याग रक्खा था । बलरामजीने जब उनके और उनके
घरवालोंके सम्बन्धमें कुशलपत्र किया, तब उन्होंने प्रेम-
गद्गद वाणीसे उनसे प्रश्न किया ॥ ५-६ ॥ बलरामजी !
बलदेवजी आदि हमारे सब भाई-बन्धु सकुशल हैं न ?
अब आपलोग वी-पुत्र आदिके साथ रहते हैं, बाल-
बन्धेदार हो गये हैं; क्या कमी आपलोगोंको हमारी
याद भी आती है ? ॥ ७ ॥ यह बड़े सौभाग्यकी बात
है कि पापी कंसको आपलोगोंने मार डाला और अपने
सुहृद्-सम्बन्धियोंको बड़े कष्टसे बचा लिया । यह भी
कम आनन्दकी बात नहीं है कि आपलोगोंने और भी
बहुतसे शत्रुओंको मार डाला था जीत लिया और अब
अत्यन्त सुरक्षित दुर्ग (फिले) में आपलोग निवास
करते हैं ॥ ८ ॥

परीक्षित ! भगवान् बलरामजीके दर्शनसे, उनकी
प्रेममयी चितवनसे गोपियों निहाल हो गयीं । उन्होंने
हँसकर पूछा—'क्यों बलरामजी ! नगर-नारियोंके प्राण-
वल्लभ श्रीकृष्ण अब सकुशल तो हैं न ? ॥ ९ ॥ क्या
कमी उन्हें अपने भाई-बन्धु और पिता-माताकी भी याद
आती है ! क्या वे अपनी माताके दर्शनके लिये एक
बार भी यहाँ आ सकेंगे ! क्या महाबाहु श्रीकृष्ण कभी
हमलोगोंकी सेवाका भी कुछ स्मरण करते हैं ॥ १० ॥
आप जानते हैं कि खजन-सम्बन्धियोंको छोड़ना बहुत ही
करिब है । फिर भी हमने उनके लिये भौं-बाप, भाई-
बन्धु, पति-पुत्र और बहिन-बेटियोंको भी छोड़ दिया ।
परन्तु प्रभो ! वे बात-की-बातमें हमारे सौहार्द और प्रेम-
का बन्धन काटकर, हमसे नाता तोड़कर परदेश चले
गये; हमलोगोंको बिस्कुल ही छोड़ दिया । हम चाहती
तो उन्हें रोक लेती; परन्तु जब वे कहते कि हम
तुम्हारे श्रेणी हैं—तुम्हारे उपकारका बदला कभी नहीं
चुका सकते, तब ऐसी कौन-सी ली है, जो उनकी
मीठी मीठी बातोंपर विवास न कर लेती ॥ ११-१२ ॥ एक
गोपीने कहा—'बलरामजी ! हम तो गाँवकी पत्नार आभिन्न
ठहरीं, उनकी बातोंमें आगयीं । परन्तु नगरकी स्त्रियों तो बड़ी
चतुर होती हैं । भल, वे चञ्चल और कृतज्ञ श्रीकृष्णकी
बातोंमें क्यों फँसने लगीं; उन्हें तो वे नहीं छका पाते
होंगे ।' दूसरी गोपीने कहा—'नहीं सखी, श्रीकृष्ण
बातें बनानेमें तो एक ही हैं । ऐसी रंग-बिरंगी मीठी-
मीठी बातें गवते हैं कि क्या कहना ! उनकी सुन्दर
मुसकराहट और प्रेममयी चितवनसे नगर-नारियाँ भी
प्रेमावेशसे व्याकुल हो जाती हैंगी और वे अवश्य उनकी
बातोंमें आकर अपनेको निष्कार कर देती होंगी ॥ १३ ॥
तीसरी गोपीने कहा—'अरी गोपियो ! हमलोगोंको
उसकी बातसे क्या मतलब है ? यदि समय ही काटना
है तो कोई दूसरी बात करो । यदि उस निन्दुरका समय
हमारे बिना बीत जाता है तो हमारा भी उसीकी तरह
भले ही दुःखसे क्यों न हो, कष्ट ही जायगा ॥ १४ ॥
अब गोपियोंके भाव-नेत्रोंके सामने भगवान् श्रीकृष्णकी

हैंसी, प्रेममयी बातें, चारु वितवन, अनूठी चाल और प्रेमालिङ्गन आदि मूर्तिमान् होकर नाचने लगे । वे उन बातोंकी मधुर स्मृतिमें तन्मय होकर रोने लगे ॥ १५ ॥

परीक्षित । भगवान् बलरामजी वाना प्रकारसे अनुनय-विनय करनेमें बड़े निपुण थे । उन्होंने भगवान् श्रीकृष्णके हृदयस्पर्शा और लुभावने सन्देश सुना-सुनाकर गोपियोंको सान्त्वना दी ॥ १६ ॥ और वसन्तके दो महीने—चैत्र और वैशाख वहाँ बिताये । वे रात्रिके समय गोपियोंमें रहकर उनके प्रेमकी अभिवृद्धि करते । क्यों न हो, भगवान् राम ही जो उधरे । ॥ १७ ॥ उस समय कुमुदिनीकी सुगन्ध लेकर मीनी मीनी बायु चलसी रहती, पूर्ण चन्द्रमाकी चाँदनी छिटककर यमुनाजीके तटवर्ती उपवन-को उज्ज्वल कर देती और भगवान् बलराम गोपियोंके साथ वहाँ विहार करते ॥ १८ ॥ वरुणदेवने अपनी पुत्री बारुणीदेवीको वहाँ भेंट दिया था । वह एक वृक्षके खोबरसे बह निकली । उसने अपनी सुगन्धसे सारे वनको सुगन्धित कर दिया ॥ १९ ॥ मधुशराकी वह सुगन्ध बाधुने बलरामजीके पास पहुँचायी, मानो उसने उन्हें उपहार दिया हो । उसकी महँकसे आकृष्ट होकर बलरामजी गोपियोंको लेकर वहाँ पहुँच गये और उनके साथ उसका पान किया ॥ २० ॥ उस समय गोपियाँ बलरामजीके चारों ओर उनके चरित्रका गान कर रही थीं, और वे मतवालेसे होकर वनमें विचर रहे थे । उनके नेत्र आनन्दमदसे विह्वल हो रहे थे ॥ २१ ॥ गलेमें पुष्पोंका हार शोभा पा रहा था । वैजयन्तीकी माछ पहने हुए आनन्दोन्मत्त हो रहे थे । उनके एक कानमें कुण्डल झलक रहा था । मुखारविन्दपर मुसकराहटकी शोभा निराली ही थी । उसपर पसीनेकी बूँदें हिमकणके समान जान पड़ती थीं ॥ २२ ॥ सर्व-शक्तिमान् बलरामजीने जलक्रीडा करनेके लिये यमुना-जीको पुकारा । परन्तु यमुनाजीने यह समझकर कि वे तो मतवाले हो रहे हैं, उनकी आज्ञाका उल्लङ्घन कर दिया; वे नहीं आयी । तब बलरामजीने क्रोधपूर्वक अपने हलकी नोकसे उन्हें खींचा ॥ २३ ॥ और

कहा—‘‘पापिनी यमुने । मेरे बुलनेपर भी तू मेरी आज्ञाका उल्लङ्घन करके यहाँ नहीं आ रही है, मेरा तिरस्कार कर रही है । देख, अब मैं तुझे तेरे स्नेह्यचारका फल चखाता हूँ । अभी-अभी तुझे हलकी नोकसे सौ-सौ टुकड़े किये देता हूँ ॥ २४ ॥ जब बलरामजीने यमुनाजीको इस प्रकार बौटा-फटकारा, तब वे चकित और भयभीत होकर बलरामजीके चरणोंपर गिर पड़ी और गिड़गिड़ाकर प्रार्थना करने लगी— ॥ २५ ॥ ओका-भिराम बलरामजी । महाबाहो । मैं आपका पराक्रम मूल गयी थी । जगत्पते ! अब मैं जान गयी कि आपके अंशमान् शेवनी इस सारे जगत्को चारण करते हैं ॥ २६ ॥ मगन् । आप परम ऐश्वर्यशाली हैं । आपके वास्तविक स्वरूपको न जाननेके कारण ही मुझसे यह अपराध बन गया है । सर्वस्वरूप भक्तवासक । मैं आपकी शरणमें हूँ । आप मेरी मूल-मूल क्षमा कीजिये, मुझे छोड़ दीजिये ॥ २७ ॥

जब यमुनाजीकी प्रार्थना स्वीकार करके भगवान् बलरामने उन्हें क्षमा कर दिया और फिर जैसे गजराज हपिनियोंके साथ क्रीडा करता है, वैसे ही वे गोपियोंके साथ जलक्रीडा करने लगे ॥ २८ ॥ जब वे यथेष्ट जल-विहार करके यमुनाजीसे बाहर निकले, तब ऊषणी-जीने उन्हें शीघ्रम्बर, बहुमूल्य आभूषण और सोनेका सुन्दर हार दिया ॥ २९ ॥ बलरामजीने नीले वस्त्र पहन लिये और सोनेकी माछ गलेमें डाल ली । वे अङ्गराग लताकर, सुन्दर मृणालोंसे विभूषित होकर इस प्रकार शोभायमान हुए मानो इन्द्रका श्वेतवर्ण ऐरावत हाथी हो ॥ ३० ॥ परीक्षित । यमुनाजी अब भी बलरामजीके खींचे हुए मार्गसे बहती हैं और वे ऐसी जान पड़ती हैं, मानो वनन्तशक्ति भगवान् बलरामजीका वश गान कर रही हों ॥ ३१ ॥ बलरामजीका चित्त प्रज्ज्वलित हो गोपियोंके माधुर्यसे इस प्रकार मुग्ध हो गया कि उन्हें समयका कुछ ध्यान ही न रहा, बहुत-सी रात्रियाँ एक रातके समान व्यतीत हो गयीं । इस प्रकार बलरामजी व्रजमें विहार करते रहे ॥ ३२ ॥

छाछठवाँ अध्याय

पौण्ड्रक और काशिराजका उद्धार

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित ! जब भगवान् बलरामजी नन्दशकाके व्रजमें गये हुए थे, तब पीछेसे करुण वेशाके अज्ञानी राजा पौण्ड्रकने भगवान् श्रीकृष्णके पास एक दूत भेजकर यह कहलाया कि 'भगवान् वासुदेव मैं हूँ' ॥ १ ॥ मूर्खलोग उसे बहकाया करते थे कि 'आप ही भगवान् वासुदेव हैं और जगत्की रक्षाके लिये पृथ्वीपर अवतीर्ण हुए हैं।' इसका फल यह हुआ कि वह मूर्ख अपनेको ही भगवान् मान बैठे ॥ २ ॥ जैसे कच्चे आपसमें खेलते समय किसी बालकको ही राजा मान लेते हैं और वह राजाकी तरह उनके साथ व्यवहार करने लगता है, वैसे ही मन्दमति अज्ञानी पौण्ड्रकने अचिन्त्यपति भगवान् श्रीकृष्णकी लीला और रहस्य न जानकर द्वारकामें उनके पास दूत भेज दिया ॥ ३ ॥ पौण्ड्रकका दूत द्वारका आया और राजसभामें बैठे हुए कमलनयन भगवान् श्रीकृष्णको उसने अपने राजाका यह सन्देश कह सुनाया— ॥ ४ ॥ 'एकमात्र मैं ही वासुदेव हूँ। दूसरा कोई नहीं है। प्राणियोंपर कृपा करनेके लिये मैंने ही अवतार ग्रहण किया है। तुमने झूठ-भूठ अपना नाम वासुदेव रख लिया है, अब उसे छोड़ दो ॥ ५ ॥ यदुवंशी ! तुमने मूर्खतावश मेरे चिह्न धारण कर रखे हैं। उन्हें छोड़कर मेरी शरणमें आओ और यदि मेरी बात तुम्हें स्वीकार न हो, तो मुझसे युद्ध करो' ॥ ६ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित ! मन्दमति पौण्ड्रककी यह बहक सुनकर उभरेन आदि समासद् जोर-जोरसे हँसने लगे ॥ ७ ॥ उन लोगोंकी हँसी समाप्त होनेके बाद भगवान् श्रीकृष्णने दूतसे कहा—'तुम जाकर अपने राजासे कह देना कि ये मूर्ख ! मैं अपने चक्र आदि चिह्न यों नहीं छोड़ूँगा। इन्हें मैं तुझपर छोड़ूँगा और केवल तुमपर ही नहीं, तेरे उन सब साथियोंपर भी, जिनके बहकानेसे तू इस प्रकार बहक रहा है। उस समय मूर्ख ! तू अपना मुँह छिपाकर—बोचि मुँह गिरकर चील, गीध, बटेर आदि मांसभोजी पक्षियोंसे

धिरकर सो जायगा, और तू मेरा शरणदाता नहीं, उन कुत्तोंकी शरण होगा, जो तेरा मांस बीच-बीचकर खा जायेंगे' ॥ ८-९ ॥ परीक्षित ! भगवान्का यह तिरस्कारपूर्ण संवाद लेकर पौण्ड्रकका दूत अपने स्वामीके पास गया और उसे कह सुनाया। इस भगवान् श्रीकृष्णने भी ग्यार सवार होकर काशीपर चढ़ाई कर दी। (क्योंकि वह करुणका राजा उन दिनों वहाँ अपने मित्र काशिराजके पास रहता था) ॥ १० ॥

भगवान् श्रीकृष्णके आक्रमणका समाचार पाकर महारथी पौण्ड्रक भी दो अक्षौहिणी सेनाके साथ काशी ही नगरसे बाहर निकल आया ॥ ११ ॥ काशीका राजा पौण्ड्रकका मित्र था। अतः वह भी उसकी सहायता करनेके लिये तीन अक्षौहिणी सेनाके साथ उसके पीछे-पीछे आया। परीक्षित ! अब भगवान् श्रीकृष्णने पौण्ड्रकको चेला ॥ १२ ॥ पौण्ड्रकने भी शङ्ख-बक, तलवार, गदा, शार्ङ्गधनुष और श्रीकस्तुचिह्न आदि धारण कर रखे थे। उसके वक्त्र-स्थलपर बनावटी कौस्तुभ-गणि और वनमाला भी लटक रही थी ॥ १३ ॥ उसने रेशमी पीले वस्त्र पहन रखे थे और रथकी ध्वजापर गरुडका चिह्न भी लगा रक्खा था। उसके सिरपर अमूल्य मुकुट था और कानोंमें मकराकृत कुण्डल जगमगा रहे थे ॥ १४ ॥ उसका यह सारा-का-सारा वेष बनावटी था, मानो कोई अभिनेता रंगमंचपर अभिनय करनेके लिये आया हो। उसकी वेष-भूषा अपने समान देखकर भगवान् श्रीकृष्ण खिलखिलाकर हँसने लगे ॥ १५ ॥ अब शत्रुओंने भगवान् श्रीकृष्णपर विश्वास, गदा, मुद्गर, शक्ति, ऋद्धि, प्रास, तोमर, तलवार, पद्मिनी और बाण आदि अस्त्र-शस्त्रोंसे प्रहार किया ॥ १६ ॥ प्रलयके समय जिस प्रकार आग सभी प्रकारके प्राणियोंको जला देती है, वैसे ही भगवान् श्रीकृष्णने भी गदा, तलवार, चक्र और बाण आदि शस्त्रास्त्रोंसे पौण्ड्रक तथा काशिराजके हाथी, रथ, घोड़े और पैदलकी चतुरङ्गिणी सेनाको तहस-नहस कर दिया ॥ १७ ॥ वह रणभूमि

भगवान्‌के चक्रसे खण्ड-खण्ड हुए रथ, घोड़े, हाथी, मनुष्य, गधे और ऊँटोंसे पट गयी । उस समय ऐसा माछम हो रहा था, मानो वह भूतनाथ शङ्करकी मयङ्कर कीटासली हो । उसे देख-देखकर शूरवीरोंका ऊसाह और भी बढ़ रहा था ॥ १८ ॥

अब भगवान्‌ श्रीकृष्णने पौण्ड्रकसे कहा—‘रे पौण्ड्रक ! देने दूतके द्वारा कहलाया था कि मेरे विह्वल अश्व-वाह्यादि छोड़ दो । सो अब मैं उन्हें तुझपर छोड़ रहा हूँ ॥ १९ ॥ देने झुल्लूट मेरा नाम रख लिया है । अतः मूर्ख ! अब मैं तुझसे उन नामोंको भी छुड़ाकर रहूँगा । रही तेरे शरणमें आनेकी बात; सो यदि मैं तुझसे कुछ न कर सकूँगा तो तेरी शरण ग्रहण करूँगा’ ॥ २० ॥ भगवान्‌ श्रीकृष्णने इस प्रकार पौण्ड्रकका तिरस्कार करके अपने तीखे बाणोंसे उसके रथको तोड़-फोड़ बाण और चक्रसे उसका सिर वैसे ही उतार दिया, जैसे इन्द्रने अपने वज्रसे पहाडकी चोटियोंको उड़ा दिया था ॥ २१ ॥ इसी प्रकार भगवान्‌ने अपने बाणोंसे काशिनरेशका सिर भी धक्के ऊपर उठाकर काशीपुरीमें गिरा दिया जैसे वायु कमलका पुष्प गिरा वेती है ॥ २२ ॥ इस प्रकार अपने साथ डाढ़ रखनेवाले पौण्ड्रकको और उसके सखा काशिनरेशको मारकर भगवान्‌ श्रीकृष्ण अपनी राजधानी द्वारकामें लौट आये । उस समय सिद्धगम भगवान्‌की अमृतमयी कथाका गान कर रहे थे ॥ २३ ॥ परीक्षित ! पौण्ड्रक भगवान्‌के रूपका, चाहे वह किसी भ्रमसे हो, सदा चिन्तन करता रहता था । इससे उसके स्मारे बन्धन कट गये । वह भगवान्‌का बनावटी वेध धारण किये रहता था, इससे बार-बार उसीका स्मरण होनेके कारण वह भगवान्‌के साकृष्णको ही प्राप्त हुआ ॥ २४ ॥

इधर काशीमें राजमहलके दरवाजेपर एक कुण्डल-मण्डित मुण्ड गिरा देखकर लोग तरह-तरहका सन्देह करने लगे और सोचने लगे कि ‘वह क्या है, यह किसका सिर है’ ॥ २५ ॥ जब यह माछम हुआ कि वह तो काशिनरेशका ही सिर है, तब रानिचौ, राजकुमार, राज्यपरिवारके लोग तथा नागरिक रो-रोकर विषम करने लगे—‘हा नाथ ! हा राजन् ! हाय-हाय ! हमारा तो सर्वनाश हो गया’ ॥ २६ ॥ काशिनरेशका

पुत्र था सुदक्षिण । उसने अपने पिताका अन्येष्टि-संस्कार करके मन-ही-मन यह निश्चय किया कि अपने पितृघातीको मारकर ही मैं पिताके श्रृणसे उद्धार हो सकूँगा । निदान वह अपने कुलपुरोहित और आचार्योंके साथ अत्यन्त एकाग्रतासे भगवान्‌ शङ्करकी आराधना करने लगा ॥ २७-२८ ॥ काशी नगरीमें उसकी आराधनासे प्रसन्न होकर भगवान्‌ शङ्करने कर देनेको कहा । सुदक्षिणने यह बरीह कर मँगा कि मुझे मेरे पितृघाती-के वक्ता उपाय बतलाइये ॥ २९ ॥ भगवान्‌ शङ्करने कहा—‘तुम ब्राह्मणोंके साथ मिश्रकर यज्ञके देवता अश्विभूत दक्षिणाग्निकी अमिचारविधिसे आराधना करो । इससे वह अग्नि प्रमथणोंके साथ प्रकट होकर यदि ब्राह्मणोंके अमक्षर प्रयोग करोगे तो वह तुम्हारा संकल्प सिद्ध करेगा ।’ भगवान्‌ शङ्करकी ऐसी आज्ञा प्राप्त करके सुदक्षिणने अनुष्ठानके उपयुक्त नियम ग्रहण किये और वह भगवान्‌ श्रीकृष्णके लिये अमिचार (मारणका पुरस्कार) करने लगा ॥ ३०-३१ ॥ अमिचार पूर्ण होते ही यज्ञकुण्डसे अग्नि भीषण अग्नि मूर्तिमान्‌ होकर प्रकट हुआ । उसके केस और दाढ़ी-मूँछ तपे हुए तोंबके समान झल-झल थे । आँखोंसे आगारे बरस रहे थे ॥ ३२ ॥ उस दाढ़ों और टेढ़ी यज्ञदियोंके कारण उसके मुखसे झूटा ठपक रही थी । वह अपनी जीमसे मुँहके दोनों कोने चाट रहा था । शरीर नंग-धबंग था । हाथमें त्रिशूल लिये हुए था, जिसे वह बार-बार घुमाता जाता था और उसमेंसे अग्निकी कपटें निकल रही थीं ॥ ३३ ॥ ताबके पैदके समान बड़ी-बड़ी ठोंगें थीं । वह अपने बेगसे धरतीको कँपाता हुआ और ज्वालाओंसे ठसीं दिशाओंको दग्ध करता हुआ द्वारकाकी ओर दौड़ा और बात-की-बातमें द्वारकाके पास जा पहुँचा । उसके साथ बहुत-से मृत भी थे ॥ ३४ ॥ उस अमिचारकी आगको निम्नकुल पास आवी हुई देख द्वारकावासी वैसे ही डर गये, जैसे जंगलमें आग लगनेपर हरिन डर जाते हैं ॥ ३५ ॥ वे जेग मयमीत होकर भगवान्‌के पास दौड़े हुए आये, भगवान्‌ उस समय समामें चौसर खेल रहे थे । उन जेगोंने भगवान्‌से प्रार्थना की—‘तीनों जेगोंके एकमात्र खामी ! द्वारका नगरी इस आगसे

मरम होना चाहती है । आप हमारी रक्षा कीजिये । आपके सिवा इसकी रक्षा और कोई नहीं कर सकता ॥ ३६ ॥ शरणगतवत्सल भगवान् ने देखा कि हमारे खजान भयभीत हो गये हैं और पुकार-पुकारकर विकलतामये स्वरसे हमारी प्रार्थना कर रहे हैं; तब उन्होंने ईसकर कहा—‘डरो मत, मैं तुमलोगोंकी रक्षा करूँगा’ ॥ ३७ ॥

परीक्षित ! भगवान् सबके बाहर-भीतरकी जानने-वाले हैं । वे जान गये कि यह काशीसे चली हुई माहेश्वरी कृत्या है । उन्होंने उसके प्रतिष्कारके लिये अपने पास ही विराजमान चक्रसुदर्शनको आवा दी ॥ ३८ ॥ भगवान् सुकुण्डका प्यारा अक्ष सुदर्शन-चक्र कोटि-कोटि सूर्योके समान तेजस्वी और प्रलयकालीन अग्निके समान जाज्वल्यमान है । उसके तेजसे आकाश, दिशाएँ और अन्तरिक्ष चमक उठे और अब उसने उस अमिचार-अग्निकी कुचल बाज ॥ ३९ ॥ भगवान् श्रीकृष्णके अक्ष सुदर्शनचक्रकी शक्तिसे कृत्यारूप आगका

मुँह दूट-झूट गया, उसका तेज नष्ट हो गया, शक्ति कुण्ठित हो गयी और वह वहाँसे छोटकर काशी आ गयी तथा उसने श्वस्त्रिन आचार्योंके साथ सुदर्शनको बलकर मरम कर दिया । इस प्रकार उसका अमिचार उसीके विनाशका कारण हुआ ॥ ४० ॥ कृत्याके पीछे-पीछे सुदर्शनचक्र भी काशी पहुँचा । काशी बड़ी विशाल नगरी थी । वह बड़ी-बड़ी अटारियों, सभामण, बाजार, नगरद्वार, द्वारोंके शिखर, चहारदीवारियों, खजाने, हाथी, घोड़े, रथ और अन्नोके गोदामसे सुसजित थी । भगवान् श्रीकृष्णके सुदर्शनचक्रने सारी काशीको जलकर मरम कर दिया और फिर वह परमानन्दमयी लीला करनेवाले भगवान् श्रीकृष्णके पास छोट आया ॥ ४१-४२ ॥

जो मनुष्य पुण्यकीर्ति भगवान् श्रीकृष्णके इस चरित्र-को एकाग्रताके साथ सुनता या सुनाता है, वह सारे पापोंसे छूट जाता है ॥ ४३ ॥

सङ्सठवाँ अध्याय

द्विविदका उद्धार

राजा परीक्षितने पूछा—भगवान् बलरामजी सर्व-शक्तिमान् एवं सृष्टि-प्रलयकी सीमासे परे, अनन्त हैं । उनका स्वरूप, गुण, लीला आदि मन, बुद्धि और वाणीके विषय नहीं हैं । उनकी एक-एक लीला लोक-मर्यादासे विवक्ष्य है, अलौकिक है । उन्होंने और जो कुछ अद्भुत कर्म किये हों, उन्हें मैं फिर सुनना चाहता हूँ ॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजीने कहा—परीक्षित ! द्विविद नामका एक वानर था । वह भौमासुरका सखा, सुमीषका भन्त्री और मैन्दका शक्तिशाली भाई था ॥ २ ॥ अब उसने सुना कि श्रीकृष्णने भौमासुरको मार डाला, तब वह अपने मित्रकी मित्रताके श्रृणसे उच्छ्वज होनेके लिये राष्ट्र-विन्ध्य करनेपर उतारू हो गया । वह वानर बड़े-बड़े नगरों, गाँवों, खानों और अहीरोंकी बस्तियोंमें आग लगाकर उन्हें जलाने लगा ॥ ३ ॥ कभी वह बड़े-बड़े पहाड़ोंको उखाड़कर उनसे प्रान्त-के-प्रान्त चकनाचूर कर देता

और विशेष करके ऐसा काम वह आनर्त (काठियावाड़) देशमें ही करता था । क्योंकि उसके मित्रको मारनेवाले भगवान् श्रीकृष्ण उसी देशमें निवास करते थे ॥ ४ ॥ द्विविद वानरमें दस हजार हाथियोंका बल था । कभी-कभी वह दुष्ट समुद्रमें खड़ा हो जाता और हाथोंसे इतना बल उठलता कि समुद्रतटके देश डूब जाते ॥ ५ ॥ वह दुष्ट बड़े-बड़े श्वि-मुनियोंके आश्रमोंकी सुन्दर-सुन्दर छाता-वनस्पतियोंको तोड़-मरोड़कर चौपट कर देता और उनके यज्ञसम्बन्धी अग्नि-कुण्डोंमें मलमूत्र डालकर अग्नियोंको दूषित कर देता ॥ ६ ॥ जैसे शृङ्गी नामका कीड़ा दूसरे कीड़ोंको ले जाकर अपने बिलमें बंद कर देता है, वैसे ही वह मन्दो-मत्त वानर स्त्रियों और पुरुषोंको ले जाकर पहाड़ोंकी घाटियों तथा गुफाओंमें डाल देता । फिर बाहरसे बड़ी-बड़ी चट्टानें रखकर उनका मुँह बंद कर देता ॥ ७ ॥ इस प्रकार वह देशवासियोंका तो तिरस्कार करता ही, कुलीन स्त्रियोंको भी दूषित कर देता था ।

एक दिन वह दुष्ट सुलब्धित संगीत सुनकर रैतक पर्वतपर गया ॥ ८ ॥

वहाँ उसने देखा कि यदुवशसिरोमणि बलरामजी सुन्दर-सुन्दर युवतियोंके हुंठमें निराश्रय हैं । उनका एक-एक अङ्ग अत्यन्त सुन्दर और दर्शनीय है और वक्षःस्थलपर कमलोंकी माला लटक रही है ॥ ९ ॥ वे मधुपान करके मधुर संगीत गा रहे थे और उनके नेत्र आनन्दोन्मादसे विह्वल हो रहे थे । उनका शरीर इस प्रकार शोभायमान हो रहा था, मानो कोई मन्दमत्त गजराज हो ॥ १० ॥ वह दुष्ट वानर वृद्धोंकी शाखाओंपर चढ़ जाता और उन्हें शकओर देता । कभी शियोंके सामने आकर किलकारी मी मारने लगता ॥ ११ ॥ युक्ती शियों स्त्रियोंसे ही चखल और हास-परिहासमें रुचि रखनेवाली होती हैं । बलरामजीकी शियों उस वानरकी दिठाई देखकर हँसने लगीं ॥ १२ ॥ अब वह वानर भगवान् बलरामजीके सामने ही उन शियोंकी अवहेलना करने लगा । वह उन्हें कभी अपनी गुदा दिखाता तो कभी मोहँ मटकाता, फिर कभी-कभी गरज-तरजकर मुँह बनाता, बुझकता ॥ १३ ॥ वीरशिरोमणि बलरामजी उसकी यह चेष्टा देखकर क्रोधित हो गये । उन्होंने उसपर पत्थरका एक टुकड़ा फेंका । परन्तु द्विविदने उससे अपनेकी बचा लिया और झपटकर मधुकलवा उठा लिया तथा बलरामजीकी अवहेलना करने लगा । उस घूर्तने मधुकलवाको तो फोड़ ही बाज, शियोंके वल भी फाड़ डाले और अब वह दुष्ट हँस-हँसकर बलरामजीको क्रोधित करने लगा ॥ १४-१५ ॥ परीक्षित् ! जब इस प्रकार बलवान् और मद्योग्मत्त द्विविद बलरामजीको नीचा दिखाने तथा उनका धेर तिरस्कार करने लगा, तब उन्होंने उसकी दिठाई देखकर और उसके द्वारा सताये हुए देशोंकी दुर्दशापर विचार करके उस शत्रुको मार डालनेकी इच्छासे क्रोधपूर्वक अपना हल-मूसल उठाया । द्विविद भी बढ़ा बलवान् था । उसने अपने एक ही हाथसे सात्वका पेड़ उखाड़ लिया और बढ़े वेगसे दौड़कर बलरामजीके स्तिर-पर उसे दे मारा । भगवान् बलराम पर्वतकी तरह अविचल खड़े रहे । उन्होंने अपने हाथसे उस वृक्षको स्तिरपर गिरते-गिरते पकड़ लिया और अपने सुमन्द नामक मूसलसे उसपर प्रहार किया । मूसल छानेसे द्विविदका मस्तक

फट गया और उससे खूनकी धारा बहने लगी । उस समय उसकी ऐसी शोभा हुई, मानो किसी पर्वतसे गेरुका खोता बह रहा हो । परन्तु द्विविदने अपने स्तिर फटनेकी कोई परवा नहीं की । उसने कुपित होकर एक दूसरा वृक्ष उखाड़ा, उसे झाड़ू-झूड़कर बिना पत्तेका कर दिया और फिर उससे बलरामजीपर बढ़े जोरका प्रहार किया । बलरामजीने उस वृक्षके सैकड़ों टुकड़े कर दिये । इसके बाद द्विविदने बढ़े क्रोधसे दूसरा वृक्ष चलाया, परन्तु भगवान् बलरामजीने उसे भी शतधा छिन-मिन कर दिया ॥ १६-२१ ॥ इस प्रकार वह उनसे युद्ध करता रहा । एक वृक्षके टूट जानेपर दूसरा वृक्ष उखाड़ता और उससे प्रहार करनेकी चेष्टा करता । इस तरह सब ओरसे वृक्ष उखाड़-उखाड़कर लड़ते-लड़ते उसने सारे वनको ही वृक्षाहीन कर दिया ॥ २२ ॥ वृक्ष न रहे, तब द्विविदका क्रोध और भी बढ़ गया तथा वह बहुत चिढ़कर बलरामजीके उपर नबी-नबी चढ़ानोंकी वर्षा करने लगा । परन्तु भगवान् बलरामजीने अपने मूसलसे उन सभी चढ़ानोंको खेच-खेचमें ही चकनाचूर कर दिया ॥ २३ ॥ अन्तमें कपिराज द्विविद अपनी ताडके समान छबी बाँहोंसे घुँसा बाँधकर बलरामजीकी ओर झपटा और पास जाकर उसने उनकी छातीपर प्रहार किया ॥ २४ ॥ अब यदुवशसिरोमणि बलरामजीने हल और मूसल अलग रख दिये तथा क्रुद्ध होकर दोनों हाथोंसे उसके जन्मस्थान (हँसछी) पर प्रहार किया । इससे वह वानर खून उगलता हुआ धरतीपर गिर पड़ा ॥ २५ ॥ परीक्षित् ! औंधी आनेपर जैसे जलमें डोंगी डगमगाने लगती है, वैसे ही उसके गिरनेसे बढ़े-बढ़े वृद्धों और चोटियोंके साथ सारा पर्वत हिल गया ॥ २६ ॥ आकाशमें देवता लोग 'जय-जय' सिद्ध लोग 'भयो भयः' और बढ़े-बढ़े श्रुति-मुनि 'साधु-साधु'के नारे लगाने और बलरामजीपर फूलोंकी वर्षा करने लगे ॥ २७ ॥ परीक्षित् ! द्विविदने जगत्में बड़ा उपश्रव मचा रक्खा था, अतः भगवान् बलरामजीने उसे इस प्रकार मार डाला और फिर वे द्वारकापुरीमें लौट आये । उस समय सभी पुरजन-परिजन भगवान् बलरामकी प्रशंसा कर रहे थे ॥ २८ ॥

अइसठवाँ अध्याय

कौरवोंपर बलरामजीका कोप और साम्बका विवाह

भीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित ! जाम्बवती-नन्दन साम्ब अकेले ही बहुत बड़े-बड़े वीरोंपर विजय प्राप्त करनेवाले थे । वे स्वयंवरमें स्थित दुर्योधनकी कन्या लक्ष्मणाको हर लये ॥ १ ॥ इससे कौरवोंको बड़ा क्रोध हुआ । वे बोले—‘यह बालक बहुत डीठ है । देखो तो सही, इसने हमलोगोंको नीचा दिखाकर लक्ष्मणकी हमारी कन्याका अपहरण कर लिया । वह तो इसे चाहती भी न थी ॥ २ ॥ अतः इस डीठको पकड़कर बाँध लो । यदि यदुवंशीलोग रुष्ट भी होंगे तो वे हमारा क्या बिगाड़ लेंगे ? वे लोग हमारी ही कृपासे हमारी ही दी हुई धन-धान्यसे परिपूर्ण पृथ्वीका उपभोग कर रहे हैं ॥ ३ ॥ यदि वे लोग अपने इस लक्ष्यके बन्दी होनेका समाचार सुनकर यहाँ आयेंगे, तो हमलोग उनका सारा धर्म बुर-चुर कर देंगे और उन लोगोंके मिजाज वैसे ही ठंडे हो जायेंगे, जैसे संयमी पुरुषके द्वारा प्राणायाम आदि उपायोंसे बशमें की हुई इन्द्रियाँ ॥ ४ ॥ ऐसा विचार करके कर्ण, शल, भूरिश्रवा, यन्त्रकेतु और दुर्योधनादि वीरोंने कुरुवंशके बड़े-बूढ़ोंकी अनुमति ली तथा साम्बको पकड़ लेनेकी तैयारी की ॥ ५ ॥

जब महारथी साम्बने देखा कि धृतराष्ट्रके पुत्र मेरा पीछा कर रहे हैं, तब वे एक सुन्दर धनुष चढ़ाकर सिंहके समान अकेले ही रणभूमिमें डट गये ॥ ६ ॥ इधर कर्णको मुखिया बनाकर कौरववीर धनुष चढ़ाये हुए साम्बके पास आ पहुँचे और क्रोधमें भरकर उनको पकड़ लेनेकी इच्छासे ‘खड़ा रह ! खड़ा रह !’ इस प्रकार ललकारते हुए बाणोंकी कर्षा करने लगे ॥ ७ ॥ परीक्षित ! यदुनन्दन साम्ब अचिन्त्यैश्वर्यशाली भगवान् श्रीकृष्णके पुत्र थे । कौरवोंके प्रहारसे वे उनपर चिढ़ गये, जैसे सिंह तुच्छ हरिणोंका पराक्रम देखकर चिढ़ जाता है ॥ ८ ॥ साम्बने अपने सुन्दर धनुषका टंकार करके कर्ण आदि छः वीरोंपर, जो अलग-अलग छः रथोंपर सवार थे, छः-छः बाणोंसे एक साथ अलग-अलग प्रहार किया ॥ ९ ॥ उनमेंसे चार-चार बाण उनके चार-चार घोड़ोंपर, एक-एक उनके सारथियोंपर और एक-

एक उन महान् धनुषधारी रथी वीरोंपर छोड़ा । साम्बके इस अद्भुत हस्तालवकको देखकर विपक्षी वीर भी मुक्त-कण्ठसे उनकी प्रशंसा करने लगे ॥ १० ॥ इसके बाद उन छहों वीरोंने एक साथ मिलकर साम्बको रथहीन कर दिया । चार वीरोंने एक-एक बाणसे उनके चार घोड़ोंको मारा, एकने सारथीको और एकने साम्बका धनुष काट बाटा ॥ ११ ॥ इस प्रकार कौरवोंने युद्धमें बड़ी कठिनाई और कष्टसे साम्बको रथहीन करके बाँध लिया । इसके बाद वे उन्हें तथा अपनी कन्या लक्ष्मणाको लेकर जय मनाते हुए हस्तिनापुर लौट आये ॥ १२ ॥

परीक्षित ! नारदजीसे यह समाचार सुनकर यदु-वंशियोंको बड़ा क्रोध आया । वे महाराज उपसेनकी आज्ञासे कौरवोंपर चढ़ाई करनेकी तैयारी करने लगे ॥ १३ ॥ बलरामजी कल्हप्रधान कलियुगके सारे पाप-तापको मिटाने-वाले हैं । उन्होंने कुरुवंशियों और यदुवंशियोंके लड़ाई-झगड़े-को ठीक न समझा । यद्यपि यदुवंशी अपनी तैयारी पूरी कर चुके थे, फिर भी उन्होंने उन्हें शांत कर दिया और स्वयं सूर्यके समान तेजस्वी रथपर सवार होकर हस्तिनापुर गये । उनके साथ कुछ ब्राह्मण और यदुवंशके बड़े-बूढ़े भी गये । उनके बीचमें बलरामजीकी ऐसी शोभा हो रही थी, मानो चन्द्रमा ग्रहोंसे घिरे हुए हों ॥ १४-१५ ॥ हस्तिनापुर पहुँचकर बलरामजी नगरके बाहर एक उप-वनमें ठहर गये और कौरवलोग क्या करना चाहते हैं, इस बातका पता लगानेके लिये उन्होंने उद्धवजीको धृतराष्ट्रके पास भेजा ॥ १६ ॥

उद्धवजीने कौरवोंकी सभामें जाकर धृतराष्ट्र, भीष्म-पितामह, द्रोणाचार्य, बाह्लीक और दुर्योधनकी विधिपूर्वक अम्यर्थना-वन्दना की और निवेदन किया कि ‘बलरामजी पक्षर हैं’ ॥ १७ ॥ अपने परम हितैषी और प्रियतम बलरामजीका आपमन सुनकर कौरवोंकी प्रसन्नताकी सीमा न रही । वे उद्धवजीका विधिपूर्वक सत्कार करके अपने-हाथोंमें भाइल्लिक सामग्री लेकर बलरामजीकी अगवाही करने चले ॥ १८ ॥ फिर अपनी-अपनी

अवस्था और सम्बन्धके अनुसार सब लोग बलरामजीसे मिले तथा उनके सत्कारके लिये उन्हें गौ अर्पण की एवं अर्घ्य प्रदान किया । उनमें जो लोग भगवान् बलरामजीका प्रभाव जानते थे, उन्होंने सिर झुकाकर उन्हें प्रणाम किया ॥ १९ ॥ तदनन्तर उन लोगोंने परस्पर एक-दूसरेका कुन्दाळ-मङ्गल पूछा और यह सुनकर कि सब भार्दवन्धु सकुशल हैं, बलरामजीने बड़ी धीरता और गम्भीरताके साथ यह बात कही—॥ २० ॥ 'सर्वसमर्थ राजाधिराज महाराज उपसेनने तुम लोगोंको एक आज्ञा दी है । उसे तुम लोग एकप्रता और सावधानीके साथ सुनो और अविलम्ब उसका पालन करो ॥ २१ ॥ उपसेनजीने कहा है—हम जानते हैं कि तुम लोगोंने कन्नयोंने मिलकर अथर्वसे अकेले धर्मार्था साम्बको हर दिया और बंटी कर लिया है । यह सब हम इसलिये सह लेते हैं कि हम सम्बन्धियों परस्पर छट न पड़े, एकता बनी रहे । (अतः अब झगडा मत बढ़ाओ, साम्बको उसकी लवणभूके साथ हमारे पास भेज दो) ॥ २२ ॥

परीक्षित । बलरामजीकी भाणी धीरता, शूरता और बल-वीर्यके उत्कर्षसे परिपूर्ण और उनकी शक्तिके अनुरूप थी । यह बात सुनकर कुरुवंशी क्रोधसे तिल-मिला उठे । वे कहने लगे—॥ २३ ॥ 'अहो, यह तो बड़े आश्चर्यकी बात है । सचमुच कालकी चालको कोई टाक नहीं सकता । तभी तो आज पैरोंकी जूती उस सिरपर चढ़ना चाहती है, जो श्रेष्ठ मुकुटसे सुशोभित है ॥ २४ ॥ इन यदुवंशियोंके साथ किसी प्रकार हम लोगोंने विवाह-सम्बन्ध कर लिया । ये हमारे साथ सोने-वैदने और एक पक्षिमें खाने लगे । हम लोगोंने ही इन्हें राजसिंहासन देकर राजा बनाया और अपने बर-बर बना लिया ॥ २५ ॥ ये यदुवंशी चँवर, पंखा, सट्टा, श्वेतवस्त्र, मुकुट, राजसिंहासन और राजोचित शय्याका उपयोग-उपयोग इसलिये कर रहे हैं कि हमने जान-बूझकर इस विषयमें उपेक्षा कर रखी है ॥ २६ ॥ कस-बस, अब हो चुका । यदुवंशियोंके पास अब गजचिह्न रहनेकी आवश्यकता नहीं, उन्हें उनसे छीन लेना चाहिये । जैसे साँपको दूध पिछाना मिलनेवालेके लिये ही घातक है, वैसे ही हमारे दिये हुए राजचिह्नोंको लेकर ये यदुवंशी हमसे ही विपरीत हो रहे हैं । देखो तो मल हमारे ही कृपा-प्रसादसे तो इनकी बढ़ती हुई

और अब ये निर्लज्ज होकर हमीं पर हुकुम चलाने चले हैं । शोक है । शोक है । ॥ २७ ॥ जैसे सिंहका घ्रास कभी भेड़ा नहीं छीन सकता, वैसे ही यदि भीष्म, द्रोण, अर्जुन आदि कौरवजीर जान-बूझकर न छोड़ दें, न दे दें तो खर्य देकरान इन्द्र भी किसी वस्तुका उपभोग कैसे कर सकते हैं ? ॥ २८ ॥

श्रीशुभदेवजी कहते हैं—परीक्षित । कुरुवंशी अपनी कुलीनता, बान्धवों-परिवारवालों (भीष्मादि) के बल और धनसम्पत्तिके समर्थमें चूर हो रहे थे । उन्होंने साधारण सिध्दाचारकी भी परवा नहीं की और वे भगवान् बलरामजीको इस प्रकार दुर्वचन कहकर हस्तिनापुर छौट गये ॥ २९ ॥ बलरामजीने कौरवोंकी दुष्टता-अशिष्टता देखी और उनके दुर्वचन भी सुने । अब उनका चेहरा क्रोधसे तमतमा उठ्य । उस समय उनकी और देखातक नहीं जाता था । वे बार-बार जोर-जोरसे हँसकर कहने लगे—॥ ३० ॥ 'सच है, जिन दुष्टोंकी अपनी कुलीनता, बल्यौरुप और धनवत्त वसं हो जाता है, वे शान्ति नहीं चाहते । उनको दमन करनेका, रास्तेपर जानेका उपाय समझाना-बुझाना नहीं, बल्कि दण्ड देना है—ठीक वैसे ही जैसे पशुओंको ठीक करनेके लिये डठेका प्रयोग आवश्यक होता है ॥ ३१ ॥ मल, देखो तो सही—सारे यदुवंशी और श्रीकृष्ण भी क्रोधसे भरकर कड़ाईके लिये तैयार हो रहे थे । मैं उन्हें शनैः-शनैः समझा-बुझाकर इन लोगोंको शान्त करनेके लिये, सुलझ करनेके लिये यहाँ आया ॥ ३२ ॥ फिर भी ये मूर्ख ऐसी दुष्टता कर रहे हैं । इन्हें शान्ति प्यारी नहीं, कष्ट प्यारी है । ये इतने घमडी हो रहे हैं कि बार-बार मेरा सिरस्कार करके गलियाँ बक गये हैं ॥ ३३ ॥ ठीक है, माई ! ठीक है । पृथ्वीके राजाओंकी तो बात ही क्या, त्रिलोकिके स्वामी इन्द्र आदि लोकपाल जिनकी आज्ञाका पालन करते हैं, वे उपसेन राजाधिराज नहीं हैं, वे तो बेमल मोक्ष, बुद्धि और अन्धकवंशी यादवोंके ही स्वामी हैं ! ॥ ३४ ॥ क्यों ? जो सुधर्मसमाको अधिकारमें करके उसमें विराजते हैं और जो देवताओंके वृक्ष परिराजतको उखाड़कर ले जाते और उसका उपभोग करते हैं, वे भगवान् श्रीकृष्ण भी राजसिंहासनके अधिकारी नहीं हैं ! अच्छी बात है ! ॥ ३५ ॥ सारे

जगत्की स्वामिनी भगवती लक्ष्मी स्वयं जिनके चरण-कमलोंकी सपासना करती हैं, वे लक्ष्मीपति भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र छत्र, चक्र आदि राजोचित सामग्रियोंको नहीं रख सकते ॥ ३६ ॥ ठीक है माई ! जिनके चरणकमलोंकी धूल संत पुरुषोंके द्वारा सेवित गङ्गा आदि तीर्थोंको भी तीर्थ बनानेवाली है, सारे लोकपाल अपने-अपने श्रेष्ठ मुकुटपर जिनके चरणकमलोंकी धूल धारण करते हैं; ब्रह्मा, शङ्कर, मैं और लक्ष्मीजी जिनकी कला की भी कला हैं और जिनके चरणोंकी धूल सदा-सर्वदा धारण करते हैं; उन भगवान् श्रीकृष्णके लिये मञ्जु राजसिंहासन कहाँ रक्खा है ॥ ३७ ॥ बेचारे यदुवंशी तो कौरवोंका दिया हुआ पृथ्वीका एक टुकड़ा भोगते हैं । क्या खूब ! हमलोग जूरी हैं और ये कुटुंबंशी स्वयं सिर हैं ॥ ३८ ॥ ये लोग ऐश्वर्यसे उन्मत्त, धर्मही कौरव पागल-सरीखे हो रहे हैं । इनकी एक-एक बात कटुतासे भरी और बेसिर-पैरकी है । मेरे-जैसा पुरुष— जो इनका शासन कर सकता है, इन्हें दण्ड देकर इनके होश ठिकाने ला सकता है—मञ्जु, इनकी बातोंको कैसे सहन कर सकता है ? ॥ ३९ ॥ आज मैं सारी पृथ्वीको कौरवहीन कर डालूँगा, इस प्रकार कहते-कहते बलरामजी क्रोधसे ऐसे मर गये, मानो त्रिलोकियोंको भस्म कर देंगे । वे अपना हृत् लेकर खड़े हो गये ॥ ४० ॥ उन्होंने उसकी नोकसे बार-बार चोट करके हस्तिनापुर-को उखाड़ लिया और उसे डुबानेके लिये बड़े क्रोधसे गङ्गाजीकी ओर खींचने लगे ॥ ४१ ॥

हृत्से खींचनेपर हस्तिनापुर इस प्रकार काँपने लगा मानो जलमें कोई नाव डगमगा रही हो । जब कौरवोंने देखा कि हमारा नगर तो गङ्गाजीमें गिर रहा है, तब वे घबड़ा उठे ॥ ४२ ॥ फिर उन लोगोंने लक्ष्मणाके साथ साम्बको आगे किया और अपने प्राणोंकी रक्षाके लिये कुटुम्बके साथ हाथ जोड़कर सर्वशक्तिमान् उन्हें भगवान् बलरामजीकी शरणमें गये ॥ ४३ ॥ और कहने लगे—‘लोकामिराम बलरामजी! आप सारे जगत्-के आधार शेषजी हैं । हम आपका प्रभाव नहीं जानते । प्रभो! हमलोग मूढ़ हो रहे हैं, हमारी बुद्धि विगड़ गयी है; इसलिये आप हमलोगोंका अपराध क्षमा कर दीजिये ॥ ४४ ॥

आप जगत्की स्थिति, उत्पत्ति और प्रलयके एकमात्र कारण हैं और स्वयं निराधार स्थित हैं । सर्वशक्तिमान् प्रभो ! बड़े-बड़े ऋषि-मुनि कहते हैं कि आप खिलादी हैं और ये सब-के-सब लोक आपके खिलौने हैं ॥ ४५ ॥ अनन्त ! आपके सहस्र-सहस्र सिर हैं और आप खेल-खेलमें ही इस भूमण्डलको अपने सिरपर रक्ते रहते हैं । जब प्रलयका समय आता है, तब आप सारे जगत्को अपने भीतर लीन कर लेते हैं और केवल आप ही बचे रहकर बहिर्तीयरूपसे शयन करते हैं ॥ ४६ ॥ भगवन् ! आप जगत्की स्थिति और पालनके लिये विशुद्ध सत्त्वगुण शरीर ग्रहण किये हुए हैं । आपका यह क्रोध द्वेष या मत्सरके कारण नहीं है । यह तो समस्त प्राणियोंको शिक्षा देनेके लिये है ॥ ४७ ॥ समस्त शक्तियोंको धारण करनेवाले सर्वप्राणिलक्षण अमिनाशी भगवन् ! आपको इस नमस्कार करते हैं । समस्त विश्वके रचयिता देव ! इस आपको बार-बार नमस्कार करते हैं । हम आपकी शरणमें हैं । आप कृपा करके हमारी रक्षा कीजिये ॥ ४८ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित ! कौरवोंका नगर डगमगा रहा था और वे अत्यन्त डबराहटमें पड़े हुए थे । जब सब-के-सब कुटुंबंशी इस प्रकार भगवान् बलरामजीकी शरणमें आये और उनकी स्तुति-आर्पणा की, तब वे प्रसन्न हो गये और ‘हरो मत’ ऐसा कहकर उन्हें अभयदान दिया ॥ ४९ ॥ परीक्षित ! दुर्योधन अपनी पुत्री लक्ष्मणासे बड़ा प्रेम करता था । उसने दहेजमें साठ-साठ वर्षके नारद सौ हाथी, दस हजार घोड़े, सूर्यके समान चमकते हुए सोनेके छः हजार रथ और सोनेके दार पहनी हुई एक हजार दासियाँ दीं ॥ ५०-५१ ॥ यदुवंशीशिरोमणि भगवान् बलराम-जीने वह सब दहेज स्वीकार किया और नवदम्पति लक्ष्मणा तथा साम्बके साथ कौरवोंका अभिनन्दन स्वीकार करके द्वारकाकी यात्रा की ॥ ५२ ॥ अब बलरामजी द्वारकापुरीमें पहुँचे और अपने प्रेमी तथा समाचार जाननेके लिये उत्सुक बन्धु-बान्धवोंसे मिले । उन्होंने यदुवंशियोंकी भरी समामें अपना वह सारा चरित्र कह सुनाया, जो हस्तिनापुरमें उन्होंने कौरवोंके

साय किया था ॥ ५३ ॥ परीक्षित ! यह इस्तिनापुर कुछ झुका हुआ है और इस प्रकार यह भगवान् जलाम-
आज भी दक्षिणकी ओर ऊँचा और गङ्गाजीकी ओर नीके पराक्रमकी सूचना दे रहा है ॥ ५४ ॥

उनहत्तरवाँ अध्याय

देवर्षि नारदजीका भगवान्की गृहचर्चा देवता

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित ! जब देवर्षि नारदने सुना कि भगवान् श्रीकृष्णने नरकासुर (योगासुर) को मारकर अकेले ही हजारों राजकुमारियोंके साथ विवाह कर लिया है, तब उनके मनमें भगवान्की रहन-सहन देखनेकी बड़ी अभिलाषा हुई ॥ १ ॥ वे सोचने लगे—अहो, यह कितने आश्चर्यकी बात है कि भगवान् श्रीकृष्णने एक ही शरीरसे एक ही समय सोलह हजार महलोंमें अलग-अलग सोलह हजार राजकुमारियोंका पाणिप्रहाण किया ॥ २ ॥ देवर्षि नारद इस उन्मुक्ततासे प्रेरित होकर भगवान्की लीला देखनेके लिये द्वारका आ पहुँचे । वहाँकि उपवन और उद्यान खिले हुए रंग-बिरंगे पुष्पोंसे लदे वृक्षोंसे परिपूर्ण थे, उनपर तरह-तरहके पक्षी चहक रहे थे और मीरे गुंजार कर रहे थे ॥ ३ ॥ निर्मल जलसे भरे सरोवरोंमें नीले, लाल और सफेद रंगके मॉति-मॉतिके कमल खिले हुए थे । कुसुम (कोई) और नवजात कमलोंकी मानो मीठ ही लगी हुई थी । उनमें हंस और सारस फल्लव कर रहे थे ॥ ४ ॥ द्वारकापुरीमें स्फटिकमणि और बौदिके नी लाल महल थे । वे फर्श आदिमें जड़ी हुई म्हाभरकतमणि (पन्ने) की प्रभासे जगमगा रहे थे और उनमें सोने तथा हीरोंकी बहुत-सी सामभियाँ शोभायमान थीं ॥ ५ ॥ उसके राक्ष-प (बड़ी-बड़ी सबके), गलियों, चौराहे और बाजार बहुत ही सुन्दर-सुन्दर थे । बुधसाह आदि पशुओंके रहनेके स्थान, समा-भवन और देव-मन्दिरोंके कारण उसका सौन्दर्य और भी चमक उठा था । उसकी सबकों, चौक, गली और दरवाजोंपर छिद्रकवच किया गया था । छोटी-छोटी झड़ियाँ और बड़े-बड़े शंखे जगह-जगह फहरा रहे थे, जिनके कारण राक्षोंपर घृण नहीं आ पाती थी ॥ ६ ॥

उसी द्वारका नगरीमें भगवान् श्रीकृष्णका बहुत ही

सुन्दर अन्तःपुर था । बड़े-बड़े लोकपाल उसकी पूजा-प्रशंसा किया करते थे । उसका निर्माण करनेमें विश्वकर्माने अपना सारा कल-कौशल, सारी कारीगरी लगा दी थी ॥ ७ ॥ उस अन्तःपुर (रनिवास) में भगवान्की रानियोंके सोलह हजारसे अधिक महल शोभायमान थे, उनमेंसे एक बड़े भवनमें देवर्षि नारद-जीने प्रवेश किया ॥ ८ ॥ उस महलमें मूँगोंके खंभे, वैदूर्यके उत्तम-उत्तम छप्पे तथा इन्द्रनील मणिकी दीवारें जगमगा रही थीं और वहाँकी गर्चे भी ऐसी इन्द्रनील मणियोंसे बनी हुई थीं, जिनकी चमक किसी प्रकार कम नहीं होती ॥ ९ ॥ विश्वकर्माने बहुत-से ऐसे चँदोवे बना रखे थे, जिनमें मोतीकी छलियोंकी झाड़ें लटक रही थीं । हाथी-दाँतके बने हुए आसन और पलंग थे, जिनमें श्रेष्ठ-श्रेष्ठ मणि जड़ी हुई थी ॥ १० ॥ बहुत-सी दासियाँ गलेमें सोनेका हार पहने और सुन्दर कपड़ोंसे सुसज्जित होकर तथा बहुत-से सेवक भी जामा-पगड़ी और सुन्दर-सुन्दर कल पहने तथा जबाऊ कुण्डल धारण किये अपने-अपने काममें व्यस्त थे और महलकी शोभा बढ़ा रहे थे ॥ ११ ॥ अनेकों रत्न-प्रदीप अपनी जगमगाहटसे उसका अन्धकार दूर कर रहे थे । अगरकी घूप देनेके कारण झरोखोंसे धूँआँ निकल रहा था । उसे देखकर रंग-बिरंगे मणिमय छज्जोंपर बैठे हुए मोर बादलोंके भ्रमसे कूक-कूककर नाचने लगते ॥ १२ ॥ देवर्षि नारदजीने देखा कि भगवान् श्रीकृष्ण उस महलकी खामिनी रुक्मिणीजीके साथ बैठे हुए हैं और वे अपने हाथों भगवान्को सोनेकी ढाँडीवाले चँवरसे हवा कर रही हैं । यद्यपि उस महलमें रुक्मिणीजीके समान ही गुण, रूप, अवस्था और वेप-मूषावाली सहस्रों दासियाँ भी हर समय निवसित रहती थीं ॥ १३ ॥

नारदजीको देखते ही सम्पन्न चार्मिकोंके मुकुटमणि

भगवान् श्रीकृष्ण रुक्मिणीजीके पल्लवसे सहसा उठ खड़े हुए । उन्होंने देवर्षि नारदके युगलचरणोंमें मुकुटयुक्त सिरसे प्रणाम किया और हाथ जोड़कर उन्हें अपने आसनपर बैठाया ॥ १४ ॥ परीक्षित । इसमें सन्देह नहीं कि भगवान् श्रीकृष्ण चरान्तर जगत्के परम गुरु हैं और उनके चरणोंका धोक्न गङ्गाजल सारे जगत्को पवित्र करनेवाला है । फिर भी वे परमभक्तकसल और संतोंके परम आदर्श, उनके स्वामी हैं । उनका एक असाधारण नाम ब्रह्मण्यदेव भी है । वे ब्राह्मणोंको ही अपना आराध्यदेव मानते हैं । उनका यह नाम उनके गुणके अनुरूप एवं उचित ही है । तभी तो भगवान् श्रीकृष्णने स्वयं ही नारदजीके पाँव पखारे और उनका चरणामृत अपने सिरपर चरण किया ॥ १५ ॥ नर-शिरोमणि नरके सखा सर्वदर्शी पुराणपुरुष भगवान् नारायणने शास्त्रोक्त विधिसे देवर्षिशिरोमणि भगवान् नारदकी पूजा की । इसके बाद अमृतसे भी मीठे किन्तु थोड़े शब्दोंमें उनका स्वागत-सत्कार किया और फिर कहा—‘प्रभो ! आप तो स्वयं समग्र ज्ञान, वैराग्य, धर्म, यश, श्री और ऐश्वर्यसे पूर्ण हैं । आपकी हम क्या सेवा करें ?’ ॥ १६ ॥

देवर्षि नारदने कहा—भगवन् ! आप समस्त जीवोंके एकमात्र स्वामी हैं । आपके लिये यह कोई नयी बात नहीं है कि आप अपने भक्तजनोंसे प्रेम करते हैं और दुष्टोंको दण्ड देते हैं । परमयशस्वी प्रभो ! आपने जगत्की स्थिति और रक्षाके द्वारा समस्त जीवोंका कल्याण करनेके लिये स्वेच्छासे अवतार ग्रहण किया है । भगवन् ! यह बात हम मलीर्माँति जानते हैं ॥ १७ ॥ यह बड़े सौभाग्यकी बात है कि आज मुझे आपके चरणकमलोंके दर्शन हुए हैं । आपके ये चरणकमल सम्पूर्ण जनताको परम सम्पत्, मोक्ष देनेमें समर्थ हैं । जिनके ज्ञानकी कोई सीमा ही नहीं है वे ब्रह्मा, शङ्कर आदि सदा-सर्वदा अपने हृदयमें उनका चिन्तन करते रहते हैं । वास्तवमें वे श्रीचरण ही संसाररूप कूर्पों गिरे हुए जोगोंके बाहर निकलनेके लिये अवलम्बन हैं । आप ऐसी कृपा कीजिये कि आपके उन चरणकमलोंकी स्तुति सर्वदा बनी रहे

और मैं चाहे जहाँ जैसे रहूँ, उनके ध्यानमें तन्मय रहूँ ॥ १८ ॥

परीक्षित । इसके बाद देवर्षि नारदजी योगेश्वरोंके भी ईश्वर भगवान् श्रीकृष्णकी योगमायाका रहस्य जाननेके लिये उनकी दूसरी पत्नीके महलमें गये ॥ १९ ॥ वहाँ उन्होंने देखा कि भगवान् श्रीकृष्ण अपनी प्राणप्रिया और उद्भवजीके साथ चौसर खेल रहे हैं । वहाँ भी भगवान्ने खड़े होकर उनका स्वागत किया, आसनपर बैठाया और निविध सामग्रियोंद्वारा बड़ी भक्तिसे उनकी अर्चा-पूजा की ॥ २० ॥ इसके बाद भगवान्ने नारद-जीसे जनजानकी तरह पूछा—‘आप यहाँ कब पधारे ? आप तो परिपूर्ण आत्माराम—आत्मकाम हैं और हमलोग हैं अपूर्ण । ऐसी अवस्थामें भला हम आपकी क्या सेवा कर सकते हैं ?’ ॥ २१ ॥ फिर भी ब्रह्मस्वरूप नारदजी । आप कुछ-न-कुछ आत्मा अथवा कीजिये और हमें सेवाका अवसर देकर हमारा जन्म सफल कीजिये ।’ नारदजी यह सब देख-सुनकर चकित और विस्मित हो रहे थे । वे वहाँसे उठकर चुपचाप दूसरे महलमें चले गये ॥ २२ ॥ उस महलमें भी देवर्षि नारदने देखा कि भगवान् श्रीकृष्ण अपने मन्दे-मन्दे बच्चोंको हुंकार रहे हैं । कहीं फिर दूसरे महलमें गये तो क्या देखते हैं कि भगवान् श्रीकृष्ण खानकी तैयारी कर रहे हैं ॥ २३ ॥ (इसी प्रकार देवर्षि नारदने विभिन्न महलोंमें भगवान्को भिन्न-भिन्न कर्तव्य करते देखा ।) कहीं वे पक्षकुण्डोंमें हवन कर रहे हैं तो कहीं पञ्चमहायज्ञोंसे वेष्टा आदिकी आराधना कर रहे हैं । कहीं ब्राह्मणोंको भोजन करा रहे हैं, तो कहीं यज्ञका अवशेष स्वयं भोजन कर रहे हैं ॥ २४ ॥ कहीं सम्पत्ता कर रहे हैं, तो कहीं मौन होकर गायत्रीका जप कर रहे हैं । कहीं हाथोंमें ढाक-तलवार लेकर उनको चखनेके पैतरे बदल रहे हैं ॥ २५ ॥ कहीं बोधे, हाथी अथवा रथपर सवार होकर श्रीकृष्ण विचरण कर रहे हैं । कहीं पलंगपर सो रहे हैं तो कहीं बंदीजन उनकी स्तुति कर रहे हैं ॥ २६ ॥ किसी महलमें उद्भव आदि मन्त्रियोंके साथ किसी गम्भीर विषयपर परामर्श कर रहे हैं, तो कहीं उत्तमोत्तम वाराङ्गनाओंसे धिरकर जलछीटा कर रहे हैं ॥ २७ ॥ कहीं श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको कक्षामूषणसे सुसज्जित गौओंका

दान कर रहे हैं, तो कहीं मङ्गलमय इच्छास-पुराणोंका श्रवण कर रहे हैं ॥ २८ ॥ कहीं किसी पत्नीके महत्त्वमें अपनी प्राणप्रियाके साथ हस्त-विनोदकी बातें करके हँस रहे हैं, तो कहीं धर्मका सेवन कर रहे हैं । कहीं अर्थका सेवन कर रहे हैं—घन-संग्रह और घनवृद्धिके कार्यमें लगे हुए हैं, तो कहीं धर्मातुल्य गृहस्थोचित विधियोंका उपयोग कर रहे हैं ॥ २९ ॥ कहीं एकान्तमें बैठकर प्रकृतिसे अनीत पुराण पुरुषका ध्यान कर रहे हैं, तो कहीं गुरुनौको इच्छित भोग-साग्री समर्पित करके उनकी सेवा-शुश्रूषा कर रहे हैं ॥ ३० ॥ देवर्षि नारदने देखा कि भगवान् श्रीकृष्ण किसीके साथ युद्धकी बात कर रहे हैं, तो किसीके साथ सन्धिकी । कहीं भगवान् कलामजीके साथ बैठकर सपुत्रोंके कल्याणके बारेमें विचार कर रहे हैं ॥ ३१ ॥ कहीं उचित समयपर पुत्र और कन्याओंका उनके सद्गुरु पत्नी और बरोंके साथ बड़ी भूमिधामसे विधिवत् विवाह कर रहे हैं ॥ ३२ ॥ कहीं घरसे कन्याओंको विदा कर रहे हैं, तो कहीं छुट्टानेकी तैयारीमें लगे हुए हैं । योगेश्वरभार भगवान् श्रीकृष्णके इन विवाद-उत्सवोंको देखकर सभी लोग विस्मित-वकिंत हो जाते थे ॥ ३३ ॥ कहीं बड़े-बड़े पंडोंके द्वारा समस्त देवताओंका यजन-पूजन और कहीं कुर्रै, बगीचे तथा मठ आदि वनवाक्य इष्टार्थ धर्मका आचरण कर रहे हैं ॥ ३४ ॥ कहीं श्रेष्ठ यदवोंसे विरे हुए सिन्धुदेशीय घोड़ेपर चढ़कर मृगया कर रहे हैं, और उसमें पक्षके छिये मेघ पशुओंका ही वध कर रहे हैं ॥ ३५ ॥ और कहीं प्रजामें तथा अन्तःपुरके महलोंमें वेप बद्धकर छिपे रूपसे सबका अभिप्राय जाननेके छिये विचरण कर रहे हैं । क्यों न हो, भगवान् योगेश्वर जो हैं ॥ ३६ ॥

परीक्षित । इस प्रकार मनुष्यकी-सी लीला करते हुए इपीकेन भगवान् श्रीकृष्णकी योगमायाका वैभव देखकर देवर्षि नारदजीने मुसकराते हुए उनसे कहा— ॥ ३७ ॥ 'योगेश्वर ! आत्मदेव ! आपकी योगमाया ब्रह्मजी आदि बड़े-बड़े मायावियोंके छिये भी अगम्य है । परन्तु हम आपकी योगमायाका रहस्य जानते हैं; क्योंकि आपके चरणकमलोंकी सेवा करनेसे वह स्वयं ही हमारे सामने

प्रकट हो गयी है ॥ ३८ ॥ देवताजनोंके भी आराध्यदेव भगवान् । चौदहों मुक्त आपके सुयशसे परिपूर्ण हो रहे हैं । अब मुझे आज्ञा दीजिये कि मैं आपकी त्रिभुवन-पावनी लीलाका गान करता हुआ उन लोकोंमें विचरण करूँ ॥ ३९ ॥

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—देवर्षि नारदजी ! मैं ही धर्मका उपदेशक, पाठन करनेवाला और उसका अनुष्ठान करनेवालोंका अनुमोदनकर्ता भी हूँ । इसलिये संसारको धर्मकी शिक्षा देनेके उद्देश्यसे ही मैं इस प्रकार धर्मका आचरण करता हूँ । मेरे प्यारे पुत्र ! तुम मेरी यह योगमाया देखकर मोहित मत होना ॥ ४० ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्ण गृहस्थोंको पवित्र करनेवाले श्रेष्ठ धर्मोंका आचरण कर रहे थे । यद्यपि वे एक ही हैं, फिर भी देवर्षि नारदजीने उनको उनकी प्रत्येक पत्नीके महत्त्वमें अलग-अलग देखा ॥ ४१ ॥ भगवान् श्रीकृष्णकी शक्ति अनन्त है । उनकी योगमायाका परम देवर्षि बार-बार देखकर देवर्षि नारदके विसय और कौतूहलकी सीमा न रही ॥ ४२ ॥ द्वारकामें भगवान् श्रीकृष्ण गृहस्थकी भाँति ऐसा आचरण करते थे, मानो धर्म, अर्थ और कामरूप पुरुषार्थोंमें उनकी बड़ी श्रद्धा हो । उन्होंने देवर्षि नारदका बहुत सम्मान किया । वे अत्यन्त प्रसन्न होकर भगवान्का स्मरण करते हुए वहाँसे चले गये ॥ ४३ ॥ राजान् । भगवान् नारायण सारे जगत्के कल्याणके छिये अपनी अचिन्त्य महान्गति योगमायाको स्वीकार करते हैं और इस प्रकार मनुष्योंकी-सी लीला करते हैं । द्वारकापुरीमें सोलह हजारसे भी अधिक पत्नियों अपनी सख्ख एवं प्रेमभरी चितवन तथा मन्द-मन्द सुसकानसे उनकी सेवा करती थीं और वे उनके साथ विहार करते थे ॥ ४४ ॥ भगवान् श्रीकृष्णने जो लीलाएँ की हैं, उन्हें दूसरा कोई नहीं कर सकता । परीक्षित । वे विश्वकी उत्पत्ति, स्थिति और प्रलयके परम कारण हैं । जो उनकी लीलाओंका गान, श्रवण और गान-श्रवण करनेवालोंका अनुमोदन करता है, उसे मोक्षके मार्गस्वरूप भगवान् श्रीकृष्णके चरणोंमें परम प्रेममयी भक्ति प्राप्त हो जाती है ॥ ४५ ॥

सत्तरवाँ अध्याय

भगवान् श्रीकृष्णकी नित्यचर्चा और उनके पास जराबन्धके कैदी राजाओंके दूतका आना

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित ! जब सबेरा होने लगता, कुम्कुट (मुरगे) बोझने लगते, तब वे श्रीकृष्ण-पत्नियों, जिनके कण्ठमें श्रीकृष्णने अपनी मुञ्जा बाँध रखी है, उनके बिछोहकी आवाज़से व्याकुल हो जातीं और उन मुरगोंको कोसने लगतीं ॥ १ ॥ उस समय पारिजातकी सुगन्धसे सुवासित मीनी-मीनी वायु बहने लगती । भीरे ताड़खरसे अपने सङ्गीतकी तान छेड़ देते । पक्षियोंकी नौद उषट जाती और वे बंदीजनोंकी भौंते भगवान् श्रीकृष्णको अगानेके छिये मधुर खरसे कण्ठरव करने लगते ॥ २ ॥ रुक्मिणीजी अपने प्रियतमके मुजपाशसे बँधी रहनेपर भी आच्छिन्न छूट जानेकी आशाङ्कसे अत्यन्त सुहावने और पवित्र ब्राह्ममुहूर्तको भी असह्य समझने लगती थीं ॥ ३ ॥ भगवान् श्रीकृष्ण प्रतिदिन ब्राह्ममुहूर्तमें ही उठ जाते और हाथ-मुँह धोकर अपने मायातीत आत्मस्वरूपका ध्यान करने लगते । उस समय उनका रोम-रोम आनन्दसे खिळ उठता था ॥ ४ ॥ परीक्षित ! भगवान्का वह आत्मस्वरूप सजातीय, विजातीय और खगलभेदसे रहित एक, अखण्ड है । क्योंकि उममें किसी प्रकारकी उपाधि या उपाधिके कारण होनेवाला अन्य वस्तुका अस्तित्व नहीं है । और यही कारण है कि वह अविनाशी सत्य है । जैसे चन्द्रमा-सूर्य आदि नेत्र-इन्द्रियके द्वारा और नेत्र-इन्द्रिय चन्द्रमा-सूर्य आदिके द्वारा प्रकाशित होती हैं, वैसे वह आत्म-स्वरूप दूसरेके द्वारा प्रकाशित नहीं, स्वयंप्रकाश है । इसका कारण यह है कि अपने स्वरूपमें ही सदा-सर्वदा और कालकी सीमाके परे भी एकरस स्थित रहनेके कारण अविद्या उसका स्पर्श भी नहीं कर सकती । इसीसे प्रकाश्य-प्रकाशकभाव उसमें नहीं है । जगत्की उत्पत्ति, स्थिति और नाशकी कारणभूता ब्रह्मशक्ति, विष्णुशक्ति और रुद्रशक्तियोंके द्वारा केवल इस बातका अनुमान हो सकता है कि वह स्वरूप एकरस सत्त्वरूप और आनन्दस्वरूप है । उसीको समझानेके छिये 'ब्रह्म' नामसे कहा जाता है । भगवान् श्रीकृष्ण अपने उसी आत्मस्वरूपका प्रतिदिन ध्यान करते ॥ ५ ॥ इसके बाद

वे विधिपूर्वक निर्मल और पवित्र जलमें स्नान करते । फिर झुद्ध घोंती पहनकर, दुपट्टा ओढ़कर यथाविधि नित्यकर्म सन्ध्या-मन्दन आदि करते । इसके बाद हवन करते और गौन होकर गयत्रीका जप करते । क्यों न हो, वे सत्पुरुषोंके पात्र आदर्श जो हैं ॥ ६ ॥ इसके बाद सूर्योदय होनेके समय सूर्योपस्थान करते और अपने कञ्जस्वरूप देवता, ऋषि तथा पितरोका तर्पण करते । फिर कुल्हके बड़े-बूढ़ों और ब्राह्मणोंकी विधिपूर्वक पूजा करते । इसके बाद परम मनही श्रीकृष्ण दुधार, पहले-पहल ग्यायी हुई, बछड़ोंवाली सीधी-शान्त गौओंका दान करते । उस समय उन्हें सुन्दर वस्त्र और मोतियोंकी माला पहना दी जाती । सींगमें सोना और छुमेंमें चाँदी मढ़ दी जाती । वे ब्राह्मणोंको वस्त्राभूषणसे सुसज्जित करके रेशमी वस्त्र, धृगचर्म और तिळके साथ प्रतिदिन तेरह हजार चौरासी गौएँ इस प्रकार दान करते ॥ ७-९ ॥ तदनन्तर अपनी विभूतिरूप गौ, ब्राह्मण, देवता, कुल्हके बड़े-बूढ़े, गुरुजन और समस्त प्राणियोंको प्रणाम करके मातृलिक वस्तुओंका स्पर्श करते ॥ १० ॥ परीक्षित ! यद्यपि भगवान्के शरीरका सहज सौन्दर्य ही मनुष्यकोकामा अलङ्कार है, फिर भी वे अपने पीताम्बरदि दिव्य वस्त्र, कौस्तुभादि आभूषण, पुष्पोंके हार और चन्दनादि दिव्य अङ्गरागसे अपनेको आभूषित करते ॥ ११ ॥ इसके बाद वे वी और दर्पणमें अपना मुखारविन्द देखते; गाय, बैल, ब्राह्मण और देव-प्रतिमाओंका दर्शन करते । फिर पुरासी और अन्तःपुरमें रहनेवाले चारों कर्णोंके जोगोंकी धमिलाघाएँ पूर्ण करते और फिर अपनी अन्य (ग्रामवासी) प्रजाकी कामनापूर्ति करके उसे सन्तुष्ट करते और इन सबको प्रसन्न देखकर स्वयं बहुत ही आनन्दित होते ॥ १२ ॥ वे पुष्पमाला, ताम्बूल, चन्दन और अङ्गराग आदि वस्तुएँ पहले ब्राह्मण, खनन-सम्बन्धी, मन्त्री और रानियोंको बाँट देते; और उनसे बची हुई स्वयं अपने काममें लते ॥ १३ ॥ भगवान् यह सब करते होते, तबतक दारुण नामका सारथी

सुग्रीव आदि धोड़ोंसे जुता हुआ अत्यन्त बहुत रय ले आता और प्रणाम करके भगवान्‌के सामने खड़ा हो जाता ॥ १४ ॥ इसके बाद भगवान्‌ श्रीकृष्ण सात्विक और उद्धवजीके साथ अपने हाथसे सारथीका हाथ पकड़कर रथपर सवार होते—ठीक वैसे ही जैसे सुवनमास्कर भगवान्‌ सूर्य उदयाचलपर आरुढ़ होते हैं ॥ १५ ॥ उस समय रनिवासकी बियाँ ऊँचा एवं प्रेमसे भरी चितवनसे उन्हें निहारने लगतीं और बड़े कष्टसे उन्हें बिदा करतीं । भगवान्‌ सुसक्तराकर उनके चित्तको चुराते हुए महलसे निकलते ॥ १६ ॥

परीक्षित । तदनन्तर भगवान्‌ श्रीकृष्ण समस्त यदुवंशियोंके साथ सुवर्मा नामकी समामें प्रवेश करते । उस समामाकी ऐसी महिमा है कि जो लोग उस समामें जा बैठते हैं, उन्हें मूल-भ्यास, शोक-मोह और जरा-मृत्यु—ये छः ऊर्मियाँ नहीं सतातीं ॥ १७ ॥ इस प्रकार भगवान्‌ श्रीकृष्ण सब राजियोंसे अलग-अलग बिदा होकर एक ही रूपमें सुवर्मा-समामे प्रवेश करते और वहाँ जाकर श्रेष्ठ सिंहासनपर विराज जाते । उनकी अङ्गकान्तिसे दिशाएँ प्रकाशित होती रहतीं । उस समय यदुवंशी धीरोंके बीचमें यदुवंशशिरोमणि भगवान्‌ श्रीकृष्णकी ऐसी शोभा होती, जैसे आकाशमें तारोंसे घिरे हुए चन्द्रदेव शोभायमान होते हैं ॥ १८ ॥ परीक्षित । समामें विदूषकलोग विभिन्न प्रकारके हास्य-विनोदसे, नटाचार्य अमिनयसे और नर्तकियों कलापूर्ण नृत्योंसे अलग-अलग अपनी देखियोकें साथ भगवान्‌की सेवा करतीं ॥ १९ ॥ उस समय मृदङ्ग, वीणा, पखावज, बाँसुरी, शोष और शङ्ख बजने लगते और सुप्त, मागध तथा बदीजन नाचते-गाते और भगवान्‌की स्तुति करते ॥ २० ॥ कोई-कोई व्याख्याकुशल ब्राह्मण वहाँ बैठकर वेदमन्त्रोंकी व्याख्या करते और कोई पूर्वकाशीन पवित्रकीर्ति नरपत्तियोंके चरित्र कह-कहकर सुनाते ॥ २१ ॥

एक दिनकी बात है, द्वारकापुरीमें राजसभाके द्वारपर एक नया मनुष्य आया । द्वारपालोंने भगवान्‌को उसके आनेकी सूचना देकर उसे समाववनमें उपस्थित किया ॥ २२ ॥ उस मनुष्यने परमेश्वर भगवान्‌

श्रीकृष्णको हाथ जोड़कर नमस्कार किया और उन राजाओंका, जिन्होंने जरासन्धके दिग्विजयके समय उसके सामने सिर नहीं झुकाया था और बलपूर्वक कैद कर भिजे गये थे, जिनकी संख्या बीस हजार थी, जरासन्धके बंदी बननेका दुःख श्रीकृष्णके सामने निवेदन किया—॥ २३-२४ ॥ 'सच्चिदानन्दस्वरूप श्रीकृष्ण ! आप मन और वाणीके अगोचर हैं । जो आपकी शरणमें आता है, उसके सारे भय आप नष्ट कर देते हैं । प्रभो ! हमारी भेद-बुद्धि मिटी नहीं है । हम जन्म-मृत्खरूप संसारके चक्रसे भयभीत होकर आपकी शरणमें आये हैं ॥ २५ ॥ भगवन् ! अधिकांश जीव ऐसे सकलम और निषिद्ध कर्मोंमें कैसे हुए हैं कि वे आपके बतलाये हुए अपने परम कल्याणकारी कर्म, आपकी उपासनासे विमुख हो गये हैं और अपने जीवन एवं जीवनसम्बन्धी आशा-अभिलाषाओंमें भ्रम-मग्न रहते हैं । परन्तु आप बड़े बलवान्‌ हैं । आप कालरूपसे सदा-सर्वदा सावधान रहकर उनकी आशाखताका तुरंत समूल उच्छेद कर डालते हैं । हम आपके उस कालरूपको नमस्कार करते हैं ॥ २६ ॥ आप सत्य जगदीश्वर हैं और आपने जगत्‌में अपने ज्ञान, बल आदि कलओंके साथ इसलिये अवतार ग्रहण किया है कि संतोंकी रक्षा करें और दुष्टोंको दण्ड दें । ऐसी अवस्थामें प्रभो ! जरासन्ध आदि कोई दूसरे राजा आपकी इच्छा और आज्ञाके विपरीत हमें कैसे कष्ट दे रहे हैं, यह बात हमारी समझमें नहीं आती । यदि यह कष्टा जाय कि जरासन्ध हमें कष्ट नहीं देता, उसके रूपमें—उसे निमित्त बनाकर हमारे अशुभ कर्म ही हमें दुःख पहुँचा रहे हैं, तो यह भी ठीक नहीं । क्योंकि जब हमलोग आपके अपने हैं, तब हमारे दुष्कर्म हमें पाठ देनेमें कैसे समर्थ हो सकते हैं ? इसलिये आप कृपा करके अकल्प ही हमें इस क्लेशसे मुक्त करजिये ॥ २७ ॥ प्रभो ! हम जानते हैं कि राजापनेका मुख प्रारम्भके अधीन एवं विषयसाध्य है । और सच कहें तो स्वप्न-सुखके समान अत्यन्त तुच्छ और असद्‌ है । साथ ही उस सुखको भोगनेवाला यह शरीर भी एक प्रकारसे मुर्दा ही है और इसके पीछे सदा-सर्वदा सैकड़ों प्रकारके भय लगे रहते हैं । परन्तु

हम तो इसीके द्वारा जगतके अनेकों मार दो रहे हैं और यही कारण है कि हमने अन्तःकरणके निष्काम-भाव और निस्सङ्कल्प स्थितिसे प्राप्त होनेवाले आत्म-सुखका परिष्ठाग कर दिया है। सचमुच हम अत्यन्त अज्ञानी हैं और आपकी मायाके फंदमें फँसकर क्लेश-पर-न्वेष्टा भोगते जा रहे हैं ॥ २८ ॥ भगवन् । आपके चरणकमल शरणागत पुरुषोंके समस्त शोक और मोहोंको नष्ट कर देनेवाले हैं। इसलिये आप ही जरासन्धरूप कर्मोंके बन्धनसे हमें छुड़ाइये। प्रभो ! यह अकेला ही दस हजार हाथियोंकी शक्ति रखता है और हमछोगोंको उसी प्रकार बंदी बनाये हुए है, जैसे सिंह भेड़ोंको घेर रखे ॥ २९ ॥ चक्रपाणे । अपने अठारह बार जरासन्धसे युद्ध किया और सत्रह बार उसका मान-मर्दन करके उसे छोड़ दिया। परन्तु एक बार उसने आपको जीत लिया। हम जानते हैं कि आपकी शक्ति, आपका बळ-पौरुष अनन्त है। फिर भी मनुष्योंका-सा आचरण करते हुए आपने हारनेका अभिनय किया। परन्तु इसीसे उसका घमंड नष्ट गया है। हे अजित ! अब वह यह जानकर हमछोगोंको और भी सताता है कि हम आपके भक्त हैं, आपकी प्रजा हैं। अब आपकी जैसी इच्छा हो, वैसा कीजिये ॥ ३० ॥

दूतने कहा—भगवन् ! जरासन्धके बंदी नरपतियोंने इस प्रकार आपसे प्रार्थना की है। वे आपके चरणकमलोंकी शरणमें हैं और आपका दर्शन चाहते हैं। आप कृपा करके उन दीनोंका कल्याण कीजिये ॥ ३१ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित ! राजाओंका दूत इस प्रकार कह ही रहा था कि परमतेजस्वी देवर्षि नारदजी वहाँ आ पहुँचे। उनकी सुनहरी जटाएँ चमक रही थीं। उन्हें देखकर ऐसा माधुर्य हो रहा था, मानो साक्षात् भगवान् सूर्य ही उदय हो गये हों ॥ ३२ ॥ ब्रह्मा आदि समस्त लोकपालोंके एकमात्र खात्री भगवान् श्रीकृष्ण उन्हें देखते ही समस्तदों और सेवकोंके साथ हर्षित होकर उठ खड़े हुए और सिर झुकाकर उनकी वन्दना करने लगे ॥ ३३ ॥ जब

देवर्षि नारद आसन्न स्त्रीकार करके बैठ गये, तब भगवान् ने उनकी विधिपूर्वक पूजा की और अपनी श्रद्धासे उनको सम्पुष्ट करते हुए वे मधुर वाणीसे बोले—॥ ३४ ॥ 'देवर्षे ! इस समय तीनों लोकोंमें कुशल-मङ्गल तो है न ? आप तीनों लोकोंमें विचरण करते रहते हैं, इससे हमें यह बहुत बड़ा लाभ है कि घर बैठे सबका समाचार मिल-जाता है ॥ ३५ ॥ ईश्वरके द्वारा रचे हुए तीनों लोकोंमें ऐसी कोई बात नहीं है, जिसे आप न जानते हों। अतः हम आपसे यह जानना चाहते हैं कि युधिष्ठिर आदि पाण्डव इस समय क्या करना चाहते हैं ?' ॥ ३६ ॥

देवर्षि नारदजीने कहा—सर्वव्यापक अनन्त । आप विश्वके निर्माता हैं और इतने बड़े मायावी हैं कि बड़े-बड़े मायावी ब्रह्माजी आदि भी आपकी मायाका पार नहीं पा सकते। प्रभो ! आप सबके षड-वटमें अपनी अचिन्त्य शक्तिसे व्यस्त रहते हैं—ठीक वैसे ही; जैसे अग्नि लकड़ियोंमें अपनेको छिपाये रखता है। जोगोंकी दृष्टि सत्त्व आदि गुणोंपर ही अटक जाती है, इससे आपको वे नहीं देख पाते। मैंने एक बार नहीं, अनेकों बार आपकी माया देखी है। इसलिये आप जो मैं अनजान बनकर पाण्डवोंका समाचार पूछते हूँ, इससे मुझे कोई कौतूहल नहीं हो रहा है ॥ ३७ ॥ भगवन् ! आप अपनी मायासे ही इस जगत्की रचना और सभार करते हैं, और आपकी मायाके कारण ही यह असत्य होनेपर भी सत्त्वके समान प्रतीत होता है। आप कम क्या करना चाहते हैं, यह बात भलीभँति कौन समझ सकता है। आपका स्वरूप सर्वथा अचिन्तनीय है। मैं तो केवल बार-बार आपको नमस्कार करता हूँ ॥ ३८ ॥ शरीर और इससे सम्बन्ध रखनेवाली वासनाओंमें फँसकर जीव जन्म-मृत्युके चक्रमें भटकता रहता है तथा यह नहीं जानता कि मैं इस शरीरसे कैसे मुक्त हो सकता हूँ। वास्तवमें उसीके हितके लिये आप नाना प्रकारके लीलावतार ग्रहण करके अपने पवित्र यशका दीपक जल्य देते हैं, जिसके सहारे वह इस अनर्थकारी शरीरसे मुक्त हो सके। इसलिये मैं आपकी शरणमें हूँ ॥ ३९ ॥ प्रभो ! आप स्वयं परब्रह्म हैं, तथापि मनुष्योंकी-सी

लीलाका नाट्य करते हुए मुझसे पूछ रहे हैं । इसलिये आपके फुफेरे भाई और प्रेमी भक्त राजा युधिष्ठिर क्या करना चाहते हैं, यह बात मैं आपको सुनाता हूँ ॥४०॥ इसमें सन्देह नहीं कि ब्रह्मलोकमें किसीको जो योग प्राप्त हो सकता है, वह राजा युधिष्ठिरको यहीं प्राप्त है । उन्हें किसी वस्तुकी कामना नहीं है । फिर भी वे श्रेष्ठ यज्ञ राजसूयके द्वारा आपकी प्राप्तिके लिये आपकी आराधना करना चाहते हैं । आप कृपा करके उनकी इस अभिलाषाका अनुमोदन कीजिये ॥ ४१ ॥ भगवन् ! उस श्रेष्ठ यज्ञमें आपका दर्शन करनेके लिये बड़े-बड़े देवता और यशस्वी नरपतिगण एकत्र होंगे ॥ ४२ ॥ प्रभो ! आप स्वयं विज्ञानानन्दगण ब्रह्म हैं । आपके श्रवण, कीर्तन और ध्यान करनेमात्रसे अन्त्यज भी पवित्र हो जाते हैं । फिर जो आपका दर्शन और स्पर्श प्राप्त करते हैं, उनके सम्बन्धमें तो कहना ही क्या है ॥ ४३ ॥ त्रिभुवनमङ्गल ! आपकी निर्मल कीर्ति समस्त दिशाओंमें छा रही है तथा स्वर्ग, पृथ्वी और पातालमें व्याप्त हो रही है; ठीक वैसे ही, जैसे आपकी करणामृतधारा

स्वर्गमें मन्दाकिनী, पातालमें योगवती और मर्त्यलोकमें गङ्गाके नामसे प्रवाहित होकर सारे विश्वको पवित्र कर रही है ॥ ४४ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित ! समामें जितने यदुवंशी बैठे थे, वे सब इस बातके लिये अत्यन्त उत्सुक हो रहे थे कि पहले जरासन्धपर चढ़ाई करके उसे जीत लिया जाय । अतः उन्हें नारदजीकी बात पसंद न आयी । तब ब्रह्मा आदिके शासक भगवान् श्रीकृष्णने तनिक मुसकराकर बड़ी मीठी भाषीमें उद्भव-जीसे कहा— ॥ ४५ ॥

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—‘उद्भव ! तुम मेरे हितैषी सुहृद् हो । तुम समर्थि देनेवाले और कार्यके तत्त्वको भली-भाँति समझनेवाले हो, इसीलिये हम तुम्हें अपना उत्तम नेत्र मानते हैं । अब तुम्हीं बताओ कि इस विषयमें हमें क्या करना चाहिये । तुम्हारी बातपर हमारी श्रद्धा है । इसलिये हम तुम्हारी सलाहके अनुसार ही काम करेंगे’ ॥ ४६ ॥ जब उद्भवजीने देखा कि भगवान् श्रीकृष्ण सर्वज्ञ होनेपर भी अनजानकी तरह सलाह पूछ रहे हैं, तब वे उनकी आज्ञा शिरोधार्य करके बोले ॥ ४७ ॥

एकहत्तरवाँ अध्याय

श्रीकृष्णभगवान्का इन्द्रप्रस्थ पधारना

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित ! भगवान् श्रीकृष्णके वचन सुनकर बहामति उद्भवजीने देवर्षि नारद, सभासद् और भगवान् श्रीकृष्णके मतपर विचार किया और फिर वे कहने लगे ॥ १ ॥

उद्भवजीने कहा—भगवन् ! देवर्षि नारदजीने आपको यह सलाह दी है कि फुफेरे भाई पाण्डवोंके राजसूय यज्ञमें सम्मिलित होकर उनकी सहायता करनी चाहिये । उनका यह कथन ठीक ही है और साथ ही यह भी ठीक है कि शरणागतोंकी रक्षा अङ्ग्यकर्तव्य है ॥ २ ॥ प्रभो ! जब हम इस दृष्टिसे विचार करते हैं कि राजसूय यज्ञ वही कर सकता है, जो दसों दिशाओंपर विजय प्राप्त कर ले, तब हम इस निर्णयपर बिना किसी दुविधाके पहुँच जाते हैं कि पाण्डवोंके यज्ञ और शरणागतोंकी

रक्षा दोनों कर्मोंके लिये जरासन्धको जीतना आवश्यक है ॥ ३ ॥ प्रभो ! केवल जरासन्धको जीत लेनेसे ही हमारा महान् उद्देश्य सफल हो जायगा, साथ ही उससे नदी राजाओंकी मुक्ति और उसके कारण आपको सुकसाकी भी प्राप्ति हो जायगी ॥ ४ ॥ राजा जरासन्ध बड़े-बड़े लोगोंके भी दौत खदे कर देता है; क्योंकि दस हजार हाथियोंका बल उसे प्राप्त है । उसे यदि हरा सकते हैं तो केवल भीमसेन, क्योंकि वे भी वैसे ही नहीं हैं ॥ ५ ॥ उसे आग्ने-सामनेके युद्धमें एक वीर जीत ले, यही सबसे अच्छा है । सौ अक्षौहिणी सेना लेकर जब वह युद्धके लिये खड़ा होगा, उस समय उसे जीतना आसान न होगा । जरासन्ध बहुत बड़ा ब्राह्मणभक्त है । यदि ब्राह्मण उससे किसी बातकी याचना करते हैं,

तो वह कभी कोरा जवाब नहीं देता ॥ ६ ॥ इसलिये भीमसेन ब्राह्मणके नेत्रों में जल और उसने युद्धकी शिक्षा माँगी । भगवन् ! इसमें सन्देह नहीं कि यदि आपकी उपस्थितिमें भीमसेन और जरासन्धका द्वन्द्वयुद्ध हो, तो भीमसेन उसे मार डालेगा ॥ ७ ॥ प्रभो ! आप सर्वशक्तिमान्, रूपरहित कालसरूप है । विश्वकी सृष्टि और प्रलय आपकी ही शक्तिसे होता है । ब्रह्मा और शङ्कर तो उसमें निमित्तमात्र हैं । (इसी प्रकार जरासन्धका वध तो होगा आपकी शक्तिसे, भीमसेन केवल उसमें निमित्तमात्र बनेगा) ॥ ८ ॥ जब इस प्रकार आप जरासन्धका वध कर डालेंगे, तब कैदमें पड़े हुए राजाओंकी रानियाँ अपने महलोंमें आपकी इस विजुक्त जीलका गान करेंगी कि आपने उनके शत्रुका नाश कर दिया और उनके प्राणपतियोंको छुड़ा दिया । ठीक वैसे ही, जैसे गोपियों ने राक्षसभूदसे छुड़ानेकी जीलका, आपके शरणागत मुनिगण गजेन्द्र और जानकीजीके उद्धारकी जीलका तथा हमलोग आपके माता-पिताको कंसके कारागारसे छुड़ानेकी जीलका गान करते हैं ॥ ९ ॥ इसलिये प्रभो ! जरासन्धका वध स्वयं ही बहुत-से प्रयोजन सिद्ध कर देगा । बन्दी नरपतियोंके पुण्य-परिणामसे अपना जरासन्धके पाप-परिणामसे सन्धिदानन्दस्वरूप श्रीकृष्ण ! आप भी तो इस समय राजसूय यज्ञका होना ही पसंद करते हैं (इसलिये पहले आप वही पधारिये) ॥ १० ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित ! उद्भवजीकी यह सज्जह सब प्रकारसे हितकर और निर्दोष थी । देवर्षि नारद, यदुवंशके बड़े-बूढ़े और स्वयं भगवान् श्रीकृष्णने भी उनकी बातका समर्थन किया ॥ ११ ॥ अब अन्तर्पामी भगवान् श्रीकृष्णने वसुदेव आदि गुरु-जनसे अनुमति लेकर दारुक, जैत्र आदि सेवकोंको इन्द्रप्रस्थ जानेकी तैयारी करनेके लिये आज्ञा दी ॥ १२ ॥ इसके बाद भगवान् श्रीकृष्णने यदुराज उपसेन और बलरामजीसे आज्ञा लेकर बाल-बच्चोंके साथ रानियों और उनके सब सामानको आगे चला दिया और फिर दारुकके लगे हुए गरुडवृक्ष रथपर स्वयं सवार हुए ॥ १३ ॥ इसके बाद रथों, हाथियों, धुडसवारों और पैदलोंकी बड़ी भारी सेनाके साथ उन्होंने प्रस्थान किया । उस

समय धृदङ्ग, नगारे, ढोल, शङ्ख और नरसिंहोंकी ऊँच ध्वनिसे दसों दिशाएँ गूँज उठी ॥ १४ ॥ सतीशिरोमणि रुक्मिणीजी आदि सहस्रों श्रीकृष्ण-पत्नियों अपनी सत्ताओंके साथ सुन्दर-सुन्दर वस्त्राभूषण, चन्दन, अङ्गराग और पुष्पोंके हार आदिसे सज-धजकर ढोलियों, रथों और सोनेकी बनी हुई पालकियोंमें चढ़कर अपने पतिदेव भगवान् श्रीकृष्णके पीछे-पीछे चलीं । पैदल सिपाही हाथोंमें तल-तलवार लेकर उनकी रक्षा करते हुए चले रहे थे ॥ १५ ॥ इसी प्रकार अनुचरोंकी बिरायें और चारङ्गनाएँ महीमेंति शृङ्गार करके लस आदिकी शोषणियों, भोंसि-भोंसिके तंजुओं, कनारों, कम्मलों और ओढ़ने-विछाने आदिकी सामग्रियोंको बैलों, मँसों, गधों और खच्चरोंपर लदकर तथा स्वयं पालकी, छँट, छक्कों और हाथियोंपर सवार होकर चलीं ॥ १६ ॥ जैसे मगरमच्छों और लहरोंकी उछल-कूदसे क्षुब्ध समुद्रकी शोभा होती है, ठीक वैसे ही अत्यन्त कोलाहलसे परिपूर्ण, फहरती हुई बड़ी-बड़ी पलाकियों, छत्रों, चैवरों, श्रेष्ठ अस्त्र-शस्त्रों, वस्त्राभूषणों, मुकुटों, कवचों और दिनके समय उनपर पड़ती हुई सूर्यकी किरणोंसे भगवान् श्रीकृष्णकी सेवा अत्यन्त शोभायमान हुई ॥ १७ ॥ देवर्षि नारदजी भगवान् श्रीकृष्णसे सम्मानित होकर और उनके निष्पको सुनकर बहुत प्रसन्न हुए । भगवान्के दर्शनसे उनका हृदय और समस्त इन्द्रियों परमानन्दमें मग्न हो गयीं । विदा होनेके समय भगवान् श्रीकृष्णने उनका नाना प्रकारकी सामग्रियोंसे पूजन किया । अब देवर्षि नारदने उन्हें मन-ही-मन प्रणाम किया और उनकी दिव्य सूरतको इदममें चरण करके आकाशमार्गसे प्रस्थान किया ॥ १८ ॥ इसके बाद भगवान् श्रीकृष्णने जरासन्धके बन्दी नरपतियोंके दूतको अपनी मधुर वाणीसे आश्वासन देते हुए कहा—‘दूत ! तुम अपने राजाओंसे जाकर कहना—‘छो मत । तुमलोगोंका कल्याण हो । मैं जरासन्धको मरवा डारूँगा’ ॥ १९ ॥ भगवान्की ऐसी आज्ञा पाकर वह दूत गिरिव्रज चला गया और नरपतियोंको भगवान् श्रीकृष्णका सन्देश अ्यों-का-त्यों सुना दिया । वे राजा भी कारागारसे छूटनेके लिये शीघ्र-से-शीघ्र भगवान्के श्रुय दर्शनकी बात जोहने लगे ॥ २० ॥

परीक्षित ! अब भगवान् श्रीकृष्ण आनर्त, सौधर,

मरु, कुरुक्षेत्र और उनके बीचमें पड़नेवाले पर्वत, नदी, नगर, गाँव, अहीरोंकी बस्तियाँ तथा खानोंको पार करते हुए आगे बढ़ने लगे ॥ २१ ॥ भगवान् मुकुन्द मार्गमें दशद्वती एवं सरस्वती नदी पार करके पाञ्चाळ और मत्स्य देशोंमें होते हुए इन्द्रप्रस्थ जा पहुँचे ॥ २२ ॥ परीक्षित ! भगवान् श्रीकृष्णका दर्शन अत्यन्त दुर्लभ है। जब अजातशत्रु महाराज युधिष्ठिरको यह समाचार मिला कि भगवान् श्रीकृष्ण पचार गये हैं, तब उनका रोम-रोम आनन्दसे खिल उठा। वे अपने आचार्यों और सज्जन-सम्बन्धियोंके साथ भगवान्की आशानी करनेके लिये नगरसे बाहर आये ॥ २३ ॥ मङ्गल-गीत गाये जाने लगे, बाजे बजने लगे, बहुत-से ब्राह्मण मिथकर कँचे खरसे वेदमन्त्रोंका उच्चारण करने लगे। इस प्रकार वे बड़े आदरसे इधरिधर भगवान्का स्वागत करनेके लिये चले, जैसे इन्द्रियों मुख्य प्राणसे मिलने जा रही हों ॥ २४ ॥ भगवान् श्रीकृष्णको देखकर राजा युधिष्ठिरका हृदय स्नेहातिरेकसे गद्गद हो गया। उन्हें बहुत दिनोंपर अपने प्रियतम भगवान् श्रीकृष्णको देखनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ था। अतः वे उन्हें बार-बार अपने हृदयसे लगाने लगे ॥ २५ ॥ भगवान् श्रीकृष्णका श्रीविग्रह भगवती छलीजीका पवित्र और एकमात्र निवासस्थान है। राजा युधिष्ठिर अपनी दोनों मुजाबोंसे उसका आलिङ्गन करके समस्त पाप-तापोंसे छुटकारा पा गये। वे सर्कितोभावेन परमानन्दके समुद्रमें मग्न हो गये। नेत्रोंमें आँसू छलक आये, अङ्ग-अङ्ग पुष्कित हो गया, उन्हें इस विश्व-प्रपञ्चके अथवा तनिक भी स्मरण न रहा ॥ २६ ॥ तदनन्तर भीमसेनने सुसंस्कारकर अपने ममेरे भाई श्रीकृष्णका आलिङ्गन किया। इससे उन्हें बड़ा आनन्द मिला। उस समय उनके हृदयमें इतना प्रेम उमड़ा कि उन्हें बाह्य विस्मृति-सी हो गयी। नकुल, सहदेव और अर्जुनने भी अपने परम प्रियतम और हितैषी भगवान् श्रीकृष्णका बड़े आनन्दसे आलिङ्गन प्राप्त किया। उस समय उनके नेत्रोंमें आँसूओंकी बाढ़-सी आ गयी थी ॥ २७ ॥ अर्जुनने पुनः भगवान् श्रीकृष्णका आलिङ्गन किया, नकुल और सहदेवने अभिवादन किया और स्वयं भगवान् श्रीकृष्णने

ब्राह्मणों और कुरुवंशी वृद्धोंको यथायोग्य नमस्कार किया ॥ २८ ॥ कुरु, सृष्ट्य और केकय देशके नर-पतियोंने भगवान् श्रीकृष्णका सम्मान किया और भगवान् श्रीकृष्णने भी उनका यथोचित उत्कार किया। सुत, मागध, वंदीजन और ब्राह्मण भगवान्की स्तुति करने लगे तथा गन्धर्व, नट, निदूषक आदि मृदङ्ग, शङ्ख, नगारे, वीणा, ढोल और नरसिंगे बजा-बजाकर कमलनयन भगवान् श्रीकृष्णको प्रसन्न करनेके लिये नाचने-गाते लगे ॥ २९-३० ॥ इस प्रकार परमयशस्वी भगवान् श्रीकृष्णने अपने सुहृद्-सज्जनोंके साथ सब प्रकारसे सुसज्जित इन्द्रप्रस्थ नगरमें प्रवेश किया। उस समय लोग आपसमें भगवान् श्रीकृष्णकी प्रशंसा करते चले रहे थे ॥ ३१ ॥

इन्द्रप्रस्थ नगरकी सबको और गलियों मतवाले हाथियोंके मदसे तथा सुगन्धित जलसे सींच दी गयी थी। जगह-जगह रंग-किरंगी झण्डियाँ लगा दी गयी थीं। सुनहले तोरण बाँधे हुए थे और सोनेके जल भरे कलश स्थान-स्थानपर खोभा पा रहे थे। नगरके नर-नारी नहा-धोकर तथा नये वस्त्र, आभूषण, पुष्पोंके हार, इत्र-मुल्लेख आदिसे सज-भजकर घूम रहे थे ॥ ३२ ॥ घर-घरोंमें दौड़-दौड़कर दीपक जलाये गये थे, जिनसे दीपावलीकी-सी छटा हो रही थी। प्रत्येक घरके झरोखोंसे धूपका धुआँ निकलता हुआ बढ़त ही भला मादम होता था। सभी घरोंके ऊपर पताकरणें फहरा रही थीं तथा सोनेके कलश और चाँदीके शिखर अगमगा रहे थे। भगवान् श्रीकृष्ण इस प्रकारके महलोंसे परिपूर्ण पाण्डवोंकी राजधानी इन्द्रप्रस्थ नगरकी देखते हुए आगे बढ़ रहे थे ॥ ३३ ॥ जब युवतियोंने सुना कि मानव-नेत्रोंके पानपात्र अर्थात् अत्यन्त दर्शनीय भगवान् श्रीकृष्ण राजपथपर आ रहे हैं, तब उनके दर्शनकी उत्सुकताके आगेसे उनकी चोटियों और साड़ियोंकी गँठें दीड़ी पड़ गयीं ॥ उन्होंने घरका काम-काज तो छोड़ ही दिया, सेजपर सोये हुए अपने पतियोंको भी छोड़ दिया और भगवान् श्रीकृष्णका दर्शन करनेके लिये राजपथपर दौड़ आयीं ॥ ३४ ॥ सहदेव हाथी, घोड़े, रथ और पैदल सेनाकी गीढ़ लगा रही थी। उन स्त्रियोंने अत्यंतियोंपर चढ़कर रानियोंके सहित भगवान् श्रीकृष्णका दर्शन

किया, उनके ऊपर पुष्पोंकी वर्षा की और मन-ही-मन आच्छिन्न किया तथा प्रेमभीरी मुसकान एवं चितवनसे उनका सुस्वागत किया ॥ ३५ ॥ नगरकी छिछोँ राजपथ-पर चन्द्रमाके साथ विराजमान ताराओंके समान श्रीकृष्णकी पत्नियोंको देखकर आपसमें कहने लगीं—‘सखी ! इन बड़भांगिनी रानियोंने न जाने ऐसा कौन-सा पुण्य किया है, जिसके कारण पुरुषसिरोमणि-भगवान् श्रीकृष्ण अपने उन्मुक्त हास्य और क्लेशपूर्ण कट्टाक्षसे उनकी ओर देखकर उनके नेत्रोंको परम आनन्द प्रदान करते हैं ॥ ३६ ॥ इसी प्रकार भगवान् श्रीकृष्ण राज-पथसे थक रहे थे । स्थान-स्थानपर बहुत-से निचाप धनी-मानी और शिरपजवीनी नागरिकोंने अनेकों भाङ्गलिक बस्तुएँ छ-आकर उनकी पूजा-अर्चा और स्वागत-सत्कार किया ॥ ३७ ॥

अन्तःपुरकी छिछोँ भगवान् श्रीकृष्णको देखकर प्रेम और आनन्दसे भर गयी । उन्होंने अपने प्रेमविह्वल और आनन्दसे खिले नेत्रोंके द्वारा भगवान्का स्वागत किया और श्रीकृष्ण उनका स्वागत-सत्कार स्वीकार करते हुए राजमहलमें पधारें ॥ ३८ ॥ जब कुन्तीने अपने प्रियपुत्र-पति भतीजे श्रीकृष्णको देखा, तब उनका हृदय प्रेमसे भर आया । वे पलंगसे उठकर अपनी पुत्रवधू द्रौपदीके साथ आने लगीं और भगवान् श्रीकृष्णको हृदयसे लगा लिया ॥ ३९ ॥ देवदेवेश्वर भगवान् श्रीकृष्णको राज-महलके अंदर लाकर राजा युधिष्ठिर आदरभाव और

आनन्दके उदकेसे आलम्बितकृत हो गये; उन्हें इस बातकी भी सुविधा न रही कि किस क्रमसे भगवान्की पूजा करनी चाहिये ॥ ४० ॥ भगवान् श्रीकृष्णने अपनी कृपा कुन्ती और गुरुजन्योंकी पत्नियोंका अम्बिवादन किया । उनकी बहिन सुभद्रा और द्रौपदीने भगवान्को नमस्कार किया ॥ ४१ ॥ अपनी सास कुन्तीकी प्रेरणासे द्रौपदीने वस्त्र, आभूषण, माख आदिके द्वारा रुक्मिणी, सत्यभामा, मद्रा, जाम्बवती, काञ्चिन्दी, मित्रविन्दा, लक्ष्मणा और परम साध्वी सत्या—भगवान् श्रीकृष्णकी इन पत्नानियोंका तथा बहों आयी हुई श्रीकृष्णकी अन्धान्य रानियोंका भी यथायोग्य सत्कार किया ॥ ४२-४३ ॥ धर्मराज युधिष्ठिरने भगवान् श्रीकृष्णको उनकी सेवा, सेवक, मन्त्री और पत्नियोंके साथ ऐसे स्थानमें ठहराया जहाँ उन्हें निश्चय नयी-नयी सुखकी सामग्रियाँ प्राप्त हों ॥ ४४ ॥ अर्जुनके साथ रहकर भगवान् श्रीकृष्णने खाण्डव वनका दाह करवाकर अग्निमें तप्त किया था और मयाघुरने उससे बचाया था । परीक्षित ! उस मयाघुरने ही धर्मराज युधिष्ठिरके लिये भगवान्की आज्ञासे एक दिव्य समा तैयार कर दी ॥ ४५ ॥ भगवान् श्रीकृष्ण राजा युधिष्ठिरको आनन्दित करनेके लिये कई महीनोंतक हृष्टप्रसन्न ही रहे । वे समय-समयपर अर्जुनके साथ रथपर सवार होकर विहार करनेके लिये इन्तर-उत्तर चले जाया करते थे । उस समय बड़े-बड़े वीर सैनिक भी उनकी सेवाके लिये साथ-साथ जाते ॥ ४६ ॥

बहत्तरवाँ अध्याय

पाण्डवोंके राजसूययज्ञका आयोजन और अरासम्बका उद्धार

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित ! एक दिन महाराज युधिष्ठिर बहुत-से मुनियों, ज्ञातियों, क्षत्रियों, वैश्यों, भीमसेन आदि माइयों, आचार्यों, कुलके बड़े-बूढ़ों, जाति-बन्धुओं, सम्मानिधियों एवं कुटुम्बिकोंके साथ राजसभामें बैठे हुए थे । उन्होंने सबके सामने ही भगवान् श्रीकृष्णको सम्बोधित करके यह बात कही ॥ १-२ ॥

धर्मराज युधिष्ठिरने कहा—गोविन्द ! मैं सर्वश्रेष्ठ राजसूय यज्ञके द्वारा आपका और आपके परम पावन निरुत्तिसहस्र देवताओंका यजन करना चाहता हूँ । प्रभो ! आप कृपा करके मेरा यह सङ्कल्प पूरा कीजिये ॥ ३ ॥ कमलनाभ ! आपके चरणकमलोंकी पादुकाएँ समस्त अमङ्गलोंको नष्ट करनेवाली हैं । जो लोग निरन्तर उनकी सेवा करते हैं, ध्यान और स्तुति करते

हैं, वास्तवमें वे ही पवित्रात्मा हैं । वे जन्म-मृत्युके चक्रसे छुटकारा पा जाते हैं । और यदि वे सांसारिक विषयोंकी अभिलाषा करें, तो उन्हें उनकी भी प्राप्ति हो जाती है । परन्तु जो आपके चरणकमलोंकी शरण ग्रहण नहीं करते, उन्हें मुक्ति तो मिलती ही नहीं, सासारिक भोग भी नहीं मिलते ॥ ४ ॥ देवताओंके भी आराध्यदेव । मैं चाहता हूँ कि संसारी लोग आपके चरणकमलोंकी सेवाका प्रभाव देखें । प्रभो ! कुलवंशी और सुहृदवंशी नरपत्नियोंमें जो लोग आपका भजन करते हैं, और जो नहीं करते, उनका अन्तर आप जनताको दिखल दीजिये ॥ ५ ॥ प्रभो ! आप सबके आत्मा, समदर्श और स्वयं आत्मानन्दके साक्षात्कार हैं, स्वयं ब्रह्म हैं । आपमें 'यह मैं हूँ' और 'यह दूसरा, यह अपना है और यह पराया'—इस प्रकारका भेदभाव नहीं है । फिर भी जो आपकी सेवा करते हैं उन्हें, उनकी भावनाके अनुसार फल मिलता ही है—ठीक वैसे ही, जैसे कल्पवृक्षकी सेवा करनेवालेको । उस फलमें जो न्यूनतापिकता होती है, वह तो न्यूनतापिक सेवाके अनुरूप ही होती है । इससे आपमें विषमता या निर्दयता आदि दोष नहीं आते ॥ ६ ॥

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—राष्ट्र-विजयी धर्मराज । आपका निश्चय बहुत ही उत्तम है । राजसूय यज्ञ करनेसे समस्त लोकमें आपकी मङ्गलमयी कर्तितका विस्तार होगा ॥ ७ ॥ राजन् ! आपका यह महायज्ञ ऋषियों, पितरों, देवताओं, सगे-सम्बन्धियों, हमें—और कहाँ तक कहें, समस्त प्राणियोंको असीद्ध है ॥ ८ ॥ महाराज ! पृथ्वीके समस्त नरपत्नियोंको जीतकर, सारी पृथ्वीको अपने वशमें करके और यज्ञोचित सम्पूर्ण सामग्री एकत्रित करके फिर इस महायज्ञका अनुष्ठान कीजिये ॥ ९ ॥ महाराज ! आपके चारों भाई वायु, इन्द्र आदि लोक-पालोंके अंशसे पैदा हुए हैं । वे सबके-सब बड़े वीर हैं । आप तो परम मनस्वी और संयमी हैं ही । आपलोगोंने अपने सद्गुणोंसे मुझे अपने वशमें कर लिया है । जिन लोगोंने अपनी इन्द्रियों और मनको वशमें नहीं किया है, वे मुझे अपने वशमें नहीं कर सकते ॥ १० ॥ संसारमें कोई बड़े-से बड़ा देवता भी तेज, यश, लक्ष्मी, सौन्दर्य

और ऐश्वर्य आदिके द्वारा मेरे भक्तका तिरस्कार नहीं कर सकता । फिर कोई राजा उसका तिरस्कार कर दे, इसकी तो सम्भावना ही क्या है ? ॥ ११ ॥

श्रीकृष्णदेवजी कहते हैं—परीक्षित । भगवान् की बात सुनकर महाराज युधिष्ठिरका हृदय आनन्दसे भर गया । उनका मुखकमल प्रफुल्लित हो गया । अब उन्होंने अपने भाइयोंको दिग्विजय करनेका आदेश दिया । भगवान् श्रीकृष्णने पाण्डवोंमें अपनी शक्तिका सञ्चार करके उनको अत्यन्त प्रभावशाली बना दिया था ॥ १२ ॥ धर्मराज युधिष्ठिरने सुहृदवंशी वीरोंके साथ सहदेवको दक्षिण दिशामें दिग्विजय करनेके लिये भेजा । नकुलको मत्स्य-देशीय वीरोंके साथ पश्चिममें, अर्जुनको केकयदेशीय वीरोंके साथ उत्तरमें और भीमसेनको मद्रदेशीय वीरोंके साथ पूर्व दिशामें दिग्विजय करनेका आदेश दिया ॥ १३ ॥ परीक्षित । उन भीमसेन आदि वीरोंने अपने बळ-वीर्यसे सब ओरके नरपत्नियोंको जीत लिया और यह करनेके लिये उक्त महाराज युधिष्ठिरको बहुत-सा धन खर्च दिया ॥ १४ ॥ जब महाराज युधिष्ठिरने यह सुना कि अश्वत्थ जरासन्धपर विजय नहीं प्राप्त की जा सकी, तब वे चिन्तामें पड़ गये । उस समय भगवान् श्रीकृष्णने उन्हें वही उपाय कह सुनाया, जो उद्धवजीने बताया था ॥ १५ ॥ परीक्षित । इसके बाद भीमसेन, अर्जुन और भगवान् श्रीकृष्ण—ये तीनों ही ब्राह्मणका वेष धारण करके गिरिजन गये । वही जरासन्धकी राजधानी थी ॥ १६ ॥ राजा जरासन्ध नाश्योंका भक्त और गृहस्थोचित धर्मोंका पाठन करनेवाला था । उपर्युक्त तीनों क्षत्रिय ब्राह्मणका वेष धारण करके अतिथि-अभ्यागतोंके सत्कारके समय जरासन्धके पास गये और उससे इस प्रकार याचना की— ॥ १७ ॥ 'श्रावन् ! आपका कल्याण हो । हम तीनों आपके अतिथि हैं और बहुत दूरसे आ रहे हैं । जन्म ही हम यहाँ किसी विशेष प्रयोजनसे ही आये हैं । इसलिये हम आपसे जो कुछ चाहते हैं, वह आप हमें अवश्य दीजिये ॥ १८ ॥ तितिष्ठु पुरुष क्या नहीं सह सकते । दुष्ट पुरुष बुरा-से-बुरा क्या नहीं कर सकते । उदार पुरुष क्या नहीं दे सकते और समदर्शक लिये पराया कौन है ? ॥ १९ ॥ जो पुरुष स्वयं समर्थ होकर भी इस नाशवान् शरीरसे ऐसे अविनाशी यशका

संग्रह नहीं करता, जिसका बड़े-बड़े सत्पुरुष भी गान करें; सच पृथिवी तो उसकी जितनी निन्दा की जाय, थोड़ी है। उसका जीवन शोक करनेयोग्य है ॥ २० ॥ राजन् ! आप तो जानते ही होंगे—राजा हरिश्चन्द्र, रन्तिदेव, केवल अपने दाने बीन-बुनकर निर्वाह करने-वाले महात्मा मुद्रल, शिबि, बलि, व्यास और कपोत आदि बहुत-से व्यक्ति जतिथिको अपना सर्वस देकर इस नाशवान् शरीरके द्वारा अविनाशी पदको प्राप्त हो चुके हैं। इसलिये आप भी हमलोगोंको निराश मत कीजिये ॥ २१ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित् ! जरासन्धने उन लोगोंकी आवाज, सूरत-शब्द और कलाह्योंपर पड़े हुए धनुषकी प्रत्यक्षाकी रणशब्दके चिह्नोंको देखकर पहचान लिया कि ये तो ब्राह्मण नहीं, क्षत्रिय हैं। अब वह सोचने लगा कि मैंने कहीं-न-कहीं इन्हें देखा भी अवश्य है ॥ २२ ॥ फिर उसने मन-ही-मन यह विचार किया कि भूये क्षत्रिय होनेपर भी मेरे मनसे ब्राह्मणका वेध बनाकर आये हैं। जब ये मिथा मोंगनेपर ही उताव्र हो गये हैं, तब चाहे जो कुछ मोंग लें, मैं इन्हे दूँगा। याचना करनेपर अपना अत्यन्त प्यारा और दुस्त्यज शरीर देनेमें भी मुझे हिचकिचाहट न होगी ॥ २३ ॥ विष्णुभगवान्ने ब्राह्मणका वेध धारण करके बलिका धन, ऐश्वर्य—सब कुछ छीन लिया; फिर भी बलिकी पवित्र कीर्ति सब ओर फैली हुई है और आज भी लोग बड़े आदरसे उसका गान करते हैं ॥ २४ ॥ इसमें सन्देह नहीं कि विष्णुभगवान्ने देवराज इन्द्रकी राज्यत्त्वी बलिते छीनकर उन्हे लौटानेके लिये ही ब्राह्मणरूप धारण किया था। दैत्यराज बलिको यह वस्तु माष्टम हो गयी थी और शुक्राचार्यने उन्हें रोका भी; परन्तु उन्होंने पृथ्वीका दान कर ही दिया ॥ २५ ॥ मेरा तो यह पक्का निश्चय है कि यह शरीर नाशवान् है। इस शरीरसे जो विपुल यश नहीं कमाता और जो क्षत्रिय ब्राह्मणके लिये ही जीवन नहीं धारण करता, उसका बीना व्यर्थ है ॥ २६ ॥ परीक्षित् ! सचमुच जरासन्धकी बुद्धि बड़ी उदार थी। उपर्युक्त विचार करके उसने ब्राह्मण-वेषधारी श्रीकृष्ण, अर्जुन और भीमसेनसे कहा—‘ब्राह्मणो ! आपलोग मन-

चाही वस्तु मोंग लें, आप चाहें तो मैं आपलोगोंको अपना सिर भी दे सकता हूँ’ ॥ २७ ॥

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—‘राजेन्द्र ! हमलोग अश्व-के इच्छुक ब्राह्मण नहीं हैं, क्षत्रिय हैं; हम आपके पास युद्धके लिये आये हैं। यदि आपकी इच्छा हो तो हमें द्वन्द्वयुद्धकी मिथा दीजिये ॥ २८ ॥ देखो, ये पाण्डुपुत्र भीमसेन हैं और यह इनका भाई अर्जुन है, और मैं इन दोनोंका भरोसा भाई तथा आपका पुराना शत्रु कृष्ण हूँ’ ॥ २९ ॥ जब भगवान् श्रीकृष्णने इस प्रकार अपना परिचय दिया, तब राजा जरासन्ध ठठाकर हँसने लगा। और चिढ़कर बोले—‘अरे मूर्खों ! यदि तुम्हें युद्धकी ही इच्छा है तो जे मैं तुम्हारी प्रार्थना स्वीकार करता हूँ ॥ ३० ॥ परन्तु कृष्ण ! तुम तो बड़े बरपोक हो। युद्धमें तुम खरा जाते हो। यहाँतक कि मेरे बरसे तुमने अपनी नगरी मथुरा भी छोड़ दी तथा समुद्रकी शरण ली है। इसलिये मैं तुम्हारे-साथ नहीं लड़ूँगा ॥ ३१ ॥ यह अर्जुन भी कोई मोथा नहीं है। एक तो अवस्थामें मुझसे छोटा, दूसरे कोई विशेष बलवान् भी नहीं है। इसलिये यह भी मेरे जोड़का वीर नहीं है। मैं इसके साथ भी नहीं लड़ूँगा। रहे भीमसेन, ये अवश्य ही मेरे समान बलवान् और मेरे जोड़के हैं’ ॥ ३२ ॥ जरासन्धने यह कहकर भीमसेनको एक बहुत बड़ी गदा दे दी और स्वयं दूसरी गदा लेकर नगरसे बाहर निकल आया ॥ ३३ ॥ अब दोनों रणोन्मत्त वीर अस्त्राक्षमें आकर एक-दूसरेसे भिड़ गये और अपनी कन्नके समान कठोर गदाओंसे एक-दूसरेपर चोट करने लगे ॥ ३४ ॥ वे दायें-बायें तरह-तरहके पैतरे बदलते हुए ऐसे शोभायमान हो रहे थे—मानो दो श्रेष्ठ मठ रंगमंचपर युद्धका अभिनय कर रहे हों ॥ ३५ ॥ परीक्षित् ! जब एककी गदा दूसरेकी गदासे टकराती, तब ऐसा माष्टम होता मानो युद्ध करनेवाले दो हाथियोंके दाँत आपसमें भिड़कर चटचट रहे हों, या बड़े जोरसे बिजली तड़क रही हो ॥ ३६ ॥ जब दो हाथी क्रोधसे भरकर लड़ने लगते हैं और आककी ढालियाँ तोड़-तोड़कर एक-दूसरेपर प्रहार करते हैं, उस समय एक-दूसरेकी चोटसे वे ढालियाँ चूर-चूर हो जाती हैं; वैसे ही जब जरासन्ध और भीमसेन

बड़े वेगसे गदा चला-चलाकर एक-दूसरेके कर्माँ, कर्मों, पैरों, हाथों, जोंघों और हस्तियोंपर चोट करने लगे, तब उनका गदाएँ उनके अङ्गोंसे टकरा-टकराकर चकनाचूर होने लगीं ॥ ३७ ॥ इस प्रकार जब गदाएँ चूर-चूर हो गयीं, तब दोनों वीर क्रोधमें भरकर अपने घुँसोंसे एक-दूसरेको कुचल ढालनेकी चेष्टा करने लगे । उनके घुँसे ऐसी चोट करते, मानो लोहेका घन गिर रहा हो । एक-दूसरेपर खुलकर चोट करते हुए दो हाथियोंकी तरह उनके घण्टों और घुँसोंका कठोर शब्द बिजलीकी कड़कबाहटके समान जान पड़ता था ॥ ३८ ॥ परीक्षित ! जरासन्ध और भीमसेन दोनोंकी गदा-युद्धमें कुशलता, बल और उत्साह समान थे । दोनोंकी शक्ति तनिक भी क्षीण नहीं हो रही थी । इस प्रकार लगातार प्रहार करते रहनेपर भी दोनोंमेंसे किसीकी जीतया हार न हुई । ३९ । दोनों वीर रातके समय मित्रके समान रहते और दिनमें छुटकर एक दूसरेपर प्रहार करते और छपते । महाराज ! इस प्रकार उनके छड़ते-छड़ते सत्ताईस दिन बीत गये । ४० ।

प्रिय परीक्षित ! अष्टादसवें दिन भीमसेनने अपने मेमेरे भाई श्रीकृष्णसे कहा—‘श्रीकृष्ण ! मैं युद्धमें जरासन्धको जीत नहीं सकता ॥ ४१ ॥ भगवान् श्रीकृष्ण जरासन्धके जन्म और मृत्युका रहस्य जानते थे और यह भी जानते थे कि जरा राक्षसीने जरासन्धके शरीरके दो टुकड़ोंको जोड़कर उसे जीवन-दान दिया है । इसलिये उन्होंने भीमसेनके शरीरमें अपनी शक्तिका सञ्चार

किया और जरासन्धके वक्त्र उपाय सोचा ॥ ४२ ॥ परीक्षित ! भगवान्का ज्ञान अज्ञात है । अब उन्होंने उसकी मृत्युका उपाय जानकर एक वृक्षकी ढालीको बीचोबीचसे चीर दिया और इशारेसे भीमसेनको दिखाया ॥ ४३ ॥ वीरशिरोमणि एवं परम शक्तिशाली भीमसेनने भगवान् श्रीकृष्णका अभिप्राय समझ लिया और जरासन्धके पैर पकड़कर उसे धरतीपर देगारा ॥ ४४ ॥ फिर उसके एक पैरको अपने पैरके नीचे दबाया और दूसरेको अपने दोनों हाथोंसे पकड़ लिया । इसके बाद भीमसेनने उसे गुदाकी ओरसे इस प्रकार चीर काटा, जैसे गजराज वृक्षकी ढाली चीर डाले ॥ ४५ ॥ लोगोंने देखा कि जरासन्धके शरीरके दो टुकड़े हो गये हैं, और इस प्रकार उनके एक-एक पैर, जोंघ, अण्डकोश, कम्मर, पीठ, स्तन, कंधा, भुजा, नेत्र, मौँह और कान अलग-अलग हो गये हैं ॥ ४६ ॥ महापराज जरासन्धकी मृत्यु हो जानेपर वहाँकी प्रजा बचे जोरसे ‘हाय-हाय !’ पुकारने लगी । भगवान् श्रीकृष्ण और अर्जुनने भीमसेनका आच्छिन्न करके उनका सत्कार किया ॥ ४७ ॥ सर्वशक्तिमान् भगवान् श्रीकृष्णके स्वरूप और विचारोंको कोई समझ नहीं सकता । अन्तर्धर्म वे ही सभ्य प्राणियोंके जीवनदाता हैं । उन्होंने जरासन्धके राजसिंहासनपर उसके पुत्र सहदेवका अभिषेक कर दिया और जरासन्धने जिन राजाओंको कैदी बना रक्खा था, उन्हें कारागारसे मुक्त कर दिया ॥ ४८ ॥

तिहत्तरवाँ अध्याय

जरासन्धके जेलसे छूटे हुए राजाओंकी विद्वार् और भगवान्का हृत्प्रस्थ लौट जाना

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित ! जरासन्धने अनायास ही बीस हजार आठ सौ राजाओंको जीतकर पहाड़ोंकी घाटीमें एक किलेके भीतर कैद कर रक्खा था । भगवान् श्रीकृष्णके छोड़ देनेपर जब वे वहाँसे निकले, तब उनके शरीर और वस्त्र मैले हो रहे थे ॥ १ ॥ वे भूखसे दुर्बल हो रहे थे और उनके मुँह सूख गये थे । जेलमें बंद रहनेके कारण उनके शरीरका एक-एक अङ्ग ढीला पड़ गया था । वहाँसे निकलते ही उन नरपतियों-

ने देखा कि सामने भगवान् श्रीकृष्ण खड़े हैं । वर्षा-कालीन मेघके समान उनका सौंझ-सलौना शरीर है और उसपर पीले रंगकर रेखगी वस्त्र पहना रहा है ॥ २ ॥ चार भुजाएँ हैं—जिनमें गदा, शङ्ख, चक्र और कमल सुशोभित हैं । वस्त्रःशुक्ल सुनहली रेखा—श्रीवत्सका चिह्न है और कमलके भीतरी भागके समान कोमल, रतनारे नेत्र हैं । सुन्दर बदन प्रसन्नताका सदन है । कानोंमें मकराकृति कुण्डल शिबमिल रहे हैं । सुन्दर

मुकुट, मोतियोंका हार, कड़े, करधनी और बाजूबंद अपने-अपने स्थानपर शोभा पा रहे हैं ॥ ३-४ ॥ गलेमें कौस्तुभमणि जगमगा रही है और वनमाला छटका रही है । भगवान् श्रीकृष्णको देखकर उन राजाओंकी ऐसी स्थिति हो गयी, मानो वे नेत्रोंसे उन्हें पी रहे हैं । जीभसे चाट रहे हैं, नासिकासे सूँघ रहे हैं और बाहुओंसे आलिङ्गन कर रहे हैं । उनके सारे पाप तो भगवान् के दर्शनसे ही धुल चुके थे । उन्होंने भगवान् श्रीकृष्णके चरणोंपर अपना स्त्रि रखकर प्रणाम किया ॥ ५-६ ॥ भगवान् श्रीकृष्णके दर्शनसे उन राजाओंको इतना अधिक आनन्द हुआ कि कौदमें रहनेका क्लेश बिल्कुल जाता रहा । वे हाथ जोड़कर शिवभ्रम चाणीसे भगवान् श्रीकृष्णकी स्तुति करने लगे ॥ ७ ॥

राजाओंने कहा—अरणागतोंके सारे दुःख और मय हर लेनेवाले देवदेवेश्वर ! सच्चिदानन्दस्वरूप अविनाशी श्रीकृष्ण ! हम आपको नमस्कार करते हैं । आपने जरासन्धके कारागारसे तो हमें छुड़ा ही दिया, अब इस जन्म-मृत्युरूप घोर संसार-चक्रसे भी छुड़ा दीजिये; क्योंकि हम संसारमें दुःखका कटु अनुभव करके उससे ऊब गये हैं और आपकी शरणमें आये हैं । प्रभो ! अब आप हमारी रक्षा कीजिये ॥ ८ ॥ मधुमूदन ! हमारे स्वामी ! हम मगधराज जरासन्धका कोई दोष नहीं देखते । भगवन् ! यह तो आपका बहुत बड़ा अनुग्रह है कि हम राजा कहलानेवाले लोभ राज्यक्षीसे श्रुत कर दिये गये ॥ ९ ॥ क्योंकि जो राजा अपने राज्य-ऐश्वर्यके मदसे उन्मत्त हो जाता है, उसको सच्चे सुखकी—कल्याणकी प्राप्ति कभी नहीं हो सकती । वह आपकी मायासे मोहित होकर अनित्य सम्पत्तियोंको ही अचल मान बैठता है ॥ १० ॥ जैसे मूर्खलोग मृगतृष्णाके जलको ही अलक्ष्य मान लेते हैं, वैसे ही इन्द्रियलोभ और अज्ञानी पुरुष भी इस परिवर्तनशील मायाका सत्य वस्तु मान लेते हैं ॥ ११ ॥ भगवन् ! पहले हमलोग धन-सम्पत्तिके नशेमें चूर होकर अब हो रहे थे । इस पुण्यको जीत लेनेके लिये एक दूसरेकी होड़ करते थे और अपनी ही प्रबाका नाश करते रहते थे । सचमुच हमारा जीवन अथन्य मूर्खतासे भरा हुआ

था, और हमलोग इतने अधिक मनवाले हो रहे थे कि आप मृत्युरूपसे हमारे सामने खड़े हैं, इस बातकी भी हम तनिक परवा नहीं करते थे ॥ १२ ॥ सच्चिदानन्द-स्वरूप श्रीकृष्ण ! कालकी गति बढ़ी गहन है । वह इतना चलावन् है कि किसीके टाले टलता नहीं । क्यों न हो, वह आपका शरीर ही तो है । अब उसने हम-लोगोंको श्रीहान, निर्धन कर दिया है । आपकी कहेतुक अनुकम्पासे हमारा धर्म चूर-चूर हो गया । अब हम आपके चरणकमलोंका स्मरण करते हैं ॥ १३ ॥ विभो ! यह शरीर दिन-दिन क्षीण होता जा रहा है । रोगोंकी तो यह जन्मभूमि ही है । अब हम इस शरीरसे भोगे जानेवाले राज्यकी अभिलाषा नहीं हैं । क्योंकि हम समझ गये हैं कि वह मृगतृष्णाके जलके समान सर्वथा मिथ्या है । यही नहीं, हमें कर्मके फल स्वर्गादि लोकोंकी भी, जो मरनेके बाद मिलते हैं, इच्छा नहीं है । क्योंकि हम जानते हैं कि वे विस्तार हैं; केवल सुननेमें ही आकर्षक जान पड़ते हैं ॥ १४ ॥ अब हमें कृपा करके आप वह उपाय बतलाइये, जिससे आपके चरणकमलोंकी वित्पृति कभी न हो, सर्वदा स्मृति बनी रहे । चाहे हमें संसारकी किसी भी योनिमें जन्म क्यों न लेना पड़े ॥ १५ ॥ प्रणाम करनेवालोंके क्लेशका नाश करनेवाले श्रीकृष्ण, वासुदेव, हरि, परमात्मा एवं गोविन्दके प्रति हमारा बार-बार नमस्कार है ॥ १६ ॥

श्रीनुकन्देवजी कहते हैं—परीक्षित । कारागारसे मुक्त राजाओंने जब इस प्रकार कृणावरुणाख्य भगवान् श्रीकृष्णकी स्तुति की, तब अरणागतरक्षक प्रभुने वही मधुर चाणीसे उनसे कहा ॥ १७ ॥

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—नरपतियो ! तुमलोगोंने जैसी इच्छा प्रकट की है, उसके अनुसार आपसे मुझमें तुमलोगोंकी निश्चय ही सुदृढ सक्ति होगी । यह जान लो कि मैं सबका आत्मा और सबका स्वामी हूँ ॥ १८ ॥ नरपतियो ! तुमलोगोंने जो निश्चय किया है, वह सचमुच तुम्हारे लिये बड़े सौभाग्य और आनन्दकी बात है । तुमलोगोंने मुझसे जो कुछ कहा है, वह बिल्कुल ठीक है । क्योंकि मैं देखता हूँ, धन-सम्पत्ति और ऐश्वर्यके मदसे चूर होकर बहुत से लोग उन्मत्त

और मतवाले हो जाते हैं ॥ १९ ॥ हैहय, नहुष, वेन, रावण, नरकासुर आदि अनेकों देवता, दैत्य और नरपति श्रीमदके कारण अपने स्थानसे, पदसे च्युत हो गये ॥ २० ॥ तुमलोग यह समझ लो कि शरीर और इसके सम्बन्धी पैदा होते हैं, इसलिये उनका नाश भी अवश्यम्भावी है । अतः उनमें आसक्ति मत करो । बड़ी सावधानीसे मन और इन्द्रियोंको वशमें रखकर यज्ञोंके द्वारा मेरा यजन करो और धर्मपूर्वक प्रजाकी रक्षा करो ॥ २१ ॥ तुमलोग अपनी वंश-परम्पराकी रक्षाके लिये, भोगके लिये नहीं, सन्तान उत्पन्न करो और प्रारम्भके अनुसार जन्म-मृत्यु, सुख-दुःख, अम-हानि—जो कुछ भी प्राप्त हों, उन्हें समानभावसे मेरा प्रसाद समझकर मेघन करो और अपना विषय सुप्तमें लगाकर जीवन बिताओ ॥ २२ ॥ वेह और वेहके सम्बन्धियोंसे किन्नी प्रकारकी आसक्ति न रखकर उदासीन रहो; अपने-आपमें, आत्मामें ही रमण करो और भजन तथा आश्रमके योग्य व्रतोंका पालन करते रहो । अपना मन मलीमौति सुप्तमें लगाकर अन्तर्गत् तुमलोग सुप्त ब्रह्मस्वरूपको ही प्राप्त हो जाओगे ॥ २३ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित । मुवनेश्वर भगवान् श्रीकृष्णने राजाओंको यह आदेश देकर उन्हें स्नान आदि धरानेके लिये बहुतसे क्षी-गुरुव नियुक्त कर दिये ॥ २४ ॥ परीक्षित । जरासन्धके पुत्र सहदेवने उनको राजोचित वस्त्र-आभूषण, माला-चन्दन आदि दिलवाकर उनका खूब सम्मान करवाया ॥ २५ ॥ जब वे स्नान करके वस्त्राभूषणसे सुसज्जित हो चुके, तब भगवान्ने उन्हें उत्तम-उत्तम पदार्थोंका भोजन करवाया और पान आदि विविध प्रकारके राजोचित भोग दिलवाये ॥ २६ ॥ भगवान् श्रीकृष्णने इस प्रकार उन बड़ी राजाओंको सम्मानित किया । अब वे समस्त क्लेशोंसे छुटकारा पाकर तथा कानोंमें झिलमिलाते हुए

सुन्दर-सुन्दर कुण्डल पहनकर ऐसे शोभायमान हुए, जैसे वर्षाप्रसूका वन्त हो जानेपर तारे ॥ २७ ॥ फिर भगवान् श्रीकृष्णने उन्हें सुवर्ण और मणियोंसे युपित एवं श्रेष्ठ घोड़ोंसे युक्त रथोंपर चढ़ाया, मधुर वाणीसे तृप्त किया और फिर उन्हें उनके देशोंको भेज दिया ॥ २८ ॥ इस प्रकार उदारशिरोमणि भगवान् श्रीकृष्णने उन राजाओंको महान् कष्टसे मुक्त किया । अब वे जगत्पति भगवान् श्रीकृष्णके रूप, गुण और लीलाओंका चिन्तन करते हुए अपनी-अपनी राजधानीको चले गये ॥ २९ ॥ वहाँ जाकर उन लोगोंने अपनी-अपनी प्रजासे परमपुरुष भगवान् श्रीकृष्णकी अद्भुत कृपा और लीला कह सुनायी और फिर बड़ी सावधानीसे भगवान्के आज्ञानुसार वे अपना जीवन व्यतीत करने लगे ॥ ३० ॥

परीक्षित । इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्ण भीमसेनके द्वारा जरासन्धका वध करवाकर भीमसेन और अर्जुनके साथ जरासन्धचन्दन सहदेवसे सम्मानित होकर इन्द्र-प्रस्थके लिये चले । उन विजयी वीरोंने इन्द्रप्रस्थके पास पहुँचकर अपने-अपने शङ्ख बजाये, जिससे उनके इष्टमित्रोंको सुख और शत्रुओंको बड़ा दुःख हुआ ॥ ३१-३२ ॥ इन्द्रप्रस्थनिवासियोंका मन उस शङ्ख-ध्वनिको सुनकर खिल उठा । उन्होंने समझ लिया कि जरासन्ध मर गया और अब राजा युधिष्ठिरका राजसूय यज्ञ करनेका संकल्प एक प्रकारसे पूरा हो गया ॥ ३३ ॥ भीमसेन, अर्जुन और भगवान् श्रीकृष्णने राजा युधिष्ठिरकी वन्दना की और वह सब कल्प कह सुनाया, जो उन्हें जरासन्धके वधके लिये करना पड़ा था ॥ ३४ ॥ धर्मराज युधिष्ठिर भगवान् श्रीकृष्णके इस परम अनुग्रहकी बात सुनकर प्रेमसे भर गये, उनके नेत्रोंसे आनन्दके आँसुओंकी बूँदें टपकने लगीं और वे उनसे कुछ भी कह न सके ॥ ३५ ॥

चौहत्तरवाँ अध्याय

भगवान्की अग्रपूजा और शिशुपालका उच्चार

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित । धर्मराज श्रीकृष्णकी अद्भुत महिमा सुनकर बहुत प्रसन्न हुए और युधिष्ठिर जरासन्धका वध और सर्वशक्तिमान् भगवान् उनसे बोले ॥ १ ॥

धर्मराज युधिष्ठिरने कहा—सच्चिदानन्दस्वरूप श्रीकृष्ण ! त्रिलोकके स्वामी ब्रह्मा, शङ्कर आदि और इन्द्रादि लोकपाल—सब आपकी आज्ञा पानेके लिये तरसते रहते हैं और यदि वह मिला जाती है तो बड़ी श्रद्धासे उसको शिरोधार्य करते हैं ॥ २ ॥ अनन्त ! हमलोग हैं तो अत्यन्त दीन, परन्तु मानते हैं अपनेको भूपति और नरपति । ऐसी स्थितिमें हैं तो हम दण्डके पात्र, परन्तु आप हमारी आज्ञा स्वीकार करते हैं और उसका पालन करते हैं । सर्वशक्तिमान् कमलनयन भगवान्के लिये यह मनुष्य जीलाका अभिनयमात्र है ॥ ३ ॥ जैसे उदय अथवा अस्तके कारण सूर्यके तेजमें घटती या बढ़ती नहीं होती, वैसे ही किसी भी प्रकारके कर्मोंसे न तो आपका उल्लास होता है और न तो हास ही । क्योंकि आप सजातीय, विजातीय और स्वगतभेदसे रहित स्वयं परब्रह्म परमात्मा हैं ॥ ४ ॥ किसीसे पराजित न होनेवाले माधव ! 'यह मैं हूँ और यह मेरा है तथा यह दू है और यह तेरा'—इस प्रकारकी विकारयुक्त भेदबुद्धि तो पशुओंकी होती है । जो आपके अनन्य भक्त हैं, उनके चित्तमें ऐसे पागलपनके विचार कभी नहीं आते । फिर आपमे तो होंगे ही कहाँसे ? (इसलिये आप जो कुछ कर रहे हैं, वह ठीका-ही-ठीका है) ॥ ५ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित ! इस प्रकार कहकर धर्मराज युधिष्ठिरने भगवान् श्रीकृष्णकी अनुमतिसे यज्ञके योग्य समय आनेपर यज्ञके कर्ममें निपुण वेदवादी ब्राह्मणोंको ऋत्विज, आचार्य आदिके रूपमें वरण किया ॥ ६ ॥ उनके नाम ये हैं—श्रीकृष्णद्वैपायन व्यासदेव, भरद्वाज, सुमन्तु, गौतम, असित, वसिष्ठ, श्वनन, कण्व, मैत्रेय, कश्यप, त्रित, विश्वामित्र, वामदेव, सुमति, जैमिनि, क्रतु, पैक, पराशर, गर्ग, वैशम्पायन, अथर्व, कश्यप, धौम्य, परशुराम, शुक्राचार्य, आसुरि, वीतिहोत्र, मधुच्छन्दा, वीरसेन और अकृतव्रण ॥ ७-९ ॥ इनके अतिरिक्त धर्मराजने द्रोणाचार्य, भीष्मपितामह, कृपाचार्य, धृतराष्ट्र और उनके दुर्योधन आदि पुत्रों और महामति विदुर आदिको भी बुलवाया ॥ १० ॥ राजन् ! राजसूय यज्ञका दर्शन करनेके लिये देशके सब राजा, उनके

मन्त्री तथा कर्मचारी, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र—सब-के-सब वहाँ आये ॥ ११ ॥

इसके बाद ऋत्विज ब्राह्मणोंने सोनेके हथोंसे यज्ञभूमिको सुतवाकर राजा युधिष्ठिरको शास्त्रानुसार यज्ञकी दीक्षा दी ॥ १२ ॥ प्राचीन कालमें जैसे वरुणदेवके यज्ञमें सब-के-सब यज्ञपात्र सोनेके बने हुए थे, वैसे ही युधिष्ठिरके यज्ञमें भी थे । पाण्डुनन्दन महाराज युधिष्ठिरके यज्ञमें निमन्त्रण पाकर ब्रह्मजी, शङ्करजी, इन्द्रादि लोकपाल, अपने गणोंके साथ सिद्ध और गन्धर्व, विद्याधर, नाग, मुनि, यक्ष, राक्षस, पक्षी, किन्नर, चारण, बड़े-बड़े राजा और रानियों—ये सभी उपस्थित हुए ॥ १३-१५ ॥ सबने बिना किसी प्रकारके कौतूहलके यह बात मान ली कि राजसूय यज्ञ करना युधिष्ठिरके योग्य ही है । क्योंकि भगवान् श्रीकृष्णके भक्तके लिये ऐसा करना कोई बहुत बड़ी बात नहीं है । उस समय देवताओंके समान तेजस्वी यानकोंने वर्मराज युधिष्ठिरसे विधिपूर्वक राजसूय यज्ञ कराया; ठीक वैसे ही, जैसे पूर्वकालमें देवताओंने वरुणसे करवाया था ॥ १६ ॥ सोमछतासे रस निकालनेके दिन महाराज युधिष्ठिरने अपने परम भाग्यवान् यानकों और यज्ञकर्मकी मूख-बूझता निरीक्षण करनेवाले सदसत्पत्तियोंका बड़ी सावधानीसे विधिपूर्वक पूजन किया ॥ १७ ॥

अब समासद् लोग इस विषयपर विचार करने लगे कि सदसत्त्वोंमें सबसे पहले किसकी पूजा—अप्रपञ्चा होनी चाहिये । जितनी मति, उतने मत । इसलिये सर्वसम्मतिसे कोई निर्णय न हो सका । ऐसी स्थितिमें सहदेवने कहा—॥ १८ ॥ 'यदुर्बंशशिरोमणि भक्तकसक भगवान् श्रीकृष्ण ही सदसत्त्वोंमें सर्वश्रेष्ठ और अप्रपञ्चके पात्र हैं; क्योंकि यही समस्त देवताओंके रूपमें हैं; और देश, काल, धन आदि जितनी भी वस्तुएँ हैं, उन सबके रूपमें भी ये ही हैं ॥ १९ ॥ यह सारा विश्व श्रीकृष्णका ही रूप है । समस्त यज्ञ भी श्रीकृष्ण-स्वरूप ही हैं । भगवान् श्रीकृष्ण ही अग्नि, आहुति और मन्त्रोंके रूपमें हैं । ज्ञानमार्ग और कर्ममार्ग—ये दोनों भी श्रीकृष्णकी प्राप्तिके ही हेतु हैं ॥ २० ॥

समासदो । मैं कह्योतक वर्णन करूँ, भगवान् श्रीकृष्ण वह एकरस अद्वितीय ब्रह्म हैं, जिसमें सञ्जातीय, विजातीय और स्वगत भेद नाम मात्रका भी नहीं है । यह सम्पूर्ण जगत् उनकी स्वरूप है । वे अपने-आपमें ही स्थित और जन्म, अस्तित्व, वृद्धि आदि छः भाव-विकारोंसे रहित हैं । वे अपने आत्मस्वरूप सङ्कल्पसे ही जगत्की सृष्टि, पाठन और संहार करते हैं ॥ २१ ॥ सारा जगत् श्रीकृष्णके ही अनुग्रहसे जनेको प्रभारके कर्मका अनुष्ठान करता हुआ धर्म, अर्थ, काम और मोक्षरूप पुरुषार्थोंका सम्पादन करता है ॥ २२ ॥ इसलिये सबसे महान् भगवान् श्रीकृष्णकी ही अग्रपूजा होनी चाहिये । इनकी पूजा करनेसे समस्त प्राणियोंकी तथा अपनी भी पूजा हो जाती है ॥ २३ ॥ जो अपने दान-धर्मको अनन्त भावसे सुख करना चाहता हो, उसे चाहिये कि समस्त प्राणियों और पदार्थोंके अन्तरात्मा, भेदभावरहित, परम शान्त और परिपूर्ण भगवान् श्रीकृष्णको ही दान करे ॥ २४ ॥ परीक्षित ! सहदेव भगवान्की महिमा और उनके प्रभावको जानते थे । इतना कहकर वे नुप हो गये । उस समय धर्मराज युधिष्ठिरकी पक्षसभामें जितने सम्पुर्ण उपस्थित थे, सबने एक स्वरसे 'बहुत ठीक, बहुत ठीक' कहकर सहदेवकी बातका समर्थन किया ॥ २५ ॥ धर्मराज युधिष्ठिरने ब्राह्मणोंकी यह आज्ञा सुनकर तथा समासदोंका अभिप्राय जानकर बड़े आनन्दसे प्रेमोद्रेकसे विह्वल होकर भगवान् श्रीकृष्णकी पूजा की ॥ २६ ॥ अपनी पत्नी, माँ, मन्त्री और कुटुम्बियोंके साथ धर्मराज युधिष्ठिरने बड़े प्रेम और आनन्दसे भगवान्को पॉव पखारे तथा उनके चरणकमलोंका लोकपावन जब अपने सिरपर धारण किया ॥ २७ ॥ उन्होंने भगवान्को पीले-पीले रेशमी वस्त्र और बहुमूल्य आभूषण समर्पित किये । उस समय उनके नेत्र प्रेम और आनन्दके औँसुओंसे इस प्रकार भर गये कि वे भगवान्को मलीमौलित देख भी नहीं सकते थे ॥ २८ ॥ यज्ञसभामें उपस्थित सभी लोग भगवान् श्रीकृष्णको इस प्रकार पूजित, सङ्कत देखकर हाथ जोड़े हुए जयों नमः । जय-जय ! इस प्रकारके नारे लगाकर उन्हें नमस्कार करने लगे । उस समय आकाशसे स्वर्ण ही

पुष्पोंकी वर्षा होने लगी ॥ २९ ॥

परीक्षित ! अपने आसनपर बैठा हुआ शिशुपाव यह सब देख-सुन रहा था । भगवान् श्रीकृष्णके गुण सुनकर उसे क्रोध हो आया और वह ठठकर खड़ा हो गया । वह भरी सभामें हाथ ठठकर बड़ी असहिष्णुता विन्तु निर्भयताके साथ भगवान्को सुना-सुनाकर अत्यन्त कठोर बातें कहने लगा— ॥ ३० ॥ 'समासदो ! श्रुतियोंका यह कहना सर्वथा सत्य है कि काळ ही ईश्वर है । अथ चेष्टा करनेपर भी वह अपना काम करा ही लेता है—इसका प्रत्यक्ष प्रमाण हमने देख लिया कि यहाँ बनों और मूल्योंकी बातसे बड़े-बड़े बयोद्वृद्ध और ज्ञानवृद्धोंकी बुद्धि भी चक्करा गयी है ॥ ३१ ॥ पर मैं मानता हूँ कि आपलोग अग्रपूजाके योग्य पात्रका निर्णय करनेमें सर्वथा समर्थ हैं । इसलिये सदसत्पत्नियों । आप-लोग बाळक सहदेवकी यह बात ठीक न मानें कि 'कृष्ण ही अग्रपूजाके योग्य है' ॥ ३२ ॥ यहाँ बड़े-बड़े तपस्वी विद्वान्, व्रतवारी, ज्ञानके द्वारा अपने समस्त पाप-पार्योंको शान्त करनेवाले, परम ज्ञानी, परमर्षि, ब्रह्मनिष्ठ आदि उपस्थित हैं—जिनकी पूजा बड़े-बड़े लोकपाव भी करते हैं ॥ ३३ ॥ यज्ञकी मूल-वृक्ष बतलानेवाले उन सदसत्पत्नियोंको छोड़कर यह कुछकलङ्क माला भजा, अग्रपूजाका अधिकारी कैसे हो सकता है ? क्या कौआ कभी यज्ञके पुरोडाशका अधिकारी हो सकता है ? ॥ ३४ ॥ न इसका कोई वर्ण है और न तो आश्रम । कुछ भी इसका जँचा नहीं है । सारे धर्मोंसे यह बाहर है । वेद और लोकमार्गदार्थोंका उल्लङ्घन करके मनमाना आचरण करता है । इसमें कोई गुण भी नहीं है । ऐसी स्थितिमें यह अग्रपूजाका पात्र कैसे हो सकता है ? ॥ ३५ ॥ आपलोग जानते हैं कि राजा ययातिने इसके वंशको शाप दे रक्खा है । इसलिये स्तपुरुषोंने इस वंशका ही बहिष्कार कर दिया है । ये सब सर्वदा व्यर्थ मधुपानमें आसक्त रहते हैं । फिर ये अग्रपूजाके योग्य कैसे हो सकते हैं ? ॥ ३६ ॥ इन सबने ब्रह्मर्षियोंके द्वारा सेवित मधुरा आदि देशोंका परित्याग कर दिया और ब्रह्म-वर्चसके विरोधी (वेदचर्चार्थरहित) समुद्रमें किला बनाकर रहने लगे । वहाँसे जब ये बाहर निकलते हैं, तो

डाकुओंकी तरह सारी प्रजाको सताते हैं' ॥ ३७ ॥ परीक्षित ! सच पूछो तो शिशुपालका सारा क्रुम नष्ट हो चुका था । इसीसे उसने और भी बहुत-सी कबी-कबी बातें भगवान् श्रीकृष्णको सुनायीं । परन्तु जैसे सिंह कभी सियारकी 'हुआँ-हुआँ' पर ध्यान नहीं देता, वैसे ही भगवान् श्रीकृष्ण चुप रहे, उन्होंने उसकी बातों-का कुछ भी उत्तर न दिया ॥ ३८ ॥ परन्तु समासर्दोंके लिये भगवान्की निन्दा सुनना असह्य था । उनमेंसे कई अपने-अपने क्लान बन्द करके क्रोधसे शिशुपालको गाली देते हुए बाहर चले गये ॥ ३९ ॥ परीक्षित ! जो भगवान्की या भगवत्परायण मत्तोंकी निन्दा सुनकर बर्हसि हट नहीं जाता, वह अपने शुभकर्मोंमें च्युत हो जाता है और उसकी अयोग्यता होती है ॥ ४० ॥

परीक्षित ! अब शिशुपालको मार डालनेके लिये पाण्डव, मत्स्य, केकय और सुहृदयवर्षा नरपति क्रोधित होकर हाथोंमें हथियार ले उठ खड़े हुए ॥ ४१ ॥ परन्तु शिशुपालको इससे कोई धक्काहट न हुई । उसने बिना किसी प्रकारका आगा-पीछा सोचे अपनी डाढ-तलवार उठा ली और वह भरी सभामें श्रीकृष्णके पक्षपाती राजाओंको ललकारने लगा ॥ ४२ ॥ उन लोगोंको लड़ते-झगड़ते देख भगवान् श्रीकृष्ण उठ खड़े हुए । उन्होंने अपने पक्षपाती राजाओंको शान्त किया और स्वयं क्रोध करके अपने ऊपर झपटते हुए शिशुपालका तिर छुरेके समान तीखी धारवाले चक्रसे काट लिया ॥ ४३ ॥ शिशुपालके मारे जानेपर वहाँ बड़ा कोलाहल मच गया । उसके अनुयायी नरपति अपने-अपने प्राण बचानेके लिये वहाँसे भाग खड़े हुए ॥ ४४ ॥ जैसे आकाशसे गिरा हुआ लकड़ भरनीमें समा जाता है, वैसे ही सब प्राणियोंके देखते-देखते शिशुपालके शरीरसे एक ज्योति निकलकर भगवान् श्रीकृष्णमें समा गयी ॥ ४५ ॥ परीक्षित ! शिशुपालके अन्त-करणमें लगातार तीन जन्मसे वैरभावकी अभिवृद्धि हो रही थी । और इस प्रकार, वैरभावसे ही

सही, ध्यान करते-करते वह तन्मय हो गया—पार्षद हो गया । सच है—मृत्युके बाद होनेवाली गतिमें भाव ही कारण है ॥ ४६ ॥ शिशुपालकी सदृश होनेके बाद चक्रवर्ती धर्मराज युधिष्ठिरने सदस्य और ऋत्विजोंको पुष्कल दक्षिणा दी तथा सम्बका सत्कार करके विधिपूर्वक यज्ञान्त-स्नान—अवमृग-स्नान किया ॥ ४७ ॥

परीक्षित ! इस प्रकार योगेश्वरेश्वर भगवान् श्रीकृष्णने धर्मराज युधिष्ठिरका राजसूय यज्ञ पूर्ण किया और अपने सगे-सम्बन्धी और सुहृदोंकी प्रार्थनासे कुछ महीनोंतक वहीं रहे ॥ ४८ ॥ इसके बाद राजा युधिष्ठिरभी इच्छा न होनेपर भी सर्वशक्तिमान् भगवान् श्रीकृष्णने उनसे अनुमति ले ली और अपनी रानियों तथा मन्त्रियोंके साथ इन्द्रप्रस्थमें द्वारकापुरीकी यात्रा की ॥ ४९ ॥ परीक्षित ! मैं यह उपाख्यान सुनूँ बहुत विस्तारसे (सातवें स्कन्धमें) सुना चुका हूँ कि वैकुण्ठवासी जय और विजयको सनकादि ऋषियोंके शापसे बार-बार जन्म लेना पड़ा था ॥ ५० ॥ महाराज युधिष्ठिर राजमूयका यज्ञान्त-स्नान करके ब्राह्मण और क्षत्रियोंकी सभामें देवराज इन्द्रके समान शोभायमान होने लगे ॥ ५१ ॥ राजा युधिष्ठिरने देवता, मनुष्य और आकाशचारियोंका यथायोग्य सत्कार किया तथा वे भगवान् श्रीकृष्ण एवं राजसूय यज्ञकी प्रशंसा करते हुए बड़े आनन्दसे अपने-अपने लोकको चले गये ॥ ५२ ॥ परीक्षित ! सब तो सुखी हुए, परन्तु दुर्योधनसे पाण्डवोंकी यह उज्ज्वल राज्यलक्ष्मीका उत्कर्ष सहन न हुआ; क्योंकि वह स्वभावसे ही पापी, कण्ड-प्रेमी और कुकुकुक्का नाश करनेके लिये एक महान् रोग था ॥ ५३ ॥

परीक्षित ! जो पुरुष भगवान् श्रीकृष्णकी इस लीजका—शिशुपालवध, जरासन्धवध, बंदी राजाओंकी मुक्ति और यज्ञातुष्टानका कीर्तन करेगा, वह समस्त पापोंसे छूट जायगा ॥ ५४ ॥

पचहत्तरवाँ अध्याय

राजसूय यज्ञकी पूर्ति और दुर्योधनका अपमान

राजा परीक्षितने पूछा—मगध ! अजातशत्रु जितने मनुष्य, नरपति, ऋषि, मुनि और देवता आदि धर्मराज युधिष्ठिरके राजसूय यज्ञमहोत्सवको देखकर,

जितने मनुष्य, नरपति, ऋषि, मुनि और देवता आदि आये थे, वे सब आनन्दित हुए । परन्तु दुर्योधनको

बडा दुःख, बड़ी पीडा हुई, यह बात मैंने आपके मुखसे सुनी है । भगवन् ! आप कृपा करके इसका कारण बतलाइये ॥ १-२ ॥

श्रीशुक्रदेवजी महाराजने कहा — परीक्षित् ! तुम्हारे दादा युधिष्ठिर बड़े महात्मा थे । उनके प्रेमस्वभनसे वैधकर सभी बन्धु-बान्धवोंने राजसूय यज्ञमें विभिन्न सेवाकार्य स्वीकार किया था ॥ ३ ॥ भीमसेन योजना-लयकी देख-रेख करते थे । दुर्योधन कोषाध्यक्ष थे । सहदेव अग्न्यागतिके स्वागत-सत्कारमें नियुक्त थे और मकुष विविध प्रकारकी सामग्री एकत्र करनेका काम देखते थे ॥ ४ ॥ अर्जुन गुरुजनोंकी सेवा-शुश्रूषा करते थे और स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण आये हुए अतिथियोंके पाँव पछारनेका काम करते थे । देवी द्रौपदी भोजन परसनेका काम करतीं और उदारशिरोमणि कर्ण सुले हाथों दान दिया करते थे ॥ ५ ॥ परीक्षित् ! इसी प्रकार सायकिक, विकर्ण, हार्दिक्य, विदूर, भूरिश्रवा आदि बाह्यीकके पुत्र और सन्तर्दन आदि राजसूय यज्ञमें विभिन्न कर्मेंमें नियुक्त थे । वे सब-के-सब वैसा ही काम करते थे, जिससे महाराज युधिष्ठिरका प्रिय और हित हो ॥ ६-७ ॥

परीक्षित् ! जब ऋत्विज, सदस्य और बहुल पुरुषोंका तथा अपने इष्ट मित्र एवं बन्धु-बान्धवोंका सुमधुर वाणी, विविध प्रकारकी पूजा-सामग्री और दक्षिणा आदि-से मन्त्रीमूर्ति सत्कार हो चुका तथा शिशुपाव भक्त-वत्सल भगवान्के चरणोंमें समा गया, तब धर्मराज युधिष्ठिर गङ्गाजीमें यज्ञान्त-स्नान करने गये ॥ ८ ॥ उस समय जब वे अवभृथ-स्नान करने लगे, तब बृहन्न, शङ्ख, वेध, नौबत, नगारे और नरसिंगे आदि तरह-तरहके बाजे बजने लगे ॥ ९ ॥ नर्तकियों आनन्दसे क्षम-क्षमकर नाचने लगीं । हुंड-के-हुंड गवैये गवने लगे और बाणा, बाँसुरी तथा झौंझ-मँझरी बजने लगे । इनकी समुच्च ध्वनि सारे आकाशमें गूँज गयी ॥ १० ॥ सोने-के हार पहने हुए यदु, सृञ्जय, कम्बोज, कुरु, केकय और कोसल देशके नरपति रग-विरंगी च्वाका-पताम्बाओंसे युक्त और खूब सजे-धजे गजराजों, रथों, घोड़ों तथा सुसज्जित वीर सैनिकोंके साथ महाराज युधिष्ठिरको आगे करके पृथ्वीको कँपाते हुए चले रहे थे ॥ ११-१२ ॥

यज्ञके सदस्य, ऋत्विज और बहुत-से श्रेष्ठ ब्राह्मण वेद-मन्त्रोंका उर्ध्व खरसे उच्चारण करते हुए चले । देवता, ऋषि, पितर, गन्धर्व आकाशसे पुष्पोंकी वर्षा करते हुए उनकी स्तुति करने लगे ॥ १३ ॥ इन्द्रप्रस्थके नर-नारी इन्द्र-फुल्ले, पुष्पोंके हार, रग-विरंगे वस्त्र और बहुमूल्य आभूषणोंसे सज-धजकर एक दूसरेपर जल, तेल, दूध, मक्खन आदि रस ढाळकर भिगो देते, एक-दूसरेके शरीरमें लगा देते और इस प्रकार क्रीडा करते हुए चलने लगे ॥ १४ ॥ वाराहनाई पुरुषोंको लेव, गोरस, सुगन्धित जल, हन्दी और गाड़ी केसर मल देतीं और पुरुष भी उन्हें उन्हीं कस्तुरियोंसे सराबोर कर देते ॥ १५ ॥

उस समय इस उत्सवको देखनेके लिये जैसे उत्तम-उत्तम विभानोंपर चढ़कर आकाशमें बहुत-सी रेविर्वा आयी थीं, वैसे ही सैनिकोंके द्वारा सुरक्षित इन्द्रप्रस्थकी बहुत-सी राजमण्डिआई भी सुन्दर-सुन्दर पाण्डिकोंपर सवार होकर आयी थीं । पाण्डवोंके ममेरे भाई श्रीकृष्ण और उनके सखा उन रानियोंके ऊपर तरह-तरहके रंग आदि ढाळ रहे थे । इससे रानियोंके मुख लज्जीकी सुसकराहटसे झिल उठते थे और उनकी बड़ी शोभा होती थी ॥ १६ ॥ उन लोभोंके रंग आदि ढाळनेसे रानियोंके वस्त्र भींग गये थे । इससे उनके शरीरके अङ्ग-प्रत्यङ्ग — वक्षःस्थल, जघन और कटिभाग कुछ-कुछ दाख-से रहे थे । वे भी पिचकरी और पात्रोंमें रंग भर-भरकर अपने देवों और उनके सखाओंपर उड़ेल रही थीं । प्रेमभरी उत्सुकताके कारण उनकी चोटियों और जूझोंके नखन ढीले पड़ गये थे तथा उनमें गुँथे हुए फूल गिरते जा रहे थे । परीक्षित् ! उनका यह रुचिर और पवित्र विहार देखकर मलिन अन्तःकरणवाले पुरुषोंका चित्त चञ्चल हो उठता था, काम-मोहिन हो जाता था ॥ १७ ॥

चक्रवर्ती राजा युधिष्ठिर द्रौपदी आदि रानियोंके साथ सुन्दर घोड़ोंसे युक्त एवं सोनेके हारोंमें सुसज्जित रथपर सवार होकर ऐमे गोभायमान हो रहे थे, मानो स्वयं राजसूय यज्ञ प्रयाज आदि क्रियाओंके साथ प्रतिमान् होकर प्रकट हो गया हो ॥ १८ ॥ ऋषिजोंने पत्नी-स्वयं (एक प्रकारका यज्ञकर्म) तथा यज्ञान्त-स्नान-

सम्बन्धी कर्म कारवाक ब्रौपदीके साथ सम्राट् युधिष्ठिर-
को आचमन करवाया और इसके बाद गङ्गास्नान ॥ १९ ॥
उस समय मनुष्योंकी दुन्दुभियोंके साथ ही देवताओंकी
दुन्दुभियों भी वजने लगीं । बड़े-बड़े देवता, ऋषि-मुनि,
पितर और मनुष्य पुण्योंकी वर्षा करने लगे ॥ २० ॥
महाराज युधिष्ठिरके स्नान कर लेनेके बाद सभी वणों
एवं आश्रमोंके लोगोंने गङ्गाजीमें स्नान किया; क्योंकि इस
स्नानसे बड़े-से-बड़ा महापापी भी अपनी पाप-राशिसे तत्काल
मुक्त हो जाता है ॥ २१ ॥ तदनन्तर धर्मराज युधिष्ठिरने
नयी रेशमी धोती और दुपट्टा धारण किया तथा विविध
प्रकारके आभूषणोंसे अपनेको सजा लिया । फिर ऋत्विज,
सदस्य, ब्राह्मण आदिको वस्त्राभूषण दे-देकर उनकी
पूजा की ॥ २२ ॥ महाराज युधिष्ठिर भगवत्परायण थे, उन्हें
सबसे भगवान्‌के ही दर्शन होते । इसलिये वे भार्गवन्धु,
कुटुम्बी, नरपति, इक्ष्मिन्, हितैषी और सभी जोगोंकी
बार-बार पूजा करते ॥ २३ ॥ उस समय सभी जोग
जङ्गल कुण्डल, पुण्योंके हार, फगड़ी, लंबी अँगरखी,
दुपट्टा तथा मणियोंके बहुमूल्य हार पहनकर देवताओंके
समान शोभायमान हो रहे थे । जियोंने मुखोंकी भी दोनों
कानोंके कर्णद्वार और घुँघराळी अलकोंसे बड़ी शोभा
हो रही थी तथा उनके कटिभागमें सोनेकी करधनियों
तो बहुत ही भली मालूम हो रही थी ॥ २४ ॥

परीक्षित । राजसूय यज्ञमें जितने जोग आये थे—
परम शीलवान् ऋत्विज, ब्रह्मवादी सदस्य, ब्राह्मण, क्षत्रिय,
वैश्य, शूद्र, राजा, देवता, ऋषि, मुनि, पितर तथा अन्य
प्राणी और अपने अनुयायियोंके साथ लोकपाल—इन
सबकी पूजा महाराज युधिष्ठिरने की । इसके बाद वे
जोग धर्मराजसे अनुमति लेकर अपने-अपने निवासस्थान-
को चले गये ॥ २५-२६ ॥ परीक्षित । जैसे मनुष्य असुत-
पान करते-करते कभी तृप्त नहीं हो सकता, वैसे ही
सब जोग भगवद्भक्त राजर्षि युधिष्ठिरके राजसूय महायज्ञ-
की प्रशंसा करते-करते तृप्त न होते थे ॥ २७ ॥
इसके बाद धर्मराज युधिष्ठिरने बड़े प्रेमसे अपने हितैषी
सुहृद्-सम्बन्धियों, भार्गवन्धुओं और भगवान् श्रीकृष्णको
भी रोक लिया, क्योंकि उन्हें उनके निजोहवी कल्पनासे
ही बड़ा दुःख होता था ॥ २८ ॥ परीक्षित । भगवान्
श्रीकृष्णने यदुवंशी वीर सांख आदिको द्वारकापुरी भेज
दिया और स्वयं राजा युधिष्ठिरकी अभिजावा पूर्ण करने-

के लिये, उन्हें आनन्द देनेके लिये वहीं रह गये ॥ २९ ॥
इस प्रकार धर्मनन्दन महाराज युधिष्ठिर मनोरथोंके महान्
समुद्रको, जिसे पार करना अत्यन्त कठिन है, भगवान्
श्रीकृष्णकी कृपासे अनायास ही पार कर गये और
उनकी सारी चिन्ता मिट गयी ॥ ३० ॥

एक दिनकी बात है, भगवान्‌के परमप्रेमी महाराज
युधिष्ठिरके अन्तःपुरकी सौन्दर्य-सम्पत्ति और राजसूय
यज्ञद्वारा प्राप्त महत्त्वको देखकर दुर्योधनका मन बाहसे
जलने लगा ॥ ३१ ॥ परीक्षित । पाण्डवोंके लिये मय
दानवने जो महल बना दिये थे, उनमें नरपति, दैत्य-
पति और सुरपतियोंकी विविध विभूतियों तथा श्रेष्ठ
सौन्दर्य स्थान-स्थानपर शोभायमान था । उनके द्वारा
राजराणी ब्रौपदी अपने पतिव्रतोंकी सेवा करती थी । उस
राजमन्चनमें उन दिनों भगवान् श्रीकृष्णकी सहचरों रमितियों
निवास करती थीं । नितम्बके भारी भारके कारण जब
वे उस राजमन्चनमें धीरे-धीरे चलने लगी थीं, तब उनके
पापजनोंकी झनझन चारों ओर फैल जाती थी । उनका
कटिभाग बहुत ही सुन्दर था तथा उनके वक्षःस्थलपर
लगी हुई केसरकी आलिंगनासे मोतियोंके सुन्दर श्वेत हार
भी लाल-लाल जान पड़ते थे । कुण्डलोंकी और घुँघराळी
अलकोंकी चञ्चलतासे उनके मुखकी शोभा और भी
बढ़ जाती थी । यह सब देखकर दुर्योधनके हृदयमें
बड़ी जलन होती । परीक्षित । सच पूछो तो दुर्योधन-
का चित्त ब्रौपदीमें आसक्त था और यही उसकी जलन-
का मुख्य कारण भी था ॥ ३२-३३ ॥

एक दिन राजाधिराज महाराज युधिष्ठिर अपने माहवों,
सम्बन्धियों एवं अपने नयनोंके तारे परम हितैषी भगवान्
श्रीकृष्णके साथ मयदानवकी बनायी समामें खण्डसिंहा-
सनपर देवराज इन्द्रके समान विराजमान थे । उनकी
मोग-सामग्री, उनकी राज्यलक्ष्मी ब्रह्माजीके ऐश्वर्यके
समान थी । वंदीजन उनकी स्तुति कर रहे थे ॥ ३४-३५ ॥
उसी समय अस्मिन्नी दुर्योधन अपने दुःशासन आदि
माहवोंके साथ वहाँ आया । उसके सिरपर सुकुट,
गलेमें माला और हाथमें तलवार थी । परीक्षित । वह
क्रोधवश द्वारपालों और सेवकोंको सिद्धक रहा था ॥ ३६ ॥
उस समामें मयदानवने ऐसी माया फैला रखी थी कि

दुर्योधनने उससे मोहित हो खल्लो जल समझकर अपने वज्र समेट लिये और जलको खल समझकर वह उसमें गिर पड़ा ॥ ३७ ॥ उसको गिरते देखकर भीमसेन, राजरानियों तथा दूसरे नरपति हँसने लगे । यक्षि युधिष्ठिर उन्हें ऐसा करनेसे रोक रहे थे, परन्तु प्यारे परीक्षित । उन्हें इशारेसे श्रीकृष्णका अनुमोदन प्राप्त हो चुका था ॥ ३८ ॥ इससे दुर्योधन लज्जित हो गया, उसका रोम-रोम झोपसे जलने लगा । अब वह अपना मुँह छटकाकर चुपचाप समामग्नसे निकलकर हस्तिना-

पुर चला गया । इस घटनाको देखकर सत्युरुषोंमें हाहाकार मच गया और धर्मराज युधिष्ठिरका मन भी कुछ खिन्न-सा हो गया । परीक्षित । यह सब होनेपर भी भगवान् श्रीकृष्ण चुप थे । उनकी इच्छा थी कि किसी प्रकार पृथ्वीका मार उठर जाय; और सच पूछो, तो ऊर्ध्वकी दृष्टिसे दुर्योधनको वह भ्रम हुआ था ॥ ३९ ॥ परीक्षित । तुमने मुझसे यह पूछा था कि उस महान् राजसूय-यज्ञमें दुर्योधनको डाह क्यों हुआ ? जलन क्यों हुई ? सो वह सब मैंने तुम्हें बतला दिया ॥ ४० ॥

छिहत्तरवाँ अध्याय

शाल्वके साथ यादवोंका युद्ध

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित । जब गलुष्य-की-सी लीज करनेवाले भगवान् श्रीकृष्णका एक और भी अद्भुत चरित्र सुनो । इसमें यह बताया जायगा कि सौभनामक विमानका अधिपति शाल्व किन्तु प्रकार भगवान्‌के हाथसे मारा गया ॥ १ ॥ शाल्व चिनुपालका सखा था और रुक्मिणीके विवाहके अवसरपर बारातमें शिशुपालकी ओरसे आया हुआ था । उस समय यदु-वंशियोंने युद्धमें जरासन्ध आदिके साथ-साथ शाल्वको भी जीत लिया था ॥ २ ॥ उस दिन सब राजाओंके सामने शाल्वने यह प्रतिज्ञा की थी कि 'मैं पृथ्वीसे यदुवंशियोंको मिटाकर छोड़ूँगा, सब लोग मेरा वल-पौरुष देखना' ॥ ३ ॥ परीक्षित । मूढ़ शाल्वने इस प्रकार प्रतिज्ञा करके देवाधिदेव भगवान् पशुपतिकी आराधना प्रारम्भ की । वह उन दिनों दिनमें केवल एक बार मुट्ठीभर राख फोंक लिया करता था ॥ ४ ॥ यों तो पार्वतीपति भगवान् शङ्कर आशुतोष हैं, औदर-दानी हैं, फिर भी वे शाल्वका घोर सङ्कल्प जानकर एक वर्षके बाद प्रसन्न हुए । उन्होंने अपने शरणागत शाल्वसे वर माँगनेके लिये कहा ॥ ५ ॥ उस समय शाल्वने यह वर माँगा कि 'मुझे आप एक ऐसा विमान दीजिये जो देवता, असुर, ननुष्य, गन्धर्व, नाग और राक्षसोंसे तोड़ा न जा सके, जहाँ इच्छा हो, वहाँ चला जाय और यदुवंशियोंके लिये अत्यन्त मर्याद-

हो' ॥ ६ ॥ भगवान् शङ्करने कहा दिया 'तथास्तु ।' इसके बाद उनकी आज्ञासे विपक्षियोंके नगर जीतनेवाले मय दानवने ओहैका सौभनामक विमान बनाया और शाल्वको दे दिया ॥ ७ ॥ वह विमान क्या था एक नगर ही था । वह इतना अन्धकारमय था कि उसे देखना या एकड़ना अत्यन्त कठिन था । चलनेवाला उसे जहाँ ले जाना चाहता, वहाँ वह उसके इच्छा करते ही चला जाता था । शाल्वने वह विमान प्राप्त करके द्वारकापर चढ़ाई कर दी, क्योंकि वह बुध्निवशी अर्धवैद्यारा किये हुए बैरको सदा स्मरण रखता था ॥ ८ ॥

परीक्षित । शाल्वने अपनी बहुत बड़ी सेनासे द्वारकाको चारों ओरसे घेर लिया और फिर उसके फल-फलसे लदे हुए उपवन और उद्यानोंको उजाड़ने और नगरद्वारों, फाटकों, राजमहलों, अटारियों, दीवारों और नागरिकोंके मनोविमोदके स्थानोंको नष्ट-भ्रष्ट करने लगा । उस श्रेष्ठ विमानसे शकोंकी झड़ी लग गयी ॥ ९-१० ॥ बड़ी-बड़ी चक्षुर्ने, दृष्ट, वज्र, सर्प और ओले बरसने लगे । वड़े जोरका बवंडर उठ खड़ा हुआ । चारों ओर घूट-ही-घूट छा गयी ॥ ११ ॥ परीक्षित । प्राचीन कालमें जैसे विप्रासुरने सारी पृथ्वीको पीड़ित कर रक्खा था, वैसे ही शाल्वके विमानने द्वारकापुरीको अत्यन्त पीड़ित कर दिया । वहोंने नर-नारियोंको कहीं एक क्षणके लिये भी आन्ति न मिलती थी ॥ १२ ॥

परमयशस्वी वीर भगवान् प्रभुजने देखा—हयारी प्रजाको बडा कष्ट हो रहा है, तब उन्होंने रथपर सवार होकर सबको दाढ़स बंधाया और कहा कि 'ढरो मत' ॥१३॥ उनके पीछे-पीछे सात्यकि, चारुदेण, साम्ब, माह्यकि साथ अक्रूर, कृतवर्मा, भानुविन्द, गद, शुक, सारण आदि बहुत-से वीर बड़े-बड़े धनुष धारण करके निकले। ये सब-के-सब महारथी थे। सबने कवच पहन रक्खे थे और सबकी रक्षाके लिये बहुत-से रथ, हाथी, घोड़े तथा पैदल सेना साथ-साथ चल रही थी ॥ १४-१५॥ इसके बाद प्राचीन कालमें जैसे देवताओंके साथ असुरोंका घमासान युद्ध हुआ था, वैसे ही शाल्वके सैनिकों और यदुवशियोंका युद्ध होने लगा। उसे देखकर लोगोंके रोंगटे खड़े हो जाते थे ॥ १६॥ प्रभुज-जीने अपने दिव्य अबाँसे क्षणभरमें ही सौभपति शाल्वकी सारी माया काट डाली; ठीक वैसे ही, जैसे सूर्य अपनी प्रखर किरणोंसे रात्रिका अन्धकार मिटा देते हैं ॥ १७॥ प्रभुजजीके बाणोंमें सोनेके पंख एवं जोड़ेके फल लगे हुए थे। उनकी गति जान नहीं पड़ती थी। उन्होंने ऐसे ही पचीस बाणोंसे शाल्वके सेनापतिको बायल कर दिया ॥ १८॥ परममन्त्री प्रभुज-जीने सेनापतिके साथ ही शाल्वको भी सौ बाण मारे, फिर प्रत्येक सैनिकको एक-एक और सारथियोंको दस-दस तथा बाहनोंको तीन-तीन बाणोंसे बायल किया ॥ १९॥ महामना प्रभुजजीके इस अद्भुत और महान् कर्मको देखकर अपने एवं पराये—सभी सैनिक उनकी प्रशंसा करने लगे ॥ २०॥ परीक्षित । मय दानवका बनाया हुआ शाल्वका वह विमान अत्यन्त मायामय था। वह इतना विचित्र था कि कभी अनेक रूपमें दीखता तो कभी एक रूपमें, कभी दीखता तो कभी न भी दीखता। यदुवशियोंको इस बातका पता ही न चलता कि वह इस समय कहाँ है ॥ २१॥ वह कभी पृथ्वीपर आ जाता तो कभी आकाशमें उड़ने लगता। कभी पहाड़की चोटीपर चढ़ जाता, तो कभी जलमें तैरने लगता। वह अत्यन्त-चक्रके समान—मानो कोई दुर्गुही लुकारियोंकी बनेठी भोज रहा हो—धूमता रहता था, एक क्षणके लिये भी कहीं ठहरता न

था ॥ २२॥ शाल्व अपने विमान और सैनिकोंके साथ जहाँ-जहाँ दिखायी पड़ता, वही-वहीं यदुवंशी सेनापति बाणोंकी झड़ी लगा देते थे ॥ २३॥ उनके बाण सूर्य और अग्निके समान जलते हुए तथा विषैले सौंपकी तरह असह्य होते थे। उनसे शाल्वका नगराकार विमान और सेना अत्यन्त पीड़ित हो गयी, यहाँतक कि यदु-वशियोंके बाणोंसे शाल्व स्वयं मूर्च्छित हो गया ॥ २४॥

परीक्षित । शाल्वके सेनापतियोंने भी यदुवशियोंपर खूब शस्त्रोंकी वर्षा कर रक्खी थी, इससे वे अत्यन्त पीड़ित थे; परन्तु उन्होंने अपना-अपना मोर्चा छोड़ा नहीं। वे सोचते थे कि मरेंगे तो परलोक बनेगा और जीतेंगे तो विजयकी प्राप्ति होगी ॥ २५॥ परीक्षित । शाल्वके मन्त्रीका नाम था धुमान्, जिसे पहले प्रभुज जीने पचीस बाण मारे थे। वह बहुत बली था। उसने झपटकर प्रभुजजीपर अपनी मौलादी गद्दासे बड़े जोरसे प्रहार किया और 'मार लिया, मार लिया' कहकर गरजने लगा ॥ २६॥ परीक्षित । गदाकी चौड़े शत्रुदमन प्रभुजजीका बन्धःखल फट-सा गया। दारुकका पुत्र उनका रथ हॉक रहा था। वह सारथियोंके अनुसार उन्हें रणभूमिसे हटा ले गया ॥ २७॥ दो बड़ीमे प्रभुजजीकी मूर्च्छा टूटी। तब उन्होंने सारथीसे कहा—'मारये। तने यह बहुत भुल किया। हाय, हाय। त मुझे रणभूमिसे हटा लिया? ॥ २८॥ सूत । हमने ऐसा कभी नहीं सुना कि हमारे वंशका कोई भी वीर कभी रणभूमि छोड़कर अलग हट गया हो। यह कलङ्कका टीका तो केवल मेरे ही सिर लगा। सबभुच सूत । त कायर है, नपुंसक है ॥ २९॥ बतला तो सही, अब मैं अपने ताक बजरामजी और पिता श्रीकृष्णके सामने जाकर क्या कहूँगा? अब तो सब जोग यहीं कहेंगे न, कि मैं युद्धसे भग गया? उनके पूछनेपर मैं अपने अनुरूप क्या उत्तर दे सकूँगा ॥३०॥ मेरी माथियों हैंसती हुईं मुझसे साफ-साफ पूछेंगी कि 'कहो, वीर! तुम नपुंसक कैसे हो गये? दूसरोंने युद्धमें तुम्हें नीचा कैसे दिखा दिया?' सूत । अवश्य ही तुमने गुड़े रणभूमिसे मगाकर अक्षय्य अश्राध किया है! ॥३१॥

सारथीके कहा—आयुधम् । मैंने जो कुछ किया

है, सारथीका धर्म समझकर ही किया है। मेरे समर्थ खामी। युद्धका ऐसा धर्म है कि सङ्कट पड़नेपर सारथी रथीकी रक्षा कर ले और रथी सारथीकी ॥ ३२ ॥ इस धर्मको समझते हुए ही मैंने आपको रणभूमिसे

हटाया है। शत्रुने आपपर गदाका प्रहार किया था, जिससे आप भूँछित हो गये थे, बड़े सङ्कटमें थे; इसीसे मुझे ऐसा करना पड़ा ॥ ३३ ॥

सतहत्तरवाँ अध्याय

शाल्व-उद्धार

श्रीशुक्रदेवजी कहते हैं—परीक्षित! अब प्रयुक्तजीने हाथ-मुँह बोक, कन्ध पहन धनुष बाण किया और सारथी-से कहा कि 'मुझे धीर धुमान्के पास फिरसे ले चलो' ॥ १ ॥ उस समय धुमान् यादवसेनाको सहस्र-नहस कर रहा था। प्रयुक्तजीने उसके पास पहुँचकर उसे ऐसा करनेसे रोक दिया और मुसकराकर आठ बाण मारे ॥ २ ॥ चार बाणोंसे उसके चार घोड़े और एक-एक बाणसे सारथी, धनुष, ध्वजा और उसका सिर फट ढाका ॥ ३ ॥ इवर गद, सात्यकि, साम्ब आदि बहुवंशी धीर भी शाल्वकी सेनाका संहार करने लगे। सौम विमानपर बड़े हुए सैनिकोंकी गरदन कट जाती और वे समुद्रमें गिर पड़ते ॥ ४ ॥ इस प्रकार यदुवंशी और शाल्वके सैनिक एक-दूसरेपर प्रहार करते रहे। बचा ही बचासान और भयङ्कर युद्ध हुआ और वह लगातार सत्तारह दिनोत्तक चलता रहा ॥ ५ ॥

उन दिनों मगवान् श्रीकृष्ण धर्मराज युधिष्ठिरके जुलानेसे हृदप्रसन्न गये हुए थे। राजसूय यज्ञ हो चुका था और शिशुपालकी भी मृत्यु हो गयी थी ॥ ६ ॥ वहाँ मगवान् श्रीकृष्णने देखा कि बड़े भयङ्कर अपशकुन हो रहे हैं। तब उन्होंने कुरुवंशके बड़े-वृद्धों, ऋषि-मुनियों, कुन्ती और पाण्डवोंसे अनुमति लेकर द्वारकाके लिये प्रस्थान किया ॥ ७ ॥ वे मन-ही-मन कहने लगे कि मैं पूज्य माई बलरामजीके साथ यहाँ चला आया। अब शिशुपालके पक्षपाती क्षत्रिय अन्धधर्म की द्वारकापर आक्रमण कर रहे होंगे ॥ ८ ॥ मगवान् श्रीकृष्णने द्वारकामें पहुँचकर देखा कि सचमुच यादवोंपर बड़ी विपत्ति आयी है। तब उन्होंने बलरामजीको नगरकी रक्षाके लिये नियुक्त कर दिया और सौमपति शाल्वको देखकर अपने

सारथी दारुकसे कहा— ॥ ९ ॥ 'दारुक! तुम भीमसे-शीघ्र मेरा रथ शाल्वके पास ले चलो। देखो, यह गाल्व वक्षा मायावी है, तो भी तुम तनिक भी भय न करना' ॥ १० ॥ मगवान्की ऐसी आज्ञा पाकर दारुक रथपर चढ़ गया और उसे शाल्वकी ओर ले चला। मगवान्के रथकी ध्वजा गरुड-चिह्नसे चिह्नित थी। उसे देखकर यदुवंशियों तथा गाल्वकी सेनाके लोगोंने युद्धभूमिमें प्रवेश करते ही मगवान्को पहचान लिया ॥ ११ ॥ परीक्षित! अवतक गाल्वकी सारी सेना प्रायः नष्ट हो चुकी थी। मगवान् श्रीकृष्णको देखते ही उसने उनके सारथीपर एक बहुत बड़ी शक्ति चलायी। वह शक्ति बड़ा भयङ्कर शब्द करती हुई आकाशमें बड़े बेगसे चल रही थी और बहुत बड़े छक्के समान जाग पड़ती थी। उसके प्रकाशसे दिशाएँ चमक उठी थीं। उसे सारथीकी ओर आते देख मगवान् श्रीकृष्णने अपने बाणोंसे उसके सैनिकों टुकड़े कर दिये ॥ १२-१३ ॥ इसके बाद उन्होंने गाल्वको सोलह बाण मारे और उसके विमानको भी, जो आकाशमें घूम रहा था, असंख्य बाणोंसे चखनी कर दिया—ठीक वैसे ही जैसे सूर्य अपनी किरणोंसे आकाशको भर देता है ॥ १४ ॥ शाल्वने मगवान् श्रीकृष्णकी बाणी सुनाई, जिसमें शार्ङ्गधनुष सोमायमान था, बाण मारा, इससे शार्ङ्गधनुष मगवान्के हाथसे छूटकर गिर पड़ा। यह एक अद्भुत घटना घट गयी ॥ १५ ॥ जो लोग आकाश या पृथ्वीसे यह युद्ध देख रहे थे, वे बड़े जोरसे 'हाय-हाय' पुकार लें। तब शाल्वने गरजकर मगवान् श्रीकृष्णसे यों कहा— ॥ १६ ॥ 'मृदु! तूने हमलोगोंके देखते-देखते हमारे माई और सखा शिशुपालकी पत्नीको हर लिया तथा मेरी सभागे, जब कि हमारा मित्र शिशुपाल असावधान था, तूने उसे मार डाला ॥ १७ ॥

मैं जानता हूँ कि तू अपनेको अलेय मानता है । यदि मेरे सामने ठहर गया तो मैं आज तुझे अपने तीखे बाणोंसे वहाँ पहुँचा दूँगा, जहाँसे फिर कोई लौटकर नहीं आता' ॥ १८ ॥

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—ये मन्द । तू वृथा ही बहक रहा है । तुझे पता नहीं कि तेरे स्तिरपर यौत सवार है । शरीर व्यर्थकी बकनाद नहीं करते, वे अपनी धीरता ही दिखलवा करते हैं' ॥ १९ ॥ इस प्रकार कहकर भगवान् श्रीकृष्णने क्लोवित हो अपनी अत्यन्त बेगवती और भयङ्कर गदासे शाल्वके जन्मुखान (हँसकी) पर प्रहार किया । इससे वह खल उगलता हुआ कोंपने लगा ॥ २० ॥ इधर जब गदा भगवान्के पास लौट आयी, तब शाल्व अन्तर्धान हो गया । इसके बाद दो घड़ी बीतते-बीतते एक मनुष्यने भगवान्के पास पहुँचकर उनको सिर छुकाकर प्रणाम किया और वह रोता हुआ बोला—‘मुझे आपकी माता देवकीजीने मेना है ॥ २१ ॥ उन्होंने कहा है कि अपने पिताके प्रति अत्यन्त प्रेम रखनेवाले महाबाहु श्रीकृष्ण ! शाल्व तुम्हारे पिताको उसी प्रकार बाँधकर ले गया है, जैसे कोई कसाई पशुको बाँधकर ले जाय ।’ ॥ २२ ॥ यह अप्रिय समाचार सुनकर भगवान् श्रीकृष्ण मनुष्यसे बन गये । उनके मुँहपर कुछ उदासी छा गयी । वे साधारण पुरुषके समान अत्यन्त करुणा और स्नेहसे कहने लगे—॥ २३ ॥ ‘अहो ! मेरे माई बछरामजीको तो देवता अथवा असुर कोई नहीं जीत सकता । वे सदा-सर्वदा सावधान रहते हैं । शाल्वका बळपौरुष तो अत्यन्त अल्प है । फिर भी इसने उन्हें कैसे जीत लिया और कैसे मेरे पिताजीको बाँधकर ले गया ? सचमुच, प्रारब्ध बहुत कल्वान् है’ ॥ २४ ॥ भगवान् श्रीकृष्ण इस प्रकार कह ही रहे थे कि शाल्व वसुदेवजीके समान एक मायारचित मनुष्य लेकर वहाँ आ पहुँचा और श्रीकृष्णसे कहने लगा—॥ २५ ॥ ‘मूर्ख ! देख ; यही तुझे पैदा करनेवाला तेरा बाप है, जिसके लिये तू जी रहा है । तेरे देखते-देखते मैं इसका काम तमाम करता हूँ । कुछ बळ-पौरुष हो, तो इसे बचा’ ॥ २६ ॥ मायावी शाल्वने इस प्रकार भगवान्को

फटकार कर मायारचित वसुदेवका सिर तलवारसे काट लिया और उसे लेकर अपने आकाशस्थ विमानपर जा बैठा ॥ २७ ॥ परीक्षित ! भगवान् श्रीकृष्ण स्वयंसिद्ध ज्ञानस्वरूप और भ्रानुभाव हैं । वे यह घटना देखकर दो घड़ीके लिये अपने खजन वसुदेवजीके प्रति अत्यन्त प्रेम होनेके कारण साधारण पुरुषोंके समान शोकमें डूब गये । परन्तु फिर वे जान गये कि यह तो शाल्वकी फैलथी हुई आसुरी माया ही है, जो उसे मय दानके बतलायी थी ॥ २८ ॥ भगवान् श्रीकृष्णने युद्धभूमिमें सचेत होकर देखा—न वहाँ दूत है और न पिताका वह शरीर ; जैसे स्वप्नमें एक दृश्य दीखकर लुप्त हो गया हो । उधर देखा तो शाल्व विमानपर चढ़कर आकाशमें विचर रहा है । तब वे उसका वध करनेके लिये उद्यत हो गये ॥ २९ ॥

प्रिय परीक्षित ! इस प्रकारकी बात पूर्वापरका विचार न करनेवाले कोई-कोई ऋषि कहते हैं । अवश्य ही वे इस बातको भूल जाते हैं कि श्रीकृष्णके सम्बन्धमें ऐसा कहना उन्हींके वचनोंके विपरीत है ॥ ३० ॥ कहाँ अज्ञानियोंमें रहनेवाले शोक, मोह, स्नेह और मय तथा कहाँ वे परिपूर्ण भगवान् श्रीकृष्ण—जिनका ज्ञान, विज्ञान और ऐश्वर्य अखण्डित है, एकरस है । (मन्त्र, उनमें जैसे भावोंकी सम्भावना ही कहाँ है ?) ॥ ३१ ॥ बड़े-बड़े ऋषि-मुनि भगवान् श्रीकृष्णके ‘चरणकमलोंकी सेवा करके आत्मविवाका भली-भाँति सम्यादन करते हैं और उसके द्वारा शरीर आदिमें आत्मबुद्धिरूप अनादि अज्ञान-को मिटा डालते हैं तथा आत्मसम्बन्धी अनन्त ऐश्वर्य प्राप्त करते हैं । उन संतोंके परम गतिस्वरूप भगवान् श्रीकृष्णमें मन्त्र, मोह कैसे हो सकता है ? ॥ ३२ ॥

अब शाल्व भगवान् श्रीकृष्णपर बड़े उत्साह और बेगसे शस्त्रोंकी वर्षा करने लगा था । अयोधशक्ति भगवान् श्रीकृष्णने भी अपने बाणोंसे शाल्वको घायल कर दिया और उसके कन्ध, वक्ष्य तथा सिरकी मणिकी छिन्न-भिन्न कर दिया । साथ ही गदाकी चोटसे उसके विमानको भी ज्वर कर दिया ॥ ३३ ॥ परीक्षित ! भगवान् श्रीकृष्णके हाथोंसे चलायी हुई गदासे वह विमान चूर-चूर होकर स्मृद्धमें गिर पड़ा । गिरनेके

पहले ही शाल्व हाथमें गदा लेकर धरतीपर कूद पड़ा और सावधान होकर बड़े वेगसे भगवान् श्रीकृष्णकी ओर शपथ ॥ ३४ ॥ शाल्वको आक्रमण करते देख उन्होंने भांसे गदाके साथ उसका हाथ काट गिराया । फिर उसे मार डालनेके लिये उन्होंने प्रलयकालीन सूर्यके समान तेजस्वी और अत्यन्त अद्भुत सुदर्शन चक्र धारण कर लिया । उस समय उनकी ऐसी शोभा हो रही थी, मानो सूर्यके साथ उदयाचल शोभायमान हो ॥ ३५ ॥ भगवान् श्रीकृष्णने उस चक्रसे परम मायावी शाल्वका कुण्डल-किरीटसहित सिर बड़से अलग

कर दिया; ठीक वैसे ही, जैसे इन्होंने वज्रसे वृत्रासुरका सिर काट डाला था । उस समय शाल्वके दैनिक अत्यन्त दुःखसे 'हाथ-हाथ' चिल्ला उठे ॥ ३६ ॥ परीक्षित ! जब पापी शाल्व मर गया और उसका विमान भी गदाके प्रहारसे चूर-चूर हो गया, तब देवताजग आकाशमें द्रुमुर्मियों बनाने लगे । ठीक इसी समय दन्तवक्त्र अपने मित्र शिशुपाल आदिका बढका लेनेके लिये अत्यन्त क्रोधित होकर आ पहुँचा ॥ ३७ ॥

अठहत्तरवाँ अध्याय

दन्तवक्त्र और विदूरथका उद्धार तथा तीर्थयात्रामें चलपमजीके हाथसे सूतजीका बध

भीष्मक्रेवजी कहते हैं—परीक्षित ! शिशुपाल, शाल्व और पौण्ड्रकके मारे जानेपर उनकी मित्रताका श्राण चुकानेके लिये मूर्ख दन्तवक्त्र अकेला ही पैदल युद्धभूमिमें आ धमका । वह क्रोधके मारे आग-बबूला हो रहा था । शबके नामपर उसके हाथमें एकमात्र गदा थी । परन्तु परीक्षित ! लोगोंने देखा, वह इतना शक्तिशाली है कि उसके पैरोंकी धमकसे पृथ्वी हिल रही है ॥ १-२ ॥ भगवान् श्रीकृष्णने जब उसे इस प्रकार आते देखा, तब झटपट हाथमें गदा लेकर वे रफसे कूद पड़े । फिर जैसे समुद्रके तटकी भूमि उसके ज्वार-भाटेको आगे बढ़नेसे रोक देती है, वैसे ही उन्होंने उसे रोक दिया ॥ ३ ॥ घनडके नथेमें चूर करुणनरेश दन्तवक्त्रने गदा तानकर भगवान् श्रीकृष्णसे कहा—'बड़े सौभाग्य और आनन्दकी बात है कि आज तुम मेरी आँखोंके सामने पड़ गये ॥ ४ ॥ कृष्ण ! तुम मेरे मामाके लडके हो, इसलिये तुम्हें मारना तो नहीं चाहिये; परन्तु एक तो तुमने मेरे मित्रोंको मार डाला है और दूसरे मुझे भी मारना चाहते हो । इसलिये मतिमन्द ! आज मैं तुम्हें अपनी वज्र-कर्कश गदासे चूर-चूर कर डालूँगा ॥ ५ ॥ मूर्ख ! वैसे तो तुम मेरे सम्बन्धी हो, फिर भी हो शत्रु ही, जैसे अपने ही शरीरमें रहनेवाला कोई रोग हो । मैं अपने मित्रोंसे बड़ा प्रेम करता हूँ, उनका सुखपर श्राण

है । अब तुम्हें मारकर ही मैं उनके श्राणसे उन्मृण हो सकता हूँ ॥ ६ ॥ जैसे महापत अङ्गुशसे हाथीको घायल करता है, वैसे ही दन्तवक्त्रने अपनी कम्बवी बातोंसे श्रीकृष्णको चोट पहुँचानेकी चेष्टा की और फिर वह उनके सिरपर बड़े वेगसे गदा मारकर सिंहाके समान गरज उठा ॥ ७ ॥ रणभूमिमें गदाकी चोट खाकर श्री भगवान् श्रीकृष्ण ठस-से-मस न हुए । उन्होंने अपनी बहुत बड़ी कौमोदकी गदा सम्हालकर उससे दन्तवक्त्रके बधःस्वल्पर प्रहार किया ॥ ८ ॥ गदाकी चोटसे दन्तवक्त्रका कलेजा फट गया । वह मुँहसे खून उगलने लगा । उसके बाळ बिखर गये, मुँहाएँ और पैर फैल गये । निदान निश्वाण होकर वह धरतीपर गिर पड़ा ॥ ९ ॥ परीक्षित ! जैसा कि शिशुपालकी मृत्युके समय हुआ था, सब प्राणियोंके सामने ही दन्तवक्त्रके मृत शरीरसे एक अत्यन्त सूक्ष्म ज्योति निकली और वह बड़ी विचित्र रीतिसे भगवान् श्रीकृष्णमें समा गयी ॥ १० ॥

दन्तवक्त्रके मारिका नाम था विदूरथ । वह अपने मारिका मृत्युसे अत्यन्त शोकाकुल हो गया । अब वह क्रोधके मारे कम्बी-कम्बी साँस लेता हुआ हाथमें दाख-तलवार लेकर भगवान् श्रीकृष्णको मार डालनेकी इच्छासे आया ॥ ११ ॥ राजेन्द्र ! जब भगवान् श्रीकृष्णने देखा कि अब वह प्रहार करना ही चाहता है, तब

उन्होंने अपने छूरेके समान तीखी चारवाले चक्रसे किरीट और कुण्डलके साथ उसका सिर चक्रसे अलग कर दिया ॥ १२ ॥ इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्णने शाल्व, उसके विमान सौम, दन्तवक्त्र और विदूरथको, जिन्हें मारना दूसरोंके लिये अशक्य था, मारकर द्वारकापुरीमें प्रवेश किया। उस समय देवता और मनुष्य उनकी स्तुति कर रहे थे। बड़े-बड़े ऋषि-मुनि, सिद्ध-गन्धर्व, विद्याधर और वासुकि आदि महानाग, अम्सरार्य, पितर, यक्ष, किन्नर तथा चारण उनके ऊपर पुष्पोंकी वर्षा करते हुए उनकी विजयके गीत गा रहे थे। भगवान् के प्रवेशके अवसरपर पुरी खूब सजा दी गयी थी और बड़े-बड़े वृष्णिवंशी यादव वीर उनके पीछे-पीछे चले रहे थे ॥ १३-१५ ॥ योगेश्वर एवं जगदीश्वर भगवान् श्रीकृष्ण इसी प्रकार अपनेकों खेल खेलते रहते हैं। जो पशुओंके समान अविषेकी हैं, वे उन्हें कभी हारते भी देखते हैं। परन्तु वास्तवमें तो वे सदा-सर्वदा विजयी ही हैं ॥ १६ ॥

एक बार बलरामजीने सुना कि दुर्योधनादि कौरव पाण्डवोंके साथ युद्ध करनेकी तैयारी कर रहे हैं। वे भयस्थ थे, उन्हें किसीका पक्ष लेकर लड़ना प्रसन्न नहीं था। इसलिये वे तीर्थोंमें स्नान करनेके बहाने द्वारकासे चले गये ॥ १७ ॥ वहाँसे चलकर उन्होंने प्रभासक्षेत्रमें स्नान किया; और तर्पण तथा ब्राह्मण-भोजनके द्वारा देवता, ऋषि, पितर और मनुष्योंको तृप्त किया। इसके बाद वे कुछ ब्राह्मणोंके साथ जिधरसे सरस्वती नदी आ रही थी, उधर ही चले पड़े ॥ १८ ॥ वे क्रमशः पृथुदक, बिन्दुसर, त्रितकूप, सुदर्शनतीर्थ, विशालतीर्थ, ब्रह्मतीर्थ, चक्रतीर्थ और पूर्ववाहिनी सरस्वती आदि तीर्थोंमें गये ॥ १९ ॥ परीक्षित! तदनन्तर यमुनातट और गङ्गातटके प्रधान-प्रधान तीर्थोंमें होते हुए वे नैमिषारण्य क्षेत्रमें गये। उन दिनों नैमिषारण्य क्षेत्रमें बड़े-बड़े ऋषि सत्सङ्गरूप महान् सत्र कर रहे थे ॥ २० ॥ दीर्घकायक सप्तङ्ग-सत्रका नियम लेकर बैठे हुए ऋषियोंने बलरामजीको आया देख अपने-अपने आसनसे उठकर उनका स्वागत-सत्कार किया और यथायोग्य प्रणाम-आशीर्वाद करके उनकी पूजा की ॥ २१ ॥ वे अपने साधियोंके साथ

आसन ग्रहण करके बैठ गये और उनकी अर्चा-पूजा हो चुकी, तब उन्होंने देखा कि भगवान् व्यासके शिष्य रोमहर्षण व्यासगद्दीपर बैठे हुए हैं ॥ २२ ॥ बलरामजीने देखा कि रोमहर्षणजी सूत-जातिमें उत्पन्न होनेपर भी उन श्रेष्ठ ब्राह्मणोंसे उन्हें आसनपर बैठे हुए हैं और उनके आनेपर न तो उठकर स्वागत करते हैं और न हाथ नोचकर प्रणाम ही। इसपर बलरामजीको क्रोध आ गया ॥ २३ ॥ वे कहने लगे कि यह रोमहर्षण प्रतिजोष जातिका होनेपर भी इन श्रेष्ठ ब्राह्मणोंसे तथा धर्मके रक्षक हमलोगोंसे ऊपर बैठा हुआ है, इसलिये यह दुर्बुद्धि मृत्युदण्डका पात्र है ॥ २४ ॥ भगवान् व्यासदेवका शिष्य होकर इसने इतिहास, पुराण, धर्मशास्त्र आदि बहुत-से शास्त्रोंका अध्ययन भी किया है; परन्तु अभी इसका अपने मनपर संयम नहीं है। यह विनयी नहीं, उदण्ड है। इस अजितान्धने झूठमूठ अपनेको बहुत बड़ा पण्डित मान रक्खा है। जैसे नटकी सारी चेष्टाएँ अभिनयमात्र होती हैं, वैसे ही इसका सारा अध्ययन लौंगके लिये है। उससे न इसका लाभ है और न किसी दूसरेका ॥ २५-२६ ॥ जो जोग धर्मका बिना धारण करते हैं, परन्तु धर्मका पालन नहीं करते, वे अधिक पापी हैं और वे मेरे लिये बच करने योग्य हैं। इस जगत्में इसीलिये मैंने अक्षतार धारण किया है' ॥ २७ ॥ भगवान् बलराम यद्यपि तीर्थयात्राके कारण दुष्टोंके वधसे भी अलग हो गये थे, फिर भी इतना काहूँकर उन्होंने अपने हाथमें स्थित कुत्सकी नोकसे उनपर प्रहार कर दिया और वे तुरन्त मर गये। होनहार ही ऐसी थी ॥ २८ ॥ सूतजीके मरते ही सब ऋषि-मुनि हाथ-हाथ करने लगे, सबकेचित्त खिन्न हो गये। उन्होंने देवाधि-देव भगवान् बलरामजीसे कहा—'भ्रमो! आपने यह बहुत बड़ा अघर्म किया ॥ २९ ॥ यदुवंशशिरोमणे! सूतजीको हमी लोगोंने ब्राह्मणोचित आसनपर बैठाया था और जबतक हमारा यह सत्र समाप्त न हो, तबतकके लिये उन्हें शारीरिक कष्टसे रहित आशु भी दे दी थी ॥ ३० ॥ आपने अनजानमें यह ऐसा कर्म कर दिया, जो ब्रह्म-हत्याके समान है। हमलोग यह मानते हैं कि आप

योगेश्वर हैं, वेद भी आपपर शासन नहीं कर सकता । फिर भी आपसे यह प्रार्थना है कि आपका अवतार लोगोंको पवित्र करनेके लिये हुआ है; यदि आप किसीकी प्रेरणके बिना स्वयं अपनी इच्छासे ही इस ब्रह्महत्याका प्रायश्चित्त कर लेंगे तो इससे लोगोंको बहुत शिक्षा मिलेगी ॥ ३१-३२ ॥

भगवान् बलरामने कहा—मैं लोगोंको शिक्षा देनेके लिये, लोगोंपर अनुग्रह करनेके लिये इस ब्रह्महत्याका प्रायश्चित्त अवश्य करूँगा, अतः इसके लिये प्रथम श्रेणीका जो प्रायश्चित्त हो, आपलोग उसीका विधान कीजिये ॥ ३३ ॥ आपलोग इस सूक्तको लंबी आयु, बल, इन्द्रिय-शक्ति आदि जो कुछ भी देना चाहते हों, मुझे बतला दीजिये, मैं अपने योगबलसे सब कुछ सम्पन्न किये देता हूँ ॥ ३४ ॥

ऋषियोंने कहा—बलरामजी ! आप ऐसा कोई उपाय कीजिये जिससे आपका शत्रु, पराक्रम और इनकी शूल भी व्यर्थ न हो और हमलोगोंने इन्हें जो वरदान दिया था, वह भी सत्य हो जाय ॥ ३५ ॥

भगवान् बलरामने कहा—ऋषियो ! वेदोंका ऐसा

कहना है कि आत्मा ही पुत्रके रूपमें उत्पन्न होता है । इसलिये रोमहर्षणके स्थानपर उनका पुत्र आपलोगोंको पुराणोंकी कथा सुनायेगा । उसे मैं अपनी शक्तिसे दीर्घायु, इन्द्रियशक्ति और बल दिये देता हूँ ॥ ३६ ॥ ऋषियो ! इसके अतिरिक्त आपलोग और जो कुछ भी चाहते हों, मुझसे कहिये । मैं आपलोगोंकी इच्छा पूर्ण करूँगा । अनबानमें मुझसे जो अपराध हो गया है, उसका प्रायश्चित्त भी आपलोग सोच-विचारकर बतलाइये । क्योंकि आपलोग इस विषयके विद्वान् हैं ॥ ३७ ॥

ऋषियोंने कहा—बलरामजी ! इन्द्रलका पुत्र कलवल नामका एक भयङ्कर दानव है । वह प्रायैक पर्व-पर यहाँ आ पहुँचता है और हमारे इस सत्रको दूषित कर देता है ॥ ३८ ॥ यदुनन्दन ! वह यहाँ आकर पीव, खून, मिट्टा, मूत्र, शराव और मांसकी वर्षा करने लगता है । आप उस प्राणीको मार लीजिये । हमलोगोंकी यह बहुत बड़ी सेवा होगी ॥ ३९ ॥ इसके बाद आप एकप्रचिन्तसे तीर्थमें जान करते हुए बारह महीनों-तक भारतवर्षकी परिक्रमा करते हुए विचरण कीजिये । इससे आपकी शुद्धि हो जायगी ॥ ४० ॥

उन्नासीवाँ अध्याय

बलवलका उद्धार और बलरामजीकी तीर्थयात्रा

भीशुकादेवजी कहते हैं—परीक्षित ! पर्वका दिन आनेपर बड़ा भयङ्कर अंधड़ चलने लगा । धूलकी वर्षा होने लगी और चारों ओरसे पीवकी दुर्गन्ध आने लगी ॥ १ ॥ इसके बाद यज्ञशालमें बन्वल दानवने मल-मूत्र आदि अपवित्र वस्तुओंकी वर्षा की । तदनन्तर हाथमें त्रिशूल लिये वह स्वयं दिखायी पड़ा ॥ २ ॥ उसका डील-डौल बहुत बड़ा था, ऐसा जान पड़ता मानो ढेर-का-ढेर कालिख इकट्ठा कर दिया गया हो । उसकी चौटी और दाढ़ी-मूँछतपे हुए तैविके समान लाल-लाल थीं । बड़ी-बड़ी दाढ़ों और मौँछोंके कारण उसका मुँह बड़ा भयावना लगता था । उसे देखकर भगवान् बलरामजीने शत्रु-सेनाकी कुर्दी करनेवाले मूसल और दैत्योंको चीर-फाड़ डालनेवाले इन्द्रका स्मरण किया ।

उनके स्मरण करते ही वे दोनों शत्रु गुरंत वहाँ आ पहुँचे ॥ ३-४ ॥ बलरामजीने आकाशमें विचरनेवाले कलवल दैत्यको अपने हल्के अगले भागसे ढींचकर उस ब्रह्मदेवीके सिरपर बड़े जोरसे एक मूसल फसकर जमाया, जिससे उसका ललाट फट गया और वह खून उमलता तथा आर्तस्वरसे चिल्लाता हुआ धरतीपर गिर पड़ा, ठीक वैसे ही जैसे बज्रकी चोट खाकर गेरू आदिसे लाल हुआ कोई पहाड़ गिर पड़ा हो ॥ ५-६ ॥ नैमिषारण्यवासी महामात्म्यवान् मुनियोंने बलरामजीकी स्तुति की, उन्हें कभी न व्यर्थ होनेवाले आशीर्वाद दिये, और जैसे देवतालोग देवराज इन्द्रका अभिषेक करते हैं, वैसे ही उनका अभिषेक किया ॥ ७ ॥ इसके बाद ऋषियोंने बलरामजीको दिव्य वस्त्र और दिव्य आभूषण

दिये तथा एक ऐसी वैजयन्ती माछ भी दी, जो सौन्दर्यका आश्रय एवं कभी न मुरझानेवाले कमलके पुष्पोंसे युक्त है ॥ ८ ॥

तदनन्तर नैमिशारण्यवासी ऋषियोंसे विदा होकर उनके आज्ञानुसार बलरामजी ब्राह्मणोंके साथ कौशिकी नदीके तटपर आये । वहाँ स्नान करके वे उस सरोवरपर गये, जहाँसे सरयू नदी निकली है ॥ ९ ॥ वहाँसे सरयूके किनारे-किनारे चलने लगे, फिर उसे छोड़कर प्रयाग आये; और वहाँ स्नान तथा देवता, ऋषि एवं पितरोंका तर्पण करके वहाँसे पुष्कलाश्रम गये ॥ १० ॥ वहाँसे गण्डकी, गोमती तथा विपाशा नदियोंमें स्नान करके वे सोननदके तटपर गये और वहाँ स्नान किया । इसके बाद गयामे जाकर पितरोंका बहुदेवजीके आज्ञानुसार पूजन-पूजन किया । फिर गङ्गा-सागर-संगमपर गये; वहाँ भी ज्ञान आदि तीर्थ-कृत्योंसे निवृत्त होकर महेन्द्र पर्वतपर गये । वहाँ परशुरामजीका दर्शन और अभिवादन किया । तदनन्तर सप्त गौदावरी, वेणा, पम्पा और भीमरयी आदिमें स्नान करते हुए त्वामि-कार्तिकाका दर्शन करने गये तथा वहाँमे महादेवजीके निवास-स्थान श्रीशैलपर पहुँचे । इसके बाद भगवान् बलरामने द्रविड देशके परम पुण्यमय स्थान वेङ्कटाचल (बालजी) का दर्शन किया और वहाँसे वे कामाक्षी—शिवकास्त्री, विष्णुकास्त्री होते हुए तथा श्रेष्ठ नदी कावेरीमें स्नान करते हुए पुण्यमय श्रीरङ्गक्षेत्रमें पहुँचे । श्रीरङ्गक्षेत्रमे भगवान् विष्णु सदा विराजमान रहते हैं ॥ ११—१४ ॥ वहाँसे उन्होंने विष्णुभगवान् के क्षेत्र ऋषभ पर्वत, दक्षिण मथुरा तथा बड़े-बड़े महापापोंको नष्ट करनेवाले सेतुबन्धकी यात्रा की ॥ १५ ॥ वहाँ बलरामजीने ब्राह्मणोंको दस हजार गौएँ दान कीं । फिर वहाँसे कृतमाछा और ताम्रपर्णी नदियोंमें स्नान करते हुए वे मध्यपर्वतपर गये । वह पर्वत सात कुलपर्वतोंमेंसे एक है ॥ १६ ॥ वहाँपर विराजमान अगस्त्य मुनिको उन्होंने नमस्कार और अभिवादन किया । अगस्त्यजीसे आशीर्वाद और अनुमति प्राप्त करके बलरामजीने दक्षिण समुद्रकी यात्रा की । वहाँ उन्होंने दुर्गादेवीका कन्याकुमारीके रूपमें दर्शन किया ॥ १७ ॥ इसके बाद वे पान्थुन तीर्थ—अनन्तकण्ठ क्षेत्रमें गये

और वहाँके सर्वश्रेष्ठ पञ्चाप्सरस तीर्थमें स्नान किया । उस तीर्थमे सर्वदा विष्णुभगवान् का सान्निध्य रहता है । वहाँ बलरामजीने दस हजार गौएँ दान कीं ॥ १८ ॥

अब भगवान् बलराम वहाँसे चलकर केरल और त्रिगर्त देशोंमें होकर भगवान् शङ्करके क्षेत्र गोकर्णतीर्थमें आये । वहाँ सदा-सर्वदा भगवान् शङ्कर विराजमान रहते हैं ॥ १९ ॥ वहाँसे बलसे विरे द्वीपमें निवास करने-वाली आषादेवीका दर्शन करने गये और फिर उस द्वीपसे चलकर शूर्पारक-क्षेत्रकी यात्रा की, इसके बाद तापी, पयोष्णी और निर्भिन्धा नदियोंमें स्नान करके वे दण्डका-रण्यमें आये ॥ २० ॥ वहाँ होकर वे नर्मदाजीके तटपर गये । परीक्षित । इस पवित्र नदीके तटपर ही माहिष्मतीपुरी है । वहाँ मनुतीर्थमें स्नान करके वे फिर प्रमासक्षेत्रमें चले आये ॥ २१ ॥ वहाँ उन्होंने ब्राह्मणोंसे सुना कि कौत्स और पाण्डवोंके युद्धमें अधिकांश क्षत्रियोंका संहार हो गया । उन्होंने ऐसा अनुभव किया कि अब पृथ्वीका बहुत-सा भार उतर गया ॥ २२ ॥ जिस दिन रणभूमिमें भीमसेन और दुर्योधन गदायुद्ध कर रहे थे, उसी दिन बलरामजी उन्हें रोकनेके लिये कुण्डक्षेत्र जा पहुँचे ॥ २३ ॥

महाराज बुधिक्षिप्र, नकुल, सहदेव, भगवान् श्रीकृष्ण और अर्जुनने बलरामजीको देखकर प्रणाम किया तथा नुप हो रहे । वे डरते हुए मन-ही-मन सोचने लगे कि ये न जाने क्या कहनेके लिये यहाँ पधारे हैं ॥ २४ ॥ उस समय भीमसेन और दुर्योधन दोनों ही हाथमें गदा लेकर एक-दूसरेको जीतनेके लिये क्रोधसे भरकर भौंति-भौंतिके पैतरे बद्ध रह रहे थे । उन्हें देखकर बलरामजीने कहा—॥ २५ ॥ राजा दुर्योधन और भीमसेन । तुम दोनों वीर हो । तुम दोनोंमें बल-पौरुष भी समान है । मैं ऐसा समझता हूँ कि भीमसेनमें बल अधिक है और दुर्योधनने गदायुद्धमें शिक्षा अधिक पायी है ॥ २६ ॥ इसलिये तुमलोगों-जैसे समान बलशालियोंमें किसी एककी जय या पराजय नहीं होती दीखती । अतः तुमलोग व्यर्थका युद्ध मत करो, अब इसे बंद कर दो ॥ २७ ॥ परीक्षित ! बलरामजीकी बात दोनोंके लिये हितकर थी । परन्तु उन दोनोंका वैरभाव इतना दृढमूल हो गया था

कि उन्होंने बलरामजीकी बात न मानी । वे एक-दूसरेकी कटुवाणी और दुर्ज्वहारीका स्मरण करके उन्मत्त-से हो रहे थे ॥ २८ ॥ भगवान् बलरामजीने निश्चय किया कि इनका प्रारम्भ ऐसा ही है; इसलिये उसके सम्बन्धमें विशेष आग्रह न करके वे द्वारका छोट गये । द्वारकामें उपसेन आदि गुरुजनों तथा अन्य सन्धन्वियोंने बड़े प्रेमसे आगे आकर उनका स्वागत किया ॥ २९ ॥ वहाँसे बलरामजी फिर नैमिषारण्य क्षेत्रमें गये । वहाँ ऋषियोंने विरोधभावसे—युद्धादिसे निवृत्त बलरामजीके द्वारा बड़े प्रेमसे सब प्रकारके यज्ञ कराये । परीक्षित ! सच पूछो तो जितने भी यज्ञ हैं, वे बलरामजीके अंग ही हैं । इसलिये उनका यह यज्ञावसान जेक-सप्रहमे छिये ही था ॥ ३० ॥ सर्वसमर्थ भगवान् बलरामने उन ऋषियोंको विद्युद्ध तत्त्वज्ञानका उपदेश किया, जिससे

वे जोग इस सम्पूर्ण विश्वको अपने-आपमें और अपने-आपको सारे विश्वमें अनुभव करने लगे ॥ ३१ ॥ इसके बाद बलरामजीने अपनी पत्नी रेवतीके साथ यज्ञान्त-ज्ञान किया और सुन्दर-सुन्दर कला तथा आभूषण पहनकर अपने गर्ह-बन्धु तथा खलन-सम्बन्धियोंके साथ इस प्रकार शोभायमान हुए, जैसे अपनी चन्द्रिका एवं नक्षत्रोंके साथ चन्द्रदेव होते हैं ॥ ३२ ॥ परीक्षित ! भगवान् बलराम स्वयं अनन्त हैं । उनका स्वरूप मन और वाणी-के परे है । उन्होंने जीजके छिये ही यह भनुष्योंका-सा शरीर ग्रहण किया है । उन बलशाली बलरामजीके ऐसे-ऐसे चरित्रोंकी गिनती भी नहीं की जा सकती । ३३ ॥ जो पुरुष अनन्त, सर्वव्यापक, अद्विभूतकर्मा भगवान् बलरामजीके चरित्रोंका सार्य-प्रातः स्मरण करता है, वह भगवान्का अत्यन्त प्रिय हो जाता है ॥ ३४ ॥

अस्सीवाँ अध्याय

श्रीकृष्णके द्वारा सुदामाजीका स्वागत

राजा परीक्षितने कहा—भगवन् ! प्रेम और मुक्तिके दाता परब्रह्म परमात्मा भगवान् श्रीकृष्णकी शक्ति अनन्त है । इसलिये उनकी माधुर्य और ऐश्वर्यसे भरी लीलाएँ भी अनन्त हैं । अब हम उनकी दूसरी लीलाएँ, जिनका वर्णन आपने अवतक नहीं किया है, सुनना चाहते हैं ॥ १ ॥ ब्रह्मन् ! यह जीव त्रिषय-सुखको खोजते-खोजते अत्यन्त दुखी हो गया है । वे वाणकी तरह इसके चित्तमें चुभते रहते हैं । ऐसी स्थितिमें ऐसा कौन-सा रसिक—रसका विशेषण पुरुष होगा, जो बार-बार पवित्रकीर्ति भगवान् श्रीकृष्णकी मङ्गलमयी लीलाओंका श्रवण करके भी उनसे विमुख होना चाहेगा ॥ २ ॥ जो वाणी भगवान्के गुणोक्ता गान करती है, वही सच्ची वाणी है । वे ही हाथ सच्चे हाथ हैं, जो भगवान्की सेवाके छिये काम करते हैं । वही मन सच्चा मन है, जो चराचर प्राणियोंमें निवास करनेवाले भगवान्का स्मरण करता है; और वे ही कान वास्तवमें कान कहने योग्य हैं, जो भगवान्की पुण्यमयी कथाओंका श्रवण करते हैं ॥ ३ ॥ वही सिर सिर है, जो चराचर जगत्को भगवान्की चञ्चल प्रतिमा समझकर नमस्कार करता है, और जो

सर्वत्र भगवद्भिग्रहका दर्शन करते हैं, वे ही नेत्र वास्तवमें नेत्र हैं । शरीरके जो अङ्ग भगवान् और उनके भक्तोंके करणोदकका सेवन करते हैं, वे ही अङ्ग वास्तवमें अङ्ग हैं, सच पूछिये तो उन्हींका होना सफल है ॥ ४ ॥

सूतजी कहते हैं—शौनकादि ऋषियो ! जब राजा परीक्षितने इस प्रकार प्रश्न किया, तब भगवान् श्रीकृष्णदेवजीका हृदय भगवान् श्रीकृष्णमें ही लक्ष्मी हो गया । उन्होंने परीक्षितसे इस प्रकार कहा ॥ ५ ॥

श्रीकृष्णदेवजीने कहा—परीक्षित ! एक शासन भगवान् श्रीकृष्णके परम मित्र थे । वे बड़े ब्रह्मज्ञानी, निरर्गलसे निरक्त, शान्तचित्त और जितेन्द्रिय थे ॥ ६ ॥ वे गृहस्थ होनेपर भी किसी प्रकारका संग्रह-परिग्रह न रखकर प्रारम्भिके अनुसार जो कुछ मिल जाता, उसीमें समुष्ट रहते थे । उनके बल तो फटे-पुराने थे ही, उनकी पत्नीके भी वैसे ही थे । वह भी अपने पतिके समान ही भूखसे दुबली हो रही थी ॥ ७ ॥ एक दिन दक्षिणतकी प्रतिभृति दुःखिनी पतिव्रता भूखके मारे कौपसी हुई अपने पतिदेवके पास गयी और मुरझाये हुए मुँहसे बोली—॥ ८ ॥ भगवन् ! साक्षात् लक्ष्मीपति

भगवान् श्रीकृष्ण आपके सखा हैं। वे भक्तवाञ्छाकल्पतरु, शरणागतवत्सल और ब्राह्मणों के परम भक्त हैं ॥ ९ ॥ परम भाग्यवान् आर्यपुत्र। वे साधु-संतों के, सत्पुरुषों के एकमात्र आश्रय हैं। आप उनके पास जाइये। जब वे जानेंगे कि आप कुटुम्बी हैं और उनके बिना दुखी हो रहे हैं, तो वे आपको बहुत-सा धन देंगे ॥ १० ॥ आजकल वे भोज, हृषिण और अन्धकर्मशी यादवों के स्वामी के रूप में द्वारकामें ही निवास कर रहे हैं। और इतने उदार हैं कि जो उनके चरणकमलोंका स्मरण करते हैं, उन प्रेमी भक्तोंको वे अपने-आपतकका दान कर डालते हैं। ऐसी स्थितिमें जगद्गुरु भगवान् श्रीकृष्ण अपने भक्तोंको यदि धन और विषय-सुख, जो अल्पतयाञ्चनीय नहीं है, दे दे, तो इसमें आश्चर्यकी कौन-सी बात है ? ॥ ११ ॥ इस प्रकार जब उन ब्राह्मणदेवताकी पत्नीने अपने पतिदेवसे कई बार बड़ी नम्रतासे प्रार्थना की, तब उन्होंने सोचा कि 'धनकी तो कोई बात नहीं है; परन्तु भगवान् श्रीकृष्णका दर्शन हो जायगा, यह तो जीवनका बहुत बड़ा लाभ है' ॥ १२ ॥ यही विचार करके उन्होंने जानेका निश्चय किया और अपनी पत्नीसे बोले—'कल्याणी ! घरमें कुछ मंड देनेयोग्य वस्तु भी है क्या ! यदि हो तो दे दो' ॥ १३ ॥ तब उस ब्राह्मणीने पास-पड़ोसके ब्राह्मणों के घरसे चार मुष्टी चिठड़े मँगकर एक कपड़ेमें बाँध दिये और भगवान्को मंड देनेके लिये अपने पतिदेवको दे दिये ॥ १४ ॥ इसके बाद वे ब्राह्मणदेवता उन चिठड़ोंको लेकर द्वारका-के लिये चल पड़े। वे मार्गमें यह सोचते जाते थे कि 'भुसे भगवान् श्रीकृष्णके दर्शन कैसे प्राप्त होंगे ?' ॥ १५ ॥

परीक्षित ! द्वारकामें पहुँचनेपर वे ब्राह्मणदेवता दूसरे ब्राह्मणों के साथ सैनिकोंकी तीन छावनियाँ और तीन बघोड़ियाँ पार करके भगवद्दर्शका पालन करनेवाले अन्धक और वृष्णिवंशी यादवोंके महलमें, जहाँ पहुँचना अत्यन्त कठिन है, जा पहुँचे ॥ १६ ॥ उनके बीच भगवान् श्रीकृष्णकी सोलह हजार रानियोंके महल थे। उनमेंसे एकमे उन ब्राह्मणदेवताने प्रवेश किया। वह महल खूब सजा-सजाया—अत्यन्त शोभायुक्त था। उसमें प्रवेश करते समय उन्हें ऐसा माद्धम डुआ, मानो

वे ब्रह्मानन्दके समुद्रमें डूब-उतरा रहे हों ॥ १७ ॥ उस समय भगवान् श्रीकृष्ण अपनी प्राणप्रिया रुक्मिणी-जीके पलंगपर निराधे हुए थे। ब्राह्मणदेवताको दूरसे ही देखकर वे सहसा उठ खड़े हुए और उनके पास आकर बड़े आनन्दसे उन्हें अपने मुजपाशमें बाँध लिया ॥ १८ ॥ परीक्षित ! परमानन्दस्वरूप भगवान् अपने प्यारे सखा ब्राह्मणदेवताके अङ्ग-स्पर्शसे अत्यन्त आनन्दित हुए। उनके कमलके समान कोमल नेत्रोंसे प्रेमके आँसू बरसने लगे ॥ १९ ॥ परीक्षित ! कुछ समयके बाद भगवान् श्रीकृष्णने उन्हें ले जाकर अपने पलंगपर बैठा दिया और स्वयं पूजनकी सामग्री लाकर उनकी पूजा की। प्रिय परीक्षित ! भगवान् श्रीकृष्ण समीचीन पवित्र करनेवाले हैं; फिर भी उन्होंने अपने हाथों ब्राह्मणदेवताके पाँव पखारकर उनका चरणोदक अपने सिरपर धारण किया और उनके शरीरमें चन्दन, अरुण, केसर आदि दिव्य गन्धोंका लेपन किया ॥ २०-२१ ॥ फिर उन्होंने बड़े आनन्दसे सुगन्धित धूप और दीपावलीसे अपने मित्रकी आरती उतारी। इस प्रकार पूजा करके पान एवं गाय देकर मधुर वचनोंसे 'भले पधार' ऐसा कहकर उनका स्वागत किया ॥ २२ ॥ ब्राह्मणदेवता फटे-पुराने वस्त्र पहने हुए थे। शरीर अत्यन्त मलिन और दुर्बल था। देखकी सारी नसें दिखायी पड़ती थीं। स्वयं भगवती रुक्मिणीजी चकराकर उनकी सेवा करने लगीं ॥ २३ ॥ अन्तःपुरकी स्त्रियाँ यह देखकर अत्यन्त विस्मित हो गयीं कि पवित्रवर्ति भगवान् श्रीकृष्ण अतिशय प्रेमसे इस मैले-कुचैले अवधूत ब्राह्मणकी पूजा कर रहे हैं ॥ २४ ॥ वे आपसमें कहने लगीं—'इस नगवर्ग, निर्धन, निन्दनीय और निकृष्ट मिश्रमंगेने ऐसा कौन-सा पुण्य किया है, जिससे त्रिलोकी-गुरु श्रीनिवास श्रीकृष्ण स्वयं इसका आदर-सत्कार कर रहे हैं। देखो तो सही, इन्होंने अपने पलंगपर सेवा करती हुई स्वयं रुक्मिणी रुक्मिणीजीकी ओर खेदकर इस ब्राह्मणको अपने बड़े माई बच्चाजीके समान हृदयसे लगाया है' ॥ २५-२६ ॥ प्रिय परीक्षित ! भगवान् श्रीकृष्ण और वे ब्राह्मण दोनों एक-दूसरेका हाथ पकड़कर अपने पूर्वजीवनकी उन आनन्ददायक वटनाओंका स्मरण और वर्णन करने लगे, जो गुरुकुलमें रहते समय बहित हुई थीं ॥ २७ ॥



सुदामा-सत्कार

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—धर्मके मर्मज्ञ ब्राह्मण-देव । गुरुदक्षिणा देकर जब आप गुरुकुलसे लौट आये, तब आपने अपने अनुरूप छीसे विवाह किया या नहीं ! ॥ २८ ॥ मैं जानता हूँ कि आपका चित्त गृहस्थीमें रहनेपर भी प्रायः विषय-योगमें आसक्त नहीं है । विद्वन् ! यह भी मुझे मात्सर्य है कि धन आदिमें भी आपकी कोई प्रीति नहीं है ॥ २९ ॥ जगत्में बिरले ही लोग ऐसे होते हैं, जो भगवान् की मायासे निर्मित विषयसम्बन्धी वासनाओंका त्याग कर देते हैं और चित्तमें विषयोंकी तनिक भी वासना न रहनेपर भी मेरे समान केवल लोकशिक्षाके लिये कर्म करते रहते हैं ॥ ३० ॥ ब्राह्मणशिरोमणे ! क्या आपको उस समयकी बात याद है, जब हम दोनों एक साथ गुरुकुलमें निवास करते थे । सचमुच गुरुकुलमें ही द्विजातियोंको अपने ज्ञातव्य वस्तुका ज्ञान होता है, जिसके द्वारा वे अज्ञानान्धकारसे पार हो जाते हैं ॥ ३१ ॥ मित्र ! इस संसारमें शरीरका कारण—जन्ममृता पिता प्रथम गुरु है । इसके बाद उपमयन-संस्कार करके सत्कर्मोंकी शिक्षा देनेवाला दूसरा गुरु है । वह मेरे ही समान पूज्य है । तदनन्तर ज्ञानोपदेश करके परमात्माको प्राप्त करानेवाला गुरु तो मेरा स्वरूप ही है । वर्णाश्रमियोंके ये तीन गुरु होते हैं ॥ ३२ ॥ मेरे प्यारे मित्र ! गुरुके स्वरूपमें स्वयं मैं हूँ । इस जगत्में वर्णाश्रमियोंमें जो लोग अपने गुरुदेवके उपदेशानुसार अनायास ही भवसागर पार कर लेते हैं, वे अपने स्वार्थ और परमार्थके सच्चे जानकार हैं ॥ ३३ ॥ प्रिय मित्र ! मैं सबका आत्मा हूँ, सबके हृदयमें अन्तर्गामीरूपसे विराजमान हूँ । मैं गृहस्थके धर्म पञ्चमहायज्ञ आदिसे, ब्रह्मचारीके धर्म उपनयन-वेदाध्ययन आदिसे, वानप्रस्थीके धर्म तपस्वसे और सब ओरसे उपरत हो जाना—इस संन्यसीके धर्मसे भी उतना सन्तुष्ट नहीं होता, जितना गुरुदेवकी सेवा-शुश्रूषासे सन्तुष्ट होता हूँ ॥ ३४ ॥

ब्रह्मन् ! जिस समय हमलोग गुरुकुलमें निवास कर रहे थे, उस समयकी वह बात आपको याद है क्या, जब हम दोनोंको एक दिन हमारी गुरुपत्नीने ईश्वर जानेके लिये जंगलमें भेजा था ॥ ३५ ॥ उस समय

हमलोग एक घोर जंगलमें गये हुए थे और बिना शत्रुके ही बड़ा भयङ्कर औषधी-मानी आ गया था । आकाशमें बिजली कलकने लगी थी ॥ ३६ ॥ अब सूर्यास्त हो गया; चारों ओर अँधेरा-ही-अँधेरा फैल गया । घरतीपर इस प्रकार पानी-ही-मानी हो गया कि कहाँ गङ्गा है, कहाँ किनारा, इसका पता ही न चलता था ॥ ३७ ॥ वह क्या क्या थी, एक छोट-मोटा प्रलय ही था । औषधीके झटकों और वर्णाकी बौछारोंसे हमलोगोंको बड़ी पीड़ा हुई, दिशाका ज्ञान न रहा । हमलोग अत्यन्त आतुर हो गये और एक-दूसरेका हाथ पकड़कर जंगलमें इधर-उधर भटकते रहे ॥ ३८ ॥ जब हमारे गुरुदेव सान्दीपनि मुनिके इस बातका पता चला, तब वे सूर्योदय होनेपर अपने शिष्य हमलोगोंको ढूँढते हुए जंगलमें पहुँचे और उन्होंने देखा कि हम अत्यन्त आतुर हो रहे हैं ॥ ३९ ॥ वे कहने लगे—‘आश्चर्य है, आश्चर्य है ! पुत्रो ! तुमलोगोंने हमारे लिये अत्यन्त कष्ट उठाया । सभी प्राणियोंको अपना शरीर सबसे अधिक प्रिय होता है; परन्तु तुम दोनों उसकी भी परवा न करके हमारी सेवामें ही संलग्न रहे ॥ ४० ॥ गुरुके श्रणसे मुक्त होनेके लिये सत्-शिष्योंका इतना ही कर्तव्य है कि वे विद्युद्-भाक्से अपना सब कुछ और शरीर भी गुरुदेवकी सेवामें समर्पित कर दें ॥ ४१ ॥ द्विजशिरोमणियो ! मैं तुम-लोगोंसे अत्यन्त प्रसन्न हूँ । तुम्हारे सारे मनोरथ, सारी अभिलषाएँ पूर्ण हों और तुमलोगोंने हमसे जो वेदाध्ययन किया है, वह तुम्हें सर्वदा कण्ठस्थ रहे तथा इस लोक एवं परलोकमें कहाँ भी निष्कल न हो ॥ ४२ ॥ प्रिय मित्र ! जिस समय हमलोग गुरुकुलमें निवास कर रहे थे, हमारे जीवनमें ऐसी-ऐसी अनेकों घटनाएँ घटित हुई थीं । इसमें सन्देह नहीं कि गुरुदेवकी कृपासे ही मनुष्य शान्तिका अधिकारी होता और पूर्णताको प्राप्त करता है ॥ ४३ ॥

ब्राह्मणदेवताने कहा—देवताओंके आराध्यदेव जगद्-गुरु श्रीकृष्ण ! मन्त्र अब हमें क्या करना बाकी है ! क्योंकि आपके साथ, जो सत्यसङ्कल्प परमात्मा हैं, हमें गुरुकुलमें रहनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ था ॥ ४४ ॥

प्रभो ! छन्दोग्य वेद धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष चतुर्विध आप वेदाध्ययनके लिये गुरुकुलमें निवास करें, यह पुरुषार्थके मूल स्रोत हैं; और वे हैं आपके शरीर । वही मनुष्य-स्त्रीजका अभिनय नहीं तो और क्या है ? ॥४५॥

इक्यासीवाँ अध्याय

सुदामाजीको ऐश्वर्यकी प्राप्ति

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—प्रिय परीक्षित ! भगवान् श्रीकृष्ण सबके मनकी बात जानते हैं । वे ब्राह्मणोंके परम भक्त, उनके क्लेशोंके नाशक तथा संतोंके एकमात्र आश्रय हैं । वे पूर्वोक्त प्रकारसे उन ब्राह्मणदेवताके साथ बहुत देरतक बातचीत करते रहे । अब वे अपने प्यारे सखा उन ब्राह्मणसे तनिक मुसकराकर विनोद करते हुए बोले । उस समय भगवान् श्रीकृष्ण उन ब्राह्मणदेवताकी ओर प्रेमभरी दृष्टिसे देख रहे थे ॥ १-२ ॥

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—ब्रह्मन् ! आप अपने घरसे मेरे लिये क्या उपहार लये हैं ? मेरे प्रेमी भक्त जब प्रेमसे बोधी-सी वस्तु भी मुझे अर्पण करते हैं, तो वह मेरे लिये बहुत हो जाती है । परन्तु मेरे भक्त यदि बहुत-सी सामग्री भी मुझे भेंट करते हैं, तो उससे मैं सन्तुष्ट नहीं होता ॥ १ ॥ जो पुरुष प्रेम-भक्तिसे फल-फल अथवा पचा-पानीमेंसे कोई भी वस्तु मुझे समर्पित करता है, तो मैं उस छुद्रचित्त भक्तका वह प्रेमोपहार केवल स्वीकार ही नहीं करता, बल्कि शरत भोग लगा लेता हूँ ॥ ४ ॥ परीक्षित ! भगवान् श्रीकृष्णके ऐसा कहनेपर भी उन ब्राह्मणदेवताने कजावश उन लक्ष्मीपतिको वे चार मुट्ठी चिउड़ा नहीं दिये । उन्होंने संकोचसे अपना मुँह नीचे कर लिया था । परीक्षित ! भगवान् श्रीकृष्ण समस्त प्राणियोंके हृदयका एक-एक सङ्कल्प और उनका अभाव भी जानते हैं । उन्होंने ब्राह्मणके आनेका कारण, उनके हृदयकी बात जान ली । अब वे निवार करने लगे कि 'एक तो यह मेरा प्यारा सखा है, दूसरे इतने पहले कभी लक्ष्मीकी कामनासे मेरा मजन नहीं किया है । इस समय यह अपनी पतिव्रता पत्नीको प्रसन्न करनेके लिये उसीके आग्रहसे यहाँ आया है । अब मैं इसे ऐसी सम्पत्ति दूँगा, जो देवताओंके लिये भी अत्यन्त दुर्लभ है ॥ ५-७ ॥ भगवान् श्रीकृष्णने

ऐसा निवार करके उनके वस्त्रमेंसे चिउड़ेकी एक पोटली-में बँधा हुआ चिउड़ा थप कया है ?—ऐसा कहकर स्वयं ही छीन लिया ॥ ८ ॥ और बड़े आदरसे कहने लगे—'प्यारे मित्र ! यह तो तुम मेरे लिये अत्यन्त प्रिय भेंट ले आये हो । ये चिउड़े न केवल मुझे, बल्कि सारे संसारको तृप्त करनेके लिये पर्याप्त हैं' ॥ ९ ॥ ऐसा कहकर वे उसमेंसे एक मुट्ठी चिउड़ा खा गये और दूसरी मुट्ठी ज्योंही मरी, त्योंही लक्ष्मणीके रूपमें स्वयं भगवती लक्ष्मीजीने भगवान् श्रीकृष्णका हाथ पकड़ लिया । क्योंकि वे तो एकमात्र भगवान्के परायण हैं, उन्हें छोड़कर और कहाँ जा नहीं सकती ॥ १० ॥ लक्ष्मणीजीने कहा—'विद्यामन् ! बस, बस । मनुष्यको इस लोकमें तथा मरनेके बाद परलोकमें भी समस्त सम्पत्तियोंकी संपृद्धि प्राप्त करनेके लिये यह एक मुट्ठी चिउड़ा ही बहुत है; क्योंकि आपके लिये इतना ही प्रसन्नताका हेतु बन जाता है ॥ ११ ॥

परीक्षित ! ब्राह्मणदेवता उस रातको भगवान् श्रीकृष्णके महलमें ही रहे । उन्होंने बड़े आरामसे वहाँ खाय-पिन्ध और ऐसा अनुभव किया, मानो मैं वैकुण्ठमें ही पहुँच गया हूँ ॥ १२ ॥ परीक्षित ! श्रीकृष्णसे ब्राह्मणको प्रत्यक्षरूपमें कुछ भी न भिन्न । फिर भी उन्होंने उनसे कुछ गौण नहीं । वे अपने चित्तकी कारदत्तपर कुछ लज्जितसे होकर भगवान् श्रीकृष्णके दर्शनजनित आनन्दमें डूबते-उतरते अपने घरकी ओर चले पड़े ॥ १३-१४ ॥ वे मन-ही-मन सोचने लगे—'अहो, कितने आनन्द और आश्चर्यकी बात है । ब्राह्मणोंको अपना इष्टदेव माननेवाले भगवान् श्रीकृष्णकी ब्राह्मणभक्ति आज मैंने अपनी आँखों से देख ली । वन्य है ! जिनके वशःस्थलपर स्वयं लक्ष्मीजी सदा विराजमान रहती हैं, उन्होंने मुझ अत्यन्त दरिद्रको अपने हृदयसे लगा लिया ॥ १५ ॥

कहाँ तो मैं अत्यन्त पापी और दरिद्र, और कहाँ लक्ष्मी-
के एकमात्र आश्रय भगवान् श्रीकृष्ण ! परन्तु उन्होंने
‘यह ब्राह्मण है’—ऐसा समझकर मुझे अपनी शुभावर्णमें
भरकर हृदयसे लगा लिया ॥ १६ ॥ इतना ही नहीं,
उन्होंने मुझे उस पराङ्पर सुखदा, जिसपर उनकी
प्राणप्रिया रुक्मिणीजी शयन करती हैं । मानो मैं उनका
सगा भाई हूँ । कदाँतक कहूँ : मैं यका हुआ था, इस-
लिये स्वयं उनकी पटरानी रुक्मिणीजीने अपने हाथों
चैवर डुलाकर मेरी सेवा की ॥ १७ ॥ ओह, देवताओं-
के आराध्यदेव होकर भी ब्राह्मणोंको अपना इष्टदेव
माननेवाले प्रभुने पाँच दशकर, अपने हाथों खिन्न-रिज-
कर मेरी अत्यन्त सेवा-शुश्रूषा की और देवताके समान
मेरी पूजा की ॥ १८ ॥ खर्ग, मोक्ष, पुष्पी और रसा-
तलकी सम्पत्ति तथा समस्त योगसिद्धियोंकी प्राप्तिका मूल
उनके चरणोंकी पूजा ही है ॥ १९ ॥ फिर भी परम-
दयालु श्रीकृष्णने यह सोचकर मुझे बोका-सा भी धन नहीं
दिया कि कहाँ यह दरिद्र धन पाकर बिल्कुल मतवाल
न हो जाय और मुझे न झूठ बैठे ॥ २० ॥

इस प्रकार मन-ही-मन विचार करते-करते ब्राह्मण-
देवता अपने घरके पास पहुँच गये । वे वहाँ क्या
देखते हैं कि सब-का-सब स्थान सूर्य, अग्नि और चन्द्रमाके
समान तेजस्वी रत्ननिर्मित महलोंसे घिरा हुआ है । ठौर-
ठौर चित्र-विचित्र उपवन और उद्यान बने हुए हैं तथा
उनमें झुंड-के-झुंड रंग-विरंगे पक्षी कलबल कर रहे हैं ।
सरोवरोंमें कुसुदिनी तथा श्वेत, नील और सौगन्धिक—
भौति-भौतिके कमल खिले हुए हैं; सुन्दर-सुन्दर स्त्री-
पुरुष बन-ठनकर इधर-उधर विचर रहे हैं । उस स्थान-
को देखकर ब्राह्मणदेवता सोचने लगे—‘मैं यह क्या
देख रहा हूँ ? यह किसका स्थान है ? यदि यह कहीं
स्थान है, जहाँ मैं रहता था, तो यह ऐसा कैसे हो
गया ॥ २१-२३ ॥ इस प्रकार वे सोच ही रहे थे कि
देवताओंके समान सुन्दर-सुन्दर स्त्री-पुरुष गाजे-बाजेके
साथ मङ्गलगीत गाते हुए उस महामाग्यवान् ब्राह्मणकी
अगवाणी करनेके लिये आये ॥ २४ ॥ पतिदेवका शुभा-
गमन सुनकर ब्राह्मणीको अपार आनन्द हुआ और वह
हृदयकाकर जल्दी-जल्दी घरसे निकल आयी, वह ऐसी

मादुर्य होती थी मानो मूर्तिमती लक्ष्मीजी ही कमलवनसे
पहारी हों ॥ २५ ॥ पतिदेवको देखते ही पतिव्रता
पत्नीके नेत्रोंमें प्रेय और उत्कण्ठके आकासे भाँसू छलक
आये । उसने अपने नेत्र बंद कर लिये । ब्राह्मणीने
बड़े प्रेममग्नसे उन्हें नमस्कार किया और मन-ही-मन
आञ्जित भी ॥ २६ ॥

प्रिय परीक्षित ! ब्राह्मणपत्नी सोनेका हार पहनी
हुई दासियोंके बीचमें विमानस्थित देवाङ्गनाके समान
अत्यन्त शोभायमान एवं वैदीयमान हो रही थी । उसे
इस रूपमें देखकर वे विस्मित हो गये ॥ २७ ॥ उन्होंने
अपनी पत्नीके साथ बड़े प्रेमसे अपने महलमें प्रवेश
किया । उनका महल कज्र था, मानो देवराज इन्द्रका
निवासस्थान । इसमें मणियोंके सैकड़ों खंभे खड़े
थे ॥ २८ ॥ हाथीके दाँतके बने हुए और सोनेके
पातसे ढँके हुए पराङ्गपर दूधके फेनकी तरह श्वेत और
कोमल निळीने विद्य रहे थे । बहुत-से चैवर वहाँ रखे
हुए थे, जिनमें सोनेकी ढंभियाँ लगी हुई थी ॥ २९ ॥
सोनेके सिंहासन शोभायमान हो रहे थे, जिनपर बड़ी
कोमल-कोमल गदियाँ लगी हुई थी । ऐसे नौदोबे की
छिन्नमिन्न रहे थे, जिनमें मोतियोंकी ढंभियाँ लटक रही
थी ॥ ३० ॥ रत्नकलमणिकी खूब मीतोंपर पत्थरकी
पच्चीभरती की हुई थी । स्तननिर्मित स्त्रीमूर्तियोंके हाथों-
में रत्नोंके दीपक जगमगा रहे थे ॥ ३१ ॥ इस प्रकार
समस्त सम्पत्तियोंकी समृद्धि देखकर और उसका कोई
प्रत्यक्ष कारण न पाकर, बड़ी गम्भीरतासे ब्राह्मणदेवता
विचार करने लगे कि मेरे पास इतनी सम्पत्ति कहाँसे
आ गयी ॥ ३२ ॥ ये मन-ही-मन कहने लगे—‘मैं
जन्मसे ही भाग्यहीन और दरिद्र हूँ । फिर मेरी इस
सम्पत्ति-समृद्धिका कारण क्या है ? अवश्य ही परमेश्वर-
शाली यदुवंशशिरोमणि भगवान् श्रीकृष्णके कृपाकटाक्षके
अतिरिक्त और कोई कारण नहीं हो सकता ॥ ३३ ॥
यह सब कुछ उनकी कर्तृणाकी ही देन है । स्वयं
भगवान् श्रीकृष्ण पूर्वकाल और लक्ष्मीपति होनेके कारण
अनन्त योगसामग्रियोंसे युक्त हैं । इसलिये वे यावक
भक्तको उसके भक्त भाव जानकर बहुत कुछ दे देते
हैं, परन्तु उसे समझते हैं बहुत थोड़ा; इसलिये सामने
कुछ कहते नहीं । मेरे यदुवंशशिरोमणि सखा श्याम-

सुन्दर सचमुच उस मेघसे भी बढ़कर उदार हैं, जो समुद्रको भर देनेकी शक्ति रखनेपर भी किसानके सामने न बरसकर उसके सो जानेपर रातमें बरसता है और बहुत बरसनेपर भी थोड़ा ही समझता है ॥ ३४ ॥ मेरे प्यारे सखा श्रीकृष्ण देते हैं बहुत, पर उसे मानते हैं बहुत थोड़ा । और उनका प्रेमी मछ यदि उनके लिये कुछ भी कर दे, तो वे उसको बहुत मान लेते हैं । देखो तो सही ! मैंने उन्हें केवल एक मुट्ठी चिउड़ा में दिया था, पर उदार-शिरोमणि श्रीकृष्णने उसे नितने प्रेमसे स्वीकार किया ॥ ३५ ॥ मुझे जन्म-जन्म उन्हींका प्रेम, उन्हींकी हितैषिता, उन्हींकी मित्रता और उन्हींकी सेवा प्राप्त हो । मुझे सम्पत्तिकी आवश्यकता नहीं, उदा-सर्वदा उन्हीं गुणोंके एकमात्र निवासस्थान महाबलभावा भगवान् श्रीकृष्णके चरणोंमें भेरा अनुराग बढ़ता जाय और उन्हींके प्रेमी मछोंका सस्त्र प्राप्त हो ॥ ३६ ॥ अजन्मा भगवान् श्रीकृष्ण सम्पत्ति आदिके दोष जानते हैं । वे देखते हैं कि बड़े-बड़े वनियोंका धन और ऐश्वर्यके मदसे पतन हो जाता है । इसलिये वे अपने अवूरदर्शी भक्तोंको उसके नाँते रहनेपर भी तरह-तरह-की सम्पत्ति, राज्य और ऐश्वर्य आदि नहीं देते । यह

उनकी बड़ी कृपा है ॥ ३७ ॥ परीक्षित ! अपनी बुद्धिसे इस प्रकार निश्चय करके वे ब्राह्मणदेवता त्याग-पूर्वक क्वासुखमग्नसे अपनी पत्नीके साथ भगवत्प्रसाद-स्वरूप विषयोंको ग्रहण करने लगे और दिनोदिन उनकी प्रेम-मक्ति बढ़ने लगी ॥ ३८ ॥

प्रिय परीक्षित ! देवताओंके भी आराध्यदेव भक्त-महारी यक्षपति सर्वशक्तिमान् भगवान् स्वयं ब्राह्मणोंको अपना प्रभु, अपना इष्टदेव मानते हैं । इसलिये ब्राह्मणों-से बढ़कर और कोई भी प्राणी जगत्में नहीं है ॥ ३९ ॥ इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्णके प्यारे सखा उस ब्राह्मणने देखा कि यद्यपि भगवान् अजित हैं, किसीके अधीन नहीं हैं; फिर भी वे अपने सेवकोंके अधीन हो जाते हैं, उनसे पराजित हो जाते हैं, अब वे उन्हींके ध्यानमें तन्मय हो गये । ध्यानके आवेगसे उनकी अधिष्ठात्री गौत कट गयी और उन्होंने थोड़े ही समयमें भगवान्का वास, जो कि संतोंका एकमात्र आश्रय है, प्राप्त किया ॥ ४० ॥ परीक्षित ! ब्राह्मणोंको अपना इष्टदेव मानने-वाले भगवान् श्रीकृष्णकी इस ब्राह्मणमतिकी जो सुगता है, उसे भगवान्के चरणोंमें प्रेमभाव प्राप्त हो जाता है और वह कर्मबन्धनसे मुक्त हो जाता है ॥ ४१ ॥

बयासीवाँ अध्याय

भगवान् श्रीकृष्ण-बलरामसे गोप-गोपियोंकी मेंट

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित ! इसी प्रकार भगवान् श्रीकृष्ण और बलरामजी द्वारकामें निवास कर रहे थे । एक बार सर्वप्राप्त सूर्यग्रहण लगा, वैसा कि प्रलयके समय लग करता है ॥ १ ॥ परीक्षित ! मनुष्योंको ज्योतिषियोंके द्वारा उस ग्रहणका पता पहलेसे ही चल गया था, इसलिये सब जग अपना-अपने कल्याणके उद्देश्यसे पुण्य आदि उपार्जन करनेके लिये समन्तपञ्चक-तीर्थ कुरुक्षेत्रमें आये ॥ २ ॥ समन्तपञ्चक क्षेत्र वह है, जहाँ शङ्खाचार्योंमें श्रेष्ठ परशुरामजीने सारी पृथ्वीको क्षत्रियहीन करके रानाओंकी रुधिरधारासे पाँच बड़े-बड़े कुण्ड बना दिये थे ॥ ३ ॥ जैसे कोई साधारण मनुष्य अपने पापकी निवृत्तिके

लिये प्रायश्चित्त करता है, वैसे ही सर्वशक्तिमान् भगवान् परशुरामने अपने साथ कर्मका कुछ सम्बन्ध न होनेपर भी ज्ञेयकर्मोंकी रक्षाके लिये वहीँपर यज्ञ किया था ॥ ४ ॥

परीक्षित ! इस महान् तीर्थयात्राके अवसरपर भारतवर्षके सभी प्रान्तोंकी जनता कुरुक्षेत्र आयी थी । उनमें अक्रूर, वसुदेव, उग्रसेन आदि बड़े-बड़े तथा गद, प्रद्युम्न, साम्ब आदि अन्य यदुवंशी भी अपने-अपने पापोंका नाश करनेके लिये कुरुक्षेत्र आये थे । प्रद्युम्न-नन्दन अनिरुद्ध और यदुवंशी सेनापति कृतवर्मा—ये दोनों सुचन्द्र, शुक, सारण आदिके साथ नगरकी रक्षाके लिये द्वारकामें रह गये थे । यदुवंशी एक तो

स्वभावसे ही परम तेजस्वी थे; दूसरे गलेमें सोनेकी माला, दिव्य पुष्पोंके हार, बहुमूल्य वस्त्र और कवचोंसे सुसज्जित होनेके कारण उनकी शोभा और भी बढ़ गयी थी । वे तीर्थयात्राके पथमें देवताओंके विमानके समान रथों, समुद्रकी तरङ्गके समान चबनेवाले घोड़ों, बादलोंके समान विशालकाय एवं गर्वना करते हुए हाथियों तथा विद्याधरोंके समान मनुष्योंके द्वारा ढोयी जानेवाली पाकियोंपर अपनी पत्नियोंके साथ इस प्रकार शोभायमान हो रहे थे, मानो स्वर्गके देवता ही यात्रा कर रहे हों । महामार्यवान् यदुवंशियोंने कुक्षेत्रमें पहुँचकर एकाग्रचित्तसे संयमपूर्वक ज्ञान किया और प्रहणके उपलक्ष्यमें निश्चित काष्ठतक उपवास किया ॥ ५-९ ॥ उन्होंने ब्राह्मणोंको गोदान किया । ऐसी गौओंका दान किया जिन्हें बल्लोंकी सुन्दर-सुन्दर झल्लें, पुष्पमालाएँ एवं सोनेकी जंजीरें पहना दी गयी थीं । इसके बाद प्रहणका मोक्ष हो जानेपर परशुरामजीके वनाये हुए कुण्डमें यदुवंशियोंने विधिपूर्वक ज्ञान किया और सत्यान ब्राह्मणोंको सुन्दर-सुन्दर पकवानोंका भोजन कराया । उन्होंने अपने मनमें यह सङ्कल्प किया था कि भगवान् श्रीकृष्णके चरणोंमें हमारी प्रेममति बनी रहे । भगवान् श्रीकृष्णको ही अपना आदर्श और इष्टदेव माननेवाले यदुवंशियोंने ब्राह्मणोंसे अनुमति लेकर तब स्वयं भोजन किया और फिर बनी एवं ठंडी छायावाले वृक्षोंके नीचे अपनी-अपनी इच्छाके अनुसार डेरा डालकर ठहर गये । परीक्षित । निश्राम कर लेनेके बाद यदुवंशियोंने अपने सुहृद् और सम्बन्धी राजाओंसे मित्रा-मैटना शुरु किया ॥ १०-१२ ॥ वहाँ मत्स्य, उशीर, कोसल, विदर्भ, कुल, सृञ्जय, काम्बोज, वैतस्य, मद्र, कुन्ति, आर्जव, केरल एवं दूसरे अनेकों देशोंके—अपने पक्षके तथा शत्रुपक्षके—सैनिकों नरपति आये हुए थे । परीक्षित । इनके अतिरिक्त यदुवंशियोंके परम हितैषी बन्धु नन्द आदि गोप तथा भगवान्‌के दर्शनके लिये चिरकायसे उत्काण्ठित गोपियों भी वहाँ आयी हुई थीं । यादवोंने इन सबको देखा ॥ १३-१४ ॥ परीक्षित । एक-दूसरेके दर्शन, मिलन और वार्तालापसे

सभीको बड़ा आनन्द हुआ । सभीके हृदय-कमल एवं मुख-कमल खिल उठे । सब एक-दूसरेको मुजाबोंमें भरकर हृदयसे लगाते, उनके नेत्रोंसे आँसुओंकी झड़ी छग जाती, रोम-रोम खिल उठता, प्रेमके आवेगसे बौली बंद हो जाती और सब-के-सब आनन्द-समुद्रमें डूबने-उतराने लगते ॥ १५ ॥ पुरुषोंकी भोंति बियाँ भी एक-दूसरेको देखकर प्रेम और आनन्दसे भर गयीं । वे अत्यन्त सौहार्द, मन्द-मन्द मुसकान, परम पवित्र तिरछी चितवनसे देख-देखकर परस्पर मेट-भँकनार करने लगीं । वे अपनी मुजाबोंमें भरकर कैसर लगे हुए बक्ष-सलोंको दूसरी बियाँके बक्ष-सलोंसे दबातीं और अत्यन्त आनन्दका अनुभव करतीं । उस समय उनके नेत्रोंसे प्रेमके आँसू छलकने लगते ॥ १६ ॥ अवस्था आदिमें छोटेंने बड़े-बूढ़ोंको प्रणाम किया और उन्होंने अपनेसे छोटेंकर प्रणाम स्वीकार किया । वे एक-दूसरेका साग्न्य करके तथा कुसुम-मङ्गल आदि पूछकर फिर श्रीकृष्णकी मञ्जुर लीलाएँ आपसमें कहने-सुनने लगे ॥ १७ ॥

परीक्षित । कुन्ती वसुदेव आदि अपने भाइयों, बहिनों, उनके पुत्रों, माता-पिता, भाभियों और भगवान् श्रीकृष्णको देखकर तथा उनसे बातचीत करके अपना सारा दुःख मूक गयीं ॥ १८ ॥

कुन्तीने वसुदेवजीसे कहा—मैया ! मैं सचमुच बड़ी अभागिन हूँ । मेरी एक भी साध पूरी न हुई । आप-जैसे साधु-समाध सज्जन माई आपसिके समय मेरी सुधि भी न लें, इससे बढकर दुःखकी बात क्या होगी ? ॥ १९ ॥ मैया ! विधाता जिसके बौर्य हो जाता है, उसे खनन-सम्बन्धी, पुत्र और माता-पिता भी मूक जाते हैं । इसमें आपजोगोंका कोई दोष नहीं ॥ २० ॥

वसुदेवजीने कहा—बहिन ! उलाहना मत दो । हमसे मित्रा न मानो । सभी मनुष्य दैवके खिलौने हैं । यह सम्पूर्ण लोक ईश्वरके वशमें रहकर कर्म करता है, और उसका फल भोगता है ॥ २१ ॥ बहिन ! कससे सताये जाकर हमलोग उधर-उधर अनेक दिशाओंमें भगे हुए थे । अभी कुछ ही दिन हुए,

ईश्वरकृपासे हम सब पुनः अपना स्थान प्राप्त कर सके हैं ॥ २२ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित ! वहाँ जितने भी नरपति आये थे—वसुदेव, उग्रसेन आदि यदुवंशियोंने उनका स्त्रव सम्मान-सत्कार किया । वे सब भगवान् श्रीकृष्णका दर्शन पाकर परमानन्द और शान्तिका अनुभव करने लगे ॥ २३ ॥ परीक्षित ! भीष्मपितामह, श्रेष्ठाचार्य, धृतराष्ट्र, दुर्योधनादि पुत्रोंके साथ गान्धारी, पत्नियोंके सहित युधिष्ठिर आदि पाण्डव, कुन्ती, सूत्राय, विदुर, कृपाचार्य, कुन्तिभोज, विराट, भीष्मक, महाराज नग्नजित्, पुरुजित्, वृषट्, शल्य, वृद्धकेतु, काशीनरेश, दमघोष, विशालम्ब, मिथिलानरेश, मग्ननरेश, केकयनरेश, युषामन्यु, सुशर्मा, अपने पुत्रोंके साथ बाह्यीक और दूसरे भी युधिष्ठिरके अनुयायी रूपति भगवान् श्रीकृष्णका परम सुन्दर श्रीनिकेतन विग्रह और उनकी रामियोंको देखकर अत्यन्त विस्मित हो गये ॥ २४-२७ ॥ अब वे कच्छरामजी तथा भगवान् श्रीकृष्णसे मछीभाँति सम्मान प्राप्त करके बड़े आनन्दसे श्रीकृष्णके खजनों—यदुवंशियोंकी प्रशंसा करने लगे ॥ २८ ॥ उन लोगोंने मुख्यतया उग्रसेनजीको सम्बोधित कर कहा—‘भोजराज उग्रसेनजी ! सच पूछिये तो इस जगत्के मनुष्योंमें आपलोगोंका जीवन ही सफल है, अन्य है । अन्य है । क्योंकि जिन श्रीकृष्णका दर्शन बड़े-बड़े योगियोंके लिये भी दुर्लभ है, उन्हींको आपलोग नित्य-निरन्तर देखते रहते हैं ॥ २९ ॥ वेदोंने बड़े आदरके साथ भगवान् श्रीकृष्णकी कीर्तिका गान किया है । उनके चरणपेधनका जल-गङ्गाजल, उनकी वाणी—शास्त्र और उनकी कीर्ति इस जगत्को अत्यन्त पवित्र कर रही है । अभी हमलोगोंके जीवनकी ही बात है, समयके फेरसे पृथ्वीका सारा सौभाग्य नष्ट हो चुका था; परन्तु उनके चरणकमलोंके स्पर्शसे पृथ्वीमें फिर समस्त शक्तियोंका सञ्चार हो गया और अब वह फिर हमारी समस्त अभिलाषाओं—मनोरथोंको पूर्ण करने लगी ॥ ३० ॥ उग्रसेनजी ! आपलोगोंका श्रीकृष्णके साथ वैवाहिक एवं गोत्रसम्बन्ध है । यही नहीं, आप हर समय उनका दर्शन और स्पर्श प्राप्त

करते रहते हैं । उनके साथ चले हैं, बोले हैं, सोते हैं, बैठते हैं और खाते-पीते हैं । यों तो आपलोग गृहस्थीकी श्रृङ्खलमें फँसे रहते हैं—जो नरकका मार्ग है, परन्तु आपलोगोंके घर वे सर्वव्यापक विष्णु-भगवान् मूर्तिमान् रूपसे निवास करते हैं, जिनके दर्शनमात्रसे खर्ग और मोक्षतककी अभिलाषा मिट जाती है ॥ ३१ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित ! जब नन्दबाबाको यह बात मालूम हुई कि श्रीकृष्ण आदि यदुवंशी कुलक्षेत्रमें आये हुए हैं, तब वे गोपोंके साथ अपनी सारी सामग्री गावियोंपर जादकर अपने प्रिय पुत्र श्रीकृष्ण-बछराम आदिको देखनेके लिये वहाँ आये ॥ ३२ ॥ नन्द आदि गोपोंको देखकर सबके-सब यदुवंशी आनन्दसे भर गये । वे-इस प्रकार ठठ खड़े हुए, मानो भुत शरीरमें प्रणोंका सञ्चार हो गया हो । वे लोग एक-दूसरेसे मिलनेके लिये बहुत दिनोंसे आतुर हो रहे थे । इसलिये एक-दूसरेको बहुत देरतक अत्यन्त गाढ़भावसे आच्छिन्न करते रहे ॥ ३३ ॥ वसुदेवजीने अत्यन्त प्रेम और आनन्दसे विह्वल होकर नन्दजीको हृदयसे लगा लिया । उन्हें एक-एक करके सारी बातें याद हो आयीं—कंस किस प्रकार उन्हें सताता था और किस प्रकार उन्होंने अपने पुत्रको गोकुलमें के जाकर नन्दजीके घर रख दिया था ॥ ३४ ॥ भगवान् श्रीकृष्ण और बछरामजीने माता यशोदा और पिता नन्दजीके हृदयसे लगाकर उनके चरणोंमें प्रणाम किया । परीक्षित ! उस समय प्रेमके उद्वेगसे दोनों भाइयोंका गला हँच गया, वे कुछ भी बोल न सके ॥ ३५ ॥ महाभायवती यशोदाजी और नन्दबाबाने दोनों पुत्रोंको अपनी गोदमें बैठा लिया और शुजायोंसे उनका गाढ़ आच्छिन्न किया । उनके हृदयमें चिरकायतक न मिलनेका जो दुःख था, वह सब मिट गया ॥ ३६ ॥ रोहिणी और देवकीजीने ब्रजेश्वरी यशोदाको अपनी वैकुण्ठरसे भर लिया । यशोदाजीने उन लोगोंके साथ मित्रताका जो व्यवहार किया था, उसका स्मरण करके दोनोंका गला भर आया । वे यशोदाजीसे कहने लगीं—॥ ३७ ॥ ‘यशोदादानी ! आपने और ब्रजेश्वर नन्दजीने हमलोगोंके साथ जो मित्रताका व्यवहार किया है, वह कभी मिटने-

गल नहीं है, उसका बदला इनका ऐश्वर्य पाकर भी हम किसी प्रकार नहीं चुका सकतीं । नन्दरानीजी ! भला ऐसा कौन कृतक है, जो आपके उस उपकारको भूल सके ! ॥ ३८ ॥ देवि ! जिस समय बलराम और श्रीकृष्णने अपने मा-बापको देखतक न था और इनके पिताने धरोहरके रूपमें इन्हें आप दोनोंके पास रख छोड़ा था, उस समय आपने इन दोनोंकी इस प्रकार रक्षा की, जैसे पल्लवोंके पुतलियोंकी रक्षा करती हैं । तथा आपलोगोंने ही इन्हें खिलाया-पिलाया, दुखार किया और रिखाया, इनके मङ्गलके लिये अनेकों प्रकारके उत्सव मनाये । उच पृच्छिये तो इनके मा-बाप आप ही लोग हैं । आपलोगोंकी देख-रेखमें इन्हें किसीकी औचतक न लगी, ये सर्वथा निर्भय रहे, ऐसा करना आपलोगोंके अनुरूप ही था । क्योंकि सत्पुरुषोंकी दृष्टिमें अपने-परायेका भेद-भाव नहीं रहता । नन्दरानीजी ! सचमुच आपलोग परम संत हैं' ॥ ३९ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित ! मैं कह चुका हूँ कि गोपियोंके परम प्रियतम, जीवनसर्वस्व श्रीकृष्ण ही थे । जब उनके दर्शनके समय नेत्रोंकी पल्लवें गिर पड़तीं, तब वे पल्लवोंको बनानेवालेको ही कोसने लगतीं । उन्हीं प्रेमकी मूर्ति गोपियोंको आनन्द बहुत दिनोंके बाद भगवान् श्रीकृष्णका दर्शन हुआ । उनके मनमें इसके लिये कितनी लाजसा थी, इसका अनुमान भी नहीं किया जा सकता । उन्होंने नेत्रोंके रास्ते अपने प्रियतम श्रीकृष्णको हृदयमें ले जाकर गाढ़ आलिङ्गन किया और मन-ही मन आलिङ्गन करते-करते तन्मय हो गयीं । परीक्षित ! कहाँतक कहूँ, वे उस भावको प्राप्त हो गयीं, जो नित्य-निरन्तर अभ्यास करनेवाले योगियोंके लिये भी अल्पत दुर्लभ है ॥ ४० ॥ जब भगवान् श्रीकृष्णने देखा कि गोपियों मुझमें तादात्म्यको प्राप्त— एक हो रही हैं, तब वे एकान्तमें उनके पास गये, उनको हृदयसे लगाया, कुशल-मङ्गल पूछा और हँसते हुए यों बोले—॥ ४१ ॥ 'सखियो ! हमलोग अपने खजन-सम्बन्धियोंका काम करनेके लिये व्रजसे बाहर चले आये और इस प्रकार तुम्हारी-जैसी प्रेयसियोंको छोड़कर हम शत्रुओंका विनाश करनेमें उलझ गये । बहुत दिन बीत गये, क्या कभी तुमलोग हमारा स्मरण भी करती हो ? ॥ ४२ ॥ मेरी प्यारी गोपियो ! कहाँ तुमलोगोंके

मनमें यह आशङ्का तो नहीं हो गयी है कि मैं अकृतज्ञ हूँ और ऐसा समझकर तुमलोग हमसे दूरा तो नहीं मानने लगी हो ? निस्सन्देह भगवान् ही प्राणियोंके संयोग और वियोगके कारण हैं ॥ ४३ ॥ जैसे वायु बादलों, तिनकों, रुई और धूलके कणोंको एक दूसरेसे मिला देती है, और फिर स्वच्छन्दरूपसे उन्हें अलग-अलग कर देती है, वैसे ही समस्त पदार्थोंके निर्माता भगवान् भी सबका संयोग-वियोग अपने इच्छानुसार करते रहते हैं ॥ ४४ ॥ सखियो ! यह बड़े सौभाग्यकी बात है कि तुम सब लोगोंको मेरा वह प्रेम प्राप्त हो चुका है, जो मेरी ही प्राप्ति करानेवाला है । क्योंकि मेरे प्रति की हुई प्रेम-भक्ति प्राणियोंको अप्रुतल (परमानन्द-भ्रम) प्रदान करनेमें समर्थ है ॥ ४५ ॥ प्यारी गोपियो ! जैसे बट, पट आदि जितने भी मौक्तिक पदार्थ हैं, उनके आदि, अन्त और मध्यमें, बाहर और भीतर, उनके मूल कारण पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि तथा आकाश ही ओतप्रोत हो रहे हैं, वैसे ही जितने भी पदार्थ हैं, उनके पदमे, पीछे, बीचमें, बाहर और भीतर केवल मैं-ही-मैं हूँ ॥ ४६ ॥ इसी प्रकार सभी प्राणियोंके शरीरमें यही पौँछों भूत कारणरूपसे स्थित है और आत्मा भीत्वाके रूपसे अपना जीवनके रूपसे स्थित है । परन्तु मैं इन दोनोंसे परे अविनाशी सत्य हूँ । ये दोनों मेरे ही अंदर प्रतीत हो रहे हैं, तुमलोग ऐसा अनुभव करो ॥ ४७ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित ! भगवान् श्रीकृष्णने इस प्रकार गोपियोंको अभ्यासमार्गकी शिक्षासे शिक्षित किया । उसी उपदेशके बार बार स्मरणसे गोपियोंका जीवकोश—लिङ्गशरीर नष्ट हो गया और वे भगवान्से एक हो गयीं, भगवान्को ही सदा-सर्वदाके लिये प्राप्त हो गयीं ॥ ४८ ॥ उन्होंने कहा—'हे कमल-नाम ! अष्टावबोधसम्पन्न बड़े-बड़े योगेश्वर अपने हृदय-कमलमें आपके चरणकमलोंका चिन्तन करते रहते हैं । जो लोग संसारके कुरूपों गिरे हुए हैं, उन्हें उससे निकलनेके लिये आपके चरणकमल ही एकमात्र अवलम्बन हैं । प्रभो ! आप ऐसी कृपा कीजिये कि आपका वह चरणकमल, धर-गृहस्थके काम करते रहनेपर भी सदा-सर्वदा हमारे हृदयमें विराजमान रहे, हम एक क्षणके लिये भी उसे न भूलें ॥ ४९ ॥

तिरासीवाँ अध्याय

भगवान्की पट्टनियोंके साथ द्रौपदीकी बातचीत

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित ! भगवान् श्रीकृष्ण ही गोपियोंको शिक्षा देनेवाले हैं और वही उस शिक्षाके द्वारा प्राप्त होनेवाली वस्तु हैं। इसके पहले, जैसा कि वर्णन किया गया है, भगवान् श्रीकृष्णने उनपर महान् अनुग्रह किया। अब उन्होंने चर्मराज शुविधिर तथा अन्य समस्त सम्बन्धियोंके कुत्स-मङ्गल पूछा ॥ १ ॥ भगवान् श्रीकृष्णके चरणकमलोंका दर्शन करनेसे ही उनके सारे अशुभ नष्ट हो चुके थे। अब जब भगवान् श्रीकृष्णने उनका सत्कार किया, कुत्स-मङ्गल पूछा, तब वे अत्यन्त आनन्दित होकर उनसे कहने लगे—॥ २ ॥ ‘भगवन् ! बड़े-बड़े महापुरुष मन-ही-मन आपके चरणारविन्दका भक्तन्दरस पान करते रहते हैं। कभी-कभी उनके मुखकमलसे छील-कमलके रूपमें वह रस छलक पड़ता है। प्रभो ! वह इतना अद्भुत दिव्य रस है कि कोई भी प्राणी उसको पी ले तो वह जन्म-मृत्युके चक्करमें डालनेवाली विस्तृति अथवा जविषाको नष्ट कर देता है। उसी रसको जो लोग अपने कानोंके दोनोंमें भर-भरकर जीभर पीते हैं, उनके अमङ्गलकी आसङ्का ही क्या है ? ॥ ३ ॥ भगवन् ! आप एकरस ज्ञानसख्य और अखण्ड आनन्दके समुद्र हैं। बुद्धि-वृत्तियोंके कारण होनेवाली जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति—ये तीनों अवस्थाएँ आपके स्वयंप्रकाश स्वरूपतक पहुँच ही नहीं पातीं, दूरसे ही नष्ट हो जाती हैं। आप परमहंसोंकी एकमात्र गति हैं। समयके फेरसे वेदोंका हास होते देखकर उनकी रक्षाके लिये आपने अपनी अचिन्त्य योगशक्तिके द्वारा मनुष्यका—सा शरीर ग्रहण किया है। हम आपके चरणोंमें बार-बार नमस्कार करते हैं’ ॥ ४ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित ! जिस समय दूसरे लोग इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्णकी स्तुति कर रहे थे, उसी समय यादव और कौरव-कुलकी स्त्रियाँ एकत्र होकर आपसमें भगवान्की निमुचन-विस्त्यात छीलाओंका वर्णन कर रही थीं। अब मैं तुम्हें उन्हींकी बातें सुनाता हूँ ॥ ५ ॥

द्रौपदीने कहा—हे रुक्मिणी, भद्रे, हे जाम्बवती,

सूये, हे सत्यभामे, कालिन्दी, सौम्ये, लक्ष्मणे, रोहिणी और अन्यन्य श्रीकृष्णपत्नियों ! तुमलोग हमें यह तो बताओ कि खर्च भगवान् श्रीकृष्णने अपनी भाग्यसे लोभोंका अनुकरण करते हुए तुमलोगोंका किस प्रकार पाणिग्रहण किया ? ॥ ६-७ ॥

रुक्मिणीजीने कहा—द्रौपदीजी ! जरासन्ध आदि सभी राजा चाहते थे कि मेरा विवाह शिशुपायके साथ हो; इसके लिये सभी शाकाहसे सुसजित होकर युद्धके लिये तैयार थे। परन्तु भगवान् मुझे वैसे ही हर लाये, जैसे सिंह बकरी और भेड़ोंके झुंडमें अपना भाग छीन ले जाय। क्यों न हो—जगत्में जितने भी अजेय वीर हैं, उनके मुकुटोंपर इन्हींकी चरणवृष्टि शोभायमान होती है। द्रौपदीजी ! मेरी तो यही अमितावा है कि भगवान्के वे ही समस्त सम्पत्ति और सौन्दर्योंके आश्रय चरणकमल जन्म-जन्म मुझे आराधना करनेके लिये प्राप्त होते रहें, मैं उन्हींकी सेवामें लगी रहूँ ॥ ८ ॥

सत्यभामा ने कहा—द्रौपदीजी ! मेरे पिताजी अपने भाई प्रसेनकी मृत्युसे बहुत दुखी हो रहे थे, अतः उन्होंने उनके वधका कलङ्क भगवान्पर ही लगाया। उस कलङ्कको दूर करनेके लिये भगवान्ने नक्षत्रराज जाम्बवान्पर विजय प्राप्त की और वह रत्न लाकर मेरे पिताको दे दिया। अब तो मेरे पिताजी मिथ्या कलङ्क लगानेके कारण डर गये। अतः यद्यपि वे दूरसेको मेरा वाय्दान कर चुके थे, फिर भी उन्होंने मुझे स्वमन्तक मणिके साथ भगवान्के चरणोंमें ही समर्पित कर दिया ॥ ९ ॥

जाम्बवतीने कहा—द्रौपदीजी ! मेरे पिता ऋक्षराज जाम्बवान्को इस बातका पता न था कि यही मेरे स्वामी भगवान् सीतापति हैं। इसलिये वे इनसे सत्ताईस दिनतक लड़ते रहे। परन्तु जब परीक्षा पूरी हुई, उन्होंने ज्ञान लिया कि ये भगवान् राम ही हैं, तब इनके चरणकमल पकड़कर स्वमन्तकमणिके साथ उपहारके रूपमें मुझे समर्पित कर दिया। मैं यही चाहती हूँ कि जन्म-जन्म इन्हींकी दासी बनी रहूँ ॥ १० ॥

कालिन्दीने कहा—द्रौपदीजी ! जब भगवान्‌को यह माद्यम हुआ कि मैं उनके चरणोंका स्पर्श करनेकी आज्ञा-अभिज्ञासे तपस्या कर रही हूँ, तब वे अपने सखा अर्जुनके साथ यमुना-तटपर आये और मुझे स्वीकार कर लिया। मैं उनका घर बुहारनेवाली उनकी दासी हूँ ॥ ११ ॥

मित्रविन्दाने कहा—द्रौपदीजी ! मेरा स्वयंवर हो रहा था। वहाँ आकर भगवान्‌ने सब राजाओंको नीत लिया और वैसे सिंह झुंड-के-झुंड कुत्तोंसे अपना माग ले जाय, वैसे ही मुझे अपनी शोभाययी द्वारकापुरीमें ले आये। मेरे भाइयोंने भी मुझे भगवान्‌से छुड़ाकर मेरा अपकार करना चाहा, परन्तु उन्होंने उन्हें भी नीचा दिखा दिया। मैं ऐसा चाहती हूँ कि मुझे जन्म-जन्म उनके पोंच पखारनेका सौभाग्य प्राप्त होता रहे ॥ १२ ॥

सत्याने कहा—द्रौपदीजी ! मेरे पिताजीने मेरे स्वयंवरमें आये हुए राजाओंके बल-पौरुषकी परीक्षाके लिये बड़े बलवान् और पराक्रमी, तीखे सींगवाले सात बैल रख छोड़े थे। उन बैलोंने बड़े-बड़े वीरोंका धमंड चूर-चूर कर दिया था। उन्हें भगवान्‌ने खेल-खेलमें ही कपटकर पकड़ लिया, नाप लिया और बाँध दिया; ठीक वैसे ही, जैसे छोटे-छोटे बच्चे बकरीके बच्चोंको पकड़ लेते हैं ॥ १३ ॥ इस प्रकार भगवान्‌बल-पौरुषके द्वारा मुझे प्राप्त कर चतुरङ्गिणी सेना और दासियोंके साथ द्वारका ले आये। मार्गमें जिन क्षत्रियोंने विज्र डाला, उन्हें जीत भी लिया। मेरी यही अभिलषा है कि मुझे इनकी सेवाका अवसर सदा-सर्वदा प्राप्त होता रहे ॥ १४ ॥

भद्राने कहा—द्रौपदीजी ! भगवान् मेरे मायाके पुत्र हैं। मेरा चित्त इन्हींके चरणोंमें अनुरक्त हो गया था। जब मेरे पिताजीको यह बात माद्यम हुई, तब उन्होंने स्वयं ही भगवान्‌को बुलाकर अश्वीहिणी सेना और बहुत-सी दासियोंके साथ मुझे इन्हींके चरणोंमें समर्पित कर दिया ॥ १५ ॥ मैं अपना परम कल्याण इसीमें समझती हूँ कि कर्मके अनुसार मुझे जहाँ-जहाँ जन्म लेना पड़े, सर्वत्र इन्हींके चरणमल्लोंका संस्पर्श प्राप्त होता रहे ॥ १६ ॥

लक्ष्मणाने कहा—रानीजी ! देवर्षि नारद बार-बार भगवान्‌के वक्ता और छीछाओंका गान करते रहते थे। उसे सुनकर और यह सोचकर कि लक्ष्मीजीने सम्पन्न ज्येष्ठापत्यका त्याग करके भगवान्‌का ही वरण किया, मेरा चित्त भगवान्‌के चरणोंमें आसक्त हो गया ॥ १७ ॥ साध्वी ! मेरे पिता बृहत्सेन मुझपर बहुत प्रेम रखते थे। जब उन्हें मेरा अभिप्राय माद्यम हुआ, तब उन्होंने मेरी इच्छाकी पूर्तिके लिये यह उपाय किया ॥ १८ ॥ महारानी ! जिस प्रकार पाण्डववीर अर्जुनकी प्रातिके लिये आपके पिताने स्वयंवरमें मत्स्य-कैवका आयोजन किया था, उसी प्रकार मेरे पिताने भी किया। आपके स्वयंवरकी अपेक्षा हमारे यहाँ यह विशेषता थी कि मत्स्य बाहरसे ठका हुआ था, कैवल जलमें ही उसकी परछाईं दीख पड़ती थी ॥ १९ ॥ जब यह समाचार राजाओंको मिला, तब सब औरसे सम्पन्न अक्ष-शस्त्रोंके सख्त हजारों राजा अपने-अपने गुरुओंके साथ मेरे पिताजीकी राजधानीमें आने लगे ॥ २० ॥ मेरे पिताजीने आये हुए सभी राजाओं-का बल-पौरुष और अवस्थाके अनुसार भली-भाँति स्वागत-सत्कार किया। उन लोगोंने मुझे प्राप्त करनेकी इच्छासे स्वयंवर-समामें रखे हुए धनुष और बाण ठाढ़े ॥ २१ ॥ उनमेंसे कितने ही राजा तो धनुषपर तौत भी न चढ़ा सके। उन्होंने धनुषको ग्यों-का-ग्यों रख दिया। काह्योंने धनुषकी डोरीको एक सिरसे बाँधकर दूसरे सिरतक बाँध तो लिया, परन्तु वे उसे दूसरे सिरसे बाँध न सके, उसका झटका छानेसे गिर पड़े ॥ २२ ॥ रानीजी ! बड़े-बड़े प्रसिद्ध वीर—जैसे जरासन्ध, अन्वष्ठ-नरेद्य, शिशुपाल, भीमसेन, दुष्येधन और कर्ण—इन लोगोंने धनुषपर डोरी तो चढ़ा ली; परन्तु उन्हें मछलीकी स्थितिका पता न चला ॥ २३ ॥ पाण्डववीर अर्जुनने जलमें उस मछलीकी परछाईं देख ली और यह भी जान लिया कि वह कहाँ है। बड़ी सावधानीसे उन्होंने बाण छोड़ा भी, परन्तु उससे लक्ष्यवेध न हुआ, उनके बाणने केवल उसका स्पर्शमात्र किया ॥ २४ ॥

रानीजी ! इस प्रकार बड़े-बड़े अभिमानियोंका मान मर्दन हो गया। अधिकश्रम नरपतियोंने मुझे पानेकी अलसता एवं साध-ही-साध लक्ष्यवेधकी चेष्टा भी छोड़

दी । तब भगवान् ने धनुष उठाकर खेल-खेलमें—
अनायास ही उसपर बोरी चढ़ा दी, बाण साधा और जलमें
केवल एक बार मछलीकी परछाई देखकर बाण मारा
तथा उसे नीचे गिरा दिया । उस समय ठीक दोपहर
हो रहा था, सर्वोपसाधक 'अभिराम' नामक मुहूर्त
भीत रहा था ॥ २५-२६ ॥ देवीजी ! उस समय
पृथ्वीमें जय-जयकार होने लगा और आकाशमें दुन्दुभियाँ
बजने लगीं । बड़े-बड़े देवता आनन्द-विह्वल होकर
पुष्पोंकी वर्षा करने लगे ॥ २७ ॥ रानीजी ! उसी
समय मैंने रंगशालामें प्रवेश किया । मेरे पैरोंके पायजोब
रुनछुन-रुनछुन बोल रहे थे । मैंने नये-नये उत्तम रेशमी
बख धारण कर रखे थे । मेरी चोटियोंमें माछाएँ गुँथी
हुई थी और मुँहपर लज्जामिश्रित मुसकराहट थी । मैं
अपने हाथोंमें रत्नोंका हार लिये हुए थी, जो बीच-बीचमें
लगे हुए सोनेके कारण और भी दमक रहा था ।
रानीजी ! उस समय मेरा मुखमण्डल बनी घुँघराळी
अलकोंसे सुशोभित हो रहा था तथा कपोलोंपर कुण्डलोंकी
आभा पड़नेसे वह और भी दमक उठ था । मैंने एक
बार अपना मुख उठाकर चन्द्रमाकी किरणोंके समान
सुशीतल हास्यरेखा और तिरछी चितवनसे चारों ओर
बैठे हुए राजाओंकी ओर देखा, फिर धीरेसे अपनी
बरमाळ भगवान् के गलेमें ढाल दी । यह तो कह ही
चुकी हूँ कि मेरा हृदय पहलेसे ही भगवान् के प्रति
अनुरक्त था ॥ २८-२९ ॥ मैंने ज्यों ही बरमाळ
पहनारी त्यों ही मुदङ्ग, पखावज, शङ्ख, ढोल, नगारे आदि
बाजे बजने लगे । मट और नर्तकियाँ नाचने लगीं ।
गवैये गाने लगे ॥ ३० ॥

द्वीपदीजी ! जब मैंने इस प्रकार अपने स्वामी प्रिय-
तम भगवान् को बरमाळ पहना दी, उन्हें कण कर
लिया, तब कामातुर राजाओंको बड़ा डह डुआ । वे
बहुत ही चिढ़ गये ॥ ३१ ॥ चतुर्भुज भगवान् ने अपने
श्रेष्ठ चार बोझोंवाले रथपर मुझे चढ़ा लिया और हाथमें
शार्ङ्गधनुष लेकर तथा कवच पहनकर युद्ध करनेके लिये
वे रथपर खड़े हो गये ॥ ३२ ॥ पर रानीजी ! दारुकने
सोनेके साज-सामानसे ढंके हुए रथकी सब राजाओंके
सामने ही द्वारकाके लिये हॉक दिया, जैसे कोई सिंह
हरिनोके बीचसे अपना भाग ले जाय ॥ ३३ ॥ उनमेंसे

कुछ राजाओंने धनुष लेकर युद्धके लिये सज-धजकर
इस उद्देश्यसे रास्तेमें पीछा किया कि हम भगवान् को
रोक लें; परन्तु रानीजी ! उनकी चेष्टा ठीक बैसी ही
थी, जैसे कुत्ते सिंहको रोकना चाहें ॥ ३४ ॥ शार्ङ्ग-
धनुषके छूटे हुए तीरोंसे किसीकी बाँह कट गयी तो
किसीके पैर कटे और किसीकी गर्दन ही उतर गयी ।
बहुत-से लोग तो उस रणभूमिमें ही सदाके लिये सो
गये और बहुत-से युद्धभूमि छोड़कर भाग खड़े
हुए ॥ ३५ ॥

तदनन्तर बहुवैद्यशिरोमणि भगवान् ने सूर्यकी मूर्ति
अपने निवासस्थान स्वर्ग और पृथ्वीमें सर्वत्र प्रशसित
द्वारका-नगरीमें प्रवेश किया । उस दिन वह विशेषरूपसे
सजायी गयी थी । इतनी झंझियाँ, पताकाएँ और तोरण
लगाये गये थे कि उनके कारण सूर्यका प्रकाश धरती-
तक नहीं आ पाता था ॥ ३६ ॥ मेरी अभिलाषा पूर्ण
हो जानेसे पिताजीको बहुत प्रसन्नता हुई । उन्होंने अपने
हितैषी-सुहृदों, सगे-सम्बन्धियों और भार्गवधुओंको
बहुमूल्य वस्त्र, आभूषण, शम्पा, आसन और विविध
प्रकारकी सामग्रियाँ देकर सम्मानित किया ॥ ३७ ॥
भगवान् परिपूर्ण हैं—तथापि मेरे पिताजीने प्रेमवश
उन्हें बहुत-सी दासियाँ, सब प्रकारकी सम्पत्तियाँ,
सैनिक, हाथी, रथ, ओके एवं बहुत-से बहुमूल्य अस्त्र-शस्त्र
समर्पित किये ॥ ३८ ॥ रानीजी ! हमने पूर्वजन्ममें सबकी
आसक्ति छोड़कर कोई बहुत बड़ी तपस्या की होगी ।
तभी तो हम इस जन्ममें आत्माराम भगवान् की गृह-
दासियाँ हुई हैं ॥ ३९ ॥

खोखल हजार पत्नियोंकी ओरसे रोहिणीजीने
कहा—भौमासुरने दिग्विजयके समय बहुत-से राजाओंको
जीतकर उनकी कन्या हमलोगोंको अपने महलमें बंदी
बना रखी थी । भगवान् ने यह जानकर युद्धमें मीमा-
ंसुर और उसकी सेनाकर संहार कर ढाका और स्वयं
पूर्वकाय होनेपर भी उन्होंने हमलोगोंको वहाँसे छुड़ाया
तथा पद्मिप्रहण करके अपनी दासी बना लिया ।
रानीजी ! हम सदा-सर्वदा उनके उन्हीं चरणकमलोंका
चिन्तन करती रहती थीं, जो जन्म-मृत्युरूप संसारसे
मुक्त करनेवाले हैं ॥ ४० ॥ साध्वी द्वीपदीजी ! हम
साम्राज्य, हन्यपद अथवा इन दोनोंके भोग, अणिमा

आदि ऐश्वर्य, मन्त्राका पद, मोक्ष अथवा साधोक्त्य, सारूप्य आदि मुक्तियाँ—कुछ भी नहीं चाहतीं । हम केवल इतना ही चाहती हैं कि अपने प्रियतम प्रभुके सुकोमल चरणकमलोंकी वह श्रीरज सर्वदा अपने सिंहास वहन किया करें, जो लक्ष्मीजीके वक्षःस्थलपर लगी हुई

केतारकी सुगन्धसे युक्त है ॥ ४१-४२ ॥ उदारशिरो-
मणि मन्त्रान्तके जिन चरणकमलोंका स्पर्श उनके गौ
चराते समय गोप, गोपियाँ, मीछिर्ने, तिनके और घास-
छताएँतक करना चाहती थीं, उन्हींकी हमें भी चाह
है ॥ ४३ ॥

चौरासीवाँ अध्याय

वसुदेवजीका यक्षोत्सव

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित् ! सर्वात्मा भक्त-
भयहारी भगवान् श्रीकृष्णके प्रति उनकी पत्नियोंका
कितना प्रेम है—यह बात कुन्ती, गान्धारी, द्रौपदी,
सुमद्रा, दूसरी राजपत्नियाँ और भगवान्की प्रियतमा
गोपियोंने भी धुनी । सबकी-सब उनका यह अलौकिक
प्रेम देखकर अत्यन्त मुग्ध, अत्यन्त निमित्त हो गयीं ।
सबके नेत्रोंमें प्रेमके आँसू छलक आये ॥ १ ॥ इस
प्रकार जिस समय स्त्रियोंसे बिर्याँ और पुरुषोंसे पुरुष
वातचीत कर रहे थे, उसी समय बहुत-से ऋषि-मुनि
भगवान् श्रीकृष्ण और बलरामजीका दर्शन करनेके लिये
वहाँ आये ॥ २ ॥ उनमें प्रचान ये थे—श्रीकृष्णद्वैपायन
व्यास, डेवर्य नारद, ष्यवन, वैश्व, असित, विद्यामित्र,
शतानन्द, भरद्वाज, गौतम, अपने शिष्योंके सहित भगवान्
परशुराम, वशिष्ठ, गालव, भरु, पुलस्त्य, कश्यप, अत्रि,
मार्कण्डेय, वृहस्पति, द्वित, त्रित, एकत, सनक, सनन्दन,
सनातन, सनत्कुमार, अश्विना, अगस्त्य, याज्ञवल्क्य और
वामदेव इत्यादि ॥ ३—५ ॥ ऋषियोंको देखकर पहलेसे
बैठे हुए नरपतिगण, वृषिष्ठिर आदि पाण्डव, भगवान्
श्रीकृष्ण और बलरामजी सहसा उठकर खड़े हो गये
और सवने उन विष्वक्न्दित ऋषियोंको प्रणाम किया ॥ ६ ॥
इसके बाद स्नात, आसन, पाष, अर्घ्य, पुष्पमाला, धूप
और चन्दन आदिसे सब राजाओंने तथा बलरामजीके
साथ स्वर्ग भगवान् श्रीकृष्णने उन सब ऋषियोंकी
विधिपूर्वक पूजा की ॥ ७ ॥ जब सब ऋषि-मुनि आरामसे
बैठ गये, तब धर्मरक्षाके लिये अन्तीर्ण भगवान् श्रीकृष्णने
उनसे कहा । उस समय वह बहुत बड़ी सभा चुपचाप
भगवान्का भाषण सुन रही थी ॥ ८ ॥

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—कन्य है ! हमलोगोंका
जीवन सफल हो गया, आज जन्म लेनेका हमें पूरा-पूरा
फल मिल गया; क्योंकि जिन योगेश्वरोंका दर्शन बड़े-
बड़े देवताओंके लिये भी अत्यन्त दुर्लभ है, उन्हींका
दर्शन हमें प्राप्त हुआ है ॥ ९ ॥ जिन्होंने बहुत पोड़ी
तपस्या की है और जो लोग अपने इष्टदेवको समस्त
प्राणियोंके हृदयमें न देखकर केवल मूर्तिविशेषमें ही उनका
दर्शन करते हैं, उन्हें आपलोगोंके दर्शन, स्पर्श, कुशाह-भजन,
प्रणाम और पादपूजन आदिका सुभवसर मन्त्र कब
मिल सकता है ! ॥ १० ॥ केवल जन्मप तीर्थ ही तीर्थ
नहीं कहल्यते और केवल मिट्टी या पत्थरकी प्रतिमाएँ
ही देवता नहीं होतीं, संत पुरुष ही वास्तवमें तीर्थ
और देवता हैं, क्योंकि उनका बहुत समयतक सेवन
किया जाय, तब वे पवित्र करते हैं, परन्तु संत पुरुष
तो दर्शनमात्रसे ही कृतार्थ कर देते हैं ॥ ११ ॥ अग्नि,
सूर्य, चन्द्रमा, तारे, पृथ्वी, जल, आकाश, वायु, वाणी
और मनके अविष्टात् देवता उपासना करनेपर भी पापका
पूरा-पूरा नाश नहीं कर सकते, क्योंकि उनकी उपासना-
से मेद-बुद्धिका नाश नहीं होता, वह और भी बढ़ती
है । परन्तु यदि घड़ी-दो-घड़ी भी ज्ञानी महापुरुषोंकी
सेवा की जाय तो वे सारे पाप-ताप मिटा देते हैं,
क्योंकि वे मेद-बुद्धिके विनाशक हैं ॥ १२ ॥ महात्माओं
और समासदों । जो मनुष्य बात, पिच और कर्म-इन
तीन बातोंसे बने हुए श्वस्तुल्य शरीरको ही आत्मा—
अपना धर्म, स्त्री-पुत्र आदिको ही अपना और मिट्टी,
पत्थर, काष्ठ आदि पार्थिव विकारोंको ही इष्टदेव मानता
है तथा जो केवल जलको ही तीर्थ समझता है—ज्ञानी
महापुरुषोंको नहीं, वह मनुष्य होनेपर भी पशुओंमें भी
नीच गवा ही है ॥ १३ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित ! भगवान् श्री-
कृष्ण अखण्ड ज्ञानसम्पन्न हैं । उनका यह गूढ भाषण
सुनकर सबके-सब ऋषि-मुनि चुप रह गये । उनकी
बुद्धि चक्रमें पड़ गयी, वे समझ न सके कि भगवान्
यह क्या कह रहे हैं ॥ १४ ॥ उन्होंने बहुत देरतक
विचार करनेके बाद यह निश्चय किया कि भगवान्
सर्वेश्वर होनेपर भी जो इस प्रकार सामान्य, कर्म-परतन्त्र
जीवकी भाँति व्यवहार कर रहे हैं—यह केवल ज्ञेय-
संग्रहके लिये ही है । ऐसा समझकर वे मुतकरते हुए
जगद्गुरु भगवान् श्रीकृष्णसे कहने लगे ॥ १५ ॥

सुनियोंने कहा—भगवन् ! आपकी मायासे प्रजा-
पतियोंके अधीश्वर मरीचि आदि तथा बड़े-बड़े तत्त्वज्ञानी
हमलोग मोहित हो रहे हैं । आप स्वयं ईश्वर होते हुए
भी मनुष्यकी-सी चेष्टाओंसे अपनेको छिपाये रखकर
जीवकी भाँति आचरण करते हैं । भगवन् ! सचमुच
आपकी छीछा अत्यन्त विचित्र है । परम आश्चर्यमयी
है ॥ १६ ॥ जैसे पृथ्वी अपने विकारों—वृक्ष, पत्थर,
घट आदिके द्वारा बहुत-से नाम और रूप ग्रहण कर
लेती है, वास्तवमें वह एक ही है, वैसे ही आप एक
और चेष्टाहीन होनेपर भी अनेक रूप धारण कर लेते
हैं और अपने आपसे ही इस जगत्की रचना, रक्षा और
संहार करते हैं । पर यह सब करते हुए भी इन कर्मोंसे
छित नहीं होते । जो सजातीय, विजातीय और सग्त
भेदशून्य एकरस अनन्त है, उसका यह चरित्र छीछा-
मात्र नहीं तो और क्या है ? धन्य है आपकी यह
छीछा ! ॥ १७ ॥ भगवन् ! यद्यपि आप प्रकृतिसे परे,
स्वयं परब्रह्म परमात्मा हैं; तथापि समय-समयपर मच्छ-
जनोंकी रक्षा और दुष्टोंका दमन करनेके लिये विशुद्ध
सत्त्वमय श्रीविग्रह प्रकट करते हैं और अपनी छीछाके
द्वारा सनातन वैदिक मार्गकी रक्षा करते हैं; क्योंकि
सभी वर्णों और आश्रमोंके रूपमें आप स्वयं ही प्रकट
हैं ॥ १८ ॥ भगवन् ! वेद आपका विशुद्ध हृदय है;
तपस्या, साध्याय, धारणा, ध्यान और समाधिके द्वारा
उसीमें आपके साकार-निराकार रूप और दोनोंके
अविष्टानस्वरूप परब्रह्म परमात्माका साक्षात्कार होता
है ॥ १९ ॥ परमात्मन् ! ब्राह्मण ही वेदोंके आधारभूत

आपके स्वरूपकी उपलब्धि के स्थान हैं; इसीसे आप
ब्राह्मणोंका सम्मान करते हैं और इसीसे आप ब्राह्मण-
भक्तोंमें अग्रगण्य भी हैं ॥ २० ॥ आप सर्वविध कल्याण-
साधनोंकी चरम सीमा हैं और संत पुरुषोंकी एकमात्र
गति हैं । आपसे मिलकर आन हमारे जन्म, विद्या, तप और
ज्ञान सफल हो गये । वास्तवमें सबके परम फल आप
ही हैं ॥ २१ ॥ प्रभो ! आपका ज्ञान अनन्त है, आप
स्वयं सविदानन्दस्वरूप परब्रह्म परमात्मा भगवान् हैं ।
आपने अपनी अविनश्य शक्ति योगमायाके द्वारा अपनी
महिमा छिपा रखी है; हम आपको नमस्कार करते
हैं ॥ २२ ॥ ये समाधि बैठे हुए राजाजोग और दूसरोंकी तो
वात ही क्या, स्वयं आपके साथ आहार-विहार करने-
वाले यदुवशी लोग भी आपको वास्तवमें नहीं जानते;
क्योंकि आपने अपने स्वरूपको—जो सबका आत्मा,
जगत्का आदिकारण और निपन्ता है—मायाके परदेसे
ढक रक्खा है ॥ २३ ॥ जब मनुष्य स्वप्न देखने लगता
है, उस समय स्वप्नके मिथ्या पदार्थोंकी ही सत्य समझ
लेता है और नाममात्रकी इन्द्रियोंसे प्रतीत होनेवाले
अपने स्वप्नशरीरको ही वास्तविक शरीर मान बैठता है ।
उसे उतनी देरके लिये इस बातका विस्मय ही पता नहीं
रहता कि स्वप्नशरीरके अतिरिक्त एक जाग्रद्-अवस्थाका
शरीर भी है ॥ २४ ॥ ठीक इसी प्रकार, जाग्रद्-अवस्थामें
भी इन्द्रियोंकी प्रवृत्तिरूप मायासे चित्त मोहित होकर
नाममात्रके विषयोंमें भटकने लगता है । उस समय भी
चित्तके चक्करसे विवेकशक्ति ढक जाती है और जीव यह
नहीं जान पाता कि आप इस जाग्रद् संसारसे परे
हैं ॥ २५ ॥ प्रभो ! बड़े-बड़े ऋषि-मुनि अत्यन्त परिष्कृत
योग-साधनोके द्वारा आपके उन चरणकमलोंको हृदयमें
धारण करते हैं, जो समस्त पाप-राशिको नष्ट करनेवाले
गङ्गाजलके भी आश्रयस्थान हैं । यह बड़े सौभाग्यकी बात
है कि आज हमें उन्हींका दर्शन हुआ है । प्रभो ! हम
आपके मक्त हैं, आप हमपर अनुग्रह कीजिये; क्योंकि
आपके परम पदवी प्राप्ति उन्हीं लोगोंको होती है, जिनका
छिन्नशरीररूप जीव-व्योस आपकी उत्कृष्ट शक्तिके द्वारा
नष्ट हो जाता है ॥ २६ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—राजर्षे ! भगवान्की इस

प्रकार स्तुति करके और उनसे, राजा घृतराष्ट्रसे तथा धर्मराज युधिष्ठिरजीसे अनुमति लेकर उन लोगोंने अपने-अपने आश्रमपर जानेका विचार किया ॥ २७ ॥ परम यशस्वी वसुदेवजी उनका जानेका विचार देखकर उनके पास आये और उन्हें प्रणाम किया और उनके चरण पकड़कर बड़ी नम्रतासे निवेदन करने लगे ॥ २८ ॥

वसुदेवजीने कहा—श्रुषियो ! आपलोग सर्वदेव-स्वरूप हैं । मैं आपलोगोंको नमस्कार करता हूँ । आपलोग कृपा करके मेरी एक प्रार्थना सुन लीजिये । वह यह कि जिन कर्मोंके अनुष्ठानसे कर्मों और कर्मवासनाओंका आत्यन्तिक नाश—मोक्ष हो जाय, उनका आप मुझे उपदेश कीजिये ॥ २९ ॥

भारवर्जनीने कहा—श्रुषियो ! यह कोई आश्चर्यकी बात नहीं है कि वसुदेवजी श्रीकृष्णको अपना बालक समझकर श्रद्धा जिज्ञासाके भावसे अपने कल्याणका साधन हृद्यलोगोंसे पूछ रहे हैं ॥ ३० ॥ संसारमें बहुत पास रहना मनुष्योंके अनादरका कारण हुआ करता है । देखते हैं, गङ्गातटपर रहनेवाला पुरुष गङ्गाबल छोड़कर अपनी श्रद्धिके लिये दूसरे तीर्थमें जाता है ॥ ३१ ॥ श्रीकृष्णकी अनुमृति समयके फेरसे होने-वाली जगत्की सृष्टि, स्थिति और प्रलयसे मिटनेवाली नहीं है । वह स्वतः किसी दूसरे निमित्तसे, गुणोंसे और किसीसे भी क्षीण नहीं होती ॥ ३२ ॥ उनका ज्ञानमय स्वरूप अविद्या, राग-द्वेष आदि क्लेश, पुण्य-पापमय धर्म, सुख-दुःखादि कर्मफल तथा सत्त्व आदि गुणोंके प्रवाहसे खण्डित नहीं है । वे स्वयं अद्वितीय परमात्मा हैं । जब वे अपनेको अपनी ही शक्तियों—प्राण आदिसे ढक लेते हैं, तब भूर्खलोग ऐसा समझते हैं कि वे ढक गये; जैसे बादल, कुहरा या भ्रष्टणके द्वारा अपने नेत्रोंके ढक जानेपर सूर्यको ढका हुआ मान लेते हैं ॥ ३३ ॥

परीक्षित ! इसके बाद श्रुषियोंने भगवान् श्रीकृष्ण, बलरामजी और अर्जुन राजाओंके सामने ही वसुदेवजीको सम्बोधित करके कहा—॥ ३४ ॥ 'कनोकि'द्वारा कर्मवासनाओं और कर्मफलोंका आत्यन्तिक नाश करने-

का सबसे अच्छा उपाय यह है कि यह आदिके द्वारा समस्त यज्ञोंके अधिपति भगवान् विष्णुकी श्रद्धापूर्वक आराधना करे ॥ ३५ ॥ त्रिकालदर्शी ज्ञानियोंने शास्त्र-दृष्टिसे यही चित्तकी शान्तिकर उपाय सुगम मोक्षसाधन और चित्तमें आनन्दका उल्लास करनेवाला धर्म बतलाया है ॥ ३६ ॥ अपने न्यायार्जित धनसे श्रद्धापूर्वक पुरुषोत्तम भगवान्की आराधना करना ही द्विजाति—ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य गृहस्थके लिये परम कल्याणका मार्ग है ॥ ३७ ॥ वसुदेवजी ! विचारवान् पुरुषको चाहिये कि यज्ञ, दान आदिके द्वारा धनकी इच्छाको, गृहस्थोचित भोगोंद्वारा क्षी-पुत्रकी इच्छाको और कलकलसे खगदि भोग भी नष्ट हो जाते हैं—इस विचारसे लोकैषणाको त्याग दे । इस प्रकार धीरे धीरे धनमें रहते हुए ही तीनों प्रकारकी एषणाओं—इच्छाओंका परित्याग करके तपोवनका रास्ता लिया करते थे ॥ ३८ ॥ समर्थ वसुदेवजी ! ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य—ये तीनों देवता, श्रुषि और पितरोंका श्रृण लेकर ही पैदा होते हैं । इनके श्रृणोंसे छुटकरा मिलता है यज्ञ, अच्छक और सन्तानोत्पत्तिसे । इनसे उच्छ्रय हुए बिना ही जो संसारका त्याग करता है, उसका पतन हो जाता है ॥ ३९ ॥ परम बुद्धिमान् वसुदेवजी ! आप अवतल श्रुषि और पितरोंके श्रृणसे तो मुक्त हो चुके हैं । अब यज्ञोंके द्वारा देवताओंका श्रृण चुका दीजिये; और इस प्रकार सबसे उच्छ्रय होकर गृहत्याग कीजिये, भगवान्की शरण हो जाइये ॥ ४० ॥ वसुदेवजी ! आपने अवश्य ही परम भक्तिसे जगदीश्वर भगवान्की आराधना की है, तभी तो वे आप दोनोंके पुत्र हुए हैं ॥ ४१ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित ! परम मनस्वी वसुदेवजीने श्रुषियोंकी यह बात सुनकर, उनके चरणोंमें सिर रखकर प्रणाम किया, उन्हें प्रसन्न किया और यज्ञके लिये श्रुषिजनोंके रूपमें उनका वरण कर लिया ॥ ४२ ॥ राजन् ! जब इस प्रकार वसुदेवजीने कर्मपूर्वक श्रुषियोंको वरण कर लिया, तब उन्होंने पुण्य-क्षेत्र कुम्भोजेत्रमें परम धार्मिक वसुदेवजीके द्वारा उत्तमोत्तम सामग्रीसे युक्त यज्ञ करवाये ॥ ४३ ॥ परीक्षित ! जब वसुदेवजीने यज्ञकी दीक्षा ले ली, तब यदुवंशियोंने स्नान

करके सुन्दर वस्त्र और कमलोंकी भाँखएँ धारण कर लीं; राजालोग वस्त्राभूषणोंसे खूब सुसज्जित हो गये ॥४४॥ वसुदेवजीकी पत्नियोंने सुन्दर वस्त्र, अङ्गराग और सोनेके हारोंसे अपनेको सजा लिया और फिर वे सब बड़े आनन्दसे अपने-अपने हाथोंमें माङ्गलिक सामग्री लेकर यज्ञशालमें आयी ॥ ४५ ॥ उस समय यदुङ्ग, पञ्चाक्षज, राहु, ढोख और नगारे आदि बाजे बजने लगे। नट और नर्तकियाँ नाचने लगीं। सुत और मागध स्तुति-गान करने लगे। गन्धर्वोंके साथ सुरीले गलेवाकी गन्धर्व-पत्नियाँ गान करने लगीं ॥ ४६ ॥ वसुदेवजीने पहले नेत्रोंमें अंजन और शरीरमें मक्खन लगा लिया; फिर उनकी देवकी आदि अठारह पत्नियोंके साथ उन्हें ऋत्विजोंने महाभिषेककी विधिसे वैसे ही अभिषेक कराया, जिस प्रकार प्राचीन कालमें नक्षत्रोंके साथ चन्द्रमाका अभिषेक हुआ था ॥ ४७ ॥ उस समय यज्ञमें दीक्षित होनेके कारण वसुदेवजी तो मृगचर्म धारण किये हुए थे; परन्तु उनकी पत्नियाँ सुन्दर-सुन्दर साड़ी, कान, हार, पायजेब और कर्णकुल आदि आभूषणोंसे खूब सजी हुई थीं। वे अपनी पत्नियोंके साथ मली-मौलि शोभायमान हुए ॥ ४८ ॥ महाराज! वसुदेवजीके ऋत्विज और सदस्य रत्नजटित आभूषण तथा रेशमी वस्त्र धारण करके वैसे ही सुसज्जित हुए, वैसे पहले इन्द्रके यज्ञमें हुए थे ॥ ४९ ॥ उस समय भगवान् श्रीकृष्ण और बलरामजी अपने अपने माई-बन्धु और की-पुत्रोंके साथ इस प्रकार शोभायमान हुए, जैसे अपनी शक्तियोंके साथ समस्त जीवोंके ईश्वर स्वयं भगवान् समष्टि जीवोंके अभिमानी श्रीसङ्कर्षण तथा अपने विशुद्ध नारायणस्वरूपमें शोभायमान होते हैं ॥ ५० ॥

वसुदेवजीने प्रत्येक यज्ञमें ज्योतिष्ठेम, दर्श, पूर्णमास आदि प्राकृत यज्ञों, सौरसत्रादि वैकृत यज्ञों और अग्नि-होत्र आदि अन्यान्य यज्ञोंके द्वारा ब्रह्म, क्रिया और उनके ज्ञानके—मन्त्रोंके सामीप्य निष्पृग्भगवान्की आराधना की ॥ ५१ ॥ इसके बाद उन्होंने उचित समयपर ऋत्विजोंको वस्त्राढ्यकारोंसे सुसज्जित किया और शास्त्रके अनुसार बहुत-सी दक्षिणा तथा प्रचुर धनके साथ अलङ्कृत गौएँ, पृथ्वी और सुन्दरी

घन्याएँ दीं ॥ ५२ ॥ इसके बाद महर्षियोंने पत्नीसंथाज नामक यज्ञाङ्ग और अवश्यस्नान अर्थात् यज्ञान्त-स्नानसम्बन्धी अवशेष कर्म कराकर वसुदेवजीको आगे करके परशुरामजीके बनाये हृदमें—रामहृदमें स्नान किया ॥ ५३ ॥ स्नान करनेके बाद वसुदेवजी और उनकी पत्नियोंने वंदीजनकोंको अपने सारे वस्त्राभूषण दे दिये तथा स्वयं नये वस्त्राभूषणसे सुसज्जित होकर उन्होंने ब्राह्मणोंसे लेकर कुतोंतकको भोजन कराया ॥ ५४ ॥ तदनन्तर अपने माई-बन्धुओं, उनके की-पुत्रों तथा विदर्भ, कौसल, कुक, काशी, कैकय और सृक्ष्य आदि देशोंके राजाओं, सदस्यों, ऋत्विजों, देवताओं, मनुष्यों, भूतों, पितरों और चारणोंको विदार्भके रूपमें बहुत-सी मंड देकर सम्मानित किया। वे लोग छस्मीपति भगवान् श्रीकृष्णकी अनुमति लेकर यज्ञकी प्रशंसा करते हुए अपने-अपने घर चले गये ॥ ५५-५६ ॥ परीक्षित। उस समय राजा धृतराष्ट्र, विदुर, दुषिष्ठिर, भीम, अर्जुन, भीष्मापितामह, श्रेणार्च्य, कुन्ती, नकुल, सपदेव, नारद, भगवान् व्यासदेव तथा दूसरे स्वजन, सम्बन्धी और बान्धव अपने द्वितीय बन्धु पादपोंको छोड़कर जानेमें अत्यन्त विरह-व्यथाका अनुभव करने लगे। उन्होंने अत्यन्त स्नेहाई विचरते यदुर्गशियोंका आच्छिन्न किया और बड़ी कठिनाईसे किसी प्रकार अपने-अपने देशको गये। दूसरे लोग भी इनके साथ ही वहाँसे खाना हो गये ॥ ५७-५८ ॥ परीक्षित। भगवान् श्रीकृष्ण, बलरामजी तथा उग्रसेन आदिने नन्दबाबा एवं अन्य सब गोपोंकी बहुत बड़ी-बड़ी सामग्रियोंसे अर्घ्य-पूजा की; उनका स्त्वनर किया, और वे प्रेम-परवश होकर बहुत दिनोंतक वहीं रहे ॥ ५९ ॥ वसुदेवजी अनायास ही अपने बहुत बड़े मनोरथका महासमगर पार कर गये थे। उनके आनन्दकी सीमा न थी। सभी आत्मीय स्वजन उनके साथ थे। उन्होंने नन्दबाबाका हाथ पकड़कर कहा ॥ ६० ॥

वसुदेवजीने कहा—माईजी! भगवान्ने मनुष्योंके लिये एक बहुत बड़ा बन्धन बना दिया है। उस बन्धनका नाम है स्नेह, प्रेमपाश। मैं तो ऐसा समझता हूँ कि बड़े-बड़े शस्त्रीर और योगी-यति भी उसे तोड़नेमें

असमर्थ हैं ॥ ६१ ॥ आपने हम अकृतज्ञोंके प्रति अनुपम मित्रताका व्यवहार किया है । क्यों न हो, आप-सरीखे संत-शिरोमणियोंका तो ऐसा स्वभाव ही होता है । हम इसका कभी बदला नहीं चुका सकते, आपको इसका कोई फल नहीं दे सकते । फिर भी हमारा यह मैत्री-सम्बन्ध कभी टूटनेवाला नहीं है । आप इसको सदा निभाते रहेंगे ॥ ६२ ॥ भाईजी ! पहले तो बंदी-गृहमें बंद होनेके कारण हम आपका कुछ भी प्रिय और हित न कर सके । अब हमारी यह दशा हो रही है कि हम धन-सम्पत्तिके नशेसे—श्रीमदसे अंधे हो रहे हैं; आप हमारे सामने हैं तो भी हम आपकी ओर नहीं देख पाते ॥ ६३ ॥ वृसरोको सम्मान देकर स्वयं सम्मान न चाहनेवाले भाईजी ! जो कल्याणकारी हैं उसे राज्यलक्ष्मी न मिले—इसीमें उसका भला है; क्योंकि मनुष्य राज्यलक्ष्मीसे अंधा हो जाता है और अपने भाई-बन्धु, खजनोंतकको नहीं देख पाता ॥ ६४ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित । इस प्रकार कहते-कहते वसुदेवजीका हृदय प्रेमसे गूँगा हो गया । उन्हें नन्दबाबाकी मित्रता और उपकार स्मरण हो आये । उनके नेत्रोंमें प्रेमाश्रु उमड़ आये, वे रोने लगे ॥ ६५ ॥ नन्दजी अपने सखा वसुदेवजीको प्रसन्न करनेके लिये एवं भगवान् श्रीकृष्ण और बलरामजीके

प्रेमपाशमें बँधकर आब-कल करते-करते तीन महीनेतक वहीं रह गये । यदुवशियोंने जीभर उनका सम्मान किया ॥ ६६ ॥ इसके बाद बहुभूष्य आभूषण, रेशमी वस्त्र, नाना प्रकारकी उत्तमोत्तम सामग्रियों और भोगोंसे नन्दबाबाको, उनके ब्रजवासी साथियोंको और बन्धु-बान्धवोंको खूब रस किया ॥ ६७ ॥ वसुदेवजी, उपसेन, श्रीकृष्ण, बलराम, उद्धव आदि यदुवशियोंने अलग-अलग उन्हें अनेकों प्रकारकी भेंटें दीं । उनके बिदा करनेपर उन सब सामग्रियोंको लेकर नन्दबाबा अपने ब्रजके लिये रवाना हुए ॥ ६८ ॥ नन्दबाबा, गोपों और गोपियोंका चिच भगवान् श्रीकृष्णके चरण-कमलोंमें इस प्रकार डग गया कि वे फिर प्रयत्न करनेपर भी उसे वहाँसे छीटा न सके । सुतरा बिना ही मनके उन्होंने मधुराकी यात्रा की ॥ ६९ ॥

जब सब बन्धु-बान्धव वहाँसे बिदा हो चुके, तब भगवान् श्रीकृष्णको ही एकमात्र इष्टदेव माननेवाले यदुवशियोंने यह देखकर कि अब वर्षा ऋतु आ पहुँची है, द्वारकाके लिये प्रस्थान किया ॥ ७० ॥ वहाँ जाकर उन्होंने सब जगहोंसे वसुदेवजीके यक्ष-महोत्सव, खजन-सम्बन्धियोंके दर्शन-मिलन आदि तीर्थयात्राके प्रसङ्गोंको कह सुनाया ॥ ७१ ॥

पचासीवाँ अध्याय

श्रीभगवान्‌के द्वारा वसुदेवजीको ब्रह्मज्ञानका उपदेश तथा देवकीजीके छः पुत्रोंको लौटा लाना श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित । इसके बाद एक दिन भगवान् श्रीकृष्ण और बलरामजी प्रातःकालीन प्रणाम करनेके लिये माता-पिताके पास गये । प्रणाम कर लेनेपर वसुदेवजी बड़े प्रेमसे दोनों भाइयोंका अभिनन्दन करके कहने लगे ॥ १ ॥ वसुदेवजीने बड़े-बड़े ऋषियोंके मुँहसे भगवान्‌की महिमा सुनी थी तथा उनके ऐश्वर्यपूर्ण चरित्र भी देखे थे । इससे उन्हें इस बातका दृढ़ विश्वास हो गया था कि वे साधारण पुरुष नहीं, स्वयं भगवान् हैं । इसलिये उन्होंने अपने पुत्रोंको प्रेमपूर्वक सम्बोधित करके यों कहा—॥ २ ॥

‘सच्चिदानन्दस्वरूप श्रीकृष्ण । महायोगीश्वर सङ्कर्षण । तुम दोनों सनातन हो । मैं जानता हूँ कि तुम दोनों सारे जगत्‌के साक्षात् कारणस्वरूप प्रधान और पुरुषके भी निष्पन्न परमेश्वर हो ॥ १ ॥ इस जगत्‌के आधार, निर्माता और निर्माणसामग्री भी तुम्हीं हो । इस सारे जगत्‌के खामी तुम दोनों हो और तुम्हारी ही कीड़ाके लिये इसका निर्माण हुआ है । यह जिस समय, जिस रूपमें जो कुछ रहता है, होता है—वह सब तुम्हीं हो । इस जगत्‌में प्रकृति-रूपसे भोग्य और पुरुषरूपसे भोक्ता तथा दोनोंसे परे

दोनोंके नियामक साक्षात् मग्वान् भी तुम्हीं हो ॥४॥
 इन्द्रियातीत ! जन्म, अस्तित्व आदि भावविकारोंसे
 रहित परमात्मन् । इस चित्र-विचित्र जगत्का तुम्हीं
 निर्माण किया है और इसमें खयं तुमने ही आत्मारूपसे
 प्रवेश भी किया है। तुम प्राण (क्रियाशक्ति) और जीव
 (ज्ञानशक्ति) के रूपसे इसका पालन-पोषण कर रहे
 हो ॥ ५ ॥ क्रियाशक्तिप्रधान प्राण आदिमें जो
 जगत्की वस्तुओंकी सृष्टि करनेकी सामर्थ्य है, वह
 उनकी अपनी सामर्थ्य नहीं, तुम्हारी ही है। क्योंकि
 वे तुम्हारे समान चेतन नहीं, अचेतन हैं; खतन्त्र
 नहीं, परतन्त्र हैं। अतः उन चेष्टाशक्ति प्राण आदिमें
 केवल चेष्टामात्र होती है, शक्ति नहीं। शक्ति तो
 तुम्हारी ही है ॥ ६ ॥ प्रभो ! चन्द्रमाकी कान्ति,
 अग्निका तेज, सूर्यकी प्रभा, नक्षत्र और विपुल आदिकी
 स्फुरणरूपसे सत्ता, पर्वतोंकी स्थिरता, पृथ्वीकी साधारण-
 शक्तिरूप वृत्ति और गन्धरूप गुण—ये सब वास्तवमें
 तुम्हीं हो ॥ ७ ॥ परमेश्वर ! जड़में वृत्त करने, जीवन
 देने और शुद्ध करनेकी जो शक्तियाँ हैं, वे तुम्हारा
 ही स्वरूप हैं। जड़ और उसका रस भी तुम्हीं हो।
 प्रभो ! इन्द्रियशक्ति, अन्तःकरणकी शक्ति, शरीरकी
 शक्ति, उसका झिलना-होचना, चञ्चना-मिश्रण—ये
 सब बाहुकी शक्तियाँ तुम्हारी ही हैं ॥ ८ ॥ दिशाएँ
 और उनके अवकाश भी तुम्हीं हो। आकाश और
 उसका आश्रयभूत स्फोट—शब्दतन्मात्रा या परा
 वाणी, गन्ध—पर्यन्ती, ओंकार—मध्यमा तथा कर्ण
 (अक्षर) एवं पदार्थोंका अलग-अलग निर्देश करनेवाले
 पद, रूप, बैखरी वाणी भी तुम्हीं हो ॥ ९ ॥
 इन्द्रियों, उनकी विषयप्रकाशनी शक्ति और अविच्छाद-
 देवता तुम्हीं हो। बुद्धिकी निश्चयात्मिका शक्ति और
 जीवकी विशुद्ध स्मृति भी तुम्हीं हो ॥ १० ॥ भूतोंमें
 उनका कारण तामस अहङ्कार, इन्द्रियोंमें उनका कारण
 तैजस अहङ्कार और इन्द्रियोंके अविच्छाद-देवताओंमें
 उनका कारण सात्त्विक अहङ्कार तथा जीवोंके आवा-
 गमनका कारण माया भी तुम्हीं हो ॥ ११ ॥ मग्वन् !
 जैसे मिट्टी आदि वस्तुओंके विकार घड़ा, बूझ आदिमें
 मिट्टी निरन्तर वर्तमान है और वास्तवमें वे कारण
 (सृष्टिका) रूप ही हैं—उसी प्रकार जितने भी

विनाशवान् पदार्थ हैं, उनमें तुम कारणरूपसे अविनाशी
 तत्त्व हो। वास्तवमें वे सब तुम्हारे ही स्वरूप हैं
 ॥ १२ ॥ प्रभो ! सत्त्व, रज, तम—ये तीनों गुण
 और उनकी वृत्तियाँ (परिणाम)—महत्त्वादि परमा-
 परमात्मा, तुममें योगमायाके द्वारा कल्पित हैं ॥ १३ ॥
 इसलिये ये जितने भी जन्म, अस्ति, वृद्धि, परिणाम
 आदि भाव-विकार हैं, वे तुममें सर्वथा नहीं हैं। जब
 तुममें इनकी कल्पना कर ली जाती है, तब तुम इन
 विकारोंमें अनुगत जान पड़ते हो। कल्पनाकी निवृत्ति
 हो जानेपर तो निर्विकल्प परमार्थस्वरूप तुम्हीं तुम रह
 जाते हो ॥ १४ ॥ यह जगत् सत्त्व, रज, तम—इन
 तीनों गुणोंका प्रवाह है; देह, इन्द्रिय, अन्तःकरण,
 सुख, दुःख और राग-भेमादि उन्हींके कार्य हैं।
 इनमें जो अज्ञानी तुम्हारा, सर्वात्माका सूक्ष्मस्वरूप नहीं
 जानते, वे अपने देहाभिमानरूप अज्ञानके कारण ही
 कर्मोंके फलमें फँसकर बार-बार जन्म-मृत्युके चक्रमें
 मटकते रहते हैं ॥ १५ ॥ परमेश्वर ! तुझे श्रुत
 प्रारम्भके अनुसार इन्द्रियादिकी सामर्थ्यसे युक्त अल्पत
 दुर्लभ मनुष्य-शरीर प्राप्त हुआ। किन्तु तुम्हारी मायाके
 बल होकर मैं अपने सन्धे स्वार्थ-परमार्थसे ही असावधान
 हो गया और मेरी सारी आयु यों ही बीत गयी ॥ १६ ॥
 प्रभो ! यह शरीर मैं हूँ और इस शरीरके सम्बन्धी
 मेरे अपने हैं, इस अहंता एवं ममत्तारूप स्नेहकी
 फौसीसे तुमने इस सारे जगत्को बाँध रक्खा है
 ॥ १७ ॥ मैं जानता हूँ कि तुम दोनों मेरे पुत्र नहीं
 हो, सम्पूर्ण प्रकृति और जीवोंके स्वामी हो। पृथ्वीके
 भस्मभूत राजाओंके नाशके लिये ही तुमने अवतार
 ग्रहण किया है। यह बात तुमने सुझसे कही भी थी
 ॥ १८ ॥ इसलिये दीनजनोंके हितैषी, शरणागतसत्त्व !
 मैं अब तुम्हारे चरणकमलोंकी शरणमें हूँ; क्योंकि
 वे ही शरणागतोंके संसारमयको मिटानेवाले हैं। अब
 इन्द्रियोंके लोलुपतासे भर पाया। इसीके कारण
 मैंने मृत्युके आस इस शरीरमें आत्मबुद्धि कर ली
 और तुममें, जो कि परमात्मा हो, पुत्रबुद्धि ॥ १९ ॥
 प्रभो ! तुमने प्रसन्न-गृहमें ही हमसे कहा था कि ध्येय
 मैं अजन्मा हूँ, फिर भी मैं अपनी ही बनायी हुई धर्म-
 मर्यादाकी रक्षा करनेके लिये प्रत्येक युगमें तुम दोनोंके द्वारा

अवतार ग्रहण करता रहा हूँ ।' भगवन् । तुम आकाशके समान अनेकों शरीर ग्रहण करते और जोड़ते रहते हो । वास्तवमें तुम अनन्त, एकरस सत्ता हो । तुम्हारी आश्चर्यमयी शक्ति योगमायाका रहस्य भटा, कौन जान सकता है ? सब लोग तुम्हारी कीर्तिका ही गान करते रहते हैं ॥ २० ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित । ऋषदेवजीके ये वचन सुनकर यदुवंशशिरोमणि भक्तवत्सल भगवान् श्रीकृष्ण मुसकराने लगे । उन्होंने विनयसे छुकाकर भद्रु बाणीसे कहा ॥ २१ ॥

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—पिताजी ! हम तो आपके पुत्र ही हैं । हमें लज्य करके आपने यह ब्रह्महानका उपदेश किया है । हम आपकी एक-एक बात युक्तियुक्त मानते हैं ॥ २२ ॥ पिताजी ! आप-जोग, मैं, भैया बलरामजी, सारे द्वारकावासी, सम्पूर्ण चत्वार जगत्—सब-के-सब आपने जैसा कहा, वैसे ही हैं, सबको ब्रह्मरूप ही समझना चाहिये ॥ २३ ॥ पिताजी ! आत्मा तो एक ही है । परन्तु वह अपनेमें ही गुणोंकी सृष्टि कर लेता है और गुणोंके द्वारा बनाये हुए पञ्चभूतोंमें एक होनेपर भी अनेक, स्वयं-प्रकाश होनेपर भी दृश्य, अपना स्वरूप होनेपर भी अपनेसे भिन्न, नित्य होनेपर भी अभित्य और निर्गुण होनेपर भी सगुणके रूपमें प्रतीत होता है ॥ २४ ॥ जैसे आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी—ये पञ्चमहाभूत अपने कार्य घट, कुण्डल आदिमें प्रकट-अप्रकट, बड़े-छोटे, अधिक-थोड़े, एक और अनेक-से प्रतीत होते हैं—परन्तु वास्तवमें सत्तास्वरूपसे वे एक ही रहते हैं; वैसे ही आत्मामें भी उपाधियोंके भेदसे ही नानात्वकी प्रतीति होती है । इसलिये जो मैं हूँ, वही सब हैं—इस दृष्टिसे आपका कहना ठीक ही है ॥ २५ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित । भगवान् श्रीकृष्णके इन वचनोंको सुनकर ऋषदेवजीने नावात्स-युद्धि छोड़ दी, वे आनन्दमें मग्न होकर बाणीसे मौन और मनसे निस्सङ्कल्प हो गये ॥ २६ ॥ कुरुज्योति !

उस समय वहाँ छविदेवजी देवकीजी भी बैठी हुई थीं । वे बहुत पहलेसे ही यह सुनकर अत्यन्त विस्मित थीं कि श्रीकृष्ण और बलरामजीने अपने भरे हुए गुरुपुत्रको यमलोकसे वापस ल दिया ॥ २७ ॥ अब उन्हें अपने उन पुत्रोंकी याद आ गयी, जिन्हें कंसने मार बाँटा था । उनके स्मरणसे देवकीजीका हृदय आतुर हो गया, नेत्रोंसे आँसू बहने लगे । उन्होंने बड़े ही कष्ट-स्वरसे श्रीकृष्ण और बलरामजीको सम्बोधित करके कहा ॥ २८ ॥

देवकीजीने कहा—लोकामिराम राम ! तुम्हारी शक्ति भव और बाणीके परे है । श्रीकृष्ण । तुम योगेश्वरोंके भी ईश्वर हो । मैं जानती हूँ कि तुम दोनों प्रजापतियोंके भी ईश्वर, आदिपुरुष नारायण हो ॥ २९ ॥ यह भी मुझे निश्चित रूपसे मालूम है कि जिन लोगोंने काष्ठात्मनसे अपना धैर्य, सयम और सत्त्वगुण खो दिया है तथा शास्त्रकी आज्ञाओंका उल्लङ्घन करके जो स्वेच्छाचारपरायण हो रहे हैं, भूमिके भारभूत उन राजाओंका नाश करनेके लिये ही तुम दोनों भेरे गर्मसे अवतीर्ण हुए हो ॥ ३० ॥ किन्तात्मन् । तुम्हारे पुरुषरूप अंशसे उत्पन्न हुई मायासे गुणोंकी उत्पत्ति होती है और उनके ज्ञेयमात्रसे जगत्की उत्पत्ति, विकास तथा प्रलय होता है । आन मैं सर्वान्तःकरणसे तुम्हारी शरण हो रही हूँ ॥ ३१ ॥ मैंने सुना है कि तुम्हारे गुरु सान्दीपनिजीके पुत्रको भरे बहुत दिन हो गये थे । उनको गुरुदक्षिणा देनेके लिये उनकी आज्ञा तथा काष्ठकी प्रेरणासे तुम दोनोंने उनके पुत्रको यमपुरीसे वापस ल दिया ॥ ३२ ॥ तुम दोनों योगेश्वरोंके भी ईश्वर हो । इसलिये आज मेरी भी अभिलषा पूर्ण करो । मैं चाहती हूँ कि तुम दोनों भेरे उन पुत्रोंको, जिन्हें कंसने मार बाँटा था, ल दो और उन्हें मैं मर बाँछ देख दूँ ॥ ३३ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—प्रिय परीक्षित । माता देवकीजीकी यह बात सुनकर भगवान् श्रीकृष्ण और बलराम दोनोंने योगमायाका आश्रय पेशर सुतल लोकमें प्रवेश किया ॥ ३४ ॥ जब दैत्यराज बन्धने देखा—कि जगत्के आत्मा और इष्टदेव तथा भेरे परम खामी भगवान् श्रीकृष्ण और बलरामजी सुतल लोकमें पधारे

हैं, तब उनका हृदय उनके दर्शनके आनन्दमें निमग्न हो गया । उन्होंने झटपट अपने कुटुम्बके साथ आसनसे उठकर भगवान्‌के चरणोंमें प्रणाम किया ॥ ३५ ॥ अत्यन्त आनन्दसे भरकर दैत्यराज बलिने भगवान् श्रीकृष्ण और बछरामजीको श्रेष्ठ आसन दिया और जब वे दोनों महापुरुष उसपर विराज गये, तब उन्होंने उनके पाँव पखारकर उनका चरणोदक परिवारसहित अपने सिरपर धारण किया । परीक्षित ! भगवान्‌के चरणोंका जल ब्रह्मापर्यन्त सारे जगत्‌को पवित्र कर देता है ॥ ३६ ॥ इसके बाद दैत्यराज बलिने बहुमुख्य कल-आभूषण, चन्दन, ताम्बूल, दीपक, अमृतके समान मोजन एवं अन्य विविध सामग्रियोंसे उनकी पूजा की और अपने समस्त परिवार, धन तथा शरीर आदिको उनके चरणोंमें समर्पित कर दिया ॥ ३७ ॥ परीक्षित ! दैत्यराज बलि बार-बार भगवान्‌के चरणकमलोंको अपने बक्षःस्थल और सिरपर रखने लगे, उनका हृदय प्रेमसे विह्वल हो गया । नेत्रोंसे आनन्दके आँसू बहने लगे । रोम-रोम खिल उठा । अब वे गगनद्वारसे भगवान्‌की स्तुति करने लगे ॥ ३८ ॥

दैत्यराज बलिने कहा—बछरामजी ! आप अनन्त हैं । आप इतने महान् हैं कि शेष आदि सभी विग्रह आपके अन्तर्भूत हैं । सच्चिदानन्दस्वरूप श्रीकृष्ण ! आप सकल जगत्‌के निर्माता हैं । ज्ञानयोग और भक्ति-योग दोनोंके प्रवर्तक आप ही हैं । आप स्वयं ही परब्रह्म परमात्मा हैं । हम आप दोनोंको बार-बार नमस्कार करते हैं ॥ ३९ ॥ भगवन् ! आप दोनोंका दर्शन प्राणियोंके लिये अत्यन्त दुर्लभ है । फिर भी आपकी कृपासे वह सुलभ हो जाता है । क्योंकि आज आपने कृपा करके हम रजोगुणी एवं तमोगुणी समावबाले दैत्योंको भी दर्शन दिया है ॥ ४० ॥ प्रभो ! हम और हमारे ही समान दूसरे दैत्य, दानव, गन्धर्व, सिद्ध, विद्याधर, चारण, यक्ष, राक्षस, पिशाच, भूत और प्रमथनायक आदि आपका प्रेमसे भजन करना तो दूर रहा, आपसे सर्वदा दृढ़ वैरभाव रखते हैं; परन्तु आपका श्रीनिग्रह साक्षात् वेदमय और विशुद्ध सत्त्वस्वरूप है । इसलिये हमलोगों-मेंसे बहुतोंने दृढ़ वैरभावसे, कुलने मत्स्यसे और कुलने

कामनासे आपका स्मरण करके उस पदको प्राप्त किया है, जिसे आपके समीप रहनेवाले सत्त्वप्रधान देवता आदि भी नहीं प्राप्त कर सकते ॥ ४१-४३ ॥ योगेश्वरों-के अधीश्वर ! नये-नये योगेश्वर भी प्रायः यह बात नहीं जानते कि आपकी योगमाया यह है और ऐसी है; फिर हमारी तो बात ही क्या है ! ॥ ४४ ॥ इसलिये खामी ! मुझपर ऐसी कृपा कीजिये कि मेरी चित्त-वृत्ति आपके उन चरणकमलोंमें लग जाय, जिसे किसीकी अपेक्षा न रहनेवाले परमहंसलोग हँका करते हैं; और उनका आश्रय लेकर मैं उससे मिल इस धर-गृहस्थीके भँवरे झूँटसे निकल जाऊँ । प्रभो ! इस प्रकार आपके उन चरणकमलोंकी, जो सारे जगत्‌के एकमात्र आश्रय हैं, शरण लेकर शान्त हो जाऊँ और अकेला ही विचरण करूँ । यदि कभी किसीका सङ्ग करना ही पड़े तो सबके परम हितैषी संतोका ही ॥ ४५ ॥ प्रभो ! आप समस्त चराचर जगत्‌के निष्पन्ता और ज्ञानी हैं । आप हमें आश्वास देकर निष्ठाप बनाइये, हमारे पापोंका नाश कर दीजिये; क्योंकि जो पुरुष ब्रह्माके साथ आपकी आज्ञाका पालन करता है, वह विधि-निषेधके बन्धनसे मुक्त हो जाता है ॥ ४६ ॥

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—दैत्यराज ! सायम्भुव मन्वन्तरमें प्रजापति मरीचिकी पत्नी जगती गर्भसे छः पुत्र उत्पन्न हुए थे । वे सभी देवता थे । वे यह देखकर कि ब्रह्माजी अपनी पुत्रीसे समागम करनेके लिये उद्यत हैं, हँसने लगे ॥ ४७ ॥ इस परिहासरूप अपराधके कारण उन्हें ब्रह्माजीने शाप दे दिया और वे असुर-योनिमें हिरण्यकशिपुके पुत्ररूपसे उत्पन्न हुए । अब योगमाया ने उन्हें वहाँसे लेकर देवकीके गर्भमें रख दिया और उनको उत्पन्न होते ही कंसने मार डाला । दैत्यराज ! अपने माता देवकीजी उन पुत्रोंके लिये अत्यन्त शोकग्रस्त हो रही हैं और वे तुम्हारे पास हैं ॥ ४८-४९ ॥ अतः हम अपनी माताका शोक दूर करनेके लिये हमें वहाँसे ले जायेंगे । इसके बाद ये शापसे मुक्त हो जायेंगे और आनन्दपूर्वक अपने लोकमें चले जायेंगे ॥ ५० ॥ इनके छः नाम हैं—सर, उद्गीथ, परिष्वज, पवङ्ग, कुवश्रुत् और वृणि । हमें मेरी कृपासे पुनः सद्गति

प्राप्त होगी ॥ ५१ ॥ परीक्षित ! इतना कहकर भगवान् श्रीकृष्ण झुप हो गये । दैत्यराज बलिने उनकी पूजा की; इसके बाद श्रीकृष्ण और बछरामजी बाळकोंको लेकर फिर द्वारका लौट आये तथा माता देवकीको उनके पुत्र सौंप दिये ॥ ५२ ॥ उन बाळकोंको देखकर देवी देवकीके हृदयमें वात्सल्य-स्नेहकी नाद आ गयी । उनके स्तनोंसे दूध बहने लगा । वे बार-बार उन्हें गोदमें लेकर छातीसे लगाती और उनका सिर संघर्षती ॥ ५३ ॥ पुत्रोंके स्पर्शके आनन्दसे सराबोर एवं आनन्दित देवकीने उनको स्नान-पान कराया । वे विष्णुभगवान्की उस मायासे मोहित हो रही थीं, जिससे यह सुखि-कमल चलाता है ॥ ५४ ॥ परीक्षित ! देवकीजीके स्वर्गोक्त दूध साक्षात् अमृत था; क्यों न हो, भगवान् श्रीकृष्ण जो उसे पी चुके थे । उन बाळकोंने वही अमृतमय दूध पिया । उस दूधके पीनेसे और भगवान् श्रीकृष्णके अङ्गोंका संस्पर्श होनेसे उन्हें आत्मसाक्षात्कार हो गया ॥ ५५ ॥ इसके बाद उन लोगोंने भगवान् श्रीकृष्ण, माता देवकी, पिता वसुदेव और बछरामजीको नमस्कार

किया । तदनन्तर सबके सामने ही वे देवकोकमें चले गये ॥ ५६ ॥ परीक्षित ! देवी देवकी यह देखकर अत्यन्त विस्मित हो गयीं कि मेरे हुए बाळक लौट आये और फिर चले भी गये । उन्होंने ऐसा निश्चय किया कि यह श्रीकृष्णका ही कोई वीर्य-कौशल है ॥ ५७ ॥ परीक्षित ! भगवान् श्रीकृष्ण स्वयं परमात्मा हैं, उनकी शक्ति अनन्त है । उनके ऐसे-ऐसे अद्भुत चरित्र इतने हैं कि किसी प्रकार उनका पार नहीं पाया जा सकता ॥ ५८ ॥

सबकी कहारें हैं—शौनकादि ऋषियो ! भगवान् श्रीकृष्णकी कीर्ति अमर है, अमृतमयी है । उनका चरित्र जगत्के समस्त पाप-तापोंको मिटानेवाला तथा भक्तजनोंके कर्माकुहरोंमें आनन्दसुखा प्रकाशित करनेवाला है । इसका कर्ण स्वयं व्यासमन्दन भगवान् श्रीशुकदेवजीने किया है । जो इसका श्रवण करता है अथवा दूसरेको सुनाता है, उसकी सम्पूर्ण चित्तवृत्ति भगवान्में लग जाती है और वह उन्हींके परम कल्याणस्वरूप धामको प्राप्त होता है ॥ ५९ ॥

छियासीवाँ अध्याय

सुभद्राहरण और भगवान्का मिथिलापुरीमें राजा जनक और वसुदेव ब्राह्मणके घर एक ही साथ जाना

राजा परीक्षितने पूछा—भगवन् ! मेरे दादा अर्जुनने भगवान् श्रीकृष्ण और बछरामजीकी बहिन सुमद्राजीसे, जो मेरी दादी थीं, किस प्रकार विवाह किया ? मैं यह जाननेके लिये बहुत उत्सुक हूँ ॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजीने कहा—परीक्षित ! एक बार अत्यन्त शक्तिशाली अर्जुन तीर्थयात्राके लिये पृथ्वीपर विचरण करते हुए प्रभासक्षेत्र पहुँचे । वहाँ उन्होंने यह सुना कि बछरामजी मेरे मामाकी पुत्री सुमद्राका निग्रह दुर्योधनके साथ करना चाहते हैं और वसुदेव, श्रीकृष्ण आदि उनसे इस विषयमें सहमत नहीं हैं । अब अर्जुनके मनमें सुमद्राको पानेकी अजल्सा जग आयी । वे त्रिदण्डी वैष्णवका वेष धारण करके द्वारका पहुँचे ॥ २-३ ॥ अर्जुन सुमद्राको प्राप्त करनेके लिये वहाँ वर्षाकालमें चार महीनेतक रहे । वहाँ पुरवासिनों और बछरामजीने

उनका खूब सम्मान किया । उन्हें यह पता न चल सका कि ये अर्जुन हैं ॥ ४ ॥

एक दिन बछरामजीने आतिथ्यके लिये उन्हें निमन्त्रित किया और उनको वे अपने घर ले आये । त्रिदण्डी-वेषधारी अर्जुनको बछरामजीने अत्यन्त भद्राके साथ भोजन-सामग्री निवेदित की और उन्होंने बड़े प्रेमसे भोजन किया ॥ ५ ॥ अर्जुनने भोजनके समय वहाँ निग्राहयोग्य परम सुन्दरी सुमद्राको देखा । उसका सौन्दर्य बड़े-बड़े वीरोंका मन हरनेवाला था । अर्जुनके नेत्र प्रेमसे प्रकलित हो गये । उनका मन उसे पानेकी आकाङ्क्षासे झुञ्झ हो गया और उन्होंने उसे पत्नी बनानेका दृढ़ निश्चय कर लिया ॥ ६ ॥ परीक्षित ! सुमद्रा ने दादा अर्जुन की बड़े ही सुन्दर थे । उनके शरीरकी गठन, मान-मङ्गी शिखोंका हृदय स्पर्श कर लेती थी । उन्हें

देखकर सुमन्त्राने भी मनमें ऊँहीको पति बनानेका निश्चय किया। वह तनिक सुसकारका लजीली चितवनसे उनकी ओर देखने लगी। उसने अपना हृदय उन्हें समर्पित कर दिया ॥ ७ ॥ अब अर्जुन केवल उसीका चिन्तन करने लगे और इस बातका अवसर ढूँढ़ने लगे कि इसे कब हर ले जाऊँ। सुमन्त्रको प्राप्त करनेकी उत्कट कामनासे उनका चित्त चकर काटने लगा, उन्हें तनिक भी शान्ति नहीं मिलती थी ॥ ८ ॥

एक बार सुमन्त्राजी देव-दर्शनके लिये रथपर सवार होकर द्वारका-दुर्गसे बाहर निकली। उसी समय महारथी अर्जुनने देवकी-बसुदेव और श्रीकृष्णकी अनुमतिसे सुमन्त्राका हरण कर लिया ॥ ९ ॥ रथपर सवार होकर वीर अर्जुनने धनुष उठा लिया और जो सैनिक उन्हें रोकनेके लिये आये, उन्हें मार-पीटकर भगा दिया। सुमन्त्रके निज-जन रोते-चिल्लाते रह गये और अर्जुन जिस प्रकार सिंह अपना भाग लेकर चल देता है, वैसे ही सुमन्त्रको लेकर चल पड़े ॥ १० ॥ यह समाचार सुनकर बलरामजी बहुत विगड़े। वे वैसे ही झुम्ब हो उठे, जैसे पूर्णिमाके दिन समुद्र। परन्तु भगवान् श्रीकृष्ण तथा अन्य सुबुद्ध-सम्बन्धियोंने उनके पैर पकड़कर उन्हें बहुत-कुछ समझाया-बुझाया, तब वे शान्त हुए ॥ ११ ॥ इसके बाद बलरामजीने प्रसन्न होकर क-बूके लिये बहुत-सा धन, सामग्री, हाथी, रथ, घोड़े और दासी-दास दहेजमें भेजे ॥ १२ ॥

धीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित ! विदेहकी राजधानी मिथिलामें एक गृहस्थ ब्राह्मण थे। उनका नाम था श्रुतदेव। वे भगवान् श्रीकृष्णके परम भक्त थे। वे एकमात्र भगवद्भक्तिये ही पूर्णमनोरथ, परम शान्त, ज्ञानी और विरक्त थे ॥ १३ ॥ वे गृहस्थाश्रममें रहते हुए भी किसी प्रकारका उद्योग नहीं करते थे; जो कुछ मिल जाता, उसीसे अपना निर्वाह कर लेते थे ॥ १४ ॥ प्रारम्भवश प्रतिदिन उन्हें जीवन-निर्वाह्यमके लिये सामग्री मिल जाया करती थी, अधिक नहीं। वे उत्तनेसे ही सन्तुष्ट भी थे, और अपने वर्णाश्रमके अनुसार धर्मपालनमें तत्पर रहते थे ॥ १५ ॥ प्रिय परीक्षित ! उस देशके राजा भी ब्राह्मणके समान ही भक्तिमान् थे। मैत्रि-

वंशके उन प्रतिष्ठित नरपतिका नाम था बहुलाक्ष। उनमें अहङ्कारका लेश भी न था। श्रुतदेव और बहुलाक्ष दोनों ही भगवान् श्रीकृष्णके प्यारे भक्त थे ॥ १६ ॥

एक बार भगवान् श्रीकृष्णने उन दोनोंपर प्रसन्न होकर दारुकासे रथ मँगवाया और उसपर सवार होकर द्वारकासे विदेह देशकी ओर प्रस्थान किया ॥ १७ ॥ भगवान्के साथ नारद, वामदेव, अत्रि, वेदव्यास, परशुराम, असित, आरुणि, मैं (शुकदेव), बृहस्पति, कण्व, मैत्रेय, ष्यक्न आदि ऋषि भी थे ॥ १८ ॥ परीक्षित ! वे जहाँ-जहाँ पहुँचते, वहाँ-वहाँकी नागरिक और ग्रामवासी प्रजा पूजाकी सामग्री लेकर उपस्थित होती। पूजा करनेवालोंको भगवान् ऐसे जान पड़ते, मानो ब्रह्मके साथ साक्षात् सूर्यनारायण उदय हो रहे हों ॥ १९ ॥ परीक्षित ! उस यात्रामें आनर्त, धन्व, कुरु-जंगल, कण्ड, मत्स्य, पाञ्चाल, कुन्ति, मधु, कैकय, कोसल, अर्ण आदि अनेक देशोंके नर-नारियोंने अपने नेत्ररूपी दोनोंसे भगवान् श्रीकृष्णके उन्मुक्त हास्य और प्रेममयी चितवनसे युक्त मुखारविन्दके मकरन्द-रसका पान किया ॥ २० ॥ त्रिलोकेश्वर भगवान् श्रीकृष्णके दर्शनसे उन लोगोंकी अज्ञानदृष्टि नष्ट हो गयी। प्रभु दर्शन करनेवाले नर-नारियोंको अपनी दृष्टिसे परम कात्याण और तत्त्वज्ञानका दाग करते चल रहे थे। स्थान-स्थानपर गनुष्य और देवता भगवान्की उस कीर्तिका गान करके सुनाते, जो समस्त दिशाओंको उज्ज्वल बनानेवाली एवं समस्त अशुभोंका विनाश करनेवाली है। इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्ण वीरे-वीरे विदेह देशमें पहुँचे ॥ २१ ॥

परीक्षित ! भगवान् श्रीकृष्णके शुभागमनका समाचार सुनकर नागरिक और ग्रामवासियोंके आनन्दकी सीमा न रही। वे अपने हाथोंमें पूजाकी त्रिविध सामग्रियों लेकर उनकी अगवान्नी करने आये ॥ २२ ॥ भगवान् श्रीकृष्णका दर्शन करके उनके हृदय और मुखकमल प्रेम और आनन्दसे खिल उठे। उन्होंने भगवान्को तथा उन मुनियोंको, जिनका नाम केवल धुन रख था, देखा न था—हाथ जोड़ मस्तक झुकाकर प्रणाम किया ॥ २३ ॥ मिथिलानरेश बहुलाक्ष और श्रुतदेवने, यह समाचार कि जगद्गुरु भगवान् श्रीकृष्ण हमजोगों-

पर अनुग्रह करनेके लिये ही पधारे हैं, उनके चरणोंपर गिरकर प्रणाम किया ॥ २४ ॥ बहुलाश वीर श्रुतदेव दोनोंने ही एक साथ हाथ जोड़कर मुनि-मण्डलीके संहित भगवान् श्रीकृष्णको आतिथ्य ग्रहण करनेके लिये निमन्त्रित किया ॥ २५ ॥ भगवान् श्रीकृष्ण दोनोंकी प्रार्थना स्वीकार करके दोनोंको ही प्रसन्न करनेके लिये एक ही समय पृथक्-पृथक् रूपसे दोनोंके घर पधारे और यह बात एक-दूसरेको मालूम न हुई कि भगवान् श्रीकृष्ण मेरे घरके अतिरिक्त और कहाँ भी जा रहे हैं ॥ २६ ॥ विदेहराज बहुलाश बड़े मनस्वी थे; उन्होंने यह देखकर कि दुष्ट-दुराचारी पुरुष जिनका नाम भी नहीं सुन सकते, वे ही भगवान् श्रीकृष्ण और ऋषि-मुनि मेरे घर पधारे हैं, सुन्दर-सुन्दर आसन मँगाये और भगवान् श्रीकृष्ण तथा ऋषि-मुनि आरामसे उनपर बैठ गये । उस समय बहुलाशकी विचित्र दशा थी । प्रेम-भक्तिके उद्रेकसे उनकी हृदय भर आया था । नेत्रोंमें आँसू डमक रहे थे । उन्होंने अपने प्रियतम अतिथियोंके चरणोंमें नमस्कार करके पौष पखारे और अपने कुटुम्बके साथ उनके चरणोंका छेकपावन जल सिरपर धारण किया और फिर भगवान् एवं भगवत्स्वरूप ऋषियोंको गन्ध, माला, वस्त्र, अलङ्कार, धूप दीप, अर्घ्य, गौ, बैल आदि समर्पित करके उनकी पूजा की ॥ २७—२९ ॥ जब सब छोटा भोजन करके ठूठ हो गये, तब राजा बहुलाश भगवान् श्रीकृष्णके चरणोंको अपने गोदमें लेकर बैठ गये । और बड़े आनन्दसे धीरे-धीरे उन्हें सहजते हुए बड़ी मधुर वाणीसे भगवान् की स्तुति करने लगे ॥ ३० ॥

राजा बहुलाशबने कहा—‘प्रभो ! आप समस्त प्राणियोंके आत्मा, साक्षी एवं स्वयंप्रकाश हैं । हम सदा-सर्वदा आपके चरणकमलोंका स्मरण करते रहते हैं । इसीसे आपने हमलोगोंको दर्शन देकर कृतार्थ किया है ॥ ३१ ॥ भगवान् ! आपके वचन हैं कि मेरा अनन्यप्रेमी भक्त मुझे अपने स्वरूप बलरामजी, अर्द्धाङ्गिनी लक्ष्मी और पुत्र ब्रह्मसे भी बढ़कर प्रिय है । अपने उन वचनोंको सत्य करनेके लिये ही आपने हमलोगोंको दर्शन दिया है ॥ ३२ ॥ अम्ह, ऐसा कौन पुरुष है, जो आपकी इस परम दयालुता और प्रेम-परवशताको जानकर भी आपके चरणकमलोंका

परित्याग कर सके ? प्रभो ! जिन्होंने जगतकी समस्त वस्तुओंका एवं शरीर आदिष्व भी मनसे परित्याग कर दिया है उन परम शान्त मुनियोंको आप अपने-तकको भी दे बाँटते हैं ॥ ३३ ॥ आपने यदुवंशमें अवतार लेकर जन्म-मृत्युके चक्करमें पड़े हुए मनुष्योंको उससे मुक्त करनेके लिये जगत्में ऐसे विभूत यशस्वी विस्तार किया है, जो त्रिलोकीके पाप-तापको शान्त करनेवाला है ॥ ३४ ॥ प्रभो ! आप अचिन्त्य, अनन्त ऐश्वर्य और माधुर्यकी निधि हैं; सबके चित्तको अपनी ओर आकर्षित करनेके लिये आप सच्चिदानन्द-स्वरूप श्याममहा हैं । आपका ज्ञान अनन्त है । परम शान्तिका विस्तार करनेके लिये आप ही नारायण ऋषिके रूपमें तपस्या कर रहे हैं । मैं आपको नमस्कार करता हूँ ॥ ३५ ॥ एकदस अनन्त ! आप कुछ दिनोंतक मुनिमण्डलीके साथ हमारे यहाँ निवास कीजिये और अपने चरणोंकी धूलसे इस निमिषशको पवित्र कीजिये ? ॥ ३६ ॥ परीक्षित ! सबके जीवनदाता भगवान् श्रीकृष्ण राजा बहुलाशकी यह प्रार्थना स्वीकार करके मिथिलावसी नर-नारियोंका कल्याण करते हुए कुछ दिनोंतक यहाँ रहे ॥ ३७ ॥

प्रिय परीक्षित ! जैसे राजा बहुलाश भगवान् श्रीकृष्ण और मुनि-मण्डलीके पधारनेपर आनन्दमग्न हो गये थे; वैसे ही श्रुतदेव ब्राह्मण भी भगवान् श्रीकृष्ण और मुनियोंको अपने घर आया देखकर आनन्दविह्वल हो गये; वे उन्हें नमस्कार करके अपने वस्त्र उलाल-उलालकर नाचने लगे ॥ ३८ ॥ श्रुतदेवने चढाई, पीढे और कुशासन बिछाकर उनपर भगवान् श्रीकृष्ण और मुनियोंको बैठाया, खगल-भाषण आदिके द्वारा उनकी अभिनन्दन किया तथा अपनी पत्नीके साथ बड़े आनन्दसे सबके पौष पखारे ॥ ३९ ॥ परीक्षित ! गहान् सौमन्यशाली श्रुतदेवने भगवान् और ऋषियोंके चरणोदकसे अपने घर और कुटुम्बियोंको सींच दिया । इस समय उनके सारे मनोरथ पूर्ण हो गये थे । वे हर्षातिरेकसे मतवाले हो रहे थे ॥ ४० ॥ तदनन्तर उन्होंने फल, गन्ध, खससे सुवासित निर्मल एवं मधुर जल, सुगन्धित मिट्टी, तुलसी, कुश, कमल आदि अनायास-प्राप्त पूजा-सामग्री और सत्सङ्ग बढानेवाले

अन्यसे सबकी आराधना की ॥ ४१ ॥ उस समय श्रुतदेवजी मन-ही-मन तर्जना करने लगे कि मैं तो घर-गृहस्थीके अँचरे कूँरोंमें गिरा हुआ हूँ, अमाग्न हूँ; मुझे भगवान् श्रीकृष्ण और उनके निवासस्थान ऋषि-मुनियोंका, जिनके चरणोंकी धूल ही समस्त तीर्थोंको तीर्थ बनानेवाली है, समागम कैसे प्राप्त हो गया ? ॥ ४२ ॥ जब सब लोग आतिथ्य स्वीकार करके आरामसे बैठ गये, तब श्रुतदेव अपने जी-पुत्र तथा अन्य सम्बन्धियोंके साथ उनकी सेवामें उपस्थित हुए । वे भगवान् श्रीकृष्णके चरणकमलोंका स्पर्श करते हुए कहने लगे ॥ ४३ ॥

श्रुतदेवने कहा—प्रभो ! आप व्यक्त-अव्यक्तरूप प्रकृति और जीवोंसे परे पुरुषोत्तम हैं । मुझे आपने आज ही दर्शन दिया हो, ऐसी बात नहीं है । आप तो तभीसे सब लोगोंसे मिले हुए हैं, जबसे आपने अपनी शक्तियोंके द्वारा इस जगत्की रचना करके आत्मसत्ताके रूपसे इसमें प्रवेश किया है ॥ ४४ ॥ जैसे सोया हुआ पुरुष स्वप्नावस्थामें अविभाक्य मन-ही-मन स्वप्न-जगत्की सृष्टि कर लेता है और उसमें स्वयं उपस्थित होकर अनेक रूपोंमें अनेक कर्म करता हुआ प्रतीत होता है, वैसे ही आपने अपनेमें ही अपनी मायासे जगत्की रचना कर ली है और अब इसमें प्रवेश करके अनेकों रूपोंसे प्रकाशित हो रहे हैं ॥ ४५ ॥ जो लोग सर्वदा आपकी कीलकधायिका श्रवण-कीर्तन तथा आपकी प्रतिमाओंका अर्चन-वन्दन करते हैं और आपसे आपकी ही चर्चा करते हैं, उनका हृदय शुद्ध हो जाता है और आप उसमें प्रकाशित हो जाते हैं ॥ ४६ ॥ जिन लोगोंका चित्त लौकिक-वैदिक आदि कर्मोंकी वासनासे बहिर्मुख हो रहा है, उनके हृदयमें रहनेपर भी आप उनसे बहुत दूर हैं । किन्तु जिन लोगोंने आपके गुणगानसे अपने अन्तःकरणको सद्गुणसम्पन्न बना लिया है, उनके लिये चित्तवृत्तियोंसे अपाह्न होनेपर भी आप अत्यन्त निकट हैं ॥ ४७ ॥ प्रभो ! जो लोग आत्मतत्त्वको जाननेवाले हैं, उनके आत्माके रूपमें ही आप स्थित हैं और जो शरीर आदिको ही अपना आत्मा मान बैठे हैं, उनके लिये

आप अनात्मको प्राप्त होनेवाली मृत्युके रूपमें हैं । आप महत्तत्त्व आदि कार्यद्रव्य और प्रकृतिरूप कारणके नियामक हैं—सासक हैं । आपकी माया आपकी अपनी दृष्टिपर पर्दा नहीं डाल सकती, किन्तु उसने दूसरोंकी दृष्टिको ढक रक्खा है । आपको मैं नमस्कार करता हूँ ॥ ४८ ॥ स्वयंप्रकाश प्रभो ! हम आपके सेवक हैं । हमें आज्ञा दीजिये कि हम आपकी क्या सेवा करें ! नेत्रोंके द्वारा आपका दर्शन होनेतक ही जीवोंके क्लेश रहते हैं । आपके दर्शनमें ही समस्त क्लेशोंकी परिसमाप्ति है ॥ ४९ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित ! शरणागत-भयहारी भगवान् श्रीकृष्णने श्रुतदेवकी प्रार्थना धुनकर अपने हाथसे उनका हाथ पकड़ लिया और मुसकराते हुए कहा ॥ ५० ॥

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—प्रिय श्रुतदेव ! ये बड़े-बड़े ऋषि-मुनि तुमपर अनुग्रह करनेके लिये ही यहाँ पधारे हैं । ये अपने चरणकमलोंकी धूलसे लोगों और ज्योंको पवित्र करते हुए मेरे साथ विचरण कर रहे हैं ॥ ५१ ॥ देवता, पुण्यक्षेत्र और तीर्थ आदि तो दर्शन, स्पर्श, अर्चन आदिके द्वारा धीरे-धीरे बहुत दिनोंमें पवित्र करते हैं; परन्तु संत पुरुष अपनी दृष्टिसे ही सबको पवित्र कर देते हैं । यही नहीं; देवता आदिमें जो पवित्र करनेकी शक्ति है, वह भी उन्हें संतोंकी दृष्टिसे ही प्राप्त होती है ॥ ५२ ॥ श्रुतदेव ! जगत्में ब्राह्मण जन्मसे ही सब प्राणियोंसे श्रेष्ठ हैं । यदि वह तपस्या, विद्या, सन्तोष और मेरी उपासना—मेरी भक्तिसे युक्त हो तब तो कहना ही क्या है ॥ ५३ ॥ मुझे अपना यह चतुर्भुजरूप भी ब्राह्मणोंकी अपेक्षा अधिक प्रिय नहीं है । क्योंकि ब्राह्मण सर्ववेदमय है और मैं सर्ववेदमय हूँ ॥ ५४ ॥ दुर्बुद्धि मनुष्य इस बातको न जानकर केवल मूर्ति आदिमें ही पूज्यबुद्धि रखते हैं और गुणोंमें दोष निकालकर मेरे स्वरूप जगद्गुरु ब्राह्मणका, जो कि उनका आत्मा ही है, तिरस्कार करते हैं ॥ ५५ ॥ ब्राह्मण मेरा साक्षात्कार करके अपने चित्तमें यह निश्चय कर लेता है कि यह चराचर जगत्, इसके सम्बन्धकी सारी भावनाएँ और इसके कारण प्रकृति-महत्तत्त्वादिक सबके-सब आत्मस्वरूप ..

भगवान्‌के ही रूप हैं ॥ ५६ ॥ इसलिये श्रुतदेव ! तुम इन ब्रह्मर्षियोंको मेरा ही स्वरूप समझकर पूरी अहंसे इनकी पूजा करो । यदि तुम ऐसा करोगे, तब तो तुमने साक्षात्‌ अनायास ही मेरा पूजन कर लिया, नहीं तो बड़ी-बड़ी बहुमूल्य सामग्रियोंसे भी मेरी पूजा नहीं हो सकती ॥ ५७ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित ! भगवान्‌ श्रीकृष्णका यह आदेश प्राप्त करके श्रुतदेवने भगवान्‌

श्रीकृष्ण और उन ब्रह्मर्षियोंकी एकात्मभावसे आराधना की तथा उनकी कृपासे वे भगवत्स्वरूपको प्राप्त हो गये । राजा बहुअश्वने भी वही गति प्राप्त की ॥ ५८ ॥ प्रिय परीक्षित ! जैसे भक्त भगवान्‌की भक्ति करते हैं, वैसे ही भगवान्‌ भी भक्तोंकी भक्ति करते हैं । वे अपने दोनों भक्तोंको प्रसन्न करनेके लिये कुछ दिनोंतक मिथिलापुरीमें रहे और उन्हें साष्ट्र पुरुषोंके मार्गका उपदेश करके वे द्वारका लौट आये ॥ ५९ ॥

सत्तासीवाँ अध्याय

वेदस्तुति

राजा परीक्षितने पूछा—भगवन्‌ ! ब्रह्म कार्य और कारणसे सर्वथा परे है । सत्त्व, रज और तम—ये तीनों गुण उसमें हैं ही नहीं । मन और वाणीसे सङ्केतरूपमें भी उसका निर्देश नहीं किया जा सकता । दूसरी ओर समस्त श्रुतियोंका विषय गुण ही है । (वे जिस विषयका वर्णन करती हैं उसके गुण, जाति, प्रिया अथवा रुचिका ही निर्देश करती हैं) ऐसी स्थितिमें श्रुतियों निर्गुण ब्रह्मका प्रतिपादन किस प्रकार करती हैं ? क्योंकि निर्गुण वस्तुका स्वरूप तो उनकी पहुँचके परे है ॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित ! (भगवान्‌ सर्वशक्तिमान्‌ और गुणोंके निधान हैं । श्रुतियों स्पष्टतः सगुणका ही निरूपण करती हैं, परन्तु विचार करनेपर उनका तात्पर्य निर्गुण ही निकलता है । विचार करनेके लिये ही) भगवान्‌ने जीवोंके लिये बुद्धि, इन्द्रिय, मन और प्राणोंकी सृष्टि की है । इनके द्वारा वे स्वेच्छासे अर्थ, धर्म, काम अथवा मोक्षका अर्जन कर सकते हैं । (प्राणोंके द्वारा जीवन-धारण, श्रवणादि इन्द्रियोंके द्वारा महावाक्य आदिका श्रवण, मनके द्वारा मनन और बुद्धिके द्वारा निश्चय करनेपर श्रुतियोंके तात्पर्य निर्गुण स्वरूपका साक्षात्कार हो सकता है । इसलिये श्रुतियों सगुणका प्रतिपादन करनेपर भी वस्तुतः निर्गुण-परक हैं) ॥ २ ॥ ब्रह्मका प्रतिपादन करनेवाली उपनिषद्‌का यही स्वरूप है । इसे पूर्वजोंके भी पूर्वज सन-

कादि ऋषियोंने आत्मनिश्चयके द्वारा धारण किया है । जो भी मनुष्य इसे ब्रह्मपूर्वक धारण करता है, वह कन्धनके कारण समस्त उपाधियों—अनात्मभावोंसे मुक्त होकर अपने परम कल्याणस्वरूप परमात्माको प्राप्त हो जाता है ॥ ३ ॥ इस विषयमें मैं तुम्हें एक गायना सुनाता हूँ । उस गायनाके साथ स्वयं भगवान्‌ नारायणका सम्बन्ध है । वह गायना देवर्षि नारद और ऋषिश्रेष्ठ नारायणका संवाद है ॥ ४ ॥

एक समयकी बात है, भगवान्‌के प्यारे भक्त देवर्षि नारदजी विभिन्न लोकोंमें विचरण करते हुए सनातन-ऋषि भगवान्‌ नारायणका दर्शन करनेके लिये बदरि-काश्रम गये ॥ ५ ॥ भगवान्‌ नारायण मनुष्योंके अम्युदय (लौकिक कल्याण) और परम निःश्रेयस (भगवत्स्वरूप अथवा मोक्षकी प्राप्ति) के लिये इस भारतवर्षमें कल्पके प्रारम्भसे ही धर्म, ज्ञान और संयमके साथ महान्‌ तपस्या कर रहे हैं ॥ ६ ॥ परीक्षित ! एक दिन वे कल्पप्रारम्भासी सिद्ध ऋषियोंके बीचमें बैठे हुए थे । उस समय नारदजीने उन्हें प्रणाम करके बड़ी नम्रतासे यही प्रश्न पूछा, जो तुम मुझसे पूछ रहे हो ॥ ७ ॥ भगवान्‌ नारायणने ऋषियोंकी उस भरी सभामें नारद-जीको उनके प्रश्नका उत्तर दिया और वह कथा सुनायी, जो पूर्वकालीन जनलोकनिवासियोंमें परस्पर वेदोंके तात्पर्य और ब्रह्मके स्वरूपके सम्बन्धमें विचार करते समय कही गयी थी ॥ ८ ॥

भगवान् नारायणने कहा—नारदजी ! प्राचीन कालकी बात है । एक बार जनलोकमें वहाँ रहनेवाले ब्रह्माके मानस पुत्र नैष्ठिक ब्रह्मचारी सनक, सनन्दन, सनातन आदि परमपियोंका ब्रह्मसत्र (ब्रह्मविषयक विचार या प्रवचन) हुआ था ॥ ९ ॥ उस समय तुम मेरी श्वेत-द्वीपाधिपति अनिरुद्ध मूर्तिकका दर्शन करनेके लिये श्वेत-द्वीप चले गये थे । उस समय वहाँ उस ब्रह्मके सम्बन्धमें बड़ी ही सुन्दर चर्चा हुई थी, जिसके विषयमें श्रुतियों भी मौन धारण कर लेती हैं, स्पष्ट वर्णन न करके तात्पर्यरूपसे कक्षित कराती हुई उसीमें सो जाती हैं । उस ब्रह्मसत्रमें यही प्रश्न उपस्थित किया गया था, जो तुम मुझसे पूछ रहे हो ॥ १० ॥ सनक, सनन्दन, सनातन, सनत्कुमार—ये चारों भाई शास्त्रीय ज्ञान, तपस्या और शील-समायमें समान हैं । उन लोगोंकी दृष्टिमें शत्रु, मित्र और उदासीन एक-से हैं । फिर भी उन्होंने अपने-मेंसे सनन्दनको तो कक्षा बना लिया और शेष भाई सुननेके इच्छुक बनकर बैठ गये ॥ ११ ॥

सनन्दनजीने कहा—जिस प्रकार प्राप्तःकाल होने-पर सोते हुए सप्ताहको जगनेके लिये अनुजीवी बंदीजन उसके पास आते हैं और सप्ताहके पराक्रम तथा सुयश-का गान करके उसे जगाते हैं, वैसे ही जब परमात्मा अपने बनाये हुए सम्पूर्ण जगत्को अपनेमें लीन करके अपनी शक्तियोंके सहित सोये रहते हैं; तब प्रलयके अन्तमें श्रुतियाँ उनका प्रतिपादन करनेवाले वचनोंसे उन्हें इस प्रकार जगाती हैं ॥ १२-१३ ॥

श्रुतियाँ कहती हैं—अजित ! आप ही सर्वश्रेष्ठ हैं, आपपर कोई विजय नहीं प्राप्त कर सकता । आपकी जय हो, जय हो ! प्रभो ! आप स्वभावसे ही समस्त ऐश्वर्योसे पूर्ण हैं, इसलिये चराचर प्राणियोंको फँसाने-वाली मायाका नाश कर दीजिये । प्रभो ! इस गुणमयी

मायाने दोपके लिये—जीवोंके आनन्दादिमय सहज स्वरूपका आच्छादन करके उन्हें बन्धनमें डालनेके लिये ही सत्त्वादि गुणोंको ग्रहण किया है । जगत्में जितनी भी साधना, ज्ञान, क्रिया आदि शक्तियाँ हैं, उन सबको जगनेवाले आप ही हैं । इसलिये आपके मिटाये बिना यह माया मिट नहीं सकती । (इस विषयमें यदि प्रमाण पूछ जाय, तो आपकी श्वासभूता श्रुतियों ही—हम ही प्रमाण हैं ।) यद्यपि हम आपका स्वरूपतः वर्णन करनेमें असमर्थ हैं, परन्तु जब कभी आप मायाके द्वारा जगत्की सृष्टि करके सगुण हो जाते हैं या उसको निषेध करके स्वरूपस्थितिकी लीला करते हैं अथवा अपना सच्चिदानन्दस्वरूप श्रीविग्रह प्रकट करके प्रीति करते हैं, तभी हम यत्किञ्चित् आपका वर्णन करनेमें समर्थ होती हैं ॥ १४ ॥*इसमें सन्देह नहीं कि हमारे द्वारा इन्द्र, वरुण आदि देवताओंका भी वर्णन किया जाता है, परन्तु हमारे (श्रुतियोंके) सारे मन्त्र अथवा सभी मन्त्रद्वारा ऋषि प्रतीत होनेवाले इस सम्पूर्ण जगत्को ब्रह्मस्वरूप ही अनुभव करते हैं । क्योंकि जिस समय यह सारा जगत् नहीं रहता, उस समय भी आप वच रहते हैं । जैसे घट, शराव (मिष्टीका प्याऊ—कसोरा) आदि सभी विकार मिष्टीसे ही उत्पन्न और उसीमें लीन होते हैं, उसी प्रकार सम्पूर्ण जगत्की उत्पत्ति और प्रलय आपमें ही होती है । तब क्या आप पृथ्वीके समान विकारी हैं ? नहीं-नहीं, आप तो एकरस-निर्विकार हैं । इसीसे तो यह जगत् आपमें उत्पन्न नहीं, प्रतीत है । इसलिये जैसे घट, शराव आदिका वर्णन भी मिष्टीका ही वर्णन है, वैसे ही इन्द्र, वरुण आदि देवताओंका वर्णन भी आपका ही वर्णन है । यही कारण है कि विचारशील ऋषि, मनसे जो कुछ सोचा जाता है और वाणीसे जो कुछ कहा जाता है, उसे आपमें ही स्थित, आपका ही स्वरूप देखते हैं ।

* इन श्लोकोंपर श्रीश्रीहरस्वामीने बहुत सुन्दर श्लोक लिखे हैं, वे अर्थसहित यहाँ दिये जाते हैं—

जननयाजित

ब्रह्मगवद्भ्यामुत्तिष्ठामुपनीतमुपशुषाण ।

न हि मयन्तमुते प्रयवन्त्यमी निगमगीतगुणार्णवता त्व ॥ १ ॥

अजित ! आपकी जय हो, जय हो ! छूटे गुण धारण करके चराचर जीवको आच्छादित करनेवाली इस मायाको नष्ट कर दीजिये । आपके बिना बेचारे जीव इसको नहीं मार सकेंगे—नहीं पार कर सकेंगे । वेद इस बातका गान करते रहते हैं कि आप सकल सद्गुणोंके समुद्र हैं ।

मनुष्य अपना पैर चाहे कहीं भी रखे—ईद, पत्थर या काठपर—होगा वह पृथ्वीपर ही; क्योंकि वे सब पृथ्वीस्वरूप ही हैं । इसलिये हम चाहे जिस नाम या जिस रूपका वर्णन करें, वह आपका ही नाम, आपका ही रूप है ॥ १५ ॥

भगवन् । लोग सत्त्व, रज, तम—इन तीन गुणोंकी मायासे बने हुए अच्छे बुरे भावों या अच्छी-बुरी क्रियाओंमें ललक्ष जाया करते हैं, परन्तु आप तो उस माया-नटीके स्वामी, उसको नचानेवाले हैं । इसलिये विचार-शील पुरुष आपकी छीछाकपाके अमृतसागरसे गोते लगाते रहते हैं और इस प्रकार अपने सारे पाप-तापको धो-वहा देते हैं । क्यों न हो, आपकी छीछाकपा सभी जीवोंके मायामरूपको नष्ट करनेवाली जो है । पुरुषोत्तम । जिन महापुरुषोंने आत्मज्ञानके द्वारा अन्तःकरणके रागद्वेष आदि और शरीरके कालकृम जरा-मरण आदि दोष मिटा दिये हैं और निरन्तर आपके उस स्वरूपकी अनुभूतिमें मग्न रहते हैं, जो अलक्ष्य आनन्दस्वरूप है, उन्होंने अपने पाप-तापोंको सदाके लिये शान्त, भस्म कर दिया है—इसके विषयमें तो कहना ही क्या है ॥ १६ ॥ भगवन् । प्राणधारियोंके जीवनकी सफलता इसीमें है कि वे आपका भजन-सेवन करें, आपकी आज्ञाका पालन करें; यदि वे ऐसा नहीं करते तो उनकी जीवन व्यर्थ है और उनके शरीरमें आसक्त चलना ठीक वैसा ही है, जैसा छहारकी

धौकनीमें हवाका आना-जाना । महत्तत्त्व, अहङ्कार आदिने आपके अनुग्रहसे—आपके उनमें प्रवेश करनेपर ही इस ब्रह्माण्डकी सृष्टि की है । अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय और आनन्दमय—इन पाँचों कोशोंमें पुरुष-रूपसे रहनेवाले, उनमें 'मै-मै' की स्फूर्ति करनेवाले भी आप ही हैं ! आपके ही अस्तित्वसे उन कोशोंके अस्तित्वका अनुभव होता है और उनके न रहनेपर भी अन्तिम अवधिरूपसे आप निराजमान रहते हैं । इस प्रकार सबमें अन्विष्ट और सबकी अवधि होनेपर भी आप असम ही हैं । क्योंकि शस्त्रवमें जो कुछ वृत्तियोंके द्वारा अस्ति अथवा नास्तिके रूपमें अनुभव होता है, उन समस्त कार्य-कारणोंसे आप परे हैं । 'नेति-नेति' के द्वारा इन सबका निषेध हो जानेपर भी आप ही शेष रहते हैं, क्योंकि आप उस निषेधकी सी साक्षी हैं और वास्तवमें आप ही एकमात्र सत्य हैं । (इसलिये आपके मजनके बिना जीवका जीवन व्यर्थ ही है, क्योंकि वह इस महान् सत्यसे वञ्चित है) ॥ १७ ॥

श्रुतिोंने अपनी प्राप्तिके लिये अनेकों मार्ग माने हैं । उनमें जो स्थूल दृष्टिवाले हैं, वे मणिपूरक चक्रमें अक्षिरूपसे आपकी उपासना करते हैं । अरुणवर्षाके श्रुति समस्त नाभियोंके निकलनेके स्थान हृदयमें आपके परम स्वप्नस्वरूप दहर ब्रह्मकी उपासना करते हैं । प्रभो ! हृदयसे ही आपको प्राप्त करनेका श्रेष्ठ मार्ग सुषुम्ना नाडी ब्रह्मरन्ध्रतक गयी हुई है । जो पुरुष उस

५ द्रुहिणवहिरकीन्द्रमुक्तामरा जगदिदं न भवेत्युपगुत्थितम् ।

बहुसुरैरपि मन्त्रगणैरबलत्त्वमुकमूर्तिरतो विमिगद्यते ॥ २ ॥

ब्रह्मा, अग्नि, सूर्य, इन्द्र आदि देवता तथा यह सम्पूर्ण जगत् प्रसीत होनेपर भी आपसे घृयक् नहीं है । इसलिये अनेक देवताओंका प्रतिपादन करनेवाले वेद-ग्रन्थ उन देवताओंके नामसे घृयक्-घृयक् आपकी ही विभिन्न मूर्तियोंका वर्णन करते हैं । वस्तुतः आर अतन्मा है, उन मूर्तियोंके रूपमें भी आपका कन्य नहीं होता ।

† सकलवेदगणैरितसद्गुणस्त्वभिति सर्वमनीषिणना रताः ।

त्वयि सुमद्रगुणधनवादिभिस्तत्र पदस्मरणेन गतन्मत्माः ॥ ३ ॥

सारे वेद आपके सद्गुणोंका वर्णन करते हैं । इसलिये सधरके सभी विद्वान् आपके महत्त्वमय कल्याणकारी गुणोंके भवण, स्मरण आदिके द्वारा आपसे ही प्रेम करते हैं और आपके चरणोंका स्मरण करके सम्पूर्ण ज्ञेयोंसे मुक्त हो जाते हैं ।

‡ नरवपुः प्रतिपद्य यदि त्वयि भवणवर्णनसस्मरणआदिभिः ।

नरदरे । न मनन्ति रूपागिद दृतिवदुच्छ्वस्ति विप्लव उतः ॥ ४ ॥

नरदरे । मनुष्य-शरीर प्राप्त करके यदि जीव आपके भवण, वर्णन और स्मरण आदिके द्वारा आपका मजन नहीं करते तो जीवोंका श्वास लेना धौकनीके समान ही सर्वथा व्यर्थ है ।

उद्योतिर्मय मार्गको प्राप्त कर लेता है और उससे ऊपरकी ओर बढ़ता है, वह फिर जन्म-मृत्युके चक्रमें नहीं पड़ता * ॥ १८ ॥ भगवन् ! आपने ही देखा, मनुष्य और पशु-पक्षी आदि योनियों बनायी हैं । सर्ग-सर्वत्र सब रूपोंमें आप हैं ही, इसलिये कारणरूपसे प्रवेश न करनेपर भी आप ऐसे जान पड़ते हैं, मानो उसमें प्रविष्ट हुए हों । साथ ही विभिन्न आकृतियोंका अनुकरण करके कहीं उत्तम, तो कहीं अधमरूपसे प्रतीत होते हैं, जैसे आग छोटी-बड़ी लकड़ियों और कर्मोंके अनुसार प्रचुर अथवा अल्प परिमाणमें या उत्तम-अधम-रूपमें प्रतीत होती है । इसलिये संत पुरुष लौकिक-पारलौकिक कर्मोंकी दूकानदारीसे, उनके फलोंसे विरक्त हो जाते हैं और अपनी निर्मल बुद्धिसे सत्य-असत्य, आत्मा-अनात्माको पहचानकर जगत्के छूटे रूपोंमें नहीं पँसते; आपके सर्वत्र एकरस, समभावसे स्थित सत्य-स्वरूपका साक्षात्कार करते हैं ॥ १९ ॥

प्रभो ! जीव जिन शरीरोंमें रहता है, वे उसके कर्मके द्वारा निर्मित होते हैं और वास्तवमें उन शरीरोंके कर्म-कारणरूप आवरणोंसे बहुरहित है, क्योंकि वस्तुतः उन आवरणोंकी सत्ता ही नहीं है । तत्त्वज्ञानी पुरुष ऐसा कहते हैं कि समस्त शक्तियोंको धारण करनेवाले आपका ही वह स्वरूप है । स्वरूप होनेके कारण अंश

न होनेपर भी उसे अंश कहते हैं और निर्मित न होनेपर भी निर्मित कहते हैं । इसीसे बुद्धिमान् पुरुष जीवके वास्तविक स्वरूपपर विचार करके परम विद्यासत्ते के साथ आपके चरणकमलोंकी उपासना करते हैं । क्योंकि आपके चरण ही समस्त वैदिक कर्मोंके समर्पणस्थान और मोक्षस्वरूप हैं ॥ २० ॥ भगवन् ! परमात्म-तत्त्वका ज्ञान प्राप्त करना अत्यन्त कठिन है । उसीका ज्ञान करनेके लिये आप विविध प्रकारके अवतार ग्रहण करते हैं और उनके द्वारा ऐसी छीज करते हैं, जो अमृतके महासागरसे भी मधुर और मादक होती है । जो लोग उसका सेवन करते हैं, उनकी सारी यकबल दूर हो जाती है, वे परमानन्दमें मग्न हो जाते हैं । कुछ प्रेमी भक्त तो ऐसे होते हैं, जो आपकी छीज-कपायोंको छेड़कर मोक्षकी भी अभिलाषा नहीं करते—स्वर्ग आदिकी तो बात ही क्या है । वे आपके चरण-कमलोंके प्रेमी परमाहंसाके सत्संगमें, जहाँ आपकी कथा होती है, इतना झुलझुलाने हैं कि उसके लिये इस जीवन्में प्राप्त अपनी बर-गृहस्थीका भी परित्याग कर देते हैं ॥ २१ ॥

प्रभो ! यह शरीर आपकी सेवाका साधन होकर जब आपके पथका अनुरागी हो जाता है, तब आत्मा, हितैषी, सुहृद् और प्रिय व्यक्तिके समान आचरण करता

● उदरादिषु यः पुत्रा चिन्तितो मुनिरर्त्तमाभिः ।
हृष्टि मृत्युमय देवो दृढवत् तमुपासते ॥ ५ ॥

मनुष्य श्रुति-मुनियोंके द्वारा बतलायी हुई पद्धतियोंसे उदर आदि स्थानोंमें जिनका चिन्तन करते हैं और जो प्रभु उनके चिन्तन करनेपर मृत्यु-मयका नाम कर देते हैं, उन दृढवत्त्वमें विराजमान प्रभुकी हम उपासना करते हैं ।

† खनिर्मितेषु अयेषु तारतम्यविवर्जितम् ।
सर्वानुस्यूतसन्नात्र भगवन्तं भवासे ॥ ६ ॥

अपनेद्वारा निर्मित सम्पूर्ण कार्यमें जो न्यूनाधिक श्रेष्ठ-कृतिरूपके भावसे रहित एव सर्वमें भरपूर दे, इस रूपमें अनुभवने आनेवाली निर्विशेष सत्ताके रूपमें स्थित हैं, उन भगवान्का हम भजन करते हैं ।

‡ त्वदन्नाद्य ममेवान् तन्मायाकृतवचनम् ।
त्वदप्रतिवेवादिभ्य परानन्द निवर्तय ॥ ७ ॥

मेरे परमानन्दस्वरूप स्वामी ! मे आपका अन्न हूँ । अग्ने चर्योंकी सेवाका आदेश देकर अपनी मायाके द्वारा निर्मित मेरे यन्त्रनको निवृत्त कर दो ।

§ तत्त्वमाध्वतरायोचो विहरन्तो महाप्रदः ।
कुर्वन्ति कृतिना केचिन्मनुर्वर्गं तृणोपगम्य ॥ ८ ॥

कार्तिकेय विरोधे श्रद्धावान्करण महापुरुष आरके अमृतमय कथा-समुद्रमें विहार करते हुए परमानन्दमें मग्न रहते हैं और घर्म, अर्थ, फल, मोक्ष—इन चारों पुरुषार्थोंको तुणके समान कुच्छ बना देते हैं ।

है। आप जीवके सच्चे हितैषी, प्रियतम और आत्मा ही हैं और सदा-सर्वदा जीवको आपनानेके लिये तैयार भी रहते हैं। इतनी सुगमता होनेपर तथा अतुकूळ मानव-शरीरको पाकर भी लोग सख्यभाव आदिके द्वारा आपकी उपासना नहीं करते, आपमें नहीं रमते, बल्कि इस विनाशी और असत् शरीर तथा उसके सम्बन्धियोंमें ही रम जाते हैं, उन्हींकी उपासना करने लगते हैं और इस प्रकार अपने आत्माका हनन करते हैं, उसे अव्योमतिमें पहुँचाते हैं। मला, यह कितने कष्टकी बात है ! इसका फल यह होता है कि उनकी सारी वृत्तियाँ, सारी वासनाएँ शरीर आदिमें ही लग जाती हैं और फिर उनके अनुसार उनको पशु-पक्षी आदिके न जाने कितने धुरे-धुरे शरीर ग्रहण करने पड़ते हैं और इस प्रकार अत्यन्त भयावह जन्म-मृत्युरूप संसारमें भटकना पड़ता है ॥ २२ ॥ प्रभो ! बड़े-बड़े विचारशील योगी पति अपने प्राण, मन और इन्द्रियोंको कसमें करके हृद् योग्यात्म्याके द्वारा हृदयमें आपकी उपासना करते हैं। परन्तु आश्चर्यकी बात तो यह है कि उन्हें जिस पदकी प्राप्ति होती है, उसीकी प्राप्ति उन शत्रुओंको भी हो जाती है, जो आपसे वैर-भाव रखते हैं। क्योंकि स्मरण तो वे भी करते ही हैं। कहीं-तक बड़े, भगवन् ! वे शत्रियाँ, जो अज्ञानवश आपको परिच्छिन्न मानती हैं और आपकी शेषनामके समान मोदी, लंबी तथा सुकुमार मुजाओंके प्रति कामभावसे आसक्त रहती हैं, जिस परम पदको प्राप्त करती हैं, वही पद हम श्रुतियोंको भी प्राप्त होता है—यद्यपि हम आपको सदा-सर्वदा एकत्र असुभ्रम करती हैं और आपको चरणारविन्दका मकरन्द-

रस पान करती रहती हैं। क्यों न हो, आप समदर्शी जो हैं। आपकी दृष्टिमें उपासकके परिच्छिन्न या अपरिच्छिन्न भावमें कोई अन्तर नहीं है ॥ २३ ॥

मगधन् ! आप अनादि और अनन्त हैं। जिसका जन्म और मृत्यु कालसे सीमित है, वह भग्न, आपको कैसे जान सकता है। सत्य ब्रह्मानी, निवृत्तिपरायण सनकादि तथा प्रवृत्तिपरायण मरीचि आदि भी बहुत पीछे आपसे ही उत्पन्न हुए हैं। जिस समय आप सबको समेटकर सो जाते हैं, उस समय ऐसा कोई साधन नहीं रह जाता, जिससे उनके साथ ही सोया हुआ जीव आपको जान सके। क्योंकि उस समय न तो आकाशादि स्थूल जगत् रहता है और न तो महत्तत्त्वादि सूक्ष्म जगत्। इन दोनोंसे बने हुए शरीर और उनके निमित्त कृण-मुहूर्त आदि कालके जग भी नहीं रहते। उस समय कुछ भी नहीं रहता। यहाँतक कि शास्त्र भी आपमें ही समा जाते हैं (ऐसी अवस्थामें आपको जाननेकी चेष्टा न करके आपका मजन करना ही सर्वोत्तम मार्ग है।) ॥ २४ ॥ प्रभो ! कुछ लोग मानते हैं कि असत् जगत्की उत्पत्ति होती है और कुछ लोग कहते हैं कि सत्-रूप-द्रु-खोंका नाश होनेपर सृष्टि भिक्त है। दूसरे लोग आत्माको अनेक मानते हैं, तो कई लोग कर्मके द्वारा प्राप्त होनेवाले लोक और परलोक-रूप व्यवहारको सत्य मानते हैं। इसमें सन्देह नहीं कि ये सभी बातें भ्रममूलक हैं और वे आरोप करके ही ऐसा उपदेश करते हैं। पुरुष त्रिगुणमय है—इस

ॐ त्वय्यात्मनि जगन्नाथे मन्मनो रमतामिह ।

कदा मयेष्टमं जन्म मातुषं सम्प्राप्स्यमिति ॥ १ ॥

आप जगत्के स्वामी हैं और अपनी आत्मा ही हैं। इस जीवनमें ही मेरा मन आपमें रम जाय। मेरे स्वामी ! मेरा ऐसा चौभाग्य कब होगा जब मुझे इस प्रकारका मनुष्य-जन्म प्राप्त होगा ?

† चरणस्मरण प्रेम्णा तव देव सुदुर्लभम् ।

ययाकथञ्चिन्मदहरे मम मयावहनिमयम् ॥ १० ॥

देव ! आपके चरणोक्त प्रेमपूर्वक स्मरण अत्यन्त दुर्लभ है। चाहे वैधे-द्वैध भी हो, वृद्धि ! मुझे तो आपके चरणोक्त स्मरण दिन-रात बना रहे।

‡ काहं बुद्ध्यादिकथं क्व च भूतमहस्त्वय ।

दीनवन्धो दयास्त्रियो भक्तिं मे नृदरे दिश ॥ ११ ॥

अनन्त ! कहीं बुद्धि आदि परिच्छिन्न उपाधियोंमें विरा हुआ मैं और कहीं आपका मन चाणी आदिके अयोचर-स्वरूप ! (आरका ज्ञान तो वृद्ध ही कठिन है) इच्छित्वे दीनवन्धुः दयास्त्रिभुः नरहरि देव ! मुझे तो अपनी भक्ति ही दीजिए ।

प्रकारका भेदभाव केवल अज्ञानसे ही होता है और आप अज्ञानसे सर्वथा परे हैं। इसलिये ज्ञानस्वरूप आपसे किसी प्रकारका भेदभाव नहीं है* ॥ २५ ॥

यह त्रिगुणात्मक जगत् मनकी कल्पनामात्र है। केवल यही नहीं, परमात्मा और जगत्से पृथक् प्रतीत होनेवाला पुरुष भी कल्पनामात्र ही है। इस प्रकार वास्तवमें असत् होनेपर भी अपने सत्य अधिष्ठान आपकी सत्ताके कारण यह सत्य-सा प्रतीत हो रहा है। इसलिये मोक्षा, भोग्य और दोनोंके सम्बन्धको सिद्ध करनेवाली इन्द्रियों आदि जितना भी जगत् है, सबको आत्मज्ञानी पुरुष आत्मरूपसे सत्य ही मानते हैं। सोनेसे बने हुए कण्ठे, कुण्डल आदि स्वरूप ही तो हैं; इसलिये उनको इस रूपसे जाननेवाला पुरुष उन्हें छोड़ता नहीं, वह समझता है कि यह भी सोना है। इसी प्रकार यह जगत् आप्तमात्र ही कल्पित, आत्मासे ही ज्ञात है; इसलिये आत्मज्ञानी पुरुष इसे आत्मरूप ही मानते हैं † ॥ २६ ॥ भगवन् । जो लोग यह समझते हैं कि आप समस्त प्राणियों और पदार्थोंके अधिष्ठान हैं, सबके आधार हैं और सर्वस्वभावसे आपका भजन-सेवन करते हैं, वे मृत्युको कुछ समझकर उसके सिरपर जत मारते हैं अर्थात् उसपर विजय प्राप्त कर लेते हैं। जो लोग आपसे

विमुख हैं, वे चाहे जितने बड़े विद्वान् हों, उन्हें आप कर्मोंका प्रतिपादन करनेवाली श्रुतियोंसे पशुओंके समान बाँध लेते हैं। इसके विपरीत जिन्होंने आपके साथ प्रेमका सम्बन्ध जोड़ रक्खा है, वे न केवल अपनेको बल्कि दूसरोंको भी पवित्र कर देते हैं—जगत्के बन्धनसे छुड़ा देते हैं। ऐसा सौभाग्य भला, आपसे विमुख लोगोंको कैसे प्राप्त हो सकता है ‡ ॥ २७ ॥

प्रभो ! आप मन, बुद्धि और इन्द्रिय आदि करणोंसे—चिन्तन, कर्म आदिके साधनोंसे सर्वथा रहित हैं। फिर भी आप समस्त अन्तःकरण और बाह्य करणोंकी शक्तियोंसे सदा-सर्वदा सम्पन्न हैं। आप स्वतःसिद्ध ज्ञानवान्, स्वयंप्रकाश हैं; अतः कोई काम करनेके लिये आपको इन्द्रियोंकी आवश्यकता नहीं है। जैसे छोटे-छोटे राजा अपनी-अपनी प्रजासे कर लेकर स्वयं अपने सम्राट्को कर देते हैं, वैसे ही मनुष्योंके पूज्य देवता और देवताओंके पूज्य ब्रह्म आदि भी अपने अधिकृत प्राणियोंसे पूजा स्वीकार करते हैं और भाग्यके अधीन होकर आपकी पूजा करते रहते हैं। वे इस प्रकार आपकी पूजा करते हैं कि आपने जहाँ जो कर्म करनेके लिये उन्हें निरुक्त कर दिया है, वे आपसे भयभीत

* मिथ्यातर्कसूक्तचरितमहाबाह्यान्धकारान्तर-

आत्मन्मन्दमतेरमन्दमहिमस्त्वज्ञानवर्त्मस्युदम् ।

श्रीमन्भाषव वामन विनयन श्रीवाङ्मुर श्रीपते

गोविन्देति मुदा बधन् मधुपते मुक्तः कदा स्थमहम् ॥ १२ ॥

अनन्त महिमावाली प्रभो ! जो मन्दमति पुरुष छूटे तकोंके द्वारा प्रेरित अत्यन्त कर्कश बाह-विवादके घोर अन्ध-कारमें भटक रहे हैं; उनके लिये आपके ज्ञानका मार्ग स्पष्ट सुझाना सम्भव नहीं है। इसलिये मेरे जीवनमें ऐसी सौभाग्यकी बड़ी कृपा आवेगी कि मैं श्रीमन्भाषव, वामन, विन्नेशन, श्रीवाङ्मुर, श्रीपते, गोविन्द, मधुपते—इस प्रकार आपको आनन्दमें भरकर पुकारता हुआ मुक्त हो जाऊँगा ।

† कसञ्चतः सदाभाति जगदेतदसत् - स्वतः ।

सदाभासमसत्यसिन् भगवन्त मज्जाम तम् ॥ १३ ॥

यह जगत् अपने स्वरूप, नाम और आकृतिके रूपमें असत् है; फिर भी जिन अधिष्ठान-सत्ताकी सत्यतासे यह सत्य जान पड़ता है तथा जो इस अस्तव्य प्रपञ्चमें सत्यके रूपसे सदा प्रकाशमान रहता है; उस भगवान्का हम भजन करते हैं।

‡ तपन्तु तापैः प्रपतन्तु पर्वतादटन्तु तीर्थानि पठन्तु चागमन् ।

यजन्तु शौर्विवदन्तु वादेर्हिरि विना नैव स्मृतिं वरन्ति ॥ १४ ॥

लोक पञ्चाग्नि आदि तापोंसे तप्त हों; पर्वतोंसे गिरकर आत्मघात कर लें; तीर्थोंका पर्यटन करें; वेदोंका पाठ करें; यज्ञोंके द्वारा यजन करें अथवा मित्र-मित्र मतवादोंके द्वारा आपसमें विवाद करें; परन्तु भगवान्के बिना इस मृत्युमय संसार-सागरसे पार नहीं आते ।

रहकर वहाँ वह काम करते रहते हैं॥ २८ ॥ नित्यमुक्त । आप मायातीत हैं; फिर भी जब अपने ईक्षणमात्रसे—सङ्कल्पमात्रसे मायाके साथ ब्रीडा करते हैं, तब आपका संकेत पाते ही जीवोंके सूक्ष्म शरीर और उनके सुप्त कर्म-संस्कार जग जाते हैं और पराचर प्राणियोंकी उत्पत्ति होती है । प्रभो ! आप परम दयालु हैं । आकाशके समान सबमे सम होनेके कारण न तो कोई आपका अपना है और न तो परया । वास्तवमे तो आपके स्वरूपमें मन और वाणीकी गति ही नहीं है । आपमें कार्य-कारणरूप प्रपञ्चक अमाय होनेसे बाह्य दृष्टिसे आप शून्यके समान ही जान पड़ते हैं, परन्तु उस दृष्टिके भी अधिष्ठान होनेके कारण आप परम सत्य हैं । ॥ २९ ॥

भगवन् ! आप नित्य एकरस हैं । यदि जीव असंख्य हों और सब-के-सब नित्य एवं सर्वव्यापक हों, तब तो वे आपके समान ही हो जायेंगे; उस हालतमें वे शासित हैं और आप शासक—यह बात वन ही नहीं सकती, और तब आप उनका नियन्त्रण कर ही नहीं सकते । उनका नियन्त्रण आप तभी कर सकते हैं, जब वे आपसे उत्पन्न एवं आपकी अपेक्षा न्यून हों । इसमें सन्देह नहीं कि ये सब-के-सब जीव तथा इनकी एकता या विभिन्नता आपसे ही उत्पन्न हुई है । इसलिये आप वनमें कारणरूपसे रहते हुए भी उनके नियामक हैं । वास्तवमें आप उनमें समरूपसे स्थित हैं । परन्तु यह

जाना नहीं जा सकता कि आपका वह स्वरूप कैसा है, क्योंकि जो लोग ऐसा समझते हैं कि हमने जान लिया, उन्होंने वास्तवमें आपको नहीं जाना, उन्होंने तो केवल अपनी बुद्धिके श्रियको जाना है, जिसमे आप परे हैं; और साथ ही गतिके द्वारा जितनी वस्तुएँ जानी जाती हैं, वे मनियोंकी भिन्नताके कारण भिन्न-भिन्न होती हैं; इसलिये उनकी दुष्टता, एक मतके साथ दूसरे मतका विरोध प्रत्यक्ष ही है । अतएव आपका स्वरूप समस्त मतोंके परे है । ॥ ३० ॥ क्षामिन् ! जीव आपसे उत्पन्न होता है, यह कहनेका ऐसा अर्थ नहीं है कि आप परिणामके द्वारा जीव बनते हैं । सिद्धान्त तो यह है कि प्रकृति और पुरुष दोनों ही अजन्मा हैं । अर्थात् उनका वास्तविक स्वरूप—जो आप हैं—कभी द्वात्तयोंके अदर स्वरता नहीं, जन्म नहीं लेता । तब प्राणियोंका जन्म कैसे होता है ? अज्ञानके कारण प्रकृतिको पुरुष और पुरुषको प्रकृति समझ लेनेसे, एकत्र दूसरेके साथ संयोग हो जानेसे जैसे 'घुलबुल' नामकी कोई खतन्न वस्तु नहीं है, परन्तु उपादान-कारण जब और निमित्त-कारण वायुके संयोगसे उसकी सृष्टि हो जाती है । प्रकृतिमें पुरुष और पुरुषमे प्रकृतिक अग्रास (एकमें दूसरेकी कल्पना) हो जानेके कारण ही जीवोंके विविध नाम और गुण रख लिये जाते हैं । अन्तमें जैसे समुद्रमें नदियाँ और मधुमें समस्त पुष्पोंके रस समा जाते हैं, वैसे ही वे सब-के-सब उपाविरहित आपमें समा जाते हैं, (इसलिये जीवोंकी भिन्नता और उनका पृथक् अस्तित्व आपके

॥ अनिष्टिद्योऽपि यो देवः सर्वकारकश्चकिञ्चुः ।

सर्वजः सर्वकर्ता च सर्वव्याप नमामि तव ॥ २५ ॥

जो प्रभु इन्द्रियरहित होनेपर भी समस्त ब्रह्म और आन्तरिक इन्द्रियकी शक्तिके धारण करता है और सर्वत्र एवं सर्वकर्ता है, उस सबके सेवनीय प्रभुको मैं नमस्कार करता हूँ ।

॥ त्वदीक्षणवशाद्योमयाद्योभितर्कमितिः ।

आत्मान् ससरतः खिचान्मुहरे पाहि नः पितः ॥ २६ ॥

नृसिंह ! आपके सृष्टि-सङ्कल्पसे क्षुब्ध होकर भायाने कर्मोंको जगत् कर दिया है । उन्होंने कारण हमलोगोंका जन्म हुआ और अब आवागमनके चक्रमें मटककर हम दुखी हो रहे हैं । पिताजी ! आप हमारी रक्षा कीजिये ।

॥ अन्तर्यामि सर्वलोकस्य गीतः श्रुत्या युक्त्या चैवमेवावतरेतः ।

यः सर्वज्ञः सर्वशक्तिर्नृसिंहः श्रीमन्त त चेत्तत्सैवावतरे ॥ २७ ॥

शुक्तिने समस्त दृश्यप्रपञ्चके अन्तर्यामीके रूपमें जिनका गान किया है; और बुक्तिये भी वैसा ही निश्चय होता है । जो सर्वज्ञ, सर्वशक्ति और नृसिंह—पुरुषोत्तम हैं, उन्होंने सर्वसौन्दर्य-प्रादुर्भावनिधि प्रभुका ये मन-ही-मन आश्रय ग्रहण करता हूँ ।

द्वारा नियन्त्रित है। उनकी पृथक् सतन्त्रता और सर्व-व्यापकता आदि वास्तविक सत्यको न जाननेके कारण ही मानी जाती है) * ॥ ३१ ॥

भगवन् ! सभी जीव आपकी मायासे भ्रममें मटक रहे हैं, अपनेको आपसे पृथक् मानकर जन्म-मृत्युका चक्र काट रहे हैं। परन्तु बुद्धिमान् पुरुष इस भ्रमको समझ लेते हैं और सम्पूर्ण भक्तिभावसे आपकी शरण ग्रहण करते हैं, क्योंकि आप जन्म-मृत्युके चक्रसे छुड़ानेवाले हैं। यद्यपि शीत, ग्रीष्म और कर्मा—इन तीन मार्गोवाला काष्ठचक्र आपका भूविद्यासाम्राज्य है, वह सभीको भयभीत करता है, परन्तु वह उन्हींको बार-बार भयभीत करता है, जो आपकी शरण नहीं लेते। जो आपके शरणागत भक्त हैं, उन्हें भला, जन्म-मृत्युरूप संसारका भय कैसे हो सकता है ? ॥ ३२ ॥ अजन्मा प्रभो ! जिन योगियोंने अपनी इन्द्रियों और प्राणोंको वशमें कर लिया है, वे भी, जब गुरुदेवके चरणोंकी शरण न लेकर उच्छृङ्खल एवं क्षयन्त चञ्चल मन-नुरागको अपने वशमें करनेका यत्न करते हैं, तब अपने साधनोंमें सफल नहीं होते। उन्हें बार-बार खेद और सैकड़ों विपत्तियोंका सामना करना पड़ता है,

वेत्तु भ्रम और दुःख ही उनके हाथ लगता है। उनकी ठीक वही दशा होती है, जैसी समुद्रमें बिना कर्णधारकी नावपर यात्रा करनेवाले व्यापारियोंकी होती है। (तात्पर्य यह कि जो मनको वशमें करना चाहते हैं, उनके लिये कर्णधार—गुरुकी अनिवार्य आवश्यकता है) † ॥ ३३ ॥

भगवन् ! आप अखण्ड-आनन्दस्वरूप और शरणागतके आत्मा हैं। आपके रहते सज्जन, पुत्र, देह, स्त्री, वन, महल, पृथ्वी, प्राण और रथ आदिसे क्या प्रयोजन है ? जो लोग इस सत्य सिद्धान्तको न जानकर बी-पुरुषके सम्बन्धसे होनेवाले सुखोंमें ही रम रहे हैं, उन्हें संसारमें मल्ल, ऐसी कीन-सी वस्तु है, जो सुखी कर सके। क्योंकि संसारकी सभी वस्तुएँ स्वभावसे ही विनाशी हैं, एक-न-एक दिन मटियामेठ हो जानेवाली हैं। और तो क्या, वे स्वरूपसे ही साराहीन और सत्ताहीन हैं; वे मल, क्या सुख दे सकती हैं ? ॥ ३४ ॥ भगवन् ! जो ऐश्वर्य, क्लृप्ती, विद्या, जाति, तपस्या आदिके धर्मद्वारे रक्षित हैं, वे संतपुरुष इस पृथ्वीतलपर परम पवित्र और सबको पवित्र करनेवाले पुण्यभय सन्ने तीर्थ-स्थान हैं। क्योंकि उनके हृदयमें आपके चरणारविन्द सर्वदा विराचमान रहते हैं और यही कारण है कि उन

* यस्मिन्नुद्यद् विषयमपि यद् भाति विष्वं जगद्वै
जीवोपेतं गुरुकृपाया केवलमावशेषे ।
अत्यन्तान्तं भवति सहसा सिन्धुचस्तिन्धुमन्धे
मध्येचित्त त्रिभुवनगुह्यं भावये तं दृष्टिम् ॥ ३८ ॥

जीवोंके सहित यह सम्पूर्ण विश्व जिनमें उदय होता है और उपुष्टि आवि अवस्थामें विषयको प्राप्त होता है तथा मान होता है; गुरुदेवकी कृपा प्राप्त होनेपर जब बुद्ध आत्मिक ज्ञान होता है; तब समुद्रमें नदीके समान स्रष्टा यह जिनमें आत्यन्तिक प्रलयको प्राप्त हो जाता है; उन्हीं त्रिभुवनगुह्य दृष्टि भगवान्की मैं अपने हृदयमें भावना करता हूँ।

† संसारचक्रकचर्विदीर्णमुदीर्णानामवसापतसम्
कथञ्चिदापन्नमिह प्रपन्नं त्वमुद्धर श्रीनृदरे नृलोकम् ॥ ३९ ॥

दृष्टि ! यह जीव संसारचक्रके आगेसे टुकड़े-टुकड़े हो रहा है और जाना प्रकरके सत्कारिक पापोंकी धधकती हुई छपटोंके झल्लर रहा है। यह आपत्तिग्रस्त जीव किसी प्रकार आपकी कृपासे आपकी शरणमें आया है। आप इसका उद्धार कीजिए।

‡ यदा परमन्दुशुरो भक्त्यदे पदं मनो मे भगवैल्लभेत ।

तदा निरस्ताश्लेषावनमः अयेव लौक्यं मन्त्राः कृपातः ॥ २० ॥

परमानन्दमय शुचदेव ! भगवन् ! जब मेरा मन आपके चरणोंमें स्थान प्राप्त कर लेगा; तब मैं आपकी कृपासे समस्त साधनोंके परिश्रमसे छुटकारा पाकर परमानन्द प्राप्त करूँगा।

§ भक्त्या हि भवान् साक्षात्परमानन्दचिद्भवनः ।
आलेश किमस्तः कृत्व तुच्छदारुखतादिभिः ॥ २१ ॥

जो आपका भजन करते हैं, उनके लिये आप सर्व साक्षात् परमानन्दचिद्भवन आत्मा ही हैं। इसलिये उन्हें तुच्छ स्त्री, पुत्र, धन आदिसे क्या प्रयोजन है !

संत पुरुषोंका चरणाश्रित समस्त पापों और तापोंको सदाके लिये नष्ट कर देनेवाला है। भगवन् । आप निय-आनन्दस्वरूप आत्मा ही हैं। जो एक बार भी आपको अपना मन समर्पित कर देते हैं—आपमें मन लगा देते हैं—वे उन देह-गोहोंमें कभी नहीं फँसते जो जीवके विवेक, वैराग्य, धैर्य, क्षमा और शान्ति आदि गुणोंका नाश करनेवाले हैं। वे तो बस, आपमें ही रम जाते हैं * ॥ ३५ ॥

भगवन् । जैसे मिट्टीसे बना हुआ घड़ा मिट्टीरूप ही होता है, वैसे ही सत्से बना हुआ जगत् भी सत् ही है—यह बात युक्तिसङ्गत नहीं है। क्योंकि कारण और कार्यका निर्देश ही उनके भेदका घोटक है। यदि केवल भेदका निषेध करनेके लिये ही ऐसा कहा जा रहा हो तो पिता और पुत्रके, दण्ड और घटनाशमों कार्य-कारण-भाव होनेपर भी वे एक दूसरेसे भिन्न हैं। इस प्रकार कार्य-कारणकी एकता सर्वत्र एक-सी नहीं देखी जाती। यदि कारण-शब्दसे निमित्त-कारणन लेकर केवल उपादान-कारण लिया जाय—जैसे कुम्भलका सोना—तो भी कहीं-कहीं कार्यकी असत्यता प्रमाणित होती है; जैसे रस्सीमें साँप। यहाँ उपादान-कारणके सत्य होनेपर भी उसका कार्य सर्प सर्वथा असत्य है। यदि यह कहा जाय कि प्रतीत होनेवाले सर्पका उपादान-कारण केवल रस्सी नहीं है, उसके साथ अधिष्ठाता—

समस्त मेघ भी है, तो यह समझना चाहिये कि अधिष्ठाता और सत् वस्तुके संयोगसे ही इस जगत्की उत्पत्ति हुई है। इसलिये जैसे रस्सीमें प्रतीत होनेवाला सर्प मिथ्या है, वैसे ही सत् वस्तुमें अधिष्ठाताके संयोगसे प्रतीत होने-वाला नाम-रूपात्मक जगत् भी मिथ्या है। यदि केवल व्यवहारकी सिद्धिके लिये ही जगत्की सत्ता अभीष्ट हो, तो उसमें कोई आपत्ति नहीं, क्योंकि वह पारमार्थिक सत्य न होकर केवल व्यावहारिक सत्य है। यह भ्रम व्यावहारिक जगत्में माने हुए कालकी दृष्टिसे अनादि है; और अज्ञानीजन बिना विचार किये पूर्व-पूर्वके भ्रमसे प्रेरित होकर अन्धपरम्परासे इसे मानते चले आ रहे हैं। ऐसी स्थितिमें कर्मफलको सत्य बतलानेवाली श्रुतियों केवल ऊर्ध्वी लोणोंको भ्रममें डालती हैं, जो कर्ममें जब हो रहे हैं और यह नहीं समझते कि इनका तात्पर्य कर्मफलकी नित्यता बतलानेमें नहीं, बल्कि उनकी प्रशंसा करके उन कर्मोंमें लगानेमें है † ॥ ३६ ॥ भगवन् । वास्तविक बात तो यह है कि यह जगत् उत्पत्तिके पहले नहीं था और प्रलयके बाद नहीं रहेगा, इससे यह सिद्ध होता है कि यह बीचमें भी एकत्र परमात्मामें मिथ्या ही प्रतीत हो रहा है। इसीसे हम श्रुतियाँ इस जगत्का वर्णन ऐसी उपमा देकर करती हैं कि जैसे मिट्टीमें घड़ा, जोहिमें शरा और सोनेमें कुम्भल आदि नाममात्र हैं, वास्तवमें

● भुञ्जन्तु तदङ्गसङ्गमनिर्घं त्वामेव सञ्चिन्तयन्
कृताः सन्ति यतो कृतो गत्यमहात्मानाभमानावसन् ।
नित्यं तन्मुखपङ्कजादिराजितत्वनुष्णगायामृत-
स्रोतःप्रभवमप्युक्तो नरादरे न स्वामह देहकृत् ॥ २९ ॥

मैं शरीर और उसके सम्बन्धियोंकी आसक्ति छोड़कर रात-दिन आपका ही चिन्तन करूँगा और जहाँ-जहाँ निरभिमान सन्त निवास करते हैं, उन्हीं-उन्हीं आश्रमोंमें रहूँगा। उन असुखोंकी कुछ-कमलसे निःसृत आपकी पुण्यमयी कथा-श्रुताकी नदियोंकी धारोंमें प्रतिदिन स्नान करूँगा और रहूँगा। फिर मैं कभी देहके बन्धनोंमें नहीं पहुँचा।

† उद्भूत भवतः सतोऽपि शुभं सन्नेव सर्पः खड्गः
कुर्वन् कार्यमग्राह कूटकर्णकं केतोऽपि नैवगच्छ ।
अद्वैत तव सत्पर तु परमानन्द पद तन्मुदा
कदे मुन्दरमिन्दिरानुत्त हरे मा शुभ गगान्तस्य ॥ २३ ॥

मालमें प्रतीयमान सर्पके समान सत्यस्वरूप आपके उदय होनेपर भी यह विद्युत् सत्य नहीं है। शूद्रा सोना बाजारमें चल जानेपर भी सत्य नहीं हो जाता। वेदोंका तात्पर्य भी जगत्की सत्यतामें नहीं है। इसलिये आपका जो परम सत्य परमानन्दस्वरूप अद्वैत सुन्दर पद है, हे इन्दिरावन्दिता ओहरे। मैं उसीकी कन्दना करता हूँ। शुद्ध शरणागतको मत छोड़िये।

आपकी प्रत्येक युगमें की हुई खीझों, गुणोंका गान सुन-
सुनकर उनके द्वारा आपकी अपने हृदयमें बैठ जाता है
तो अनन्त, अचिन्त्य, दिव्य गुणगणोंके निवासस्थान प्रभो !
आपका वह प्रेमी भक्त भी पाप-गुणोंके फल सुख-दुःखों
और निधि-निषेधोंसे अतीत हो जाता है । क्योंकि आप
ही उनकी मोक्षस्वरूप गति हैं । (परन्तु इन ज्ञानी
और प्रेमियोंको छोड़कर और सभी शास्त्रवन्धनमें हैं तथा
वे उसका उल्लङ्घन करनेपर दूर्गतिको प्राप्त होते
हैं) * ॥ ४० ॥ भगवान् ! स्वर्गादि लोकोंके अधिपति इन्द्र,
ब्रह्मा प्रभृति भी आपकी याह—आपका पार न पा
सके; और आश्चर्यकी बात तो यह है कि आप भी
उसे नहीं जानते । क्योंकि जब अन्त है ही नहीं, तब
कोई जानेगा कैसे ? प्रभो ! जैसे आकाशमें हवासे घूलके
गन्धे-गन्धे क्या उड़ते रहते हैं, वैसे ही आपमें कालके वेगसे
अपनेसे उत्तरोत्तर दसगुने सात आकरणोंके सहित
असंख्य ब्रह्माण्ड एक साथ ही घूमते रहते हैं । तब
मन्त्र, आपकी सीमा कैसे मिले । हम श्रुतिधर्म भी आपके
स्वरूपका साक्षात् वर्णन नहीं कर सकतीं, आपके
अतिरिक्त वस्तुओंका निषेध करते-करते अन्तमें अपना
भी निषेध कर देती हैं और आपमें ही अपनी सत्ता
खोकर सफल हो जाती हैं ॥ ४१ ॥

भगवान् नारायणने कहा—देवर्षि ! इस प्रकार
सनकादि ऋषियोंने आत्मा और ब्रह्मकी एकता वतखनेवाला
उपदेश सुनकर आत्मस्वरूपको जाना और नित्य सिद्ध
होनेपर भी इस उपदेशसे कृतकृत्य-से होकर उन
योगोंने सनन्दनकी पूजा की ॥ ४२ ॥ नारद ! सनकादि
ऋषि सृष्टिके आरम्भमें उत्पन्न हुए थे, अतएव वे सबके

पूर्वज हैं । उन आकाशगामी महात्माओंने इस प्रकार
समस्त वेद, पुराण और उपनिषदोंका रस निबोद्ध लिया
है, यह सब सब सार-सर्वस्व है ॥ ४३ ॥ देवर्षि ! तुम
भी उन्होंनेके समान ब्रह्मके मानस-पुत्र हो—उनकी
ज्ञान-सम्पत्तिके उत्तराधिकारी हो । तुम भी ब्रह्मके साथ
इस ब्रह्मत्वविद्याको धारण करो और स्वच्छन्दभावसे
पृथ्वीमें निचरण करो । यह विद्या मनुष्योंकी समस्त
वासनावर्णोंको मरु कर देनेवाली है ॥ ४४ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित ! देवर्षि नारद बड़े
संघमी, ज्ञानी, पूर्णकाम और नैष्ठिक ब्रह्मचारी हैं । वे
जो कुछ सुनते हैं, उन्हें उसकी धारणा हो जाती है ।
भगवान् नारायणने उन्हें जब इस प्रकार उपदेश किया,
तब उन्होंने बड़ी ब्रह्मसे उसे ग्रहण किया और उनसे
यह कहा ॥ ४५ ॥

देवर्षि नारदने कहा—भगवान् ! आप सच्चिदानन्द-
स्वरूप श्रीकृष्ण हैं । आपकी कीर्ति परम पवित्र है ।
आप समस्त प्राणियोंके परम कल्याण—मोक्षके लिये
कमनीय कलकवतार धारण किया करते हैं । मैं आपको
नमस्कार करता हूँ ॥ ४६ ॥

परीक्षित ! इस प्रकार महात्मा देवर्षि नारद आदि-
ऋषि भगवान् नारायणको और उनके शिष्योंको नमस्कार
करके स्वयं मेरे पिता श्रीकृष्णहैपायनके आश्रमपर
गये ॥ ४७ ॥ भगवान् वेदव्यासने उनका वयोचित
सत्कार किया । वे आसन स्वीकार करके बैठ गये, इसके
बाद देवर्षि नारदने जो कुछ भगवान् नारायणके मुँहसे
सुना था, वह सब कुछ मेरे पिताजीको सुना
दिया ॥ ४८ ॥ राजन् ! इस प्रकार मैंने तुम्हें वतज्या

* अवगमं तव मे दिक्षि माधव स्फुरति बभ सुखसुखसङ्गमः ।

अवणवर्णनमात्रमयापि वा न हि मयामि यथा विधिभिर्ह्यः ॥ २७ ॥

माधव ! आप मुझे अपने स्वरूपका अनुभव कराइये; जिससे फिर सुख-दुःखके योगकी स्फूर्ति नहीं होती । अबका
मुझे अपने गुणोंके अवण और वर्णनका प्रेम ही दीजिये; जिससे कि मैं विधि-निषेधका विकार न होऊँ ।

† सुपतयो	विदुरन्तमनन्त	ते
न	च	मवाच गिरः श्रुतिमौल्यः ।
जयि	फलन्ति	यतो नम हृत्पतो
जय	वयेति	मये तव तपदम् ॥ २८ ॥

हे अनन्त ! ब्रह्मा आदि देवता आपका अन्त नहीं जानते, न आप ही जानते और न तो वेदोंकी मुकुटमणि
उपनिषदों ही जानती हैं; क्योंकि आप अनन्त हैं । उपनिषदें नमो नमः । 'जय हो' जय हो' यह कहकर आपमें चरितार्थ
होती हैं । हृत्पति मैं भी 'नमो नमः' 'जय हो' जय हो' बड़ी कहकर आपके चरण-कमलकी उपासना करता हूँ ।

किं मन-वाणीसे अगोचर और समस्त प्राकृत गुणोंसे रहित परब्रह्म परमात्माका वर्णन श्रुतिवाँ किस प्रकार करती हैं और उसमें मनका कैसे प्रवेश होता है ! गद्दी तो तुम्हारा प्रश्न था ॥ ४९ ॥ परीक्षित ! भगवान् ही इस विषयका सङ्कल्प करते हैं तथा उसके आदि, मध्य तथा अन्तमें स्थित रहते हैं । वे प्रकृति और जीव दोनोंके स्वामी हैं । उन्होंने ही इसकी सृष्टि कर्मके जीवोंके साथ इसमें प्रवेश किया है और शरीरोंका निर्माण करके वे

ही उनका नियन्त्रण करते हैं । जैसे गद्द निद्रा—सुषुप्तिमें मग्न पुरुष अपने शरीरका अनुसन्धान छोड़ देता है, वैसे ही भगवान् को पाकर वह जीव मायासे मुक्त हो जाता है । भगवान् ऐसे विभुद, वेतल चिन्मात्र तत्त्व हैं कि उनमें जगत्के कारण माया अथवा प्रकृतिकारत्तीभर भी अस्तित्व नहीं है । वे ही शास्त्रमें अभ्य-स्थान हैं । उनका चिन्तन निरन्तर करते रहना चाहिये ॥ ५० ॥

अष्टासीवाँ अध्याय

शिवजीका सङ्कटमोचन

राजा परीक्षितने पूछा—भगवन् ! भगवान् शङ्करने समस्त भोगोंका परित्याग कर रक्खा है; परन्तु देखा यह जाता है कि जो देवता, असुर अथवा मनुष्य उनकी उपासना करते हैं, वे प्रायः धनी और भोगसम्पन्न हो जाते हैं । और भगवान् विष्णु छद्मीपति हैं, परन्तु उनकी उपासना करनेवाले प्रायः धनी और भोगसम्पन्न नहीं होते ॥ १ ॥ दोनों प्रभु त्याग और भोगकी दृष्टिसे एक-दूसरेसे विरुद्ध स्वभाववाले हैं, परन्तु उनके उपासकों-की उनके स्वरूपके विपरीत फल मिलता है । मुझे इस विषयमें बड़ा सन्देह है कि त्यागीकी उपासनासे भोग और छद्मीपतिकी उपासनासे त्याग कैसे मिलता है ! मैं आपसे यह जानना चाहता हूँ ॥ २ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित ! शिवजी सदा अपनी शक्तिसे युक्त रहते हैं । वे सत्त्व आदि गुणोंसे युक्त तथा अहङ्कारके अधिष्ठाता हैं । अहङ्कारके तीन भेद हैं—वैकारिक, तैजस और तामस ॥ ३ ॥ त्रिविध अहङ्कारसे सोलह विकार डूप—दस इन्द्रियों, पाँच महाभूत और एक मन । अतः इन सबके अधिष्ठान-देवताओंमेंसे किसी एककी उपासना करनेपर समस्त देख्योंकी प्राप्ति हो जाती है ॥ ४ ॥ परन्तु परीक्षित ! भगवान् श्रीहरि तो प्रकृतिसे परे स्वयं पुरुषोत्तम एवं प्राकृत गुणरहित हैं । वे सर्वज्ञ तथा सबके अन्तःकरणोंके साक्षी हैं । जो उनका भजन करता है, वह स्वयं भी गुणातीत हो जाता है ॥ ५ ॥ परीक्षित ! जब तुम्हारे दादा

धर्मराज शुषिष्ठिर असन्नेह यज्ञ कर चुके, तब भगवान् से विविध प्रकारके धर्मोंका वर्णन सुनते समय उन्होंने भी यही प्रश्न किया था ॥ ६ ॥ परीक्षित ! भगवान् श्रीकृष्ण सर्वशक्तिमान् परमेश्वर हैं । मनुष्योंके कल्याणके लिये ही उन्होंने यदुर्वशमें अवतार धारण किया था । राजा शुषिष्ठिरका प्रश्न सुनकर और उनकी सुननेकी इच्छा देखकर उन्होंने प्रसन्नतापूर्वक इस प्रकार उत्तर दिया था ॥ ७ ॥

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—राजन् ! जिसपर मैं कृपा करता हूँ, उसका सब धन धीरे-धीरे छीन लेता हूँ । जब वह निर्धन हो जाता है, तब उसके सगे-सम्बन्धी उसके दुःखानुष्ठान विचकी परवा न करके उसे छोड़ देते हैं ॥ ८ ॥ फिर वह धनके लिये उद्योग करने लगता है, तब मैं उसका वह प्रयत्न भी निष्फल कर देता हूँ । इस प्रकार बार-बार असफल होनेके कारण जब धन कमनेसे उसका मन विरक्त हो जाता है, उसे दुःख समझकर वह उधरसे अपना मुँह मोड़ लेता है और मेरे प्रेमी भक्तोंका आश्रय लेकर उनसे मेळ-जोळ करता है, तब मैं उसपर अपनी अहैतुक कृपाकी वर्षा करता हूँ ॥ ९ ॥ मेरी कृपासे उसे परम सूक्ष्म अनन्त सच्चिदानन्दस्वरूप परब्रह्मकी प्राप्ति हो जाती है । इस प्रकार मेरी प्रसन्नता, मेरी आराधना बहुत कठिन है । इसीसे साधारण लोग मुझे छोड़कर मेरे ही दूसरे रूप अन्यान्य देवताओंकी आराधना करते हैं ॥ १० ॥ दूसरे देवता आशुतोष हैं । वे ऋटपट पिघल पड़ते हैं और अपने भक्तोंको सामान्य-छद्मी दे देते हैं । उसे

पाकर वे उन्मृच्छल, प्रमादी और उन्मत्त हो उठते हैं और अपने वरदाता देवताओंको भी भूल जाते हैं तथा उनका तिरस्कार कर बैठते हैं ॥ ११ ॥

भ्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित् । ब्रह्म, विष्णु और महादेव—ये तीनों शाप और वरदान देनेमें समर्थ हैं; परन्तु इनमें महादेव और ब्रह्मा शीघ्र ही प्रसन्न या क्रुध होकर वरदान अथवा शाप दे देते हैं। परन्तु विष्णु-भगवान् वैसे नहीं हैं ॥ १२ ॥ इस विषयमें महात्मा-जोग एक प्राचीन इतिहास कहा करते हैं। भगवान् शङ्कर एक बार वृकासुरको वर देकर सङ्कटमें पड़ गये थे ॥ १३ ॥ परीक्षित् । वृकासुर शकुनिका पुत्र था। उसकी बुद्धि बहुत विगड़ी हुई थी। एक दिन कहीं जाते समय उसने वेश्या नारदको देख लिया और उनसे पूछा कि 'तीनों देवताओंमें सटपट प्रसन्न होनेवाला कौन है?' ॥ १४ ॥ परीक्षित् । वेश्या नारदने कहा—'युग भगवान् शङ्करकी आराधना करो। इससे तुम्हारा मनोरथ बहुत जल्दी पूरा हो जायगा। वे घोड़े ही गुणोंसे शीघ्र-से-शीघ्र प्रसन्न और थोड़े ही अपराधसे तुरंत क्रोध कर बैठते हैं ॥ १५ ॥ रावण और बाणासुरने केवल बंदीजनिके समान शङ्करजीकी कुछ स्तुतियों की थीं। इसीसे वे उनपर प्रसन्न हो गये और उन्हें अतुलनीय ऐश्वर्य दे दिया। बादमें रावणके कैलास उठाने और बाणासुरके नगरकी रक्षाका भार लेनेसे वे उनके लिये सङ्कटमें भी पड़ गये थे' ॥ १६ ॥

नारदजीका उपदेश पाकर वृकासुर केदारक्षेत्रमें गया और अग्निको भगवान् शङ्करका मुख मानकर अपने शरीरका मांस काट-काटकर उसमें हवन करने लगा ॥ १७ ॥ इस प्रकार छः दिनतक उपासना करनेपर भी जब उसे भगवान् शङ्करके दर्शन न हुए, तब उसे बड़ा दुःख हुआ। सातवें दिन केदारतीर्थमें जान करके उसने अपने भीगे बालवाले मस्तकको कुन्हाड़ेसे काटकर हवन करना चाहा ॥ १८ ॥ परीक्षित् । जैसे जगत्में कोई दुःखवश आत्महत्या करने जाता है तो हमलोग करुणावश उसे बचा लेते हैं, वैसे ही परम दयालु भगवान् शङ्करने वृकासुरके आत्मघातके पहले ही अग्निमुण्डसे अग्निदेवके समान प्रकट होकर अपने दोनों हाथोंसे उसके दोनों हाथ पकड़ लिये और गला काटनेसे रोक दिया।

उनका स्पर्श होते ही वृकासुरके अङ्ग ज्यों-के-यों पूर्ण हो गये ॥ १९ ॥ भगवान् शङ्करने वृकासुरसे कहा—'व्यारे वृकासुर। बस करो, बस करो, बहुत हो गया। मैं तुम्हें वर देना चाहता हूँ। तुम मुँहमोंग घर मोंग लो। अरे माई! मैं तो अपने शरणागत भक्तोंपर केवल जल चढ़ानेसे ही सन्तुष्ट हो जाया करता हूँ। मला, तुम झटपट अपने शरीरको क्यों पीड़ा दे रहे हो?' ॥ २० ॥ परीक्षित् । अत्यन्त पापी वृकासुरने समस्त प्राणियोंको भयभीत करनेवाला यह वर मोंग कि 'मैं जिसके सिरपर हाथ रख दूँ, वही मर जाय' ॥ २१ ॥ परीक्षित् । उसकी यह याचना सुनकर भगवान् क्रुध पहले तो कुछ अनमने-से हो गये फिर हँसकर कह दिया—'अच्छा, ऐसा ही हो।' ऐसा वर देकर उन्होंने मानो सौंपको असूत पिछा दिया ॥ २२ ॥

भगवान् शङ्करके इस प्रकार कह देनेपर वृकासुरके मनमें यह लजसा हो आयी कि 'मैं पार्वतीजीको ही हर लूँ।' वह असुर शङ्करजीके वरकी परीक्षाके लिये उन्हींके सिरपर हाथ रखनेका उद्योग करने लगा। अब तो शङ्करजी अपने दिये हुए वरदानसे ही भयभीत हो गये ॥ २३ ॥ वह उनका पीछा करने लगा और वे उससे दूरकर कोंपले हुए भागने लगे। वे पृथ्वी, लर्ग और दिशाओंके अन्ततक दौड़ते गये; परन्तु फिर भी उसे पीछा करते देखकर उत्तरकी ओर बहे ॥ २४ ॥ बड़े-बड़े देवता इस सङ्कटको टाखनेका कोई उपाय न देखकर चुप रह गये। अन्तमें वे प्राकृतिक अधिकारसे परे परम प्रकाशमय वैकुण्ठलोकमें गये ॥ २५ ॥ वैकुण्ठमें स्वयं भगवान् नारायण निवास करते हैं। एकमात्र वे ही उन सन्यासियोंकी परम गति हैं, जो सारे जगत्को अमय दान करके शान्तभावमें स्थित हो गये हैं। वैकुण्ठमें जाकर जीवको फिर जौटना नहीं पड़ता ॥ २६ ॥ सत्कर्मस्थानी भगवान्ने देखा कि शङ्करजी तो बड़े सङ्कटमें पड़े हुए हैं। तब वे अपनी योगमायासे ब्रह्मचारी बनकर दूरसे ही धीरे-धीरे वृकासुरकी ओर आने लगे ॥ २७ ॥ भगवान्ने शूँजकी मेखला, काळा घृगघर्म, दण्ड और कृष्णधुकी आला धारण कर रखी थी। उनके एक-एक अंगसे ऐसी ज्योति निकल रही थी, मानो आग धधक रही हो। वे हाथमें कुछ लिये हुए थे। वृकासुरको

देखकर उन्होंने बड़ी नम्रतासे झुककर प्रणाम किया ॥ २८ ॥

ब्रह्मचारी-वेषचारी भगवान् ने कहा—शकुनि-नन्दन वृकासुरजी ! आप स्पष्ट ही बहुत थके-से जान पड़ते हैं । आज आप बहुत दूरसे आ रहे हैं क्या ? तनिक विश्राम तो कर लीजिये । देखिये, यह शरीर ही सारे सुखोंकी जड़ है । इसीसे सारी कामनाएँ पूरी होती हैं । इसे अधिक कष्ट न देना चाहिये ॥ २९ ॥ आप तो सब प्रकारसे समर्थ हैं । इस समय आप क्या करना चाहते हैं ? यदि मेरे सुनने योग्य कोई बात हो तो बतलाइये । क्योंकि संसारमें देखा जाता है कि लोग सहायकोंके द्वारा बहुत-से काम बना लिया करते हैं ॥ ३० ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित ! भगवान् के एक-एक शब्दसे अमृत वरस रहा था । उनके इस प्रकार पृष्ठनेपर पहले तो उसने तनिक ठहरकर अपनी थकावट दूर की; उसके बाद क्रमशः अपनी तपस्या, वरदान-प्राप्ति तथा भगवान् शङ्करके पीछे दौड़नेकी बात शुरुसे कह सुनायी ॥ ३१ ॥

श्रीभगवान् ने कहा—अच्छ, ऐसी बात है ! तब तो भाई ! हम उसकी बातपर विश्वास नहीं करते । आप नहीं जानते हैं क्या ? वह तो दक्ष प्रजापतिके शापसे पिशाचभावको प्राप्त हो गया है । आजकल वही प्रेतों और पिशाचोंका सम्राट् है ॥ ३२ ॥ दानवराज ! आप इतने बड़े होकर ऐसी छोटी-छोटी बातोंपर विश्वास कर लेते हैं ? आप यदि अब भी उसे जगद्गुरु मानते हैं

और उसकी बातपर विश्वास करते हैं, तो श्टपट अपने सिरपर हाथ रखकर परीक्षा कर लीजिये ॥ ३३ ॥ दानवशिरोमणे ! यदि किसी प्रकार शङ्करकी बात असत्य निकले तो उस असत्यवादीको मार डालिये, जिससे फिर कभी वह झूठ न बोल सके ॥ ३४ ॥ परीक्षित ! भगवान् ने ऐसी मोहित करनेवाली अद्भुत और भीठी बात कही कि उसकी निवेक-बुद्धि जाती रही । उस दुर्बुद्धिने मूलकर अपने ही सिरपर हाथ रख लिया ॥ ३५ ॥ बस, उसी क्षण उसका सिर फट गया और वह वहीं धरतीपर गिर पड़ा, मानो उसपर विजली गिर पड़ी हो । उस समय आकाशमें देवतालोग 'जय-जय, नमो नमः, साधु-साधु !' के नारे लगाने लगे ॥ ३६ ॥ पापी वृकासुरकी मृत्युसे देवता, ऋषि, पितर और गन्धर्व अत्यन्त प्रसन्न होकर पुष्पोंकी वर्षा करने लगे और भगवान् शङ्कर उस विकट सङ्कटसे मुक्त हो गये ॥ ३७ ॥ अब भगवान् पुरुषोत्तमने भयमुक्त शङ्करजीसे कहा कि 'देवाधिदेव ! बड़े हर्षकी बात है कि इस दुष्टको इसके पापोंने ही नष्ट कर दिया । परमेश्वर ! भला, ऐसा कौन प्राणी है जो महापुरुषोंका अपराध करके कुशाब्धसे रह सके ? फिर स्वयं जगद्गुरु विश्वेश्वर ! आपका अपराध करके तो कोई सङ्कल रह ही कैसे सकता है ?' ॥ ३८-३९ ॥

भगवान् अनन्त शक्तियोंके समुद्र हैं । उनकी एक-एक शक्ति मन और वाणीकी सीमाके परे है । वे प्रकृतितसे अतीत स्वयं परमात्मा हैं । उनकी शङ्करजीको सङ्कटसे छुड़ानेकी यह छीला जो कोई कहता या सुनता है, वह संसारके बन्धनों और शत्रुओंके भयसे मुक्त हो जाता है ॥ ४० ॥

नवासीवाँ अध्याय

श्रुगजीके द्वारा त्रिदेवोंकी परीक्षा तथा भगवान् का मरे हुए ब्राह्मण-बालकोंको वापस लाना

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित ! एक बार सरस्वती नदीके पवन तटपर यज्ञ प्रारम्भ करनेके लिये बड़े-बड़े ऋषि-मुनि एकत्र होकर बैठे । उन लोगोंमें इस विषयपर वाद-विवाद चला कि ब्रह्मा, शिव और विष्णुमें सबसे बड़ा कौन है ? ॥ १ ॥ परीक्षित ! उन लोगोंने यह बात जाननेके लिये ब्रह्मा, विष्णु और शिवकी परीक्षा लेनेके उद्देश्यसे

ब्रह्माके पुत्र श्रुगजीको उनके पास भेजा । महर्षि श्रुग सबसे पहले ब्रह्माजीकी सभामें गये ॥ २ ॥ उन्होंने ब्रह्माजीके वैयं आदिनी परीक्षा करनेके लिये न उन्हें नमस्कार किया और न तो उनकी स्तुति दी की । इसपर ऐसा मात्सर्य हुआ कि ब्रह्माजी अपने तेजसे दहक रहे हैं । उन्हें क्रोध आ गया ॥ ३ ॥ परन्तु जब समर्थ ब्रह्माजीने देखा

कियाह तो मेरा पुत्र ही है, तब अपने मनमें ठठे हुए क्रोधको भीतर-ही-भीतर विवेकबुद्धिसे दबा लिया; ठीक वैसे ही, जैसे कोई अरणिमन्थनसे उत्पन्न अग्निको जलसे बुझा दे ॥ ४ ॥

वहाँसे महर्षि शृगु कैलासमें गये । देवाधिदेव भगवान् शङ्करने जब देखा कि मेरे माई शृगुजी आये हैं, तब उन्होंने बड़े आनन्दसे खड़े होकर उनका आच्छिन्न करनेके लिये सुजाँएँ फैला दीं ॥ ५ ॥ परन्तु महर्षि शृगुने उनसे आच्छिन्न करना स्वीकार न किया और कहा—‘मुम कोक और वेदकी-मर्यादाका उल्लङ्घन करते हो, इसलिये मैं तुमसे नहीं मिलता ।’ शृगुजीकी यह बात सुनकर भगवान् शङ्कर क्रोधके मारे तिष्ठमिथ ठठे । उनकी आँखें चढ़ गयीं । उन्होंने त्रिशूल उठाकर महर्षि शृगुको मारना चाहा ॥ ६ ॥ परन्तु उसी समय भगवती सतीने उनके चरणोंपर गिरकर बहुत अनुनय-विनय की और किसी प्रकार उनका क्रोध शान्त किया । अब महर्षि शृगुजी भगवान् विष्णुके निवासस्थान वैकुण्ठमें गये ॥ ७ ॥ उस समय भगवान् विष्णु लक्ष्मीजीकी गोदमें अपना सिर रखकर लेटे हुए थे । शृगुजीने जाकर उनके वक्षःस्थलपर एक छात कसकर जमा दी । अल-वत्सल भगवान् विष्णु लक्ष्मीजीके साथ ठठ बैठे और शठपठ अपनी शय्यासे नीचे उतरकर मुनिको सिर छुकाया, प्रणाम किया । भगवान्ने कहा—‘ब्रह्मन् । आपका स्वागत है, आप भले पधारे । इस आसनपर बैठकर कुछ क्षण विश्राम कीजिये । प्रभो ! मुझे आपके दृग्गमनका पता न था । इसीसे मैं आपकी अगवाणी न कर सका । मेरा अपराध क्षमा कीजिये ॥ ८-९ ॥ महामुने ! आपके चरणकमल अत्यन्त कोमल हैं ।’ यों कहकर शृगुजीके चरणोंको भगवान् अपने हाथोंसे सहलाने लगे ॥ १० ॥ और बोले—‘महर्षे ! आपके चरणोंका जल तीर्थोंको भी तीर्थ बनानेवाला है । आप उससे वैकुण्ठलोक, मुझे और मेरे अंदर रहनेवाले लोकपालोंको पवित्र कीजिये ॥ ११ ॥ भगवन् ! आपके चरणकमलोंके स्पर्शसे मेरे सारे पाप धुल गये । आज मैं लक्ष्मीका एकमात्र आश्रय हो गया । अब आपके चरणोंसे चिह्नित मेरे वक्षःस्थलपर लक्ष्मी सदा-सर्वदा निवास करेगी’ ॥ १२ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—जब भगवान्ने अत्यन्त गम्भीर वाणीसे इस प्रकार कहा, तब शृगुजी परम सुखी और तृप्त हो गये । भक्तिके लदेकसे उनका गला भर आया, आँखोंमें आँसू छलक आये और वे चुप हो गये ॥ १३ ॥ परीक्षित् । शृगुजी वहाँसे लौटकर ब्रह्मादी मुनियोंके सत्सङ्गमें आये और उन्हें ब्रह्मा, शिव और विष्णुभगवान्के यहाँ जो कुछ अनुभव हुआ था, वह सब कह सुनाया ॥ १४ ॥ शृगुजीका अनुभव सुनकर सभी ऋषि-मुनियोंको बड़ा विस्मय हुआ, उनका सन्देश दूर हो गया । तबसे वे भगवान् विष्णुको ही सर्वश्रेष्ठ मानने लगे; क्योंकि वे ही शान्ति और अभयके उद्गमस्थान हैं ॥ १५ ॥ भगवान् विष्णुसे ही साक्षात् धर्म, ज्ञान, वैराग्य, आठ प्रकारके ऐश्वर्य और चित्तको शुद्ध करने-वाला यश प्राप्त होता है ॥ १६ ॥ शान्त, समचित्त, अकिञ्चन और सबको अभय देनेवाले साधु-मुनियोंकी वे ही एकमात्र परम गति हैं । ऐसा सारे शास्त्र कहते हैं ॥ १७ ॥ उनकी प्रिय मूर्ति है सत्त्व और इष्टदेव हैं ब्रह्मण । निष्काय, शान्त और निष्पुण्ड्रि (विवेक-सम्पन्न) पुरुष उनका भजन करते हैं ॥ १८ ॥ भगवान्की गुणमयी मायाने राक्षस, असुर और देवता—उनकी ये तीन मूर्तियाँ बना दी हैं । इनमें सत्त्वमयी देवमूर्ति ही उनकी प्रासिका साधन है । वे स्वयं ही समस्त पुरुषार्थस्वरूप हैं ॥ १९ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित् । सरस्वतीतटके ऋषियोंने अपने लिये वहाँ, मनुष्योंका संशय मिटानेके लिये ही ऐसी युक्ति रची थी । पुरुषोत्तम भगवान्के चरणकमलोंकी सेवा करके उन्होंने उनका परमपद प्राप्त किया ॥ २० ॥

सूतजी कहते हैं—शौनकादि ऋषियो । भगवान् पुरुषोत्तमकी यह कमनीय कीर्ति-कथा जन्म-मृत्युरूप संसार-के भयको मिटानेवाली है । यह व्यासनन्दन भगवान् श्रीशुकदेवजीके सुखारविन्दसे निकली हुई सुरमिमयी मधुमयी सुबाधारा है । इस संसारके लवे पयका जो बटोही अपने कानोंके दोनोंसे इसका निरन्तर पाव करता रहता है, उसकी सारी वक्त्रावृत्त, जो जगत्में इधर-उधर भटकनेसे होती है, दूर हो जाती है ॥ २१ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित ! एक दिनकी बात है, द्वारकापुरीमें किसी ब्राह्मणीके गर्भसे एक पुत्र पैदा हुआ, परन्तु वह उसी समय पृथ्वीका स्पर्श होते ही मर गया ॥ २२ ॥ ब्राह्मण अपने बालकका मृत शरीर लेकर राजमहलके द्वारपर गया और वहाँ उसे रखकर अत्यन्त आतुरता और दुखी मनसे विलाप करता हुआ यह कहने लगा—॥ २३ ॥ ‘इसमें सन्देह नहीं कि ब्राह्मणद्रोही, धूर्त, कृपण और विषयी राजाके कर्मदोषसे ही मेरे बालककी मृत्यु हुई है ॥ २४ ॥ जो राजा हिंसापरायण, दुःशील और अजितेन्द्रिय होता है, उसे राजा मानकर सेवा करनेवाली प्रजा दरिद्र होकर दुःख-पर-दुःख भोगती रहती है और उसके सामने सङ्कट-पर-सङ्कट आते रहते हैं’ ॥ २५ ॥ परीक्षित ! इसी प्रकार अपने दूसरे और तीसरे बालकके भी पैदा होते ही मर जानेपर वह ब्राह्मण लड़केकी लाश राजमहलके दरवाजेपर डाल गया और वही बात कह गया ॥ २६ ॥ नवें बालकके मरनेपर जब वह वहाँ आया, तब उस समय भगवान् श्रीकृष्णके पास अर्जुन भी बैठे हुए थे । उन्होंने ब्राह्मणकी बात सुनकर उससे कहा—॥ २७ ॥ ‘ब्रह्मन् ! आपके निवासस्थान द्वारकामें कोई धनुषधारी क्षत्रिय नहीं है क्या ? माहूम होता है कि ये यदुवंशी ब्राह्मण हैं और प्रजापालनका परित्याग करके किसी यज्ञमें बैठे हुए हैं ! ॥ २८ ॥ जिनके राज्यमें धन, खी अथवा पुत्रोंसे वियुक्त होकर ब्राह्मण दुखी होते हैं, वे क्षत्रिय नहीं हैं, क्षत्रियके वेषमें पेट पालनेवाले नट हैं । उनका जीवन व्यर्थ है ॥ २९ ॥ भगवन् ! मैं समझता हूँ कि आप खी-पुरुष अपने पुत्रोंकी मृत्युसे दोन हो रहे हैं । मैं आपकी सन्तानकी रक्षा करूँगा । यदि मैं अपनी प्रतिज्ञा पूरी न कर सका, तो आगमें कूदकर जल भरूँगा और इस प्रकार मेरे पापका प्रायश्चित्त हो जायगा’ ॥ ३० ॥

ब्राह्मणने कहा—अर्जुन ! यहाँ बलरामजी, भगवान् श्रीकृष्ण, धनुर्वरशिरोमणि प्रद्युम्न, अद्वितीय योद्धा अनिरुद्ध भी जब मेरे बालकोंकी रक्षा करनेमें समर्थ नहीं हैं; इन जगदीश्वरोंके लिये भी यह काम कठिन हो रहा है; तब तुम इसे कैसे करना चाहते हो ? सचमुच यह तुम्हारी मूर्खता है । हम तुम्हारी इस बातपर बिल्कुल विश्वास नहीं करते ॥ ३१-३२ ॥

अर्जुनने कहा—ब्रह्मन् ! मैं बलराम, श्रीकृष्ण अथवा प्रद्युम्न नहीं हूँ । मैं हूँ अर्जुन, जिसका गाण्डीव नामक धनुष विख्यात है ॥ ३३ ॥ ब्राह्मणदेवता ! आप मेरे बल-पौरुषका तिरस्कार मत कीजिये । आप जानते नहीं, मैं अपने पराक्रमसे भगवान् शङ्करको सन्तुष्ट कर चुका हूँ । भगवन् ! मैं आपसे अधिक क्या कहूँ, मैं युद्धमें साक्षात् मृत्युको भी जीतकर आपकी सन्तान ला दूँगा ॥ ३४ ॥

परीक्षित ! जब अर्जुनने उस ब्राह्मणको इस प्रकार विश्वास दिलया, तब वह लोगोंसे उनके बल-पौरुषका बखान करता हुआ बड़ी प्रसन्नतासे अपने घर लौट गया ॥ ३५ ॥ प्रसवका समय निकट आनेपर ब्राह्मण आतुर होकर अर्जुनके पास क्षया और कहने लगा—‘इस बार तुम मेरे बच्चेको मृत्युसे बचा लो’ ॥ ३६ ॥ यह सुनकर अर्जुनने शुद्ध जलसे आचमन किया, तथा भगवान् शङ्करको नमस्कार किया । फिर दिव्य अस्त्रोंका स्मरण किया और गाण्डीव धनुषपर डोरी चढ़ाकर उसे हाथमें ले लिया ॥ ३७ ॥ अर्जुनने बाणोंको अनेक प्रकारके अस्त्र-मन्त्रोंसे अभिमन्त्रित करके प्रसवगृहको चारों ओरसे घेर दिया । इस प्रकार उन्होंने सूतिकागृहके ऊपर-नीचे, अगल-बगल बाणोंका एक पिंजड़ा-सा बना दिया ॥ ३८ ॥ इसके बाद ब्राह्मणीके गर्भसे एक शिशु पैदा हुआ, जो बार-बार रो रहा था । परन्तु देखते-ही-देखते वह सशरीर आकाशमें अन्तर्धान हो गया ॥ ३९ ॥ अब वह ब्राह्मण भगवान् श्रीकृष्णके सामने ही अर्जुनकी निन्दा करने लगा । वह बोला—मेरी मूर्खता तो देखो, मैंने इस नपुंसककी झींगरी बातोंपर विश्वास कर लिया ॥ ४० ॥ मला जिसे प्रद्युम्न, अनिरुद्ध यहाँतक कि बलराम और भगवान् श्रीकृष्ण भी न बचा सकें, उसकी रक्षा करनेमें और कौन समर्थ है ! ॥ ४१ ॥ मिथ्यावादी अर्जुनको धिक्कार है ! अपने मुँह अपनी बर्बाद करनेवाले अर्जुनके धनुषको धिक्कार है ! इसकी दुर्बुद्धि तो देखो । यह मूर्खतावश उस बालकको लौटा लाना चाहता है, जिसे प्रारब्धने हमसे अलग कर दिया है’ ॥ ४२ ॥

जब वह ब्राह्मण इस प्रकार उन्हें भला-बुरा कहने

लगा, तब अर्जुन योगबलसे तत्काल संयमनीपुरीमें गये, जहाँ भगवान् यमराज निवास करते हैं ॥ ४३ ॥ वहाँ उन्हें ब्राह्मणका बालक नहीं मिला । फिर वे राज लेकर क्रमशः इन्द्र, अग्नि, निर्ऋति, सोम, वायु और वरुण आदिकी पुरियोंमें, अतलादि नीचेके लोकोंमें, स्वर्गसे ऊपरके महलोंकादिमें एव कथान्य स्थानोंमें गये ॥ ४४ ॥ परन्तु कहीं भी उन्हें ब्राह्मणका बालक न मिला । उनकी प्रतिज्ञा पूरी न हो सकी । अब उन्होंने अग्निमें प्रवेश करनेका विचार किया । परन्तु भगवान् श्रीकृष्णने उन्हें ऐसा करनेसे रोकते हुए कहा— ॥ ४५ ॥ 'मार्ह अर्जुन ! तुम अपने आप अपना तिरस्कार मत करो । मैं तुम्हें ब्राह्मणके सब बालक अभी दिखाये देता हूँ । आज जो लोग तुम्हारी निन्दा कर रहे हैं, वे ही फिर हम-जोगोंकी निर्मल कीर्तिकी स्थापना करेंगे' ॥ ४६ ॥

सर्वशक्तिमान् भगवान् श्रीकृष्ण इस प्रकार सम्मान-बुद्धाकर अर्जुनके साथ अपने दिव्य रथपर सवार हुए और पश्चिम दिशाको प्रस्थान किया ॥ ४७ ॥ उन्होंने सात-सात वर्षोंवाले सात द्वीप, सात समुद्र और लोक-लोकपर्वतको औंधकर घोर अन्धकारमें प्रवेश किया ॥ ४८ ॥ परीक्षित । वह अन्धकार इतना घोर था कि उसमें शैव्य, सुधीव, मेघपुत्र और कलाहक नामके चारों घोड़े अपना मार्ग भूलकर इधर-उधर भटकने लगे । उन्हें कुछ सूझना ही न था ॥ ४९ ॥ योगेश्वरोंके भी परमेश्वर भगवान् श्रीकृष्णने घोड़ोंकी यह दशा देखकर अपने सहस्र-सहस्र सूर्योंके समान तेजस्वी चक्रको आगे चलनेकी आज्ञा दी ॥ ५० ॥ सुदर्शन चक्र अपने ज्योतिर्मय तेजसे स्वयं भगवान्के द्वारा उत्पन्न उस बने एवं महान् अन्धकारको चीरता हुआ मनके समान तीव्र गतिसे आगे-आगे चला । उस समय वह ऐसा जान पड़ता था, मानो भगवान् रामका बाण धनुषसे दृष्टकर राक्षसोंकी सेनामें प्रवेश कर रहा हो ॥ ५१ ॥ इस प्रकार सुदर्शन चक्रके द्वारा वतलाये हुए मार्गमें चलकर रथ अन्धकारकी अन्तिम सीमापर पहुँचा । उस अन्धकारके पार सर्वश्रेष्ठ पारान्तरहित व्यापक परम ज्योति जगम्भा रही थी । उसे देखकर अर्जुनकी आँखें चौंधिया गयीं और उन्होंने विवश होकर अपने नेत्र बंद कर लिये ॥ ५२ ॥

इसके बाद भगवान्के रथने दिव्य जलराशिमें प्रवेश किया । बड़ी तेज आँधी चलनेके कारण उस जलमें बड़ी-बड़ी तरङ्गें उठ रही थीं, जो बहुत ही भरी माछम होती थी । वहाँ एक बड़ा सुन्दर महल था । उसमें मणियोंके सहस्र-सहस्र खम्भे चमक-चमककर उसकी सोमा बढ़ा रहे थे और उसके चारों ओर बड़ी उज्ज्वल ज्योति फैल रही थी ॥ ५३ ॥ उसी महलमें भगवान् शेषजी निराजमान थे । उनका शरीर अत्यन्त भयानक और कष्टत था । उनके सहस्र स्तिर थे और प्रत्येक फणपर सुन्दर-सुन्दर मणियों जगमगा रही थी । प्रत्येक स्तिरमें दो-दो नेत्र थे और वे बड़े ही मयङ्कर थे । उनका सम्पूर्ण शरीर कैलासके समान श्वेतवर्णका था, और गण तथा जीम नीले रंगकी थी ॥ ५४ ॥ परीक्षित । अर्जुनने देखा कि शेषभगवान्की सुखमयी शय्यापर सर्वव्यापक महान् प्रभावशाली परम पुरुषोत्तम भगवान् विराजमान हैं । उनके शरीरकी कान्ति बर्षा-कालीन मेघके समान श्यामल है । अत्यन्त सुन्दर पीला वस्त्र धारण किये हुए हैं । मुखपर प्रसन्नता खेल रही है और बड़े-बड़े नेत्र बहुत ही सुशक्ल लगते हैं ॥ ५५ ॥ बहुमूल्य मणियोंसे जड़ित मुकुट और कुण्डलोंकी कान्तिसे सहस्रों पुँचराखी अलकों चमक रही हैं । लम्बी-लंबी, सुन्दर आठ मुबार्र हैं; गलेमें कौस्तुभमणि है; वस्त्र-स्वल्पर श्रीवस्त्रक बिह्व है और धुतनोंतक वनमाशा लटक रही है ॥ ५६ ॥ अर्जुनने देखा कि उनके गन्ध-सुगन्ध आदि अपने पार्षद, चक्र-सुरशर्षा आदि अपने मूर्तिमान् आशुच तथा पुष्टि, श्री, कीर्ति और अज्ञा— ये चारों शक्तियों एवं सम्पूर्ण श्रद्धियों ब्रह्मादि लोकपालोंके अधीश्वर भगवान्की सेवा कर रही हैं ॥ ५७ ॥ परीक्षित । भगवान् श्रीकृष्णने अपने ही स्वरूप श्रीअनन्त भगवान्को प्रणाम किया । अर्जुन उनके दर्शनसे कुछ मथयीत हो गये थे, श्रीकृष्णके बाद उन्होंने भी उनको प्रणाम किया और वे दोनों हाथ जोड़कर खड़े हो गये । अब ब्रह्मादि लोकपालोंके स्वामी भूमा पुरुषने मुसकताते हुए मधुर एवं गम्भीर वाणीसे कहा— ॥ ५८ ॥ 'श्रीकृष्ण ! और अर्जुन ! मैंने तुम दोनोंको देखनेके लिये ही ब्राह्मणके बालक अपने पास मंगा लिये थे । तुम दोनोंने धर्मकी रक्षाके लिये मेरी कलाओंके साथ पृथ्वीपर अवतार ग्रहण

किया है; पृथ्वीके भाररूप दैत्योंका संहार करके शीघ्र-से-शीघ्र तुमलोग फिर मेरे पास जौट आओ ॥ ५९ ॥ तुम दोनों ऋषिवर नर और नारायण हो। यद्यपि तुम पूर्णकाम और सर्वश्रेष्ठ हो, फिर भी जगत्की स्थिति और लोकसंग्रहके लिये धर्मका आचरण करो ॥ ६० ॥

जब भगवान् भूमा पुरुषने श्रीकृष्ण और अर्जुनको इस प्रकार आदेश दिया, तब उन लोगोंने उसे स्वीकार करके उन्हें नमस्कार किया और बड़े आनन्दके साथ ब्राह्मण-बाळकोंको लेकर जिस रास्तेसे, जिस प्रकार आये थे, उसीसे वैसे ही द्वारकामें जौट आये। ब्राह्मणके बाळक अपनी आयुके अनुसार बड़े-बड़े हो गये थे। उनका रूप और आकृति वैसी ही थी, जैसी उनके जन्मके समय थी। उन्हें भगवान् श्रीकृष्ण और अर्जुनने उनके पिताको सौंप दिया ॥ ६१-६२ ॥ भगवान् विष्णुके उस परमवामको देखकर अर्जुनके आश्चर्यकी सीमा न रही।

उन्होंने ऐसा अनुभव किया कि जीवोंमें जो कुछ बल-पौरुष है, वह सब भगवान् श्रीकृष्णकी ही कृपाका फल है ॥ ६३ ॥ परीक्षित! भगवान्ने और भी ऐसी वनेकों ऐश्वर्य और वीरतासे परिपूर्ण लीजएँ कों। लोकदृष्टिमें साधारण लोगोंके समान सांसारिक विषयोंका भोग किया और बड़े-बड़े महाराजाओंके समान श्रेष्ठ-श्रेष्ठ यज्ञ किये ॥ ६४ ॥ भगवान् श्रीकृष्णने आदर्श महापुरुषोंका सा आचरण करते हुए ब्राह्मण आदि समस्त प्रजावर्गोंके सारे मनोरथ पूर्ण किये, ठीक वैसे ही, जैसे इन्द्र प्रजाके लिये समयानुसार वर्षा करते हैं ॥ ६५ ॥ उन्होंने बहुत-से अधर्मी राजाओंको खय मार बाळ और बहुतोंको अर्जुन आदिके द्वारा मरवा बाळ। इस प्रकार कर्मराज युधिष्ठिर आदि धार्मिक राजाओंसे उन्होंने अन्धारास ही सारी पृथ्वीमें धर्ममर्यादाकी स्थापना करा दी ॥ ६६ ॥

नव्वेवाँ अध्याय

भगवान् कृष्णके लीला-विहारका वर्णन

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित! द्वारकानगरीकी छटा अलौकिक थी। उसकी सड़कें मद चूते हुए मत-वाले हाथियों, घुसजित घोड़ाओं, घोड़ों और खर्णमय रथोंकी मीढ़से सदा-सर्वदा भरी रहती थीं। जिधर देखिये, उधर ही हरे-भरे उपवन और उद्यान लहरा रहे हैं। पौत-के-पौत वृक्ष फूलोंसे छदे हुए हैं। उनपर बैठकर नीरे गुनगुना रहे हैं और तरह-तरहके पक्षी कलरव कर रहे हैं। वह नगरी सब प्रकारकी सम्पत्तियोंसे भरपूर थी। जगत्के श्रेष्ठ वीर बहुवंशी उसका सेवन करनेमें अपना सौभाग्य मानते थे। वहाँकी बियाँ सुन्दर बेभ-भूषासे विभूषित थीं और उनके अङ्ग-अङ्गसे जवानीकी छटा छिटकती रहती थी। वे जब अपने महलोंमें गेंद आदिके खेल खेलतीं और उनका कोई अङ्ग कमी दीख जाता तो ऐसा जान पड़ता, मानो बिजली चमक रही है। लक्ष्मीपति भगवान्की यही अपनी नगरी द्वारका थी। इसीमें वे निवास करते थे। भगवान् श्रीकृष्ण सोलह हजारसे अधिक पत्नियोंके एकमात्र प्राणकल्म

थे। उन पत्नियोंके अलग-अलग महल भी परम ऐश्वर्यसे सम्पन्न थे। जितनी पत्नियाँ थीं, उसने ही अद्भुत रूप धारण करके वे उनके साथ विहार करते थे ॥ १-५ ॥ सभी पत्नियोंके महलोंमें सुन्दर-सुन्दर सरोवर थे। उनका निर्मल जल खिले हुए नीले, पीले, श्वेत, काळ आदि भौतिक-भौतिके कमलोंके परागसे मँहकता रहता था। उनमें झुंड-के-झुंड हंस, सारस आदि सुन्दर-सुन्दर पक्षी चहकते रहते थे। भगवान् श्रीकृष्ण उन वनशायीमें तथा कमी-कमी नदियोंके जलमें भी प्रवेश कर अपनी पत्नियोंके साथ जलविहार करते थे। भगवान्के साथ विहार करनेवाली पत्नियाँ जब उन्हें अपने सुज-पाशमें बाँध लेतीं, आखिङ्गन चरतीं, तब भगवान्के श्रीअङ्गोंमें उनके वक्षःस्थलकी केसर लग जाती थी ॥ ६-७ ॥ उस समय गन्धर्व उनके यशका गान करने लगते और सूत, मागध एवं बन्दीजन बड़े आनन्दसे मृदङ्ग, ढोल, नगारे और वीणा आदि बाजे बजाने लगते ॥ ८ ॥ भगवान्की पत्नियाँ कमी-कमी हँसते-हँसते पिच-

कारियोंसे उन्हें मिगो देती थीं । वे भी उनको तर कर देते । इस प्रकार भगवान् अपनी पत्नियोंके साथ क्रीडा करते, मानो यक्षराज कुबेर यक्षिणियोंके साथ विहार कर रहे हों ॥ ९ ॥ उस समय भगवान्की पत्नियोंके कष्ट-स्थल और जंघा आदि अङ्ग वलोंके मीग जानेके कारण उनमेंसे झलकने लगते । उनकी बड़ी-बड़ी चोटियों और जूँमेंसे गुँथे हुए फूल गिरने लगते, वे उन्हें मिगोते-मिगोते पिचकारी छीन लेनेके लिये उनके पास पहुँच जातीं और इसी बहाने अपने प्रियतमका आच्छिन्न कर लेतीं । उनके स्पर्शसे पत्नियोंके हृदयमें प्रेम-भावकी अमिष्टि हो जाती, जिससे उनका मुखकमल खिल उठता । ऐसे अवसरोंपर उनकी शोभा और भी बढ़ जाया करती ॥ १० ॥ उस समय भगवान् श्रीकृष्णकी वन-माछा ठन रानियोंके वक्षःस्थलपर लगी हुई कैसरके रंगसे रँग जाती । विहारमें अत्यन्त मग्न हो जानेके कारण धुँधराही अङ्कें उन्मुक्त भावसे छहराने लगतीं । वे अपनी रानियोंको बार-बार मिगो देते और रानियाँ भी उन्हें सराबोर कर देतीं । भगवान् श्रीकृष्ण उनके साथ इस प्रकार विहार करते, मानो कोई गजराज हयिनियोंसे घिरकर उनके साथ क्रीडा कर रहा हो ॥ ११ ॥ भगवान् श्रीकृष्ण और उनकी पत्नियाँ क्रीडा करनेके बाद अपने-अपने वस्त्राभूषण उतारकर उन नटों और नर्तकियों-को दे देते, जिनकी जीविका केवल गाना-बजाना ही है ॥ १२ ॥ परीक्षित् । भगवान् इसी प्रकार उनके साथ विहार करते रहते । उनकी चाल-ढाँक, बातचीत, चितवन-सुसकान, हास-विलास और आच्छिन्न आदिसे रानियोंकी चितवृत्ति उन्हींकी ओर खिंची रहती । उन्हें और किसी बातका स्मरण ही न होता ॥ १३ ॥ परीक्षित् । रानियोंके जीवन-सर्वस्व, उनके एकमात्र हृदयेश्वर भगवान् श्रीकृष्ण ही थे । वे कमलनयन क्या-सुन्दरके चिन्तनमें ही इतनी मग्न हो जातीं कि कई बेरतक तो चुप ही रहतीं और फिर उन्मत्तके समान असम्बद्ध बातें कहने लगतीं । कभी-कभी तो भगवान् श्रीकृष्णकी उपस्थितिमें ही प्रेमोन्मादके कारण उनके विरहका अनुभव करने लगतीं । और न जाने क्या-क्या कहने लगतीं । मैं उनकी बात तुम्हें सुनाता हूँ ॥ १४ ॥

रानियाँ कहतीं—अरी कुरी ! अब तो बड़ी रात हो गयी है । संसारमें सब ओर सन्नाय छा गया है ।

देख, इस समय खूब भगवान् अपना अलण्ड बोध छिन्नकर सो रहे हैं और तुझे नींद ही नहीं आती ! तू इस तरह रात-रातभर जगकर विलाप क्यों कर रही है ? सखी ! कहीं कमलनयन भगवान्के मधुर हास्य और लीलाभरी उदार (लीकृतिसूचक) चितवनसे तेरा हृदय भी हमारी ही तरह बिच तो नहीं गया है ? ॥ १५ ॥

अरी चक्री ! तुने रातके समय अपने नेत्र क्यों बंद कर लिये हैं ? क्या तेरे पतिदेव कहीं विदेश चले गये हैं कि तू इस प्रकार करुण खरसे पुकार रही है ? हाय-हाय ! तब तो तू बड़ी दुःखिनी है । परन्तु हो-न-हो तेरे हृदयमें भी हमारे ही समान भगवान्की वासी होनेका भाव जग गया है । क्या अब तू उनके चरणोंपर चढ़ायी हुई पुष्पोंकी माला अपनी चोटियोंमें धारण करना चाहती है ? ॥ १६ ॥

अहो सख्ख ! तुम निरन्तर गदगद ही रहते हो । तुम्हें नींद नहीं आती क्या ? जान पड़ता है तुम्हें सदा जागते रहनेका रोग लग गया है । परन्तु नहीं-नहीं, हम समस्त गर्भी, हमारे प्यारे श्यामसुन्दरने तुम्हारे वैर्ष, गाम्भीर्य आदि सामाविक गुण छीन लिये हैं । क्या इसीसे तुम हमारे ही समान ऐसी व्याधिके शिकार हो गये हो, जिसकी कोई दवा नहीं है ? ॥ १७ ॥

चन्द्रदेव ! तुम्हें बहुत बड़ा रोग राजयक्षा हो गया है । इसीसे तुम इतने कीण हो रहे हो । अरे राम-राम, अब तुम अपनी किरणोंसे बैँकुरा भी नहीं हटा सकते ! क्या हमारी ही भीति हमारे प्यारे श्यामसुन्दरकी मीठी-मीठी रहस्यकी बातें मूल जानेके कारण तुम्हारी बोद्धी बंद हो गयी है ? क्या उसीकी चिन्तासे तुम मौन हो रहे हो ? ॥ १८ ॥

मलयानिक ! हमने तेरा क्या बिगाड़ा है, जो तू हमारे हृदयमें कामका सञ्चार कर रहा है ? अरे तू नहीं जानता क्या ! भगवान्की तिरछी चितवनसे हमारा हृदय तो पहलेसे ही घायल हो गया है ॥ १९ ॥

श्रीकृष्ण मेघ ! तुम्हारे शरीरका सौन्दर्य तो हमारे प्रियतम-जैसा ही है । अवश्य ही तुम यदुवंशशिरोमणि भगवान्के परम प्यारे हो । तभी तो तुम हमारी ही

मौंति प्रेमपाशमें बँधकर उनका ध्यान कर रहे हो ! देखो-देखो ! तुम्हारा हृदय चिन्तासे भर रहा है, तुम उनके लिये अत्यन्त उत्कण्ठित हो रहे हो ! तभी तो बार-बार उनकी याद करके हमारी ही मौंति आँसूकी धारा बहा रहे हो । श्यामघन ! सचमुच घनश्यामसे नाता जोड़ना घर बैठे पीड़ा मोल लेना है ॥ २० ॥

री कोयल ! तेरा गळा बड़ा ही सुरीला है, मीठी बोली बोलनेवाले हमारे प्राणप्यारेके समान ही मधुर स्वरसे दू बोधती है । सचमुच तेरी बोलीमें सुधा बोझी हुई है, जो प्यारेके त्रिहृत्से भरे हुए प्रेमियोंको जिलने-बाकी है । दू ही बता, इस समय हम तेरा क्या प्रिय करें ! ॥ २१ ॥

प्रिय पर्वत ! तुम तो बड़े खदार विचारके हो । तुमने ही पृथ्वीको भी चारण कर रक्खा है । न तुम हिलते-बोलते हो और न कुछ कहते-सुनते हो । जान पड़ता है कि किसी बड़ी बातकी चिन्तामें मग्न हो रहे हो । ठीक है, ठीक है; हम समझ गयीं । तुम हमारी ही मौंति चाहते हो कि अपने स्तनोंके समान बहुत-से शिखरोंपर मैं भी भगवान् श्यामसुन्दरके चरणकमल चारण करूँ ॥ २२ ॥

समुद्रपत्नी नदियो ! यह प्रीम ऋतु है । तुम्हारे कुण्ड सूख गये हैं । अब तुम्हारे अंदर खिले हुए कमलोंका सौन्दर्य नहीं दीखता । तुम बहुत दुबली-पतली हो गयी हो । जान पड़ता है, जैसे हम अपने प्रियतम श्यामसुन्दरकी प्रेमभरी चितकन न पाकर अपना हृदय खो बैठी हैं और अत्यन्त दुबली-पतली हो गयी हैं, वैसे ही तुम भी मेवोंके द्वारा अपने प्रियतम समुद्रका जल न पाकर ऐसी दीन-हीन हो गयी हो ॥ २३ ॥

हंस ! आओ, आओ ! मले आये, खागत है । आसनपर बैठो; ओ, दूध पियो । प्रिय हंस ! श्यामसुन्दरकी कोई बात तो सुनाओ । हम समझती हैं कि तुम उनके दूत हो । किसीके कसमे न होनेवाले श्यामसुन्दर सकुशल तो है न ! खरे माई ! उनकी मित्रता तो बड़ी अस्थिर है, क्षणमधुर है । एक बात तो वतलाओ, उन्होंने हमसे कहा था कि तुम्हीं हमारी परम

प्रियतमा हो । क्या अब उन्हें यह बात याद है ! जाओ, जाओ; हम तुम्हारी अनुनय-विनय नहीं सुनती । जब वे हमारी परवा नहीं करते, तो हम उनके पीछे क्यों मरें ! क्षुद्रके दूत ! हम उनके पास नहीं जातीं । क्या कहा ? वे हमारी इच्छा पूर्ण करनेके लिये ही आना चाहते हैं, अच्छा ! तब उन्हें तो यहाँ बुला जाना, हमसे बात कराना; परन्तु कहीं लक्ष्मीको साथ न ले जाना । तब क्या वे लक्ष्मीको छोड़कर यहाँ नहीं आना चाहते ? यह कैसी बात है ? क्या क्षियोंमें लक्ष्मी ही एक ऐसी हैं, जिनका भगवान्से अनन्य प्रेम है ? क्या हमसे कोई एक भी वैसी नहीं है ? ॥ २४ ॥

परीक्षित ! श्रीकृष्ण-पत्नियों योगेश्वरेश्वर भगवान् श्रीकृष्णमें ऐसा ही अनन्य प्रेम-भाव रखती थीं । इसीसे उन्होंने परमपद प्राप्त किया ॥ २५ ॥ भगवान् श्रीकृष्णकी लीलाएँ अनेकों प्रकारसे अनेकों गीतोंद्वारा गान की गयी हैं । वे इतनी मधुर, इतनी मनोहर हैं कि उनके सुनने-मात्रसे क्षियोंका मन बलात् उनकी ओर खिंच जाता है । फिर जो क्षियों उन्हें अपने नेत्रोंसे देखती थीं, उनके सम्बन्धमें तो कहना ही क्या है ॥ २६ ॥ जिन बह-भाषिणी क्षियोंने जगद्गुरु भगवान् श्रीकृष्णको अपना पति मानकर परम प्रेमसे उनके चरणकमलोंको सहजया, उन्हें नहलया-धुलया, खिलया-पिलया, तरह-तरहसे उनकी सेवा की, उनकी तपस्याका वर्णन तो भला, किया ही कैसे जा सकता है ॥ २७ ॥

परीक्षित ! भगवान् श्रीकृष्ण सत्पुरुषोंके एकमात्र आश्रय हैं । उन्होंने वेदोंक धर्मका बार-बार आचरण करके लोगोंको यह बात दिखवा दी कि घर ही धर्म, धर्म और काम—साधनका स्थान है ॥ २८ ॥ इसी लिये वे गृहस्थोचित श्रेष्ठ धर्मका आश्रय लेकर व्यवहार कर रहे थे । परीक्षित ! मैं तुमसे कह ही चुका हूँ कि उनकी रानियोंकी संख्या थी सोलह हजार एक सौ आठ ॥ २९ ॥ उन श्रेष्ठ क्षियोंमेंसे रुक्मिणी आदि आठ पटरानियों और उनके पुत्रोंका तो मैं पहले ही क्रमसे वर्णन कर चुका हूँ ॥ ३० ॥ उनके अतिरिक्त भगवान् श्रीकृष्णकी और जितनी पत्नियाँ थीं, उनसे भी प्रत्येकके दस-दस पुत्र उत्पन्न किये । यह कोई आश्चर्यकी बात

नहीं है। क्योंकि भगवान् सर्वशक्तिमान् और सत्यसङ्कल्प हैं ॥ ३१ ॥ भगवान् के परम पराक्रमी पुत्रोंमें अठारह तो महारथी थे, जिनका यश सारे जगत् में फैला हुआ था। उनके नाम सुशसे सुनो ॥ ३२ ॥ प्रद्युम्न, अमि-रुद्ध, दीप्तिमान्, मातु, साम्ब, मधु, वृद्धज्ञानु, चित्रमानु, हुक, अरुण, पुष्कर, वेदबाहु, श्रुतदेव, सुनन्दन, चित्र-बाहु, विरूप, कवि और न्यग्रोध ॥ ३३-३४ ॥ राजेन्द्र । भगवान् श्रीकृष्णके इन पुत्रोंमें भी सबसे श्रेष्ठ रुक्मिणी-नन्दन प्रद्युम्नजी थे। वे सभी गुणोंमें अपने पिताके समान ही थे ॥ ३५ ॥ महारथी प्रद्युम्नने रुक्मीकी कन्यासे अपना विवाह किया था। उसीके गर्भसे अनिरुद्धजीका जन्म हुआ। उनमें दस हजार हाथियोंका बल था ॥ ३६ ॥ रुक्मीके दौहित्र अनिरुद्धजीने अपने मामाकी पोतीसे विवाह किया। उसके गर्भसे वज्रव्रज जन्म हुआ। ब्राह्मणोंके शापसे पैदा हुए मूढलके द्वारा यदुवंशका नाश हो जानेपर एकमात्र वे ही बच रहे थे ॥ ३७ ॥ वज्रके पुत्र हैं प्रतिबाहु, प्रतिबाहुके सुबाहु, सुबाहुके शान्तसेन और शान्तसेनके शतसेन ॥ ३८ ॥ परीक्षित ! इस वंशमें कोई भी पुरुष ऐसा न हुआ जो बहुत-सी सत्तामवाज न हो तथा जो निर्बल, अल्पायु और अल्पशक्ति हो। वे सभी ब्राह्मणोंके मल थे ॥ ३९ ॥ परीक्षित ! यदुवंशमें ऐसे-ऐसे यशस्वी और पराक्रमी पुरुष हुए हैं, जिनकी गिनती भी हजारों वर्षोंमें पूरी नहीं हो सकती ॥ ४० ॥ मैंने ऐसा सुना है कि यदुवंशके बाळकोंको शिक्षा देनेके लिये तीन करोड़ अट्ठसी लाख आचार्य थे ॥ ४१ ॥ ऐसी स्थितिमें महात्मा यदुर्विशियोंकी संख्या तो बतायी ही कैसे जा सकती है। स्वयं महाराज उपसेनके साथ एक नील (१०००००००००००००) के लगभग सैनिक रहते थे ॥ ४२ ॥

परीक्षित ! प्राचीन कालमें देवासुरसंग्रामके समय बहुत-से मयङ्कर असुर मारे गये थे। वे ही मनुष्योंमें उत्पन्न हुए और बड़े धमड़ेसे जनताको सताने लगे ॥ ४३ ॥ उनका दमन करनेके लिये भगवान् की आज्ञासे देवताओंने ही यदुवंशमें अवतार लिया था। परीक्षित ! उनके कुलोंकी संख्या एक सौ एक थी ॥ ४४ ॥ वे सब भगवान् श्रीकृष्णको ही अपना स्वामी एवं आदर्श मानते थे।

जो यदुवंशी उनके अनुयायी थे, उनकी सब प्रकारसे उन्नति हुई ॥ ४५ ॥ यदुर्विशियोंका चित्त इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्णमें लगा रहता था कि उन्हें सोने-वैठने, धूमने-पित्रने, बोलने-खेल्ने और नहाने-धोने आदि कामोंमें अपने शरीरकी भी सुविधा न रहती थी। वे जानते ही न थे कि हमारा शरीर क्या कर रहा है। उनकी समस्त शारीरिक क्रियाएँ यज्ञकी भाँति अपने-आप होती रहती थीं ॥ ४६ ॥

परीक्षित ! भगवान् का चरणघोवन गङ्गाजी अवश्य ही समस्त तीर्थोंमें महान् एवं पवित्र है। परन्तु जब स्वयं परमतीर्थस्वरूप भगवान् ने ही यदुवंशमें अवतार ग्रहण किया, तब तो गङ्गाजलकी महिमा अपने-आप ही उनके सुयशस्वीर्षकी अपेक्षा कम हो गयी। भगवान् के स्वरूपकी यह कितनी बड़ी महिमा है कि उनसे प्रेम करनेवाले मल और द्वेष करनेवाले शत्रु दोनों ही उनके स्वरूपको प्राप्त हुए। जिस व्यक्ति को प्राप्त करनेके लिये बड़े बड़े देवता यत्न करते रहते हैं, वे ही भगवान् की सेवामें नित्य-निरन्तर लगी रहती हैं। भगवान् का नाम एक बार सुनने अथवा उच्चारण करनेसे ही सारे अमङ्गलोंको गलत कर देता है। ऋषियोंके वंशजोंमें जितने भी धर्म प्रचलित हैं, सबके संस्थापक भगवान् श्रीकृष्ण ही हैं। वे अपने हाथमें कलशस्वरूप चक्र लिये रहते हैं। परीक्षित ! ऐसी स्थितिमें वे कृषीका शर उतार देते हैं, यह कौन बड़ी बात है ॥ ४७ ॥ भगवान् श्रीकृष्ण ही समस्त जीवोंके आश्रयस्थान हैं। यद्यपि वे सदा-सर्वदा सर्वत्र उपस्थित ही रहते हैं, फिर भी कहनेके लिये उन्होंने देवकीजीके गर्भसे जन्म लिया है। यदुवंशी वीर पार्षदोंके रूपमें उनकी सेवा करते रहते हैं। उन्होंने अपने मुजबलसे अधर्मका अन्त कर दिया है। परीक्षित ! भगवान् स्वभावसे ही क्राचर जगत् का दुःख मिटाते रहते हैं। उनका मन्द-मन्द मुसकानसे युक्त सुन्दर मुखारविन्द ब्रजस्थियों और पुरस्त्रियोंके हृदयमें प्रेम-भावका सञ्चार करता रहता है। अस्त्वयं सारे जगत्पर वही विजयी हैं। ऊर्ध्वीकी जय हो। जय हो ॥ ४८ ॥

परीक्षित् ! प्रकृतिसे अतीत परमात्माने अपनेद्वारा स्थापित धर्म-मर्यादाकी रक्षाके लिये दिव्य लील-शरीर ग्रहण किया और उसके अनुरूप अनेकों अद्भुत चरित्रोंका अभिनय किया । उनका एक एक कर्म स्मरण करनेवालोंके कर्मबन्धनोंको काट डालनेवाला है । जो यदुवंशशिरोमणि भगवान् श्रीकृष्णके चरणकमलोंकी सेवाका अधिकार प्राप्त करना चाहै, उसे उनकी लील-ओंका ही श्रवण करना चाहिये ॥ ४९ ॥ परीक्षित् ! जब मनुष्य प्रतिक्षण भगवान् श्रीकृष्णकी मनोहारिणी लील-

कथाओंका अविकाधिक श्रवण, कीर्तन और चिन्तन करने लगता है, तब उसकी यही भक्ति उसे भगवान्के परमधाममें पहुँचा देती है । यद्यपि कालकी गतिके परे पहुँच जाना बहुत ही कठिन है, परन्तु भगवान्के धाममें कालकी दाल नहीं गलती । वह बहोतक पहुँच ही नहीं पाता । उसी धामकी प्राप्तिके लिये अनेक सम्राटोंने अपना राजपाट छोड़कर तपस्या करनेके उद्देश्यसे जंगलकी यात्रा की है । इसलिये मनुष्यको उनकी लील-कथाका ही श्रवण करना चाहिये ॥ ५० ॥



इति दशम स्कन्ध उत्तरार्ध समाप्त

हरिः ॐ तत्सत्



गीताप्रेस, गोरखपुरकी श्रीमद्भागवत

श्रीशुक-सुधा-सागर— (बहुत मोटे अक्षरोंमें केवल भाषा) सम्पूर्ण 'श्रीमद्भागवत' बारहों स्कन्धोंकी सरल हिन्दी व्याख्या, श्लोकाङ्कसहित; आकार २२×२९ चारपेजी, (१ १ इंच×१ ४ ॥इंच) मोटा कागज, पृष्ठ-संख्या १३६०, चित्र बहुरंगे २०, कपड़ेकी जिल्द, मूल्य २०)

श्रीमद्भागवत-महापुराण (सचित्र, सरल हिन्दी-व्याख्यासहित) [दो खण्डोंमें] आकार २२×२९ आठपेजी, मोटा कागज, पृष्ठ-संख्या २०३२, बहुरंगे २५ और सुनहरा १ चित्रसे सुसज्जित, कपड़ेकी सुन्दर मजबूत दो जिल्दोंमें विभक्त, मूल्य १५)

श्रीभागवत-सुधा-सागर (केवल भाषा) सम्पूर्ण 'श्रीमद्भागवत' बारहों स्कन्धोंकी सरल हिन्दी व्याख्या, श्लोकाङ्कसहित; आकार २२×२९ आठपेजी, मोटा कागज, पृष्ठ-संख्या १०१६, चित्र २५ बहुरंगे, १ सुनहरा, कपड़ेकी जिल्द, मूल्य ८॥)

श्रीमद्भागवतमहापुराण [मूल, मोटा टाइप] आकार २२×२९ आठपेजी, मोटा कागज, पृष्ठ-संख्या ६९२, सचित्र, कपड़ेकी जिल्द, मूल्य ६)

श्रीमद्भागवत मूल (गुटका) आकार २२×२९ सोलहपेजी, मोटा कागज, पृष्ठ-संख्या ७६८, सचित्र, कपड़ेकी जिल्द, मूल्य ३)

श्रीप्रेम-सुधा-सागर (श्रीमद्भागवतके केवल दशम स्कन्धका भाषानुवाद) आकार २२×२९, आठपेजी, मोटा कागज, पृष्ठ-संख्या ३१६, चित्र १४ बहुरंगे, १ सुनहरा, कपड़ेकी जिल्द, मूल्य ३॥)

श्रीभागवतामृत (सटीक), आकार डिमाई आठपेजी, पृष्ठ-संख्या ३०४, तिरंगे चित्र ८, कपड़ेकी जिल्द, मूल्य १॥)

श्रीमद्भागवतान्तर्गत एकादश स्कन्ध (सटीक, सचित्र) आकार २०×३० सोलहपेजी, पृष्ठ-संख्या ४४८, सचित्र, मूल्य १), सजिल्द १॥)

पता—गीताप्रेस, पो० गीताप्रेस (गोरखपुर)

गीताप्रेस, गोरखपुर की गीताएँ

- श्रीमद्भगवद्गीता—तत्त्वविवेचनी टीकासहित (प्रश्नोत्तररूपमें सरल
- सुबोध व्याख्या) टीकाकार—श्रीजयदयालजी गोयन्दका, पृष्ठ
६८४, चित्र रंगीन ४, कपड़ेकी जिल्द, मूल्य ४)
- श्रीमद्भगवद्गीता [शांकरभाष्य]—हिन्दी-अनुवादसहित, पृष्ठ ५२०,
तिरंगे चित्र ३, मूल्य २॥)
- श्रीमद्भगवद्गीता [रामानुजभाष्य]—हिन्दी-अनुवादसहित, पृष्ठ ६०८,
तिरंगे चित्र ३, सजिल्द, मूल्य २॥)
- श्रीमद्भगवद्गीता—[बड़ी] मोटा टाइप, कपड़ेकी जिल्द, पृष्ठ ५७२,
रंगीन चित्र ४, मूल्य १॥)
- श्रीमद्भगवद्गीता—[मझली] साइज और टाइप कुछ छोटे, पृष्ठ ४६८,
रंगीन चित्र ४, मूल्य ॥३॥, सजिल्द १)
- श्रीमद्भगवद्गीता—अर्थसहित, मोटा टाइप, पृष्ठ ३१६, मूल्य ॥)
सजिल्द ॥३॥)
- श्रीमद्भगवद्गीता—मूल, मोटे अक्षरवाली, पृष्ठ २१६, सचित्र, मूल्य १-)
सजिल्द ॥१-)
- श्रीमद्भगवद्गीता—केवल भाषा, पृष्ठ १९२, सचित्र, मूल्य ॥)
- श्रीमद्भगवद्गीता [पञ्चरत्न]—गुटका साइज, सचित्र, पृष्ठ १८४, मूल्य ३)
- श्रीमद्भगवद्गीता—साधारण भाषाटीका, पाकेट-साइज, पृष्ठ ३५२, मूल्य २॥)
- श्रीमद्भगवद्गीता—मूल ताबीजी, साइज २×२॥ इंच, पृष्ठ २९६,
सजिल्द मूल्य ०)
- श्रीमद्भगवद्गीता—विष्णुसहस्रनामसहित, मूल मोटा टाइप, पृष्ठ
१२८, सचित्र, मूल्य १-॥)

पता—गीताप्रेस, पो० गीताप्रेस (गोरखपुर)

अन्य पुस्तकोंका सूचीपत्र मुफ्त मँगाइये !

